एक
आदर्श समत्व योगी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

[गीता अध्याय २ श्लोक ४७-४८]

श्री श्री रामगोपालजी मोहता
अभिनन्दन समिति
शिक्षा भवन, बीकानेर

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

[गीता अध्याय ५ श्लोक १०]

सम्पादक
सत्यदेव विद्यालंकार
सह-सम्पादक
प्रेमचन्द भारद्वाज

प्रकाशक
मनोहरलाल मित्तल बी० ए०, एल० एल० बी०
मन्त्री—मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता अभिनन्दन-समिति
बीकानेर

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स, एसप्लेनेड रोड
दिल्ली-६

प्राप्ति स्थान
गीता विज्ञान कार्यालय
४०—ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण
वैसाख सुदी ८, संवत् २०१५
२७ अप्रैल, १९५८

मूल्य दस रुपया

समर्पण

प्रिय आत्मीयजन,

हमारे साहित्य में गीता सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। वह केवल कोरा धार्मिक ही नहीं, किन्तु व्यावहारिक विज्ञान से भी ओत-प्रोत है। मनुष्यमात्र अपने गुण व स्वभाव के अनुसार अपने को सौंपे गए दायित्व को समष्टि अथवा समाज के प्रति यथावत निभाते हुए अपनी संसार-यात्रा को सुख-पूर्वक पूरा कर सकते हैं और विश्वात्मरूप मानव समाज (समष्टि) में अपने को वैसे ही खपा सकते हैं जैसे कि समस्त नदियों का जल अन्त में सागर में लीन हो कर अपनी पृथकता को खो देता है।

अर्जुन को श्रीकृष्ण ने गीता के इस व्यावहारिक विज्ञान का उपदेश दिया। उसके बाद भी अर्जुन ने यह प्रश्न किया कि :—

"स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥"

अर्जुन की इस जिज्ञासा को पूरा करने के लिए श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय २ के श्लोक ५५ से ६८ तक स्थित-प्रज्ञ की व्याख्या की है। परन्तु कोई भी उपदेश या आदेश केवल कहने या सुनने से हृदयंगम नहीं हो सकता जितना कि किसी प्रत्यक्ष उदाहरण से होना सम्भव है। इसी कारण किसी के जीवन का उदाहरण दे कर उसको समझाने का प्रयत्न करना अधिक अच्छा है। आमतौर पर यह उदाहरण उन लोगों का दिया जाता है जो हमारे बीच में उपस्थित नहीं होते, क्योंकि जीवनी प्रायः तब लिखी जाती है, जब स्थित-प्रज्ञ महापुरुष हममें से उठ जाते हैं। यदि कोई जिज्ञासु उनकी जीवनी के प्रत्यक्ष उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करना चाहता है, तो उसको निराश होना पड़ता है। इसलिए इस ग्रन्थ के द्वारा ऐसे समत्वयोगी महापुरुष की जीवनी प्रस्तुत की गई है जिसने स्थित-प्रज्ञ की स्थिति को अपने जीवन में पूरा उतारने का सफल प्रयत्न किया है। उनके जीवन के क्रिया-कलाप को प्रत्यक्ष रूप में देख कर कोई भी जिज्ञासु लाभान्वित हो सकता है। उनकी जीवनी के अतिरिक्त उन महानुभावों के कुछ संस्मरण भी इस ग्रंथ में दिए गए हैं, जिनको उन्हें बहुत समीप से देखने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। ये अनुभवपूर्ण संस्मरण जिज्ञासु के लिए विशेष उपयोगी हो सकेंगे।

गीता के व्यावहारिक विज्ञान के सम्बन्ध में विशिष्ट विद्वानों के अत्यन्त सरल भाषा में लिखे हुए विचारपूर्ण कुछ लेख भी इसमें दिए गए हैं। इससे गीता में प्रतिपादित इस व्यावहारिक विज्ञान के आदर्श को सैद्धान्तिक रूप में जानने में सहायता मिल सकेगी और वे इनसे गीता को वास्तविक रूप में समझने के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।

हमारी यह इच्छा है कि सर्वसाधारण जनता गीता को आर्य संस्कृति के व्यावहारिक-विज्ञान का संविधान अथवा कोड मान कर उसके ढाँचे में अपने व्यक्तिगत और समष्टिगत जीवन को ढाल कर अभ्युदय और निःश्रेयस के पथ पर वैसे ही अग्रसर हों, जैसे कि मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता हुए हैं। इस आशा और विश्वास के साथ यह ग्रन्थ जनता जनार्दन के प्रतिनिधि के रूप में आपकी सेवा में समर्पित है।

मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता अभिनन्दन समिति

सदस्यों की नामावली

१. अध्यक्ष—सेठ गजाधरजी सोमाणी, एम० पी०
२. मन्त्री—श्री मनोहरलालजी मित्तल, बी० ए० एल.एल० बी०, बीकानेर
३. महामहिम श्रीयुत श्रीप्रकाशजी, राज्यपाल, बम्बई राज्य, बम्बई
४. लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे, यवतमाल (बम्बई राज्य)
५. सर सिरेमल बापना, भूतपूर्व दीवान इन्दौर, रतलाम, बीकानेर तथा अलवर।
६. श्री जगजीवनरामजी, केन्द्रीय रेलवे मन्त्री, नई दिल्ली
७. श्री एस० के० पाटिल, केन्द्रीय परिवहन मन्त्री, नई दिल्ली
८. श्री राजबहादुर, केन्द्रीय संचार मन्त्री, नई दिल्ली
९. श्री मोहनलाल सुखाड़िया, मुख्यमन्त्री राजस्थान, जयपुर
१०. श्री ईश्वरदासजी जालान, स्वायत्त शासन मन्त्री, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता
११. श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अर्थमन्त्री, राजस्थान, जयपुर
१२. श्री जयनारायणजी व्यास, एम० पी०, जोधपुर
१३. चौधरी ब्रह्मप्रकाशजी, एम० पी०, दिल्ली
१४. श्री मथुरादासजी माथुर एम० पी०, जोधपुर
१५. श्री कमलनयन बजाज, एम० पी०, वर्धा
१६. स्वामी केशवानन्दजी एम० पी०, संगरिया (राजस्थान)
१७. श्री मुकुटबिहारीलालजी भार्गव एम० पी०, अजमेर (राजस्थान)
१८. श्री पन्नालाल बारूपाल एम० पी०, बीकानेर (राजस्थान)
१९. श्री विनायक राव विद्यालंकार, बार-एट-ला, एम० पी०, हैदराबाद (आन्ध्र)
२०. श्री हीरालालजी शास्त्री, एम० पी०, वनस्थली, जयपुर (राजस्थान)
२१. श्री हरीशचन्द्र हेडा एम० पी० हैदराबाद (आन्ध्र)
२२. श्री सूरजरतनजी दम्माणी, एम० पी०, बम्बई
२३. श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, एम० पी०, कलकत्ता
२४. श्री हरीशचन्द्रजी माथुर एम० पी०, जोधपुर
२५. श्री जसवन्तराज जी मेहता, एम० पी० जोधपुर
२६. श्री गोविन्द मालवीय एम० पी०, वाराणसी
२७. सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला, नई दिल्ली
२८. सेठ सोहनलालजी दूगड़, कलकत्ता
२९. साहू शान्तिप्रसादजी जैन, नई दिल्ली
३०. श्री रामनाथ आनन्दीलाल पोद्दार, बम्बई
३१. लाला योधराजजी, नई दिल्ली
३२. सेठ मोतीलालजी लापड़िया, बम्बई
३३ सेठ रामप्रसादजी खंडेलवाल, बम्बई
३४. सेठ लक्ष्मीनारायणजी गाडोदिया, दिल्ली
३५. श्री ब्रजलाल बियाणी, एम० एल० ए० अकोला (बम्बई)

३६. रायसाहब सेठ मीनामलजी सोमानी, रईस, दिल्ली
३७. श्री निरंजनप्रसादजी, भूतपूर्व प्रेजीडेन्ट, कराची काटन एसोसिएशन
३८. सेठ राधाकृष्णजी मूंदड़ा, भीनासर (बीकानेर)
३९. सेठ शिवदासजी मूंदड़ा, दिल्ली
४०. चौधरी हरवंशलालजी, मालिक मदन रोलर फ्लोर मिल, जलन्धर
४१. श्री रामनारायणजी हुरिया, पार्टनर रवीन्द्रकुमार कम्पनी, दिल्ली
४२. श्री गोकुलदासजी मोहता, बम्बई
४३. श्रीबाबू भाई चिनाय, भूतपूर्व अध्यक्ष अखिल भारतीय उद्योग व्यापार व्यवसाय संघ, बम्बई
४४. श्री अक्षयकुमार जैन, सम्पादक दैनिक "नव-भारत" टाईम्स, दिल्ली व बम्बई
४५. श्री मुकुट बिहारीलालजी वर्मा, सम्पादक, दैनिक "हिन्दुस्तान", नई दिल्ली
४६. श्री मन्मथनाथजी गुप्त, सम्पादक "योजना", दिल्ली
४७. श्री रामगोपालजी माहेश्वरी, सम्पादक "नवभारत" नागपुर व भोपाल
४८. श्री विश्वम्भर प्रसादजी शर्मा, सम्पादक "आलोक" व "राजस्थानी", नागपुर
४९. श्री शम्भुनाथजी सक्सेना, सम्पादक "सेनानी", बीकानेर
५०. डा० ताराचन्द के० लालवानी, सम्पादक "कराची डेली"
५१. श्री सीतारामजी सेक्सरिया, कलकत्ता
५२. श्री जयचन्दलालजी दफ्तरी, मंत्री केन्द्रीय अणुव्रत समिति सरदारशहर (राजस्थान)
५३. श्री कन्हैयालालजी सेठिया, सुजानगढ़
५४. श्री डालमचन्द सेठिया, बार-एट-ला, कलकत्ता
५५. श्री ब्रजरतनजी करनाणी, कलकत्ता
५६. श्री बच्छराजजी सिंघी, सुजानगढ़
५७. श्री ऋषभदासजी रांका अध्यक्ष, जैन महामंडल, पूना
५८. श्री राधाकृष्णजी खेमका, एम० एल० ए०, तिनसुकिया (असम)
५९. श्री रामेश्वर अग्रवाल, अध्यक्ष खादी संघ, राजस्थान, जयपुर
६०. आचार्य पं० नरदेवजी शास्त्री, कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
६१. श्री सन्तरामजी, होशियारपुर (पंजाब)
६२. आयुर्वेदाचार्य पं० शिव शर्मा, अध्यक्ष, आयुर्वेद महासम्मेलन, बम्बई
६३. आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री, ज्ञानधाम, शहादरा (दिल्ली)
६४ लाला परसादीलाल पाटणी, महामन्त्री, अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा, दिल्ली
६५. श्री खानचन्द गोपालदास, प्रिन्सिपल ला कालेज, बम्बई
६६. श्री गोकुल भाई भट्ट, सर्वोदय संघ, जयपुर
६७. श्री रणजीतमलजी मेहता, रिटायर्ड जज, जोधपुर
६८. श्री गुलाबचन्दजी नागोरी, भू० पू० अध्यक्ष माहेश्वरी महासभा, औरंगाबाद
६९. सेठ आनन्दराजजी सुराणा, दिल्ली
७०. श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल, इलाहाबाद
७१. श्री ब्रजवल्लभ दासजी मूंदड़ा, रंगून (बर्मा)
७२. श्री बालकृष्णजी मोहता, कलकत्ता
७३. प्रोफेसर प्रेमचन्दजी भारद्वाज, सह सम्पादक "योजना", दिल्ली
७४ श्री सत्यदेव विद्यालंकार, नई दिल्ली

७५. श्री कन्हैयालालजी कलयंत्री, फलौदी (मारवाड़)
७६. श्रीमती सत्यवतीजी कलयंत्री, फलौदी (मारवाड़)
७७. श्रीमती सज्जनदेवीजी मुहनोत, एम० एल० ए०, वाराणसी
७८. श्री सत्यदेवजी, जनरल मैनेजर बैंक आफ बीकानेर, बीकानेर
७९. डा० भगतरामजी, बीकानेर
८०. श्री गिरधारीदानजी, बीकानेर
८१. श्री शंकरदत्तजी वैद्य, अध्यक्ष मोहता आयुर्वेद संस्था, बीकानेर
८२. ठाकुर जुगलसिंह खीची, एम०, ए०, पी एच० डी०, बार-एट ला, बीकानेर
८३. डा० छगनलालजी मोहता, बीकानेर
८४. श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा, आचार्य भारतीय विद्या भवन, बीकानेर
८५. श्री रतनलालजी शर्मा, बीकानेर
८६. आचार्य उदयवीरजी शास्त्री, बीकानेर
८७. श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर
८८. सेठ लालचन्दजी कोठारी, बीकानेर
८९. पंडित अनन्तलालजी व्यास, बीकानेर
९०. श्रीहरभगवानजी संचालक, जातपात तोड़क मण्डल, लाहौर, भारत सेवक समाज, दिल्ली
९१. सेठ चाँद रतनजी बागड़ी, बीकानेर
९२. श्री मूलचन्दजी पारीक, अध्यक्ष बीकानेर कांग्रेस कमेटी, बीकानेर
९३. श्री सूरज करणसिंहजी, बीकानेर
९४. श्रीमती सरस्वती देवीजी गाडोदिया, दिल्ली
९५. श्रीमती कौशल्या देवीजी मोहता, कलकत्ता
९६. श्रीमती गंगा देवीजी मोहता, सलकिया, हावड़ा (कलकत्ता)
९७. श्री पी० आर० नायक, आई० सी० एस० कमिश्नर म्युनिसिपल कार्पोरेशन, दिल्ली
९८. डा० नारायणदासजी मीरचन्दानी, बम्बई
१००. श्री होतचन्द अडवानी, बैरिस्टर
१०१. श्री सोहनलाल जी सेठी, एम० ए० एल-एल० बी०, एडवोकेट, नई दिल्ली

सम्पादक की ओर से

"विनय" तथा "अभिवादन" का भारतीय जीवन, दर्शन और संस्कृति में विशेष महत्व है। ये गुण समाज में समय-समय पर विभिन्न रूपों में प्रगट होते रहते हैं। रामायण और महाभारत सरीखे ग्रंथों की रचना इन्हीं की परिचायक है। बड़ों के प्रति यह विनय और अभिवादन कुछ वर्ष पहले सार्वजनिक समारोहों एवं अभिनन्दन पत्रों द्वारा प्रगट किया जाता था। अभिनन्दन पत्रों की उस परम्परा ने अब अभिनन्दन ग्रन्थों का रूप ले लिया है। यह ठीक ही कहा गया है कि "अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥" हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक किंवा सार्वजनिक और राष्ट्रीय जीवन में भी ये दोनों गुण हमारे स्वभाव के अंग बन गये हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना पुराने भारतीय आदर्शों की नीव पर की गई थी। वहां के जीवन में इन गुणों को सदा ही प्रमुख स्थान दिया गया। इसलिये जब मुझे आदरणीय वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता के ८१–८२ वर्ष में शुभ पदार्पण करने के उपलक्ष में अभिनन्दन हेतु इस ग्रन्थ के सम्पादन करने का निमन्त्रण मिला, तब मैंने सहसा ही उसको स्वीकार कर लिया। मैंने अपनी स्वीकृति के साथ यह भी लिखा कि यह पुनीत कार्य बहुत पहिले ही हो जाना चाहिये था। वयोवृद्ध श्रद्धेय मोहता जी सभी दृष्टियों से हमारी श्रद्धा, सम्मान और अभिवादन के पूर्णतः अधिकारी है। उनके प्रति हमारा यह कर्तव्य है, जिसका पालन करने में और अधिक देरी नहीं करनी चाहिए।

राजस्थान अथवा मारवाड़ी समाज में जन्म न लेने पर भी उनके प्रति मेरा लगाव बहुत कुछ स्वाभाविक बन गया है। उनसे सम्बन्धित लोगों के प्रति मान-सम्मान व प्रतिष्ठा के प्रकट करने का साधारण सा प्रसंग उपस्थित होने पर भी मैं उससे अलग नहीं रह सकता। १९२० में, जब मैंने हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था, तभी मेरा उनके साथ सम्पर्क हो गया था और उसके निमित्त थे जैसलमेर के अमर शहीद श्री सागरमल गोपा। उन दिनों में भी वे सर पर कफन बांधे जैसलमेर के लिये शहीद होने की धूमी रमाए रहते थे। स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर पं० अर्जुनलालजी सेठी, अपनी लगन और धुन के धनी श्री विजयसिंहजी पथिक तथा ऐसे ही कुछ अन्य लोगों के साथ गोपाजी के ही माध्यम से मेरा परिचय हुआ था और राजस्थान तथा मारवाड़ी समाज के प्रति मेरा लगाव बढ़ता चला गया। राजस्थानियों अथवा मारवाड़ियों में अपने ही ढंग की कुछ अद्भुत विशेषताएं और विलक्षण गुण पाये जाते हैं। उनके सम्बन्ध में कैसी भी भ्रान्त धारणाएं क्यों न पैदा कर दी गई हों, परन्तु मैं सदा ही उनके उन गुणों और विशेषताओं का कायल रहा हूँ। केवल एक उदाहरण लीजिये। भारत के कोने कोने मे छोटी-बड़ी वस्तियां बसाने और उनको व्यापार-व्यवसाय व कल-कारखानों से समृद्ध करने

में जिस विलक्षण प्रतिभा, अटूट धैर्य और निरंतर अध्यवसाय से उन्होंने काम लिया है, उसके लिये उनकी जितनी सराहना की जाए कम है। जब संचार और यातायात के आधुनिक साधन नहीं थे तब वे देश के सुदूर क्षेत्रों में सर्वत्र फैल गये और जहां भी गये वहां उन्होंने निर्माण कला का विस्मयजनक परिचय दिया। असम के स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री बारदोलाई ने शिलांग में मेरे साथ चर्चा करते हुए यह तथ्य प्रगट किया था कि उनके राज्य में छोटी-बड़ी सभी बस्तियां बसाने का श्रेय उन मारवाड़ी लोगों को प्राप्त है जो केवल दो या तीन सन्तति पहले आकर यहां बसे हैं। उन्होंने सरकारी गजटीयर्स में भी इसका उल्लेख बताया। उनका कहना यह था कि बस्तियों के ठीक बीच में उनकी बसावट और उनके मुख्य बाजार होने से यह स्वतः सिद्ध है कि वे जहां जा कर बसे उसके चारों ओर बस्तियां बसती गई। उसके बाद मैंने यह देखा कि यह तथ्य प्रायः सभी राज्यों की अनेक छोटी-बड़ी बस्तियों पर लागू होता है। मोहता परिवार के पूर्वजों ने बीकानेर नगर व राज्य के बसाने और वर्तमान कराची के निर्माण में जो साहसपूर्ण योग दिया, उसका रोचक विवरण पाठक इस ग्रन्थ में पढ़ेंगे। मैं यह देख कर कभी-कभी चकित रह जाता हूं कि जिस समाज ने करोड़ों रुपये खर्च करके विविध सार्वजनिक कार्य सम्पन्न किए अथवा करवाए हैं उसको अपनी इस विलक्षण प्रतिभा और अद्भुत अध्यवसाय के इतिहास के लिखे जाने की आवश्यकता क्यों अनुभव नहीं हुई?

इसका कारण सम्भवतः यह है कि राजस्थानी लोगों में सामूहिक समष्टिगत जीवन की दृष्टि का विकास नहीं हुआ। उनमें व्यक्तिगत जीवन की ही प्रमुखता रही है। अपने सामूहिक गुणों को समष्टि दृष्टि से सराहना करना उन्होंने नहीं सीखा। इतिहास भी इसका साक्षी है कि राजपूत सरदार कभी भी किसी भी एक सरदार के झण्डे के नीचे इकट्ठे नहीं हो सके। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से राजस्थान और राजस्थानी जीवन सबसे अधिक विभक्त और बिखरा हुआ है। एक सामाजिकता, एक जातीयता अथवा एक राष्ट्रीयता की समष्टि भावना उनमें पनप नहीं सकी। अंग्रेजी राज के दिनों में यह अभिशाप देशी रजवाड़ों व जागीरों में राजस्थान के विभक्त होने के कारण चरम सीमा पर पहुँच गया। प्रकृति भी उनमें एकता के समष्टिगत गुण पैदा करने में सहायक नहीं हुई। मरुभूमि का प्रत्येक कण एक दूसरे से अलग रहता है। राजस्थान में इसी कारण किसी ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व या नेतृत्व का विकास अथवा निर्माण नहीं हो सका, जिसको सारा राजस्थान या समाज समान रूप से मानता हो। एक दूसरे के प्रति सराहना अथवा गुण ग्राहकता की भावना के बिना ऐसे व्यक्तित्व या नेतृत्व का विकास अथवा निर्माण नहीं हो सकता। परिणाम इसका यह हुआ कि सामूहिक अथवा समष्टि दृष्टि से सारा ही प्रदेश अथवा समाज पिछड़ा रह गया। गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल तथा अन्य राज्यों व समाजों में पारस्परिक सराहना और गुण ग्राहकता जिस रूप में पाई जाती है राजस्थान में उसका प्रायः अभाव है। भारतीय जीवन के विनय और अभिवादन के गुणों ने वर्तमान में अभिनन्दन ग्रन्थों की जिस परम्परा का रूप धारण कर लिया है उसका समावेश राजस्थान अथवा

मारवाड़ी समाज में होना अत्यन्त शुभ है। इससे इस अभाव की पूर्ति कुछ अंशों में अवश्य ही हो सकेगी। स्वर्गीय श्री बसन्तलाल जी मुरारका और कर्मनिष्ठ स्वामी केशवानन्दजी महाराज की सेवा में अभिनन्दन ग्रन्थों का समर्पित किया जाना इस परम्परा का शुभ श्रीगणेश है।

परस्पर सराहना न करने अथवा गुण ग्राहकता की कमी होने का एक वड़ा कारण यह है कि एक दूसरे को ठीक-ठीक रूप में समझने का प्रयत्न नहीं किया जाता। अनेक भ्रम और भ्रान्त धारणाएँ अथवा ग़लतफहमियां ऐसा करने में बाधक बन जाती हैं। यहां इसका एक ज्वलन्त उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। बीकानेर के कुछ लोग अपने निहित स्वार्थों पर आंच आने के कारण मोहताजी के समाज सुधार सम्वन्धी कार्यों के कट्टर विरोधी थे और उन्होंने आपकी निन्दा करने में कुछ भी उठा न रखा था। बीकानेर के राजपूत सरदार और पढ़े लिखे कुछ विद्वान् अनेक कारणों से मोहताजी के विरोधी रहे। महाराज गंगासिंहजी भी को मोहताजी का सुधार कार्य पसन्द न था। उनके अनेक दरबारी उनको मोहताजी के सम्वन्ध में भ्रान्तिपूर्ण समाचार देते रहते थे। महाजन के राजा साहब महाराज के विश्वासपात्र लोगों में से थे और राजा साहब महाजन के विश्वासपात्र थे प्रज्ञाचक्षु पंडित केसरीप्रसादजी। वे अपनी विद्वत्ता एवं प्रतिभा के अपने सरीखे एक ही व्यक्ति थे और सारे बीकानेर में उनको मान्यता प्राप्त थी। संस्कृत, हिन्दी, व्रज और फारसी भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। शुरू दिनों में वे भी मोहताजी के विरोधी तथा निन्दक रहे। आपको भंगी व ढेड़ आदि कहने में भी वे संकोच नहीं करते थे। आपको संस्कृत से अनभिज्ञ बताकर आपके "गीता का व्यवहार दर्शन" का वे प्रायः उपहास किया करते थे। सुजानगढ़ में 'बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन' में भी उन्होंने मोहताजी के प्रति अपना विरोध व रोष प्रदर्शित किया था। परन्तु वहां आपका अध्यक्षीय भाषण सुनने के बाद वे ऐसे प्रभावित और आकर्षित हुए कि उन्होने अपना सारा मतभेद और विरोध सहसा ही भुला दिया। वे मोहताजी के अन्यतम प्रशंसक बन गए। उन्होंने वैशाख शुक्ला तृतीया संवत् २००० विक्रमी को मोहताजी को एक पत्र लिखकर अपने जो विचार प्रगट किए उनको यहां उद्धृत करना आवश्यक है। शास्त्रीजी का वह पत्र अविकल रूप में यहां दिया जा रहा है—

"श्रीयुत परम श्रद्धेय पूज्य श्री रामगोपालजी मोहता की पुनीत सेवा में।

श्रीयुत माननीय मोहताजी महोदय !

यद्यपि मैं एक लम्बा पत्र लिख रहा हूँ, किन्तु मुझे दृढ़ आशा है कि आपके अमूल्य समय का एक भाग इसे भी मिलेगा। मनुष्य की विचारधारा तथा ज्ञान गति केवल अनुभव के ही नहीं किन्तु काल, चक्र के भी अधीन है, यही कारण है कि मैं बहुत काल के अनन्तर अपने स्थिर विचार आपकी सेवा में समर्पित कर रहा हूँ।

यह तो आप जानते ही हैं कि मेरी क्रूर किन्तु सत्य समालोचना में चाटुकारिता को कभी स्थान नहीं मिला और न कभी मिलने की आशा ही है। मैंने जब जो कुछ समझा उसे प्रमाणित हो जाने पर उसी समय प्रगट कर दिया। बस मेरा यह पत्र इसी सिद्धान्त के अनुसार है। आपकी

उदारता, सभ्यता, विद्वत्प्रियता, विशेषतः क्षमाशीलता ने मुझे विवश किया है कि मैं अपने अतीत भाषण के लिये आपसे सविनय क्षमा माँग कर भविष्य में आपके किसी सिद्धान्त का प्रतिवाद कहीं और कभी न करूँ और मुक्त कण्ठ से कहूँ कि श्रीयुत मोहता रामगोपालजी राज्यश्री बीकानेर के अनुपम और उज्ज्वल रत्नों में से एक हैं।

आपके ग्रन्थों और कार्यों में निष्कपटता तथा धर्म दृष्टि ही की प्रधानता है और वह भी वर्तमान युग के अनुसार और अपेक्षित। इसलिये मेरी अब यह विश्वस्त धारणा हो गई है कि इस प्रकार के महात्मा लोग निन्दनीय नहीं अपितु प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं।

आपको यह पढ़ कर हर्ष होगा कि वर्तमान गति के अनुसार मैं आपके किसी सिद्धान्त का प्रतिवादी नहीं रहा। जब यथासमय वैदिक धर्म के समस्त अंगों में परिवर्तन होता आया है और उसके बीज शास्त्रों में हैं तब आपके सिद्धान्तों का व्यर्थ विरोध क्यों किया जाय? जब आपके समस्त कार्य धर्म और सुधार के विचार से हो रहे हैं, तब कोई भी सत्य का उपासक उनका प्रतिबन्धक क्यों बने और वह भी तब जब कि आप जैसे धर्म के अग्रणी हों।

देश, जाति और धर्म की दृष्टि से आपका नेतृत्व समाज के लिये परम लाभकर है। आप जैसे व्यक्ति विशेष ही उन्नति के पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। इसलिये मेरे इस असम्भव परिवर्तन के लिये आपको अनेकानेक साधुवाद। अब से आपके परोक्ष में भी आपकी किसी कृति पर मेरी ओर से कोई आक्षेप नहीं होगा। इसी विचार से मैंने यह पत्र लिख दिया है।

जब प्राचीन टीकाकारों ही में मतभेद है तब आपके "व्यवहार दर्शन" ही ने गीता का क्या बिगाड़ दिया? जब धर्म शास्त्रों में भी नियोग और विधवा-विवाह की चर्चा पाई जाती है और आज भी इस पक्ष के पोषक सहस्रों विद्यमान हैं तब अकेले और आप ही को उपालम्भ क्यों? फिर अछूतोद्धार की चर्चा भी तो आज की नहीं बहुत पुरानी है। इन बातों ने मुझे आप जैसे उत्साही मनुष्यों के प्रतिपक्ष से सदा के लिये दूर कर दिया। यह समस्त प्रभाव आपके उस भाषण का है जो आपने सुजानगढ़ में साहित्य सम्मेलन के सभापतित्व से दिया था। अतः साधुवाद और धन्यवाद के साथ ही मैं अपनी उन कटु समालोचनाओं को वापिस लेता हूँ जो आपकी उदारता के भरोसे पर की गई थीं।

भवदीय—

केसरीप्रसाद शास्त्री"

इस प्रकार यदि वस्तुस्थिति को समझकर सचाई के ग्रहण करने में हम सब तत्पर रहें, तो बहुत से भ्रम और भ्रान्त धारणाएँ दूर होने में अधिक समय न लगे और एक दूसरे को समझते, आपस में एक दूसरे की सराहना करने तथा एक दूसरे के गुण ग्रहण करने में कोई कठिनाई न रहे। राजस्थान तथा मारवाड़ी समाज में भ्रम अथवा मिथ्या धारणा के कारण एक दूसरे के प्रति ग़लतफ़हमी सहज में पैदा कर ली जाती है। इस दोष या दुर्गुण का निराकरण किया जाना आवश्यक है।

हम लोगों के मार्ग में बहुत बड़ी कठिनाई एक और थी। वह यह कि मोहताजी व्यक्ति-पूजा के कट्टर विरोधी हैं और उनकी दृष्टि में यह अभिनन्दन-ग्रन्थ-परम्परा व्यक्ति-पूजा को प्रश्रय देने वाली है। अभिनन्दन-ग्रन्थ-परम्परा के साथ जुड़ा हुआ ढोंग व आडम्बर आपको बिलकुल भी पसन्द नहीं है। इसलिये इस ग्रन्थ की भेंट को अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करने से आपने इन्कार कर दिया। फिर भी इसको प्रकाशित करने का दुस्साहस अथवा अतिसाहस हम लोगों ने आप की इच्छा के विरुद्ध कर डाला है क्योंकि आपके प्रति अपनी श्रद्धा, सम्मान एवं अभिवादन की भावना को मूर्त्त रूप देने के कर्तव्यपालन से हम विमुख नही रह सकते थे। यह ग्रन्थ उस जनता की सेवा में समर्पित है, जिसकी सेवा पूज्य मोहताजी का जीवन व्रत रहा है। इस ग्रन्थ को सरसरी तौर पर देखने वाले भी यह स्वीकार करेंगे कि सभी दृष्टियों से श्रद्धेय मोहताजी हमारे सम्मान, आदर व श्रद्धा के अधिकारी हैं। इस अभागे देश में जिसमें, औसत आयु ३१-३२ वर्ष से अधिक नहीं है, ८० वर्ष की आयु प्राप्त करना और जनता के सम्मुख दीर्घायु होने का आदर्श उपस्थित करना सामान्य बात नहीं है। जनता को दीर्घायु प्राप्त करने और जीवन को कला के रूप में भोगने के लिये प्रेरित करना नितान्त आवश्यक है। सेवाभावी मोहताजी ने अपने जीवन की आधी से अधिक शताब्दी लोक सेवा और लोक कल्याण में लगाई है। आपका लोक जीवन चहुँमुखी है। लोक कल्याण के हर क्षेत्र में आपका सहज व स्वाभाविक प्रवेश है। समाज में फैली हुई विषमता को नष्ट करने के लिये धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति की साधना अथवा समत्व योग की प्रतिष्ठा आपके जीवन का प्रधान लक्ष्य रहा है। ३५-४० वर्ष से आप साहित्य साधना में निरत हैं। गीता का गहन अनुशीलन करके उसकी गहराई में पैठ कर आपने व्यवहार दर्शन के जो अनमोल रत्न सामान्य जनता के लिये उपलब्ध किये हैं वह भी आपकी बहुत बड़ी सेवा है। सामयिक समस्याओं पर आपके गहन, गम्भीर और सुलझे हुए विचार सामान्य जनता का पथ-प्रदर्शन करने के लिए दीपक के समान हैं। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होना चाहिये कि सामान्य लोगों के लिये आपका जीवन न केवल श्रद्धा का विषय; किन्तु अनुकरणीय आदर्श है। उसके ढांचे में हम सब अपने जीवन को ढालकर अपनी संसार यात्रा को सरल एवं सफल बना सकते हैं। संसार को दुःखमय समझकर उससे दूर भागने की कल्पना को आप कपोल कल्पित मानते हैं। "सुखदु:खे समे कृत्वा" और "पद्मपत्रमिवाम्भसा" के आदर्श को सदा सामने रखते हुए आपने इस संसार में जीवन व्यतीत करने का अनुकरणीय उदाहरण अपने क्रियाशील जीवन से उपस्थित कर दिया है। इसीलिये इस ग्रन्थ को "एक आदर्श समत्व योगी" के रूप में प्रकाशित करना आवश्यक समझा गया। किसी स्पष्ट उदाहरण अथवा प्रत्यक्ष प्रयोग के बिना सर्वसाधारण का ध्यान किसी आदर्श की ओर सहज में आकर्षित नही हो सकता। इसीलिये इस ग्रन्थ को कुछ व्यक्तिगत रूप देना अनिवार्य हो गया और उस व्यक्तिगत रूप को स्पष्ट करने के लिये वह पारिवारिक पृष्ठभूमि देनी भी आवश्यक हो गई, जिसमें मोहताजी ने अपने यशस्वी जीवन का प्रखर विकास व निर्माण किया है।

ग्रन्थ का सम्पादन करते हुए मेरे सामने मुख्य दृष्टि यही रही कि मनस्वी मोहताजी के सेवामय व साधनामय महान जीवन का पूरा चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाना चाहिये। इस ग्रन्थ में कुछ कमियां हो सकती हैं। परन्तु जिस दृष्टि से इसका प्रकाशन किया गया है उससे इसमें कोई कमी न रहने देने की पूरी सावधानी बरती गई है।

मुझे हार्दिक दुःख है कि ग्रन्थ में अत्यन्त आग्रह से प्राप्त किए गए कुछ लेखों का समावेश नहीं किया जा सका। अनेक विद्वानों ने ग्रन्थ के आशय अथवा दृष्टिकोण को ध्यान में न रखते हुए कुछ लेख भेजने की कृपा की। उनका मेल गीता के उस व्यवहारिक रूप के साथ नहीं बैठता जिसको इस ग्रन्थ द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। गीता और श्रीकृष्ण के प्रति अन्ध भक्ति, अन्ध श्रद्धा अथवा अन्ध भावना को प्रश्रय देना उस उद्देश्य की हत्या करना होता, जिससे प्रेरित होकर यह ग्रन्थ तैयार किया गया है। विचार क्रान्ति प्रधान भी कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण लेखों का समावेश ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या बढ़ा कर भी किया नहीं जा सका। पूज्य मोहताजी के कुछ और उपयोगी लेख और विचार भी स्थान की कमी के कारण नहीं दिये जा सके। जिन सुयोग्य विद्वान लेखकों के लेखों को ग्रन्थ में प्रकाशित नहीं किया जा सका है उन सबसे मैं अत्यन्त विनीत भाव से क्षमा प्रार्थी हूँ। वे सहृदय और उदार भाव से क्षमा प्रदान करेंगे।

मेरी दृष्टि में ग्रन्थ का संस्मरण प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण है। किसी भी व्यक्ति का ठीक ठीक परिचय उस रूप में मिलता है जिसमें उसको दूसरों ने देखा होता है। जो संस्मरण इस ग्रन्थ में दिये गये हैं, उनमें काफी काटछांट करने पर भी उनका विस्तार कुछ अधिक हो गया। व इस ग्रन्थ की शोभा और विशेषता हैं। उनमें श्रद्धेय मोहताजी के विविध रूपों के ठीक-ठीक दर्शन किये जा सकते हैं। आपकी सेवा और साधना पर उनसे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। आपके चरित्र और स्वभाव का उनसे यथार्थ परिचय मिलता है। उनमें निहित भावना, प्रेरणा, स्फूर्ति और उत्साह निश्चय ही पाठक के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं। ग्रन्थ का लक्ष्य पाठक को गीता के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप अपने जीवन को ढालने के लिये प्रेरित करना है। पूरा विश्वास है कि यह लक्ष्य कुछ न कुछ अंशों में अवश्य पूरा होगा।

जिन सहृदय सज्जनों ने अपने लेख तथा संस्मरण भेज कर अथवा अन्य प्रकार से इस ग्रन्थ को उपयोगी, सुन्दर एवं आकर्षक बनाने में सहयोग प्रदान किया है उन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ। विशेषकर अपने सहयोगी श्री प्रेमचन्द भारद्वाज और साथी श्री प्रभातकुमार जोशी का मुझे आभार मानना चाहिये। उनके एकनिष्ठ निरन्तर सहयोग के बिना इस ग्रन्थ को यह रूप नहीं प्राप्त हो सकता था।

४०-ए, हनुमान रोड,
नई दिल्ली.
रामनवमी, १६५८.

सत्यदेव विद्यालंकार

अभिनन्दन समिति के मंत्री की ओर से

मेरा मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता से १९४७ में तब प्रत्यक्ष परिचय हुआ था जब मैंने उनके सत्संग में जाना शुरू किया था। मुझे गीता पढ़ने की इच्छा हुई। पूछताछ करने पर पता चला कि आपसे गीता पढ़ी जा सकती है। आप गीता के बड़े विद्वान् हैं। बीकानेर में आप के सम्बन्ध में जो लोकापवाद फैला हुआ था उससे अधिक मुझे आपके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। मैंने यह समझा कि अन्य विद्वानों की तरह मोहताजी भी वाचक ज्ञानी होंगे। फिर भी मैंने यह सोचकर आपके पास जाने का निश्चय कर लिया कि अपने को तो गीता पढ़नी है। आप के व्यक्तिगत जीवन से क्या लेना-देना है। मैंने सत्संग में जाना शुरू कर दिया। मुझे यह मालूम होने में अधिक समय नहीं लगा कि लोकापवाद सर्वथा निराधार और मिथ्या था। मोहताजी की विद्वत्ता और व्यक्तिगत जीवन का मुझ पर दिन-पर-दिन गहरा असर पडता गया।

मैं कई बार यह सोचता था कि ऐसे वयोवृद्ध विद्वान्, अनुभवी और सेवापरायण महानुभाव का जीवन परिचय लिखा जाना चाहिए, जिससे जनता को मोहताजी के सम्बन्ध में यथार्थ जानकारी मिल सके और उसका मार्ग-दर्शन भी हो सके। नवम्बर, १९५६ में मैंने अपना यह विचार मोहताजी से प्रकट किया तो आपने यह कहकर मुझे निरुत्तर कर दिया कि मुझे आडम्बर पसन्द नहीं हैं। दिसम्बर १९५६ में श्री कन्हैयालालजी कलयंत्री बीकानेर पधारे और उन्होंने कुछ मित्रों से मोहताजी का सार्वजनिक अभिनन्दन करने की चर्चा की। मुझे अपने विचार के लिए कुछ बल मिला; परन्तु मोहताजी को सहमत करना आसान नहीं था। फिर भी स्थानीय सज्जनों की एक अभिनन्दन समिति बनाकर हम लोगों ने इस बारे में चर्चा-वार्ता करनी प्रारम्भ कर दी। अभिनन्दन ग्रन्थ लिखने का निश्चय कर लिया गया। उसके लिए हमारा ध्यान हिन्दी के विद्वान लेखक, यशस्वी हिन्दी पत्रकार श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार की ओर गया। वे मोहताजी को वर्षों से जानते हैं। उनका सहयोग प्राप्त करने में हमें कोई कठिनाई नहीं हुई। मोहताजी को अभिनन्दन ग्रंथ और अभिनन्दन समारोह के लिए सहमत करना सम्भव न हो सका। इसीलिए "एक आदर्श समत्व योगी" नाम से यह ग्रंथ तैयार किया गया है और अभिनन्दन समारोह न करके गीता विज्ञान गोष्ठी का आयोजन किया गया। ग्रंथ में गीता के समत्व-योग का रूप प्रदर्शित करते हुए मोहताजी की जीवनी का उल्लेख यह दिखाने के लिए किया गया है कि उसका पालन जीवन में कैसे किया जा सकता है।

मोहताजी के महान जीवन और विशिष्ट व्यक्तित्व को देखते हुए हमें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि हम अपनी समिति को केवल बीकानेर तक सीमित न रखकर अखिल भारतीय रूप प्रदान करें। इस हेतु से हमने अनेक महानुभावों से समिति के सदस्य बनने की प्रार्थना की।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि हमारे इस कार्य को सराहते हुए अनेक महानुभावों ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक समिति का सदस्य बनना स्वीकार कर लिया। उनके इस कृपापूर्ण सहयोग से हमारी समिति और कार्य को अखिल भारतीय महत्व प्राप्त हो गया। समिति के सदस्यों में सभी क्षेत्रों के और सभी विचारों के लोग सम्मिलित हैं। संसद् सदस्य, राजनीतिज्ञ, विचारक, लेखक, कवि, पत्रकार, अध्यापक, समाज सेवी और धनी मानी सेठ साहूकार तथा अन्य सब प्रकार के महानुभाव सम्मिलित हैं। इन सब महानुभावों के कृपापूर्ण सहयोग के लिए मैं उनका अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ। ग्रंथ को उपयोगी, सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार ने जिस लगन, धुन, तत्परता और श्रद्धा भाव से सम्पादन सम्पन्न किया है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

वयोवृद्ध मोहताजी किसी भी प्रकार की व्यक्ति-पूजा के विरुद्ध उनकी बात मानी जाती तो हमें कुछ भी करना नहीं चाहिए था। परन्तु हमारे लिये अपनी भावना को दबा सकना सम्भव न हो सका और उसको मूर्त्त रूप देने का हमने जो प्रयत्न किया उसका परिणाम सब के सम्मुख प्रत्यक्ष है और वह हम विनीतभाव से जनता जनार्दन की सेवा में अर्पित कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि हमारा यह प्रयत्न गीता के वास्तविक स्वरूप को जनता के सम्मुख उपस्थित करने में सहायक होगा और गीता को स्वतन्त्र बुद्धि से अध्ययन करने के लिए उसको प्रेरित कर सकेगा। इस आयोजन के करने में यही हमारी इच्छा, आकांक्षा और अभिलाषा है।

मनोहरलाल भितल
मंत्री
मनस्वी श्री रामगोपालजी
मोहता अभिनन्दन समिति

बीकानेर
२०-३-५८

कहां-क्या ?

विषय सूची

समर्पण — तीन

मनस्वी श्री रामगोपाल जी माहता
  अभिनन्दन समिति के सदस्य — छः

सम्पादक की ओर से — नौ

अभिनन्दन समिति के मंत्री की ओर से — पन्द्रह

कहां—क्या ? — सत्रह

चित्रावलि — इक्कीस

खंड १. जीवनी प्रकरण

१. आत्मवृत्त और इतिवृत्त का महत्व — १

प्रेरणात्मक रूप–२, मोहताजी की साधना–३.

२. समत्व योग की साधना — ७

परस्पर विरोधी द्वन्द्वों में सम बने रहने का स्पष्टीकरण–६, मानापमान में संतुलन–६, हर्ष और शोक मे समान व्यवहार–१०, सुख-दुख के प्रति सम बुद्धि–१०, हानि-लाभ मे समान स्थिति–१०, हार-जीत अथवा सफलता-असफलता मे सम व्यवहार–११, शुभ-अशुभ मे सम व्यवहार–१२, शत्रु-मित्र के प्रति समान दृष्टि–१२, स्त्री-पुरुष के प्रति सम व्यवहार–१३, ऊँच और नीच के प्रति सम दृष्टि–१४, सोने, मिट्टी और पत्थर के संबंध मे सम भावना–१६.

३. वंश-परिचय — १७

साहसी राजस्थानी–१७, माहेश्वरी समाज का प्रादुर्भाव–१७, सालोजी राठी–१८, मोहता वंश–१६, मोहता वंश और उसकी प्रतिष्ठा–१६, संसोलाव का निर्माण–१६, सती की घटना–२०, श्रीकृष्णजी का साहस–२१, संतोषी सदासुखजी–२१, निर्भीक मोतीलालजी–२१, मोतीलालजी की संतान–२३, मोतीलालजी का सम्पन्न परिवार–२३, मोतीलालजी की पुण्य स्मृति–२४, गोवर्धन सागर बगीची–२५.

४. जीवन-परिचय — २६

बचपन–२६, पढ़ाई का अंत–२७, कराची की पहली यात्रा–२७, बीकानेर वापिस–२८, कराची की दूसरी यात्रा–२६, बीकानेर वापिस–२६, विवाह–३०, माता जी का स्वभाव और उसका प्रभाव–३०, तीसरी बार कराची–३१, बीकानेर में–३१, कराची में–३२, बीकानेर में आमोद-प्रमोद का जीवन–३२, पहली कलकत्ता यात्रा–३३, यज्ञोपवीत संस्कार–३३, दिल्ली में–३४, माताजी का संकल्प–३४, गुण प्रकाशक सज्जनालय की स्थापना–३५, कराची मे–३६, दिल्ली दरबार–३६, मूंदड़ा जी का देहान्त–३६, पुत्र-प्राप्ति के लिए अनुष्ठान–३७, ज्योतिषियों पर अविश्वास–३७, छोटे भाई का देहावसान–३८, मोहता मूलचन्द विद्यालय की स्थापना–३८, विद्यालय का अपना भवन–४०, संगीत विद्यालय–४१, कलकत्ता का सामाजिक जीवन–४२, साम्प्रदायिक दंगा–४३, कराची में–४३, कलकत्ता में और पहला विश्वयुद्ध–४३, साहित्य के क्षेत्र में–४४, डाडियों के खेल का पुनर्जीवन–४४, दुःखद देहान्त और हरिद्वार यात्रा–४६, श्री लोईवालजी के यहाँ संबंध–४६, आगरा मे दुर्घटना–४६, कोलायतजी का उद्धार–४६, पत्नी क्षय ग्रस्त–४७, कलकत्ता मे साहित्यिक प्रवृत्ति–४८, पिताजी का स्वर्गवास–४८,

दिल्ली में ब्रह्मभोज व जाति भोज की प्रतिक्रिया–४८, दोहिता और दोहिती का जन्म–४८, श्री गिरधरलाल का विवाह–४९, बम्बई और कराची में–४९, कोलवार आन्दोलन–४९, पुत्री का दुःखद देहान्त–५०, पत्नी और दोहिते का देहावसान–५०, श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला की स्थापना–५१, दूसरे विवाह की समस्या–५१, शारीरिक अस्वस्थता–५३, दो ट्रस्टों का निर्माण–५३, काश्मीर की यात्रा–५३, दोहिती का शुभ विवाह–५५, सूरजरतन को गोद लेना–५५, पाकिस्तान का निर्माण–५५, एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस–५६, गोले-गोलियों का उद्धार–५७, राज्य की राज्यसभा–५७, श्री शिवरतनजी मोहता की मंत्रिपद पर नियुक्ति–५७, व्यक्तित्व, स्वभाव और चरित्र–५९, संतुलित वृत्ति–६०, संकोची स्वभाव से हानि–६०, सुखी और सम्पन्न परिवार–६१.

५. व्यापार, व्यवसाय और उद्योग — ६३

व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा-दीक्षा–६३, कराची में कामकाज का विस्तार–६४, कराची में आर्थिक संकट–६५, बी. आर. हरमन एण्ड मोहता कम्पनी–६६, मोटरों का काम और आर्थिक संकट–६६, विकट स्थिति का सामना–६७, चीनी मिल–६७.

६. समाज सुधार और सेवामयी साधना — ६९

मोहता मूलचन्द विद्यालय और आदर्श समाज सुधार–७०, श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला–७०, कुप्रथा का सदा के लिये अंत–७०, दुर्भिक्षों में सेवा व सहायता का सतत क्रम–७१, १९५३ और १९५६ के भीषण दुर्भिक्ष–७१, सम्वत् १९९५-९६ और सम्वत् २००८-९ में–७३, राजधानी में प्रतिक्रिया–७५, कपड़े का वितरण–७६, महिलाओं व विद्यार्थियों की सेवा और सुधार–७७, विरोध और विघ्न-बाधा–७८, कलकत्ता का माहेश्वरी विद्यालय और माहेश्वरी भवन–७८, माहेश्वरी महासभा का सभापतित्व–७९, एक उदाहरण–८१, श्री देवड़ा का पत्र–८१, मोहताजी का उत्तर–८२, अबलाओं की पुकार–८४, मारवाड़ी सम्मेलन की अध्यक्षता–८५, सम्मेलन से त्यागपत्र–८६, कुछ विविध कार्य—धर्मशाला का निर्माण–८६, जिमखाना–८६, साहित्य भवन और विद्यालय–८६, श्रीमती जीताबाई मातृ सेवा सदन–८७, शरणार्थियों की सेवा–८७, महिला मंडल–८७.

७. साहित्य सृजन और वेदान्त की ओर झुकाव — ८९

श्री उत्तमनाथजी महाराज का सत्संग–८९, स्वामी रामतीर्थ के भाषणों का अध्ययन–९०, "सात्विक जीवन" और "दैवी सम्पद्"–९०, "गीता का व्यवहार दर्शन"–९२, अर्जुनजी का प्राक्कथन–९३, "गीता विज्ञान"–९४, "मान पद्य संग्रह"–९४, समाज सुधार संबंधी साहित्य–९५, सामयिक साहित्य–९५, कुछ सामयिक निबन्ध व लेख–९६ ,बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व–९७, गुरु उत्तमनाथजी महाराज–९७, साहित्य सृजन की प्रेरक भावना–९८, चहुँमुखी क्रान्ति का लक्ष्य–९९.

नोट—इस खण्ड के अन्तर्गत अध्यायों की संख्या जो ६, ७ और ८ दी गई है, उसको ५, ६, ७ पढ़ने की कृपा करें; क्योंकि अध्याय ४ और ५ एक कर दिए गए हैं।

खंड २ साधना प्रकरण

१. चतुर्मुखी क्रान्ति की साधना — १०३

धार्मिक क्रान्ति–१०३, सामाजिक क्रांति–१०३, राजनीतिक क्रान्ति–१०३, आर्थिक क्रान्ति–१०३, धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र में–१०४, सामाजिक क्रान्ति का रूप–१०९, धार्मिक क्रान्ति का रूप–११३, मौसर निषेध–१२०, राजनीतिक विचार–१२०, आर्थिक क्रान्ति–१२४।

२. आपका आदेश अपने अन्त-काल के सम्बन्ध में — १२९

ईश्वर के नाम पर–१३०, सुधारक बहिष्कार से विचलित न हों–१३०.

३. साहित्य सृजन की क्रान्तिकारी दृष्टि १३१
प्रज्ञावाद के प्रहरी–१३१, साहित्य सर्जना की पूर्व पीठिका–१३२, कृतियों का वर्गीकरण और परिचय–१३४, गीता-सम्बन्धी रचनाएँ–१३५, प्रकीर्णक–१३८।

खंड ३ संस्मरण प्रकरण

१. जनक का क्रियाशील जीवन —लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे १४१
२. साधना और सेवा का जीवन —उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन १४१
३. निर्लिप्त मोहताजी —माननीय श्री जगजीवन रामजी १४२
४. एक आदर्श की पूर्ति —सरदार स्वर्णसिंहजी १४२
५. प्रेरक जीवन —माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया १४३
६. Source of Insipiration (अंगरेजी में) —Shri Prafulla Chandra Sen १४३
प्रेरणा के स्रोत —माननीय श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन १४४
७. महान आध्यात्मिक व्यक्ति —श्री लालजी महरोत्रा १४५
८. एम० एन० राय और मोहताजी —श्रीमती एलन राय १४६
स्वर्गीय श्री राय और मोहता जी का पत्र-व्यवहार १४७
९. मोहताजी की मन्थन-शक्ति —आचार्य पण्डित नरदेवजी शास्त्री १५७
१०. प्रगतिशील मोहताजी —स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक १५६
११. अनिवार्य आवश्यकता —स्वामी जीन धर्मतीर्थ १६१
१२. मोहता जी का सक्रिय देश-प्रेम —आयुर्वेदाचार्य पं० शिव शर्माजी १६४
१३. तत्त्वदर्शी मोहता जी —श्री जयनारायणजी व्यास १६६
१४. चेहरे-चेहरे पर रामगोपाल —श्री गोकुलभाई भट्ट १७०
१५. A Great Yogi (अंगरेजी में) —Pt. Narayan Rao Vyas १७१
एक महान योगी —संगीताचार्य पंडित नारायणराव व्यास १७२
१६. तत्वज्ञानी विदेह जनक —आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री १७३
१७. मोहताजी —श्री मन्मथनाथ गुप्त १७६
१८. जैसा मैंने उन्हें देखा —श्री सन्तरामजी बी० ए० १८०
१९. कहाँ वे कहाँ हम —श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल १८६
२०. स्वप्नद्रष्टा —श्री अक्षयकुमारजी जैन १८६
२१. साहित्य मनीषि —श्री मुकुटबिहारीलालजी वर्मा १९०
२२. सेवा व साधना की विभूति —श्री विश्वम्भरप्रसादजी शर्मा १९०
२३. ऋषिवर मोहता जी —श्री जगदीशप्रसादजी "दीपक" १९५
२४. मेरे गुरुदेव — श्री नाथूरामजी गोयल १९७
२५. मौलिक मार्ग के पथिक —सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला २००
२६. बलवान आत्मा —श्री ब्रजलालजी बियाणी २००
२७. श्रद्धा के पात्र मोहताजी —श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंहका २०२
२८. मातृ पूजा का अनुष्ठान —श्री सीतारामजी सेकसरिया २०३
२९. उनकी मान्यताएँ सफल हों —श्री भागीरथजी कानोडिया २०५
३०. क्रियाशील जीवन का आदर्श —सेठ गजाधरजी सोमाणी २०६
३१. छोटे भाई की दृष्टि में —रा० ब० सेठ शिवरतनजी मोहता २०७

३२. जीवन मुक्त की कोटि
—श्री बालकृष्णजी मोहता २१४
३३. श्रद्धा के दो पुष्प
—श्री ब्रजवल्लभ दासजी मूंदड़ा २१६
३४. सच्चे कर्मयोगी —सेठ रामप्रसादजी खंडेलवाल २१९
३५. मोहताजी का जीवन दर्शन
—श्री माणिकचन्द्र भट्टाचार्य २२०
३६. समदर्शी मोहताजी —स्वामी केशवानन्दजी २२२
३७. "बावा"—एक आदर्श पुरुष
—श्री पन्नालालजी बारूपाल २२३
३८. मनस्वी मोहताजी —श्री कमलनयनजी बजाज २२४
३९. भारत के टालसटाय
—श्री कन्हैयालालजी कलयंत्री २२६
४०. मोहताजी का सत्संग
—श्री मनोहरलालजी मित्तल २२९
४१. दुर्लभ गुणों की मूर्ति —श्री वच्छराजजी सिंघी २३५
४२. मनीषि मोहताजी —श्री कन्हैयालालजी सेठिया २३६
४३. जन-सेवा का उदाहरण
—श्री भगवतसिंहजी मेहता २३६
४४. लोकोपकारी व्यक्तित्व
—श्री रणजीतमल मेहता २३७
४५. महान् व्यक्ति —सेठ चांदरतनजी बागड़ी २३८
४६. कर्मयोगी मोहताजी
—स्वर्गीय श्री चन्द्रानन्द सरस्वती २३९
४७. तच्च संस्मृत्य-संस्मृत्य हृष्यामि पुनः पुनः
—ठाकुर जुगलसिंहजी खीची २४०
४८. कुछ अविस्मरणीय प्रसंग —वैद्य शंकरदत्तजी २४३
४९. बसंत के रसिया गोपाल जी
—श्री ब्रजरतनजी करणानी २४८
५०. उदार चेता मोहताजी
—पंडित अनन्तलालजी व्यास २५१
५१. कुछ प्रेरक प्रसंग —वैद्य ठाकुरप्रसादजी शर्मा २५३
५२. मानव समाज के उपकारी
—श्री रामप्रसादजी झुरकट २५५
५३. सेवा का आदर्श
—श्री बदरी नारायणजी सोडाणी २५६
५४. प्रभावशाली व्यक्तित्व
—पंडित हरिभाऊजी उपाध्याय २५
५५. जनसेवा के धनी मोहताजी
—चौधरी कुम्भारामजी आर्य २५
५६. मोहताजी की आत्मीयता
—सुश्री जानकी देवीजी बजाज २५
५७. आधुनिक नरसी भगत
—श्रीमती गंगादेवीजी मोहता २६
५८. मेरे नानाजी और उनकी शिक्षा
—श्रीमती रतनदेवीजी दम्माणी २६
५९. वंश के प्रकाश-स्तम्भ
—श्रीमती कौशल्यादेवीजी मोहता २६
६०. बाबाजी का दर्शन
—सुश्री गंगा देवीजी साहित्यरत्न २६
६१. कर्मयोगी —श्री एम० एन० तोलानी २७
६२. महान विचारक —श्री टी० के० मातेजा २७
६३. जनता का सेवक —श्री हाबू जोशी २७
६४. अपने ढंग के एक —श्री शंकरलाल पारीक २७
६५. मोहताजी का तपस्वी जीवन
—श्री गोपालदासजी २७
६६. एक सच्चे देश भक्त —श्री हरभगवानजी २७
६७. परोपकार भाव की पराकाष्ठा
—ठाकुर चन्द्रसिंहजी २७
६८. गीता का व्यवहार दर्शन
—आचार्य उदयवीरजी शास्त्री २७
६९. मोहता जी का चरित्र और स्वभाव
—श्री सत्यदेव विद्यालंकार २७८
७०. सेवा परायण संत
—देशभक्त सेठ सोहनलालजी दूगड़ २८१
७१. पितृ स्नेह —पंडित विद्याभूषण चिन्तामणी २८१
७२. समाज सुधारक मोहताजी
—माननीय श्री ईश्वरदासजी जालान २८५
७३. मोहता जी की दृढ़ता
—सेठ लक्ष्मीनारायणजी गाडोदिया २८६
७४. मेरा परिचय और दर्शन
—श्रीमती सरस्वतीदेवीजी गाडोदिया २८७

७५. उन्मुक्त मानवता —श्री सी० एल० सेन्टिनेला २८६

अंग्रेजी में

True Significance of King Janak —M. S. Aney २६०
Life of Devotion— S. Radhakrishnan २६०
A Useful Guide —Swaran Singh २६१
A Great Student of Ancient Philosophy —Lalji Mahrotra २६१
A Perfect Karamyogi —M. N. Tolani २६२
Late M. N. Roy and Mohtaji —Ellen Roy २६२
Important Correspondence between late M. N. Roy and Mohtaji २६४
Profound Humanity —C.L. Sentinella ३०५
मोहताजी के सम्बन्ध में केलाजी की भावना —स्वर्गीय श्री भगवानदासजी केला ३०५

खंड ४ लेख प्रकरण

गीता पर आधुनिक दृष्टिकोण —श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालंकार ३०६
१. लोकमान्य का कर्मयोग–३०६, २. योगीराज अरविन्द की अध्यात्म दृष्टि–३१३, ३. महात्मा गांधी का अनासक्तियोग–३१७, ४. मोहताजी का व्यावहारिक दर्शन–३२२.
गीता के अर्थ का अनर्थ —श्री संजय ३३०
गीता का समत्वयोग और आधुनिक समाजवाद —श्री देव ३४०
गीता का धर्म और नीति —श्री सत्यदेव विद्यालंकार ३४६
समभाव साधना —श्री अगरचन्दजी नाहटा ३५३
सर्वधर्मपरित्याग —प्रो० हबीबुररहमान शास्त्री ३५५
The Activist Philosophy of Gita —Shri S. D. Kulkarni ३६४
विचार क्रान्ति का रूप —स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक ३६८
सन्त सुधारकों की कृति का मूल्य —प्रो० जयचन्द्रजी विद्यालंकार ३७३
भगवान् गौतम बुद्ध और महायोगेश्वर कृष्ण —मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता ३७७

परिशिष्ट

१. A sage Counsellor —T. J. Bhojwani ४०६
२. A Dedicated Life to Public Service —P. R. Nayak I. C. S. ४०७

चित्रावली

	पृष्ठ
१. बाबा जी (तिरंगा)	१
२. मोहताजी १६४०	१०
३. श्रीमती चम्पाबाई मोहता	१०-११
४. श्रीमती सुगनी बाई	१०-११
५. श्री भैरव रत्न बागड़ी	१०-११
६. स्व० सेठ मोतीलालजी के दानवीर पुत्र	२२
७. बीकानेर की धर्मशाला व औषधालय के कार्यकर्त्ता	२४
८. मोहताजी के पूज्य पिताजी	२४
९. कराची की आँख के अस्पताल की आधार शिला रखने का चित्र	२६
१०. गोवरधन सागर बगीचों की प्याऊ	२५
११. मोहताजी की पूजनीया माताजी	२६
१२. मोहताजी की माताजी का स्वर्गारोहण	२७
१३. जीताबाई मातृ सेवा सदन	२७
१४. मोहताजी २० वर्ष की अवस्था में (तिरंगा)	३०
१५. मोहताजी ४० वर्ष की आयु में	३२
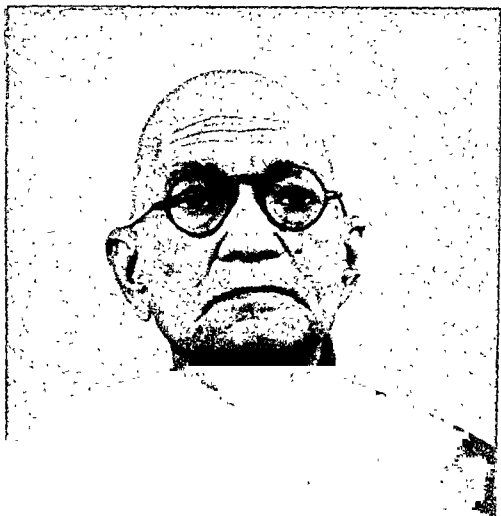
"बाबाजी"—आजकल आपके लिए बाबाजी अथवा भाईजी शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है। (यह चित्र १४ जनवरी १९५८ को बीकानेर में लिया गया।)

की उन घटनाओं को भी छिपाया नहीं जहाँ वे विचलित हुए अथवा विचलित होते-होते सहसा बच गए। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्म-कथा "कल्याण-मार्ग का पथिक" नाम से लिखी है। कल्याण-मार्ग का पथिक बनने के लिए उनको अपनी व्यक्तिगत कमजोरियों के साथ जो संघर्ष अथवा अंतर्द्वन्द्व करना पड़ा उस पर उन्होंने पर्दा नहीं डाला। युवावस्था में उनमें वे सब निर्बलताएं अथवा दुर्बलताएँ प्रायः चरम सीमा पर पहुँची हुई थीं, जिनमें औसतन संसारी जीव फंसे रहते हैं। सच यह है कि पतन के विवरण के बिना उत्थान की कहानी पूरी नहीं हो सकती। कमल सरीखा सुन्दर और आकर्षक फूल कीच में ही पैदा होता है, परन्तु पैदा होने के बाद जब वह अपने उत्कर्ष में खिल उठता है तब पानी भी उसको स्पर्श नहीं कर सकता। कमल-पत्र और पुष्प की उपमा देते हुए यह बताया गया है कि संसार की साधारण परिस्थितियों में मनुष्य को किस प्रकार असाधारण जीवन बिताना चाहिए। वह संसार के सारे व्यवहार करता हुआ भी ऐसा निर्लिप्त होना चाहिए कि उसको कोई भी व्यवहार वैसे ही चिपट न सके जैसे कि कमल के पत्र और पुष्प को कीच में जन्म लेने और पानी में रहने पर भी वे चिपट नहीं सकते। लेकिन, साधारणजन के सामने ऐसे असाधारण जनों का उदाहरण उपस्थित हुए बिना वे इस आदर्श-स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रेरणात्मक रूप

इतिवृत्त तथा आत्मवृत्त का रूप उस सीढ़ी के समान होना चाहिए जिस पर चढ़ने वाला निरन्तर शिखर की ओर बढ़ता चला जाता है। एक-एक पग ऊपर की ओर बढ़ाते हुए उसके मन में ऊपर उठने का आत्म-विश्वास स्वतः पैदा होना चाहिए। उसमें यह आत्म-विश्वास उत्पन्न होना चाहिए कि वह उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर हो रहा है। यदि कोई जीवनी अथवा आत्म-कथा पाठक के मन व आत्मा में ऐसी प्रेरणा तथा आत्म-विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकती तो उसका लिखा जाना निरर्थक है। उसको पढ़ते हुए पाठक की अन्तरात्मा में एक ज्योति अथवा प्रकाश का उदय होना चाहिए और उससे उसका सारा जीवन आलोकित हो जाना चाहिए। श्रद्धा, भक्ति अथवा स्तुति के लिए लिखे गए ग्रन्थ किसी की महानता का दिव्य स्वरूप तो पाठक के सामने उपस्थित कर सकते हैं; परन्तु वह उसके प्रति पूजा की भावना रखते हुए भी उसको अपने लिये अगम्य मानकर दृष्टि से ओझल कर देता है। उससे वह कुछ भी प्रेरणा प्राप्त नहीं कर सकता। अतीत के महापुरुषों को सर्वसाधारण के सम्मुख इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है और उनको अवतारी बताकर आम जनता से इतना अलग कर दिया गया कि वे केवल मन्दिरों में मूर्तियों के रूप में बिठाए जाने लग गए। उनका अनुकरण करना सर्वसाधारण ने इसलिए असम्भव मान लिया कि उनमें जो बड़प्पन था उसको ईश्वर का अंश मान लिया गया, जिसके बिना बड़प्पन की प्राप्ति असम्भव समझ ली गई। इसी कारण आत्म-विकास के लिए प्रयत्न करना भी छोड़ दिया गया। फिर भाग्यवाद ने मानव को और भी अधिक निष्क्रिय, निराशावादी और हतोत्साह बना दिया। भाग्य में जो लिखा है उसको कौन मेट सकता है और जो नहीं लिखा है उसको कौन बना सकता है, इस मिथ्या विश्वास ने मानव की प्रगति व विकास के सब मार्ग अवरुद्ध कर दिए।

पिछले कुछ वर्षों में अभिनन्दन ग्रन्थ लिखने अथवा भेंट करने की जो परिपाटी प्रारम्भ हुई है उससे स्तुतिपरक अथवा भक्तिपरक ग्रन्थों के निर्माण को और भी अधिक प्रोत्साहन मिला है। उसमें जीवनी एवं आत्म-कथा लिखने का वास्तविक उद्देश्य बहुत उपेक्षित हो गया है। इसी कारण प्रस्तुत ग्रन्थ को अभिनन्दन ग्रन्थ नाम नहीं दिया गया और वह नाम दिया गया है जो चरित्र-नायक मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन के बहुत अनुरूप है। एक व्यापारी का श्रीमंत घराने में जन्म लेकर अपने को व्यावहारिक वेदान्त की साधना में लगाना और गीता सरीखे गूढ़ ग्रन्थ का अध्ययन व चिन्तन करके उससे व्यावहारिक तत्वदर्शन को अत्यन्त सरल व सुबोध

भाषा में जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना साधारण घटना नहीं है। लोकनायक श्रीयुत माधव श्री हरि अण ने लक्ष्मी और सरस्वती का जो समन्वय आप मे पाया उसकी सराहना करते हुए आपके लिखे हुए "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ को उन लोगों के लिए अत्यन्त उपयोगी बताया है, जो लोकमान्य तिलक के "गीता रहस्य" सरीसे विशाल एवं महान ग्रन्थ को पढ़ने का कष्ट नहीं उठा सकते। उपनिषद रूपी गाय का दोहन करने वाले ने गीतारूपी जो दुग्धामृत प्राप्त कराया है उसको संभाल कर रखने के लिए "गीता व्यवहार दर्शन" को अणेजी ने एक बहुत सुन्दर कटोरे से उपमा दी है। मोहता जी गीता के कोरे प्रवक्ता अथवा व्याख्याता ही नहीं है, अपितु आपने गीता से जो कुछ प्राप्त किया है उसके अनुरूप अपने जीवन को ढालने का भी प्रयत्न किया है। इसीलिए प्रस्तुत ग्रन्थ को "एक आदर्श समत्व योगी" नाम देते हुए समत्व योग के आदर्श को न केवल सैद्धान्तिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है अपितु उसके अनुरूप ढाले गए आपके जीवन का अनुकरणीय दृष्टान्त भी उसमे उपस्थित किया गया है। दृष्टान्त के बिना किसी भी सिद्धान्त अथवा आदर्श को अपनाने की प्रेरणा साधारण व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकती।

मोहता जी की साधना

मोहता जी ने स्वयं इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसको यहां उद्धृत करना आवश्यक है। मोहता जी ने अपने इन शब्दों मे अपने जीवन की साधना का निचोड दे दिया है। आपने उन सिद्धान्तों का भी इन शब्दों में प्रतिपादन किया है जिनको आपने साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त किया है। आपने लिखा है कि "अपनी आयु के लम्बे समय मे मैंने जो अनुभव प्राप्त किए हैं और बहुत गहरे तथा सूक्ष्म विचारों के बाद मैं जिन निश्चयों पर पहुंचा हुं वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) हमारे देश की प्राचीन सभ्यता बहुत उच्च कोटि की थी। इस देश के प्राचीन विचारक अनेक स्थितियो में से गुजरते हुए, अनुकूलताओं व प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए, प्रारम्भिक अवस्था से शनैः-शनैः विकास व उन्नति करते हुए वे उस उच्च कोटि तक पहुँचे थे जिसको स्वर्णयुग कहते हैं। परन्तु यह प्रकृति का नियम है कि जो बहुत ऊपर चढता है वह बहुत नीचे गिरता भी है। इसके अनुसार जब यहाँ के लोग आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की उन्नति के शिखर पर पहुँच चुके तब सब प्रकार के सुखों में मस्त होकर अक्रियात्मक हो गए जिससे गिरावट हुई और गिरते-गिरते इतने गिरे कि वर्तमान समय में बहुत ही पिछड़े हुए हैं और दशा अत्यन्त शोचनीय है। यह नियम है कि मनुष्य जब तक आगे बढ़ने के लिए क्रियाशील तथा तत्पर रहता है तभी तक उन्नति करता है और जब स्थिर व उद्यमहीन बन जाता है तब गिरावट होती है। उद्यमहीनता, आलस्य तथा प्रमाद तमोगुण के कार्य हैं। इनसे गिरावट अवश्य होती है। उन्नति की रुकावट होना, एक ही स्थिति में बने रहना अर्थात् स्थिति पालकता गिरावट का कारण होती है। इसी स्थिति पालकता से यह देश पिछड़ गया और दूसरे देशों के लोग अपने उद्योग तथा अध्यवसाय से उन्नति कर गए। सबसे अधिक अकर्मण्यता यहाँ के लोगों में बुद्धि से विचार की शक्ति का अभाव है क्योकि पहले बहुत विचार कर चुके थे। अधिक विचार की आवश्यकता नहीं समझी होगी। शारीरिक स्थूल कर्मों की अपेक्षा बुद्धि से विचार करने के अत्यन्त सूक्ष्म कर्मों में बहुत अधिक परिश्रम होता है जिनमे थकावट आ गई होगी। अतः यहाँ के लोगों में विचार करने की शिथिलता आ गई। मनुष्य बुद्धि के बल से ही उन्नति करता है क्योंकि बुद्धि शरीर आदि सबके ऊपर है। जब विचार-शक्ति शिथिल हो गई तो सब प्रकार का अधःपतन हुआ। इसलिए यदि यहाँ के लोगों को फिर से उन्नति करना है तो विचार-शक्ति को पुनः जागृत करना होगा और लोगों को बुद्धि से काम लेना सिखाना होगा।

(२) साधारण जनता की विचार शक्ति का ह्रास होने के कारण वह नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँस गई और अनेक प्रकार की रूढ़ियों, रीति-रिवाजों तथा कर्म-कांडों की गुलामी में उलझ गई। वह स्वतन्त्रता का अर्थ ही नहीं समझती है। अपने से भिन्न किसी अदृष्ट शक्ति और अनेक शक्तियों को मानकर आत्म-विश्वास खो बैठी तथा परावलम्बी बन गई। विचारहीन, धूर्त तथा स्वार्थी लोग जनता की इस निर्बलता से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लग गए और एक-दूसरे को लूटना, धोखा देना तथा छीना-झपटी करना ही उनका उद्देश्य हो गया।

(३) वही मनुष्य उन्नति कर सकता है जो इन आत्म-हत्या करने वाले अंधविश्वासों, मानसिक दुर्बलताओं और विचार-हीनता को त्याग कर स्वावलम्बी होता है तथा स्वतन्त्र विचार रखता है। सबसे बड़ा अंध-विश्वास अपने और जगत से भिन्न किसी एक व्यक्ति ईश्वर को मानने का है; क्योंकि ईश्वर जगत से तथा सबके अपने स्वयं से भिन्न कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। प्रत्येक शरीर के भीतर "मैं" रूप से अनुभव होने वाली जो शक्ति है वही सारे जगत् में व्याप्त ईश्वर है। इसलिए किसी विशेष व्यक्ति या विशेष शक्ति के रूप में ईश्वर को नहीं मानना चाहिए। किन्तु, जगत के एकता स्वरूप समष्टि भाव को ही ईश्वर मानना चाहिए। क्योंकि समष्टि रूप से वह सब में है इसलिए ईश्वर को स्वयं अपने में अनुभव करना चाहिए। जब यह निश्चय हो जाएगा तो सब अंधविश्वासों का मूल ही मिट जायगा। ईश्वर, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ग्रह-नक्षत्रों का अच्छा-बुरा फल, जादू-टोना और शकुन आदि के वहम-विचार ये सब अपने मन की कल्पनाएँ हैं। अपने से भिन्न कुछ भी नहीं है। इस सत्य का निश्चय करके इन सब अंधविश्वासों से छुटकारा पा लेना चाहिए।

(४) जितने भी साम्प्रदायिक धर्म अथवा मजहब हैं वे सब मनुष्य को अंधविश्वासी बनाते हैं और गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रखते हैं, इसलिए सब मजहबों और सम्प्रदायों को नाशकारी समझ कर उनसे पीछा छुड़ा लेना चाहिए। ऐसे किसी धर्म का अनुयायी नहीं होना चाहिए। ऐसा करने में नास्तिक कहलाने से नहीं डरना चाहिए। गुलाम आस्तिक से स्वतंत्र नास्तिक अच्छा है।

साम्प्रदायिक धर्म या मजहब सदाचार या नैतिकता के सब से बड़े शत्रु हैं क्योंकि प्रायः सभी साम्प्रदायिक धर्म जगत् से अलग एक व्यक्ति ईश्वर की मान्यता पर अवलंबित हैं और वह ईश्वर एक अपार शक्ति-सम्पन्न सम्राट् की तरह बड़ा खुशामदपसन्द, रिश्वत लेने वाला और पक्षपाती होने के साथ-साथ दयालु और भक्त-वत्सल भी माना जाता है जिसकी खुशामद, प्रशंसा और प्रार्थना आदि करने से और जिसके नामों का जाप करने से तथा जिसके नाम पर दान, पुण्य, कर्मकाण्ड आदि करने से और जिसकी कल्पित मूर्तियां और चित्र बनाकर उसके सामने भोग-प्रसाद आदि चढ़ाने एवं बलिदान आदि देने से वह प्रसन्न होकर सब पाप क्षमा कर देता है; मन माँगे पदार्थ, भोग-विलास, धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा, पुत्र-कलत्र दे देता है। मरने पर वह स्वर्ग भी भेज देता है और ऐसा न करने वालों पर क्रोध करके उनका सर्वनाश कर देता है। इस तरह ये लोग मानते हैं। जब साम्प्रदायिक धर्मों का आधार उनका ईश्वर ही खुशामदपसन्द और पक्षपाती है तो उनके अनुयायी पवित्र, सदाचारी व नीतिमान कैसे हो सकते हैं ? क्योंकि ये संस्कार उन लोगों की माता के दूध के साथ ही उनकी रग-रग में रमे हुए रहते हैं, इसलिए जब तक इन साम्प्रदायिक धर्मों या मजहबों में यहाँ के लोगों की श्रद्धा रहेगी तब तक देश में पवित्रता, सदाचार और नैतिकता का पनपना सम्भव नहीं, चाहे कितने ही उपाय क्यों न किये जायें। सदाचार और नैतिकता स्थापन करने का सबसे पहला उपाय जनता के हृदय से इन साम्प्रदायिक धर्मों में श्रद्धा को समूल उखाड़ देने का प्रयत्न करना है। अधिकतर भ्रष्टाचारी और अनीति करने वाले दुराचारी लोग ही अपने कुकर्मों को माफ कराने के लिये पूजा-पाठ, जप-तप, हवन-अनुष्ठान, सन्ध्या-वन्दन, बलिदान, प्रार्थनाओं आदि द्वारा उस ईश्वर की खुशामद करते और उसको रिश्वतें देते हैं।

(५) धर्म का व्यवसाय करने वाले साधू-महात्मा, गुरु-पुरोहित, पंडे-पुजारी, संत, भक्त, ज्योतिषी, योग के चमत्कारों से अच्छा-बुरा करने वाले सिद्ध लोग, जप-तप आदि अनुष्ठानों से संकट मिटाने और लाभ पहुंचाने का ठेका लेने वाले ये सब लोग या तो स्वयं भूल मे पड़े हुए अंधविश्वासी हैं या अधिकतर पाखण्डी, जालसाज, फरेबी, लम्पट और डाकू हैं। इन लोगों की लुभावनी बातों में कभी नही आना चाहिए बल्कि इनके पास फटकना भी नहीं चाहिए। मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-विधाता है। दूसरा कोई कुछ भी नही कर सकता। जैसे कर्म वह करता है वैसे ही फल स्वयं भोगता है। आपके अपने सिवाय दूसरा कोई भला-बुरा करने वाला नहीं है। इसलिए स्वयं अपने पर निर्भर रहकर अच्छे कर्म करने और बुरे कर्म त्यागने चाहिएं। इसी से उन्नति तथा सब प्रकार की सुख-शांति प्राप्त होगी। पहले के किए हुए कर्म ही प्रारब्ध होते हैं और वर्तमान समय के किए हुए कर्म भी तत्काल प्रारब्ध बन जाते है। इसलिए प्रारब्ध कर्मों को अधिक महत्त्व नही देना चाहिए। यदि वर्तमान में हम बुरा कर्म करते हैं तो पहले के अच्छे कर्मों के फल को बदल कर उनका प्रभाव मिटा देते हैं और वर्तमान के अच्छे कर्मों से पहले के बुरे कर्मों के फल को बदल सकते हैं। इसलिए सदा अच्छे कर्मों मे लगे रहना चाहिये। अच्छे कर्म वही हैं जिनसे समाज का समष्टि हित होता है। बुरे कर्म वे है जिनसे समाज का अहित होता है। अच्छे-बुरे कर्मों का सच्चा अर्थ यही है। सभी शास्त्रों में शुभ और अशुभ कर्मों की व्याख्या इसी आधार पर की गई है परन्तु साम्प्रदायिक पाखंड के शास्त्रों में धार्मिक कर्मकाड और उपासना आदि को जो शुभ कर्म कहा गया है वह सब पाखंड है। व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरों को हानि पहुंचाना बुरा कर्म है और व्यक्तिगत स्वार्थों को सब के स्वार्थों में जोड देना ही अच्छा अथवा शुभ कर्म है। इसलिये मनुष्य को अपने-अपने शरीर की योग्यता के कर्तव्य-कर्म समाज के हित को लक्ष्य मे रखते हुए करते रहना चाहिए। अपने शरीर के सुख के लिए आलसी, प्रमादी व निरुद्यमी नही होना चाहिए और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरों को नही दबाना और दूसरों के स्वार्थ मे हानि नही पहुंचाना चाहिए। इसी से कल्याण या मुक्ति होगी। दूसरे सब जंजाल छोड़ देने चाहिएं।

(६) सामाजिक रीति-रिवाज और जात-पांत के सब बन्धन मनुष्य की स्वतंत्रता छीनते हैं और पतन करते हैं। इन सब को तोड़कर मनुष्य को इनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। परन्तु ये सब बन्धन धार्मिक अन्धविश्वासो से उत्पन्न होते हैं, इसलिए धार्मिक अन्धविश्वासों को छोड़े बिना सामाजिक बुराइयाँ नही मिट सकतीं और न बन्धन छूट सकते हैं।

(७) मैंने यह अच्छी तरह अनुभव किया है कि साधारणतया पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक कर्तव्य-परायण तथा सच्चरित्र होती है। यद्यपि वह अंधविश्वास तथा भय के कारण ही ऐसी बनी हुई है। पुरुष उसके इन गुणों का अनुचित उपयोग करता है और स्त्रियो को दबाए रखता है और उनकी शारीरिक निर्बलता का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें पददलित रखता है। ये सब अत्याचार और क्रूरताएँ मिटा देनी चाहिएं और स्त्रियों को समाज के आधे अंग के पूरे अधिकार देने चाहिएं। जब तक स्त्रियाँ पुरुषों के समान योग्य नही बनती तब तक समाज, देश और घरों में सुख-शान्ति सम्भव नही। स्त्री-पुरुष दोनों का योग ही मनुष्य है।

(८) प्रत्येक मनुष्य (स्त्री-पुरुष) को गीता के उपदेशों को अच्छी तरह समझना चाहिए और उसमें बताए हुए मार्ग पर चलना चाहिए। अपने सब व्यवहारों, काम-धंधों तथा व्यवसाय आदि शरीर-यात्रा के सारे कामों में गीता का आधार लेना चाहिए। उसी से सारी सफलताएँ प्राप्त होंगी। जहाँ तक बन सके विद्यार्थियों को बचपन की अवस्था में ही गीता का पाठ आरम्भ करा देना चाहिए और जब वे समझने योग्य हो जायें तब "गीता विज्ञान" और "गीता का व्यवहार दर्शन" सरीखे ग्रन्थों को पढ़ाना चाहिए। गीता में बताए हुए सात्विक आहार, सात्विक कर्म, सात्विक त्याग आदि करने पर सदा ध्यान रखना चाहिए। जहाँ तक बन सके जीवन सादा रखकर अपनी

(२) साधारण जनता की विचार शक्ति का ह्रास होने के कारण यह नाना में फँस गई और अनेक प्रकार की रूढ़ियों, रीति-रिवाजों तथा कर्म-कांडों की गुलामी में उल का अर्थ ही नही समझती है। अपने से भिन्न किसी अदृष्ट शक्ति और अनेक शक्तियों को स्तो बैठी तथा परावलम्बी बन गई। विचारहीन, धूर्त तथा स्वार्थी लोग जनता की इस नि सिद्ध करने में लग गए और एक-दूसरे को लूटना, धोखा देना तथा छीना-झपटी करन हो गया।

(३) वही मनुष्य उन्नति कर सकता है जो इन आत्म-हत्या करने वाले अं दुर्बलताओं और विचार-हीनता को त्याग कर स्वावलम्बी होता है तथा स्वतन्त्र विचार रखता विश्वास अपने और जगत से भिन्न किसी एक व्यक्ति ईश्वर को मानने का है; क्योंकि ईश्वर अपने स्वयं से भिन्न कोई व्यक्ति विशेष नही है। प्रत्येक शरीर के भीतर "मैं" रूप से अनुभ है वही सारे जगत् मे व्याप्त ईश्वर है। इसलिए किसी विशेष व्यक्ति या विशेष शक्ति मानना चाहिए। किन्तु, जगत के एकता स्वरूप समष्टि भाव को ही ईश्वर मान समष्टि रूप से वह सब में है इसलिए ईश्वर को स्वयं अपने में अनुभव करना चाहिए। जब तो सब अंधविश्वासों का मूल ही मिट जायगा। ईश्वर, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ग्रह-नक्षत्रों का टोना और शकुन आदि के वहम-विचार ये सब अपने मन की कल्पनाएँ हैं। अपने से भिन्न सत्य का निश्चय करके इन सब अंधविश्वासो से छुटकारा पा लेना चाहिए।

(४) जितने भी साम्प्रदायिक धर्म अथवा मजहब हैं वे सब मनुष्य को अंधवि गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रखते हैं, इसलिए सब मजहबों और सम्प्रदायों को नाशकारी छुड़ा लेना चाहिए। ऐसे किसी धर्म का अनुयायी नही होना चाहिए। ऐसा करने में डरना चाहिए। गुलाम आस्तिक से स्वतंत्र नास्तिक अच्छा है।

साम्प्रदायिक धर्म या मजहब सदाचार या नैतिकता के सब से बड़े शत्रु हैं क्योंकि प्रा जगत् से अलग एक व्यक्ति ईश्वर की मान्यता पर अवलंबित हैं और वह ईश्वर एक की तरह बड़ा खुशामदपसन्द, रिश्वत लेने वाला और पक्षपाती होने के साथ-साथ दया माना जाता है जिसकी खुशामद, प्रशंसा और प्रार्थना आदि करने से और जिसके नाम जिसके नाम पर दान, पुण्य, कर्मकाण्ड आदि करने से और जिसकी कल्पित मूर्तियों सामने भोग-प्रसाद आदि चढ़ाने एवं बलिदान आदि देने से वह प्रसन्न होकर सब पाप पदार्थ, भोग-विलास, धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा, पुत्र-कलत्र दे देता है। मरने पर वह ऐसा न करने वालों पर क्रोध करके उनका सर्वनाश कर देता है। इन तरह के लोग धर्मों का आधार उनका ईश्वर ही खुशामदपसन्द और पक्षपाती है तो उनके अनुयायी मान कैसे हो सकते हैं? क्योंकि ये संस्कार उन लोगों की माता के दूध के साथ ही रहते हैं, इसलिए जब तक इन साम्प्रदायिक धर्मों या मजहबों मे यहाँ के लोगों की पवित्रता, सदाचार और नैतिकता का पनपना सम्भव नहीं, चाहे कितने ही उपाय क्यों न नैतिकता स्थापन करने का सबसे पहला उपाय जनता के हृदय से इन साम्प्रदायिक धर्मों देने का प्रयत्न करना है। अधिकतर भ्रष्टाचारी और अनीति करने वाले दुराचारी कराने के लिये पूजा-पाठ, जप-तप, हवन-अनुष्ठान, सन्ध्या-वन्दन, बलिदान, प्रार्थना खुशामद करते और उसको रिश्वतें देते हैं।

२

समत्व योग की साधना

सामान्य रूप से योग शब्द का अर्थ समाधि किया जाता है, जो कि साधुओं, सन्यासियों और महात्माओं आदि के लिए मानी गई है। साधारण गृहस्थ अथवा संसारी जीव का उसके साथ कोई सम्बन्ध नही माना जाता। योग के साथ साधन अथवा साधना शब्द का प्रयोग होने से वैसा भ्रम होना और भी अधिक सम्भव है; परन्तु "गीता" ऐसा नही मानती। उसमें "समत्वं योग उच्यते" का स्पष्ट रूप से विधान किया गया है, अपने कर्तव्य कर्म को अपनी सामर्थ्य, शक्ति एवं योग्यता के अनुसार सचाई व ईमानदारी और साम्यभाव से पूर्ण चतुराई के साथ करना योग कहा गया है, जिसका पालन प्रत्येक स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध को अपने जीवन में नित्य प्रति और हर समय करना चाहिए। किसी भी क्षेत्र मे, चाहे वह कुछ भी काम क्यों न करता हो, वही उसके लिए योग है। शर्त केवल यह है कि उसको वह काम पूरी चतुराई के साथ करना चाहिए। साधारण किसान का कृषि कर्म, साधारण मजदूर का उद्योग धन्धो-सम्बन्धी उत्पादन कार्य, साधारण चर्मकार का मोची का काम और साधारण मेहतर का सफाई आदि का धन्धा सब योग कहे जा सकते हैं। इसलिए योग-साधना के लिए संसार का त्याग करके साधु, सन्यासी अथवा महात्मा बनने की आवश्यकता नहीं है, न उसके लिए लँगोटी लगाकर जंगल या पहाड़ में जाने की आवश्यकता है और न नाक पकड़कर लम्बे साँस खींचते हुए तरह-तरह के आसन लगाने आवश्यक हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने घर मे, बाल बच्चों में और संसार में विचरता हुआ अपने काम-काज में लगा रहकर भी योगी बन सकता है और समत्व की भावना से अपने काम-काज का करना ही उसको समत्व योग का साधक बना सकता है।

यह समझने की आवश्यकता है कि यह विश्व एक और सम आत्मा के अनन्त कल्पित रूपों का बनाव है। इन से उसमे कोई भेद पैदा नही होता।* विश्व का मूल तत्त्व यानी आत्मा एक और सम होने पर भी यह कल्पित बनाव, यानी उसकी प्रकृति का खेल सत्व, रज और तम गुणों की कमीवेशी के कारण अनन्त भेदों और नाना प्रकार की विषमताओं से भरा हुआ है। वे भेद और विषमताएँ कल्पित होने के कारण परिवर्तनशील हैं और निरंतर बदलती रहती हैं। इसलिए वे मिथ्या है। जिसका कोई स्थायित्व नहीं होता, वे चीजें झूठी होती हैं। इन कल्पित भेदों के बदलते रहने पर भी इनका मूल तत्त्व सदा एक सा रहता है। इस अटल सिद्धान्त अर्थात् विश्व के मूलतत्त्व आत्मा की एकता, समता और नित्यता का दृढ़ निश्चय रखते हुए प्रकृति के तीन गुणों के नाना प्रकार

---

* मनस्वी श्री मोहता जी रचित यह भजन इस प्रसंग के कितना अनुकूल है।

मै हूँ सब का आतम प्यारा, मेरे संकल्प में संसारा ।।टेर।।
इच्छा करूँ जब खेल रचाऊँ, नाम रूप नाना बन जाऊँ। तीन गुणों का करके पसारा ।।१।।
आप ही भोग आप ही भोगी, आप ही रोग आप ही रोगी। हर्ष, शोक-सुख-दुःख मे न्यारा ।।२।।
ये काया उपजे मिट जावे, एक पलक भी स्थिर न रहावे। मैं तो सदा रहता इकसारा ।।३।।
मै हूँ मंगल रूप सदा ही, सत् चित् आनन्द सब के मांही। जड़ चेतन का मै हूँ आधारा ।।४।।
कहे 'गोपाल' सुनो नर-नारी, यह निज-ज्ञान लेवो उरधारी। आप आपका करो उधारा ।।५।।

"प्रेम भजनावली" (पृष्ठ १३)

आवश्यकताएँ कम करनी चाहिएं। इसी से मन को शान्ति मिलेगी और तभी आत्मिक उन्नति होगी। विलासी जीवन, राजसी व तामसी आडम्बर तथा भोग व आराम आदि से शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, मन में अशान्ति रहती है, तृष्णा बढ़ती है और यह अमूल्य जीवन वृथा ही चला जाता है। इस शरीर में ही परम पद के प्राप्त करने की योग्यता होती है और वह सात्विक आचरण से प्राप्त की जा सकती है, रजोगुण व तमोगुण से कदापि नहीं। इसलिए गीता से इस विषय को भली-भाँति समझ कर उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

(९) मनुष्य को संगति पर बहुत ध्यान रखना चाहिए। अच्छे आचरण वाले मनुष्यों की संगति करनी चाहिए और बुरे आचरण वालों का साथ त्याग देना चाहिए। हमारे यहाँ अधिकांश में धर्म का व्यवसाय करने वाले पाखण्डी लोगों का आचार बहुत ही दुष्ट है। इन से स्वयं तथा अपने बालकों और स्त्रियों को भी बचाना चाहिए।"

प्रस्तुत ग्रंथ में मोहताजी के जीवन-परिचय के साथ कुछ व्यक्तियों के संस्मरण भी दिये गये है, जो आपके स्वभाव, चरित्र और व्यक्तित्व पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

मोहता जी के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विचार बहुत ही स्पष्ट और सुलझे हुए हैं। हमारे देश में पिछली सदी में मुख्यतः दो विचार-धाराएँ विद्यमान रही हैं। महाराष्ट्र में उनमें से एक के प्रतीक थे श्री आगरकर और दूसरी के थे लोकमान्य तिलक। श्री आगरकर समाज-सुधार को राजनीति की अपेक्षा अधिक महत्व देते थे और लोकमान्य की दृष्टि में समाज सुधार की अपेक्षा राजनीति का महत्व अधिक था। समाज सुधार के बिना पहले विचार के लोग स्वराज्य की प्राप्ति और उसके किसी प्रकार प्राप्त हो जाने पर उसको सँभाल सकने की क्षमता का पैदा होना सम्भव नहीं मानते थे। दूसरे, राजनीतिक स्वतंत्रता के प्राप्त हो जाने पर कानून द्वारा समाज-सुधार का सारा कार्य कर लेने में विश्वास रखते थे। मोहता जी के विचार इस पहली श्रेणी के विचारकों के साथ मेल खाते हैं। आपने एक ग्रन्थ "समय की माँग अथवा कृष्ण की क्रान्ति" नाम से सम्वत २००७ (सन् १९५०) में लिखकर प्रकाशित किया था। उसमें आपने बताया है कि वर्तमान राज्य-व्यवस्था का सफल हो सकना संभव नहीं है। उसके सुधार के लिए आपने गीता में प्रतिपादित चार प्रकार की क्रांति को आवश्यक माना है। वर्तमान स्थिति में आपकी दृष्टि में प्रजातन्त्र की अपेक्षा अधिनायकवाद अधिक उपयुक्त है। आपने वर्तमान स्थितियों में साम्यवाद का प्रचार होना भी अवश्यम्भावी बताया है। आपका यह मत है कि सामाजिक एवं धार्मिक क्रांति से यदि जनता के चरित्र का निर्माण नहीं हुआ तो वह प्रजातन्त्र के योग्य नहीं बन सकती और प्रजातन्त्र को सुरक्षित नहीं रख सकती। आपने प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की योग्यता एवं रीति-नीति को सर्वथा उपयुक्त बताते हुए भी आपकी दृष्टि में जनता का चरित्र उतना ऊँचा नहीं उठ सका है जितना कि प्रजातंत्री शासन को सफल बनाने के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को केवल स्तुतिपरक अथवा श्रद्धा-भक्तिपरक न बनाकर यथासम्भव वास्तविकता का सूचक बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ से पाठक मोहता जी के विचारों को जानने और समझने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे। आप घर-गृहस्थी और संसार का परित्याग कर साधु अथवा महात्मा नहीं बन गए हैं, फिर भी एक संत, विचारक और दार्शनिक हैं। आपने जीवन के व्यवहार और दर्शन दोनों का सांगोपांग सूक्ष्म विवेचन करके उनको अपने दैनिक जीवन में दूध-पानी की तरह एक करने का प्रयत्न किया है। इसी रूप में आपका जीवन हम सबके लिए अनुकरणीय बन गया है। गीता में ऐसे जीवनयापन करने वाले को "समत्व योगी" कहा गया है और वर्तमान परिस्थितियों में हमने आपको आदर्श समत्वयोगी कहा है। संस्मरणों में पाठक देखेंगे कि अनेक महानुभावों ने आपको इसी रूप में देखा है। पाठक यदि आपके सक्रिय जीवन से कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे तो इस ग्रन्थ के लिए किया गया प्रयत्न कुछ सार्थक एवं सफल हो सकेगा।

२

समत्व योग की साधना

सामान्य रूप से योग शब्द का अर्थ समाधि किया जाता है, जो कि साधुओं, सन्यासियों और महात्माओं आदि के लिए मानी गई है। साधारण गृहस्थ अथवा संसारी जीव का उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता। योग के साथ साधन अथवा साधना शब्द का प्रयोग होने से वैसा भ्रम होना और भी अधिक सम्भव है; परन्तु "गीता" ऐसा नही मानती। उसमें "समत्वं योग उच्यते" का स्पष्ट रूप से विधान किया गया है, अपने कर्तव्य कर्म को अपनी सामर्थ्य, शक्ति एवं योग्यता के अनुसार सचाई व ईमानदारी और साम्यभाव से पूर्ण चतुराई के साथ करना योग कहा गया है, जिसका पालन प्रत्येक स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध को अपने जीवन मे नित्य प्रति और हर समय करना चाहिए। किसी भी क्षेत्र मे, चाहे वह कुछ भी काम क्यों न करता हो, वही उसके लिए योग है। शर्त केवल यह है कि उसको वह काम पूरी चतुराई के साथ करना चाहिए। साधारण किसान का कृषि कर्म, साधारण मजदूर का उद्योग धन्धों-सम्बन्धी उत्पादन कार्य, साधारण चर्मकार का मोची का काम और साधारण मेहतर का सफाई आदि का धन्धा सब योग कहे जा सकते हैं। इसलिए योग-साधना के लिए संसार का त्याग करके साधु, सन्यासी अथवा महात्मा बनने की आवश्यकता नहीं है, न उसके लिए लँगोटी लगाकर जंगल या पहाड़ में जाने की आवश्यकता है और न नाक पकड़कर लम्बे साँस खीचते हुए तरह-तरह के आसन लगाने आवश्यक हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में, बाल बच्चों में और संसार में विचरता हुआ अपने काम-काज में लगा रहकर भी योगी बन सकता है और समत्व की भावना से अपने काम-काज का करना ही उसको समत्व योग का साधक बना सकता है।

यह समझने की आवश्यकता है कि यह विश्व एक और सम आत्मा के अनन्त कल्पित रूपों का बनाव है। इन से उसमें कोई भेद पैदा नही होता।* विश्व का मूल तत्त्व यानी आत्मा एक और सम होने पर भी यह कल्पित बनाव, यानी उसकी प्रकृति का खेल सत्व, रज और तम गुणों की कमीवेशी के कारण अनन्त भेदों और नाना प्रकार की विषमताओं से भरा हुआ है। वे भेद और विषमताएँ कल्पित होने के कारण परिवर्तनशील हैं और निरंतर बदलती रहती हैं। इसलिए वे मिथ्या हैं। जिसका कोई स्थायित्व नहीं होता, वे चीजें झूठी होती हैं। इन कल्पित भेदों के बदलते रहने पर भी इनका मूल तत्त्व सदा एक सा रहता है। इस अटल सिद्धान्त अर्थात् विश्व के मूलतत्त्व आत्मा की एकता, समता और नित्यता का दृढ़ निश्चय रखते हुए प्रकृति के तीन गुणों के नाना प्रकार

---

* मनस्वी श्री मोहता जी रचित यह भजन इस प्रसंग के कितना अनुकूल है।

मैं हूँ सब का आतम प्यारा, मेरे संकल्प में संसारा ॥टेर॥
इच्छा करूँ अरु खेल रचाऊँ, नाम रूप नाना बन जाऊँ। तीन गुणों का करके पसारा ॥१॥
आप ही भोग आप ही भोगी, आप ही रोग आप ही रोगी। हर्ष, शोक-सुख-दुःख मे न्यारा ॥२॥
ये काया उपजे मिट जावे, एक पलक भी थिर न रहावे। मैं तो सदा रहता इकसारा ॥३॥
मैं हूँ मंगल रूप सदा ही, सत् चित् आनन्द सब के मांही। जड़ चेतन का मै हूँ आधारा ॥४॥
कहे 'गोपाल' सुनो नर-नारी, यह निज-ज्ञान लेवो उरधारी। आप आपका करो उधारा ॥५॥
"प्रेम भजनावली" (पृष्ठ १३)

ही चहुं-मुखी सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति का शंख फूंकना आपके असाधारण साहस एवं धैर्य का सूचक है। उसके लिए जो निन्दा, तिरस्कार, गाली-गलौज तथा भर्त्सना आपकी की गई उसमें कोई दूसरा व्यक्ति अपने आदर्श अथवा सिद्धान्त पर टिका नहीं रह सकता था। "तीन धड़ा" बन्द करके शिक्षा-प्रसार, विधवा-विवाह तथा हरिजनोद्धार में आपने जब मे तन, मन, धन से अपने को लगाया तब भी आप पर गाली-गलौज की वर्षा की गई। आपके प्रति अपमानपूर्ण व्यवहार की जो पराकाष्ठा की गई उसकी सहज में कल्पना करना कठिन है। "अबलाओं का इंसाफ" पुस्तक सन् १९२८ में लिखी गयी थी। उस पर प्रायः सारे ही मारवाड़ी समाज में यहाँ तक कि सुधारक युवकों में भी रोषपूर्ण वातावरण पैदा हो गया और आपको अपमानित करने मे कुछ भी उठा न रखा गया था। आपका सामाजिक बहिष्कार किया गया। इसी प्रकार मान व प्रतिष्ठा के अवसर भी कई बार जीवन में आये परन्तु आप न तो कभी किसी प्रकार के अपमान से विचलित हुए और न कोई मान आपको अपने कर्त्तव्य से विमुख कर सका। निरन्तर लोक-सेवा और लोकोपकार करते हुए भी आपने किसी पद, प्रतिष्ठा अथवा उपाधि के प्राप्त करने की कभी कोई इच्छा नहीं की। सब स्थितियों में आपने अपने चित्त के संतुलन और साम्यभाव को बनाये रखा।

हर्ष और शोक में समान व्यवहार

हर्ष और शोक भी अनित्य और अस्थायी होते हैं। पुत्र-जन्म, पुत्र-विवाह और अन्य अवसरों में स्वाभाविक हर्ष की अनुकूलता को अनुभव करते हुए भी आप में कभी हर्षोन्माद पैदा नहीं हुआ। अपने छोटे भाई, इकलौती पुत्री, इकलौते दोहिते और धर्मपत्नी आदि स्वजनों की मृत्यु के शोकोत्पादक अवसरों पर प्रतिकूलता का अनुभव करते हुए भी आपका अन्तःकरण शोकाकुल नहीं हुआ। ऐसे अवसरों पर आपने सदा ही गीता के दूसरे अध्याय के ११वें से ३०वें श्लोक में प्रतिपादित भावों का चिंतन एवं मनन करते हुए अपने चित्त का सन्तुलन नहीं खोया।

हर्ष और शोक का भी परस्पर विरोधी जोड़ा होता है। जहाँ हर्ष होता है वहाँ शोक भी होता है। दोनों विरोधी भाव परस्पर में कट कर दोनों समाप्त और सम हो जाते हैं। इस विचार से अन्तःकरण की समता को आपने बनाये रखा। ऐसे संकटापन्न अवसरों पर अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय करने में आपको कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई और सर्वथा मौलिक ढंग से आपने अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय किया।

सुख-दुःख के प्रति समबुद्धि

सुख और दुःख शरीर और मन के धर्म है। जब शरीर और मन परिवर्तनशील और अस्थायी है तो उनके सुख-दुःख आदि भी परिवर्तनशील और अस्थायी होते हैं। सुख और दुःख का भी जोड़ा है। सुख के साथ दुःख और दुःख के साथ सुख लगा हुआ है। जब कभी आपके शरीर में आघात हुए, बीमारी हुई या बिच्छू आदि जन्तुओं ने आपको डंक मारे तब पीड़ा का अनुभव करते हुए और उनका यथोचित उपचार करते हुए भी आपने अपने अन्तःकरण को विक्षिप्त नहीं होने दिया। इसी प्रकार अनुकूल पदार्थों को भोगते हुए और दसों इन्द्रियों के विषयों का व्यवहार करते हुए भी उन में आपने इतनी आसक्ति नहीं पैदा होने दी कि उनको छोड़ने की इच्छा ही न हो और उनके विछोह से आपका अन्तःकरण व्याकुल हो जाए।

हानि-लाभ में समान स्थिति

अन्य विरोधी जोड़ों की तरह हानि और लाभ का भी अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और ये भी अस्थायी हैं; सदा एक समान नहीं रहते। कभी हानि हो जाती है कभी लाभ। अपने व्यापार में जब आपको अधिक
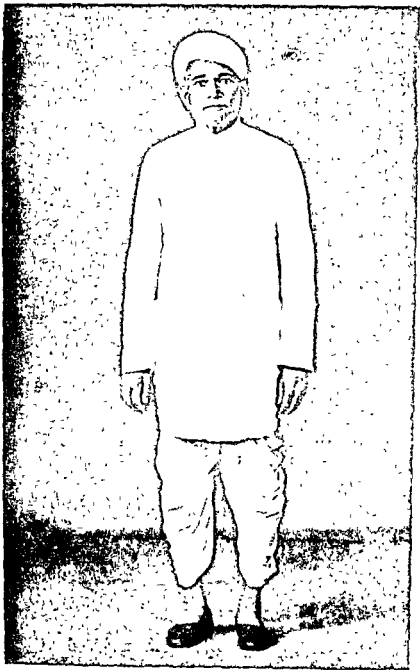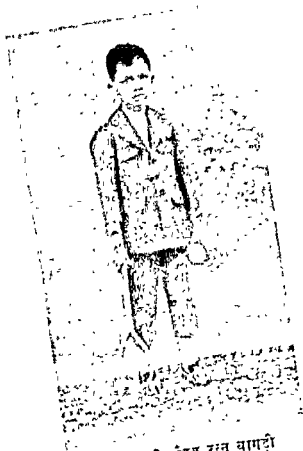
सन् १६४० में श्री मोहता जी ।

स्वर्गीय श्री भैरव रतन बागड़ी
मोहताजी का इकलौता दोहिता

स्वर्गीय श्रीमती सुगनी बाई सुपुत्री श्रीरामगोपाल जी मोहता

स्वर्गीया श्रीमती चम्पाबाई मोहता धर्मपत्नी श्री रामगोपाल जी मोहता

स्वर्गीय श्रीमती मुगनी बाई सुपुत्री श्रीरामगोपाल जी मोहता

स्वर्गीय श्री भैरव रत्न बागड़ी
मोहताजी का इकलौता दोहिता

लाभ हुआ तब उसमें अनुकूलता का अनुभव करते हुए भी आपने अपने चित को विशेष रूप से प्रफुल्लित नही होने दिया और उस लाभ के उत्साह मे कोई विशेष हर्षोत्सव नहीं मनाये और न अपनी कार्य-कुशलता पर अभिमान किया। नुकसान होने पर प्रतिकूलता का अनुभव करते हुए भी, अपने अन्तःकरण में सन्ताप पैदा नही होने दिया और न किसी प्रकार का कोई विषाद किया। देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के अवसर पर कराची का राजाओं का सा वैभव और अपार सम्पत्ति छोड़कर वहाँ से आना पड़ा। उस भारी क्षति की प्रतिकूलता पर भी आपने अपने अन्त.करण पर ऐसी कोई गहरी चोट नही लगने दी। वह अवसर ऐसा था जबकि अनेकों की हृदय की गति बन्द हो गई थी। स्वप्न की तरह एकाएक सब कुछ बदल गया। परन्तु आपने अपने हृदय मे साधारण सी भी व्याकुलता उत्पन्न नही होने दी और अपने कुटम्बी जनों को भी हिम्मत नही हारने दी। जैसी स्थिति थी, उसी में सन्तुष्ट रहते हुए धैर्य और उत्साहपूर्वक उद्यम करते रहने की प्रवृत्ति आप मे बनी रही।

उचित रूप से व्यापार और उद्योग-धन्धे अच्छी तरह करते रहने से और उसमें समुचित नफा रखने से जो लाभ होता रहा, उसी मे सन्तुष्ट रहने का प्रयत्न आपने सदा किया। छल, कपट और धोखेबाजी से लूट खसोट करने के लिए आपका मन कभी नही ललचाया और उद्योग तथा परिश्रम के बिना धन कमाने के लिए सट्टे-फाटके, जूए और लाटरी आदि पर दाव लगाने की प्रवृत्ति आप में पैदा नहीं हुई। अन्त.करण का सन्तुलन सदा बना रहा। व्यापार, व्यवसाय व उद्योग में ऐसा सन्तुलन बनाये रखना बड़ा कठिन है।

हार-जीत अथवा सफलता-असफलता में सम व्यवहार

सांसारिक व्यवहार, विशेषकर व्यापार और उद्योग-धन्धों में प्रतिद्वंदिता स्वाभाविक है, जिसके कारण कभी-कभी लड़ाई-झगड़े भी हो जाते हैं। जहां तक संभव हो सका, आपने अदालतो मे जाना या न्याया-लयों मे मुकदमे लड़ना पसन्द नही किया। जब कभी ऐसी परिस्थिति पैदा हुई, तब आपने यथासंभव आपस में समझौता करके निपटा लेना या पंच-फैसला करवा लेना उचित समझा। यदि कभी विवश होकर न्यायालयों मे जाना भी पड़ा तो पूरी कार्यवाही करने पर जीत अथवा हार जो भी हो जाती उससे अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का अनुभव करते हुए भी आपके अन्तःकरण का सन्तुलन बना रहता था। बीकानेर में आप के कुटुम्ब में सैंसोलाव के श्मशानों को लेकर बिरादरी वालो के साथ बड़ी जिद्द चली और बड़ा झगड़ा हुआ। आप व्यक्तिगत रूप से उस झगड़े मे पड़ना नही चाहते थे और अपने कुटुम्ब वालों को भी आपने उसमें न पड़ने का परामर्श दिया था। उन्होंने आपकी सम्मति नही मानी और कई वर्षों तक वह झगड़ा चलता रहा। तब आपने उसमें पूरा सहयोग दिया और बहुत परिश्रम किया। अदालती कार्यवाही पूरी हो जाने पर भी १०, १२ वर्षों तक महाराजा गंगासिंह जी ने कोई फैसला नहीं सुनाया। फिर रावबहादुर शिवरतन जी के अथक परिश्रम के फलस्वरूप महाराजा गंगासिह जी ने आपके पक्ष में हुक्म दिया। आपकी उसमें विजय हुई। आपके कुटुम्बी जनों को उस पर बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु आपका चित्त विशेष प्रफुल्लित नही हुआ।

'कोलवार' प्रकरण पर माहेश्वरी समाज में संघ और पंचायत के बीच बहुत बड़ा संघर्ष हुआ। आप संघ पार्टी में थे और 'कोलवारों' के साथ बिड़लो का और बिड़लों के साथ आप का संबन्ध होने से संघर्ष का मुख्य केन्द्र आपका घर भी था। संघ पार्टी के सब लोग आपके साथी गिने जाते थे। जब यह झगड़ा आरम्भ हुआ तब आपने संघ पार्टी वालों को स्पष्ट कह दिया था कि "कोलवारों के विषय मे संघ और पंचायत वालों के मूल सिद्धान्तों में आपस में कोई अन्तर नही है, केवल पंचायत वालों की मठमर्दी सहन नही होने के कारण आप लोग उनसे संघर्ष करते हैं, जिससे समाज मे इतनी कलह और अशान्ति बढ़ रही है। झगड़े का मूल कारण केवल हमारा-बिड़लों का सम्बन्ध है। इसलिए आपने अपनी खुशी से समाज से अलग हो जाने

की इच्छा प्रकट की और कहा कि हमारे अलग हो जाने से आप सब एक हो जाएँ और समाज में शांति स्थापित हो जाए तो अच्छा है।" परन्तु संघ वालों ने आप की यह बात नहीं मानी, पंचायत वालों के अन्याय और गठमर्दी के सामने वे झुकना नहीं चाहते थे। कई वर्षों तक संघर्ष चला, जिस में कई बार हार-जीत के उतार-चढ़ाव आये। उनमें आपके अन्तःकरण में कभी कोई आवेग या विक्षोभ पैदा नहीं हुआ। अन्त में पंचायत वाले थक गये और संघ वालों का उनके साथ सम्मानास्पद समझौता हो गया। समाजव्यापी इतने बड़े संघर्ष के बाद समझौता हो जाने पर आपके मन में अनुकूलता अवश्य पैदा हुई किन्तु विजयोत्सव मनाने जैसा हर्ष पैदा नहीं हुआ।

जो व्यापार और उद्योग-धन्धे आरम्भ किये गये, उनमें किसी में सफलता हुई और किसी में असफलता; परन्तु दोनों दशाओं में आपके अन्तःकरण में कोई उतार-चढ़ाव नहीं हुआ।

शुभ-अशुभ में सम व्यवहार

यह संसार एक ही सम आत्मा के अनेक रूप होने के कारण कोई भी पदार्थ या वस्तु शुभ अथवा अशुभ नहीं होती। शुभ और अशुभ की भावना व्यक्ति अपने मन में पैदा कर लेता है। आप शुभ और अशुभ की इस भावना से कभी प्रभावित नहीं हुए। कई लोग किसी विशेष व्यक्ति या पदार्थ या घटना आदि को शुभ मानते हैं, दूसरे लोग उन्हीं को अशुभ मान लेते हैं। आपकी दृष्टि में ये भ्रम हैं। समाज में आमतौर पर विधवा को अशुभ मानकर किसी मांगलिक काम में भाग नहीं लेने दिया जाता। भाई भी अपनी विधवा बहन से रक्षाबन्धन और तिलक नहीं करवाता। आप इसको घोर अन्याय मानते हैं। आप विधवाओं का आदर सुहागिनियों के समान करते हैं। उनका विवाह कर उनको सधवा बनाना आवश्यक समझते हैं।

शकुन और अपशकुन को आप बिलकुल नहीं मानते और ग्रह-नक्षत्रों के शुभ-अशुभ परिणामों को तथा शुभ अशुभ मुहूर्तों का वहम विचार भी आपके चित्त में नहीं है। सुन्दर पदार्थों, दृश्यों तथा ऋतुओं की अनुकूलता का अनुभव करते हुए भी शुभ अथवा अशुभ या इष्ट अथवा अनिष्ट की भावना आप में उत्पन्न नहीं होती।

शत्रु-मित्र के प्रति समान दृष्टि

शत्रुता और मित्रता मन के भावों पर निर्भर है। ये एकसार नहीं रहतीं। किसी परिस्थिति में कोई व्यक्ति शत्रु होता है और दूसरी परिस्थिति में वही मित्र बन जाता है। इसी तरह किसी परिस्थिति में कोई व्यक्ति मित्र होता है, दूसरी परिस्थिति में वही शत्रु बन जाता है। इसलिए कोई व्यक्ति सदा के लिए शत्रु या मित्र नहीं माना जा सकता। परिस्थितियों के कारण ही उसके प्रति शत्रुता अथवा मित्रता की भावना उत्पन्न होती है। इस विचार से आप अपनी ओर से किसी के प्रति शत्रुता अथवा मित्रता की भावना नहीं रखते। जो लोग किसी कारण विशेष से आपके साथ शत्रुता अथवा मित्रता रखते हैं, उनके साथ उनकी भावना के अनुसार ही यथायोग्य बर्ताव करते हुए भी आपके अन्तःकरण में शत्रुता रखने वालों के साथ विशेष द्वेष की भावना और मित्रता रखने वालों के साथ विशेष राग या आसक्ति पैदा नहीं होती। समत्व योग के सिद्धान्त के अनुसार अन्याय का यथायोग्य प्रतिकार करना और मिथ्या आक्षेपों का यथोचित उत्तर देना समाज की सुव्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक है परन्तु अपनी तरफ से द्वेष और बदला लेने के भाव नहीं रहने चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने का आप प्रयत्न करते रहते हैं।

गौशाला के ट्रस्टियों के झगड़े में और संघ-पंचायत के सामाजिक संघर्ष में आपके विरोधी दलों के लोग आपसे शत्रुता रखते थे, परन्तु आपके अन्तःकरण में उनसे व्यक्तिगत द्वेष करके उनका अहित करने

या हानि पहुँचाने का भाव नही पैदा हुआ। उनके प्रति उपेक्षा का बर्ताव अवश्य किया जाता था। परन्तु उन के यहाँ किसी युवक आदि की मृत्यु का प्रसंग उपस्थित होने पर उनको सांत्वना देने के लिए जाने में आप संकोच नही करते थे। इसी तरह अपने पक्ष वाले मित्रों को अपना सहयोगी समझते हुए उनका अनुचित पक्ष लेना आप ठीक नहीं समझते थे।

अपने कुटुम्ब वालों में से भी कुछ लोग कभी-कभी आपके साथ ईर्ष्या-द्वेष के भाव रखते थे; परन्तु आपके अन्तःकरण में उनसे बदला लेने का भाव उत्पन्न नहीं होता था। उसको उनकी बेसमझी मान कर उपेक्षा करना आप ठीक समझते रहे।

स्त्री-पुरुष के प्रति सम व्यवहार

स्त्री और पुरुष दोनों मानव-समाज के आधे-आधे अंग हैं। दोनों की समान आवश्यकता और बराबर योग्यता होती है। उनके शरीर की रचना में थोड़ा प्राकृतिक अन्तर होते हुए भी दोनों की शारीरिक व मानसिक वेदनाएँ एक समान होती हैं। स्त्री का शरीर पुरुष की अपेक्षा सुकुमार और हृदय कोमल होता है। इसलिए दोनों का कार्य-विभाग शरीर की योग्यता के अनुसार अलग-अलग होना स्वाभाविक है। स्त्री के शरीर की स्वाभाविक योग्यता विशेष रूप से घर-गृहस्थी के काम और सन्तानों के पालन-पोषण की होती है और पुरुष की विशेष योग्यता बाहरी काम करके अर्थोपार्जन करने तथा स्त्री का संरक्षण करने की है, किन्तु यह अलग-अलग कार्य-विभाग होते हुए भी दोनों के कार्यों की एक समान उपयोगिता और आवश्यकता है। एक के बिना दूसरे का निर्वाह नही हो सकता। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इस विचार से स्त्री और पुरुष का पद और अधिकार बराबरी का होना न्यायसंगत और सुखदायक होता है। परन्तु हमारे समाज में स्त्री को बहुत हीन समझा जाता है। उसके अधिकार कुछ भी नहीं माने जाते। उसकी शारीरिक और मानसिक वेदनाओं की कुछ भी परवाह नही की जाती और उसके सारे अधिकार पुरुषों द्वारा छीन लिये गये हैं। वह पुरुष की भोग की वस्तु समझी जाती है। बहुत से धर्म के ठेकेदार पुरुष तो उनकी निन्दा और घोर तिरस्कार करना अपना परम धर्म समझते हैं। यह विषमता और क्रूरता आपके लिए असह्य है और इसको मिटाने के लिए आप निरन्तर प्रयत्नशील रहते है। पुत्र-जन्म पर हमारे समाज में हर्ष मनाया जाता है और बधाइयाँ बाँटी जाती हैं किन्तु पुत्री के जन्म के समय शोक मनाया जाता है। आप इसको अच्छा नही मानते। आपके परिवार में पुत्र-जन्म होने पर आप को कोई विशेष हर्ष नहीं होता और पुत्री के जन्म होने पर आप कोई शोक नही मनाते। पुत्र और पुत्री का पालन-पोषण, रक्षण, शिक्षण यथायोग्य एक ही समान करना और पुत्र और पुत्री का विवाह दोनों की सम्मति लेकर करना आप उचित समझते हैं। पुत्र के विवाह के समय कन्या पक्ष वालो से दहेज आदि के रूप मे कुछ भी लेने के आप विरोधी हैं। जिस विवाह में दहेज आदि लिये जाते हैं अथवा कन्या को दान मे दिया जाता है उसमे आप सम्मिलित नही होते। पिता की सम्पत्ति में पुत्र और पुत्री का समान अधिकार और पति की सम्पत्ति में स्त्री का बराबरी का अधिकार आप न्याय सम्मत मानते हैं। विवाह सम्बन्ध विच्छेद और तलाक का अधिकार स्त्री और पुरुष दोनों का एक समान मानते हैं। भारत सरकार का उत्तराधिकार कानून और विवाह विच्छेद कानून दोनों के आप समर्थक ही नहीं किन्तु उनको अपूर्ण मानते हैं; क्योंकि आपके विचार के अनुसार वे कानून स्त्रियों के प्रति पूर्ण न्याय के सूचक नही हैं। आप पर्दे की कुप्रथा को अत्यन्त हेय व त्याज्य मानते हैं और उसको दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। सहेलियों तथा महिलाओं को यथायोग्य उच्च शिक्षा प्राप्त करवाने में सहायक होना अपना कर्तव्य समझते हैं। उनके लिए मानसिक और आत्मिक उन्नति करने का अधिकार पुरुषों के समान समझते हैं। अपने सत्संग में आत्मज्ञान

का उपदेश स्त्री और पुरुषों को एक तरीका बिना किसी भेद-भाव के देते हैं।

जब आपकी धर्मपत्नी को रीढ़ की हड्डी को राज यक्ष्मा की लम्बी बीमारी हुई तब १२ वर्षों तक उसकी चिकित्सा तन, मन व धन से करवाने में तत्पर रहे और उसकी ऐसी सेवा की जैसी कि एक पतिव्रता पत्नी अपने पति की करती है। लोग कहा करते थे कि आपने अपनी पत्नी के पीछे जोग ले लिया है पर आपने अपवादों की कुछ भी परवाह नहीं की। उसका असाध्य रोग देख कर घर वालों ने आपसे दूसरा विवाह करने का अनुरोध किया और समझा-बुझाकर अथवा दबा कर उसकी सम्मति भी ले ली, परन्तु आपने यह कहकर साफ इनकार कर दिया कि अगर इसकी तरह मैं बीमार होता तो यह रात-दिन मेरी सेवा सुश्रुषा करने के सिवाय क्या और किसी तरह का विचार भी कर सकती थी? यह कितनी निर्दयता होगी कि उसकी बीमारी की इस दयनीय दशा में उसकी वेदनाओं की सर्वथा उपेक्षा करके उसकी छाती पर सौत लाकर बिठा दूं। वह अपने भाग्य को कोसती रहे और मैं उसकी सौत के साथ सुख भोगूं। आपने दूसरे विवाह के प्रस्ताव को हृदयहीन राक्षसीपन समझा। धर्मपत्नी के देहान्त तक आप दोनों का आपस में अगाध प्रेम बना रहा और उसके देहान्त होने पर आपका अन्तःकरण इस विचार से पूर्ण शान्त रहा कि उसके प्रति आपका जो कर्तव्य था उस को आपने पूरी तरह निभा दिया।

दूसरों के साथ बर्ताव करने में गीता के अध्याय छः के श्लोक ३२ के अनुसार दूसरों के सुख-दुःख आदि को अपने समान ही समझने की आत्मौपम्य बुद्धि रखने का आपने सदा प्रयत्न किया।

ऊँच और नीच के प्रति समदृष्टि

प्राणिमात्र एक ही सम आत्मा की प्रकृति के अनेक रूप हैं। शरीर सबके उन्हीं पंच तत्त्वों के होते हैं अतः मूल में ऊँच और नीच का कोई भेद नहीं है। भेद प्रकृति के तीन गुणों की कमीवेशी से होता है। जिसमें सत्वगुण की अधिकता होती है उसकी योग्यता रजोगुण तमोगुण की अधिकता वालों से ऊपर रहने की होती है। तमोगुण की प्रधानता वाले नीचे रहते हैं और रजोगुण की प्रधानता वाले दोनों के बीच की स्थिति में रहते हैं। मनुष्य शरीर में दूसरे प्राणियों की अपेक्षा सत्वगुण की विशेषता होने के कारण उसमें बुद्धि का विकास होता है। मनुष्यों में भी गुणों की कमी-वेशी के अनन्त भेद होते हैं। जिसमें सत्वगुण की जितनी अधिकता होती है उतनी ही उनकी बुद्धि का अधिक विकास होता है और विशेष बुद्धिमान होने के कारण वे रजोगुण-तमोगुण की अधिकता वालों के ऊपर रहते हैं। हमारी आर्य संस्कृति में समाज की सुव्यवस्था के लिए गुणों की योग्यता के अनुसार काम अथवा व्यवसाय करने की चार मुख्य श्रेणियां बनाई गयी थीं जिसको वर्ण व्यवस्था कहा गया था। गीता में भी कहा है कि :

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं
गुण कर्म विभागशः।"

सत्व गुण की प्रधानता वालों के लिए शिक्षा का काम नियत किया गया था। रजोगुण की प्रधानता वालों के लिए रक्षा और वाणिज्य का तथा तमोगुण की प्रधानता वालों के लिए शारीरिक श्रम का काम नियत किया गया था। यह वर्ण-व्यवस्था केवल गुणों के आधार पर बनायी गयी थी और अपने-अपने स्वाभाविक योग्यता के भिन्न-भिन्न काम अथवा व्यवसाय करते हुए भी सबकी मौलिक एकता का सिद्धान्त अखण्ड रखा गया था। सबके व्यवसाय समाज की सुव्यवस्था के लिए एक समान श्रेष्ठ और आवश्यक समझे जाते थे। जिस तरह एक ही शरीर के अनेक अंग अपनी अपनी योग्यता के अलग अलग काम करते हुए भी सब एक समान आवश्यक और उपयोगी होते हैं उसी प्रकार सभी वर्णों के लोग एक समान आवश्यक और उपयोगी हैं,

अतः उनको मनुष्यता के सब अधिकार समान रूप से प्राप्त होना आप आवश्यक मानते हैं। इस सत्य सिद्धान्त का उल्लंघन करके वर्तमान मे हमारे समाज मे जन्म से वर्ण और जाति मानने के आधार पर जो ऊँच और नीच का अस्वाभाविक भेद तथा विषमता का बर्ताव प्रचलित है, जन्म से नीच माने जाने वाले लोगों पर जो अत्याचार किये जाते हैं, बहुतों को अछूत मानकर उनके साथ क्रूरता का बर्ताव किया जाता है और मनुष्यता के अधिकारों से वंचित किया जाता है, इसको आप अन्यायपूर्ण और बहुत बुरा मानते हैं। इस विषमता को मिटाने का आपने भरपूर प्रयत्न किया है। केवल जन्म के आधार पर आप किसी को ऊँचा या नीचा नहीं मानते। जिनमें सत्वगुण की अधिकता होने के कारण बुद्धि का विशेष विकास प्रतीत होता है और जो सदाचारी हैं उनका आप विशेष आदर करते हैं, भले ही वे समाज मे किसी जाति के क्यों न माने जाते हों। जिनमें रजोगुण-तमोगुण की अधिकता होने के कारण उनकी बुद्धि कम विकसित है और जो दुराचारी हैं, उनके प्रति आप अपने अन्तःकरण में आदर का भाव नहीं रखते, भले ही उनको समाज में उच्च जाति का क्यों न माना जाता हो। मनुष्यता के नाते आप उनका तिरस्कार नही करते परन्तु उनकी उपेक्षा करके उदासीन रहने का प्रयत्न करते हैं। जो पाखण्डी, धूर्त और अत्याचारी होते हैं उनसे दूसरों को सावधान करना भी अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं। गुणों के अनुसार यथायोग्य बर्ताव करना ही यथार्थ समता है। परन्तु गुणों की उपेक्षा करके श्रेष्ठ और दुष्ट अथवा भले और बुरे के साथ एक सा बर्ताव करना समता नही किन्तु वास्तव में विषमता है। मनुष्य शरीर में यह योग्यता है कि वह शिक्षा, संगति और प्रयत्न से अपने शरीर के गुणों में कमी-वेशी कर सकता है, अतः जिसमे जिस समय जिस गुण की प्रधानता हो वह उसका स्वाभाविक गुण है।

जो लोग मेहनत करके समाज की किसी भी प्रकार की आवश्यकता पूरी करते हुए सदाचार युक्त अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे नीचे माने जाने वाले कुल में उत्पन्न होने पर भी वास्तव में उच्च हैं और जो लोग बिना परिश्रम किये अथवा समाज की किसी भी प्रकार की आवश्यकता पूरी किये बिना निठल्ले रह कर अथवा चोरी, ठगी, फरेब, धूर्तता आदि से अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे उच्च माने जाने वाले कुल में उत्पन्न होकर भी वास्तव मे बहुत नीच हैं, ऐसी आपकी धारणा है। अपने समाज में उच्च जाति के माने जाने वाले लोगों द्वारा हीन जाति के माने जाने वाले लोगों पर किये जाने वाले अमानुषिक अत्याचारों को देखकर आपके हृदय पर बड़ी चोट लगती है और इस प्राकृतिक विषमता को मिटाना आपने अपना ध्येय बना रखा है। इस विषमता का मूल कारण जन्म से जाति मानना ही आपको प्रतीत होता है। इसलिए जाति-पांति के सब भेद मिटा देने और हीन जाति के माने जाने वाले लोगो का उत्थान करने का आप यथाशक्य प्रयत्न करते हैं। इन लोगों के प्रति आपके चित मे घृणा और तिरस्कार के भाव बिलकुल नही हैं किन्तु इनके साथ यथायोग्य प्रेम का बर्ताव करते हैं और इनको उचित अधिकार प्राप्त करवाने में सहायक होते हैं। खाने के लिए पर्याप्त भोजन, पहनने के लिए वस्त्र, रहने के लिए मकान, बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा, मनोविनोद के लिए उपयुक्त साधन, रोग निवारण के लिये चिकित्सा और अन्याय का प्रतिकार करने के लिये न्याय प्राप्त करने आदि मनुष्य जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने का अधिकार एवं अवसर उनको भी उच्च जाति के माने जाने वाले लोगों की तरह ही प्राप्त होना चाहिए, ऐसा आप मानते हैं। परन्तु इस बात का ध्यान अवश्य रखते हैं कि इनका उत्थान करने और मनुष्योचित अधिकार प्राप्त करने के आवेश में कहीं यह भूल न हो जाए कि उनका जीवन भी अमीर लोगो की तरह विलासी, आलसी और प्रमादी न बन जाए, उनके दुर्गुण इनमें न आ जाए; वर्तमान परिस्थिति में उनकी आवश्यकताएँ इतनी न बढ़ जाए कि उनकी पूर्ति करने के लिये समाज में कहीं अशान्ति उत्पन्न हो जाए, उनके शरीरों की दृढता और तितिक्षा-शक्ति का ह्रास होकर वे लोग दुर्बल तथा रोगी न बन जावें और वे शारीरिक श्रम करने के अयोग्य न हो जाए, जिससे समाज का और स्वयं इनका हित होने के बदले उल्टा अहित

हो जाए। अकाल पड़ने पर दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता के लिए जो योजनाएँ आपने बनाई उनमें खाने के लिए मोटा अन्न जैसा कि वे लोग अपने घरों में साधारणतया खाते हैं, वैसा ही दिया गया। पहनने के लिए मोटे और सादे वस्त्र, रहने के लिये झोंपड़ियों का प्रबन्ध किया गया। इनके बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा मिलने का आयोजन भी आपने किया। उनसे यथायोग्य शारीरिक श्रम भी कराया गया। स्त्री-पुरुष को शिक्षाप्रद उपदेश दिलाये गये। शरीर और कपड़ों की सफाई रखने पर यथोचित ध्यान दिया गया। त्यौहार मनाने और अन्य मनोविनोद के साधन यथायोग्य उपलब्ध किये गये। इसका पूरी तरह ध्यान रखा गया कि इनमें ऐसी आदतें न डाली जाएं कि अपने घरों को लौटने पर अपने काम यथायोग्य करने में इनमें कुछ कमी या निर्बलता पैदा हो जाए। साधारण अवसरों पर भी इनको सहायता देने में आप इन सब बातों का पूरा ध्यान रखते हैं। केवल धन और पद प्रतिष्ठा के कारण आप किसी को ऊँच या नीच नहीं मानते।

सोने-मिट्टी और पत्थर के सम्बन्ध में सम भावना

सोना और मिट्टी-पत्थर दोनों ही जड़ खनिज पदार्थ हैं। परन्तु उनके गुण अलग-अलग होने के कारण उनका उपयोग भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। सोना चमकदार सुन्दर रंग और बहुत भारी तथा गुणों वाला होने के कारण आभूषण और सिक्के के काम में आता है और कम मात्रा में तथा बहुत परिश्रम करने से उपलब्ध होता है इसलिए उसकी कीमत ज्यादा मानी जाती है। मिट्टी पत्थर में सोने के गुण नहीं होते और थोड़े परिश्रम से अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं, इसलिए उनकी कीमत कम मानी गयी है; परन्तु दोनों अपने-अपने स्थान में आवश्यक और उपयोगी हैं। मिट्टी पत्थर का काम सोना नहीं दे सकता। अनेक अवसरों पर सोना दुःखदायी हो जाता है और मिट्टी पत्थर से उसकी रक्षा होती है। मिट्टी पत्थर का उपयोग सोने से अधिक है इस विचार से आप दोनों का यथायोग्य उपयोग करते हुए भी सोने में विशेष आसक्ति नहीं रखते। दोनों विश्वयुद्धों के समय बहुत से लोगों ने सोने, चांदी और जवाहिरात का संग्रह किया था; परन्तु आपने नहीं किया और उनके लिये आप में मोह नहीं पैदा हुआ।

इस प्रकार अपने जीवन में सभी दृष्टियों से समता की भावना पैदा कर आपने समत्व योग की जो साधना की है वह सांसारिक जीवन यापन करने वालों के लिए अनुकरणीय होने से आदर्श कही जा सकती है। हम सबको अपने जीवन में समत्व योग के इस आदर्श को आपके ही समान प्रतिष्ठित करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए और आपके जीवन का अनुकरणीय उदाहरण हमेशा अपने सामने रखना चाहिए।

३

वंश परिचय

बीकानेर शहर के मध्य में स्थित मरुनायक जी का मंदिर साक्षी है कि बीकानेर के नगर तथा राज्य को बसाने में माहेश्वरी मोहता परिवार के पूर्वज सालो जी राठी का मुख्य हाथ था। वे राव बीका जी के साथ सबसे पहले अपने कुछ साथियों सहित इस प्रदेश मे आये थे। सालो जी अपने साथ मरुनायक जी की मूर्ति भी लाये थे और उन्होने वर्तमान मरुनायक जी के मदिर में उस मूर्ति की स्थापना करके उसके आस-पास अपने साथियो को वसा लिया था। राव बीका जी ने अपना डेरा वहाँ डाला था जहाँ इस समय लक्ष्मीनाथ जी का मदिर बना हुआ है। दोनो के सहयोग से बीकानेर शहर वसाया गया। यह वसावट वहुत पुरानी नही है। लगभग ५०० वर्ष पहले सवत् १५४५ वैसाख सुदी २ को एक गाँव के रूप मे यह नगर वसना शुरू हुआ था।

साहसी राजस्थानी

सालो जी के यहाँ आकर बसने का किस्सा अत्यन्त साहसपूर्ण है। उससे पता चलता है कि राजस्थान के राजपूत और वैश्य स्वभावतः वडे साहसी, उद्यमी और अध्यवसायी रहे है। उन्होंने अपने इस स्वभाव के कारण देश में चारों ओर हजारों छोटी-वडी बस्तियाँ बसायी है। न केवल राजस्थान में किन्तु देश के कोने-कोने में वे जहाँ भी कहीं पहुँचे, वहाँ नयी बस्तियाँ आवाद होने मे अधिक समय नही लगा। जहाँ उन्होंने बसेरा डाला वह एक नयी बस्ती का केन्द्र बन गया और उसके चारो ओर नया गाँव या नगर बसता चला गया। उसको उन्होंने व्यापार-व्यवसाय से सम्पन्न और समृद्ध बनाने मे कुछ भी उठा न रखा। असम में ब्रह्मपुत्र को पार करके सुदूर पहाड़ी घाटियों, उडीसा मे महानदी को पार कर घने जंगलों, बंगाल में हुगली को पार कर लम्बे-चौडे मैदानो तथा हिमालय की उपत्यकाओं, दक्षिण मे सुदूर समुद्री किनारों पर तथा पंजाब में भी पठानों के सीमान्त प्रदेश तक में राजस्थान के ये वीर, साहसी, अध्यवसायी और कर्मठ लोग पहुँचे, तव वहाँ अनेक छोटी-वडी वस्तियाँ कायम हुई। उन दिनों यातायात के न कोई आधुनिक साधन थे और न कोई ऐसी सुरक्षा-व्यवस्था थी। सिर हथेली पर रख अपने सर्वस्व को वाजी लगा, वे अपने घरों से कुछ साथियों के साथ उतना ही सामान लेकर निकलते थे, जितना वे स्वयं अपने कंधों पर उठा सकते थे। वे जहाँ भी पहुँचे, वहाँ कुछ ही समय में नयी आवादी वसनी शुरू हो गयी। हमारे देश की प्रायः सभी छोटी-वड़ी वस्तियों के आवाद होने का यही इतिहास है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, कराची, कटक, गौहाटी, शिलांग, दक्षिण हैदराबाद के अनेक नगरों, शोलापुर, नागपुर तथा अन्य नगरो के भी आवाद होने की कहानी की यदि छानबीन की जाए तो इसी परिणाम पर पहुँचा जाएगा। प्रायः सभी वड़े-वड़े शहरों के मध्य भाग में पुरानी आवादी राजस्थानी लोगों की पायी जाती है। आबू के अत्यन्त सुन्दर संगमरमरी मदिर, अनेक तीर्थों पर वड़े-वड़े देवालय, घाट तथा धर्मशालाएँ आदि इनकी ही वनवायी हुई हैं। जगन्नाथ पुरी के प्राचीन मंदिर का इतिहास भी इसी सचाई का सूचक है। आधुनिक निर्माण का अधिकांश श्रेय इन्ही को प्राप्त है। वर्तमान कराची नगर के निर्माता मोहता कहे जा सकते हैं। बीकानेर भी उसी प्रकार बसाया गया है और उसको बसाने वाले थे वर्तमान राजवंश के पूर्वज राव बीका जी तथा मोहतों के पूर्वज राठी सालो जी।

माहेश्वरी समाज का प्रादुर्भाव

माहेश्वरी समाज का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। अन्य समाजों तथा जातियों के समान

माहेश्वरी जाति के उद्गम के सम्बन्ध में भी कुछ पौराणिक गाथाएँ प्रचलित हैं। उनमें सबसे मुख्य और अधिक प्रचलित गाथा यह है कि खण्डेला नगर के क्षत्री चौहान राजा खड्गसेन के पुत्र सुजान कुँवर ने ब्राह्मणों पर अत्याचार किये। इस कारण ब्राह्मणों ने उसको श्राप दिया कि तुम अपने सरदारों-उमरावों सहित पत्थर के हो जाओ। वैसा ही हुआ। वह अपने ७२ सरदारों के साथ पत्थर का बन गया। कुछ दिनों के बाद महादेव जी पार्वती जी के साथ उस ओर से गुजरे। तब पार्वती जी उनको देखकर आश्चर्य से चकित हो गयी और महादेव जी से उन्होंने उनको फिर से जीवित करने की प्रार्थना की। महादेव जी ने उनको पुनर्जीवित कर दिया। उनके पत्थर के बन जाने से उनके राज्य और जागीरों पर दूसरों ने अधिकार कर लिया था। उन्होंने अपने को असहाय पाकर महादेव जी से निवेदन किया कि हम लोग अपना जीवन निर्वाह कैसे करें? महादेव जी ने उनसे कहा कि तुम सब वैश्य बन जाओ और वैश्य वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करो। वे वैश्य बन गये और ७२ सरदारों के जो गोत्र थे उन पर माहेश्वरियों की खाँपें बन गयी। उनमें आपस में रोटी-बेटी का सामाजिक व्यवहार होना शुरू हो गया। महादेव जी की कृपा से पुनर्जीवित होने के कारण उनको माहेश्वरी कहा जाने लगा। सुजान कुँवर के वंश के लोग उनकी वंशावली का इतिहास रखने लग गये और "भाट राजा" कहे जाने लगे।

मूंडवे वाले श्री शिवकरण जी रामरतन जी दरक ने अपने "वैश्यकुल भूषण" ग्रन्थ में माहेश्वरियों के कुल भाट अथवा जागों की बहियों के आधार पर माहेश्वरियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह पौराणिक गाथा लिखी है।

इस पौराणिक कथा रूपक का यह अर्थ हो सकता है कि बौद्ध धर्म के प्रचार के समय इन क्षत्रियों ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार करके वैदिक कर्मकांड, यज्ञ पूजापाठ की निन्दा एवं निषेध करना आरम्भ कर दिया हो। इस पर ब्राह्मणों ने उनको जातिच्युत करके समाज से बहिष्कृत कर दिया और उनका सारा राज्य जब्त कर लिया। उन्होंने जीवन-निर्वाह के लिए वैश्य वृत्ति स्वीकार कर ली, बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद जब आदि गुरु श्री शंकराचार्य ने फिर से वैदिक धर्म का उद्धार करना शुरू किया, तब उनको भी वैदिक धर्म का अनुयायी बना लिया गया और समाज ने उनको क्षत्री वर्ण में सम्मिलित न करके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वैश्यवर्ण में सम्मिलित कर लिया। यह भी सम्भव है कि खंडेला में अपने राज्य व जागीरों के छिन जाने के कारण ये डीडवाना में आकर बस गये और इसी कारण ये डीडू माहेश्वरी कहलाये।

यह पौराणिक गाथा और उसके साथ जुड़ा हुआ इतिहास कुछ भी क्यों न हो, यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में वर्ण तथा जाति का बन्धन इतना कठोर नहीं था और बड़े-बड़े समूहों में भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वर्ण-परिवर्तन एवं जाति-परिवर्तन होता रहता था। जन्म का सम्बन्ध केवल गोत्र अथवा खाँप के साथ था। मोहता राठी खाँप के माहेश्वरी हैं। राठी खाँप का गोत्र कपिलास, सामवेद, यह रणथम्भोर के गणपति विनायक और नागोर के भैरव की उपासना, कुलदेवी पोंकिया गाँव की संचाय माता और गुरु पुरोहित पहले पल्लीवाल धामट ब्राह्मण हुए, पीछे पुष्करणा संगाणी हुए। उनकी चार खाँपें हैं यथा संगाणी, मंडिया, कपवाणी और देरासरी। संचाय माता के मंदिर पुरानी जोधपुर रियासत में पोंकिया गाँव में एक ऊँचे पहाड़ पर शिखर बंद बना हुआ है जो जोधपुर से फलोदी जाने वाली रेल से पोंकिया स्टेशन से सामने दीखता है। अब यह मंदिर जीर्ण हो गया है।

सालोजी राठी

सालोजी पोंकिया गाँव के निवासी श्री राठी नाम के एक वीर पुरुष की चार सन्तानों में से सबसे बड़े थे। अन्य पुत्रों के नाम मालोजी, गार्वन जी, और शंभुजी थे। सालोजी अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न और विवेक

लोकप्रिय थे । वे श्री मरुनायक जी अथवा मूलनायक जी की प्रतिमा के उपासक थे । ओसिया के ठाकुर या राजा के साथ कुछ अनबन हो जाने से उन्होंने सपरिवार मरुनायक जी की मूर्ति सहित उसके गाँव को त्याग दिया और सिंध की ओर जाने को निकल पड़े । पुजारी मूवाडा सेवक, रत्तो जी कथाव्यास; छांगोजी कुल गुरु और सभी कारू अर्थात् सब प्रकार का पेशा करने वाले लोग जिनकी संख्या ३६ बतायी जाती है सकुटुम्ब ओसियां छोड़कर उनके साथ चल दिये । चमड़े का काम करने वाला टीलो जी मेघवाल भी उनके साथ आया, जिसके वंशज आज भी जैसोलाई मोहल्ले में बसते हैं ।

सालोजी ने एक पड़ाव उस स्थान में किया जहाँ बीकानेर से ५ कोस अथवा १० मील पर सालासर बसा हुआ है, जो कि कोडमदेसर जाने वाले मार्ग पर स्थित है । उन्हीं दिनों में राव बीकाजी राठोड़ कोडमदेसर में पड़ाव डाले हुए थे । वे अपने पिता जोधपुर के राजा जोधाजी से अनबन होने के कारण स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से घर से निकल पड़े थे । उनके साथ उनके चाचा काघल जी, मामा नापा सांखला तथा कुछ अन्य साथी थे । राव बीकाजी और राठी सालोजी में परस्पर मुलाकात हुई । दोनों प्रायः एक ही उद्देश्य से घर से निकले थे । राव जी ने राठो जी को सिंध जाने से रोक दिया और दोनों ने मिलकर बीकानेर नगर बसाने और बीकानेर राज्य कायम करने का निश्चय किया । वर्तमान बीकानेर नगर और राज्य के प्रादुर्भाव की यही मूल कहानी है । दोनों के सम्मिलित संकल्प व प्रयत्न से नगर बस गया और राज्य भी कायम हो गया ।

मोहता वंश

सालोजी ने अपना मुख्य निवास स्थान सालासर में रखा और नित्यप्रति वे मरुनायक जी के दर्शन करने बीकानेर आते-जाते रहे । उनके साथ आने वाले बाकी सब साथी बीकानेर में वहाँ बस गये जहाँ मरुनायक जी की मूर्ति स्थापित की गयी थी । सालोजी के चार पुत्र हुए । उनके नाम थे अर्जुन जी, शिवराज जी, धन जी और सेवोजी । सेवोजी को राव बीकाजी ने अपना दीवान नियुक्त किया । तबसे इन्हीं के परिवार के लोग दीवान के पद तथा अन्य कामों पर कामदार नियुक्त किये जाते रहे । इसी कारण उनके वंशज 'मोहता' कहलाये । इसी प्रकार मोहतों को न केवल बीकानेर नगर व राज्य की स्थापना करने में भाग लेने का श्रेय प्राप्त है, अपितु उस विशाल राज्य के संचालन का श्रेय भी प्राप्त है ।

मोहता वंश और उसकी प्रतिष्ठा

सेवोजी के दीवान नियुक्त किये जाने और वंश परम्परा से दीवान तथा राजकाज के सब पद उनके ही वंशजों को प्राप्त होने के कारण बीकानेर में "मोहता" समस्त माहेश्वरी समाज में अग्रणी माने गये । समाज के ओसर नुसते, जिनको गाँव सारनी कहते थे इनकी आज्ञा से होते थे । समाज की पंचायत भी उनके ही दीवान खाने में होती थी ।

सेसोलाव का निर्माण

सेवोजी के पुत्र सेहसो जी ने सहसोलाव तालाब बनवाया, जिसका उल्लेख जागों की बहियों में मिलता है । तब से मोहतों के श्मशान इसी तालाब पर हैं । सेहसोजी के चार बेटों में से देवीदास जी के बेटे गोविन्द जी के नाम से राठी मोहते गोविन्दाणी कहलाये । उन दिनों में पिता के नाम के पीछे "णी" लगाकर पुत्र के नाम के साथ प्रयुक्त किया जाता था । गोविन्दाणी उपनाम इसी प्रकार चालू हुआ । गोविन्द जी के छः बेटे हुए । उनकी तीसरी पीढ़ी में कल्याण दास जी हुए जिन्होंने मदन मोहन जी का मन्दिर बनवाया और राज्य में भी दीवान

की पदवी वंश परम्परा के लिए प्राप्त की। उनके वंशज श्री दीवान मोहता कहे जाने लगे। उनके पुत्र जसवंत सिंह जी ने जस्सूसर कुआ और बगीची का निर्माण करवाया, कुआ जसवंत सागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनसे दो पीढ़ी बाद फतेसिंह जी हुए। उनके वंश मे राज्य का दीवान पद रहा। मोहतों के अतिरिक्त शाखाओं के परिवार में मीमाणी, करनाणी द्वारकाणी, तेजाणी, सादाणी, दमाणी, बिनाणी, धनाणी, नथाणी, मलाणी आदि अनुमानतः १६ शाखाओं का फैलाव बीकानेर में हो गया।

माहेश्वरी समाज में बहुत सी खांपों मे जो अनेक शाखाएं अथवा नख निकले हैं उनके नामों का सम्बन्ध केवल जन्म के साथ नही है, अपितु निवास स्थान, पेशे अथवा विशेष लक्षणों एवं गुणो के आधार पर भी उनके नाम रखे गये हैं। उदाहरण के लिये पूगल में रहने वाले पूगलिये और बागड़ में रहने वाले बागड़ी कहलाए। इसी प्रकार राज्य के दीवान मोहता कपड़े का काम करने वाले बजाज, लोहे का काम करने वाले लोहिये, पंसारट का काम करने वाले पंसारी, मोदीखाने का काम करने वाले मोदी, कोठार का काम करने वाले कोठारी, भंडार का काम करने वाले भंडारी और मादर, डोड, कथोनिया, नौलखा, नोलजा और डागरा आदि कहलाये।

गोविन्द जी के छठे बेटे दासो जी उर्फ श्रीचन्द दास राज्य के कोठार के काम पर निपुण होने से कोठारी कहे गये और उनके वंशज कोठारी मोहता के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री रामगोपाल जी के दादा सेठ मोतीलाल जी के परिवार के मोहता इन्ही के वंश के हैं।

सती की घटना

दासोजी के बाद पांचवीं पीढ़ी में सुखदेव जी के पुत्र प्रेमराज का देहान्त निस्संतान देसावर मे हुआ और उनकी पत्नी बीकानेर में सती हो गयी। कहते हैं कि उनको अपने पति के देहान्त का भान स्वतः हो गया था। उस पर उसने अपने ससुराल वालों से सती होने की इच्छा प्रगट की। उन्होंने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। विश्वास करने के लिए उन दिनों मे रेल, डाक व तार आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी। इस पर वह नाराज होकर अपने पीहर पेड़ीवालों के यहां चली गयी और अपने ससुराल वालों के श्मशान सींगोलाव में न जाकर पीहर वालों के सहयोग से उनके श्मशान में सती हो गयी। सती होने से पहले उसने ससुराल वालों को श्राप दिया कि उनका वंश नहीं चलेगा। चिता में आग देने के लिए सपिंड की आवश्यकता होने से ससुराल वालों को कहा गया, किन्तु उन्होंने श्राप के कारण आग देने से इनकार कर दिया। तब उसने अपने श्राप को कुछ बदल दिया और कहा कि सात पीढ़ी तक एक ही संतान रहेगी और उसके बाद वंश का विस्तार हो सकेगा। इस पर चिता में आग दी गयी और वह सती हो गयी। तब से मोतीलाल जी के वंशजों के श्मशान सींगोलाव से हटकर वहीं आ गये जहां कि सती जी की देवली और मढ़ा बना हुआ है। उनके कुटुम्ब के कई लोग प्रायः जन्म और विवाह के अवसरों पर सती जी की जात देते है। दीवाली के दिन वहीं पूजा होती है। सती जी के कीर्ति स्तम्भ पर एक शिलालेख भी है, जिस पर यह लिखा है कि :

श्री रंग जी

अथि विद्यार्थं सिधर्वं पूजनो स्मरामुः सर्व विघ्नोपशान्तये श्री गणाधिपतये नमः. स्वस्ति श्री शुभ संवत गते श्रीमन विक्रमादित्य राज्ये १७४६ वर्षे शाके १६१४ प्रवर्तमाने महा मांगल्य प्रद शुभे भाद्रपदे मासे शुक्ल पक्षे चतुर्थी तिथि रविवासरे स्वाति नक्षत्रे घटी १२ उपरान्त घटी ४१ ता दिने कोठारी सुखदेव अंगज प्रेमराज भार्या सहगामनी भांभोड़ीवाल रिड़मल पुत्री स्वर्गलोके प्राप्त शुभ भवतु ॥ १ ॥

॥ करत का सलावट रामचन्द ॥

श्रीकृष्ण जी का साहस

संवत् १८१२ में बीकानेर में सात वर्ष से अन्न की कमी होने के कारण दुर्भिक्ष की सी स्थिति रही। अन्न की अपेक्षा पैसों की कमी अधिक थी और क्रय-विक्रय की सामर्थ्य का भी अभाव था। दासो जी के बाद पाचवीं पीढी में सुखदेव जी के भाई राजाराम जी के एक पुत्र नथमल जी हुए और नथमल जी के पुत्र श्रीकृष्ण जी हुए। दुर्भिक्ष के कारण श्रीकृष्ण जी ने मालवा की ओर जाने का निश्चय किया। इस प्रकार घर त्यागने को उन दिनों में "भऊ" कहा जाता था। जांगलू में अपने नाना जी के पास वे ठहरे। वे अच्छे पैसे वाले थे। उन्होंने उनको मालवा जाने से रोक दिया और सिंध से अनाज लाकर साझे में काम करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि सिंध की ओर से ऊँटो और बैलों पर अनाज लाकर उसको बेचना और रकम इकट्ठी करके फिर वापस सिंध में जाना बड़ी जोखिम का काम था। सारा रास्ता उजाड़ था। परन्तु श्रीकृष्ण जी ने बड़े साहस से ५ वर्षों तक अनाज का काम किया और किसी भी कठिनाई की कोई परवाह नही की। पांच साल के बाद उन्होंने रकम इकट्ठी हो जाने पर जांगलू, जेगलो, नोखा, चरकड़ो, बक्कू और घट्टू आदि गांवों में जाट किसानों को ब्याज पर रकम देने का साहूकारा शुरू कर दिया। उसको "बोहरगत" कहा जाता था। श्रीकृष्ण जी ने अपने परिश्रम से अपनी स्थिति बहुत अच्छी बना ली। निस्संतान होने से उन्होंने तीर्थयात्रा की। वे सोरों गंगा जी और हरिद्वार दो-तीन बार गये। उनकी इस तीर्थयात्रा का उल्लेख गंगागुरों की बहियों मे मिलता है। पीछे उनको एक लड़का और लड़की हुए। सं० १८६५ मे ८५ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। उनके बेटे गदाधर जी का छोटी उम्र में देहान्त हो गया। उनके एक पुत्र सदासुख जी हुए।

संतोषी सदासुख जी

सदासुख जी ने बीकानेर में कपड़े की दुकान खोल ली थी। दादा जी की छोड़ी हुई रकम और इस दुकान की आय पर वे अपना जीवन बड़े संतोष के साथ विताते थे। वे बहुत ही बुद्धिमान, धैर्यवान और गम्भीर प्रकृति के थे। नाड़ी विज्ञान में वे बड़े चतुर थे। यह गुण उन्होने नथमल जी वाले पुरोहितों के परिवार की एक बूढ़ी औरत से सीखा था। नाड़ी विज्ञान में वे इतने चतुर थे कि महीनों पहले किसी की मृत्यु की ठीक-ठीक तारीख बता देते थे। वे गरीब अमीर सब की समान भाव से नाड़ी विज्ञान के आधार पर चिकित्सा किया करते थे। इस सम्बन्ध मे उनके कई चमत्कार प्रसिद्ध हैं।

निर्भीक मोतीलाल जी

सदासुख जी के चार पुत्र हुए, जीवण राम जी, रघुनाथ दास जी, मोतीलाल जी और जोरावर मल जी। मोतीलाल जी बहुत सूक्ष्म विचारवान, गम्भीर, मिलनसार, तेजस्वी और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। बोलने में निःशंक और निडर थे। उनकी आवाज बहुत गूंजने वाली, ऊँचे स्वर की तथा प्रभावशाली थी। जब वे जोर से बोलते थे तो लोग डर जाते थे। क्रोध में जब बोलते थे तो आवाज गूंज उठती थी। एक बार की घटना है कि उनका राज्य मे कोई काम था। वे स्वयं उसके लिए गढ़ में गये। वहाँ दीवान हीरालाल जी मूंधड़ा के साथ कुछ कहा-सुनी हो गयी तो वे आवेश मे आकर इतने जोर से बोले कि सारा गढ़ गूंज उठा और महाराज डूंगरसिंह जी ने भी जो दूसरे महल में थे आवाज सुनकर पूछताछ करनी शुरू की कि मामला क्या है। उनके पास मोतीलाल जी का मित्र गुमानमल जी बरड़िया उपस्थित था। उसने दीवान जी के मोतीलाल जी को जबरन दबाने का सब किस्सा कह सुनाया। उन्होंने दीवान जी को बुलाकर मोतीलाल जी के साथ न्याय करवा दिया। वे अन्याय से कभी दबते नही थे और उस पर बड़े भावावेश मे आ जाते थे।

की पदवी वंश परम्परा के लिए प्राप्त की। उनके वंशज श्री दीवान मोहता कहे जाने लगे। उनके पुत्र जसवंत सिंह जी ने जस्सूसर कुआँ और बगीची का निर्माण करवाया, कुआ जसवंत सागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनके दो पीढ़ी बाद फतेसिंह जी हुए। उनके वंश मे राज्य का दीवान पद रहा। मोहतों के अतिरिक्त सालोजी के परिवार में मीमाणी, करनाणी द्वारकाणी, तेनाणी, सादाणी, दमाणी, बिनाणी, धनाणी, नथाणी, लखाणी आदि अनुमानतः १६ शाखाओं का फैलाव बीकानेर में हो गया।

माहेश्वरी समाज में बहुत सी खांपों मे जो अनेक शाखाएं अथवा नख निकले है उनके नामों का सम्बन्ध केवल जन्म के साथ नहीं है, अपितु निवास स्थान, पेशे अथवा विशेष लक्षणो एवं गुणों के आधार पर भी उनके नाम रखे गये है। उदाहरण के लिये पूगल में रहने वाले पुगलिये और बागड़ में रहने वाले बागड़ी कहलाए। इसी प्रकार राज्य के दीवान मोहता कपड़े का काम करने वाले बजाज, लोहे का काम करने वाले लोहिये, पंसारट का काम करने वाले पंसारी, मोदीखाने का काम करने वाले मोदी, कोठार का काम करने वाले कोठारी, भंडार का काम करने वाले भंडारी और माधर, डोड, कचोलिया, नौलखा, नौगजा और डांगरा आदि कहलाये।

गोविन्द जी के छठे बेटे दासो जी उर्फ श्रीचन्द दास राज्य के कोठार के काम पर नियुक्त होने से कोठारी कहे गये और उनके वंशज कोठारी मोहता के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री रामगोपाल जी के दादा सेठ मोतीलाल जी के परिवार के मोहता इन्ही के वंश के हैं।

सती की घटना

दासोजी के बाद पांचवी पीढ़ी में सुखदेव जी के पुत्र प्रेमराज का देहान्त निस्संतान देशावर में हुआ और उनकी पत्नी बीकानेर मे सती हो गयीं। कहते हैं कि उसको अपने पति के देहान्त का भान स्वतः हो गया था। उस पर उसने अपने ससुराल वालों से सती होने की इच्छा प्रगट की। उन्होने उसकी बात पर विश्वास नही किया। विश्वास करने के लिए उन दिनों मे रेल, डाक व तार आदि की कोई व्यवस्था नही थी। इस पर वह नाराज होकर अपने पीहर पेड़ीवालो के यहाँ चली गयी और अपने ससुराल वालों के श्मशान सैंसोलाव में न आकर पीहर वालों के सहयोग से उनके श्मशान में सती हो गयी। सती होने से पहले उसने ससुराल वालों को श्राप दिया कि उनका वंश नहीं चलेगा। चिता मे आग देने के लिए सपिंड की आवश्यकता होने से ससुराल वालो को कहा गया, किन्तु उन्होने श्राप के कारण आग देने से इनकार कर दिया। तब उसने अपने शाप को कुछ बदल दिया और कहा कि सात पीढ़ी तक एक ही संतान रहेगी और उसके बाद वंश का विस्तार हो सकेगा। इस पर चिता में आग दी गयी और वह सती हो गयी। तब से मोतीलाल जी के वंशजों के श्मशान सैंसोलाव से हटकर वहाँ आ गये जहाँ कि सती जी की देवली और थड़ा बना हुआ है। उनके कुटुम्ब के कई लोग प्रायः जन्म और विवाह के अवसरों पर सती जी की जात देते हैं। दीवाली के दिन वहाँ पूजा होती है। सती जी के कीर्ति स्तम्भ पर एक शिलालेख भी है, जिस पर यह लिखा है कि :

श्री रंभ जी

अथ विघ्नतार्थ सिधयं पूजनी स्वरासुरः सर्व विघ्नछेदेतस्मै श्री गणाधिपतये नम. अथ शुभ संवत सरे श्रीमन विक्रमादित्य रज से १७४६ वर्षे शाके १६१४ प्रवर्तमाने महा मांगल्य प्रद दुतीक भाद्रपदे मासे शुक्ले पक्षे चतुर्थी तिथि रविवासरे स्वाति नक्षत्रे घटी १२ वघत घटी ४१ ता दिने कोठारी सुषदेव तत्पुत्र पेमराज साथे महासती भांमपेड़ीवाल रिदराम पुत्री स्वर्गलोके प्राप्त शुभ भवत ॥ १.॥

॥ करत वा सलावट रामचन्द ॥

श्रीकृष्ण जी का साहस

संवत् १८१२ में बीकानेर में सात वर्ष से अन्न की कमी होने के कारण दुर्भिक्ष की सी स्थिति रही। अन्न की अपेक्षा पैसों की कमी अधिक थी और क्रय-विक्रय की सामर्थ्य का भी अभाव था। दासो जी के बाद पाचवीं पीढी मे सुखदेव जी के भाई राजाराम जी के एक पुत्र नथमल जी हुए और नथमल जी के पुत्र श्रीकृष्ण जी हुए। दुर्भिक्ष के कारण श्रीकृष्ण जी ने मालवा की ओर जाने का निश्चय किया। इस प्रकार घर त्यागने को उन दिनों में "भऊ" कहा जाता था। जांगलू मे अपने नाना जी के पास वे ठहरे। वे अच्छे पैसे वाले थे। उन्होंने उनको मालवा जाने से रोक दिया और सिंध से अनाज लाकर साझे में काम करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि सिंध की ओर से ऊँटों और बैलों पर अनाज लाकर उसको बेचना और रकम इकट्ठी करके फिर वापस सिंध मे जाना बड़ी जोखिम का काम था। सारा रास्ता उजाड़ था। परन्तु श्रीकृष्ण जी ने बड़े साहस से ५ वर्षों तक अनाज का काम किया और किसी भी कठिनाई की कोई परवाह नही की। पाँच साल के बाद उन्होंने रकम इकट्ठी हो जाने पर जांगलू, जेगलो, नोखा, चरकड़ो, कक्कू और घट्टू आदि गांवो में जाट किसानों को ब्याज पर रकम देने का साहूकारा शुरू कर दिया। उसको "बोहरगत" कहा जाता था। श्रीकृष्ण जी ने अपने परिश्रम से अपनी स्थिति बहुत अच्छी बना ली। निस्संतान होने से उन्होने तीर्थयात्रा की। वे सोरों गगा जी और हरिद्वार दो-तीन बार गये। उनकी इस तीर्थयात्रा का उल्लेख गंगागुरो की बहियों में मिलता है। पीछे उनको एक लडका और लड़की हुए। सं० १८६५ मे ८५ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। उनके बेटे गदाधर जी का छोटी उम्र में देहान्त हो गया। उनके एक पुत्र सदासुख जी हुए।

संतोषी सदासुख जी

सदासुख जी ने बीकानेर में कपड़े की दुकान खोल ली थी। दादा जी की छोड़ी हुई रकम और इस दुकान की आय पर वे अपना जीवन बड़े संतोष के साथ बिताते थे। वे बहुत ही बुद्धिमान, धैर्यवान और गम्भीर प्रकृति के थे। नाड़ी विज्ञान में वे बड़े चतुर थे। यह गुण उन्होंने नथमल जी वाले पुरोहितों के परिवार की एक बूढ़ी औरत से सीखा था। नाड़ी विज्ञान मे वे इतने चतुर थे कि महीनों पहले किसी की मृत्यु की ठीक-ठीक तारीख बता देते थे। वे गरीब अमीर सब की समान भाव से नाड़ी विज्ञान के आधार पर चिकित्सा किया करते थे। इस सम्बन्ध में उनके कई चमत्कार प्रसिद्ध हैं।

निर्भीक मोतीलाल जी

सदासुख जी के चार पुत्र हुए, जीवण राम जी, रघुनाथ दास जी, मोतीलाल जी और जोरावर मल जी। मोतीलाल जी बहुत सूक्ष्म विचारवान, गम्भीर, मिलनसार, तेजस्वी और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। बोलने में नि:शंक और निडर थे। उनकी आवाज बहुत गूँजने वाली, ऊँचे स्वर की तथा प्रभावशाली थी। जब वे जोर से बोलते थे तो लोग डर जाते थे। क्रोध में जब बोलते थे तो आवाज गूंज उठती थी। एक बार की घटना है कि उनका राज्य मे कोई काम था। वे स्वयं उसके लिए गढ़ में गये। वहाँ दीवान हीरालाल जी मूंधड़ा के साथ कुछ कहा-सुनी हो गयी तो वे आवेश में आकर इतने जोर से बोले कि सारा गढ़ गूंज उठा और महाराज डूंगरसिंह जी ने भी जो दूसरे महल में थे आवाज सुनकर पूछताछ करनी शुरू की कि मामला क्या है। उनके पास मोतीलाल जी का मित्र गुमानमल जी मरड़िया उपस्थित था। उसने दीवान जी के मोतीलाल जी को जबरन दबाने का सब किस्सा कह सुनाया। उन्होंने दीवान जी को बुलाकर मोतीलाल जी के साथ न्याय करवा दिया। वे अन्याय से कभी दबते नही थे और उस पर बड़े भावावेश में आ जाते थे।

पंच पंचायती के सामाजिक मामलों मे भी उनका बड़ा मान था। न्याय सम्बन्धी मामलों में पंचायत में वे बड़े निःशंक होकर बोलते थे और उनकी बात का वजन माना जाता था।

अपने पिता जी से उन्होंने नाड़ी विज्ञान का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था और नाड़ी देखकर वे रोग का निदान इतना अच्छा करते थे कि रोगी के खाने पीने और उससे बुराई होने का सब हाल बिना पूछे कह देते थे। नाड़ी विज्ञान के उनके चमत्कार देखकर लोग उन पर किसी इष्टदेव की कृपा बताया करते थे। सूक्ष्म बुद्धि भी कमाल की थी। सूक्ष्म विवेचनयुक्त आपके नाड़ी विज्ञान का लाभ अधिकतर गरीबों को ही मिलता था। किसी बड़े के यहाँ जाकर चिकित्सा वे प्रायः नही किया करते थे, क्योंकि उसमें उनका कोई स्वार्थ अथवा आर्थिक लाभ न था। हरिजन रोगियों की उनके यहाँ भीड़ लगी रहती थी और उनको वे औषध आदि इतनी सस्ती बताते थे कि उनका कुछ भी खर्च नही होता था। उनको देखने में वे कुछ भी परहेज या आलस्य नही किया करते थे। देखने के बाद केवल स्नान कर लिया करते थे। उनकी मृत्यु पर इसी कारण हरिजनों ने सबसे अधिक शोक मनाया।

मोतीलाल जी के भी चिकित्सा सम्बन्धी अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं। उनके तीसरे पुत्र लक्ष्मीचन्द जी संग्रहणी से कलकत्ता में बीमार हो गये। वहाँ किसी औषधोपचार से लाभ न होने पर उनको जगन्नाथ जी अपने साथ बीकानेर ले आये। रेलगाड़ी तब केवल दिल्ली तक बनी थी और दिल्ली से बैलगाड़ियों अथवा ऊँटों पर आना पड़ता था। बीकानेर पहुँचने पर मोतीलाल जी ने देखा और बता दिया कि मूँग की दाल का सीरा और बड़े खाने के बाद पानी न पीने से वह व्याधि हुई है। सांगरियों का चूर्ण और साग कई दिन तक खिलाया गया और वे अच्छे हो गये।

उनके ही मुहल्ले में रहने वाले मेघराज छंगाणी की स्त्री बहुत बीमार हो गयी। किसी औषधोपचार से लाभ न होने पर वह आपको बुला ले गया। आपने जाकर देखा और कहा कि मतीरे का बीज निगल जाने से वह तकलीफ हुई है। तूंबे की गिर का चूर्ण दिया गया कि दस्त होकर सारा विकार दूर हो गया।

नारायण दास जी वाले वंशीलाल जी बागड़ी का बेटा मुरलीधर बहुत बीमार हो गया। सन्निपात हो जाने से उसके बचने की कोई आशा नही रही थी। मुरलीधर जी महाराज डूँगरसिंह जी के बहुत कृपापात्र थे और उनकी बीमारी का समाचार हमेशा मालूम करते रहते थे। किसी भी औषध से कोई लाभ न होने पर मोतीलाल जी को बुलाया गया। उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि उनके यहाँ डाक्टरों और वैद्यों की क्या कमी है ? मुरलीधर जी मोतीलाल जी की पत्नी के चचेरे भाई थे। उसकी मार्फत उनसे आग्रह करके उन को बुलाया गया। उन्होंने नाड़ी देखी और अपने यहाँ से दवाई मंगाकर राई के बराबर गोलियाँ दीं। बीमार की दशा में सुधार हुआ और कुछ ही दिन बाद वे बिलकुल ठीक हो गये।

संवत् १८६६ मे मोतीलाल जी श्री हीरालाल मूणलाल ढड्ढा की दुकान पर दक्षिण हैदराबाद में ५०१ रुपये वार्षिक पर मुनीम नियुक्त होकर गये। उन दिनों में यह वेतन बहुत ऊँचा माना जाता था। वे पहली बार वहाँ ४ वर्ष रहे। हैदराबाद सरीखे सुदूर स्थान पर जाना बड़े साहस का काम था। यात्रा मे असाधारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और समय भी बहुत लगता था।

संवत् १६०२ में वे हैदराबाद का काम छोड़कर चले आये और एक वर्ष बीकानेर मे रहने के बाद अपने मामा श्री जुगलकिशोर जी पुगलिया की रायपुर जिले मे अणदगाँव की दुकान पर चले गये। वे लखपति थे। उनके साथ उनके भतीजे श्री अबीरचन्द जी भी गये। अबीरचन्द जी को वहाँ छोड़ कर वे स्वयं नागपुर की दुकान पर चले आये। अबीरचन्द जी को कुछ समय बाद क्षय की बीमारी हो गयी। पहले भी उस दुकान पर कई व्यक्तियों का इस बीमारी के कारण स्वर्गवास हो चुका था। उस बीमारी को उन दिनों "सोहना घुईलग"
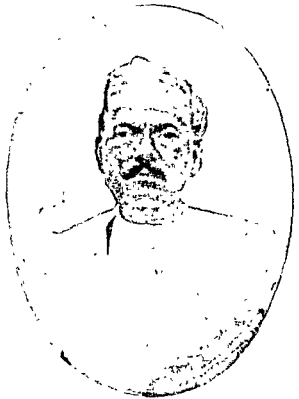
कहा जाता था। मतलब यह था कि किसी चुड़ैल के लगने से सूखे की बीमारी होती थी। एक वर्ष बीमार रहे। उनका १६०४ में स्वर्गवास हो गया। उसी साल में बीकानेर में रघुनाथदास जी का भी स्वर्गवास हो गया था, बड़े भाई और भतीजे के प्रायः एक साथ देहान्त होने का उन पर बहुत बुरा असर पड़ा। उनका मन इतना उचाट हो गया कि मामा के बहुत समझाने पर भी वे बीकानेर चले आये। बीकानेर रह कर उन्होंने पिता जी की कपड़े की दुकान के काम में अपने को लगा दिया। फिर कहीं बीकानेर से बाहर काम करने नहीं गये। इन्होंने रायसर और हिमतासर गाँवों के बीच में एक तालाब खुदवाकर उस पर घाट बनवाया।

मोतीलाल जी की सन्तान

श्री मोतीलाल जी के चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। उनके नाम शिवदास जी, जगन्नाथ जी लक्ष्मी चन्दजी, गोवर्धनदास जी, रंभाबाई, अम्बाबाई और केसरबाई थे। शिवदास जी को रघुनाथ दास जी और जगन्नाथ जी को अबीरचन्द जी के गोद दे दिया गया था। फिर भी उनके साथ उनका अपने पुत्रों का सा व्यवहार रहा। परिवार बड़ा था और परिमित आमदनी से खर्च बहुत मुश्किल से चलता था, इसलिए उन्होंने अपने लड़कों को कुछ पुरुषार्थ करने के लिए कहा। शिवदास जी उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कलकत्ता चले गये और वहाँ नौहर के रघुनाथ दास शिवलाल पचीसिया की दुकान पर ४०१ रुपये साल पर मुनीम नियुक्त हो गये। दूसरे पुत्र जगन्नाथ जी ने बीकानेर में कपड़े की दुकान करली। इसमें उन्होंने जयपुर, पाली और कलकत्ते से कपड़ा और दिल्ली से किनारी गोटा मँगाकर बेचना शुरू किया। काम कुछ अच्छा न चलने से तीन वर्ष बाद दुकान बन्द करदी और भिवानी जाकर वहाँ जगन्नाथ मोहता के नाम से श्री छोगमल चुन्नीलाल डागा के साझे मे दुकान खोल ली। दो वर्ष बाद उन्होंने उस दुकान से अपना हिस्सा निकाल लिया और उसके बाद चारो भाइयों ने कलकत्ता में काम शुरू कर दिया।

मोतीलाल जी की माताजी का देहान्त संवत् १६१२ माघ वदी ७ और पिताजी का संवत १६१८ मगसर सुदी ११ को हुआ। पिताजी के देहान्त के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने घरवालों को कह दिया था कि कार्तिक सुदी ११ को आधी रात के बाद मेरा देहान्त हो जाएगा। घरवालों को विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। आधी रात में उन्होंने फिर कहा कि मृत्यु एक महीने के लिए टल गई है और ठीक एक मास बाद उनके बताए हुए दिन उनका स्वर्गवास हो गया।

संवत् १६३६ में माघ सुदी ६ को न्युमोनिया से मोतीलाल जी का स्वर्गवास हो गया। वे मरुनायक जी के बड़े उपासक थे। नित्य नियम से उसका दर्शन करने मन्दिर जाया करते थे। बीमारी में भी उनका चित्र सामने रख कर उनका स्मरण करते हुए उन्होंने शरीर त्यागा।

मोतीलाल जी का सम्पन्न परिवार

मोतीलाल जी के पुत्रों ने उनके जीवित काल मे ही बड़ा यश और वैभव प्राप्त किया। अपने व्यापार व्यवसाय में इतनी सफलता प्राप्त की कि आर्थिक दृष्टि के उनके घराने की बड़ी प्रतिष्ठा बन गयी। उनके पुत्र शिवदास जी और जगन्नाथ जी ने कलकत्ता तथा भिवानी में जिस प्रकार काम शुरू किया उसका उल्लेख यथा स्थान किया जा चुका है। थोड़े वर्षों बाद जगन्नाथ जी और लक्ष्मीचन्द जी भी कलकत्ता पहुंच गये। वहाँ तीनों ने अपना कपड़े का काम शुरू किया। कलकत्ता मे विलायती कपड़े का बहुत बड़ा काम था। विलायती कपड़े का आयात का सारा काम अंग्रेजों के हाथ में था, उनकी कम्पनियों के इम्पोर्ट हाउस थे, जिनको कलकत्ता में "हौस" कहा जाता था।। उनमे बहुत ही कम हिन्दुस्तानी हिस्सेदार थे। प्रायः अंग्रेज कम्पनियों और हिन्दुस्तानी व्यापारियों के बीच अधिकतर वे दलाल का काम किया करते थे। हिन्दुस्तानी व्यापारियों से अपरिचित होने के

कारण अंग्रेज कम्पनी वाले उनके साथ सीधा व्यापार नहीं करते थे। उन्हीं हिन्दुस्तानी दलालों के मार्फत काम किया जाता था, जो कि, उनके माल के जामिन होते थे। वे दुहरा काम किया करते थे। पहला यह कि माल की डिलीवरी आने पर रुपये का प्रबन्ध किया करते और दूसरा व्यापारियों को माल बेचते और उनके यहाँ रकम न डूबने की गारंटी देते। इसीलिए उनको गारंटी ब्रोकर, वेनियन अथवा मुसद्दी कहा जाता था। उनके नीचे छोटे दलाल रहा करते थे। बेनियन्स को एक रुपया सैकड़ा और छोटे दलालों को छः आना सैकड़ा कमीशन मिला करता था, आरम्भ में मुसद्दियों का सारा काम प्रायः खत्रियों के हाथों में था। अपनी विलासप्रियता के कारण वे उस काम को सँभाल न सके और धीरे-धीरे उनका स्थान मारवाड़ी अथवा राजस्थानियों ने ले लिया। राली और ग्राम कम्पनियों के सबसे बड़े हौस थे। जिनके खत्री मुसद्दियों का स्थान क्रमशः रामचन्द जी हरीराम जी गोविन्दका और सूरजमल शिवप्रसाद झुनझुनू वाला मारवाड़ियों ने ले लिया। एफ० स्टेनर कम्पनी मेंचेस्टर वाले के जनरल मैनेजर जेम्स कार थे। उन्होंने यहाँ अपना माल और अधिक बेचने के लिए तारकनाथ सिरकार और अपने छोटे भाई हैनरी कार के साझे में कारतारक कम्पनी के नाम से कलकत्ता में हौस खोली। उन दिनों में यही एक कम्पनी थी जिसमें अंगरेज और हिन्दुस्तानी दोनों शामिल थे। इसमें एफ० स्टेनर कम्पनी का लाल कपड़ा विशेष रूप से आया करता था। वह लाल कपड़ा खादी रंगकर बनाये गये लाल कपड़े की नकल में बनाया गया था, इसलिए वह खूब चलता था। उसके पहले मुसद्दी मुकन्दीलाल खत्री थे। उनके नीचे के छोटे मुसद्दियों में श्री शिवदास जी और जगन्नाथ जी भी शामिल थे। दलाली में खूब पैदा हुआ और कुछ ही समय बाद उन्होंने शिवदास जगन्नाथ नाम से लाल कपड़े की अपनी दुकान खोल ली, उसमें मुकन्दीलाल खत्री का भी साझा रखा गया था।

संवत् १९३२ में वयस्क होने पर गोवर्धनदास जी भी कलकत्ता आ गये। उन्होंने गोवर्धन दास शिव प्रताप के नाम से धुलाई कपड़ों की दुकान खोली। उसमें ग्राम कम्पनी का माल विशेष रूप से बेचा जाता था। इन दोनों दुकानों में क्रमशः हीरालाल जी, रामनारायन जी मोहता करमसोत तथा जोधराज जी धानूका साझेदार हुए। उसमें इनको लाखों का मुनाफा हुआ और उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। उससे कुछ रकम जमा हो जाने से उन्होंने शिवदास जगन्नाथ के नाम से सराफे की दुकान खोली। उन दिनों में बीकानेरी समाज में सराफा दुकान वालों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी हुंडी चिट्ठी का भाव बहुत ऊँचा रहता था और रकम उनको कम ब्याज पर मिल जाती थी। वे दूसरों को ऊँचे भाव में देकर अच्छा मुनाफा कमा लेते थे। बैंकवाले भी व्यापारियों की हुंडियाँ न लेकर उनकी ही हुंडियाँ लेते थे। जल्दी ही उनका फर्म डागों और दम्माणियों की श्रेणी में गिना जाने लगा।

मोतीलाल जी के १९३९ में देहान्त होने के समय उनके चारों लड़कों की गणना लखपतियों में होने लग गयी थी।

मोतीलाल जी की पुण्य स्मृति में

स्वर्गीय मोतीलाल जी की स्मृति में संवत् १९५०-५१ में उनके पुत्रों जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी ने बीकानेर रेलवे स्टेशन के पास एक विशाल धर्मशाला और उसके साथ पानी की प्याऊ बनवायी। इस धर्मशाला में एक संस्कृत पाठशाला की भी स्थापना की गयी। फिर संवत् १९७४ में धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय और रसायन शाला स्थापित किये गये। धर्मशाला के साथ पानी के जमा करने की एक बड़ी बावड़ी और बाद में एक कुँवा भी बनवाया गया। इन सबके निर्माण में लाखों रुपये लगाये गये और इनके व्यय के लिए भी लाखों रुपयों की सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाया गया जिनके एक ट्रस्टी और मंत्री श्री रामगोपाल जी
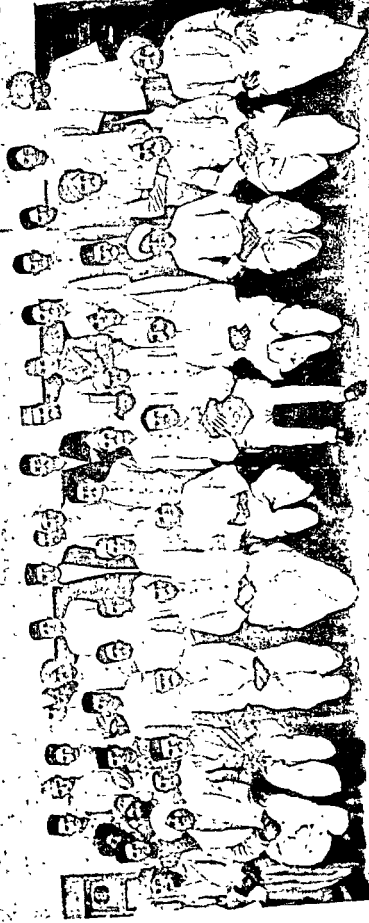
मोहता मोती लाल धर्मशाला व धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय बीकानेर के कार्यकर्त्ता। बीच में राज्य के दीवान महाराज मान्धाता सिंह जी, उनके दाहिनी ओर श्री रामगोपाल जी मोहता और श्री शंकरदत्त जी वैद्य। बांई ओर श्री शिवरतन जी मोहता और श्री पुरुषोत्तम दास जी पांडिया, मैनेजर।

मोहता जी के पूज्य पिताजी स्वर्गीय
राव बहादुर सेठ गोवर्धन दास मोतीलाल जी मोहता ओ० बी० आई०
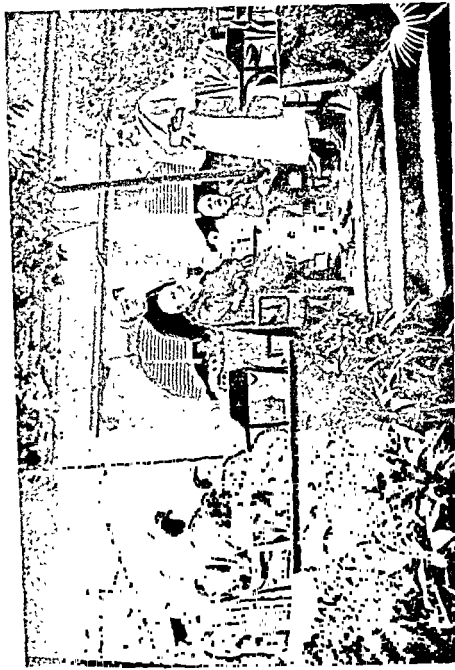
राव बहादुर गोवरधन दास मोतीलाल मोहता ग्रांख के ग्रस्पताल, कराची की ग्राधारशिला रखने के समय का चित्र ।

गोवरधन सागर बगीची बीकानेर की सत्संग भवन की प्याऊ से पानी भर कर जाते हुए कुम्हार ।

मोहता नियुक्त किये गये। अनुमानतः तीस-पैंतीस वर्षों तक आपने इन सब सस्थाओं का प्रबन्ध सुचारु रूप से किया।

गोवर्धन सागर बगीची

आपके पिता जी राव बहादुर सेठ गोवर्धन दास जी ने संवत् १६७०-७१ में बीकानेर शहर के बाहर दक्षिण-पश्चिम की ओर एक बगीची बनवायी जिसमे आगंन्तुक साधु-संतों तथा अन्य ग्रामीण यात्रियों के ठहरने के लिए कई मकान बनवाये। उन दिनों बीकानेर में पानी की बहुत तंगी रहती थी। नल नहीं लगे थे। इसलिए पानी की एक बावड़ी और तलाई बनवायी तथा पानी पिलाने की प्याऊ स्थायी रूप से लगायी। इसी बगीची में श्री उत्तमनाथ जी महाराज ठहरते और सत्संग किया करते थे। आजकल मोहता जी इस मे ही नित्यप्रति सत्सग करते है, जिसमे बहुत-से सत्संगी नर-नारी सम्मिलित होते हैं। इसका नाम "गोवर्धन सागर बगीची और गीता सत्संग भवन" रखा गया है। इसमें राहगीर पानी पीते हैं और आस-पास के गाँवों के लोग विशेषकर गंगाशहर में रहने वाले कुम्हार लोग सैंकड़ों की संख्या में अपने-अपने गदहो पर पानी से भरे हुए घड़े नित्य प्रति ले जाते है। उनका तांता लगा रहता है। इस संस्था के खर्च निर्वाह के लिए सेठजी ने एक स्थायी ट्रस्ट बना दिया था।

संवत् १६७० मे राव बहादुर सेठ श्री गोवर्धनदास जी ने कराची मे आँख के रोगो की चिकित्सा के लिये एक अस्पताल की स्थापना करने के लिए सिंध की सरकार को ७०,००० रुपये प्रदान किये। उस अस्पताल का शिलान्यास उस समय के बम्बई और सिंध के गवर्नर सर एच० एस० लारेंस ने किया था।

जीवन परिचय

वयोवृद्ध, मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता का जन्म संवत् १६३३ मगसर वदी १२ को हुआ। वचपन में आपका रूप रंग व आकृति आकर्षक और वोली मीठी थी। लोग आपको बहुत प्यार करते थे। दादा मोतीलाल जी आपसे विशेष प्रेम करते थे और प्रायः अपने पास ही रखते थे। आपके चरित्र पर आपके पिताजी और माताजी के स्वभाव का ही विशेष प्रभाव पड़ा। आपके पिता जी बड़े पवित्र, उदार स्वभाव के और धार्मिक वृत्ति के सात्विक सज्जन थे। वे बहुत साहसी, निर्भीक, निःशंक, अध्यवसायी, कुशल, विचारशील और दूरदर्शी व्यापारी थे। बड़े-बड़े अंगरेज व्यापारी और अफसर उनके घनिष्ठ मित्र थे और उनका बड़ा आदर करते थे। पिछली अवस्था में जब वे अधिकतर बीकानेर रहने लगे तब उनके परिचित अंगरेज व्यापारी विलायत से भारत आने पर उनसे मिलने के लिए बीकानेर आया करते थे। अंगरेजी भाषा न जानने पर भी दुभाषिये द्वारा वे अंगरेजों से वार्तालाप अच्छी तरह कर लेते थे और अपने भाव उनको समझा देते थे तथा उनके भाव स्वयं अच्छी तरह समझ लेते थे। दीन दुखियों की सहायता और परोपकार के कामों में वे मुक्त हस्त दान दिया करते थे। उनके परोपकारी स्वभाव की कुछ घटनाएँ बीकानेर के लोग अबतक भी याद करते और एक दूसरे को सुनाते हैं। शाम को टहलने के लिए जब निकलते तब जेब मे जितनी भी धनराशि रख लेते वह सब बांटकर घर लौटते। दीन-दुखियों और संकटापन्नों का अपने आदमियों द्वारा पता लगवाकर उनको कभी-कभी गुप्त रूप से इस प्रकार सहायता पहुँचाते कि लेने वालों को पता तक न चलता कि किसने कहाँ से सहायता पहुँचाई है। वे उस को ईश्वरप्रदत्त मानकर संतोष कर लेते। एक हाथ से दिया हुआ दूसरे हाथ को भी मालूम नहीं होना चाहिए.—यह कथन आपकी उदारता पर सचमुच ही पूरा उतरता था। अपने ही उद्योग से उन्होंने अपनी स्थिति और कीर्ति करोड़पतियों के समान यशस्वी और वैभवशाली बना ली थी। लोकोपकारी कार्यों में उन्होंने जिस उदारता से अपनी कमाई का सदुपयोग किया उससे प्रसन्न होकर अंगरेज सरकार ने पहले उनको रावबहादुर की और पीछे ओ० बी० ई० उपाधियों से विभूषित किया था। पिताजी के ये सब सद्गुण मोहता जी के संस्कारी चरित्र में जिस रूप में प्रस्फुटित हुए उसी का शुभ परिणाम आपका वर्तमान जीवन कहा जा सकता है।

वचपन

आपके पूरे नाम का उपयोग बहुत कम हुआ। वचपन में गोपाल, फिर गोपाल जी नामों का अधिक प्रयोग हुआ। आजकल प्रायः भाई जी और बाबा जी का अधिक प्रयोग किया जाता है। "बाबाजी" आपके सरल, सहृदय एवं सन्त स्वभाव का सूचक है। उस निर्लिप्त स्थिति का भी इससे परिचय मिलता है जिसको आपने समत्व योग के पथिक बन कर प्राप्त किया है।

चार वर्ष की छोटी आयु में आपके दादा जी आपको अपने साथ तीर्थ यात्रा में ले गये। माता जी साथ नहीं थी। आपकी अद्भुत स्मरण-शक्ति और सहज प्रतिभा का परिचय इस यात्रा से लौटने के बाद मिला, क्योंकि उसका सारा विवरण आप लोगों को ऐसे सुनाया करते थे जैसे कि वह आपको याद कराया गया हो। अजमेर तक की ऊंटों पर और बाद में रेलगाड़ी पर की गयी यात्रा, मार्ग में ठहरने के स्थानों व गाँवों और तीर्थों का पूरा विवरण आप के मुँह से बहुत ही अच्छा मालूम होता था और उसको बार-बार लोग बड़े चाव से सुनते थे।

मोहता जी की पूजनीया माता जी स्वर्गीया श्रीमती जीता-
बाई मोहता।
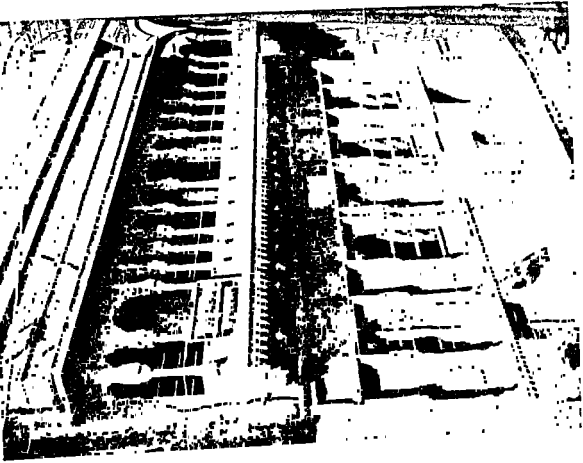
मोहता जी की पूजनीया माता जी का स्वर्गारोहण ।

श्रीमती जीतावाई मातृ सेवा सदन, बीकानेर

आपकी ६ वर्ष की आयु में दादा जी का देहान्त हो गया ।

पढ़ाई का प्रारम्भ

आपकी शिक्षा का प्रारम्भ बचपन में दादा जी के सामने हो गया था। पहाड़ों, लेखों, व्याज फैलाने और बारगीके अक्षरों की हुण्डी चिट्ठी लिखने तक की सब पढ़ाई आपने पूरी कर दी। संवत् १९४१-४२ में बीकानेर में सरकारी स्कूल स्थापित हुआ। उसमे हिन्दी अंगरेजी पढाने का प्रबन्ध किया गया था। उसमे सब से पहले भरती होने वालों में आप भी थे। आपकी श्रेणी सब से ऊँची थी और उसमें आप सदा पहले या दूसरे रहा करते थे। पारितोषिक प्राप्त करने वाले छात्रों में आप भी होते थे।

संवत् १९४० में आपकी पहली बहन कस्तूरी बाई का देहान्त हो गया और उसी वर्ष दूसरी बहन जानकी बाई का जन्म हुआ।

आपकी ननिहाल भीनासर में थी, जहाँ कि कभी-कभी माता जी के साथ आना-जाना हो जाता था। बड़े बाप शिवदास जी के कोई सन्तान न होने से वे आपको बड़ा प्यार करते थे। संवत् १९४२ में उनके साथ आप कोलायत के मेले में गये।

कराची की पहली यात्रा

संवत् १९४३ सावन में १० वर्ष की आयु में बहावलपुर के रास्ते आपने पहली कराची यात्रा की। आपको आपके पिता श्री गोवर्धन दास जी अपने साथ तब कराची ले गये थे। घर में अंगरेजी पढ़ाने वाले भी साथ थे। सावन का महीना यात्रा के लिए शुभ नही माना जाता था। इसलिए माता जी की भेजने की इच्छा नहीं थी; परन्तु पिता जी ऐसा कुछ विचार नही रखते थे।

रेलगाड़ी मोटर और हवाई जहाज से आजकल लम्बी यात्राएँ करने वाले उन दिनों में ऊँटों पर की जाने वाली यात्रा के कष्टों की कल्पना तक नही कर सकते और यह नही जान सकते कि उन दिनों में प्रवास के आधुनिक साधनो के अभाव मे किस प्रकार कठोर यात्रा करते हुए राजस्थान के वीर, धीर, अध्यवसायी और उद्यमी लोग देश के दूर-दूर कोनों मे पहुँच गये। राजस्थान से दूर स्थानों की यात्रा करने वाले एक-एक परिवार की साहसपूर्ण कहानी अत्यन्त मनोरंजक, प्रेरक और उत्साहप्रद है। बीकानेर मे कराची की यात्रा की कहानी भी वैसी ही है। उससे उन दिनों की यात्रा की कठिनाइयों और यात्रा करने वालों के साहस का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। बीकानेर से बहावलपुर तक का रास्ता ऊँटों पर तय करके बहावलपुर से रेलगाड़ी पर सवार हुआ जाता था। बीकानेर से बहावलपुर तक सोमासर, चेणावाला, पूगल, सेसाड़ा, मौजगढ़ और पंवाखाड़ा पर पडाव किये जाते थे। ऊँटों पर आवश्यक सामान के अलावा खाने के लिए पेठा, शक्करपारे और भुजिया जिसको "सिरावणी" कहते थे बकरों के ऊन से बने थैलों में बांध कर और पानी चमड़ों की दीवड़ियों में भर कर ऊँटों के दोनों ओर लटका दिया जाता था। कुछ आटा, सीधा आदि भी साथ मे ले लिया जाता था। जहाँ आटा व सीधा आदि मिल जाता वहाँ कच्ची रसोई का प्रबन्ध किया जाता नही तो अपने पास के सामान से रसोई तैयार की जाती। यदि भोजन बनाने की सुविधा न होती तो 'सिरावणी" पर ही ५-६ दिनों तक गुजारा किया जाता। खाने-पीने की इस कठिनाई के अलावा मार्ग की अन्य असुविधाएँ भी कुछ कम नही थी। बहावलपुर तक का मार्ग रेतीला, जंगली और बियाबान था। गरमी के कारण दिन मे यात्रा सम्भव न होती थी और रात्रि को ही सफर किया जाता था। बच्चों को ऊँटों पर गुदाकर बड़े लोग उन पर पैर पसार के इसलिए बैठते थे कि कहीं वे नीचे न गिर जाएँ। यात्रा के लिए कोई मार्ग भी नहीं था। ऊँट अपनी आदत से पगडण्डी के रास्ते पर चलते जाते थे। यदि कहीं वे रास्ता भूल जाते, तो मोतों बनने

के बाद रास्ता भूलने का पता चलता तो शेष रात वहाँ जंगल में ही डेरा डालकर काटनी पड़ती। रात्रि में ठीक रास्ते का पता लगा सकना सम्भव न होता था। दिन में भी रास्ता ढूंढने में घण्टों लग जाते थे। यदि कहीं रास्ते में वर्षा, आंधी या तूफान आ जाता तो कठिनाई कई गुना बढ़ जाती। आपको अपनी इस यात्रा में ऐसे सभी कष्टों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा।

यात्रा की चौथी मंजिल सेसाड़े की बावड़ी और साल कुछ ही दूर थे कि सवेरे ४ बजे जोर की वर्षा शुरू हो गयी। कोई ओट वगैरह नहीं थी। वर्षा का पानी सीधा सिर पर गिरता था। ऊँटों को बैठाकर वर्षा थमने की प्रतीक्षा की गयी। वर्षा थमी तो चारों ओर जमीन के बड़े-बड़े मैदान जिनको "चितरांग" कहते थे पानी से भर गए। समुद्र का सा दृश्य दीखने लगा। केवल रेत के टीबे पानी में दीख पड़ते थे। चितरांग जब सूखे रहते थे तो दूर से मृगतृष्णा का दृश्य दीख पड़ता था। चितरांगों की मिट्टी इतनी चिकनी थी कि उनपर ऊँटों के पैर जमने मुश्किल हो गये। इसलिए ऊँटों को लम्बा चक्कर काटकर सेसाड़े के लिए रवाना किया गया और यात्रियों ने पैदल पानी का रास्ता तय किया। कपड़े सब भीगे हुए थे। सबेरे ६ बजे के करीब पैदल यात्री सेसाड़ा पहुँच गये और ऊँटों को पहुँचने में दोपहर के ११-१२ बज गये। कपड़े निचोड़ कर सुखाये गये और ऊँटों पर लदा हुआ सारा सामान भी सुखाया गया। सीला हुआ खाने का सामान "सिरावणी" भी सुखानी पड़ गयी। दोपहर को कच्ची रसोई जीम कर शाम को ४ बजे आगे की यात्रा शुरू की गयी। वर्षा से कपड़ों आदि के भीग जाने से परेशानी तो बहुत हुई; किन्तु यह लाभ भी हुआ कि पीने के पानी का कुछ कष्ट कम हो गया। पीने का मीठा पानी मिल जाना भी बहुत बड़ी नियामत थी। बावड़ी वर्षा के पानी से भर तो गयी; किन्तु उसके पानी को फिटकरी से साफ करके ही काम में लाया जा सका।

सेसाड़ा से रवाना होने के लगभग आधी रात के बाद ऊंटों के रास्ता भूल जाने की कठिनाई का अनुभव भी प्राप्त हो गया। काफी दूर निकल जाने के बाद पता चला कि ऊँट रास्ता भूल गये। उस अँधियारी और उजाड़ में पड़े हुए रात बिताने के सिवाय दूसरा कोई चारा न था। सवेरा होने पर ऊँट वाले रास्ता ढूँढने निकले तो आधा दिन बीत जाने पर रास्ते का पता लग सका। वहाँ ही "सिरावणी" खाकर और चमड़े की दीवड़ियों में साथ में रखा हुआ पानी पीकर भूख व प्यास शांत की गयी और ऊँटों के पलाण खड़े करके उन पर कपड़ा तान कर उसकी छाया में दिन बिताया गया।

शाम को वहाँ से चलकर दूसरे दिन सवेरे मौजगढ़ पहुँचे। यहाँ माहेश्वरियों के घर में कुछ आराम मिला। वहाँ से शाम को चलकर तीसरे दिन बहावलपुर पहुँचे। ६ दिन की यात्रा की मिट्टी और मैल शरीरों पर चढ़ा हुआ था। मुलतानी मिट्टी, जिसे मेट कहते थे, सिर और बदन पर मल कर स्नान किया गया। उन दिनों में साबुन का चलन नहीं हुआ था। बहावलपुर में ६ दिन की ऊँटों की यात्रा के बाद कुछ आराम मिला। आगे का रास्ता रेलगाड़ी पर तय किया गया। सक्खर के पास सिंधु नदी पर अभी रेल का पुल नहीं बना था। उसको छोटे स्टीमरों से पार किया जाता था।

कराची में फर्म के मुख्य कार्यकर्ता आपके फूफा मेमर बूआ के पति श्री गोवर्धन दास जी मूंदड़ा थे। आपको उनके संरक्षण में रखा गया और वे बड़े लाड़-प्यार से आपको रखते थे। कुछ समय सैर-सपाटे में, कुछ घर पर अंग्रेजी पढ़ने में और अधिक समय दफ्तर व दुकान में बीतता था। उन दिनों में काम-काज और व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा इसी प्रकार दी जाती थी। वहाँ आप अपनी बहन जानकी बाई को बहुत याद किया करते थे।

बीकानेर वापस

चार मास बाद फिर मगसर में दादी जी की बीमारी का तार पाकर उसी रास्ते से पिता-जी के साथ

वीकानेर लौट आये। बहावलपुर से बीकानेर की यात्रा ६ दिन के बजाय ऊँटों को भगाते और विश्राम लिए बिना ३ ही दिन में पूरी की गयी। बीकानेर में पढ़ाई का क्रम फिर स्कूल मे शुरू हुआ। स्कूल का नाम दरबार हाई स्कूल रख दिया गया था। घर में भी पढ़ाई का क्रम चालू रखा गया। गणित, हिसाब और इतिहास में आपका मन नहीं लगता था। उसमे कमजोर रहने पर भी अनुत्तीर्ण होने का अवसर कभी नहीं आया।

कराची की दूसरी यात्रा

संवत् १९४४ भादवा सुदी मे कराची की दूसरी यात्रा बहावलपुर के रास्ते से ही की गयी। इस बार माता जी, बहन जानकी बाई, केसर बुआ, उनकी पुत्री बुलाको बाई और उनकी काकी सास भी साथ थी। श्री गोवर्धन दास जी मूंदड़ा के साथ यह यात्रा की गयी थी। बच्चों व स्त्रियों के लिए ऊँटों पर "कजावा" बनाया जाता था, जो कि उल्टी खाट ऊँटों पर बाँध कर उनके पायों को रस्सों से बाँध कर तैयार किया जाता था। इससे सवारियों को नीचे गिरने का भय नहीं रहता था। रास्ता बियावान, उजाड़ और जँगली होने पर भी डाकुओं के भय से सर्वथा रहित था। सिंधु मुसलमान भेड़-बकरियाँ और गाय आदि पालकर अपना गुजारा चलाते थे। किसी-किसी के पास एक-एक हजार गायों तक का ठाठ और भेड़ों बकरियों का रेवड़ रहता था। उनका दूध, घी, छाछ वगैरह तथा बकरियों व भेड़ों का ऊन बेचकर वे अपना काम चलाते थे। इस यात्रा में कुल आठ नौ दिन लगे होंगे। ६ मास बम्बई बाजार की दुकान के ऊपर के कमरों में पहले के समान रहे। माघ सुदी ५ संवत् १९४४ को कोठी वाले मकान की प्रतिष्ठा की गयी। प्रतिष्ठा के लिए अमृतसर से सुप्रसिद्ध पण्डित श्री काशीनाथ जी और उनके पुत्र अम्बादत्त को विशेषरूप से बुलाया गया। शास्त्रीय विधि से बड़े समारोह मे सारा कार्य सम्पन्न किया गया। मकान बन जाने पर उसके ऊपर के कमरों मे रहना शुरू कर दिया गया। यह मकान बहुत बड़ा और बहुत सुन्दर बनाया गया था। नीचे दुकान, उसके ऊपर बड़ी बैठक और बैठक के ऊपर रहने के कमरे व रसोई आदि की व्यवस्था थी। पीछे की ओर घरेलू मंदिर, रसोई घर और टट्टी आदि की व्यवस्था थी। पिता जी की साधु-संतों और महात्माओं में बड़ी श्रद्धा थी। उनको वे प्रायः भोजन आदि के लिए निमंत्रित किया करते थे। उनमे श्री सच्चिदानन्द नाम के संस्कृत के एक विद्वान साधु थे। आपको उनसे महिम्न स्तोत्र, गंगा लहरी और आदित्य हृदय आदि स्तोत्रों के पाठ पढ़वाये गये।

संवत् १९४५ मे रोकड़िये के ३ मास की छुट्टी जाने पर रोकड़ का सारा काम आपको सौंपा गया, जिसको आपने बड़ी होशियारी व सावधानी से किया। व्यापार, व्यवसाय निरन्तर फैलता गया। उसके लिए पिता जी को बम्बई, कलकत्ता और पंजाब आदि का दौरा प्रायः करना पड़ता था।

बीकानेर वापस

आपके छोटे भाई राव बहादुर श्री शिवरतन जी का जन्म संवत् १९४५ श्रावण सुदी ८ को कोठी के ऊपर के कमरे में हुआ। उसी वर्ष बुआ केसर बाई की लड़की सीता का भी जन्म हुआ। शिवरतन जी के ६ मास के हो जाने पर पिता जी सबको कराची से बीकानेर ले आये और यह यात्रा बहावलपुर से ऊँटों पर न करके मुल-तान, फिरोजपुर और अजमेर के रास्ते से की गयी। फिरोजपुर से रिवाड़ी होकर छोटी लाइन से अजमेर पहुँचे ही थे कि पिता जी को कारतारक कम्पनी का बम्बई पहुंचने का तार मिला। सब के बीकानेर जाने के लिए बैलगाड़ियों व ऊँट आदि की समुचित व्यवस्था करके और नौकरों आदि के साथ सब को रवाना करके पिता जी बम्बई चले गये। इस रास्ते में शिवनाथ सिंह नाम के डाकू का उन दिनों में बड़ा आतंक था। इसलिए परबड़े गोर के दो राज-पूत भी रखवाली के लिए साथ भेजे गये। उन्होंने बड़ा काम दिया। रास्ते में एक बार कुछ डाकुओं से जो सामना

हुआ तो वे उनकी पहचान के निकले और सबकी रक्षा हो गयी। फाल्गुन सुदी ३ को सकुशल भीनासार पहुँच गये। बड़े पिता श्री जगन्नाथ जी के दूसरे विवाह के कारण घर के सब लोग वहां मिल गये।

विवाह

बीकानेर पहुंचने पर आपके विवाह की चर्चा चली। आपकी सगाई श्री जुगल किशोर जी डागा के सुपुत्र श्री नवलकिशोर जी की पुत्री चम्पा उर्फ भत्ती बाई के साथ हो चुकी थी। उसकी आयु केवल ९ वर्ष की होने से ससुराल वाले विवाह के लिये सहमत नहीं थे। परन्तु दादी जी का अत्यन्त आग्रह होने से उनको सहमत किया गया। चचेरे भाई कन्हैयालाल जी की सगाई भट्टड़ों के यहां हुई थी। लड़की की आयु बड़ी होने से वे विवाह के लिए बहुत आग्रह कर रहे थे। इसलिए दोनों विवाह आषाढ़ सुदी ९ संवत् १९४६ को एक साथ करने का निश्चय किया गया। बड़े पिता शिवदास जी और जगन्नाथ जी अपना काम-काज अलग-अलग करने का निश्चय करके कलकत्ता गए हुए थे। उनको वहां से विवाह के निमित्त बुलाया गया। कराची से आपके फूफा श्री गोवर्धन दास जी मूंदड़ा और श्री शिवप्रताप जी मोहता बड़े उत्साह से विवाह में सम्मिलित होने के लिए बहावलपुर के रास्ते आये। मूंदड़ा जी को घुड़सवारी का बड़ा शौक था। वे सवारी की घोड़ी, घोड़ों की जोड़ी और एक घोड़ा गाड़ी साथ में ले आये थे; परन्तु सड़कों के अभाव में वह काम में नहीं आई। विवाह की तैयारियां बड़े उत्साह से की गयीं। उस समय की परिपाटी के अनुसार विवाह में वेश्या नृत्य भी हुआ और दो नामी वेश्याएँ उसके लिए बुलाई गयीं। विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ।

माता जी का स्वभाव और उसका प्रभाव

विवाह के बाद भी घर और स्कूल में पढ़ाई का क्रम जारी रहा। विष्णु-सहस्र-नाम और गोपाल सहस्र नाम का पाठ बीजराज व्यास से सीखा। माता जी का स्वभाव बड़ा शांत, सरल, सहृदय, सहनशील और दयालु था। बड़े लाड़-प्यार से वे बच्चों का लालन-पालन किया करती थीं। अपशब्द कहना तो दूर रहा वे कभी किसी को डाँटती या धमकाती तक नहीं थी। पढ़ने के लिए भी किसी पर कोई दबाव नहीं डालती थी। वे अत्यन्त धार्मिक वृत्ति की और आस्तिक आचार विचार की थी। रामसनेही साधुओं के सत्संग के कारण उन्होंने उनकी कंठी धारण की हुई थी। भजन-पूजन व नित्य नेम में वे कभी चूकती नहीं थीं, नरसी जी की हुन्डी, दानलीला और भगवान राम व कृष्ण के भजन वे नित्य बड़ी तन्मय होकर गाती थी। काम-काज करते हुए भी वे भक्ति के भजन गाती रहती थी। कार्तिक में तुलसी और महादेव पार्वती का व्याहला गाया करती थीं। उन गीतों को माता जी के मुख से सुनते हुए आपने याद कर लिया था। भीनासर के मुरली मनोहर के मंदिर के कथावाचक रुघजी व्यास माता जी को भागवत् की कथा सुनाया करते थे। कई बार भागवत् का पारायण करने से माता जी को उसकी सारी कथाएं याद हो गयीं थीं। चौमासे के दिनों में घर के पास ही तुलसीकृत रामायण की कथा दोपहर के समय हुआ करती थी। भजन भी गाये जाते थे। माता जी बड़े नियम से उसमें सम्मिलित हुआ करती थी और रामायण की सारी कथा व भजन उनको कंठाग्र हो गये थे। "हरे राम, हरे कृष्ण" की माला नित्य नियम से फेरा करती थीं। लाखों मालाएँ उन्होंने फेरी होंगी। देह में जितने रोम हैं उतनी मालाएँ फेरने की भावना को उन्होंने पूरा किया होगा।

माता जी की इस धार्मिक एवं सात्विक वृत्ति का आपके जीवन पर जो अचूक प्रभाव पड़ा वह स्पष्ट रूप में प्रगट हो चुका है। लेकिन, उस धार्मिक एवं आस्तिक वृत्ति में जो अंध भावना थी, उस पर आपका मन उन दिनों में भी बैठता नहीं था। आप भागवत के सम्बन्ध में रुघजी व्यास से प्रायः शंकाएँ करते रहते थे। हिरणाक्ष द्वारा पृथ्वी के समुद्र में डुबोने और बराह द्वारा उसका उद्धार किये जाने की कथा सुनने पर आपने प्रश्न

मोहता जी का २० वर्ष की अवस्था का चित्र संवत् १९५३।
आपके दाहिनी ओर सुगनचन्द ओझा और बांई ओर
पोरिया नाई खड़े हैं।
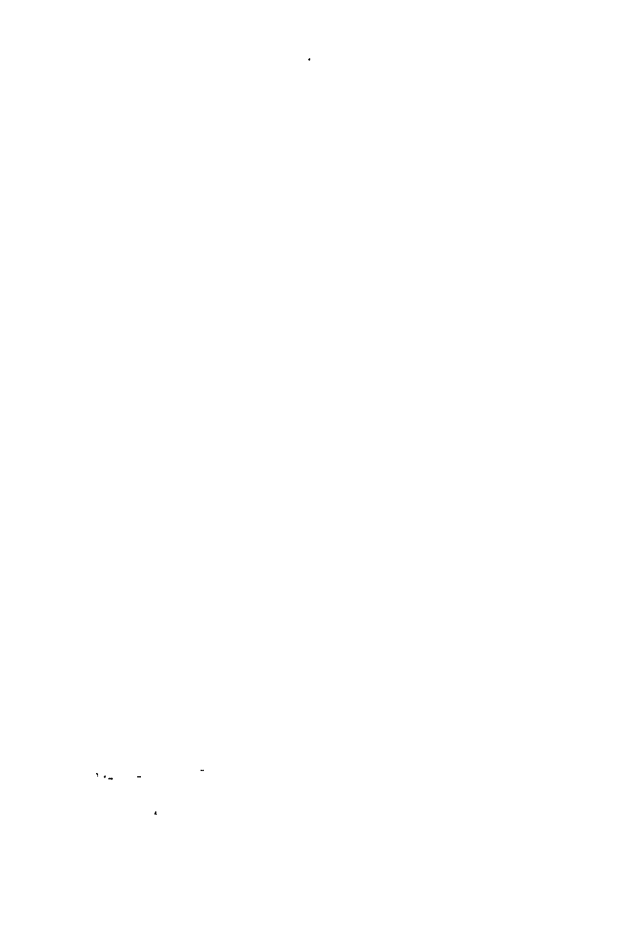
किया कि सारी पृथ्वी के जल में डूब जाने के बाद वराह आदि कहाँ टिके होंगे ? रुघजी के पास आपकी इस ओर ऐसी शंकाओं का एक ही उत्तर था कि धर्म के मामले में शंका करना पाप है। इस प्रकार आपकी शंकाएँ तो दबा दी जाती; किन्तु हृदय में पैदा होने वाला सन्देह दूर नहीं किया जा सकता था। आश्चर्य नहीं कि इसी सन्देह व आशंका ने अंध श्रद्धा के प्रति अविश्वास का रूप धारण कर लिया हो और वह आप की विवेकपूर्ण अंतर्दृष्टि को जगाने का निमित्त बन गया हो। माता जी से प्राप्त हुए संस्कारों का यह परिणाम आपके जीवन-निर्माण का मुख्य साधन बन गया।

तीसरी वार कराची

संवत् १९४७ भाद्रपद में तीसरी वार आप श्री गोवर्धनदास जी मूँदड़ा के साथ कराची गये। यह यात्रा भी बहावलपुर के रास्ते ऊँटों पर की गयी। कुछ दिनों बाद बड़े पिता लक्ष्मीचन्द जी के बड़े पुत्र कन्हैयालाल जी और जगन्नाथ जी के दूसरे पुत्र बुलाकी दास भी वहाँ आ गये। दिन में आप दफ्तर में काम सीखते, कपड़ों के नमूने व माल के स्टाक का हिसाब रखते और कारखारक कम्पनी के मैनेजर वर्दिंगटन के पास जाते-आते। श्री शिव-प्रताप जी मोहता के छुट्टी जाने पर आफिस की अंगरेजी रोकड़ का काम भी आपके सुपुर्द किया गया। दुकान की कच्ची से पक्की रोकड़ उतारने और खतावनी करने का काम भी आप को सौंपा गया। घर में अंगरेजी पढ़ने और उसका अभ्यास करने का क्रम जारी रहा।

श्री शिवप्रताप जी मोहता और श्री गोवर्धनदास जी मूँदड़ा को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने-सुनने का कुछ शौक था। खाली समय में बैठक में वे भागवत का शुक सागर, भारत सार, योग वाशिष्ठ, तुलसी कृत रामायण, आदि पढा करते थे। आप भी ये पुस्तकें पढ़ कर उनको सुनाते थे। आप को उनसे हिन्दी का कुछ अभ्यास हो गया। कई भजन कंठाग्र हो गये तथा रामायण, महाभारत, भागवत आदि की कथाएँ भी याद हो गयी। ठाकुर बाड़ी में आप नित्य नियम से महादेव जी की पूजा किया करते थे।

वीकानेर में

दो-ढाई वर्ष कराची में बिताने के बाद आप कन्हैयालाल जी और बुलाकीदासजी के साथ संवत् १९४६ कार्तिक वदी में बीकानेर लौटे। तब बीकानेर की रेलवे लाइन मारवाड़ जंक्शन जोधपुर होकर बन चुकी थी। इसलिए यह यात्रा मुलतान, अमृतसर, दिल्ली और मारवाड़ जंक्शन के रेलवे मार्ग से की गयी। पिता जी मस्से और भगन्दर के इलाज के लिए बीकानेर आये हुए थे। दीवाली से दो-एक दिन पूर्व बीकानेर पहुँचना हुआ। दीवाली मनाने के बाद परिवार के सब लोग कोलायत जी के मेले पर गये। वहाँ से लौटने के दो दिन बाद आपकी दादी जी का देहान्त हो गया। "सीचड़े" और तेरहवीं की मिठाई आदि खाने के कारण आपको आँव की शिकायत हो गई। फिर मलेरिया भी हो गया। कई महीने बीमार रहे।

वैशाख संवत् १९५० में छोटे भाई श्री मूलचन्द जी और उसी वर्ष माघ सुदी २ को आपकी पुत्री गुगनी बाई का जन्म हुआ।

श्री मेघनाथ बनर्जी नाम के एक बंगाली सज्जन से आप अंगरेजी का अभ्यास किया करते थे। "टाइम्स आफ इंडिया" पत्र आदि वह पढ़ाया करता था। अंगरेजी के साथ-साथ सामयिक विषयों की जानकारी भी उससे मिलनी शुरू हो गयी। बाबू जी जगन्नाथ जी की संगति से आपको विशेष लाभ मिला। वे दोपहर को दीवानखाने में बैठा करते थे। उनके पास सभी तरह के लोग आते और अनेक विषयों पर चर्चा वार्ता किया करते थे। यह सारी चर्चा वार्ता आप बहुत ध्यान से सुनते और उससे आपकी साधारण जानकारी खूब बढ़ी। उनका

मारणीका का पत्र-व्यवहार आप पढ़ते थे। वे उसमें बहुत ही निपुण थे। उससे भी आपने लाभ उठाया और पत्र आदि लिखने का आपको अच्छा अभ्यास हो गया।

कराची में

दो वर्ष इस प्रकार बीकानेर मे बिताकर आप अपनी माताजी, अपने दोनों छोटे भाइयों, बहन, स्त्री और शिशु कन्या के साथ संवत् १९५१ भादवा में कराची के लिए रवाना हुए। तब फुलेरा की लाइन बन चुकी थी। इसलिए यह यात्रा फुलेरा, रिवाड़ी, फिरोजपुर, मुल्तान और रावकर के रास्ते की गयी। कराची पहुँचकर आफिस में आपने मूंदड़ा जी के साथ काम करना शुरू किया। दुकान में खाता खताने का काम भी आपको सौंपा गया।

इस वर्ष कराची मे गहरी नालियाँ खोदकर गंदे पानी के गटर बिठाये जा रहे थे और उनके लिए खोदी जाने वाली नालियों का पानी पम्प करके सड़कों पर ही बहा दिया जाता था। उसके कारण कराची में मलेरिया व न्युमोनिया खूब फैला। कोठी में भी बहुत से लोग बीमार पड़ गये। आप भी अपने भाई-बहन सहित बीमार हो गये। ताप और तिल्ली की शिकायत रहने लगी। मूंदड़ा जी को भी निमोनिया ने आ घेरा। माता जी और पिता जी पूरी तरह स्वस्थ रहे। सवा वर्ष, कराची में रह कर संवत् १९५२ कार्तिक में अमृतसर, हरिद्वार और दिल्ली होते हुए आप बीकानेर लौट आये। दीवाली दिल्ली में मनायी गयी। इस बार के कराची निवास की मुख्य घटना मार्केट की नींव का रखा जाना था, जो कि कोठी के सामने वाले गोदाम के स्थान पर बनाया गया था। आपको समाचार पत्र और पुस्तकें पढ़ने का विशेष शौक था, इसलिए आप "डैन्सोहाल लायब्रेरी" में नियमित रूप से जाया करते थे। वहाँ रामायण व महाभारत अंगरेजी में, मिस्ट्रीज आफ लन्दन तथा अन्य समाचार पत्र आदि पढ़ते थे। हिन्दी पुस्तकें पढ़ने का भी आपको शौक था। श्री देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास चन्द्रकान्ता, नरेन्द्र-मोहनी, कुसुमकुमारी आदि भी पढ़ डाले और "चन्द्रकान्ता सन्तति" के ग्राहक बन गये। इन पुस्तकों से आपका भाषा-ज्ञान बढ़ने के साथ-साथ आपको दुनियादारी की भी अच्छी शिक्षा मिली।

बीकानेर में आमोद-प्रमोद का जीवन

बीकानेर में आपके मकान के उत्तरार्ध की ओर सटा हुआ घर श्री लक्ष्मीचन्द जी की निगरानी में बन रहा था। उसकी निगरानी आप करने लग गये। कोई विशेष काम न था। इसलिए अधिक समय गाने-बजाने, राग-रंग और विनोद में बीतने लगा। उन दिनों में आपकी मण्डली जोरदार थी। कराची से आप अपने साथ जो उपन्यास आदि ले आये थे उसको सारी मण्डली बड़े चाव से पढ़ने लगी। आपने इस मण्डली के साथ उन दिनों के आमोद प्रमोद का वर्णन जो स्वयं लिखा है वह यहाँ उद्धृत किया जाता है। आपने लिखा है कि "मेरी प्रकृति रजोगुण प्रधान, विनोदी और विलासी थी इसलिए रसिकता की मात्रा अधिक थी। बीकानेर में अधिक रहने से कुछ कुसंग के प्रभाव के कारण पथभ्रष्ट भी अनेक बार हुआ। पर सत्वगुण की मात्रा भी पर्याप्त थी। तमोगुण कम था इसलिए विचारशक्ति तेज थी। सावधानी और सतर्कता अधिक थी। कुमार्ग में मैं इतना नहीं उलझा कि जिससे मेरा पतन होकर बदनामी हो जाती और प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती। उस समय के अनुभव से आगे चलकर मुझे यह निश्चय हुआ कि हम लोगों के अधिक विश्वास-पात्र नौकर हमारे बालकों को अधिक बिगाड़ते हैं। विशेषकर ब्राह्मण देवता तो कोई विरला ही विश्वास का पात्र होता होगा। मेरी बराबरी वालों में भीखमचन्द्र राठी मेरा घनिष्ठ मित्र था। फतेलाल भइया और रामप्रताप पांडक हँसी मजाक के लिए उपयोगी थे। बांगूदास व्यास हाजिर जवाबी, प्रसंगानुसार कविताएँ, दृष्टान्त व चुटकुले आदि कहने में तथा विनोद की बातें करने में बहुत कुशल था। उसके कहे हुए चुटकुले, दृष्टांत और कविताएँ समय-समय पर प्रसंग आने पर मुझे अब भी

मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता — ४० वर्ष की आयु में

मित्र मंडली बीकानेर संवत् १९६० । बायें से छठे मोहता जी ।
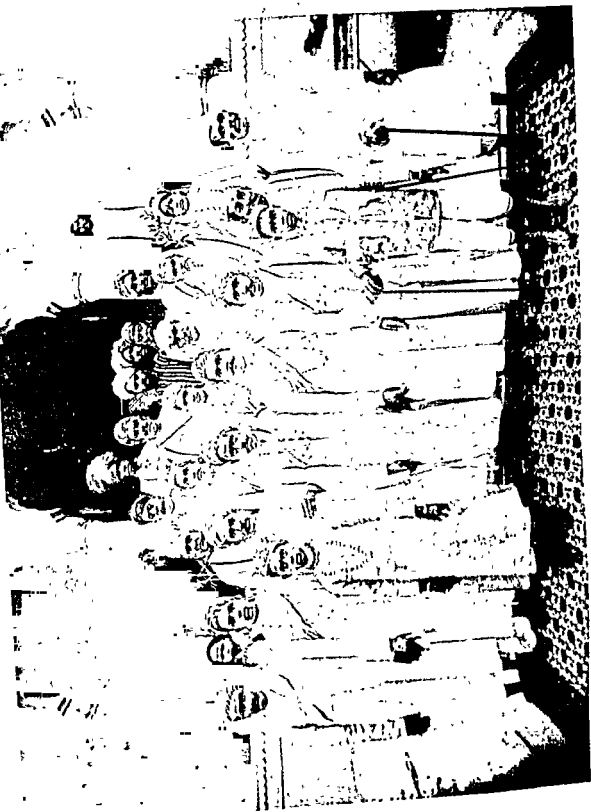
याद आती हैं। वह शायर था। उनके अतिरिक्त और भी कई लोग हमारी हाजरी भरने आया करते थे। हमारी मंडली के लोग अपने-अपने काम के लिए देशावरों में जाते थे पर होली और चौमासे के दिनों में सब बीकानेर आकर एकत्र हो जाते थे। होली के दिनो में गाने बजाने, हँसी-मजाक और विनोद की बहुत धूम रहती थी।

चौमासे के दिनों और होली के दिनों में गोठें बहुत किया करते थे। बदरी भैरव के स्थान में बक्सीराम व्यास नाम का एक बड़ा धूर्त स्वांग करके बैठा रहता था और कई तरह की सिद्धाइयों का पाखंड किया करता था। मुझे भी उन दिनों सिद्धाइयों मे विश्वास था। मैं उसके पास जाया करता और उसके जाल मे पड़ कर कई दिनों तक उससे ठगा जाता रहा। उसकी ठगाई और धूर्तता का भेद पीछे खुला। दोपहर के समय पूज्य बाबू जी जगन्नाथ जी के पास दीवानखाने मे मैं बैठा करता और देशावरों की आई हुई चिट्ठियाँ बाँचता। उनके उत्तर पूज्य बाबू जी की आज्ञानुसार मैं लिखता और जो कोई काम करने को कहते वह किया करता। सुबह और शाम के समय हम लोग पूरे स्वतंत्र थे। उसमें बड़ों की तरफ से हमें कोई रुकावट नहीं होती थी।"

यह लम्बा उद्धरण आपका लिखा हुआ केवल यह स्पष्ट करने के लिए दिया गया है कि आपके जीवन का जो उत्कर्ष हुआ उसके बीज आप में युवावस्था मे ही विद्यमान थे। यदि वे न होते तो साधारण मनुष्यों की तरह आप भी अपने जीवन में कोई विशेषता प्राप्त नहीं कर सकते थे और युवावस्था में फिसला हुआ आपका पहला ही कदम शतमुखी पतन का निमित्त बन गया होता। युवावस्था मे हर व्यक्ति के जीवन में एक द्वन्द्व होता है, जिसको देह और आत्मा का द्वन्द्व कहा जाता है। आमोद-प्रमोद, राग-रंग और भोग-विलास में उलझ जाने वाला देह-सम्बन्धी आवश्यकताओं का दास बन जाता है फिर उसका विकास नहीं हो सकता। जो उन पर विजय पा लेता है उसकी अंतर्दृष्टि जागनी प्रारम्भ हो जाती है और उसका ध्यान आत्मा की ओर लग जाता है। आपके संस्कारी जीवन का विकास इसी रूप में हुआ। आपकी दृष्टि अन्तर्मुखी होकर आत्मा की ओर लग गयी।

पहली कलकत्ता यात्रा

संवत् १९५४ मे बम्बई और कराची में प्लेग की शिकायत होने से आप अधिकतर बीकानेर ही रहे। भाद्रपद १९५४ मे आप और आपके चचेरे छोटे भाई कन्हैयालाल जी कलकत्ता गये। कलकत्ता की आपकी यह पहली यात्रा थी। इसलिए कलकत्ता देखने की बड़ी लालसा थी।

यज्ञोपवीत संस्कार

कलकत्ता आये अभी दो ही मास हुए थे कि आपका और आपके बड़े चचेरे भाई मदन गोपाल जी का यज्ञोपवीत संस्कार करने का निश्चय किया गया। आपके घर में यज्ञोपवीत पहनने की परिपाटी नहीं थी। सबसे पहले जगन्नाथ जी का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था और उनके बाद आप दोनो का कातिक सुदी ११ को पुष्कर राज में संस्कार होना निश्चित हुआ था। धर्मशाला की संस्कृत पाठशाला के पंडित परमानन्द जी श्रीमाली को अपने साथ लेकर पिताजी बीकानेर से रवाना हुए और आप दोनों उनको फुलेरा में मिल गये। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि पुष्कर मे प्लेग फैल जाने से यात्रियों का वहाँ जाना रोक दिया गया है। साभर के पास "देवयानी" तीर्थ पर ठीक मुहूर्त के दिन पंडित श्रीमाली जी से आप दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार यथाविधि करवा लिया गया। बीकानेर आकर पंडित जी से संध्या और गायत्री की दीक्षा ली। गणेश पूजन के साथ संध्या और गायत्री जाप करने का भी नियम शुरू हो गया, जिसको बड़े प्रेम और श्रद्धा से निभाया जाने लगा।

संवत् १९५६ में आपको पंजाब में गेहूँ की सट्टे फाटका बन्दनी की अनाज की खरीद के रुपये चुकाने

का सराफे का काम सौंपा गया। उसके लिए आप पंजाब आते-जाते रहते और गेहूँ के बाजार में तेजी आ जाने के कारण दो मास अमृतसर में रहे। कसूर, फिरोजपुर आदि मंडियों में भी आपका आना-जाना हुआ।

संवत् १९५७ में आपकी एकमात्र बहन जानकी बाई का देहान्त हो गया जिसकी माता जी को बहुत गहरी चोट लगी। उनको सांत्वना देने के लिए तीर्थ यात्रा करने का निश्चय किया गया। पिताजी, माता जी के साथ आप के दोनों भाइयों श्री शिवरतन जी, श्री मूलचन्द जी तथा आपकी पुत्री सुगनी बाई को साथ लेकर श्रावण मास में यात्रा के लिए विदा हुए। पूज्य लक्ष्मीचन्द जी भी सपरिवार साथ गये। आप अपनी पत्नी के साथ बीकानेर रहे। नाथद्वारा में कुछ दिन रह कर वे मथुरा व वृन्दावन में ब्रज-यात्रा में शामिल हुए। पिताजी जरूरी तार पाकर वहाँ से कराची चले गये और सबको बीकानेर लौटा दिया। थोड़े ही दिन बाद पिताजी बीमार होकर बीकानेर आ गये। वर्षा की अधिकता से फिरोजपुर के पास सतलज में बाढ़ आ जाने से रेल की पटरी टूट गयी थी। काफी रास्ता उनको पैदल पानी में से होकर पार करना पड़ा। इसके कारण पहले बुखार शुरू हुआ, फिर आँव की शिकायत हो गयी। उनकी बीमारी और कमजोरी के कारण लम्बे समय तक आपको बीकानेर में ही रहना पड़ा। सर्दियों में आप कन्हैयालाल जी के साथ पंजाब होते हुए कराची गये और वहाँ कुछ दिन रहकर हैदराबाद से लूनी तक बनी हुई नई रेल-लाइन से बीकानेर लौट आये। यह पहला अवसर था, जब कि सुबह १० बजे कराची से चलकर दूसरे दिन रात के ११ बजेबीकानेर पहुँचना हुआ था। इसलिए यह यात्रा बड़ी सुखद रही।

दिल्ली में

पर्याप्त वर्षा के कारण गेहूँ की फसल बहुत अच्छी हुई थी इसलिए राल्ढ़ि पैट्रिक का काम पंजाब के अलावा दिल्ली और उत्तर प्रदेश की मंडियों में भी फैल गया और अनेक स्थानों पर उसकी एजेन्सियाँ कायम हो गयी, उसके भुगतान का सारा काम आप लोगों के ही जिम्मे था। दिल्ली में भी नयी दुकान का खोलना आवश्यक हो गया। वहाँ चौते कटड़े में कपड़े की दुकान गोवर्धनदास मदनगोपाल के नाम से पहले ही चलती थी। इस काम के लिए सराफे की नयी दुकान खोलने के लिए आपको दिल्ली भेजा गया। आपने जौहरी बाजार में गोवर्धनदास गोकुलदास के नाम से दुकान खोली। हापुड़, मेरठ, मुजफ्फरनगर, देवबन्द, खतौली, सहारनपुर, गाजियाबाद, पानीपत, करनाल रोहतक आदि मंडियों में खरीद होने लगी। सब जगह गुमास्ते नियत किये गये। कुछ स्थानों पर आढ़-तियों की मार्फत भी काम होने लगा। लाखों का लेन-देन दिल्ली में होने लगा। बम्बई और कराची की हुण्डी का भाव दिल्ली में गिर जाने से रोकड़ रकम बम्बई से मँगायी जाने लगी। सवा लाख की रोकड़ लाने में रेलभाड़ा ठीक पड़ता था। इतनी बड़ी-बड़ी रकमें कई बार मँगायी गयी। दिल्ली के अलावा अमृतसर और पंजाब का काम भी आपको देखना पड़ता था।

माता जी का संकल्प

संवत् १९५८ भाद्रपद में श्री शिवरतन जी और श्री लक्ष्मीचन्द जी के पुत्र श्री सोहनलाल जी के विवाह एक साथ हुए। उनके लिए आप भी बीकानेर आये। विवाहों के बाद माताजी के साथ आप और आपकी पत्नी को बैल-गाड़ी पर राणीचा रामदेवजी के मेले पर जात देने के लिए जाना पड़ा। बाल्यावस्था में आपके गुंगा न अच्छा हो जाने से माता जी ने सपत्नीक आपकी जात देने का संकल्प किया था और तब तक बाएँ हाथ से खाने का नियम लिया था। वह संकल्प अब पूरा हुआ। रास्ते में डाकुओं का बड़ा भय था। इसलिए साथ में शस्त्रधारी राजपूत रखवाली के लिए गये और मड़गाँव से बन्दूकधारी एक थोरी (भील) को भी ले लिया गया। गाँव गोगड़ा और सिरड़ों के बीच डाकुओं ने ऊँटों पर पीछा किया। राजपूत तो डर गये किन्तु थोरी बन्दूक लेकर सामना करने को

तैयार हो गया। डाकू छोड़कर चले गये ; किन्तु आपकी पत्नी ऐसी भयभीत हो गई कि उसको बुखार और दस्त लगने लगे। जैसलमेर के बाप गांव पहुँच कर वहाँ के हाकिम से एक घुड़सवार को साथ ले लिया गया। उसको उन दिनों में "बोलाऊ" कहते थे। आप, माताजी और साथ के सुगना ओझा और पोरिया नाई के सिवाय बाकी सब इतने भयभीत थे कि यात्रा पूरी करनी बहुत भारी पड़ गयी। माताजी पत्नी को सदा छाती से लगाए रखती थी और बड़ी ढाड़स बँधाती रहती थीं। गहने उतार कर एक विश्वासी नौकर को दे दिये गये थे, जो काफी दूर रहकर पीछे पैदल चलता था। उसका नाम पुरोहित था। वह बड़ा निर्भीक और साहसी था। रामदेव जी की जात देकर सब लोग जब तक कोलायत वापस नहीं पहुंच गए तब तक भय दूर नहीं हुआ। बीकानेर पहुंच कर भी आपकी पत्नी बहुत दिन बीमार रही। इस यात्रा के इस विवरण से उन दिनों की असुविधाओं और कठिनाइयों को सहज मे समझा जा सकता है।

गुण प्रकाशक सज्जनालय की स्थापना

संवत् १९५८ माघ सुदी १३ को बीकानेर में सम्भवतः पहली सार्वजनिक संस्था की नींव डाली गयी। इसकी स्थापना का विशेष श्रेय आपको है। फतेसिंह, दीवान मोहता कुल के श्री जगन्नाथ जी के पुत्र श्री गिरधर लाल जी आपकी आयु के उदार विचारों के सज्जन थे। उनके आपके विचार खूब मिलते थे। एक दिन आपस मे यह चर्चा हुई कि युवक अपना सारा समय ताश, चौपड़ व गप-शप वगैरह में यों ही बिता देते हैं और कोई काम न होने से कुमार्ग में पड़ जाते हैं। इसलिए कुछ मित्रों से सलाह-मशवरा करने के बाद दोनों ने मिलकर इस पुस्तकालय की स्थापना की। पहले सभापति मोहतों के टिकाई श्री किशन सिंह जी बनाये गये। मन्त्री श्री गिरधर लाल जी और आप कोषाध्यक्ष बनाये गये। मोहतों के सब युवक और शहर के कुछ और लोग भी उसके सदस्य बने। चार आना मासिक चन्दा रखा गया। कुछ धनाढ्य लोग एक रुपया, दो रुपया मासिक भी देते थे। पुस्तकों के लिए विशेष चन्दा किया गया। पुस्तकें हिन्दी और संस्कृत की सब धार्मिक मँगायी गयीं। कारण इसका यह था कि सारे सदस्य कट्टर सनातनी थे और आप भी उन दिनो में कट्टर सनातनधर्मी थे। प्रातः नियम से मरुनायक जी तथा मदनमोहन जी के और शाम को लक्ष्मीनाथ जी के दर्शन करने जाया करते थे। श्रावण के सोमवार और शिवरात्रि आदि के दिनो में शिवबाड़ी, काशी विश्वनाथ जी और गोपेश्वर महादेव आदि के दर्शन किया करते थे। हिन्दी के कलकत्ता के पत्र "हिन्द बंगवासी" तथा "भारत मित्र", इलाहाबाद के साप्ताहिक "अभ्युदय" तथा मासिक "सरस्वती", बम्बई का "वेंकटेश्वर समाचार" और लखनऊ की मासिक पत्रिका "माधुरी" मँगाये जाने लगे। आपने मनुस्मृति, या यवल्क्य स्मृति, पाराशर स्मृति, धर्म सिन्धु, निर्णय सिन्धु तथा भर्तृहरि शतक और सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ पढ़ डाले। दर्शन भी आपने पढ़े परन्तु उनके सूक्ष्म विचारों में आपका मन नहीं लगता था। संस्था में आर्यसमाजी विचारों के भी कई सज्जन सदस्य थे।

इस संस्था के तत्त्वावधान में प्रति रविवार को व्याख्यान आदि होते थे और बोलने का अभ्यास किया जाता था। पंडित चिरंजीलाल जी गोस्वामी के अध्यापन में एक संस्कृत पाठशाला भी बनायी गयी। आपने भी संस्कृत का कुछ अभ्यास किया और लघु कौमुदी का पूर्वार्ध कंठ कर लिया। बाहर से भी पंडितों को व्याख्यान देने के लिए बुलाया जाता था। व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालु जी शर्मा के व्याख्यान बहुत पसन्द किये गये। पुस्तकालय का काम मोहतों के चौक में वृद्धिसिंह जी की प्रोल में शुरू किया गया। मंत्रीनाथ का झगड़ा होने पर जब मोहतों के दो भाईपे (दल) हो गये तब पुस्तकालय बाठियों के चौक में एक किराये के मकान में रखा गया। उसके बाद वर्षों तक श्री चतुर्भुज जी शिवरतन जी पूगलवालों के मकान में रहा। अन्त में १९९९-९८ में कोट दरवाजे के अन्दर उसका अपना भवन आपके उद्योग से बनवा लिया गया जहाँ वह अब तक

अपने पास भृगुसंहिता रखता था और उसके आधार पर सबकी जन्मपत्री तथा भविष्य आदि बताया करता था। पंडित गणेशदत्त जी आपको भी अपने साथ उसके पास ले गये। उसने दो दिन के लिए टाल दिया और दो दिन बाद एक जन्मपत्री दे दी। पिछली बातें उसने बहुत कुछ ठीक बता दीं परन्तु भविष्य की जो बातें बतायीं ठीक न निकलीं। जगन्नाथ जी के पुत्र बुलाकीदास की आयु उसने ७२ वर्ष बताई; परन्तु उनका ३० वर्ष की आयु में ही देहान्त हो गया। इससे आप इस परिणाम पर पहुँचे कि ये ज्योतिषी जिस शहर में जाते हैं वहाँ के पंडितों के साथ मिलकर बड़े-बड़े लोगों की जन्मपत्रियाँ और उनके बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। आपको यह भी सन्देह हो गया कि हमारे घर के ज्योतिषि और कहीं पंडित गणेशदत्त व्यास भी उससे मिल न गये हों। आपने लिखा है कि "ज्योतिषियों, पंडितों और सिद्धों की पोल, पाखण्ड और ठगाई की बातों का मैंने अपनी आयु में बहुत ठगे जाकर अनुभव प्राप्त किया। ये बड़े धूर्त व धोखेबाज होते हैं; लोगों को ठग-ठग कर खाते हैं।"

परिणाम यह हुआ कि ज्योतिषियों से भविष्य और मुहूर्त निकलवाने में आपकी कुछ भी श्रद्धा न रही। संवत् १९६४ में श्री लक्ष्मीचन्द जी और आपके पिता जी ने जब अलग-अलग होने का निश्चय किया तब लक्ष्मीचंद जी ने तो मुहूर्त वगैरह निकलवा कर आषाढ़ सुदी २ को कलकत्ता और बम्बई का काम शुरू किया। और आपने मोतीलाल गोवर्धनदास के नाम से दीवाली के दिन बिना मुहूर्त निकलवाए ही बहियों का पूजन वगैरह कर लिया। बाद में पता चला कि उस दिन चन्द्रग्रहण भी था, जिसका उल्लेख पंचांग में नहीं किया गया था। दोनों फर्मों का काम कैसा चला यह बताने की आवश्यकता नहीं।

उसके बाद काम-काज के सिलसिले में आप कई मास तक कराची में रहे। दोनों छोटे भाई श्री शिवरतन जी और श्री मूलचन्द जी भी कराची आ गये। तीनों भाई आपस में खूब मिलजुल कर एक साथ रहने लगे। छोटा भाई मूलचन्द बड़ा स्वस्थ और हृष्टपुष्ट था। संवत् १९६५ भादवें में आप दोनों भाइयों को कराची छोड़कर बीकानेर आ गये। पीछे मूलचन्द को बुखार रहने लगा और वह भी बीकानेर आ गया। कुछ दिन बाद उसके स्वास्थ्य-लाभ करने पर पिता जी माता जी और मूलचन्द को रायलीक आसोज सुदी ६ को बीकानेर से कराची ले गये। जाने का मुहूर्त निकलवाया गया और सब विधि-विधान करके पिता जी रवाना हुए। उन दिनों में विदा होने के समय गुड़ के लड्डू, नारियल और पानी का लोटा हाथ में लेकर कमर बांधकर, किसी सुहागिन बहन-बेटी को सामने बुला कर घर से विदा होने की विधि की जाती थी। सब विधि-विधान यथावत् की गयी।

श्री हरकिशन व्यास नाम के एक पंडित पर पिता जी की बड़ी श्रद्धा थी। पिता जी ने सैसोलाव के तालाब पर हरकिशन मोहता की बगीची में उसको बरणी बैठाया था। उसकी पूजा की सजावट बहुत ही सुन्दर थी। पिताजी ने आपको आदेश दिया था कि तुम प्रतिदिन उसके दर्शन किया करना और बरणी की समाप्ति पर पूर्णाहुति आदि देकर सब विधियाँ पूरी कराना। वैसा ही किया गया।

छोटे भाई का देहावसान

कराची गये एक मास भी पूरा नहीं हुआ था कि मूलचन्द को सन्निपात ज्वर हो गया और आपको कार्तिक सुदी १० को उसकी सख्त बीमारी का तार मिला, जिसमें तुरन्त कराची पहुँचने को लिखा गया था। उस समय आपकी पत्नी भी बहुत बीमार थी। पिताजी के विदा होने के समय बनाये गये गुड़ के लड्डू खाने के कारण पेट में लाग होकर बहुत सख्त दर्द रहने लगा था। कई मास तक वैद्यों और डाक्टरों का इलाज करवाया गया जिससे आराम नहीं हुआ अंत में रघजी व्यास की बताई हुई दवा अजवायन, दाना मेथी, चन्दलिया, हरड़, गोंद, संचल लूण तथा गुड़ का काढ़ा दिया गया और वे ठीक हो गयीं।

अपनी पत्नी के अस्वस्थ होने पर भी आप कराची के लिए रवाना हो गये। गाड़ी रात को २ बजे
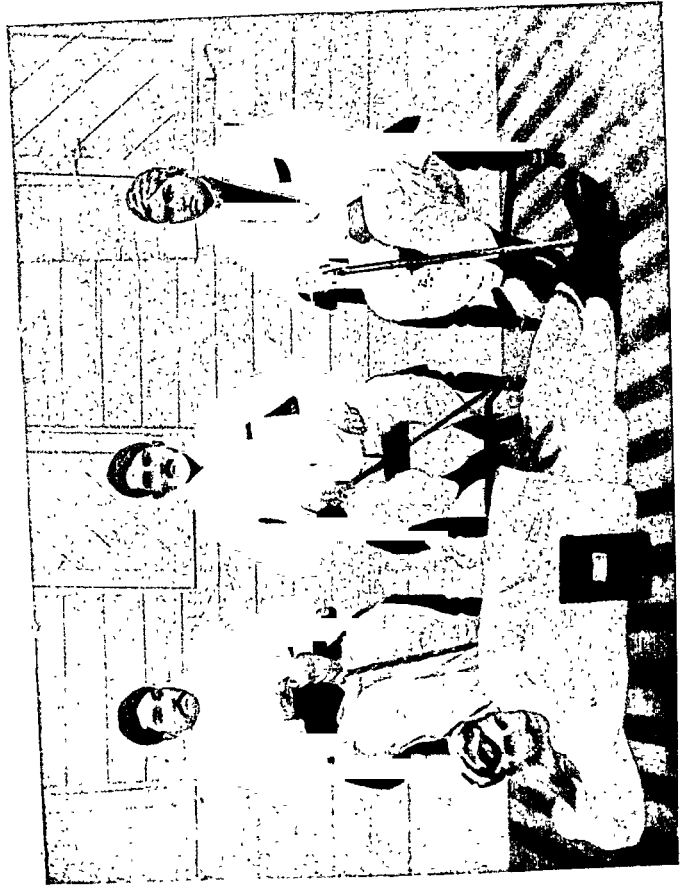
बांए से दांए—श्री शिवरतन जी मोहता, श्री रामगोपाल जी मोहता और स्वर्गीय श्री मूलचन्द जी मोहता,
लेटे हुए श्री मथुरादास जी मोहता, कराची संवत् १९६४।
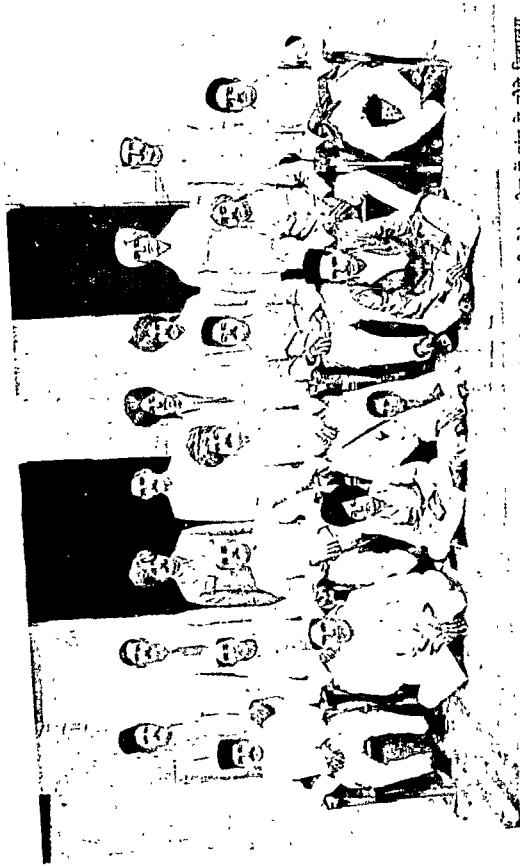
मोहता मूलचन्द विद्यालय बीकानेर के शिक्षकों के साथ मोहता जी (दूसरी पंक्ति बांए से तीसरे) : बीच में बांए से चौथे विद्यालय के तत्कालीन मंत्री ठाकुर जुगलसिंह जी खीची बार-एट-ला।

चलती थी ; परन्तु आप रात को ११ बजे ही गाड़ी में जाकर सो गये। उस दिन सुबह वायसराय की स्पेशल आने वाली थी जिसके कारण आपकी गाड़ी सवेरे ६ बजे रवाना हुई ; परन्तु मेड़ता रोड ४ घण्टे न ठहरकर उसने लूणी में दूसरी गाड़ी को पकड़ लिया। रास्ते में सुरपुरा के स्टेशन पर जगन्नाथ जी और लक्ष्मीचन्द जी से मुलाकात हुई तब वे भी मूलचन्द की बीमारी का हाल सुनकर बड़े चिंतित हुए। वे दोनों कूचामन से किशनलाल जी कावरे की मृत्यु के मोकान से लौट रहे थे। लूणी से समदड़ी के रास्ते तक आपको जंगल में बहुत दूर तक आग जलती हुई दीख पड़ी। मन पहले ही से विक्षिप्त था। तरह-तरह के अनिष्ट की कल्पना कर आप और भी अधिक विक्षिप्त होने लगे। साथ ही यह भी सोचने लगे कि यदि कहीं मूलचन्द का स्वर्गवास हो गया तो क्या किया जाना चाहिए ? "गुणप्रकाशक सज्जनालय" की स्थापना के समय से आपके हृदय में समाज-सुधार की भावना पैदा हो चुकी थी। आपने तै किया कि उसकी स्मृति में ऐसा कोई काम किया जाना चाहिए जिससे लोगों का भला हो और उसका नाम भी अमर हो जाय। गिरधर लाल जी मोहता तथा गणेशदत्त जी व्यास के साथ बीकानेर की पिछड़ी हुई अवस्था को सुधारने के सम्बन्ध में प्रायः चर्चा हुआ करती थी और विद्या-प्रसार के लिए कुछ न कुछ करने का विचार किया जाता था। यह भी सोचा जाता था कि शहर में मृत्यु के अवसर पर जो लाखोंरुपये "तीन घड़े" के ब्राह्मण-भोजन में प्रति वर्ष खर्च होते है वे विद्या प्रचार में क्यों न लगाए जायें ? आपके मन में इसी तरह के सकल्प-विकल्प उठते रहे और आपने निश्चय कर लिया कि मूलचन्द के स्वर्गवास के बाद पिता जी को समझा कर तीन घड़ों का भोजन नहीं किया जाय। उस पर खर्च होने वाली रकम में कुछ और मिलाकर उसकी स्मृति में एक विद्यालय की स्थापना की जाय।

कराची स्टेशन पहुँचे तो स्टेशन पर घर का कोई आदमी नहीं मिला। पिताजी को सत्यनारायण जी के मन्दिर में कथा सुनाने वाले प० सुखदेव जी मिले तो उनसे पहले दिन कार्तिक सुदी ११ की शाम को मूलचन्द के देहावसान का दारुण समाचार आप को मिला।

कोठी पर पहुँचे तो सब शोकाकुल थे। पिता जी रोते हुए मिले और अत्यन्त उद्विग्न मन से उन्होंने उसकी मृत्यु का वर्णन किया। माता जी कुछ संभली हुई थीं। उसके बाद के बारह दिन के क्रिया कर्म निपटा कर तेरहवें दिन भाई शिवरतन और मूलचन्द की विधवा पत्नी के साथ आप बीकानेर लौट आए।

मोहता मूलचन्द विद्यालय की स्थापना

बीकानेर से कराची जाते हुए आपने यह संकल्प कर लिया था कि मूलचन्द की मृत्यु के बाद तीन घड़ा न करके उसकी स्मृति में विद्यालय की स्थापना की जायगी और तीन घड़े के भोज पर खर्च की जाने वाली धन-राशि विद्यालय के काम मे लगाई जायगी। कराची से चलते हुए पिता जी को आपने इस संकल्प से सहमत कर लिया और विद्यालय की स्थापना करने के लिए उनकी अनुमति प्राप्त कर ली। उस समय इस काम के लिए २५,००० रु० खर्च होने का अनुमान था। पंडित गणेशदत्त जी व्यास ने आप के विचार का समर्थन किया और पूरा सहयोग देने का विश्वास दिलाया। ब्राह्मणों के लड़कों को सब से अधिक शिक्षा की आवश्यकता थी। इस-लिए उनके मुहल्ले के पास विद्यालय खोलना निश्चित किया गया। शहर के कुछ प्रतिष्ठित लोगों की कमेटी बनाने का विचार किया गया। श्री केदारनाथ जी डागा और श्री बदनचन्द जी दम्माणी जब शोक प्रकट करने आए तब उनसे भी चर्चा की गई और वे कमेटी में सम्मिलित होने को सहमत हो गए। मुन्शी कम्मनलाल जी वकील ने भी अपनी सहमति दे दी। श्री मदनगोपाल जी मोहता ने आप के विचारों का समर्थन किया। ब्राह्मणों में पं० गणेशदत्त जी व्यास और श्री विजयशंकर जी के पिता पं० गेरमल जी व्यास ने भी कमेटी मे सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। सात-आठ सज्जनों की एक कमेटी बना दी गई। दरबार हाई स्कूल के हेडमास्टर श्री

कृष्णशंकर जी तिवारी बड़े ही सज्जन और विद्या-प्रेमी थे। श्री शिवरतन जी उनसे पढ़े थे। उन्होंने प्रबन्ध में पूरा सहयोग दिया। उनकी सम्मति से श्री कस्तूरचन्द जी व्यास मुख्याध्यापक नियुक्त किए गए। नए शहर में श्री रिख-नाथ जी वागड़ी के पुत्र श्री रतनलाल जी से उनकी कोटड़ी माँगकर माघ सुदी ५ को "मोहता मूलचन्द विद्यालय" की स्थापना हुई। श्री कृष्णशंकर जी तिवारी से उसका उद्‌घाटन करवाया गया। जिसमें हिन्दी, अंगरेजी, वाणी-का हिसाब-किताब और महाजनी वहीखाते के काम की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। हिन्दी के अध्यापक पं० वसुदेव जी गोस्वामी और वाणीके के श्री लालचन्द जी श्रीमाली नियत किए गए। ब्राह्मणों के बालकों को आकर्षित करने के लिए ४ आना मासिक छात्रवृत्ति रखी गई। ऊपर की कक्षाओं में आठ आना, बारह आना और एक रुपया छात्रवृत्ति दी जाती थी। सब पुस्तकें और पाठ्य सामग्री मुफ्त दी जाती थी। यह सब विद्यार्थियों को विशेषतः ब्राह्मणों के बालकों को प्रोत्साहन देने के लिए किया जाता था। ब्राह्मणों के ये बालक ४ आना महीना पर महाजनों के यहाँ उनके बच्चों को खेलाने आदि के काम किया करते थे और उनके यहाँ होने वाले जीमनवार व दान-दक्षिणा आदि पर गुजारा किया करते थे, इसी कारण उनमें अनेक दुर्व्यसन पैदा होकर आपस में लड़ाई-झगड़ा वगैरह भी होता रहता था। वे वेकारी या आवारागर्दी में अपना समय बिताया करते थे। उनको रास्ते पर लाने के लिए यह पहला प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया था। परन्तु उन्होंने इसका भयानक विरोध किया। पिता जी ने जिस पं० हरकिशन व्यास से अनुष्ठान करवाया था, जो मूलचन्द की मृत्यु के कारण पूर्णाहुति के बिना बीच में ही रह गया था, वही पण्डित इस विरोधी आन्दोलन का प्रमुख नेता था। इन लोगों ने सनातनधर्म के नाम पर प्रगति और उन्नति के इस काम का भी कड़ा विरोध किया। इस निन्दा और विरोध की तनिक भी परवाह न कर आप विद्यालय के काम में लगे रहे और उसकी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति होती रही। एक-दो वर्षों में मिडिल तक पढ़ाई होनी शुरू हो गई और कुछ वर्षों के बाद यह हाई स्कूल बन गया और उसको सरकारी सहायता मिलने लग गई। श्री कस्तूरचन्द जी व्यास के बाद श्री गणेशदत्त जी व्यास मुख्याध्यापक नियत किए गए। फिर हाई स्कूल बनने के बाद अंग्रेजी के जानकार को मुख्याध्यापक बनाना आवश्यक हो गया।

विद्यालय का अपना भवन

कराची से पिताजी आए, तो स्कूल की प्रगति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कराची में एक लाख का मकान खरीद कर उसकी आमदनी से स्कूल को चलाने का स्थायी प्रबन्ध कर दिया और आर्थिक चिन्ता से उसको मुक्त कर दिया। कुछ समय बाद सम्वत् १९६८ में नत्थूसर दरवाजे के अन्दर रघुनाथ सागर कुएँ की ओर जाने वाले रास्ते पर विद्यालय का अपना विशाल भवन बना दिया गया जिसमें वह अभी चल रहा है। सम्वत् १९७७ में राज्य से नये शहर में जस्सूसर दरवाजे के भीतर ८००० गज जमीन लेकर लक्ष्मीचन्द जी के पुत्रों ने २० हजार रुपया लगा कर उनकी स्मृति में विद्यालय के साथ छात्रावास भी बनवा दिया, जिस पर उनके नाम का पत्थर लगा दिया गया। महाराज गंगासिंह जी की सम्वत् १९९६ में हुई रजत जयन्ती और सम्वत् १९९४ में हुई स्वर्ण जयन्ती पर विद्यालय की ओर से उनको मानपत्र भेंट किए गए। उन्होंने विद्यालय की बड़ी प्रशंसा की। इस विद्यालय से निकले हुए अनेक छात्र देशान्तरों में गुमास्ते, मुनीम और राज्यों के उच्च पदों पर काम करने में सफल हुए।

बीकानेर में निजी रूप से कायम किया गया यह पहला सार्वजनिक विद्यालय था। इससे न केवल आप के विद्या-प्रेम एवं सार्वजनिक भावना का ही पता चलता है; परन्तु समाज सुधार सम्बन्धी उत्कट क्रान्तिकारी भावना का भी विशेष परिचय मिलता है। तीन बड़ों की जीमनवार को समाप्त करके उस पर खर्च की जाने वाली विपुल धन राशि का विनियोग सार्वजनिक सेवा एवं विद्या-प्रचार के लिए किया जाना आप के असाधारण साहस एवं अद्‌भुत धैर्य का सूचक था। ब्राह्मणों की ओर से जीमनवार और उसकी दक्षिणा बन्द होने के कारण

आप पर जो गर्हित एवं वीभत्स आक्षेप किए गए उनको सहन करना साधारण बात नही है। लोग जलूस बनाकर आपकी निन्दा के गीत गाते हुए निकलते थे। शहर की दीवारों पर आपके लिए गन्दे से गन्दे शब्द लिखे जाते थे। घर के दरवाजे पर जाकर भी विरोधी लोग गन्दे प्रदर्शन करते थे। आप हँसकर रह जाते थे और आपने कभी किसी के विरुद्ध कोई कारवाई नही की। आप ने शान्ति, धैर्य और सहन-शक्ति का अपूर्व परिचय दिया। अपने विचारों तथा भावना पर आप चट्टान की तरह अडिग रहे। हाई स्कूल बनने के बाद ठाकुर श्री युगलसिंह जी खींची ने कई वर्षों तक और उनके बाद श्री गणेशदत्त जी व्यास के सुपुत्र श्री अनन्तलाल जी व्यास ने विद्यालय के अवैतनिक मन्त्री के पद पर बड़ी योग्यता तथा तत्परता के साथ काम किया।

सम्वत् २००७ में विद्यालय उसकी कुल सम्पत्ति के साथ राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग को सौंप दिया गया और यह शर्त कर दी गई कि विद्यालय का नाम और छात्रावास पर लगाया गया श्री लक्ष्मीचन्द जी का स्मृति-चिन्ह यथावत् बने रहेंगे। इसका मुख्य कारण देश का विभाजन हो जाने से कराची के मकान की आमदनी का बन्द हो जाना था।

संगीत विद्यालय

दूसरा बड़ा काम विद्या-प्रसार के सम्बन्ध में आपने जो किया वह था संगीत की शिक्षा का। संगीत का रूप हमारे देश में बहुत विकृत हो चुका था। वह या तो अश्लीलता का विषय बनकर त्याज्य समझा जाने लग गया था अथवा निवृत्ति के मार्ग को अपनाने वाले साधु-सन्तों के लिए समझा जाकर गृहस्थियों के लिए वर्ज्य माना जाता था। वह उन वेश्याओं का धन्धा बन गया था जो समाज में अत्यन्त हीन दृष्टि से देखी जाती थी। राज प्रासादों और धनिकों की अट्टालिकाओं में वह केवल मनोरंजन एवं विलासिता का विषय बन गया था। धार्मिक एवं सामाजिक समारोहों की दृष्टि से भी वह मन्दिरों अथवा साधु सन्तों तक ही सीमित रह गया था। उसका जनता के सार्वजनिक एवं सांस्कृतिक जीवन के साथ कोई सम्पर्क न रहा था। आप में संगीत के लिए अभिरुचि का प्रारम्भ धार्मिक समारोहों और साधु सन्तों की संगति से हुआ था। माता जी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। वे न केवल पूजा पाठ के समय, किन्तु घर-गृहस्थी के अन्य काम काज करती हुई भी भक्ति-प्रधान गीत, भजन व लावणियाँ गाती रहती थी। माता जी के धार्मिक स्वभाव से आप में संगीत के संस्कार पैदा हुए थे। संगीत आप के दैनिक जीवन का प्रधान अंग बन गया। आपने कराची मे महाराज स्वामीदास गवैये से हारमोनियम पर कुछ रागों व सरगम आदि का अभ्यास किया था। बीकानेर में प्रायः सभी मन्दिरों मे एकादशी आदि के अवसरों पर रात को जागरण करके गाने बजाने तथा कीर्तन आदि की पुरानी प्रथा थी। आप के कुल परम्परागत मन्दिर मल्लायक जी में साधू जी गोस्वामी रात जाग करके राग-रागिनी के भजन गाया करते थे। इसी प्रकार श्री रघुनाथ जी के मन्दिर में आप के पड़ोसी श्री हरिराम जी ओझा, श्री चेलाराम स्वामी और श्री बुलाकीदास व्यास राग-रागिनी के भजन गाया करते थे। दूसरे मन्दिरों मे भी राम घमण्ड के भजन गाए जाते थे। आप अनेक बार रघुनाथ जी व मल्लायक जी के मन्दिरों में भजन सुनने जाया करते थे। आप की धर्मशाला में गणेश जी के मन्दिर मे भी गणेश चतुर्थी पर इसी प्रकार का जागरण होकर राग रागिनियाँ गाने का कार्यक्रम रहता था। उसमें हरीराम जी की मण्डली शामिल हुआ करती थी। उनके स्वर्गवास के बाद श्री साधू जी गुसाँई आने लगे। आप भी रात को जागरण करके गाने बजाने व कीर्तन के कार्यक्रम मे सम्मिलित हुआ करते थे। इससे आपको अनेक राग-रागिनियाँ गाने का अभ्यास हो गया। इस प्रकार आप के हृदय में बीकानेर में संगीत-विद्या के प्रचार का विचार पैदा हुआ।

इस बीच संवत् १९५९ मे सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्री विष्णु दिगम्बर जी का बीकानेर में शुभागमन

हुआ। आपकी धर्मशाला में वे एक मास तक ठहरे और संगीत का प्रतिदिन कार्यक्रम चलता। शहर के सभी संगीतज्ञ उसमें सम्मिलित होते। संगीत की बड़ी धूम रहती। आपका उनसे परिचय हुआ। सबका यह आग्रह था कि बीकानेर में संगीत की शिक्षा की कुछ व्यवस्था की जानी चाहिए। संवत् १९६० में आपने अपने चौक में श्री चतुर्भुज जी मोहता के मकान का ऊपर का कमरा किराये पर लेकर वहाँ संगीतशाला स्थापित कर दी। साभूजी गोस्वामी उसके शिक्षक नियुक्त किए गए। उसमें गाना, तबला, हारमोनियम, सितार आदि की नियमित शिक्षा दी जाने लगी। गोसाँइयों के बालकों में संगीत का विशेष प्रचार होने से वे अधिक संख्या में उससे लाभ उठाने लगे। मोहता चिकित्सालय का भवन बन जाने के बाद उसकी तीसरी मंजिल में संगीतशाला लाई गई और साभूजी गुसाँई के जीवित रहने तक वह चलती रही। शहर में जब भी कभी बाहर का कोई संगीतज्ञ अथवा नृत्यकार (कथक) आता तो उसका विशेष कार्यक्रम शाला की ओर से रखा जाता। शहर के सभी गुणीजन उसमें निमंत्रित किए जाते। स्थानीय संगीतज्ञों के कार्यक्रम का भी समय-समय पर आयोजन किया जाता। आपकी संगीत और नृत्य में जो रुचि थी उसी का यह परिणाम था।

आपने स्वयं इस शाला में संगीत का अभ्यास किया और अनेकों ने उससे विशेष लाभ उठाया। कुछ होनहार कलाकारों को आप छात्रवृत्ति भी दिया करते थे। उनमें श्री गोपाल आचार्य एक थे जो कुछ विक्षिप्त हो जाने से अपने को लक्ष्मीनाथ कहते थे। ये शाला के पहले विद्यार्थी थे और बहुत ही कुशाग्र बुद्धि तथा तीव्र स्मरण-शक्ति रखते थे। इनको संगीत के साथ-साथ चित्रकला का भी बड़ा शौक था। इनको कलकत्ता भेजकर आपने चित्रकला का विशेष अभ्यास करवाया। मोहता मूलचन्द विद्यालय के ये प्रथम छात्रों में थे। हीरालाल ओझा ने भी इसी शाला में गाना-बजाना सीखा था। इस प्रकार होनहार युवकों पर अपने हजारों रुपया खर्च करके उनको कलाकार बनाने में विशेष सहायता प्रदान की। संगीत में आपकी इस अभिरुचि का लाभ यह हुआ कि अश्लील गीतों का स्थान समाज-सुधार सम्बन्धी और भक्ति रस प्रधान गीतों को मिल गया। अपने स्वयं ऐसे अनेक गीतों की रचना की और आपके ही कारण जनता में उनका प्रसार हुआ।

कलकत्ता का सामाजिक जीवन

संवत् १९६७ में अपने व्यापार व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता आने पर वहाँ के सामाजिक जीवन के प्रति आपके चित्त में बहुत ग्लानि उत्पन्न हुई। मारवाड़ी और खत्री युवकों में विलासिता चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। वेश्याओं को रखैल या नौकर रखना बड़ी शान समझा जाता था। बगीचों में नाच मुजरा वगैरह जब होता तो सैकड़ों युवक उसमें सम्मिलित होते। आपके बड़े पिता शिवदास जी के स्वर्गवास के बाद कलकत्ता में जब नौसर और ब्राह्मण भोजन हुआ था तब गंगा बिशन उर्फ हरसा महाराज से आपकी जान-पहचान हो गई थी। वह पुष्करणा ब्राह्मणों का पंच था। वह बड़ा विलासी था और उसने एक मुसलमान वेश्या रखी हुई थी। वह शेयर बाजार में दलाली में कुछ अच्छा कमा लेता था और सारा विलासिता में फूँक देता था। आमाराम मोहता नाम का एक आदमी आपकी हाजरी में रहता था। उसका सम्बन्ध विलासी लोगों के साथ था। दुलीचन्द अग्रवाल के बगीचे में उसकी रखैल वेश्या ने सब गाने-बजाने वाली वेश्याओं के नाच-गान का आयोजन किया था। आमाराम मोहता और हरसा महाराज के कहने पर आप भी उसमें सम्मिलित हुए। उसका विवरण आपने स्वयं लिखा है। उससे कलकत्ता के उन दिनों के सामाजिक जीवन और उसकी आपके हृदय पर जो प्रतिक्रिया हुई उसका अच्छा परिचय मिलता है। आपने लिखा है कि "उसमें कई विलासी खत्री और मारवाड़ी आए थे। गाने-बजाने के साथ पान खाने और शरबत आदि पीने की भरमार थी। जिन गिलासों में वे लोग शरबत पीते थे उन्हीं में वेश्याएँ भी पीती थीं। पान की पीक-दानियां सभी उठाकर उनमें पीक थूकते थे। आचार-विचार का कुछ भी व्यवहार नहीं करते थे। इस तरह

के भ्रष्टाचार से मुझे बहुत ग्लानि हुई। उनके आपस में हँसी-मजाक और असभ्य व्यवहार से भी मुझे बहुत घृणा उत्पन्न हुई। इसलिए मैं तो घण्टे-दो घण्टे ठहर कर घर आ गया। वे लोग रात-भर वहाँ रहे। यह दृश्य देखकर धर्म का ढोंग करने वाले ब्राह्मण और वैश्यों के दुराचारों और भ्रष्टाचारों की पोल मैंने प्रत्यक्ष देख ली। इन लोगों के ऊपरी दिखाने की धर्मान्धता और पवित्रता एक बड़ा पाखण्ड है। वास्तव में ये लोग घोर नास्तिक और भ्रष्टाचारी होते है।"

आपके हृदय में विद्यमान सतोगुण प्रधान वृत्ति का परिचय आपके इन शब्दों से मिलता है। अपनी इस वृत्ति के ही कारण आप शतमुखी पतन से बाल-बाल बच गए और सासारिक व्यवहार मे आपकी स्थिति प्रायः जल मे कमल-पत्र की सी रही। उसका दुष्प्रभाव आपने अपने पर पड़ने नहीं दिया।

साम्प्रदायिक दंगा

मगसर के महीने में कलकत्ता में भीषण साम्प्रदायिक दंगा हुआ, जिसका मुख्य क्षेत्र चितपुर रोड से पूर्व की ओर हैरिसन रोड और जकरिया मस्जिद के आस-पास था। आपके मकान के चारों तरफ मारवाड़ियों की विशेष आबादी थी और उन पर ही मुसलमानों की आँखें थीं। वे बड़े भीरु और निर्बल थे। किसी में मुसलमानों का सामना करने का साहस नही था। उनके मकानों में रहने वाले जमादार भी कुछ साहस न दिखा सके। मकानों के दरवाजे बन्द करके सब भीतर दुबक कर बैठ गए। जो कोई बाहर रह गया वह बुरी तरह मारा-पीटा गया। आपकी पत्नी अपनी पुत्री सुगनी बाई के साथ अपने पीहर बांसतल्ला स्ट्रीट से घोड़ागाड़ी पर लौट रही थीं। सड़क पर मुसलमानों की अपार भीड़ जमा थी। आप अपने मकान के बराण्डे से सारा दृश्य देख रहे थे। नीचे मकान के फाटक बन्द थे। गाड़ी का कोचवान मुसलमान था। गाड़ी आते देखकर आपके मन में भय और शंका कुशंकाएँ पैदा हुईं। परन्तु कोचवान ने गाड़ी को लाकर जैसे फाटक पर खड़ा किया वैसे ही अकस्मात् जमादार ने फाटक खोला और वे भीतर आकर ऊपर चढ़ गईं। फाटक बन्द कर लिया गया। मुसलमान उनको देखकर लपके परन्तु कुछ कर न सके। मकान के नीचे ईस्ट बंगाल रेलवे का बुकिंग आफिस था इसलिए वह हमले से सुरक्षित रहा। पुलिस दंगे को न दबा सकी तो फौज बुलाई गई। दूसरे दिन दोपहर को दंगा कुछ शांत होने पर रिखनाथ जी बागड़ी की बाड़ी से श्री रतनलाल बागड़ी ने अपनी गाड़ी फौज के सिपाहियों के साथ आप लोगों को लेने के लिए भेजी। आप पत्नी और पुत्री सहित उसमें बागड़ी जी के यहाँ चले गए और कुछ दिन के बाद बीकानेर चले गए।

कराची में

बीकानेर से आप कराची चले गये। यहाँ आपको डफरिन अस्पताल की कमेटी का सदस्य और आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। आप वहाँ हवा बन्दर के बंगले में रहते थे। यह पहले सोनबागा पारसी से किराये पर लिया गया था और सम्वत १९६९ में खरीद लिया गया। यहाँ से सम्राट् पंचम जार्ज के दिल्ली दरबार मे सम्मिलित होने आए और कराची मे हुए उनके दरबार में भी सम्मिलित हुए। गवर्नमेंट हाउस में होने वाले सभी समारोहों मे आपको निमन्त्रित किया जाता था।

कलकत्ता में और पहला विश्वयुद्ध

सम्वत् १९६७ के बाद आपने व्यापार व्यवसाय के सिलसिले में दिल्ली, कानपुर और कलकत्ता आदि के कई दौरे किए। संवत १९७१ का अधिक समय आपका कलकत्ता में बीता। यहाँ आप मनोहरदास कटरा स्ट्रीट मे भैरोदान सेवग की बाड़ी का ऊपर का तल्ला किराये पर लेकर रहने लगे। इसी वर्ष पहला विश्व युद्ध शुरू

हुआ था। कलकत्ता में जर्मनी के लगातार विजयी होने और अंग्रेजों के हारने का बहुत बुरा असर पड़ा। मारवाड़ियों में भगदड़ मच गई। उन्होंने अपना चांदी सोना आदि सामान लेकर राजस्थान जाना शुरू कर दिया उनका व्यापार व्यवसाय डूबने की सी परिस्थिति पैदा हो गई। आपको अंग्रेजों की राजनीतिमत्ता पर पूरा भरोसा था। आप यह नहीं मानते थे कि महायुद्ध में उनकी हार होगी। आपने समाचार पत्रों में कई लेख लिखकर लोगों को धैर्य बँधाया और जमकर अपने व्यापार व्यवसाय में लगे रहने की सलाह दी। "कलकत्ता समाचार" में प्रकाशित "युद्ध और भीतरी व्यापार" शीर्षक आपके लेख को श्री कन्हैयालाल जी जालान के सुपुत्र श्री दुर्गा प्रसाद जालान ने स्वतन्त्र ट्रैक्ट के रूप में छपवाकर लोगों में बाँटा। उसमें आपने लोगों को यह समझाया था कि युद्ध के भय से भीतरी व्यापार व्यवसाय को बन्द करने का कोई कारण नहीं है। अपितु और जोर से व्यापार करके पूरा लाभ उठाना चाहिए। उन्हीं दिनों में बंगाल की खाड़ी में जर्मनी के "एमडन" जहाज ने अंग्रेजों के अनेक व्यापारी जहाज डुबा दिये थे और मद्रास पर भी गोले बरसाये थे। इससे लोगों में युद्ध का आतंक और भी अधिक फैल गया और बहुत अधिक भगदड़ मच गयी। लोग यह समझे हुए थे कि मद्रास की तरह किसी दिन कलकत्ता पर भी बम गिरेंगे। परन्तु आप उसके विपरीत लोगों को धैर्य व साहस से काम लेने की सलाह देते रहे। आपने और आपकी सलाह मानने वालों ने खूब जमकर व्यापार किया और खूब अनाप शनाप लाभ उठाया। बिड़ला बन्धु उन्हीं दिनों में व्यापार व्यवसाय में चमके और पहली श्रेणी के व्यापारी बन गए।

साहित्य के क्षेत्र में

साहित्य के क्षेत्र में आपने समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर प्रवेश किया और सबसे पहले अलीगढ़ से प्रकाशित होने वाले "माहेश्वरी" पत्र में उसके सम्पादक स्वर्गीय श्री भागीरथ दास जी की प्रेरणा से एक लेखमाला "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" नाम से लिखी, जो बाद में पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुई।

डांडियों के खेल का पुनर्जीवन

बीकानेर लौटकर आप कोलायत जी के मेले में सम्मिलित हुए। मरुनायक जी के चौक में होली पर डांडियों के खेल की बहुत पुरानी प्रथा चली आती थी। वह कुछ वर्षों से बन्द हो गयी थी। कोलायत जी के मेले से लौटकर आपके हृदय में उसको पुनर्जीवित करने का विचार पैदा हुआ। मरुनायक जी के चौक में रहने वाले समाज के नेताओं के साथ आपने इसके लिए परामर्श किया। वे सहमत हो गए। आपके कुटुम्ब के सभी युवक और मण्डली के मित्र उसमें बड़े शौक से भाग लेते थे। श्री रामरिख जी दम्माणी को गाने का बड़ा शौक था। वे भी आबाल वृद्ध दलबल सहित आकर सम्मिलित होने लगे। कुछ लोग उन खेल को बुरा मानते थे और दोषपूर्ण बताकर उसका विरोध करते थे। ऐसे लोगों का भ्रम व विरोध दूर करने के लिए आपने "डांडियों का खेल" नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित की। उनमें खेल के निर्दोष होने और उसके गुणों पर प्रकाश डाला गया। पुराने गीतों में कहीं कहीं पर कुछ अश्लीलता अवश्य थी उसको आपने दूर कर दिया और उसमें नए पद शामिल कर दिये। कुछ नए गीत भी बनाए गये। मंगलाचरण के रूप में गणेश जी की स्तुति के सम्बन्ध में भी आपने एक नया गीत लिखा जो कि खेल के शुरू में गाया जाता था। यह आपकी अपनी सूझ थी। पहले ऐसा कोई मंगलाचरण का गीत नहीं था। कृष्ण की रासलीला और सुधार सम्बन्धी कई गीत भी आपने रचे।

गणेश जी में आपकी बहुत गहरी व पुरानी श्रद्धा भक्ति थी। धर्मशाला में स्थापित गणेश जी के मन्दिर में आप नित्य उनकी उपासना किया करते थे। पिताजी ने मूर्ति के रत्न जटित गणेश जी की एक मूर्ति खरीदी थी।

बीकानेर में श्री मरुनायक जी के मन्दिर के चौक में डाडियों का खेल करने वाले खिलाड़ियों के मध्य श्री मोहता जी।
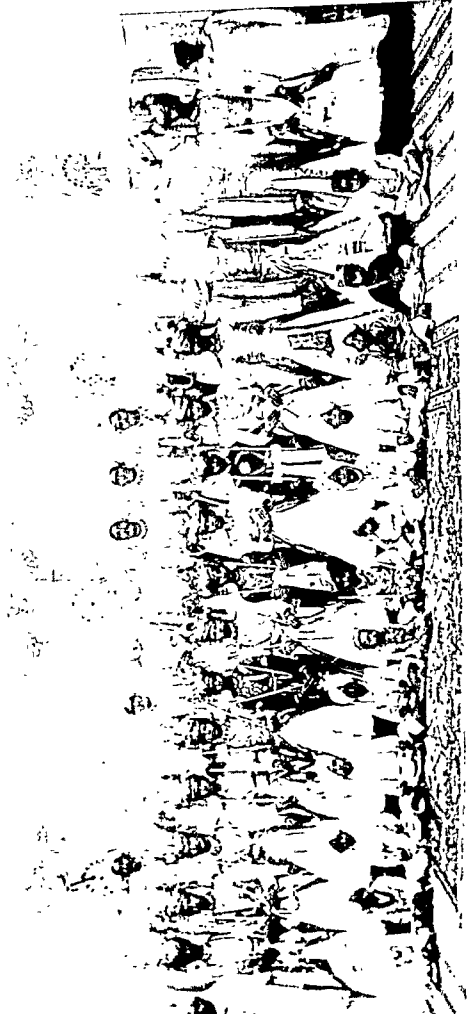
श्री मग्नायगजी के मन्दिर के चौक में डांडियों के खेल के गायन करने वालों के मध्य
में श्री मोहताजी सम्वत् २०१८ फाल्गुन शुक्ला १३

उसका पूजन आप नित्य प्रति यथाविधि १६ वेद मन्त्रों और गणेश स्तुति के कई स्तोत्रों के साथ किया करते थे।

फागुन सुदी ८ से होली की पहली रात तक ७ दिन यह खेल बड़े उत्साह के साथ हर साल होना शुरू हो गया। इधर कुछ वर्षों से वह फिर बन्द है और उसको पुनर्जीवित करने का प्रयत्न आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी कर रहे हैं। हजारों स्त्री पुरुष इसको देखने के लिए इकट्ठा होते थे। कभी कोई दुर्घटना या शिकायत सुनने में नहीं आई। बीच में नगाड़े बजाये जाते थे और उनके चारों ओर घूमते हुए युवक हाथों में डांडियां लेकर नाचते गाते हुए एक दूसरे के डांडियों को लड़ाते हुए ऐसी सुन्दर ध्वनि करते थे कि देखने वाले मुग्ध हो जाते थे युवकों की वेश भूषा एक से एक बढ़कर रहती थी। लाखों का गहना उनके बदन पर रहता था फिर भी किसी चीज के गुम होने अथवा चोरी जाने की शिकायत सुनने में नहीं आई। इस पुराने खेल का पुनरुद्धार भी आपकी सार्वजनिक भावना का सूचक है। अपने संगीत प्रेम, साहित्य प्रेम और समाज सुधार प्रेम तीनों का इसमें आपने अद्भुत समन्वय कर दिया था। इसको आपकी प्रगतिशील सार्वजनिक प्रवृतियों की त्रिवेणी या संगम कहना चाहिए। सब को साथ लेकर लोक संग्रह करने की आपकी अद्भुत शक्ति, प्रवृत्ति एवं प्रतिभा का इससे सुन्दर परिचय मिलता है।

डांडियों के खेल और संगीत विद्या के पुनरुज्जीवन के लिए किया गया काम भी दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस प्रकार डांडियों के खेल का परिष्कार करके एक ओर होली के त्योहार में विद्यमान अश्लीलता को सर्वथा दूर किया और आपने समाज सुधार की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया तो दूसरी ओर जनता में सामाजिक चेतना पैदा करने के लिए वह कदम वरदान सिद्ध हुआ। सभी समाजों के छोटे बड़े लोग इसमें बड़े उत्साह से समान रूप से भाग लिया करते थे और हजारों की उपस्थिति होने पर भी किसी को कोई अशिष्ट अथवा अश्लील व्यवहार करने का साहस नहीं होता था। खेल और संगीत में लोग ऐसे तन्मय हो जाते थे कि सब ध्यान योग में स्थिर हो गए जान पड़ते थे। खिलाड़ियों के रूप में भी सभी जातियों के लोग बिना किसी भेदभाव के उसमें सम्मिलित होते थे। ऊँच नीच आदि की कोई भावना किसी में नहीं रहती थी। सब में आपस में समता का व्यवहार रहता था। महाराष्ट्र में गणपति उत्सव को सार्वजनिक रूप देने के सम्बन्ध में जो भावना लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के हृदय में विद्यमान थी उसी से प्रेरित होकर आपने डांडियों के खेल को एक नया रूप प्रदान कर उसमें नई चेतना और नया जीवन पैदा किया था। यह दुर्भाग्य था राजस्थान का, कि वह अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बंटा हुआ था और उसमें महाराष्ट्र की सी एकरूपता और एक भावना विद्यमान नहीं थी, अन्यथा इस खेल को राजस्थान में राष्ट्रीय गौरव प्राप्त होकर वह जनता में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना पैदा करने का प्रमुख साधन बन सकता था। फिर भी बीकानेर नगर में उससे असाधारण जीवन-जागृति एवं चेतना पैदा हुई।

समाज सुधार की दृष्टि से सबसे बड़ी बात यह थी कि इस खेल में ब्राह्मण, वैश्य, नाई, माली, धोबी, करोड़पति व निर्धन सभी समाजों तथा वर्गों के लोग बिना किसी सामाजिक ऊँच-नीच अथवा धार्मिक भेदभाव की भावना के सम्मिलित होकर समान रूप से भाग लिया करते थे। बीकानेर सरीखे पिछड़े हुए नगरों के रूढ़िपंथी लोगों में गीता के समत्व दर्शन एवं समत्व व्यवहार के आदर्श को इस प्रकार क्रियात्मक रूप तब दिया गया था जब कि आपके समाज सुधार के कार्यों का कुछ लोग घोर विरोध किया करते थे। कुछ लोगों को अपने बड़प्पन के कारण और कुछ लोगों को उनमें परम्परा से गाये जाने वाले अश्लील गीतों के कारण सम्मिलित होने में कुछ आपत्ति थी। आपने गणेश जी के मंगलाचरण से उसको प्रारम्भ करके उसमें स्वरचित सुधार के गीतों का समावेश कर दिया और सब लोगों के लिए उसमें सम्मिलित होना निरापद बना दिया। बीकानेर का अनुकरण करके कलकत्ते में भी यह खेल "माहेश्वरी भवन" में बड़े धूमधाम से खेला जाता है।

श्री व्रजरतनजी मोहता सुपुत्र श्री शिवरतनजी मोहता।

सौ० श्रीमती राधादेवी धर्मपत्नी श्री व्रजरतनजी मोहता।

सौ० राजकुमारी बाई सुपुत्री श्री व्रजरतनजी मोहता।

श्री राजेन्द्र कुमार मोहता ज्येष्ठ पुत्र श्री व्रजरतनजी मोहता।

श्री वीरेन्द्र कुमार मोहता कनिष्ठ पुत्र श्री व्रजरतनजी मोहता।

पैदा हुआ। तालाब में मिट्टी भर जाने से उस वर्ष मेला नहीं लग सका था। "श्री कोलायत गंगा जी का जीर्णोद्धार और अकाल पीड़ितों की सहायता—एक पंथ दो काज" शीर्षक से आपने एक अपील प्रकाशित की। उसमें कोलायत का महात्म्य भी दिया गया। सेठ साहूकारों और आम जनता से लगभग चालीस हजार रुपये जमा हो गए। जिससे हजारों दुर्भिक्ष पीड़ितों को काम पर लगाया गया। तालाब की सफाई के साथ-साथ घाटों की मरम्मत भी करवाई गई। संवत् १९७३ के आषाढ़ मास तक यह काम चला। जो रकम बची वह बाद में इसी काम में लगाई गई। आपकी दुर्भिक्ष पीड़ितों को इस प्रकार राहत पहुँचाने की यह समाज सेवा की भावना निरन्तर बनी रही। जब भी कभी ऐसा कोई दैवी संकट उपस्थित हुआ तब हमेशा आप आगे बढ़ते और हजारों रुपया खर्च करके इसी प्रकार संकटापन्नों की सहायता करते रहे।

पत्नी क्षय ग्रस्त

आपकी पत्नी को क्षय की जो शिकायत हुई थी वह उत्तरोत्तर बढ़ती गई। पीठ में दर्द रहने लगा और डकार आने लगे। बीकानेर और कराची में कराए गए उपचारों से कोई लाभ नहीं हुआ। तब १९७३ के अन्त में आप उसको लेकर कलकत्ता चले गए। वहाँ पहले आयुर्वेदिक औषधोपचार करवाया गया उसमें कुछ लाभ न होने पर डाक्टरी इलाज शुरू किया गया। डाक्टर कैलाश ने पीठ की हड्डी का क्षय बताया और हिलना डुलना बन्द करके प्लास्टर से देह को पाट कर लेटे रहने और ताकत की दवाइयाँ देने का परामर्श दिया। फिर सुप्रसिद्ध सर्जन डा० सुरेश प्रसाद सर्वाधिकारी को दिखाया गया तो उसने एक मोटे कपड़े की जाकट बनवा दी जिसके पीछे और आगे दोनों तरफ दो लोहे की मजबूत पट्टियाँ मोड़कर लगाई गई थी जो शरीर में पूरी तरह फिट हो गई। जाकट के बाँधने से रीढ़ की हड्डी पूरी तरह जमी हुई रहती थी। उसको बाँधे और कसे हुए लकड़ी के तख्ते पर लेटे हुए रहना पड़ता था। खाना, पीना और टट्टी पेशाब वैसे ही लेटे रहते हुए करना पड़ता था। इस प्रकार चार-पाँच महीनों तक बँधे रहने से वह हड्डी मजबूत हो गई। दर्द सब दूर हो गया। परन्तु जाकट का बाँधा रहना आवश्यक था। पत्नी के स्वस्थ होने पर फिर आप कराची आ गए। घर के सब लोग पिता जी, माता जी और शिवरतन जी सपरिवार वहीं थे।

व्यापार-व्यवसाय के काम से पिता जी के आदेश पर आपको एका-एक दिल्ली आना पड़ गया। यहाँ का काम सुलटा कर आप बीकानेर पहुँचे तो पिता जी, माता जी और आपकी पत्नी को साथ लेकर बीकानेर आ गए। छोटी लाइन की यह यात्रा बहुत कष्टप्रद सिद्ध हुई। क्षय की बीमारी ऊपर से तो बिल्कुल ठीक हो गई थी; परन्तु उसके कीटाणु जो भीतर रह गए थे वे फिर उभर पड़े और पीठ की नस में भी फैल गये। फिर वैसा ही दर्द रहना शुरू हो गया। तब फिर कलकत्ते जाकर डा० सर्वाधिकारी का उपचार शुरू किया गया। डाक्टर ने इस बार कमर से सिर तक लोहे के पट्टे मोड़कर जाकट बनवाई और सिर के पीछे के भाग में लोहे की आधी टोपी की तरह अर्ध गोलाकार टोप बनवाया। उस पर मखमल चढ़ाकर सिर को उस पर टिका कर बगल में बाँध दिया। पहले की ही तरह उसमें सारा शरीर जकड़ कर फिर लिटा दिया और हड्डी तथा नस का हिलना तक बन्द कर दिया। छः महीनों तक इस तरह रहने से वह ठीक हुई।

पत्नी की बीमारी के इन वर्षों में आपका अधिक समय उसी के पास बीतता। आपने इस भयानक बीमारी में भी ऐसी तन्मयता के साथ उसकी सेवा की। उसके पास बैठकर आप स्वयं उसको खाना खिलाते और अन्य सब सेवा सुश्रुषा भी स्वयं करते। बीमारी से उसका ध्यान हटाने के लिए तरह-तरह से उसका मनोरंजन करते रहते।

कलकत्ता में साहित्यिक प्रवृत्ति

कलकत्ता में आप सामाजिक मामलों और सार्वजनिक कार्यों में विशेष भाग लेने लग गए थे। साहित्यिक अभिरुचि भी आपमें विशेष रूप से जागृत हो चुकी थी। मोहता मूलचन्द विद्यालय में व्यापारिक शिक्षा के लिए कोई पुस्तक नहीं थी। आपने "व्यापार विज्ञान" के नाम से कुछ पुस्तकें लिखने का विचार किया। उसका पहला भाग लिख भी लिया, किन्तु वह छप नहीं सका। इसी प्रकार अंग्रेजी के व्यापारिक पत्र "कामर्स" और "कैपिटल" के ढंग पर हिन्दी में भी एक व्यापारिक पत्र निकालने का निश्चय किया। उसके लिए सम्पूर्ण साहित्य सामग्री जुटा ली गई किन्तु योग्य सम्पादक न मिलने से उसका प्रकाशन प्रारम्भ नहीं किया जा सका।

पिता जी का स्वर्गवास

संवत् १९७५ के शीत काल में आपके पूज्य पिता जी को जलोदर का रोग हो गया जिसका इलाज वैद्य रामलाल जी जती से कराया गया परन्तु आराम नहीं हुआ। रोग बढ़ता ही गया। अपना अंतकाल निकट देख कर संवत १९७६ गंगा सप्तमी के दिन उन्होंने हरिद्वार जाने का संकल्प प्रकट किया। उसी समय स्पेशल ट्रेन का प्रबन्ध करके उनको सारे परिवार सहित हरिद्वार लेजाया गया, घर के कई बड़े लोगों ने हरिद्वार में ही जाकर अपनी इह लीला समाप्त की थी। परिवार की इस परम्परागत धार्मिक भावना को उन्होंने भी निभाया था। वहीं वैशाख सुदी ११ संवत् १९७६ को उनका स्वर्गवास हो गया। उन्होंने बीमारी को असाध्य समझकर पहले ही अपनी सावधानी की दशा में अपनी जो इच्छा थी वह सब लिपिबद्ध कर दी थी। धर्मार्थ तथा कुटुम्ब की बाई बेटियों व नौकरों आदि को जो कुछ दिलाना था वह सब लिख दिया था। आपने उनकी इच्छानुसार १५ दिन हरिद्वार में रहकर सब क्रिया कर्म यथावत किए और कराए। यद्यपि उनमें आपकी श्रद्धा बहुत कम हो गई थी परन्तु उनको त्यागने का साहस व बल पैदा नहीं हुआ था। आपने अपना कर्तव्य यह समझा कि पिता जी की इच्छा एवं आदेश का यथावत् पालन किया जाय। बाबू जी जगन्नाथ जी की भी उनमें बड़ी श्रद्धा थी। उनकी भावना का आदर करना भी आवश्यक था।

दिल्ली में ब्रह्मभोज व जातिभोज की प्रतिक्रिया

वहां से दिल्ली आकर सत्रहवें दिन ब्रह्मभोज और जातिभोज करना आवश्यक हो गया। इस गर्हित एवं निन्दनीय कुप्रथा के सम्बन्ध में आपने लिखा है कि "इसके लिए जो तैयारियां की गई थीं उनको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य और विक्षोभ हुआ। मुझे तो अपने पिता जी के न रहने का बड़ा घाटा हो गया और ये लोग नाना तरह की मिठाइयों, मेवे और नमकीन पकवान आदि की तैयारियां बड़ी खुशी से उत्सव की तरह कर रहे थे। कुलफी और मलाई आदि का भी प्रबन्ध किया गया था। दो दिनों तक सैकड़ों आदमी जीमते रहे। मैंने उसके लिए पंचों को बड़ा उपालम्भ दिया और यह सूचना भी दे दी कि भविष्य में हमारे यहां से ऐसे भोजनों में कोई सम्मिलित न होगा।"

दोहिता और दोहिती का जन्म

संवत् १९७६ में आपकी पुत्री सुगनी बाई के पुत्र हुआ। यह उसको २६ वर्ष की आयु में हुआ था इसलिए आपकी पत्नी ने उसकी बड़ी खुशियां मनाई और बधाइयां बाँटीं। जापे के लिए बम्बई से दो महीने पहले एक विशेषज्ञ अंग्रेज दाई बुलाई गई। दोहिते का नाम भैंरवरतन रखा गया। मिती भादवा सुदी ६ संवत् १९७९ को आपकी दोहिती रतन बाई का जन्म हुआ।

चि० गिरधर लाल मोहता के शुभ विवाहोत्सव पर भिवानी में बारात का जलूस

बीकानेर से तार व पत्र देकर उस संघर्ष में सम्मिलित होने का आपसे अनुरोध किया। कलकत्ता में इस संघर्ष को पंचायत और संघ की कलह का भीषण रूप दे दिया गया था और उनके नाम से सारा ही समाज मुख्य दो दलों में बँट गया था। आपकी स्वभावतः ऐसे संघर्षों में अभिरुचि नहीं थी। आपकी दृष्टि में इसका किसी सिद्धान्त के साथ कोई सम्बन्ध न था। कोनवारों को ये दोनों पक्ष माहेश्वरी नहीं मानते थे और उनके साथ विवाह-सम्बन्ध करने के कारण दोनों ही ने बिड़लाओं का सामाजिक बहिष्कार किया हुआ था। बिड़ला बन्धुओं की बढ़ती हुई समृद्धि के प्रति कई लोगों में ईर्ष्या व जलन पैदा हो गई थी और यही इस संघर्ष का मुख्य हेतु था। बिड़ला बन्धुओं ने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। उस आन्दोलन के अगुवा भी आज अपनी भूल को स्वीकार करते और बिड़ला बन्धुओं का वैसा ही सम्मान करते हैं। इस आन्दोलन व संघर्ष के कारण समाज सुधार के वे सब काम पीछे पड़ गए थे जिनमें आपकी विशेष रुचि थी। इसलिए आपकी इच्छा उसमें पड़ने की बिलकुल भी नहीं थी। फिर भी बीकानेर और कलकत्ता के मित्रों के अत्यन्त आग्रह और अनुरोध पर आपको कराची से बीकानेर जाना पड़ गया और संघ के संगठन में अपनी शक्ति लगानी पड़ी। उसी के लिए आपने समाज सुधार सम्बन्धी कामों में भी ऊपर से दिलचस्पी लेना कुछ समय के लिए बन्द कर दिया। अन्त में संवत् १९८७ में आप त्यागपत्र देकर संघ से अलग हो गए।

पुत्री का दुखद देहान्त

सारा परिवार कराची था। आप बीकानेर आ गए थे। कुछ समय बाद आपको समाचार मिला कि आपकी पुत्री सुगनी बाई की आँतों में दर्द रहना शुरू हो गया और उसको उपचार के लिए बीकानेर लाया गया। राजस्थान के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री लक्ष्मीराम जी को जयपुर से बुलाया गया। उनके औषधोपचार से बहुत लाभ हुआ। परन्तु सर्दियों के बाद सं० १९८२ की गर्मियों में फिर गड़बड़ शुरू हो गई। इसलिए आप सारे परिवार के साथ मसूरी चले गए। वैद्य स्वामी लक्ष्मीराम जी भी आपके साथ गए। एक मास वहाँ रहने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। वहाँ से हरिद्वार और जयपुर आकर औषधोपचार कराया गया। कुछ लाभ होने पर बीकानेर चले गए। चौमासे में बीकानेर में ही स्वामीजी के शिष्य श्रीनारायण जी का उपचार कराया जाता रहा। उससे बड़ा लाभ हुआ और दीवाली पर सर्वथा नीरोग होकर उसने पूरी तरह स्वास्थ्य-लाभ कर लिया। धनतेरस पर उसके पुत्र भैरवरत्न की वर्ष गाँठ बड़े उत्साह से मनाई गई। उसमें बने मिष्टान्न व बढ़े खाने के कारण उसका स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया। पेट में बनने वाली हवा का असर दिमाग पर होने लगा। दम का भयानक दौरा फिर उठ खड़ा हुआ। वैद्यों और डाक्टरों के सब उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। अन्त में मगसर बदी ४ को उसका दुखद देहान्त हो गया। आपको तो सत्संग तथा गीता के अनुशीलन के कारण विशेष संताप नहीं हुआ किन्तु आपकी धर्मपत्नी ने छोटे बच्चों के मातृहीन हो जाने का बड़ा दुख माना और वह भी बीमार रहने लगीं। सर्दी में बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया और क्षय की पुरानी बीमारी ने फिर जोर पकड़ लिया। उन्होंने बड़े चाव से बम्बई से मंगाए हुए मारबल टाइल्स तथा काँच आदि के सामान से घर का बहुत ही सुन्दर नव निर्माण करवाया था। वह सब फीका सा लगने लगा। रात दिन बीमारी के उपचार में लगे रहने के कारण कुछ और काम-काज नहीं होता था।

पत्नी और दोहिते का देहावसान

बीकानेर में कोई लाभ न होने से आप अपनी पत्नी को लेकर फिर कलकत्ता चले गए। डा० सर्वाधिकारी के स्वर्गवास के कारण डा० कैलाश को दिखाया गया। उसने बताया कि बीमारी का असर फेफड़ों पर भी हो गया है और कलकत्ता की आब-हवा उनके अनुकूल नहीं है। वहाँ गणेश भवन में रहे, जिसका उनको बड़ा चाव था।

स्वर्गीय श्री मूलचन्द जी मोहता

श्री गिरधरलालजी मोहता
दत्तकपुत्र श्री मूलचन्दजी
मोहता ।

सौ० श्रीमती सम्पतीदेवी
धर्मपत्नी गिरधरलालजी
मोहता ।

श्री सुरेन्द्रकुमार
सुपुत्र श्री रविकुमार मोहता ।

सौ० श्रीमती विमलादेवी
धर्मपत्नी रविकुमार मोहता ।

श्री रविकुमार मोहता ज्येष्ठ
पुत्र गिरधरलालजी
मोहता ।

श्री शशिकुमार मोहता
कनिष्ठ पुत्र श्री गिरधरलालजी
मोहता ।

सौ० श्रीमती शीलादेवी
शशिकुमार मोहता ।

बीमारी के कारण उनका वहाँ रहने का चाव पूरा न हो सका। कुछ दिन वायु-परिवर्तन के लिए जसीडीह रहकर बीकानेर चले आए। यहाँ भी औषधोपचार चलता रहा। कुछ लाभ न हुआ और सावन वदी १३ संवत् १९८३ को उनका देहावसान हो गया। कुछ समय बाद फागुन १९८३ में आपके दोहिते चिरंजीव भैंरवरत्न का भी न्युमोनिया से देहावसान हो गया।

श्री भैंरवरत्न-मातृ पाठशाला की स्थापना

इन मर्मान्तक दुखद घटनाओं को आपने बड़े धैर्य, साहस और शान्ति के साथ सहन किया। चित्त का संतुलन बिगड़ने नहीं दिया। श्री चांदरतन जी बागड़ी को उसका बड़ा दुख हुआ था। उनको भी गीता का उपदेश देकर धैर्य बंधाया। उनके लड़के भैंरवरत्न और पत्नी मुगनी बाई की स्मृति में आपने "श्री भैंरवरत्न-मातृ पाठशाला" की स्थापना करवाई। यह पाठशाला अब भी बहुत अच्छी चल रही है और बीकानेर की शिक्षा संस्थाओं मे उसको प्रमुख स्थान प्राप्त है।

दूसरे विवाह की समस्या

धर्म-पत्नी के देहान्त के समय आपकी आयु लगभग ५० वर्ष की थी। सन्तानोत्पत्ति के लिए माताजी के आग्रह पर विशेष अनुष्ठान करने पर भी कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ था। उसकी मृत्यु से पहले उसकी लम्बी बीमारी में ही आपसे सन्तान के लिए दूसरा विवाह करने का आग्रह किया जाने लग गया था और उसके लिए आपकी पत्नी की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली गई थी परन्तु आपने उस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि उसकी भयानक रोग-ग्रसित अवस्था में उसकी छाती पर एक सौत लादूं तो यह कितना नृशंस अत्याचार होगा? अगर मैं उसकी तरह बीमार होता तो वह क्या करती?

परन्तु उसकी मृत्यु के बाद तो चारों ही ओर से आप पर दूसरे विवाह के लिए दबाव डाला जाने लगा। आपकी सम्पन्न स्थिति के कारण ऐसे माता पिताओं की कमी नहीं थी जो अपनी कन्याओं का प्रस्ताव लेकर आपके पास आए। परन्तु आपने घर वालों से स्पष्ट कह दिया कि जब मेरे ही घर में मेरे अनुज की युवा पत्नी वैधव्य का असह्य सन्ताप सहन कर रही है तब मुझे पोती के समान किसी कन्या का जीवन नष्ट करना कैसे शोभा दे सकता है। मुझे गृहस्थ जीवन बिताना हो तो मै उसके साथ ही गृहस्थ क्यों न करूं? आप वैसे भी विधवा विवाह के पक्षपाती थे और आपके गुरु श्री उत्तमनाथ जी महाराज का भी यह स्पष्ट मत था कि समाज में उच्च वर्ण के लोगों में विधवाओं की दुर्दशा को देखते हुए उनका विवाह किया जाना सर्वथा उचित है। वे नीचे के वर्ण के लोगों मे प्रचलित नाते की प्रथा को उच्च वर्ण के लोगों में अपनाये जाने के भी समर्थक थे। उसको वे विधवाओं के आवारा बना देने की अपेक्षा बहुत अधिक उचित मानते थे। मोहता जी "नियोग" की प्रथा के भी पक्षपाती थे और उसके लिए वे राजा शान्तनु के पुत्रों की विधवाओं का उल्लेख किया करते थे जिन्होंने वेद व्यास के साथ "नियोग", करके पांडवों और कौरवों के वंश को चालू रखा था। इन सब बातों का विचार करके आपने अपने अनुज स्वर्गीय श्री मूलचन्द मोहता की विधवा पत्नी श्रीमती सुन्दर देवी को अपनी धर्मपत्नी बनाने का निश्चय कर लिया। वह बहुत बुद्धिमती और साहसी महिला थी। पढ़ने का उसे बड़ा शौक था। तुलसीकृत रामायण का उसने अच्छा अध्ययन किया था। अपने वैधव्य मे उसने उन कठिनाइयों और यातनाओं का भी कटु अनुभव प्राप्त किया था जिनको हिन्दू विधवाओं को प्रायः भुगतना पड़ता है। इसलिए उसने भी आपका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और अपने जेठ की पत्नी बनकर रहने में संकोच नहीं किया। यह साधारण साहस का काम नहीं था। लोकापवाद की तनिक भी परवाह न कर आपने उनको उनके मृत्यु काल

तक अपनी गृह-पत्नी के रूप में रखा और जहाँ कहीं भी गए वहाँ उनको अपने साथ ले जाने में संकोच नहीं किया। संवत् १९८९ में की गई काश्मीर यात्रा में भी वह आपके साथ गई थी, उसमें घर के अन्य अनेक सदस्य भी सम्मिलित थे। उसका व्यवहार घरवालों के साथ और घरवालों का उसके साथ वैसा ही रहा जैसा कि आपकी पत्नी के प्रति होना चाहिए था। विधवा होने के कारण घर के काम-काज और व्यवहार में उसके प्रति कभी भी उपेक्षा का हीन अथवा अनुचित व्यवहार नहीं किया गया। उन्होंने आपकी एकलौती दोहिती के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसे कि वह उसके ही उदर से उत्पन्न उनकी दोहिती हो।

कुटुम्बियों और सगे-सम्बन्धियों ने कभी कोई आपत्ति नहीं की। समाज में भी कभी कोई ऐसा विरोध नहीं हुआ। कोजवार माहेश्वरी आन्दोलन में किसी की भी पगड़ी उछालने में कसर नहीं रखी गई थी; परन्तु आप पर इस सम्बन्ध के कारण कभी कोई अंगुली नहीं उठाई गई। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि समाज में उसको बुरा न मानते हुए भी वैसा करने का कोई साहस नहीं करता। आप सबको खुले आम ऐसा करने का परामर्श दिया करते थे और अब भी देते हैं; क्योंकि इसमें दो लाभ स्पष्ट हैं. एक तो यह कि पतित, भ्रष्ट एवं दुराचारी लोगों के चंगुल में फँसकर विधवाएँ पथ-भ्रष्ट होने से बचती हैं और दूसरा यह कि अनेक घर बरबाद होने से बच जाते हैं। ऐसी भ्रष्ट होने वाली विधवाओं और नष्ट होने वाले घरों के कारण समाज को भी कुछ कम हानि नहीं उठानी पड़ती। अपने इस उदाहरण से आपने हिन्दू समाज के सम्मुख उसके कर्तव्य को स्पष्ट रूप से उपस्थित किया।

यथासम्भव सुन्दरदेवी को आपने सुयोग्य सम्मान प्रदान करने में कोई कमी नहीं रहने दी। जोधपुर में महारानी भटियाणी जी के नाम से जब वनिता आश्रम और विधवाओं के उद्धार के लिए एक लाख का ट्रस्ट अलग बनाया गया तब जोधपुर महाराज ने प्रसन्न होकर आपको तथा आपके छोटे भाई राय बहादुर सेठ शिव-रतन जी मोहता को सोने का लंगर पहनने का सम्मान प्रदान किया। तब इस सम्मान में सुन्दरदेवी को भी वैसे ही शामिल किया गया। उसको पैर में सोना पहनने-ओढ़ने का बड़ा चाव था इसलिए यह सम्मान प्राप्त करके उसको बड़ी प्रसन्नता हुई।

आपके सार्वजनिक कार्यों विशेषतः बीकानेर के "वनिता आश्रम" में होने वाले विधवा विवाहों में वह बड़े उत्साह से भाग लिया करती थी और आप से कहा करती थी कि किसी के भी विरोध से डर कर आप इस काम को बन्द मत करियेगा। इससे बड़ा कुछ दूसरा उपकार नहीं हो सकता है। मैं स्वयं भुक्तभोगी हूँ और जानती हूँ कि विधवाओं के साथ क्या बीतती है? "अबलाओं का इंसाफ" पुस्तक लिखने के लिए सामग्री जुटाने में उसने बड़ी सहायता की थी, अनेक आपबीती और दूसरी विधवाओं के साथ बीती घटनाओं का विवरण उस पुस्तक के लिए संग्रह किया था।

आप के छोटे भाई शिवरतन जी मोहता के सब से बड़े पुत्र श्री गिरधरलाल जी को सुन्दर देवी की गोद दिया गया। यह विधि आपने बैशाख सम्वत् १९९० में करांची में स्वयं सम्पन्न कराई थी। उन्होंने उनके पुत्र रविकुमार के जन्म होने का समाचार पाकर अपने पौत्र पैदा होने की खुशियाँ मनाई और सब मंगलाचार किए तथा बधाइयाँ बाँटीं।

सम्वत् १९९१ कार्तिक सुदी ६ को उनका न्युमोनिया रोग से कलकत्ते में देहान्त हुआ। तब उनकी इच्छानुसार लिलुआ में एक बगीचा अनुमानतः ५० हजार में खरीद कर "श्रीमती सुन्दरबाई अबला आश्रम" के लिए दिया गया जिसमें आश्रम चलता है। अनाथ असहाय अबलाओं के उद्धार में उनकी बहुत रुचि थी। यह आश्रम अब बंगाल सरकार को सौंप दिया गया है।

मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता—सन् १९०७

सौ० श्रीमती रतनदेवी मोहता
धर्मपत्नी श्री सूरजरतनजी मोहता।

श्री सूरजरतन मोहता दत्तकपुत्र श्री रामगोपालजी
मोहता।

श्री आनन्द कुमार मोहता सुपुत्र श्री सूरजरतनजी
मोहता।

स्वर्गीया श्रीमती सुन्दरबाई मोहता । धर्म पत्नी स्वर्गीय श्री मूलचन्द जी मोहता ।

धर्म पत्नी स्वर्गीय श्री मूलचन्द मोहता
श्री गिरधर लाल एम० मोहता को श्रीमती सुन्दर देवी
द्वारा गोद लेने के समारोह पर कराची में लिया गया चित्र

शारीरिक अस्वस्थता

सम्वत् १९८४ के कार्तिक मास में पंढरपुर में अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के महत्वपूर्ण अधिवेशन का सभापतित्व करके लौटने पर आप कुछ अस्वस्थ हो गए। लीवर बढ़ जाने से आप कई मास बीमार रहे। माघ में जयपुर जाकर तीन मास वहां रह कर स्वामी लक्ष्मीराम जी का औषधोपचार करवाया। स्वस्थ हो जाने पर भी पाचन शक्ति वैसी नहीं रही। वैशाख में आप जयपुर से करांची चले गए। रास्ते में अपने गुरु उत्तमनाथ जी से मिलने के लिए आप जोधपुर ठहरे। वे अपने गुरु नवलनाथ जी के मकान के सम्बन्ध में राज्य के साथ एक झगड़े में उलझे हुए थे। उनको उस झगड़े के कारण विक्षिप्त देखकर आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन पर आपने अपना यह भाव प्रकट किया तो वे बोले कि गुरुजी की आज्ञा से यह झगड़ा करना पड़ा है। नहीं करता तो वे रुष्ट होते। अन्त में वे मुकदमा जीत गए। जोधपुर के महाराज और महारानी भी उनका बड़ा सम्मान करते थे।

दो ट्रस्टों का निर्माण

श्रावण सम्वत् १९८५ (सन् १९२८) में आपने करांची में दो ट्रस्ट बनाए। एक अपनी दोहिती रतनबाई के लिए और दूसरा हिन्दू महिलाओं की रक्षा और उन्नति के लिए। इससे करांची और बीकानेर में वनिता आश्रम तथा अनाथालय खोले गए। इन्दौर में भी वनिता आश्रम खोला गया। समाजसेवी श्री द्वारका-प्रसाद जी सेवक को उसका काम सौंपा गया। इलाहाबाद में भी वनिता आश्रम की स्थापना की गई। जिसका काम "चांद" सम्पादक स्वर्गीय श्री रामरखसिंह सहगल के सुपुर्द किया गया। जोधपुर में भी रानी भटियाणी जी के नाम से वनिता आश्रम खोला गया। उसके लिए ट्रस्ट में से एक लाख रुपया देकर जोधपुर राज्य के सहयोग से एक अलग ट्रस्ट बनाया गया।

सम्वत् १९८६ में आप के छोटे भाई राव बहादुर शिवरतन जी मोहता का करांची में डा० मुलगांव-कर को बुलाकर भगंदर का आपरेशन करवाया गया और उसी वर्ष हवाबन्दर के पुराने बंगले को तोड़ कर और पास की थोड़ी और जमीन लेकर "मोहता पैलेस" बनवाने का काम श्री शिवरतन जी ने शुरु किया। यह दो वर्ष में पूरा होकर करांची का एक बहुत बड़ा, सुन्दर, आकर्षक और दर्शनीय स्थान बन गया। देश विभाजन के समय उसकी कीमत १६ लाख रुपया थी। बाहर से करांची आने वाले उसको भी बड़े चाव से देखने आया करते थे। उसके तलघर में एक सुन्दर संग्रहालय बनाया गया था। उसको देखने आने वालों के हस्ताक्षरों के लिए एक दर्शक पंजिका रखी गई थी। उस पर पौने दो लाख दर्शकों के हस्ताक्षर १९४७ तक हो चुके थे। उनमें देश के प्रायः सभी गण्यमान्य नेताओं और अनेक ख्याति प्राप्त विदेशी राजनीतिज्ञों के हस्ताक्षर भी थे। उल्लेखनीय नाम महात्मा गांधी का है। वे १५ दिन वहां ठहरे थे और प्रतिदिन नित्य नियम से उसके आंगन में उनकी सार्व-जनिक प्रार्थना का आयोजन हुआ करता था।

इसी वर्ष आसोज के महीने में श्री उत्तमनाथ जी के मकान में गिर कर घायल होने का समाचार आप को बीकानेर में मिला। तब आप जोधपुर गए। वे अस्पताल में थे। उनकी टांगों की और नाक की कुछ हड्डियां तथा दांत टूट गए थे। बिना क्लोरोफार्म के उन्होंने आपरेशन करवाया और उनकी टूटी हुई हड्डियां निकाली गई।

काश्मीर की यात्रा

सम्वत् १९८९ की गरमी में आपने काश्मीर की यात्रा की। बीकानेर से श्रीमती सुन्दर देवी और

आपकी दौहित्री श्रीमती रतनबाई तथा कर्मचारी आप के साथ थे। कराची से श्री गिरधरलाल सनलीव तथा श्री ब्रजरतन और श्री सूरजरतन भी आ गए थे। श्रीनगर में अपने मित्र राव बहादुर डा० मथुरादास मोंगेवाले के गुपकार रोड के बंगले में ठहरे। दो महीने वहाँ रहे। फिर हिन्दू मुसलमानों का दंगा हो गया तब लौट आये। काश्मीर जाते समय रास्ते में लाहौर में राय बहादुर लाला रामशरणदास जी की लाल कोठी में तीन चार दिनों तक ठहरे। उन्होंने अपने सनातन धर्म कालेज, स्कूल और कन्या पाठशाला आदि संस्थाओं का निरीक्षण करवाया और सनातन धर्म कालेज में आप का भाषण कराया। भाषण में आप ने कहा कि "सनातन धर्म का नाम सुनकर चित्त में बड़ी श्रद्धा और प्रसन्नता उत्पन्न होती है; परन्तु सनातन धर्म के महत्व को विरले ही समझते होंगे। सनातन वह होता है जिसका कभी नाश नहीं होता। जो सदा विद्यमान रहता है और उसका क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि जिसमें सब समा सकते हैं। परन्तु वर्तमान में जिसको सनातन धर्म कहा जाता है वह तो जरा-सी छूत-छात से ही नष्ट हो जाता है। रीति-रस्मों के पालन न करने से धर्म डूब जाता है और किसी से सम्पर्क नहीं करने देता। यह सनातन धर्म नहीं है। केवल आत्मा सनातन है। शरीर कभी सनातन नहीं हो सकता और शरीर सम्बन्धी रीति-रिवाज, कर्म कांड आदि सनातन नहीं हो सकते। आत्मिक धर्म ही सनातन हो सकता है और आत्मा सब में एक तथा सम है। इसलिए सनातन धर्म में सारे विश्व की एकता होनी चाहिए और सबको अपने अन्दर सम्मिलित करने की शक्ति होनी चाहिए। हमारे यहाँ तो वैदिक धर्म के अनुयायी भी एक नहीं हो सके। सनातनी और आर्य समाजी आपस में लड़ते झगड़ते हैं फिर दूसरे लोगों को कैसे हजम कर सकते हैं। हम लोगों को सच्चे सनातन धर्म का मर्म समझ कर अपना क्षेत्र विश्व व्यापक बनाना चाहिए।"

उन दिनों सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल संस्कृत के धुरन्धर पंडित और सुप्रसिद्ध विद्वान् पंडित गणेशदत्त जी वेदान्ततीर्थ थे। वे तथा अन्य प्रोफेसर लोग आपका भाषण सुन कर बड़े प्रभावित हुए और कहने लगे कि सनातन धर्म की सच्ची व्याख्या यही है। आज तक हम लोगों ने यह व्याख्या नहीं सुनी थी। रा० ब० लाला रामशरणदास जी तथा कालेज के अन्य प्रबन्धक लोग भी बहुत प्रभावित हुए। जब आप ने कन्या पाठशाला का निरीक्षण किया तब कन्याओं ने वेद मन्त्रों से स्वस्तिवाचन किया। इस पर आपने अपने भाषण में इस बात पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की कि जहाँ सनातन धर्म का झूठा दावा रखने वाले लोग स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं देते वहाँ सनातन धर्म कन्या पाठशाला में कन्याओं को वेद के मन्त्र पढ़ाये जाते हैं।

लाहौर से आप काश्मीर गए तो जम्मू में वहाँ के भूतपूर्व दीवान की धर्मपत्नी जो राय बहादुर लाला रामशरणदास जी की बहन थी उनके पास आप ठहरे थे। वहाँ आप को विदित हुआ कि उक्त महिला अपने भाई की मार्फत महामहोपाध्याय पंडित गिरधर शर्मा जी को जयपुर से बुलाकर श्रीनगर में उपनिषदों की कथा सुनेंगी। आप के श्रीनगर पहुँचने के थोड़े दिनों बाद वहाँ की सनातन धर्म सभा के सभापति आप से मिले। उक्त कथा का हाल कहा कि पंडित गिरधर शर्मा जी उपनिषदों की कथा जब सुनाते हैं तब उक्त महिला के परदे के आगे एक उनके अधिकारी पुरुष को बैठाकर उसको लक्ष्य करके सुनाते हैं, क्योंकि स्त्रियों को वेद सुनने का अधिकार नहीं है ऐसा वे मानते हैं। आप ने कहा यह तो बड़ा दम्भ है। जब कथा एक स्त्री को सुनाने का ही उद्देश्य है और एक पुरुष को बीच में रखकर सुनाया जाता है तो स्त्री को नहीं सुनाने की बात कहाँ रही? सनातन धर्म सभा में भी वेद सभी को सुनाए जाते हैं। वे कुछ झुंझलाये हुए विचारों के थे। उन्होंने सभा करके स्त्रियों को वेद पढ़ने के अधिकार के विषय में चर्चा करने का आयोजन किया जिसमें पंडित जी को भी निमन्त्रण दिया गया पर वे नहीं आये। आप ने लिखकर भेजा। सभापति जी ने मोहता जी से इस विषय में सम्मति माँगी। तब आपने उनको स्पष्ट बता दिया कि वेद पढ़ने का सबको समान अधिकार है। गीता का पाठ स्त्रियाँ नित्यप्रति करती हैं। गीता के अनेक स्थलों में ओंकार का उच्चारण आता है। ओम् सब वेदों का मूल·

मन्त्र है फिर वेद पढ़ने के अनधिकार की बातें कहां रही ? पूर्वकाल में अनेक विदुषी स्त्रियां वेदों में पारंगत होती थी। काश्मीर में तो पंडित मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी ने जगद्गुरु आदि शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। अब जब कि वेद छप गए हैं तब किसी के पढ़ने न पढ़ने का प्रश्न ही कहां रहा ? यह इन झूठे सनातनी पंडितों की हठधर्मी और पाखण्ड है। एक तरफ स्वयं परदे की ओट में स्त्रियों को वेद सुनाते हैं और दूसरी तरफ उनको अनधिकारी कहते हैं।

दोहिती का शुभ विवाह

सम्वत् १९९० में आप की दोहिती रतनबाई के विवाह के लिए उसके पिता बागड़ी जी ने आग्रह करना शुरू किया। बड़े-बड़े घरों से सम्बन्ध आए परन्तु वह उनके लिए सहमत नहीं थी। उसकी इच्छानुसार १९९० फागुन सुदी ४ को उसका विवाह श्री मदन गोपाल जी दम्माणी के साथ किया गया। इस विवाह संस्कार में आपकी तरफ से माहेरा नही दिया गया। रतनबाई की पहली लड़की सुशीला बाई संवत् १९९२ चैत सुदी १५ को कराची में मोहता पैलेस में पैदा हुई। उसके दो वर्ष बाद संवत् १९९३ में फागुन बदी अमावस्या को चि० कृष्णकुमार का जन्म भी कराची में हुआ। तीसरी सन्तान (दूसरी कन्या) सरोज का जन्म सम्वत् २००३ भादवा सुदी ५ को बीकानेर में हुआ।

सूरजरतन को गोद लेना

गिरधरलाल को मूलचन्द के गोद करने के थोड़े ही दिनों बाद शिवरतन जी के सब से छोटे लड़के सूरजरतन को इन्होंने अपनी गोद लेने की कानूनी लिखा पढ़ी करवाली ताकि उनके पीछे उनकी सम्पत्ति के सम्बन्ध में शिवरतन जी के तीनों लड़कों गिरधरलाल, ब्रजरतन और सूरजरतन में कोई झगड़ा उत्पन्न न हो और संयुक्त परिवार की सारी सम्पत्ति के बराबर के तीन हिस्से कर दिये गये।

सूरजरतन का विवाह उसकी सम्मति से बीकानेर में ही इनको समाज बहिष्कृत करने वाले प्रमुख पंचायतिष्ट परिवार के श्री विट्ठलदास जी बागड़ी की सुन्दर और सुशील पुत्री श्रीमती रतनदेवी के साथ सम्वत् १९९८ माघ सुदी ५ को बड़ी धूम-धाम और आमोद प्रमोद के साथ किया गया।

शिवरतन जी का मंझला लड़का ब्रजरतन उनकी पित में रह गया। उसका विवाह सम्वत् १९९४ मगसर में श्री रामेश्वरदास जी बिड़ला की सुन्दर और सुशिक्षित पुत्री श्रीमती राधादेवी के साथ कलकत्ते में धूम-धाम से हुआ। इसकी बरात करांची से कलकत्ता गई थी। इस विवाह में दहेज के दिखावे की प्रथा बन्द कर दी गई। विवाह के अन्य कार्यक्रम के साथ एक दिन सत्संग का आयोजन किया गया था जिसमें बिड़ला बन्धु भी बड़े प्रेम से सम्मिलित हुए।

सम्वत् १९९६ माघ सुदी ७ को आप की माता जी का देहान्त ८२ वर्ष की आयु में बीकानेर में हुआ। उनकी बीमारी के दिनों में और अन्त समय तक आप उनकी सेवा में उपस्थित रहे। उनके अन्त समय में सारे परिवार को करांची से बीकानेर बुला लिया गया था और सब मृत्युशय्या के पास उपस्थित थे। उनके क्रियाकर्म के सम्बन्ध में गरुड़ पुराण के बदले में आपने गीता अर्थ सहित पढ़कर सारे परिवार के लोगों को दस दिनों तक सुनाई। उनके पीछे मृत्युभोज नहीं किया गया और न किसी रूढ़ि का पालन किया गया।

पाकिस्तान का निर्माण

सिन्ध को बम्बई से अलग करके जब पृथक प्रान्त बनाया गया तभी से आपने पाकिस्तान के बनने की

स्पष्ट कल्पना कर ली थी और आपका निश्चित मत था कि पाकिस्तान में हिन्दुओं को भयानक अन्याय, अत्याचार और यातनाओं को भोगना पड़ेगा। आपकी यह भी स्पष्ट सम्मति थी कि हिन्दुओं को सिन्ध में से अपना उद्योग व्यापार और व्यवसाय समेट कर हिन्दू बाहुल्य प्रान्तों में जाकर बस जाना चाहिए और वहाँ ही उद्योग, व्यापार व व्यवसाय करना चाहिए। आपका कांग्रेस की नीति और मुसलमानों पर बिल्कुल भी विश्वास न था। आप जिन्ना को बहुत ही चालाक और होशियार राजनीतिज्ञ मानते थे। आपका यह भी विश्वास था कि उनके सामने गांधी जी और कांग्रेस की एक भी न चलेगी। गांधी जी जब जिन्ना को मनाने के लिए बम्बई गए तब आपको पाकिस्तान के बनने में सन्देह न रहा और आप सिन्ध में बना रहना बहुत बड़ी भूल समझने थे। कुछ हद में आप अपने ये विचार सब पर प्रगट किया करते थे। इसी कारण मोहता नगर की खांड की मिल और खेती की जमीन बेच दी गई। उसके बदले में अहमदाबाद में "भारत सूर्योदय मिल" का काम ले लिया गया और इन्दौर में "मालवा वनस्पति एण्ड कैमिकल" कारखाना खोलने का निश्चय किया गया। कलकत्ता में कोयला खानों का काम बढ़ाया गया। बम्बई में भी नया दफ्तर खोला गया। बीकानेर, जोधपुर और जयपुर में भी काम बढ़ाया गया। अजमेर में अभ्रक की खानों का काम शुरू किया गया, फिर भी करांची के मकानों की विशाल सम्पत्ति और फैले हुए काम को एकाएक समेटा न जा सका। सिन्ध के मुसलमान मन्त्री शिवरतन जी के बड़े मिलने-जुलने वाले और मित्र भी थे। वे उनको हमेशा यह विश्वास दिलाया करते थे कि हिन्दुओं के साथ कोई अन्याय व ज्यादती न होगी। इसलिए शिवरतन जी, चांदरतन जी और अन्य युवकों के दिमाग में आपकी बात पूरी तरह बैठ नहीं सकी। वे यह भी मानते थे कि स्वतन्त्र राज्य की राजधानी बन जाने से करांची का तो विकास ही होगा और व्यापार व्यवसाय करने के अवसर बहुत ही बढ़ जायेंगे। करांची का सारा काम-काज समेटा न गया और सारी जायदाद बेची न गई। बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी तथा लोहे के कारखाने का काम पिछले ही वर्षों में बहुत अधिक बढ़ाया गया था। दूसरे महायुद्ध के दिनों में उसके लिए अनुकूलता भी काफी पैदा हो गई थी। लेकिन, पाकिस्तान के निर्माण की घोषणा होते ही स्वप्न की तरह सारी दुनिया बदल गई। जो कुछ आप कहा करते थे वह कठोर सत्य एवं ठोस वास्तविकता बन कर सामने आ गया। मुसलमानों के अत्याचार शुरू होने और भगदड़ मचने पर कुछ सम्पत्ति बेचनी शुरू की गई; परन्तु इतनी विशाल और चारों ओर फैली हुई जायदाद का एकाएक बेचना सम्भव न था। कुआ बन्दर के "मोहता पैलेस" पर वहाँ की सरकार ने पाकिस्तान बनने के ही दिन कब्जा कर लिया था। सब सामान समेट कर वहाँ से व्यवस्थित रूप से लाने का अवसर नहीं दिया गया। बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी तथा विशाल कारखाने का कुछ भी किया नहीं जा सका।

श्री शिवरतन जी के निरन्तर प्रयत्नों के कारण तीन वर्ष बाद कोठी, बिल्डिंग, धर्मार्थ ट्रस्ट के दो मकानों, 'बड़ी कपड़ा मार्केट' और 'बाजार बिल्डिंग' का अदला-बदला हो गया।

एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस

स्वर्गीय महाराजा गंगासिंह जी ने राज्य सभा के अतिरिक्त राज्य प्रबन्ध के लिए एक एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस स्थापित की थी। इसमें सरकारी और गैर सरकारी सदस्य नियुक्त किए गए थे। राज्य प्रबन्ध के सम्बन्ध में उसमें विचार-विमर्श किया जाता था। केवल दो वर्ष तक यह चल सकी। शिवरतन जी की अनुपस्थिति में आप भी उसके एक गैर सरकारी सदस्य थे और आप अत्यन्त निर्भयतापूर्वक राज्य की त्रुटियों की चर्चा करके उनके उपाय भी सुझाया करते थे। इसी कांफ्रेंस में आपने जागीरों में जागीरदारों द्वारा चलती प्रथा पर की जाने वाली ज्यादतियों, बेगार, लागबाग, दास दासी आदि पर होने वाली मनमानी अन्धाधुन्धी की चर्चा की। इस पर बड़े-बड़े जागीरदार, जो कि राज्य के ऊँचे पदों पर भी नियुक्त थे आप पर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने आप

पर नाना प्रकार के आरोप लगाते हुए आपको बागी तक कह दिया। आपने निर्भय होकर फिर उनका उत्तर दिया। महाराज मान्धाता सिंह उन दिनों में राज्य के दीवान और उस कांफ्रेंस के सभापति थे। उन्होंने आपकी बहुत सी बातों को सच बताकर उनका समर्थन किया और आपकी बड़ी सराहना की।

गोले गोलियों का उद्धार

सामन्ती शासन के प्रदेशों में दास दासी रखने की प्रथा का बड़ा जोर था। राजाओं के पास सैंकड़ों की संख्या में दास दासी जो "गोले गोली" कहलाते थे रहते थे। जागीरदारों के पास उनकी जागीरों के अनुसार कोड़ियो व दर्जनों और बहुत छोटों के पास वे कम संख्या में रहते थे। परन्तु थोड़ी सी जमीन के मालिक के पास भी एक दो गोला गोली अवश्य ही होते थे। इन गोले गोलियों को वे पशुओं की तरह अपनी सम्पत्ति मानते थे। गोलियाँ घर के काम काज करने के अतिरिक्त उनकी भोग सामग्री भी थीं। जिनके साथ सब तरह का अनाचार व पापाचार किया जाता था। लड़कियों के दहेज में भी ये आमतौर पर दिये जाते थे। इन पर वे लोग मनमाना अत्याचार करते थे। राज्य और जागीरों के चले जाने पर यद्यपि यह राक्षसी प्रथा कम हो गई है पर अभी तक इसका अन्त नहीं हुआ है। अनेक अवसर ऐसे आए जब कई गोले गोलियां अपने स्वामियों के अमानुषी अत्याचारों की यातनाएँ न सह सकने के कारण भाग कर आपकी शरण में आए और आपने उनको अपने यहाँ आश्रय दिया। उनके स्वामियों को पता लगने पर वे अपनी उस सम्पत्ति को उन्हे लौटाने के लिये आप पर दबाव डालते। इस पर आपका यही उत्तर होता था कि "अगर वे अपनी खुशी से जाना चाहें तो आपके पास जा सकते हैं। मैं इनको जबरदस्ती आपके सुपुर्द नही कर सकता। आप चाहें तो कानूनी कारवाई कर सकते हैं।" कानूनी दावा करके वे उनको नही ले जा सकते थे। इसलिए वे बहुत बिगड़ते थे और आपसे दुश्मनी रखते थे। कई प्रकार की तकलीफें देने के षडयन्त्र करते थे। महाराजा गंगासिंह जी को भी शिकायत की जाती थी परन्तु आप उनसे कभी नहीं घबराए और बेचारे गोले गोलियों का संरक्षण करते रहे। उन दिनों में बीकानेर के दीवान सर मनुभाई मेहता थे। वे आपके बड़े सहायक थे।

राज्य की राज्य सभा

उससे पहले संवत १९९९ में महाराजा गंगासिंह जी ने जब राज्य सभा कायम की थी तब आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी मोहता को उसका एक सदस्य नियुक्त किया था। उनका महाराजा गंगासिंह जी, राज्य के अधिकारियों तथा सरदारों पर अच्छा प्रभाव था। राज्य सभा में उन्होंने अनेक निर्भीक भाषण दिए। बहस में स्वतंत्रतापूर्वक भाग लिया और अनेक उपयोगी विधेयक प्रस्तुत करके नये कानून बनवाए। उनमें 'बाल विवाह और बच्चों के धूम्रपान निषेध कानून, और गरीब कर्जदारों के सुभीते के कानून प्रसिद्ध हैं। वे राज्य सभा का सारा काम आपके परामर्श से किया करते थे। अपने भाषण आदि भी आपको दिखाकर तैयार करते थे और आपकी सम्मति का यथावत पालन करते थे।

श्री शिवरतन जी मोहता की मंत्रिपद पर नियुक्ति

संवत् २००२ के श्रावण मास में आप परिवार के सब लोगों के साथ कराची में थे। तब महाराजा शार्दूलसिंह जी ने आपको और आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी को तार देकर अत्यन्त आग्रह से बीकानेर बुलाया और आपसे राज्य प्रबन्ध में हाथ बंटाने का अनुरोध किया। सिविल सप्लाई विभाग में अव्यवस्था होने के कारण जनता में विशेष असन्तोष फैला हुआ था। उस विभाग का मंत्रिपद सम्भाल कर उसकी व्यवस्था

स्पष्ट कल्पना कर ली थी और आपका निश्चित मत था कि पाकिस्तान
चार और यातनाओं को भोगना पड़ेगा। आपकी यह भी स्पष्ट सम्मति
उद्योग व्यापार और व्यवसाय समेट कर हिन्दू बाहुल्य प्रान्तों में जाकर
व्यापार व व्यवसाय करना चाहिए। आपका कांग्रेस की नीति और मुसल
आप जिन्ना को बहुत ही चालाक और होशियार राजनीतिज्ञ मानते थे।
सामने गांधी जी और कांग्रेस की एक भी न चलेगी। गांधी जी जब जि
आपको पाकिस्तान के बनने में सन्देह न रहा और आप सिन्ध में बना रहन
में आप अपने ये विचार सब पर प्रगट किया करते थे। इसी कारण मोहता
जमीन बेच दी गई। उसके बदले में अहमदाबाद में "भारत सूर्योदय मिल"
में "मालवा वनस्पति एण्ड कैमिकल" कारखाना खोलने का निश्चय किय
काम बढ़ाया गया। बम्बई में भी नया दफ्तर खोला गया। बीकानेर,
गया। अजमेर में अभ्रक की खानों का काम शुरु किया गया, फिर भी
और फैले हुए काम को एकाएक समेटा न जा सका: सिन्ध के मुसलमा
घुलने वाले और मित्र भी थे। वे उनको हमेशा यह विश्वास दिलाया करते
य ज्यादती न होगी। इसलिए शिवरतन जी, चान्दरतन जी और अन्य मुक्त
बैठ नहीं सकी। वे यह भी मानते थे कि स्वतन्त्र राज्य की राजधानी बन
और व्यापार व्यवसाय करने के अवसर बहुत ही बढ़ जायेंगे। करांची का
सारी जायदाद बेची न गई। बी० आर हरमन एण्ड मोहता कम्पनी तथा
वर्षों में बहुत अधिक बढ़ाया गया था। दूसरे महायुद्ध के दिनों में उसके लिए
लेकिन, पाकिस्तान के निर्माण की घोषणा होते ही स्वप्न की तरह सारी दुनि
करते थे वह कठोर सत्य एवं ठोस वास्तविकता बन कर सामने आगया।
और भगदड़ मचने पर कुछ सम्पत्ति बेचनी शुरू की गई; परन्तु इतनी विशा
का एकाएक बेचना सम्भव न था। हवा बन्दर के "मोहता पैलेस" पर वहां
ही दिन कब्जा कर लिया था। सब सामान समेट कर वहां से
गया। बी० आर हरमन एण्ड मोहता कम्पनी तथा विशाल कारखाने का

श्री शिवरतन जी के निरन्तर प्रयत्नों के कारण तीन वर्ष बाद
मकानों, 'बड़ी कपड़ा मार्केट' और 'कासर बिल्डिंग' का अदला-बदला हो

एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस

स्वर्गीय महाराजा गंगासिंह जी ने राज्य सभा के अतिरिक्त रा
कान्फ्रेंस स्थापित की थी। इसमें सरकारी और गैर सरकारी सदस्य नियुक्त
में उसमें विचार-विमर्श किया जाता था। केवल दो वर्ष तक यह चल
आप भी उसके एक गैर सरकारी सदस्य थे और आप अत्यन्त निर्भय
उनके उपाय भी सुझाया करते थे। दूसरी कान्फ्रेंस में आपने जागीरों
जाने वाली ज्यादतियों, बेगार, लागबाग, दास दासी आदि पर होने
इस पर बड़े-बड़े जागीरदार, जो कि राज्य के ऊँचे पदों पर भी नियुक्त

जमाने का आपसे विशेष अनुरोध किया गया। आपके परामर्श पर लोकसेवा की भावना भाव से श्री शिवरतन जी मोहता ने उस विभाग का मंत्री बनना स्वीकार किया। उनकी ओर से दी जाने वाली सुविधाओं से लाभ उठाने की इच्छा बिलकुल भी नहीं थी। राज्य करने के लिए केवल एक रुपया मासिक वेतन स्वीकार किया। अपने ही घर के बाहर के रखा। कोई अरदली या सिपाही रख कर लोगों के मिलने जुलने के लिए आने में रुकावट मोटर का प्रयोग नहीं किया। ६ महीने मेहनत करके सारी व्यवस्था बनाई गई और जनता वस्त्र तथा ईंधन आदि का यथोचित प्रबन्ध किया गया। उन दिनों की सुव्यवस्था को लोग और उसकी सराहना करते हैं। आपने अपने ही यहाँ डीपो खोलकर कपड़ा प्राप्त करने की

श्री शिवरतन जी की मिलनसारिता, सहृदयता, कार्यकुशलता तथा लोकसेवा उनको सरकार ने राव बहादुर की पदवी से सम्मानित किया। उनको आनरेरी मजिस्ट्रेट (जस्टिस आफ पीस) भी बनाया गया था। सरकार की खुशामद अथवा अधिकारियों की चाटुकारिता कारण आपके परिवार में किसी को भी पसन्द नहीं थी। आपका सारा परिवार जिस ढाँचे निर्माण आपने किया और उसके कारण ऐसी कोई हीन भावना कभी किसी में पैदा निरहंकार आपके सारे परिवार में विशेष रूप से पाया जाता है। सरलता, उदारता, स्नेह सद्गुण भी सारे परिवार में ओतप्रोत हैं। पैसे अथवा पूंजी का गर्व किसी को छू नहीं गया और साधारण से साधारण व्यक्ति भी आपके पास सीधा पहुंच कर अपने दुख दर्द तथा व्य कह सकता है और उसके लिए समुचित समाधान प्राप्त किए बिना निराश नहीं लौट सकता संकटापन्नों की तन मन धन से सहायता करने के लिए आप सदैव तत्पर रहते हैं।

देश के अनेक गण्य मान्य नेताओं के साथ आपकी गहरी आत्मीयता रही है। जब के थे तब सनातन धर्म के प्रभावशाली वक्ता व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु जी शर्मा बीकानेर पधारा करते थे और गुण प्रकाशक सज्जनालय की ओर से उनके व्याख्यानों का प्रबन्ध संगीताचार्य स्वर्गीय पंडित विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर बीकानेर में आपकी धर्मशाला में ए थे। संगीताचार्य ठाकुर ओंकारनाथ और पंडित नारायण राव व्यास भी आपके निमंत्रण प बीकानेर पधारे और कई दिनों तक उनके संगीत का आकर्षक कार्यक्रम करवाया गया। स्वर्गीय मदनमोहन जी मालवीय आपसे बहुत प्रेम रखते थे। जब वे बीकानेर महाराज से मिलने पधारते तब आपसे मिले बिना नहीं रहते। जब कराची जाते तो हवा बन्दर के मोहता पैलेस में ठहरते थे। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर उनसे साथ खूब चर्चा होती थी। विश्वविद्यालय के लिए आपने कई बार बड़ी-बड़ी रकमें दान में दीं।

महात्मा गांधी भी कराची में आपके मेहमान हुए थे और उनके साथ आपने कांग्रेस परस्ती नीति के सम्बन्ध में विस्तार से विचार विनिमय किया था। स्वर्गीय देश्ना स्वरूप भाई पर पंजाब केसरी लाला लाजपत राय जी तथा अन्य नेता कराची और बीकानेर में आपके मेहमान रहे

वृद्धावस्था में गर्मी के दिनों में बीकानेर की भीषण गर्मी आपसे सहन नहीं होती थी, स्थान बनने के पहले आप तीन महीने कराची में रहा करते थे। उसके बाद तीन वर्षों तक रहे, फिर सन् १६५१ से हरद्वार आपर गंगा के किनारे के मकानों में रहा करते हैं और सत्संग यहाँ भी चलता रहता है। हरद्वार में तथाकथित साधुओं और महन्तों के अनाचार और पाखण्ड उन लोगों के प्रति इनकी ग्लानि बढ़ती गई।

सन् १९५२ में हरद्वार में "प्रगति संघ" नाम की संस्था बनाई। डा० जगदीश मिश्र कौशल को मन्त्री नियत किया और एक प्रबन्धकारिणी कमेटी बनाई। इसकी एक शाखा दिल्ली में स्थापित की और एक शाखा बीकानेर में स्थापित की। दोनों जगह प्रबन्धक कमेटियां बनाई, परन्तु कार्यकर्ताओं की शिथिलता के कारण यह संस्था दो तीन साल चलकर बन्द हो गई। "प्रगति संघ" के नाम से चतुर्मुखी क्रान्ति के कई लेख, पर्चे और पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जिनमें साधुओं, पन्डे, पुजारियों और गुरु आचार्यों के काले कारनामों का भी भंडा-फोड़ किया गया। हरद्वार के भोलागिरि आश्रम से तीन युवक साधुओं को निकाल कर सांसारिक जीवन में लगाया गया। जिनमें एक राणा ध्रुव जंग बहादुर नैपाल वाला अभी मिलिट्री पुलिस में शिक्षा पाकर एक आफिसर बन गया है। दूसरा बादल तालपत्र नाम का एक बंगाली लड़का अपने भाइयों के साथ व्यापारिक काम में सम्मिलित हो गया और तीसरा चन्द्रेश्वर प्रसाद शर्मा हाथ से कपड़े बुनने का काम सीख कर अब "भगरा उत्पादक सहकारी" समिति में काम कर रहा है।

कई वर्षों से आपके बवासीर की तकलीफ रहती थी। देहरादून में एक रिटायर्ड बंगाली सज्जन राय साहब चक्रवर्ती बवासीर की चिकित्सा करते थे। मंगलवार को सुबह के समय वे रोगियों को एक छोटे से चीनिया केले के टुकड़े में दवाई डालकर मुँह के अन्दर इस तरह अंगुलियों से फेंकते थे कि वह सीधी गले के नीचे चली जाती थी। एक ही बार यह दवाई देने से अधिकतर आराम हो जाता था। अगर किसी के थोड़ी कसर रह जाती तो एक साल बाद फिर वही दवाई देते थे जिससे बिलकुल आराम हो जाता था। मोहता जी संवत् २००० में हरिद्वार से देहरादून गए और चक्रवर्ती जी से दवाई ली। चिकित्सा की फीस वे बिलकुल नहीं लेते थे। मोहताजी ने उनको कुछ न कुछ देना चाहा पर उन्होंने कुछ नहीं लिया। चिकित्सा से बहुत लाभ हुआ परन्तु कुछ कमी रही। इसलिए दूसरे साल फिर उनके पास गए और उनसे दवाई ली। आपने उनसे दवाई बताने का आग्रह किया जिसे आप अपने औषधालय में बनाना चाहते थे पर उन्होंने उसका भेद नहीं दिया। इतना ही कहा कि पहाड़ों में बहुत खोज करने से मिलती है। उस समय आपने उनको १५००) दिए। थोड़े समय बाद वे मर गए और दवाई का भेद अपने साथ ले गए। अपने पुत्र को भी नहीं बताया। मोहता जी को बिलकुल आराम हो गया। उसके बाद अब तक कभी तकलीफ नहीं हुई।

इन्हीं वर्षों में आप देहरादून आने पर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक श्री मानवेन्द्रनाथ राय से उनके निवास स्थान पर जाकर मिले। पहली ही मुलाकात में परस्पर इतना गहरा सम्बन्ध कायम हो गया कि अनेक विषयों पर आपस में पत्र-व्यवहार द्वारा और प्रत्यक्ष मिलने पर भी विचार विनिमय होता रहा। उनके साथ आपका सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई आदि जाने पर वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों से आप प्रायः विचार विनिमय करते रहते हैं। पिछले कुछ समय से लम्बी यात्रा न कर सकने के कारण ग्रीष्म ऋतु के सिवाय आपने बीकानेर से बाहर जाना प्रायः छोड़ दिया है।

व्यक्तित्व, स्वभाव और चरित्र

आपका स्वभाव अत्यन्त सरल, साधु, सहृदय और मिलनसार है। छल कपट से आप बहुत दूर हैं। एकाएक किसी पर अविश्वास नहीं करते। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी आपको "नरसी मेहता" की उपमा दिया करते थे। संकटापन्न की सहायता करना आपका स्वभाव बन गया है। लाखों रुपया आपने लोकोपकार के लिए खर्च किया है और उसमें आप निरन्तर लगे रहे हैं। सार्वजनिक जीवन में आपका स्वभाव संकोची है। प्रदर्शन-विज्ञापन और प्रकाशन से आप बहुत दूर रहते हैं। इतनी लोकसेवा और लोकोपकार करते हुए भी उनके बारे में समाचार पत्रों

चिरंजीव ब्रजरत्नजी मोहता (शुभ विवाह के अवसर पर)

सन् १९५२ में हरद्वार में "प्रगति संघ" नाम की संस्था बनाई। डा० जगदीश मित्र कौशल को मन्त्री नियत किया और एक प्रबन्धकारिणी कमेटी बनाई। इसकी एक शाखा दिल्ली में स्थापित की और एक शाखा बीकानेर में स्थापित की। दोनों जगह प्रबन्धक कमेटियां बनाईं, परन्तु कार्यकर्ताओं की शिथिलता के कारण यह संस्था दो तीन साल चलकर बन्द हो गई। "प्रगति संघ" के नाम से चतुर्मुखी क्रान्ति के कई लेख, पर्चे और पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं जिनमें साधुओं, पन्डे, पुजारियों और गुरु आचार्यों के काले कारनामों का भी भंडा-फोड़ किया गया। हरद्वार के भोलागिरि आश्रम से तीन युवक साधुओं को निकाल कर सांसारिक जीवन में लगाया गया। जिनमें एक राणा ध्रुव जंग बहादुर नैपाल वाला अभी मिलिट्री पुलिस में शिक्षा पाकर एक आफिसर बन गया है। दूसरा बादल तालपत्र नाम का एक बंगाली लड़का अपने भाइयों के साथ व्यापारिक काम में सम्मिलित हो गया और तीसरा चन्द्रेश्वर प्रसाद शर्मा हाथ से कपड़े बुनने का काम सीख कर अब "मगरा उत्पादक सहकारी" समिति में काम कर रहा है।

कई वर्षों से आपके बवासीर की तकलीफ रहती थी। देहरादून में एक रिटायर्ड बंगाली सज्जन राय साहब चक्रवर्ती बवासीर की चिकित्सा करते थे। मंगलवार को सुबह के समय वे रोगियों को एक छोटे से चीनिया केले के टुकड़े में दवाई डालकर मुँह के अन्दर इस तरह अंगुलियों से फेंकते थे कि वह सीधी गले के नीचे चली जाती थी। एक ही बार यह दवाई देने से अधिकतर आराम हो जाता था। अगर किसी के थोड़ी कसर रह जाती तो एक साल बाद फिर वही दवाई देते थे जिससे बिलकुल आराम हो जाता था। मोहता जी संवत् २००० में हरिद्वार से देहरादून गए और चक्रवर्ती जी से दवाई ली। चिकित्सा की फीस वे बिलकुल नहीं लेते थे। मोहताजी ने उनको कुछ न कुछ देना चाहा पर उन्होंने कुछ नहीं लिया। चिकित्सा से बहुत लाभ हुआ परन्तु कुछ कमी रही। इसलिए दूसरे साल फिर उनके पास गए और उनसे दवाई ली। आपने उनसे दवाई बताने का आग्रह किया जिसे आप अपने औषधालय में बनाना चाहते थे पर उन्होंने उसका भेद नहीं दिया। इतना ही कहा कि पहाड़ों में बहुत खोज करने से मिलती है। उस समय आपने उनको १५००) दिए। थोड़े समय बाद वे मर गए और दवाई का भेद अपने साथ ले गए। अपने पुत्र को भी नहीं बताया। मोहता जी को बिलकुल आराम हो गया। उसके बाद अब तक कभी तकलीफ नहीं हुई।

इन्हीं वर्षों में आप देहरादून जाने पर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक श्री मानवेन्द्रनाथ राय से उनके निवास स्थान पर जाकर मिले। पहली ही मुलाकात में परस्पर इतना गहरा सम्बन्ध कायम हो गया कि अनेक विषयों पर आपस में पत्र-व्यवहार द्वारा और प्रत्यक्ष मिलने पर भी विचार विनिमय होता रहा। उनके साथ आपका सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई आदि जाने पर वहां के प्रमुख व्यक्तियों से आप प्रायः विचार विनिमय करते रहते हैं। पिछले कुछ समय से लम्बी यात्रा न कर सकने के कारण ग्रीष्म ऋतु के सिवाय आपने बीकानेर से बाहर जाना प्रायः छोड़ दिया है।

व्यक्तित्व, स्वभाव और चरित्र

आपका स्वभाव अत्यन्त सरल, साधु, सहृदय और मिलनसार है। छल कपट से आप बहुत दूर हैं। एकाएक किसी पर अविश्वास नहीं करते। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी आपको "नरमो मेहता" की उपमा दिया करते थे। संकटापन्न की सहायता करना आपका स्वभाव बन गया है। लाखों रुपया आपने लोकोपकार के लिए खर्च किया है और उसमें आप निरन्तर लगे रहते हैं। सार्वजनिक जीवन में आपका व्यवहार संकोची है। आत्म-विज्ञापन और प्रदर्शन से आप बहुत दूर रहते हैं। इतनी लोकसेवा और लोकोपकार करते हुए भी उनके बारे में समाचार पत्रों

में बहुत कम समाचार प्रकाशित हुए हैं। अनेक समाचार पत्रों को भी आपकी भरपूर सहायता प्राप्त हुई परन्तु उनमें भी प्रशंसा आदि प्रकाशित नहीं हुई। दिखावे और बनावट से आप बहुत दूर हैं। बीकानेर के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य कार्यों में भी आपने प्रमुख रूप से भाग लिया है। बीकानेर में सामाजिक और सार्वजनिक जीवन का सूत्रपात करनेवालों में आपका प्रमुख स्थान है और लोकोपकारी सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना का आपने शुभ श्री गणेश किया, परन्तु आपकी नीति यह रही कि जो एक हाथ से दिया या किया जाय उसका पता दूसरे हाथ को भी नहीं लगना चाहिए। निस्वार्थ भावना आप में ओत-प्रोत है। दृढ़ निश्चय के आप धनी हैं। अपने संकल्प से कभी विचलित नहीं हुए। लोकापवाद से कभी भयभीत नहीं हुए। धर्मान्धता, रूढ़िवाद और परम्परावाद में आपका तनिक सा भी विश्वास नहीं है। आपकी वृत्ति अत्यन्त सरल, पवित्र व सात्विक है। बिना कारण क्रोध करना और भावावेश में आना आप जानते ही नहीं। जमुना के प्रवाह की तरह आपके जीवन में अद्भुत समरसता पाई जाती है। दुख में विषाद और सुख में उल्लास व हर्षोन्माद प्रायः आपको नहीं होता। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन कभी नहीं बिगड़ने देते। सादगी, सहिष्णुता और सहृदयता आदि सद्गुण स्वभाव सिद्ध हैं।

संतुलित वृत्ति

व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र में भी आपके इस स्वभाव का अनेक बार लाभ परिणाम मिला। कोई बड़ा कदम उठाने अथवा नया काम-काज शुरू करने में कभी जल्दबाजी नहीं की। खूब सोच विचार कर अत्यन्त संतुलित वृत्ति से सदा काम लिया। इससे कभी-कभी अपरिमित लाभ हुआ तो हानि भी कुछ कम नहीं हुई। अपने पिताजी और भाई श्री शिवरतन जी मोहता की तरह आपने किसी काम में एकाएक हाथ कदाचित ही डाला होगा। आज कल की भाषा या परिभाषा में जिसको साहस कहा जाता है उसमें जल्दबाजी में आपने कभी कोई निर्णय नहीं किया। सब बातों का आगा-पीछा आप खूब सोचते हैं। किसी भी काम के प्रारम्भ करने में आप यह खूब सोच लेते हैं कि उसके लिए कितनी शक्ति की आवश्यकता है, वह शक्ति अपने में है कि नहीं, सफलता की क्या संभावना है, उसमें कितनी रकम लगानी होगी, कितनी रकम का फैलाव करना होगा और उसका प्रबन्ध हो सकेगा कि नहीं ? सोच-विचार किए बिना आप कभी कुछ कहते नहीं और कहने के बाद पीछे हटते नहीं। अपनी बात के वजन का आप को हमेशा ध्यान रहता है। अधमनेपन से किसी काम को करना आप जानते नहीं। किसी काम को शुरू किया तो उसमें अपने को सर्वतोभावेन लगा दिया और उसको सफल बनाने में कुछ भी उठा न रखा। यदि कभी किसी काम से हाथ खींचना पड़ गया तो उसको समेटने में भी कुछ संकोच नहीं किया। जय पराजय का अहंकार अथवा प्रतिष्ठा की मिथ्या भावना आपके मार्ग में कभी बाधक नहीं बनी।

संकोची स्वभाव से हानि

जीवन में ऐसे कई प्रसंग आए जबकि नया काम शुरू करके बहुत बड़ा मुनाफा पैदा किया जा सकता था; परन्तु आपने मुनाफे के प्रलोभन में फंसकर एकाएक नया काम शुरू नहीं किया और अनेक अच्छे अवसर खो दिये। डार्लिंग साहब के साथ कलकत्ता में नया काम शुरू करने का प्रायः निश्चय हो चुका था। बातचीत करने के लिए पिताजी ने आपको बम्बई भेजा। छोटे भाई मूलचन्द जी मोहता की मृत्यु से घर के सब लोग खिन्न थे। आपके हृदय पर भी उस मृत्यु की बड़ी चोट लगी थी, उसीकी बात कह कर आपने डार्लिंग साहब को टाल दिया। उसने बहुत कहा कि आप लोगों के ही कहने पर मैंने विलायत वालों के साथ पत्र-व्यवहार करके उनकी स्वीकृति प्राप्त की है। आप कुछ समय बाद विचार करने की बात कहकर टाल आए। यदि आपके स्थान पर कोई दूसरे

मोहता पैलेस कराची में मोहता परिवार।
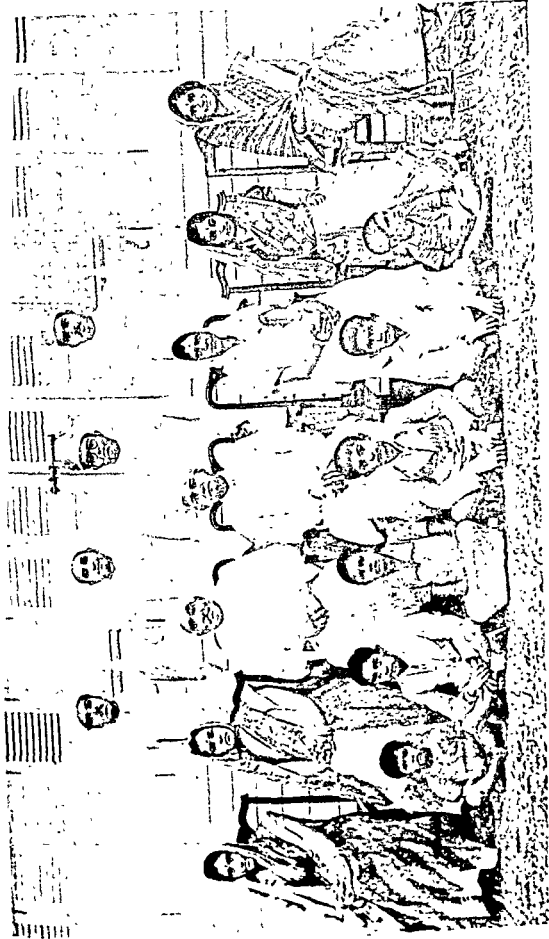
खड़े हुए (बाएं से दांए) श्री सूरज रतन जी मोहता, श्री मदन गोपाल जी दम्माणी, श्री गिरधर लाल जी मोहता, श्री ब्रजरतन जी मोहता,
कुर्सी पर (,, ,,) श्रीमती रतन देवी सूरजरतन मोहता, श्रीमती रतन देवी मदन गोपाल जी दम्माणी, रा० ब० शिवरतन जी मोहता, मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता, श्रीमती सरस्वती देवी शिवरतन मोहता, श्रीमती सत्यवती देवी गिरधर लाल मोहता, श्रीमती राधा देवी ब्रजरतन मोहता। (जमीन पर बैठे हुए) श्री राजेन्द्र कुमार मोहता, श्री शशि कुमार मोहता, सुशीला कुमारी दम्माणी, श्री रवि कुमार मोहता, श्री कृष्ण कुमार दम्माणी, राजकुमारी मोहता।
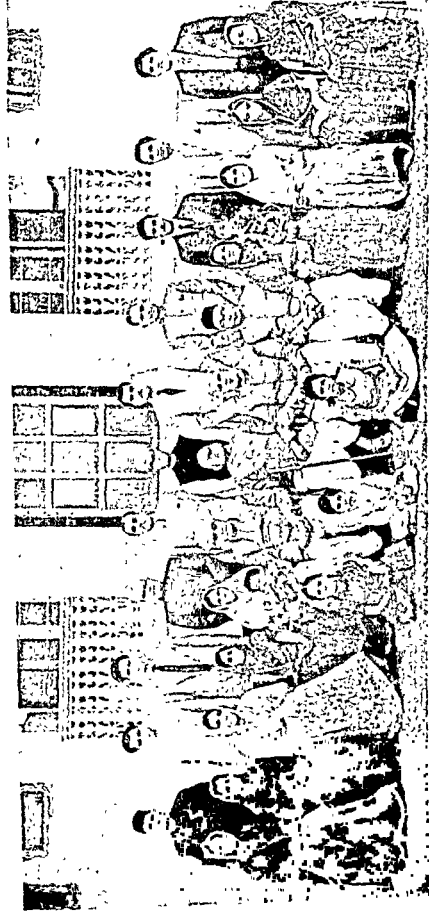
मोहता परिवार मोहता भवन बीकानेर में जनवरी १९५७। मोहता जी की दोहिती श्रीमती रतन बाई दम्माणी के सुपुत्र चि० कृष्णकुमार के शुभ विवाह के अवसर पर एकत्रित हुए कुटम्बीजन।

खड़े हुए (बांए से दांए) श्री नरसमाल जी डागा। श्री रविकुमार जी मोहता, श्री कृष्णकुमार जी दम्माणी, श्री दुर्गादास जी मूंधड़ा, श्री सूरज रतन जी मोहता, श्री गिरधर लाल जी मोहता, श्री बजरतन जी मोहता, श्री मदन गोपाल जी दम्माणी, श्री शशिकुमार जी मोहता, श्री बालेश्वरदास जी सोईवाल, श्री राजेन्द्र कुमार जी मोहता।

बैठे हुए (बांए से दांए)

१. श्रीमती शोभा देवी शशिकुमार मोहता, २. श्रीमती विमला देवी रवि कुमार मोहता, ३. श्रीमती रतन देवी सूरजरतन मोहता, ४. श्रीमती गायत्री देवी गिरधर लाल मोहता ५. श्रीमती सरस्वती देवी शिवरतन मोहता, (गोद में श्री आनन्दकुमार सूरजरतन मोहता) श्री शिवरतन जी मोहता, श्री रामगोपाल जी मोहता, श्री चांदरतन जी मूंधड़ा, श्री बालगोविन्द दास जी सोईवाल, श्रीमती रतन देवी मदन गोपाल जी दम्माणी, (गोद में श्री सुरेन्द्र कुमार रविकुमार मोहता), श्रीमती राधा देवी बजरतन मोहता, श्रीमती कान्ता देवी कृष्णकुमार दम्माणी, श्रीमती सुशीला देवी बालेश्वर दास सोईवाल।

नीचे बैठे हुए—इन्दुकुमारी मोहता, वीरेन्द्रकुमार मोहता, सरोजकुमारी दम्माणी।

मोहता जी के पौत्र

बाएँ से—(१) श्री शशिकुमार मोहता, (२) श्री रविकुमार मोहता (गोद में चि० आनन्दकुमार), (३) श्री राजेन्द्रकुमार मोहता

(सब के आगे खड़े

सर लैसलोट ग्रौर लेडी ग्राहम के मोहता मार्केट पधारने पर लिया गया चित्र ।

कराची की बड़ी कोठी व कपड़े की दुकानों के स्टाफ के मध्य मोहता जी संवत् १६७१

बांए से दाएं (कुर्सी पर) श्री कृष्ण गोपाल जी श्रोझा, श्री मोकराम जी शिकारपुरी, श्री चुन्नीराम जी गावा, श्री गोविन्ददास जी डागा, श्री राम गोपाल जी मोहता, राव बहादुर श्री गोवर्धन दास जी मोहता (उनकी गोद में चि० गिरधर लाल) रा० ब० शिवरतन जी मोहता, श्री राम रतन जी मूंदड़ा, श्री रामेश्वर दासजी जाजला, श्री शिवगोपाल जी मूंदड़ा और श्री हेम चन्द जी सिन्धी, नीचे बीच में बैठी हुई श्री शिवरतन जी की पुत्री स्वर्गीया सहोदरा बाई

व्यापार, व्यवसाय और उद्योग

व्यापार-व्यवसाय आपका वंशानुगत अध्यवसाय था। आपके पिता जी ने उसको खूब चमकाया था। बीकानेर तो केवल जन्म स्थान था। व्यापार-व्यवसाय के लिए वहाँ कोई क्षेत्र नहीं था। जैसे राजस्थान के अन्य अनेक स्थानों से व्यापार व्यवसाय के निमित्त राजस्थानी अथवा मारवाड़ी समाज के साहसी और अध्यवसायी लोग देश में दूर-दूर चारों ओर फैल गये, वैसे ही बीकानेर के भी कुछ साहसी और अध्यवसायी लोग देश में चारों ओर पहुंच गये। आज के रेल मोटर तथा हवाई जहाज और फोन, रेडियो तथा टेलीविजन आदि के युग के लोग उन दिनों के इन साहसी एवं अध्यवसायी लोगों के पुरुषार्थ की कल्पना भी नहीं कर सकते। इन्होंने पैदल, ऊँटों व बैलगाड़ियों के सहारे व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में जो दिग्विजय की वह अत्यन्त विस्मयजनक है। तिलस्मी कहानी की तरह इनके अद्भुत यात्रा विवरण भी अत्यन्त आश्चर्यप्रद हैं। कभी-कभी तो उनमें जादूगर की कहानियों का सा रोचक विवरण मिलता है। आपके पिता जी इसी प्रकार ऊँटों पर सवार होकर बीहड़ जंगलों और सूखे रेगिस्तानों को पार कर बहावलपुर होते हुए कराची पहुंचे थे। वहाँ उन्होंने व्यापार-व्यवसाय द्वारा अपने को समृद्ध बनाने के साथ-साथ कराची नगर को भी अत्यन्त सम्पन्न बनाने में यशस्वी भाग लिया। मोहता परिवार को वर्तमान कराची के निर्माताओं में गिना जा सकता है। वहाँ के व्यापार-व्यवसाय को उन्नत बनाने, विशाल भवनों के निर्माण करने और समुद्र को पीछे धकेल कर बसाई गई बस्ती को आबाद करने का श्रेय आपके पिता जी को प्राप्त है। वहाँ का कपड़ा व्यवसाय और अत्यन्त विशाल कपड़ा मार्केट उनकी ही सूझ बूझ और अध्यवसाय के परिणाम थे। बी० आर० हरमन मोहता एंड कम्पनी का विशाल लोहे का कारखाना और मोहता नगर की चीनी मिल तथा गन्ने की विशाल खेती तो आपके भाई राव बहादुर श्री शिवरतन जी की कल्पना और हिम्मत का परिणाम था।

कराची से मोहतों का व्यापार-व्यवसाय सारे पंजाब, दिल्ली, कलकत्ता, बंगाल, उत्तर प्रदेश और बम्बई तथा सारे उत्तरी भारत में फैल गया। बाद में अहमदाबाद, मध्य भारत और राजस्थान के विविध स्थानों में भी उसका फैलाव हुआ। औद्योगिक क्षेत्र में मोहतों की भी धाक जम गयी और देश के विविध स्थानों में निर्माण (कंस्ट्रक्शन) के अनेक बड़े-से-बड़े ठेके लिये गये। कोयला और अभ्रक की खानों का काम भी मोहतों ने अपने हाथ में लिया। अनेक उद्योग शुरू किये गये। औद्योगिक क्षेत्र में मोहता नाम को चमकाने का श्रेय आपको और आपके साहसी भाई श्री शिवरतन जी को है। देश में व्यापारी, व्यवसायी और औद्योगिक क्षेत्र में जो नाम प्रमुख रूप से लिये जाते हैं उनमें मोहता नाम भी अपना स्थान रखता है।

व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा दीक्षा

आपका अपना वंशानुगत व्यापार-व्यवसाय, मुख्यतः कपड़े और सराफे का था। उसकी शिक्षा-दीक्षा आपने पिता जी के साथ रह कर कराची में क्रियात्मक रूप से प्राप्त की थी। आज की तरह व्यापार की शिक्षा देने वाले न कोई विद्यालय अथवा महाविद्यालय थे और न सरकार की ओर से उसकी शिक्षा अथवा प्रशिक्षा देने के लिए कोई ऐसा प्रबन्ध था। पंडितों व पाधों की पाठशाला में गिनती, पहाड़े और जोड़-बाकी करना सीख लेने वाले युवक अपने पूर्वजों की दुकानों पर बैठकर व्यापार व्यवसाय की शिक्षा-दीक्षा लेकर उसमें पूरे निष्णात बन

६

व्यापार, व्यवसाय और उद्योग

व्यापार-व्यवसाय आपका वंशानुगत अध्यवसाय था। आपके पिता जी ने उसको खूब चमकाया था। बीकानेर तो केवल जन्म स्थान था। व्यापार-व्यवसाय के लिए वहाँ कोई क्षेत्र नहीं था। जैसे राजस्थान के अन्य अनेक स्थानों से व्यापार व्यवसाय के निमित्त राजस्थानी अथवा मारवाड़ी समाज के साहसी और अध्यवसायी लोग देश में दूर-दूर चारों ओर फैल गये, वैसे ही बीकानेर के भी कुछ साहसी और अध्यवसायी लोग देश में चारों ओर पहुंच गये। आज के रेल मोटर तथा हवाई जहाज और फोन, रेडियो तथा टेलीविजन आदि के युग के लोग उन दिनों के इन साहसी एवं अध्यवसायी लोगों के पुरुषार्थ की कल्पना भी नहीं कर सकते। इन्होंने पैदल, ऊँटों व बैलगाड़ियों के सहारे व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में जो दिग्विजय की वह अत्यन्त विस्मयजनक है। तिलस्मी कहानी की तरह इनके अद्भुत् यात्रा विवरण भी अत्यन्त आश्चर्यप्रद हैं। कभी-कभी तो उनमें जादूगर की कहानियों का सा रोचक विवरण मिलता है। आपके पिता जी इसी प्रकार ऊँटों पर सवार होकर बीहड़ जंगलों और सूने रेगिस्तानों को पार कर बहावलपुर होते हुए कराची पहुंचे थे। वहाँ उन्होंने व्यापार-व्यवसाय द्वारा अपने को समृद्ध बनाने के साथ-साथ कराची नगर को भी अत्यन्त सम्पन्न बनाने में यशस्वी भाग लिया। मोहता परिवार को वर्तमान कराची के निर्माताओं में गिना जा सकता है। वहाँ के व्यापार-व्यवसाय को उन्नत बनाने, विशाल भवनों के निर्माण करने और समुद्र को पीछे धकेल कर बसाई गई बस्ती को आबाद करने का श्रेय आपके पिता जी को प्राप्त है। वहाँ का कपड़ा व्यवसाय और अत्यन्त विशाल कपड़ा मार्केट उनकी ही सूझ बूझ और अध्यवसाय के परिणाम थे। बी० आर० हरमन मोहता एंड कम्पनी का विशाल लोहे का कारखाना और मोहता नगर की चीनी मिल तथा गन्ने की विशाल खेती तो आपके भाई राव बहादुर श्री शिवरतन जी की कल्पना और हिम्मत का परिणाम था।

कराची से मोहतों का व्यापार-व्यवसाय सारे पंजाब, दिल्ली, कलकत्ता, बंगाल, उत्तर प्रदेश और बम्बई तथा सारे उत्तरी भारत में फैल गया। बाद में अहमदाबाद, मध्य भारत और राजस्थान के विविध स्थानों में भी उसका फैलाव हुआ। औद्योगिक क्षेत्र में मोहतों की भी धाक जम गयी और देश के विविध स्थानों में निर्माण (कंस्ट्रक्शन) के अनेक बड़े-से-बड़े ठेके लिये गये। कोयला और अभ्रक की खानों का काम भी मोहतों ने अपने हाथ में लिया। अनेक उद्योग शुरू किये गये। औद्योगिक क्षेत्र में मोहता नाम को चमकाने का श्रेय आपको और आपके साहसी भाई श्री शिवरतन जी को है। देश में व्यापारी, व्यवसायी और औद्योगिक क्षेत्र में जो नाम प्रमुख रूप से लिये जाते हैं उनमें मोहता नाम भी अपना स्थान रखता है।

व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा दीक्षा

आपका अपना वंशानुगत व्यापार-व्यवसाय, मुख्यतः कपड़े और सराफी का था। उसकी शिक्षा-दीक्षा आपने पिता जी के साथ रह कर कराची में क्रियात्मक रूप से प्राप्त की थी। आज की तरह व्यापार की शिक्षा देने वाले न कोई विद्यालय अथवा महाविद्यालय थे और न सरकार की ओर से उसकी शिक्षा अथवा प्रशिक्षा देने के लिए कोई ऐसा प्रबन्ध था। पंडितों व पाधों की पाठशाला में गिनती, पहाड़े और जोड़-बाकी करना सीख लेने वाले युवक अपने पूर्वजों की दुकानों पर बैठकर व्यापार व्यवसाय की शिक्षा-दीक्षा लेकर उसमें वैसे निष्णात बन

जाते थे उसका एक उत्कृष्ट उदाहरण आपकी व्यापार व्यवसाय में प्राप्त की गयी कुशलता और सफलता है। कराची की दुकान में उठते-बैठते धीरे-धीरे आपने रोकड़, बहीखाते, आढतियों के पत्रों के भुगतान और रोजमर्रा के लेन-देन की खतावणी करते-करते अपने को अपने सारे व्यापार-व्यवसाय का संचालक बना लिया और सारे काम-काज पर नियन्त्रण कर लिया। अंगरेजी में साधारण स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यापारिक पत्र-व्यवहार का अंगरेजी में जो अभ्यास किया वह भी इसी प्रकार दुकान में उठते-बैठते और अंगरेज कर्मचारियों के सम्पर्क में आते हुए किया था। विशेष कुशलता, चतुराई और दूरदर्शिता से काम लेना छोटी ही अवस्था में शुरू कर दिया था और पिता जी को आप पर इतना भरोसा हो गया था कि वे कराची का सारा काम आप पर छोड़ कर महीनों के लिए कराची से बीकानेर अथवा अन्य स्थानों पर चले जाते थे।

कराची में काम-काज का विस्तार

संवत् १९४० के लगभग की घटना है। विलायत में मैनचेस्टर में एफ० स्टेनर कम्पनी का लाल कपड़ा और छींट, चुनड़ी आदि छापने का बड़ा कारखाना था। यह माल वह कम्पनी हिन्दुस्तान में बहुत बड़ी मात्रा में बेचती थी। कलकत्ते में उसका माल बेचने का काम कारतारक कम्पनी करती थी जिसमें श्री तारक नाथ सरकार, उनके बेटे और स्टेनर कम्पनी के बड़े मैनेजर जेम्स कार के भाई हैनरी कार साझेदार थे। श्री जेम्स कार ने अपने कलकत्ता आफिस को लिखा कि कराची का बन्दरगाह शीघ्र ही बहुत उन्नति करेगा। सिंध, पंजाब, मारवाड़ और काठियावाड़ आदि का व्यापार वहाँ से होगा। उधर लाल कपड़े की खपत अच्छी है, वहाँ अपना दफ्तर कायम किया जाना चाहिए। इसलिए वहाँ जाकर उसकी व्यवस्था करो। तब कलकत्ता से तारक नाथ सरकार, उनके बेटे श्री नलिन विहारी सरकार और हैनरी कार साहब कराची गये। दलाल के बिना उनका काम नही चल सकता था इसलिए उन्होंने श्री जगन्नाथ जी और श्री गोवर्धन दास जी को अपने साथ चलने के लिए कहा। उन दिनों में शिवदास जी, जगन्नाथ जी, लक्ष्मी चन्द जी और गोवर्धनदास जी, चारों भाई काम-काज में शामिल थे परन्तु श्री शिवदास जी और श्री लक्ष्मीचन्द जी बीकानेर रहने लग गये थे। श्री जगन्नाथ जी और गोवर्धनदास जी दोनों ही बड़े साहसी और दूरदर्शी थे। उनको काम बढ़ाने का भी बड़ा शौक था। श्री जगन्नाथ जी ने स्वयं कलकत्ता रहना आवश्यक समझ कर गोवर्धनदास जी को उनके साथ कराची भेज दिया। वंश परिचय के विवरण में विदेशी कम्पनियों के काम-काज की उन दिनों की पद्धति के सम्बन्ध में काफी प्रकाश डाला गया है। उनका काम दलालों के बिना नहीं चलता था। कराची के काम के लिए भी दलालों की आवश्यकता थी। मोहता कारतारक कम्पनी के कलकत्ता में परखे हुए अपने दलाल थे। वे लोग कराची में काम शुरू करने का निश्चय करके कलकत्ता लौट आये।

स्टेनर वालों का अपना आदमी डब्लु० बी० जेमसन कलकत्ता में काम करता था। उसको और गोवर्धनदास जी को कराची भेजना तय किया गया। कारतारक कम्पनी की शाखा वहाँ खुल गयी और गोवर्धनदास जी ने भी शिवदास गोवर्धन दास के नाम से अपने सराफे की दुकान खोल ली। वे कारतारक कम्पनी के गारंटी ब्रोकर अथवा बेनियन मुकर्रर हुए। कराची में मोहतों के काम-काज का श्री गणेश यहीं से हुआ और उसमें आशातीत व कल्पनातीत सफलता मिली। लाल कपड़ा खूब खप निकला और भारी आमदनी होनी शुरू हुई। डब्लु० बी० जेमसन बड़ा दूरदर्शी और स्नेही व्यक्ति था। गोवर्धनदास जी को उसने परामर्श दिया कि कराची खूब उन्नति करेगा, जमीन खरीद कर मकान बनाने में बड़ा लाभ होगा। उसके परामर्श पर गोवर्धन दास जी ने फर्म की आर्थिक स्थिति के अनुसार जमीन जगह खरीदनी शुरू की। चार ही वर्षों में सं० १९४४ में इतना बड़ा मकान बना लिया कि उसमें सकुटुम्ब रहने लगे और फर्म, गद्दी तथा कारतारक कम्पनी के वाणिज्य के प्रतिदिन माल के गोदाम भी उसी में हो गये।

कारतारक कम्पनी के भागीदार मि० डब्लु० बी० जेमसन साहब और बाबू नलिन बिहारी सरकार संवत् १९५६ में मोहता बन्धुओं से मिलने के लिए बीकानेर आए।

बैठे हुए बांए से दांए—सेठ लक्ष्मीचन्द जी मोहता, सेठ शिवदास जी मोहता, मि० डब्लु० बी० जेमसन, बाबू नलिन बिहारी सरकार (सुपुत्र बाबू तारकनाथ सरकार), सेठ जगन्नाथ जी मोहता

खड़े हुए (पहली पंक्ति) बांए से दांए—सेठ शिवरतन जी मोहता, सेठ गोवर्धन दास जी मूंदड़ा, राय बहादुर सेठ मदन गोपाल जी मोहता (सुपुत्र सेठ जगन्नाथ जी) सेठ गंगादास जी मोहता (सुपुत्र सेठ शिवदास जी), सेठ सोहन लाल जी मोहता (सुपुत्र सेठ लक्ष्मी चन्द जी)

खड़े हुए (दूसरी पंक्ति) बांए से दांए—सेठ रामगोपाल जी मोहता, सेठ कन्हैया लाल जी (सुपुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द जी मोहता)

एम.० स्पेनर कम्पनी मैनेच्स्टर के बड़े मैनेजर श्री गिल साहब के बीकानेर आने पर लिया गया चित्र।
बाएं से कुर्सी पर—(१) मोहता जी के ताऊजी श्री लक्ष्मीचन्द जी (२) श्रीमती गिल (३) श्रीमान गिल (४) ताऊजी श्री जगन्नाथ जी (५) पिताजी श्री गोवर्धनदासजी (गोद में) श्री गिरधरलाल

गोवर्धनदास जी ने बम्बई जाकर वहाँ भी शिवदास जगन्नाथ के नाम से सराफी और आढ़त की दुकान स्थापित की। कराची और कलकत्ता दोनों का बम्बई के साथ बहुत सम्बन्ध था। कुछ समय बाद अमृतसर में शिवदास गोवर्धनदास के नाम से काम शुरू किया गया।

सम्वत् १९४६ में शिवदास जी ने अपना अलग काम कर लिया और सम्वत् १९५६ में जगन्नाथ जी भी अलग हो गये, परन्तु लक्ष्मीचन्द जी गोवर्धनदास जी शामिल रहे और बटवारा होने के बाद कलकत्ता का काम जगन्नाथ जी ने अपने पास रखा और पंजाब, बम्बई तथा कराची आदि का काम लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी के नाम हो गया। कराची में मारकेट और मकान आदि की जायदाद बहुत फैल गयी थी, उसका बटवारा आपस में पहले ही कर लिया गया था, अलग-अलग होने का यह सारा काम इतने प्रेम से निपटाया गया कि उसका किसी को पता भी न चला।

संवत् १९६४ में लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी भी अलग-अलग हो गये। कराची का सारा काम गोवर्धन दास जी और बम्बई व पंजाब का सारा काम लक्ष्मीचन्द जी के हिस्से रहा। कराची में बड़ी दुकान का नाम मोतीलाल गोवर्धनदास और कपड़े की दुकानों का नाम गोवर्धनदास रामगोपाल तथा रामगोपाल शिव रतन रखा गया। बम्बई की दुकान का नाम लक्ष्मीचन्द कन्हैयालाल और पंजाब की दुकानों का नाम लक्ष्मीचन्द मोहनलाल रखा गया। यह बटवारा भी बड़े प्रेम से हो गया। देशावरों से प्राप्त हुआ हिसाब-किताब बिना किसी आपत्ति के बहीखातों में दर्ज कर लिया गया। परिवार के लिए यह बड़ी शोभा थी कि कभी भी किसी बात पर आपस में कोई कलह, खींचतान अथवा मतभेद नहीं हुआ।

आपके फूफे श्री गोवर्धनदास जी मूंधड़ा कराची, पंजाब और दिल्ली के व्यापारिक काम-काज में साझेदार थे। संवत् १९६२ में उनका देहान्त हुआ तब उनके दो पुत्र रामरतन जी और चांदरतन जी नाबालिग थे। उनका हिस्सा ज्यों का त्यों रखा गया और दोनों को अपनी संभाल में रखा और काम-काज में निपुण किया गया।

संवत् १९५८ में कराची में आपके पिता जी ने एलिगर मोहता कम्पनी कायम करके नया काम शुरू करने का निश्चय किया। उसके लिए आपको बीकानेर से कराची बुलाया गया। एलिगर साहब के विलायत जाने पर उसके मैनेजर का काम पिता जी ने आपको सौंपा। अंगरेजी की उच्च शिक्षा की परीक्षा पास न होते हुए भी आपने विलायती आढ़तियों के साथ अंगरेजी में किया जाने वाला पत्र-व्यवहार बड़ी योग्यता के साथ किया और कम्पनी का सारा काम खूब अच्छी तरह सम्भाल लिया। इस प्रकार पंजाब और कराची का सारा काम-काज आप सम्भालने लग गये।

कराची में आर्थिक संकट

सम्वत् १९६९-७० में कराची के बाजार में आर्थिक स्थिति बड़ी विकट हो गयी। नगद रकम का मिलना मुश्किल हो गया। रुई व अनाज के सिन्धी व्यापारियों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। श्री खेमचन्द्र ईश्वरदास नाम की बहुत पुरानी फर्म पर बहुत बड़ा संकट आया। तब उनसे आपने मारकेट के सामने बन्दर रोड वाला उसका बड़ा मकान २ लाख ८० हजार में खरीद लिया। वही मकान दो वर्षों बाद ४ लाख ७५ हजार में कपड़े के व्यापारियों को इस शर्त पर बेच दिया गया कि वहाँ कपड़े का ही मार्केट बनाया जाए। इससे आप के कपड़े के मार्केट का महत्व और भी अधिक बढ़ गया। यह कपड़े के व्यापार का मुख्य केन्द्र बन गया। चारों ओर रुपये की तंगी और संकट होने पर भी आप के यहाँ रुपये की कमी नहीं थी। इससे व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में आप की साख बहुत बढ़ गयी।

सट्टे फाटके का काम आप की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल था। इसलिए आपने शेयरों, सोने-चांदी, रुई या अन्य किसी पदार्थ का सट्टा फाटका नहीं किया और सबको, विशेष कर अपने कुटुम्ब वालों को भी, उससे रोकते रहे।

बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी

सम्वत् १९७९ के जेठ में बी० आर० हरमन साहब ने अपनी बी० आर० हरमन कम्पनी के लोहे के कारखाने में हिस्सा करने के लिए श्री शिवरतन जी से कहा और उन्होंने आपकी स्वीकृति मांगी। इससे पहले किसी बड़े उद्योग में आपने हाथ न डाला था। परन्तु वैसा काम करने की इच्छा अवश्य थी। आप ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। ११ लाख की पूंजी से प्राइवेट लिमिटेड कंपनी बी० आर० हरमन एण्ड मोहता लिमिटेड के नाम से बनाई गई और वह कारखाना इसी कम्पनी के नाम से खरीद लिया गया। शुरू में इसके ५ लाख ७५ हजार के शेयर अलग-अलग नामों से आपके फर्म में लिये गये। बी० आर० हरमन साहब वृद्धावस्था के कारण इंगलैंड चले गये। वह कुछ शेयर अपने बड़े लड़के सिडनी हरमन और ५० हजार के शेयर छोटे लड़के एवर्ट हरमन के नाम कर गये। कुछ अपने नाम रख लिये। बाद में उसके शेयर आप ने खरीद लिये। सिडनी हरमन के मरने पर उसके शेयर भी उसकी स्त्री से खरीद लिये गये। इस प्रकार कुल मिलाकर १० लाख ५० हजार के शेयर आप लोगों के हाथ में अलग-अलग नाम से आ गये। आप के छोटे भाई श्री शिवरतन जी और चचेरे भाई रामरतन जी मूंधड़ा ने बड़े उत्साह व लगन से कम्पनी का काम चलाया।

मोटरों का काम और आर्थिक संकट

लोहे के कारखाने के साथ-साथ अमरीका और इंगलैंड की अनेक मोटर-कम्पनियों की एजेन्सियां भी ली गयी। ईरान और अफगानिस्तान से मोटरों के बहुत से आर्डर मिलने के कारण सैकड़ों मोटरों के आर्डर इंगलैंड और अमरीका को दे दिये गये। मोटरों का काम कराची मोटर कार कम्पनी के नाम से बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी के अंतर्गत एक विभाग के रूप में किया गया। यह काम सिडनी हरमन के अधीन था। वह बहुत उतावला, हठी, अभिमानी और उद्दंड प्रकृति का था। वह बिना विचारे मोटरों का आर्डर देता गया और बिना सूद का क्रेडिट खोलता गया। अमरीका वालों ने मोटरों का चालान दाम पर नहीं किया और वहां बाजार बहुत मन्दा हो गया। बाजार में मांग नहीं रही। गोदामों में माल इकट्ठा होगया। बैंकों की बिल्टियां छुड़ानी मुश्किल हो गयीं। मोटरों की बहुत बड़ी संख्या गले में रह गयी। बड़ी विकट स्थिति पैदा हो गयी। माल पर डेमरेज खूब पड़ने लगा। श्री शिवरतन जी और श्री रामरतन जी बड़ी चिन्ता में पड़ गये। दूसरी ओर कपड़े का काम भी खूब बढ़ गया। विलायती हुंडी का भाव गिर जाने से कपड़े की कीमतें बहुत गिर गयी थीं। इसलिए लोगों ने सस्ता भाव देखकर बड़े-बड़े आर्डर दिये थे। पर भाव और अधिक गिर गया। दिल्ली के व्यापारियों ने अपने सौदे करके डिलीवरी नहीं ली। रुपये पैसे की बहुत खींच होजाने से बड़ी विकट स्थिति का सामना करना पड़ा। मान-प्रतिष्ठा का बना रहना भी कठिन हो गया। श्री शिवरतन जी कराची की स्थिति को संभालने में जुटे रहे और श्री रामरतन जी ने दिल्ली जाकर वहां की स्थिति को संभाला।

तीसरी मुसीबत यह थी कि कराची में जमीन का सट्टा बहुत जोर का चला था। श्री शिवरतन जी और श्री रामरतन जी ने गार्डन क्वार्टर, ड्रिगरोड क्वार्टर और मनोरंजन रोड में बहुत सी जमीन बहुत ऊँचे भाव पर खरीदी थी। उनमें बहुत रकम उलझ गयी थी। ओमप्रकाश गंगादास और बंसीलाल मोहनलाल से व्याज पर रकमें लेनी थीं। उन्होंने ऊँचे भाव पर बहुत सी जमीनें खरीदी थीं। उस रकम के बदले में

स्वर्गीय सेठ गोवर्द्धनदासजी मूंदड़ा

स्वर्गीय श्री रामरतन जी मूंदड़ा

श्री चाँदरतनजी मूंदड़ा

श्री दुर्गादासजी मूंदड़ा
सुपुत्र श्री रामरतनजी मूंदड़ा

श्री देवकिशनजी मूंदड़ा
सुपुत्र श्री दुर्गादास जी मूंदड़ा

श्री श्रीरतन मूंदड़ा
सुपुत्र श्री देवकिशनजी मूंदड़ा

जमीनें आप के ही गले पड़ीं। यह इतना बड़ा संकट था कि घर के सभी लोग चिन्तित रहने लगे। रामरतन जी तो दिन की बीमारी से पीड़ित होकर बीकानेर चले आये। वहाँ अच्छे से अच्छे इलाज किये गये, कुछ सुधार हुआ। किन्तु सं० १९७७ की दीवाली के १५ दिन बाद उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु की आप के दिल पर बड़ी चोट लगी और आप स्वयं विकट स्थिति का सामना करने के लिये कराची पहुँचे।

विकट स्थिति का सामना

वहाँ पहुँचकर आपने लिडमे की हरकतों पर नियन्त्रण किया। वृद्ध हरमन बहुत ही भला आदमी था। वह आपकी बात कभी नहीं टालता था। उसकी मार्फत आपने उसके लड़के की उद्दंडता की रोक थाम की। मोटरों के बहुत से आर्डर अमरीका तार देकर रद्द किये गये। धीरे-धीरे काम को समेटा गया। कराची में बी० आर० हरमन एण्ड मोहता लिमिटेड की मैनेजिंग एजेन्सी में लारियाँ और मोटर गाड़ियाँ चलाने के लिए एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी कायम की गयी थी। बहुत से साधारण आदमियों ने भी उसके हिस्से खरीदे थे। वह बहुत नुकसान में चली और सारी रकम डूब गयी। गरीब लोगों का यह नुकसान आपको सहन नहीं हुआ। आपने उसके हिस्सों की पूरी रकम चुकाने की घोषणा कर दी। ५० हजार के हिस्सों की रकम वापस की गयी। इससे आपका बड़ा नाम हुआ और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी।

पहले वर्ष तो बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी के काम में बड़ा लाभ हुआ किन्तु दूसरे वर्ष में इस संकट के कारण ऐसी विपरीत स्थिति पैदा हो गयी कि उसको संभालने में कई वर्ष लग गये। लिडमे की मृत्यु के बाद सारा काम-काज आप के हाथ में आने पर कम्पनी का काम फिर चमक उठा। आप के धैर्य व साहस और श्री शिवरतन जी की कार्य-कुशलता व अथक परिश्रम के कारण कम्पनी और कारखाने का देश के लोहे के उद्योग में प्रमुख स्थान बन गया। स्वर्गीय आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय स्वदेशी उद्योग धन्धों के प्रमुख पुरस्कर्ता थे। सन् १९३१ में आप के इस कारखाने को देखकर उन्होंने मोहता बन्धुओं को औद्योगिक क्षेत्र में "आयरन किंग" कहा था। इस विकट आर्थिक संकट में आप ने जिस धैर्य, विश्वास और साहस का परिचय दिया उसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। अन्यथा जिस परिस्थिति का सामना कम्पनी और कारखाने को करना पड़ता उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है।

लगभग ५० वर्षों की आयु के बाद आपने शनैः-शनैः व्यापार, व्यवसाय के कामों से अवकाश लेना आरम्भ किया और अनुमानतः ६० वर्ष की आयु में काम-काज का सारा भार छोटे भाई शिवरतन जी पर छोड़ कर आप ने पूर्ण अवकाश ले लिया, समय-समय पर केवल परामर्श देते रहे।

चीनी मिल

सम्वत् १९९० में राव बहादुर श्री शिवरतन जी ने सिंध में चीनी की मिल स्थापित करने का आयोजन किया और हैदराबाद के मुंशी गोविन्दराम प्रीतमदास के साथ मिलकर उनके गाँव प्रीतमाबाद में मिल स्थापित करने का निश्चय किया। "पायोनियर सिन्ध सुगर मिल्स कम्पनी लिमिटेड" के नाम से एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी कायम की गयी और कम्पनी की ओर से तीन हजार एकड़ जमीन गन्ने की खेती के लिए श्री गोविन्द राम से खरीदी गयी। इसमें बड़ी भूल यह हुई कि स्थान का चुनाव सोच-विचार करके नहीं किया गया था। रेलवे स्टेशन न होने से माल की ढुलाई में बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। कुछ कठिनाइयाँ चीनी मिल का अनुभव न होने के कारण भी उठानी पड़ीं। मैनेजिंग एजेन्सी "मोहता मुंशी कम्पनी लिमिटेड" नाम की थी जिसको दोनों के साझे में कायम किया गया था। घाटा बहुत होने से मुंशी गोविन्दराम ने अपना हाथ खींच

लिया। उसके सारे शेयर आप ने खरीद लिये ग्रौर कम्पनी का नाम बदल कर "मोहता कम्पनी लिमिटेड" ग्रौर गाँव का नाम भी बदल कर "मोहता नगर" कर दिया गया। श्री शिवरतन जी के उद्योग से कई वर्ष तक मिल का काम बहुत सफलतापूर्वक चला। रेल की लाईन भी बन गयी। गन्ने की खेती के लिए ग्रौर जमीन खरीदी गयी। एक ग्रोर हूरों के उत्पात बहुत बढ़ गये ग्रौर दूसरी ग्रोर सिन्ध को बम्बई से पृथक् करके स्वतन्त्र प्रान्त बना दिया गया। उस समय आप को यह स्पष्ट कल्पना हो गयी कि सिंध में मुसलमानी राज्य कायम होकर पाकिस्तान बन जाएगा ग्रौर हिन्दुग्रों का जीवन निर्वाह ग्रथवा व्यापार व्यवसाय करना वैसा सुगम न रहेगा। इसलिए आप ने शिवरतन जी को वहाँ से ग्रपना काम समेटने का परामर्श दिया। मिल ग्रौर खेती की जमीन सब बेच दी गयी।

कराची छोड़ने के बाद भी व्यापार-व्यवसाय ग्रौर उद्योग के क्षेत्र में आप की सूझ-बूझ ग्रौर भाई पुत्र आदि परिवार के ग्रथक परिश्रम के कारण आपका यश ग्रौर मोहतों की कराची वाली प्रतिष्ठा वैसी ही बनी हुई है। हरमन मोहता इण्डिया लिमिटेड का काम कराची से भी ग्रधिक वृद्धि पर है ग्रौर लोहे के इम्पोर्टर्स में इस फर्म का नम्बर पहला है। इस फर्म का हेड आफिस बम्बई व शाखाएँ कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, ग्रम्बाला, जयपुर, पूना, राजकोट ग्रौर गान्धी धाम यानी कांडला पोर्ट आदि कई स्थानों पर कायम हैं। देश के प्रमुख व्यवसायियों ग्रौर उद्योगपतियों में मोहतों का नाम वैसा ही चमक रहा है।

मोहता बिल्डिंग मैक्लियड रोड, कराची।
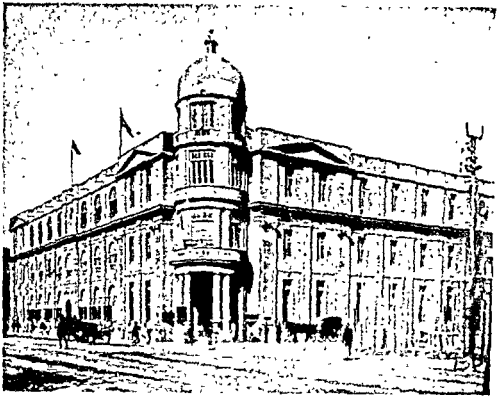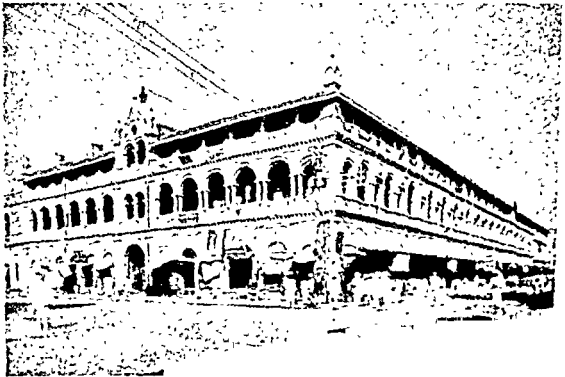
राय बहादुर गोवरधन दास मोती लाल मोहता
कपड़ा मार्केट कराची का बाहरी भाग।

राय बहादुर गोवर्धनदास मोतीलाल मोहता कपड़ा मार्केट, पानटन रोड, बम्बई—सन् १९५८

७
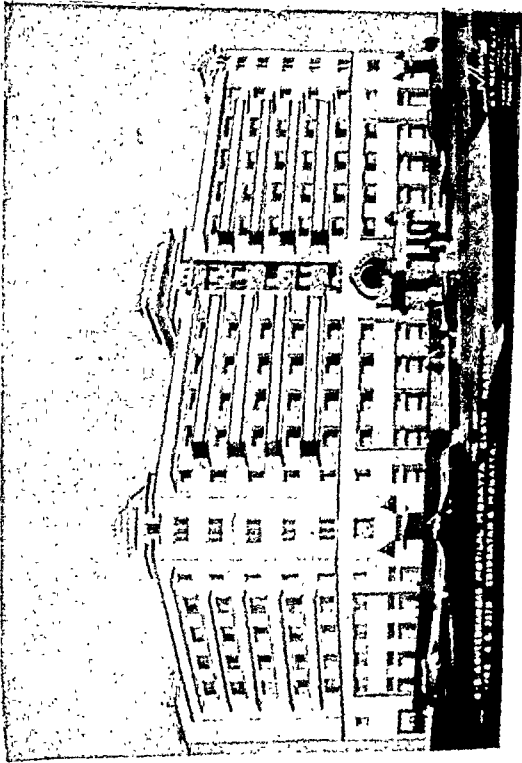
समाज सुधार और सेवामयी साधना

साधना आपके कर्मठ व क्रियाशील जीवन के लिए पर्यायवाची शब्द बन गया है। सामाजिक सुधार, साहित्य सृजन और सार्वजनिक सेवा आदि सभी कार्य आपने साधना के ही रूप में सम्पन्न किये हैं। जन सेवा और लोक कल्याण की भावना पूर्वजों की देन है परन्तु आपने उसको आधुनिक रूप देकर बहुत व्यापक बना दिया। कभी मृतक भोज, बिरादरी भोज, ब्रह्मभोज और साधु संतों की सेवा आदि के कार्य भी समाज की ही सेवा समझे जाते थे। किन्तु आधुनिक काल के साथ उनका कोई मेल नहीं है। आपने जब यह अनुभव किया तब वंश-परम्परागत लोकसेवा की भावना का रूप बदल दिया और उन कार्यों में खर्च की जाने वाली विशाल धन राशि का विनियोग अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी कार्यों में करना प्रारम्भ कर दिया। आपके घर अथवा परिवार वालों ने तथा आपके पिता जी ने भी आपके साथ सदैव अपनी सहमति प्रकट की और उन सब की अनुमति से आप लोक कल्याण के कार्यों मे अपने ढंग से अग्रसर होते रहे परन्तु रूढ़िपंथी धर्मान्ध जनता की ओर से आप को बड़े से बड़े विरोध, निन्दा, आलोचना तथा गर्हित से गर्हित आक्षेपों का भी सामना करना पड़ा। बीकानेर की साधारण जनता विशेषत: पुष्करणा ब्राह्मण समाज और राजपूत ठाकुर बहुत ही पुराने विचारों के अनुदार, दकिया नूसी और रूढ़िपंथी थे। पुष्करणा ब्राह्मणों का प्रभाव सारी जनता पर छाया हुआ था और राजपूत ठाकुरों का शासन में विशिष्ट स्थान था। स्वर्गीय महाराजा गंगासिंह जी तथा अन्य शासकों पर भी उनका प्रभाव जमा हुआ था। सामान्य रूप से बीकानेर का वातावरण प्रतिक्रियावादी था। किसी भी नयी बात को शुरू करना बड़ा कठिन था। इसी कारण न तो जनता में अनुकूलता थी और न शासन में। दोनों की ओर से उपेक्षा का ही नहीं; किन्तु कड़े विरोध का भी आपको सामना करना पड़ा। परन्तु आप मन में जो धार लेते थे उसको कार्य में परिणत करने में किसी भी विरोध, निन्दा, आक्षेप अथवा आलोचना की परवाह नहीं करते थे। अपने सुनिश्चित मार्ग पर पूरी दृढ़ता के साथ अग्रसर होते रहते थे। समाज सुधार और सार्वजनिक सेवा के दोनों ही क्षेत्रों में आपने अलौकिक धैर्य, असीम दृढ़ता और अटूट आत्म विश्वास का परिचय दिया। समाज सुधार और लोक-कल्याण की दोनों प्रवृत्तियाँ गाड़ी की पटरियों की तरह समानान्तर रूप से साथ-साथ चली और दोनों का निरन्तर विकास होता गया। बाहरी दृष्टि से समाज सुधार और समाज सेवा भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ समझी जाती हैं। आपके जीवन में इन दोनों प्रवृत्तियों का समान रूप से विकास हुआ। दोनों को आपके जीवन के सतत प्रवाह के दो किनारे कहा जा सकता है। दोनों आपके लिए एक ही चित्र या सिक्के के दो पहलू हैं। आपके जीवन में उनमें कोई अन्तर नहीं पाया जाता।

• समाज सुधार की भावना पैदा होने के साथ ही आप में समाज सेवा की प्रवृत्ति भी पैदा हुई। यह भी कहा जा सकता है कि समाज सेवा की भावना पैदा होने पर समाज सुधार की ओर ध्यान प्रवृत्त हुआ। शुभ प्रकाशक सज्जनालय, सेठिया मूलचन्द विद्यालय, भँवरलाल मातृ पाठशाला, महिला मंडल, महिला आश्रम और जीवाबाई मातृ सेवा सदन आदि की स्थापना तथा दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा इत्यादि हमारे इस कथन के समर्थक हैं। होली पर डांडियों के खेल का पुनर्जीवन और परिष्कार भी इसी का सूचक है। महिलाओं के उद्धार और हरिजन सेवा के साथ भी यह सचाई जुड़ी हुई है। अवश्य पीढ़ियों की जो निरन्तर साधना थी उसमें हरिजन सेवा तथा दलितों एवं पीड़ितों के उद्धार की भावना विद्यमान थी। [illegible] बीकानेर में [illegible]

देने में भी हरिजनों की सेवा का मुख्य स्थान था। इस प्रकार आपका समस्त जीवन दोनों भावनाओं से ओतप्रोत रहा।

संवत् १९५८ में जब गुण प्रकाशक सज्जनालय की स्थापना की गयी तब उसके पीछे विद्यमान मुख्य भावना यही थी कि जनता में सद्गुणों का विकास किया जाए, उसमें कुछ पढ़ने लिखने की प्रवृत्ति पैदा की जाए और जो समय यों ही इधर उधर व्यर्थ की गप्पों और तासों में नष्ट कर दिया जाता है उसका कुछ सदुपयोग किया जाए।

मोहता मूलचन्द विद्यालय और आदर्श समाज सुधार

संवत् १९६५ में अपने छोटे भाई मूलचन्द मोहता की अकाल मृत्यु के बाद तीन धड़ा आदि कुछ न करके उसमें व्यय की जाने वाली पच्चीस हजार रुपये की धनराशि से उनकी स्मृति में विद्यालय के स्थापित किये जाने की चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। यह महान कार्य भी दुमुखी था। एक ओर धर्मान्धताजन्य परंपरागत रूढ़ि का अन्त करके समाज सुधार के क्षेत्र में एक बड़ा कदम उठाया गया तो दूसरी ओर शिक्षा प्रसार के द्वारा सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में कितना बड़ा काम किया गया? यह उल्लेखनीय है कि इस महान कार्य द्वारा आपने समाज सुधार और सार्वजनिक सेवा के दोनों क्षेत्रों में जो पहल की वह सराहनीय पथ प्रदर्शक सिद्ध हुई। तीन धड़े की जीमनवार ऐसी भयानक कुप्रथा थी जो समाज को घुन की तरह खा रही थी। धनी, श्रीमंत, साहूकारों और राजघराने में भी उसको बड़प्पन की निशानी मानकर उस पर अनाप-शनाप खर्च किया जाता था और जिन ब्राह्मणों के लिए यह जीमनवार किया जाता था उनका यह घोर नैतिक व सामाजिक पतन करने वाली थी। श्रीमंत लोग उसको अपना सामाजिक और धार्मिक कर्तव्य मानते थे, तो ब्राह्मण वर्ग उसको अपना धार्मिक अधिकार समझते थे। उस कर्तव्य से विमुख होकर समाज के गुरु माने गये वर्ग को उनके अधिकार से वंचित करना साधारण साहस का काम नहीं था।

मोहता मूलचन्द विद्यालय के बीजारोपण के जो अंकुर फूटे उन्होंने समाज सुधार और समाज सेवा के दोनों क्षेत्रों में वट वृक्ष का रूप धारण कर लिया। दोनों क्षेत्रों में उसकी जो शाखाएं प्रशाखाएं प्रस्फुटित हुईं उनसे बीकानेर का रूप बदल गया। समाज सुधार और समाज सेवा के दोनों महान कार्यों का यह श्रीगणेश कैसा शुभ सिद्ध हुआ? उससे समाज सुधार के बड़े बड़े कार्यों के लिए मार्ग प्रशस्त बन गया और शिक्षा के क्षेत्र में भी कितनी ही सार्वजनिक संस्थाएँ कायम हो गयी।

श्री भैंरवरत्न मातृ पाठशाला

श्री भैंरवरत्न मातृ पाठशाला भी श्री मोहता मूलचन्द विद्यालय का ही दूसरा रूप समझना चाहिए। उसने जो कार्य पुरुषों की शिक्षा के लिए किया वही कार्य इस विद्यालय ने महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में किया गया। तीन धड़े की जीमनवार बन्द करके अपने अनुज श्री मूलचन्द जी की स्मृति में जिस प्रकार उसकी स्थापना की गयी थी, ठीक उसी प्रकार अपनी पुत्री और देवी की मृत्यु के बाद तीन धड़े की जीमनवार न करके उनकी स्मृति में इसकी स्थापना की गयी थी। अपने प्रियजनों की स्मृति इस रूप में कायम करना भी समाज सुधार और समाज सेवा का बहुत बड़ा काम था।

कुप्रथा का सदा के लिए अंत

आपके परिवार के पुरुषों ने तीन धड़े की जीमनवार की परम्परागत सामाजिक कुप्रथा के विरुद्ध कदम

पहले कदम उठाया । श्री लक्ष्मीचन्द जी का परिवार काफी बड़ा था और उनको प्राय. इस कुप्रथा के लिए विवश होना पड़ता था । इसलिए उनका मन भी बड़ा दुखी था और वे इसको बन्द करने के समर्थक थे । यद्यपि आपके छोटे भाई मूलचन्द जी की मृत्यु के बादही इसको बन्द करने का शुभ श्रीगणेश आपने कर दिया था ; किन्तु सैंसोलाव के तालाब के झगड़े के कारण जो परिस्थिति पैदा हुई उसमें ब्राह्मणों को और अधिक असन्तुष्ट करना उचित न समझ कर इस कुप्रथा के बन्द करने पर अधिक जोर नहीं दिया गया । शिवदास जी सवत् १९६७ के भादवें में इतने बीमार हो गये कि उनके जीवन की कोई आशा न रही । सैंसोलाव के श्मशान में दाह संस्कार करने पर राज्य ने रोक लगा दी थी । इसलिये स्पेशल ट्रेन का इंतजाम करके उनको सपरिवार हरिद्वार ले जाया गया । वहाँ भादवां सुदी १५ को गंगा के तट पर उनका स्वर्गवास हो गया । वहाँ से लौटकर उनके पीछे तीन धड़े की जीमनवार करके दक्षिणा भी चुकाई गयी । १९६८ मे बुलाकीदास जी के देहान्त पर भी तीन धड़े की जीमनवार करके दक्षिणा बाँटी गयी । अन्त में इस कुप्रथा को बन्द करने का निश्चय किया गया । संवत् १९६९ में इस कुप्रथा को बन्द करने के लिए एक बही में प्रस्ताव लिख कर उस पर आपकी प्रेरणा से सब परिवार वालो ने हस्ताक्षर कर दिये । सब से पहला अवसर श्री शिवरतन जी मोहता की पहली पत्नी गिरधर लाल जी की माता के देहान्त का उपस्थित हुआ । उसकी तीन धड़े की जीमनवार नहीं की गयी और दक्षिणा नही बाँटी गयी । कुछ ही समय बाद श्री लक्ष्मीचन्द जी का देहान्त हुआ । तब कुछ खलबली मची परन्तु परिवारके सब लोग अपने निश्चय पर दृढ़ रहे । उससे जो रकम बची उससे "अनाथ सहायता फंड" की स्थापना की गई । इस रकम के ब्याजसे अनाथ स्त्रियों और बालकों को सहायता दी जाने लगी । अधिकतर सहायता ब्राह्मणों को दी जाती थी । श्री लक्ष्मीचन्द जी के देहावसान के तेरहवें दिन इस फंड की स्थापना की सूचना छपवाकर लोगों में बाँट दी गयी । इसमें उन को सूचना दी गयी कि वह काम केवल बचत की भावना से नही अपितु उस बचत का सदुपयोग समाज सेवा के लिए किया गया है । धीरे-धीरे आपके परिवार का अनुकरण करते हुए यह कुप्रथा सारे समाज में से और राजघराने से भी उठ गयी । सारे ही नगर व समाज का इस दृष्टि से कायाकल्प हो गया ।

दुर्भिक्षों में सेवा व सहायता का सतत क्रम

राजस्थान का अधिकांश भाग मरु प्रदेश है और उस मरु प्रदेश का बहुत बड़ा भाग जोधपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर में फैला हुआ है । कृषि तो क्या पीने के पानी के लिए भी लोग और उनके पशु वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं । बड़े-बड़े कुंडों में वर्षा का पानी संचित करके बड़े यत्नपूर्वक संभाल कर रखा जाता है और वर्षा ऋतु के बाद काम में लाया जाता है । ऐसे अनेक कुंड बीकानेर और उसके आसपास राज्य में आपने बनवाये तथा अनेक गाँवों में कुँओं और प्याऊ का भी प्रबन्ध किया । जिस वर्ष वर्षा पर्याप्त नही होती अथवा बिलकुल भी नहीं होती उस वर्ष राज्य में दुर्भिक्ष फैलकर चारों ओर हाहाकार मच जाता है । ऐसे विकट अवसरों पर संकटापन्न जनता की सेवा और सहायता करना आपके परिवार में पुरानी परम्परा रही है । गोवर्धनदास जी ने एक तालाब रायसर और हिम्मतसर गाँवों के बीच में बनवाया था । संवत् १९४८ में दुर्भिक्ष पड़ने पर चारों भाइयों शिवदास जी, जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी ने मिलकर नाल की तलाई खुदवाई की मिट्टी निकलवा कर पाळोर तथा घाट बनवाया । इन सब कामों पर ५००० रुपये खर्च करके दुर्भिक्ष पीड़ित लोगों की सहायता की गयी । बहुत से गाय आदि पशुओं की जीवन की रक्षा की गयी । राज्य ने काम के बारे में प्रशंसा की ।

१९५३ और १९५६ के भीषण दुर्भिक्ष

संवत् १९५३ में फिर दुर्भिक्ष पड़ा और गेहूँ बहुत मंहगा हो गया । देशावरों से जो गेहूँ आता था वह

कुछ ऊँचे दामों पर बिकता था। बाजार में मोतीलाल लक्ष्मीचन्द के नाम से एक दुकान खोली गयी। उसमें गुजरात डीसा की ओर से बाजरा, ज्वार और पंजाब की ओर से गेहूँ, चने आदि मँगवा कर जनता के लिए उपलब्ध किये गये। धर्मशाला में भी अनाज का भंडार रखा गया। दुर्भिक्ष पीड़ितों को अनाज बाँटा गया और खीचड़ा बना कर खिलाया गया। संवत् १९५६ के दुर्भिक्ष में अनाज बाँटकर व खीचड़ा खिलाकर उसी प्रकार सहायता की गयी। हजारों दुर्भिक्ष पीड़ित स्त्री-पुरुष मोहल्लों की हवेलियों की गलियों में कतार बाँधकर बैठ जाते। उनको चने बाँटे जाते थे। परिवार के सारे युवक बड़े उत्साह से दुर्भिक्ष पीड़ितों के सेवा कार्य में भाग लिया करते थे। चनों से जब दुर्भिक्ष-पीड़ित बीमार रहने लगे तब धर्मशाला में खीचड़ा पकाकर बाँटा जाने लगा। कपड़े भी बाँटे जाते थे। गेहूँ का भाव १५ सेर से ८ सेर रह गया था। धर्मशाला में अनाज बेचने का भी प्रबन्ध था। यद्यपि आठ सेर के भाव पर ही गेहूँ बिकता था परन्तु कुछ गरीबों पर दया करके उनको दस सेर का दे दिया गया। उन्होंने सारे शहर में फैला दिया कि मोतीलाल जी वाले १० सेर के भाव अनाज बेच रहे हैं। यह सुनकर घर सब बड़े आश्चर्य में पड़ गये कि १० सेर का भाव किसने कर दिया और सोचने लगे कि आगे क्या किया जाए? धर्मशाला में २००० बोरे गेहूँ के रखे थे। परन्तु वे १० सेर के भाव में कितने दिन चलते? सारी स्थिति पर विचार करके यही तय हुआ कि १० सेर के भाव अनाज बेचा जाए परन्तु एक व्यक्ति को एक रुपये से अधिक का न बेचा जाए और उसी को बेचा जाए जो स्वयं अपने सिर पर उठा कर ले जाए। मुनीमों को उसी रात को गाड़ी से गेहूँ खरीदने देशावरों को भेज दिया गया। दूसरे दिन धर्मशाला में इतनी भीड़ हो गयी कि चार-चार आदमी रुपया लेने वाले और अन्न तोलने वाले रखने पर भी सबको निपटा न सके। दूसरे दिन यह व्यवस्था की गयी कि शहर में रुपया लेकर रुक्का दिया जाए और उस पर धर्मशाला से अनाज दिया जाए। एक महीने बराबर १० सेर का अनाज बेचा गया। बाद में स्थिति सुधर जाने और १० सेर का भाव स्थिर हो जाने से अनाज बेचना बंद कर दिया गया।

महाराजा ने आप लोगों के इस काम की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि राज्य में दुर्भिक्ष सहायता का प्रबन्ध स्थायी रूप से किया जाना चाहिए। उसके लिए चन्दा लिखने की बात चली और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी सूपर साहब को उस काम पर नियुक्त किया गया। आपने भी उसमें भाग लिया। उसके लिए बनायी गयी कमेटी के आप सदस्य नियुक्त किये गये। चन्दा देने के अलावा आप लोगों के यहाँ से वस्त्र आदि बाँटने का भी प्रबन्ध किया गया। संवत् १९५७ में अच्छी वर्षा होने से दुर्भिक्ष मिट गया और महाराज ने दुर्भिक्ष में सेवा और सहायता करने वालों का विशेष सम्मान किया। आपके यहाँ सबको चाँदी की छड़ी, चपरास, साफा रुमाल और सरोपा दिया गया उन दिनों में यह बहुत बड़ा सम्मान समझा जाता था।

संवत् १९७२ में श्री मोतीलाल जी के तालाब की खुदाई का काम हाथ में लेकर गाँव के बेरोजगार और अकाल पीड़ितों की सहायता का जो काम किया गया उसकी दुबारा चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। उससे भी आपकी लोक सेवा की उत्कट भावना का परिचय मिलता है और यह भावना उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। इसी साल धर्मशाला के पीछे के चौक में बहुत-सी गायों का पालन किया गया। दूसरे वर्ष वर्षा होने पर वे किसानों को मुफ्त बाँट दी गयीं।

सम्वत् १९९५-९६
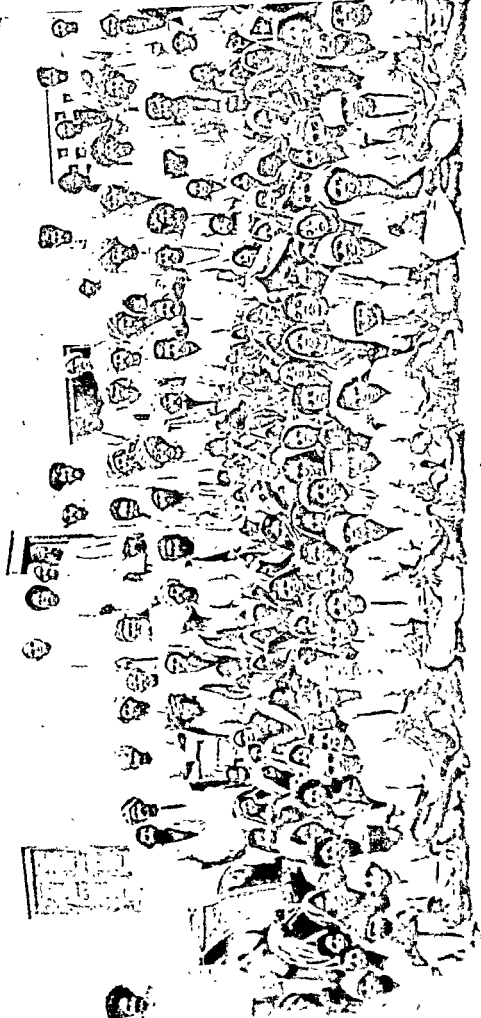
संवत् १९९५ में बीकानेर में फिर दुर्भिक्ष पड़ा। संवत् १९९६ में उससे भी कहीं अधिक भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। इन दुर्भिक्षों के अधिकतर शिकार गरीब किसान और हरिजन हुआ करते थे। किसानों से ज्यादा हरिजनों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन जाती थी। क्योंकि हुनर उनके हाथ हो जाता था। गाँवों के हरिजन-

रांगड़ी बाजार बीकानेर में मोहता जी द्वारा संचालित अकाल पीड़ितों का शिविर सन् १९३८-३९
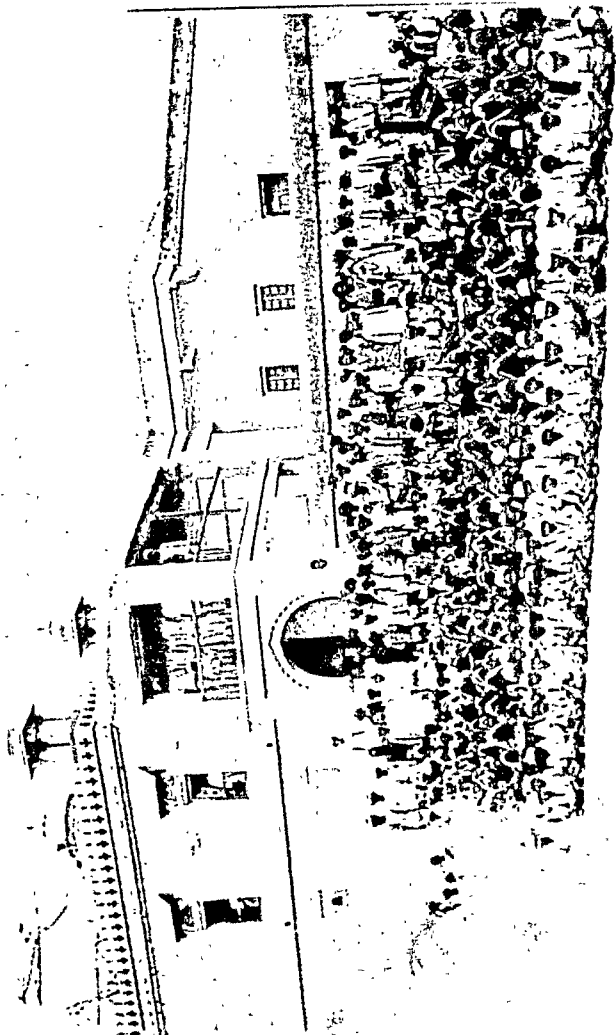
पीड़ित लोग हजारों की संख्या में शहर में शरण लेने आ पहुंचते थे और उनके लिए भोजन, वस्त्र और रहने के लिए झोंपड़ी आदि का प्रबन्ध आपकी ओर से किया जाता था। अपने राणी बाजार के गोदाम के मैदान में और गोवरधन सागर बगीची के पीछे के चौक में तथा उसके बाहर के मैदान में आपने ४००० दुर्भिक्ष पीड़ितों को बसाने का प्रबन्ध किया। सैकड़ों झोंपड़ियाँ बनायी गयीं और धर्मशाला में उनको अन्न बांटने का प्रबन्ध किया गया। बंगले पर वस्त्र बांटने की व्यवस्था की गयी। सर्दी का मौसम आने पर गरम कपड़े बांटे गये, हरिजन मेघवाल व नायक उनमें अधिक थे। उनके बच्चों को पढ़ाने-लिखाने का भी प्रबन्ध किया गया। कपड़ा बुनने वाले मेघवालों के लिए खड्डियाँ लगवाकर सूत की व्यवस्था की गयी। १०० के करीब खड्डियाँ (कर्घे) लगायी गयी होंगी। उनमें स्वावलम्बन की भावना पैदा की गयी। १९९८ में फिर दुर्भिक्ष पड़ा उस में भी इसी प्रकार की सारी व्यवस्था की गयी। दूसरे वर्ष वर्षा होने पर उनको खेती करने के लिए बीज तथा नकद सहायता दी गयी। दुर्भिक्ष पड़ने पर किसानों और हरिजनों के लिए अपने पशुओं का पालन करना बहुत कठिन हो जाता था और वे उनको आवारा छोड़ देते अथवा कसाइयों के हाथ बेच देने को लाचार होते थे।

१९९५ में आपने गोवरधन सागर बगीची में पशुओं के पालने का विशेष प्रबन्ध किया था और संवत् १९९६ के दुर्भिक्ष में नरसिंह सागर तालाब के पास बड़ी गोशाला स्थापित की जिसमें पशुओं की संख्या करीब ५००० पर पहुँच गयी थी। श्री लक्ष्मीचन्द जी के पुत्र श्री मोहनलाल जी मोहता ने इस काम के लिये बड़ी मेहनत की। उनने चन्दा जमा किया और सब व्यवस्था जमायी। वे पशु १९९७ में वर्षा होने के बाद गरीब किसानों को बीज और नगद सहायता के साथ मुफ्त बांट दिये गये। अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए बीकानेर के आस पास अनेक छोटे-बड़े काम शुरू किये गये। इस अकाल सेवा के काम के साथ-साथ हरिजन सेवा का काम निरन्तर चलता रहा।

संवत् २००८-९ में

सम्वत् २००८-९ में बीकानेर में फिर अकाल पड़े। सं० २००८ में श्री भगवन्तसिंह जी मेहता आई० सी० एस० बीकानेर डिवीजन के कमिश्नर थे। जिस तरह पहले के अकालों पर सहायता दी गयी और सेवा-कार्य किये गये थे उसी तरह इस वर्ष भी वे चालू किये गये। इन दिनों बाजार में कपड़ा बुनने के लिये सूत अत्यन्त कठिनाई से बहुत ऊँचे दामों पर प्राप्त होता था, इसलिए बुनकर अकाल-पीड़ितों को काम-धन्धा देने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। आखिर श्री भगवन्तसिंह जी मेहता कमिश्नर के सहयोग से बीकानेर के आस-पास के तालाबों हरसोलाव, ब्रह्मसागर, और घड़सीसर, हिमतासर व रायसर की तालाइयों की मिट्टी निकलवायी गयी थी। दूसरे वर्ष अच्छी वर्षा होने की आशा की जा रही थी कि उनके ये समाचार मिले कि गांवों की स्थिति खराब है और मगरा तहसील व सदर तहसील के सब गांव अकाल की पकड़ में आगये हैं। उन दिनों नौरंग देसर गांव के चौधरी रुगाराम व रामप्रताप ने गांव से आकर आप से वहां के लोगों की दुर्दशा देखने और सत्संग करने का अनुरोध किया। आप अन्न की बोरियां मोटर लारी में साथ लेकर अपनी सत्संग मंडली के साथ नौरंग देसर गांव गये। उस समय श्री पन्नालालजी बारूपाल संसद सदस्य, श्री श्रीनिवास बिरानी एम० ए० प्रतिनिधि "गणराज्य", श्रीमती रतनबाई दम्माणी और श्री पन्नालाल राखा गान्धीवादी कार्य कर्ता आदि कई विशेष व्यक्ति साथ थे। वहां गांव की दशा देखकर आप अत्यन्त दुःखी हुए। पशु प्रायः मर चुके थे अथवा मरणासन्न थे। बहुत से नायक व मेघवाल जाति के गरीब मजदूर गांव छोड़ कर चले गये थे। जाट आदि अच्छी स्थिति के कहे जाने वाले किसानों के घर में भी अनाज के दाने नहीं थे। जो गरीब मजदूर लोग वहां रह गये थे वे पेड़ों के छिलके और इन्द्रायण के पत्तों के बीज पीस कर उनके आटे की रोटियां बनाकर खाना

अकाल पीडितों को अन्न वस्त्र वितरित करते हुए मोहता जी व श्री पन्नालाल जी बारूपाल, एम० पी०।

की छाल और इंद्रायण के बीजों को पीसकर जो रोटियाँ खा रहे थे उसके नमूने श्री पन्नालाल बारपाल संसद सदस्य अपने साथ ले गये। उन्होंने संसद के अपने साथी सदस्यों और केन्द्रीय मन्त्रियों को वे रोटियाँ दिखायी। इसके अतिरिक्त बीकानेर से पार्सलों द्वारा भी ये रोटियाँ श्री गजाधर जी सोमाणी, श्री शारंगधर दास, श्री ए० के० गोपालन और श्रीमती सुचेता कृपलानी आदि संसद के प्रमुख सदस्यों को भेजी गयीं। संसद में इस अकाल-समस्या पर श्री गजाधर जी सोमाणी ने अपने जोरदार भाषण में विस्तार से प्रकाश डाला। सरकारी तथा विरोधी दोनों पक्ष के सदस्यों ने अकाल की स्थिति की गम्भीरता पर पर्याप्त सजगता और चिन्ता प्रदर्शित की। देश भर के समाचार पत्रों में संसद मे हुए भाषणों तथा दुभिक्ष के समाचार प्रकाशित हुए। उनके कारण राजस्थान सरकार को अपने सहायता-कार्य प्रारम्भ करने पड़े।

इस अकाल में गाँव में वितरण किये जाने वाले अनाज की माँग बहुत अधिक थी। गाँव का प्रमुख खाद्य बाजरा इस इलाके में अकाल के कारण पैदा नही हुआ था और भरतपुर से वह सीमित मात्रा में ही आ सकता था। खुले बाजार मे भी उसका मिलना दुर्लभ था। फिर भी अकाल पीड़ितों के पेट तो भरने ही थे इसलिए बाजरे की कमी की समस्या को किसी न किसी प्रकार हल किया गया। गजनेर और जोगिड़ा तालाब की खुदाई के काम मे राजस्थान सरकार ने हजारों मजदूरों को लगाया था। उनको भी सस्ते से सस्ता और कई लोगों को मुफ्त अनाज पहुँचाने की व्यवस्था की गई। तालाबों के आस-पास खुले जंगल में रहने में मजदूरों को बहुत कष्ट और कठिनाई का सामना करना पड़ता था। वहाँ उनके लिए सरकंडे की झोपड़ियों के कैम्प बनवाये गये। उनके छोटे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध किया गया। दुर्भिक्षों में की गयी इस निरन्तर सेवा में हरिजनों की जो सेवा और सहायता की गयी वह समाज-सुधार और समाज सेवा दोनों ही दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण है।

कपड़े का वितरण

सन १९४४-४५ मे देश में कपड़े के वितरण पर अत्यन्त कठोर सरकारी नियन्त्रण था। राशन कार्डों पर प्रति व्यक्ति को ८ से १२ गज तक कपड़ा केवल बीकानेर सरीखे शहरों में मिला करता था। गाँव के निवासी इस वितरण-व्यवस्था के कारण कपड़े के अभाव में घोर कष्टमय जीवन बिता रहे थे। शहरों की तरह गाँव वालों के लिए राशनकार्ड बनते ही न थे। उनको अपनी ही किस्मत पर छोड़ दिया गया था। उनके कपड़े की आवश्यकता की पूर्ति की समस्या शहर के कपड़ा व्यापारियों तथा सिविल सप्लाई के कर्मचारियों की मनमानी पर निर्भर थी। इससे रिश्वतखोरी और काला बाजार का जोर बढ़ गया। गाँव के गरीब तन ढकने मात्र कपड़े के लिए तरसते रहते थे। कहीं-कहीं मृतकों के लिए कफन तक नसीब न होता था और गाँवों की स्त्रियों के लिए कपड़ों के अभाव में अपने झोंपड़ों से बाहर निकलना सम्भव न रहा था। गरीब राजपूतों की स्त्रियां तो इस बेइज्जती को सहन करने की अपेक्षा आत्मघात कर लेना अच्छा समझती थीं। आपको इन समाचारों से मर्मान्तक वेदना हुई। उन दिनों बीकानेर राज्य के सिविल सप्लाई मिनिस्टर ठाकुर प्रतापसिंह जी थे। वे और महाराज शार्दूलसिंह जी आपका बहुत सम्मान करते थे। ठाकुर प्रतापसिंह जी को बुलाकर आप उन पर बहुत क्षुब्ध हुए और इस भयानक परिस्थिति को उनके सामने रखा। उन्होंने केवल सरकारी महकमे के द्वारा इस समस्या का समाधान करने में असमर्थता प्रगट की। आप से अनुरोध किया कि आप ही गाँव वालों को कपड़ा वितरण करने की व्यवस्था करें तो राज्य की व जनता की बहुत बड़ी सेवा होगी। आपने उस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। जगह-जगह डिपो खोलकर गाँव वालों के लिए पूरी सहूलियत करदी गयी। जो गाँव दूर पड़ते थे उनके निवासियों के लिए कपड़ा मोटर लारियों मे भरकर अत्यन्त विश्वस्त कार्यकर्ताओं के साथ भेजा जाता था। गाँव के लोगों की एक खास समस्या यह थी कि वहाँ अलग-अलग जाति की स्त्रियों के पहनावे के कपड़ों के रंग, छपाई

बीकानेर में श्री मोहता जी द्वारा संस्थापित वनिता आश्रम की
महिलाएँ और अनाथालय के बच्चे ।

श्री मोहता जी द्वारा संस्थापित महारानी भटियाणी
जी वनिता आश्रम जोधपुर की महिलाएँ।

महारानी भटियाणीजी वनिता आश्रम जोधपुर का भव्य भवन

व डिजाइन अलग-अलग होते थे और जो स्त्रियाँ जिस रंग व डिजाइन के कपड़े पहनती थीं यदि उन्हें उनसे भिन्न प्रकार का कपड़ा दिया जाता तो वे उसे स्वीकार नहीं करती थीं। ५० साल से ग्रामीणों की सेवा का कार्य करते रहने से आपको उनकी बोलचाल, रहन-सहन व रीति-रिवाज की पूरी जानकारी थी। उन लोगों के लिए उनकी आवश्यकतानुसार कपड़ों के रंग व डिजाइन तैयार करवा कर वितरण करने की व्यवस्था की गयी। यह आयोजन इतना सफल हुआ कि गाँव वालों का वस्त्र-अकाल मिट गया। इस कार्य से भी दीन-हीन एवं उपेक्षित हरिजनों का बड़ा उपकार हुआ। महाराज शार्दूलसिंह जी व ठाकुर प्रतापसिंह जी पर इसका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे उस समय से यह अनुभव करने लगे कि यदि आप की सेवाएँ राज्य के सिविल सप्लाई विभाग को प्राप्त होती रहें तो राज्य का बहुत लाभ हो और इसी आधार पर महाराज शार्दूलसिंह जी ने आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी की सेवाएँ सिविल सप्लाई मिनिस्टर के रूप में प्राप्त करने का आपसे अनुरोध किया और उन्होंने उसको स्वीकार करके सप्लाई विभाग की जो सन्तोषजनक व्यवस्था की उसकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है।

महिलाओं व विधवाओं की सेवा और सुधार

हरिजनों के समान हिन्दू समाज में महिलाओं विशेषतः विधवाओं की भी हालत कुछ अच्छी नहीं है। राजस्थान तथा मारवाड़ी समाज में उनको और भी अधिक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। अपने ही घर में किसी बात की कोई कमी न होने पर भी अपने छोटे भाई श्री मूलचन्द मोहता की पत्नी के युवावस्था में ही विधवा हो जाने की आपके हृदय पर बड़ी गहरी चोट लगी थी। सं० १९८५ में कराची में आपने महिलाओं की विशेषतः विधवाओं की सेवा करने के विचार से एक ट्रस्ट बनाया था। उसमें रामदेव चाल, सोमरसेट स्ट्रीट वाले दो मकान और एक लाख नकद देकर उसकी रजिस्ट्री करवायी गयी। कराची, बीकानेर, इन्दौर, इलाहाबाद, जोधपुर और अजमेर में वनिता आश्रम तथा अनाथ आश्रम खोले गये। उनमें वनिताओं के भरण, पोषण तथा शिक्षण की व्यवस्था के साथ-साथ योग्य विधवाओं के पुनर्विवाह का भी प्रबन्ध किया जाता था। बीकानेर में कुछ ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी कि यहाँ का आश्रम एकाएक बन्द करना पड़ गया। दीवान सर मनुभाई मेहता तो काफी प्रगतिशील और उदार विचारों के थे। वे ऐसे कार्यों में दिलचस्पी लेकर उनमें राज की ओर से सहयोग दिया करते थे करते थे। बीकानेर के आश्रम में ओसवाल, माहेश्वरी, अग्रवाल तथा ब्राह्मण वनिताओं के अनेक पुनर्विवाह किये गए। एक राजपूत राठौड़ घराने की विधवा का पुनर्विवाह पिपरासर के ठाकुर रूपसिंह जी के सहयोग से मान जी भाटी के साथ किया गया। उस पर राजपूत सरदारों में बड़ा रोष व असन्तोष पैदा हो गया। महाजन के राजा श्री हरीसिंह और महाराजा गंगासिंह जी के चचेरे भाई महाराज भैंरोंसिंह बहुत उत्तेजित हुए। वे महाराजा गंगासिंह जी के विशेष प्रेम-भाजन और विश्वास-पात्र थे। उन्होंने आप के विरुद्ध महाराजा के कान भर दिए। एक और विधवा विवाह पुष्करणा जाति की विधवा का बालकृष्ण पुरोहित के साथ किया गया। यह एक पंच का मसला था। उस पर पुष्करणा समाज में अत्यधिक उत्तेजना पैदा हुई। श्री महेनदास व्यास महाराजा का दरबारी था। वह बहुत अधिक चिढ़ गया। पुष्करणा ब्राह्मणों और राजपूत सरदारों ने संयुक्त मोर्चा बनाकर महाराजा को आप के और वनिता आश्रम के विरुद्ध भड़का दिया। आप ने श्री मनुभाई मेहता और सेठी डाक्टर शिवरामा की मार्फत महाराजा तक वस्तु-स्थिति पहुँचाने का प्रयत्न किया। उन दिनों में सर मनुभाई दीवान थे और सेठी डाक्टर महाराजा की अत्यन्त विश्वास-पात्र थी। दोनों ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि वातावरण बहुत खराब है। महाराज पुराने विचारों के हैं और उनको बहुत असन्तुष्ट कर दिया गया है। इसलिए वनिता आश्रम यहाँ नहीं रखना चाहिये। इस पर आपने आश्रम बन्द कर दिया। सब लड़कियों और बालकों को जोधपुर के आश्रम में भेज दिया।

विरोध और विघ्न बाधा

सम्वत् १९९१ में सर मनुभाई राज्य की दीवानगिरी छोड़ कर चले गए। उनकी जगह महाराज भैरोंसिंह की नियुक्ति हुई। वे समाज सुधार के कट्टर विरोधी थे। उनके कारण आप की समाज सुधार की सारी प्रवृत्तियाँ रुक गयीं और शहर में सर्वत्र यह चर्चा फैल गई कि आप बीकानेर छोड़ कर जोधपुर बसने के लिये जा रहे हैं। यह बात जब महाराजा गंगासिंह जी के कानों में पहुँची तब उन्होंने पहले महाराज भैरोंसिंह के मार्फत सन्देश भेजकर पुछवाया कि क्या आप वास्तव में ही बीकानेर छोड़ रहे हैं? उसके बाद गजनेर में बुलाकर बड़े सम्मान से अपने पास बिठाकर पूछा कि आप बीकानेर क्यों छोड़ रहे हैं? आपने वनिता आश्रम क्यों बन्द कर दिया? आप ने सब बातें सच-सच कह दी और महाराजा की नाराजगी का भी सारा किस्सा कह सुनाया। उन्होंने बात टालते हुए कहा कि मैं नाराज नहीं हूँ। मेरी नाराजगी की बात किसने कही? आप ने महाराज भैरोंसिंह और श्री रामरतन जी बागड़ी का नाम ले दिया। उन्होंने उनकी बात को बिलकुल झूठ बताया और कहा कि वनिता आश्रम फिर से कायम कीजिये। आपने विधवा विवाह को आवश्यक बताते हुए राज्य की सहायता के बिना उसको चलाने में असमर्थता प्रकट की। वे राज्य की सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हो गए और कहा कि जो भी सहायता चाहिए लिखकर दीजिए। मैं एक कमेटी नियुक्त कर दूँगा। वह विचार करके सहायता की व्यवस्था कर देगी। महाराज ने कमेटी में महाराज भैरोंसिंह, महाराज मान्धातासिंह, ठाकुर शार्दूलसिंह, ठाकुर जनरल हरीसिंह सतासर वाले और हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस श्री अहसान उल हक के नाम कमेटी में रखने को कहा। आपने मुसलमान अधिकारी को कमेटी में रखने पर आपत्ति की, क्योंकि हिन्दू विधवाओं के काम में किसी मुसलमान को रखने के आप विरुद्ध थे। आप ने हाईकोर्ट के जज श्री नानावटी का नाम सुझाया। इस पर महाराजा ने एहसान उल हक की बड़ी प्रशंसा की और उनके लिये सहमत होने का आग्रह किया। आपने वनिताओं, विधवाओं और हरिजनों की सेवा और सहायता के सम्बन्ध में अपने सारे विचार उनके सामने खोल कर रख दिये और हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों का भी किस्सा उनको कह सुनाया।

महाराजा ने ऊपरी सहानुभूति दिखाई और सर मनुभाई मेहता के सिविल मैरेज कानून के प्रस्ताव से मतभेद प्रगट करते हुए कहा कि उसको कैसे सहन किया जा सकता है। उससे तो तलाक, वर्णसंकर, वेश्याओं के सन्तान आदि की वृद्धि होगी और जागीरों पर अंगरेज औरतों की सन्तान का अधिकार हो जायगा। यह सब कैसे सहन किया जा सकता है?

वनिता आश्रम के सम्बन्ध में नियुक्त की गई कमीटी की दो तीन बैठकें हुई। महाराज मान्धातासिंह और ठाकुर शार्दूलसिंह आप के पक्ष में तथा महाराज भैरोंसिंह, ठाकुर हरीसिंह और मियां एहसान उल हक आप के विपक्ष में रहे। पक्ष-विपक्ष की रिपोर्ट महाराजा के सम्मुख निर्णय के लिए पेश की गयी। उन्होंने कोई निर्णय नहीं दिया और बीकानेर में दुबारा वनिता आश्रम कायम नहीं किया जा सका।

बीकानेर में वनिता आश्रम बन्द होने के बाद जो अनाथ असहाय विधवायें और वनितायें आतीं उनको आप अपने बंगले में रख लेते फिर उनकी इच्छानुसार या तो उनका पुनर्विवाह कर देते या जोधपुर के आश्रम में भेज देते। इस तरह की वनिताओं को घर में रखने से कभी-कभी हानि भी उठानी पड़ती। एक वनिता ने घर में गहने-कपड़े की चोरी कर ली थी। ऐसी सब हानियों को सहन किया जाता था।

कलकत्ता का माहेश्वरी विद्यालय और माहेश्वरी भवन

सम्वत् १९७२-७३ में आपने कलकत्ता में रहते हुए वहाँ की सार्वजनिक प्रवृत्तियों में विशेष भाग लेना शुरू कर दिया था। माहेश्वरी विद्यालय की स्थापना में आपने विशेष भाग लिया और ५००० रु० उसके
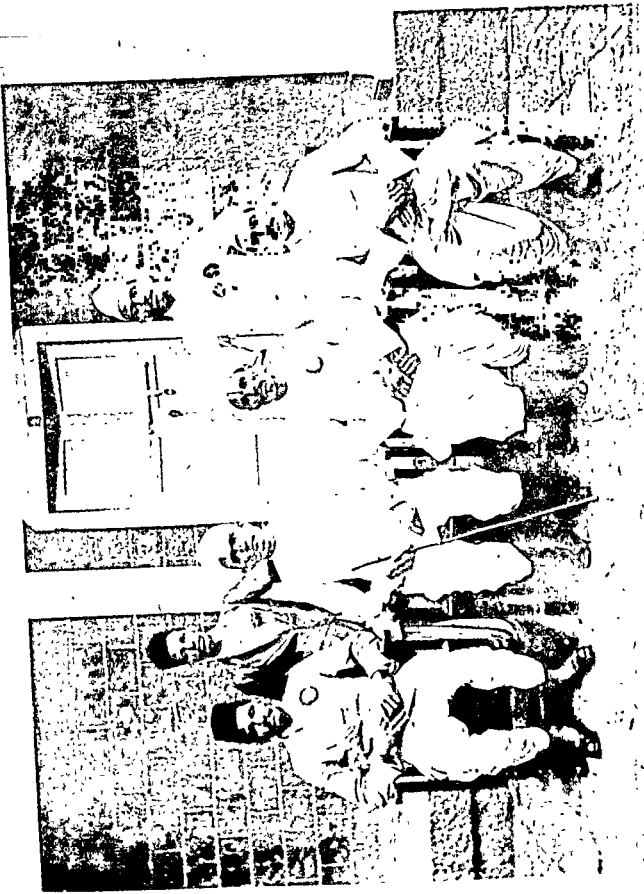
[illegible]पुर में अ० भा० माहेश्वरी महासभा के अवसर पर स्वागत समिति के अध्यक्ष व मंत्रियों के साथ कुर्सी पर बैठे हुए बाएं से दूसरे उनके अध्यक्ष श्री रामगोपाल जी मोहता सन् १९२७।

लिये प्रदान किये। माहेश्वरी भवन के निर्माण के लिए भी पहले २१,००० रु० और फिर दुबारा भी २१,००० रु० प्रदान किये। वहाँ की अन्य सार्वजनिक प्रवृत्तियों को भी आप के सहयोग और सहायता का लाभ मिलता रहा। माहेश्वरी विद्यालय से समाज में विशेष रूप से शिक्षा का प्रसार हुआ और माहेश्वरी भवन बड़ा बाजार के क्षेत्र में पहला सार्वजनिक भवन है जिसका उपयोग सभी प्रकार के सार्वजनिक आयोजनों के लिये किया जाता है।

माहेश्वरी महासभा का सभापतित्व

सम्वत् १९८४ कार्तिक में पंढरपुर में अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा का वह ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ, जिसमें कोलवारों के माहेश्वरी होने की घोषणा करके उनके साथ रोटी-बेटी के सामाजिक सम्बन्ध को सब दृष्टियों से उचित और वैध बताया गया। कोलवारों के अलावा गुजरात तथा दक्षिण आदि में रहने वाले उन माहेश्वरियों के साथ भी रोटी बेटी का सामाजिक व्यवहार खोला गया जो किसी कारण बन्द हो गया था। पिछले दो ढाई वर्षों के कोलवार आन्दोलन तथा संघर्ष को देखते हुये महा सभा का यह निर्णय समाज सुधार की दृष्टि से वास्तव में ही क्रान्तिकारी था और उसका श्रेय आप को इसलिए प्राप्त हुआ कि आप इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अधिवेशन के सभापति चुने गए थे। बीकानेर से संघ तथा महासभा के माहेश्वरियों ने आप को बड़े प्रेम और सम्मान के साथ विदाई दी। रास्ते में जोधपुर, पाली और बम्बई में भी माहेश्वरी भाइयों ने आप का विशेष सम्मान व स्वागत किया। स्टेशनों पर सैकड़ों की संख्या में वे उपस्थित होते और आप पर फूलमाला तथा बधाइयाँ आदि की वर्षा करते। पंढरपुर में भी शुभ कामना के सैकड़ों तार व पत्र प्राप्त हुए। अधिवेशन पूरी तरह सफल हुआ। माहेश्वरी समाज ही नहीं किन्तु समस्त मारवाड़ी समाज की दृष्टि से भी समाज सुधार की दिशा में उठाया गया यह एक बहुत बड़ा क्रान्तिकारी कदम था। डीडू माहेश्वरी महा पंचायत की देखा-देखी अग्रवाल, खंडेलवाल, ओसवाल तथा ब्राह्मण समाज में भी जो प्रतिगामी हलचलें शुरू होकर महा पंचायतों के संगठन पनपने शुरू हो गये थे उन सब को माहेश्वरी महासभा इस सफल अधिवेशन से बड़ी गहरी चोट लगी। सभापति पद से दिया गया आप का भाषण समाज सुधार-सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत था जिसकी समाचार पत्रों में बड़ी सराहना की गयी थी।

पंढरपुर में आपने प्रार्थना समाज द्वारा संचालित विधवा आश्रम तथा बच्चा खाना का अवलोकन किया। उससे आप विशेष प्रभावित हुए। लौटते हुए पूना में ठहर कर आपने महर्षि कर्वे की महिला जागृति का काम करने वाली संस्थाओं और कर्वे महिला विश्वविद्यालय का अवलोकन किया। उनसे भी आप बहुत प्रभावित हुये और आर्थिक सहायता प्रदान की। महिलाओं की सेवा, सहायता तथा उद्धार करने वाली संस्थाओं को सहयोग एवं सहायता देने के लिये आप सदैव तत्पर रहते हैं। उन संस्थाओं के ढंग पर आपने बीकानेर तथा राजस्थान में कार्य करने का जो निश्चय किया उसी के परिणाम स्वरूप स्थान-स्थान पर उपर्युक्त वनिता आश्रमों की स्थापना की गई।

महिलाओं और विधवाओं की सेवा करते हुए आपके सामने अनेक ऐसी दुर्घटनाएँ आयीं जिनसे आप बड़े विह्वल और दुखी हो गए। उनके ही आधार पर आपने इस नाम से "विधवाओं का इन्साफ" नाम की एक पुस्तक लिखी जिस पर समाज में एक भीषण तूफान आ गया। इसमें विधवाओं तथा महिलाओं पर होने वाले भीषण अत्याचारों का नंगा चित्र उपस्थित किया गया है। [illegible] और श्री [illegible] मार्फत हुई सत्य विधवाओं की आपबीती दुख गाथाओं का संग्रह किया। उनके आधार पर "विधवाओं का इन्साफ" नाम की पुस्तक लिखी गई। पुस्तक में उन पर होने वाले भीषण गुप्त अत्याचारों का भंडाफोड़ करते

उनके पुनर्विवाह की आवश्यकता का जोरदार समर्थन किया। आपके अनुज श्री मूलचन्द मोहता की विधवा पत्नी ने आपके इस कार्य में बड़े उत्साह से सहयोग दिया। आपने "अबलाओं की पुकार" नाम की एक लावणी की भी रचना की।

संवत् १६८३ में आप अपनी बीमार पत्नी के औषधोपचार के लिए कलकत्ता जाते हुए मार्ग में इलाहाबाद ठहरे। वहाँ के मासिक पत्र "चाँद" को आप बड़ी रुचि से पढ़ते थे और महिलाओं के सम्बन्ध में उसकी निर्भीक नीति रीति आपको बहुत पसंद थी। उसके कार्यालय में जाकर आप उसके सम्पादक स्वर्गीय श्री रामरख सिंह सहगल से मिले। आपने अपनी लिखी हुई "अबलाओं का इन्साफ" की पाण्डुलिपि उनको दिखाई। वह उसको देखकर उछल पड़े और उसको अपने ही प्रेस में मुद्रित कर प्रकाशित करने का उन्होंने आग्रह किया। पुस्तक में लेखक के स्थान पर कल्पित नाम "स्फुर्णा देवी" इसलिए दिया गया कि महिलाओं के सम्बन्ध में लिखी गई उस क्रान्तिकारी पुस्तक पर लेखक के रूप में किसी महिला का ही नाम देना उचित समझा गया। उसके मुख पृष्ठ पर मारवाड़ी महिला का तिरंगा चित्र देना तय किया गया। पुस्तक की छपाई में पूरा एक वर्ष लग गया। उसके प्रूफ पढ़ने के लिए आप अपने पास बीकानेर मंगाते; क्योंकि पुस्तकों की छपाई में एक भी गलती रह जाना आपको सहन नहीं होता। पुस्तक के प्रकाशित होते ही सुधारक कहे जानेवाले मारवाड़ी युवकों में भी तहलका मच गया। संयोगवश उन्हीं दिनों में मिस मेयो की "मदर इण्डिया" पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उस पर सारे देश में एक बवंडर उठ खड़ा हुआ था। मारवाड़ी नवयुवकों ने "अबलाओं का इन्साफ" पुस्तक को भी उसकी कोटि में रखकर उसके विरुद्ध भी वैसा ही आन्दोलन शुरू कर दिया। कलकत्ता के समाचार पत्रों में आपके और "चाँद" सम्पादक के विरुद्ध अत्यन्त रोषपूर्ण और उत्तेजनापूर्ण लेख प्रकाशित हुए। उनमें निन्दा के साथ साथ आप पर गाली गलौज की वर्षा भी की गई। "चाँद" का बहिष्कार किया गया। आपके फोटो जलाए गए और श्री रामरख सिंह सहगल के कलकत्ता जाने पर उन पर हमला भी किया गया। राजनीतिक नेताओं और गांधी जी से पुस्तक के विरुद्ध फतवा जारी करवाया गया। सरकार पर उसको जब्त करने के लिए जोर डाला गया परन्तु सफलता नहीं मिली। पुस्तक की बिक्री पर इस सारे आन्दोलन का यह असर पड़ा कि पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया और दूसरा भी छप कर तैयार हो गया। ग्रन्थ में सत्य घटनाओं के आधार पर महिलाओं पर होने वाले बीभत्स व गुप्त अत्याचारों की कहानी अत्यन्त करुण शब्दों में दी गई थी। उसको बीभत्स और करुण तो कहा जा सकता था किन्तु अश्लील कहना सर्वथा अनुपयुक्त था। शृंगार अथवा अश्लीलता की उसमें ऐसी कोई बात नहीं थी। उसका प्रयोजन विधवा विवाह के लिए अनुकूलता पैदा करना था। इसलिए उसको जब्त करने के प्रयत्न सफल नहीं हो सके और विरोध करने वालों को किसी प्रकार की सफलता नहीं मिल सकी। इस पुस्तक से विधवा विवाह के पक्ष में लोकमत तैयार होने में बड़ी सहायता मिली और अनेक लोग उसको पढ़कर विधवा विवाह के समर्थक बन गये।

सम्वत् १६८६ में श्री रामरख सिंह सहगल ने "चाँद" का मारवाड़ी अंक प्रकाशित किया। उसमें मारवाड़ी समाज की सामाजिक स्थिति का और भी अधिक भयानक चित्र खींचा गया था। आपने मारवाड़ी समाज को और अधिक रुष्ट व असन्तुष्ट न करने के लिए "चाँद" सम्पादक को उसको प्रकाशित न करने का परामर्श दिया था। परन्तु श्री सहगल ने उसको स्वीकार नहीं किया। उस अंक के प्रकाशन ने मारवाड़ी समाज में रोष व असंतोष की आग में घी डालने का काम किया और एक बार फिर आपके तथा "चाँद" सम्पादक के विरुद्ध विरोध की आग सुलग उठी। इतना तीव्र आन्दोलन हुआ कि कलकत्ता की सभी मारवाड़ी संस्थाओं ने उसके विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत किये और "मारवाड़ी अंक" को भी जब्त कराने का प्रयत्न किया गया। आप यत्किंचित भी भयभीत अथवा विचलित नहीं हुए। बीकानेर में समाज सुधार के ऐसे कार्यों के

लिए आपकी जो निन्दा एवं भर्त्सना की गई थी और आप पर जो गर्हित से गर्हित आक्षेप किए गए थे उनके कारण आप में धैर्य, साहस और दृढ़ता पर्याप्त मात्रा में पैदा हो चुकी थी। इस विरोध में आपकी एक वार फिर परीक्षा हुई और कहना न होगा कि आप उसमें पूरे उतरे। चि० गिरधार लाल के शुभ विवाह पर महिलाओंकी सेवा के लिए "चाँद" को ५,००० रु० इस प्रयोजन से दिये गए थे कि एक हजार महिलाओं को दो वर्ष तक चांद मुफ्त दिया जाय।

एक उदाहरण

कलकत्ता में हुए विरोध का सामना आपने जिस धैर्य, दृढ़ता और साहस के साथ किया उस का एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होना चाहिए। "मारवाड़ी ट्रेडर्स एसोसियेशन" के मन्त्री श्री बैजनाथ देवड़ा ने, १८ अक्टूबर १९२९ को एक पत्र लिखकर आप से "अबलाओं के इन्साफ" को गन्दा व अश्लील बताते हुए "चाँद" के सम्पादक से अपना सम्बन्ध तोड़ लेने का अनुरोध किया था। उसका आपने जो तर्क पूर्ण उत्तर दिया' वह श्री देवड़ा के पत्र के साथ मिर्जापुर से प्रकाशित होने वाले "मतवाला" पत्र में "एक सुधारक का हृदय' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। सम्पादक महोदय ने उस पर एक टिप्पणी दी थी। उस टिप्पणी में लिखा गया था कि "सहयोगी चाँद के प्रकाशित होने वाले मारवाड़ी अंक को लेकर मारवाड़ी ट्रेड एसोसियेशन के मन्त्री श्री बैजनाथ देवड़ा ने मारवाड़ियों के विख्यात सुधारक श्री रामगोपाल मोहता को जो पत्र लिखा था और मोहता जी ने जो उसका उत्तर दिया उसे हम श्री मोहता जी की कृपा से प्राप्त कर प्रकाशित करते हैं। इसलिए कि ढोंगी लोग और चुप-चुप तोप-तोप महाशयान देखें कि एक सच्चे सुधारक का हृदय कैसा विशाल होना चाहिए। वैसे "चाँद" के प्रचार के अनेक प्रकार स्वयं हमें भी पसन्द नहीं हैं। फिर भी ऐसे प्रचारकों के बारे मे मोहता जी के विचार माननीय और मननीय हैं।"

यहाँ "मतवाला" से श्री बैजनाथ देवड़ा का पत्र और मनस्वी श्री मोहता जी द्वारा दिये गये उत्तर की प्रतिलिपि दी जा रही है।

श्री देवड़ा का पत्र

श्री बैजनाथ जी देवडा का ३० सितम्बर, सन् १९२९ का पत्र निम्न प्रकार है :—

प्रिय महाशय,

इलाहाबाद से निकलने वाले "चाँद" नामक मासिक पत्र से आप भली भाँति परिचित हैं। यह भी आप को मालूम होगा कि उस पत्र का एक विशेषांक "मारवाड़ी अंक" के नाम से शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। उस अंक में जो विषय रहेंगे उनका दिग्दर्शन इस पत्र के साथ भेजे हुवे विज्ञापन से हो जायगा। उससे पता लगेगा कि अधिकांश विषय ऐसे होंगे जो मारवाड़ी समाज को भारत के अन्य समाजों की दृष्टि में घृणित और पतित साबित करेंगे। पहले भी इस कार्यालय द्वारा "अबलाओं का इंसाफ" नामक एक घृणित और अश्लील पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसकी निन्दा हिन्दी संसार ने बड़े जोरदार शब्दों में की थी। किन्तु प्रकाशक ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। बल्कि उसका द्वितीय संस्करण भी बड़ी सजधज से निकाल दिया। हाल ही में "चाँद" में उन चार पुस्तकों के विज्ञापन भी जोरशोर से निकल रहे हैं—जिनके बंगला संस्करण बंगाल सरकार ने अश्लील होने के कारण जब्त कर लिये थे। उन पुस्तकों के नाम—विवाह विज्ञान, यौवन विज्ञान, स्त्री की चिट्ठी और गुप्त चिट्ठी हैं। चाँद कार्यालय की इन सब करतूतों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसका उद्देश्य क्रांति के नाम पर देश में गन्दे और अश्लील साहित्य का प्रचार कर पैसे कमाना है। जो हो, सुनने में आया है कि चाँद

कार्यालय वालों की ओर से मारवाड़ी समाज के सम्बन्ध में जो आन्दोलन किया जाता है उसमें आपकी ओर से विशेष प्रोत्साहन और सहायता मिलती है। यदि यह बात सच है तो इस एसोसियेशन की दृष्टि में आपका यह कार्य मारवाड़ी समाज का बहुत बड़ा अपकार करने वाला है। सम्भव है, आपका उद्देश्य समाज की भलाई करना ही हो। आज मिस मेयो की "मदर इंडिया" की इतनी निन्दा क्यों हो रही है; इसलिए कि एक तो उसका उद्देश्य भारत सुधार करना नहीं, किन्तु अन्य देश वालों की दृष्टि में भारतवासियों को अयोग्य प्रमाणित करना है— दूसरे, एक अमेरिकन महिला को क्या अधिकार है कि वह अपने देश की बुराइयों पर कोई प्रकाश न डाल केवल भारतवासियों के ऐबों को संसार के सम्मुख रखे। यही बात चाँद कार्यालय पर लागू हो सकती है। उनके हृदय में मारवाड़ियों के प्रति इतना प्रेम कहाँ से उमड़ पड़ा कि भारत के अन्य समाजों और स्वयं अपने समाज को जिनमें कुछ कम बुराइयाँ नहीं हैं छोड़कर वह मारवाड़ियों के सुधार पर कमर बाँध कर खड़ा होगया है। यदि कोई मारवाड़ी संस्था समाज के दुःखों से दुःखी हो इस कार्य को हाथ में लेती तो इस संस्था को कोई आपत्ति नहीं थी; क्योंकि वह समाज की बुराइयों को इस रूप में रखती, जिसमें समाज का सुधार भी होता और वह अन्य समाजों द्वारा हास्यास्पद भी न बनता किन्तु एक अन्य समाज के पुरुष को किसी दूसरे समाज की भलाई-बुराई से क्या वास्ता? उसे तो जिस प्रकार अधिक पैसा पैदा हो उसी प्रकार काम करना है। लंदन रहस्य और पेरिस रहस्य पढ़ने वालों का ध्यान यदि लंदन और पेरिस के सुधार करने की ओर हो तो सम्भव है—मारवाड़ी अंक पढ़ने वाले गैर मारवाड़ियों का ध्यान भी मारवाड़ी समाज सुधारने की ओर हो, किन्तु उनके लिए तो किसी समाज की कुछ सच्ची और कुछ मनगढ़न्ती बुराइयों का चित्ताकर्षक रूप में पढ़ना एक मनोरंजन की सामग्री होगी और उनके मन में उस समाज के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न होंगे। इससे एक सब से बड़ी बात यह होगी कि जिस मारवाड़ी समाज के लोग भारत के कोने-कोने में व्यापार के लिये फैले हुए हैं उनके प्रति अन्य समाज वालों के हृदय में घृणा के भाव पैदा होंगे और जहाँ दो-दो चार-चार घर मारवाड़ियों के हैं वहाँ उनका शान्ति से रहना मुश्किल हो जायगा क्योंकि उनका वहाँ रहना गैर मारवाड़ियों के प्रेम पर ही निर्भर है और जब वे मारवाड़ियों को पतित जाति समझने लगेंगे तो वे उनसे प्रेम क्यों करने लगे—वे तो उन्हें जितना शीघ्र होगा किसी न किसी बहाने निकालने की चेष्टा करेंगे।

आशा है आप उपर्युक्त कथन को गंभीरता के साथ पढ़ेंगे और जिसमें समाज की भलाई समझेंगे उस कार्य को प्रोत्साहन देंगे। आप जैसे समाज हितैषी पुरुषों से इस एसोसियेशन को यह आशा कभी नहीं हो सकती कि जान बूझ कर आप समाज की बुराई के किसी कार्य में सहयोग प्रदान करेंगे। आपने इस सम्बन्ध में जो निश्चय किया हो उससे शीघ्र ही सूचित करने की कृपा करें।

भवदीय—
बैजनाथ केयड़ा, मन्त्री

मोहता जी का उत्तर

इस पत्र का मोहता जी ने बीकानेर से १८ अक्टूबर १६२६ को जो उत्तर दिया वह निम्न प्रकार है:-

मान्यवर महोदय,

आपका ता० ३०-६-२६ ई० का पत्र कराची होकर यहाँ आया। मैं बाहर गया हुआ था इसलिए उत्तर देने में विलम्ब हुआ, क्षमा करें।

मुझे खेद है कि मैं आप के इन संकुचित विचारों से सहमत नहीं हूँ कि हमारी सामाजिक त्रुटियों को स्वयं हमारे सिवाय दूसरे किसी को प्रकट करने का क्या अधिकार है? अधिकतर देखा जाता है कि अपनी त्रुटियों

आप को जैसी दीखनी चाहिए वैसी नहीं दीखती। दूसरों को अधिक स्पष्ट दीखती हैं और जो व्यक्ति या समाज दूसरों द्वारा दिखायी हुई अपनी त्रुटियों को दिखाने वाले से द्वेष न करके सुधारने का प्रयत्न करता है वही उन्नति करता है। किन्तु जो व्यक्ति या समाज दूसरों द्वारा दिखाई हुई त्रुटियों को सुधारने का तो यथेष्ट प्रबन्ध नहीं करता किन्तु दिखाने वाले से चिढ़ कर द्वेष करता है उसका और भी अधिक पतन होता है, यह मेरा निश्चय है। अपने दोष को छिपा कर अथवा उन पर लीपा-पोती करके बड़प्पन के गर्व में फूले रहना और दूसरों के गुणों की उपेक्षा करके उनमें दोष ढूंढने का प्रयत्न करना, इससे अधिक पतन का कोई दूसरा साधन नही हो सकता।

आप के इस कथन पर मुझे अधिक खेद होता है कि "यदि कोई मारवाड़ी संस्था इस कार्य को हाथ मे लेती तो इस संस्था को कोई आपत्ति नही थी। किन्तु एक अन्य समाज के पुरुष को किसी दूसरे समाज की भलाई-बुराई से क्या वास्ता है, ?" क्योंकि जिस संस्था के अधिकतर सभासद सुधारक और राष्ट्रीय विचारों के समझे जाते हैं; जिनको हिन्दू समाज ही नही किन्तु भारतवासी मात्र को एक जानना चाहिये; उस मारवाडी ट्रेड्स एसोसियेशन की तरफ से मारवाड़ी समाज तथा अन्य समाज में इतना भेद भाव उत्पन्न करने वाला आन्दोलन उठाया जाना शोभा नही देता, न मालूम विदेशी लोग इस पर क्या आलोचना करते होंगे ? मेरी समझ में तो हमारे दोष दिखाने वाले हमको इतना अयोग्य प्रमाणित नहीं करते जितना कि हम स्वयं चिढ़कर उनसे द्वेष करने से करते हैं। हम अपनी कमजोरियों को निकाल बाहर करने से ही अपना गौरव कायम रख सकते हैं—किसी से चिढ़ने या लड़ने-झगड़ने से नही।

मुझे उस समय बड़ी प्रसन्नता होगी जब कि मारवाड़ी समाज स्वयं "चाँद" जैसा समाज में क्रान्ति उत्पन्न करने वाला अपना एक अलग पत्र प्रकाशित करेगा जिसमें अपने समाज के दोषों पर निस्संकोच प्रकाश डालते हुए उनके क्रियात्मक सुधार का ठोस आन्दोलन हो।

मैं आप के इस निश्चय से सर्वथा असहमत हूँ कि "अबलाओं का इंसाफ" एक घृणित और अश्लील पुस्तक है, और उसकी निन्दा हिन्दी संसार ने की है अथवा वह किसी दुर्भावना से प्रकाशित हुई है।

जब तक "चाँद" का "मारवाड़ी अंक" प्रकाशित न हो जाय और मैं उसको देख न लूँ—तब तक केवल अनुमान पर यह निश्चय कर लेना मैं उचित नही समझता कि वह किसी दुर्भावना से निकल रहा है। यहाँ पर मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यद्यपि चाँद सम्पादक सहगल जी के साथ मेरा बहुत स्नेह है और उनके अनेक गुणों का मैं आदर करता हूँ परन्तु कई बातो में मेरा उनसे मतभेद भी है और "मारवाड़ी अंक" निकालने का तो मैंने उनको स्पष्टतया निषेध किया था, इस भय से नही कि अपने समाज की त्रुटियाँ प्रगट होंगी जिससे हमारी प्रतिष्ठा में धक्का लगेगा या अन्य किसी प्रकार का नुकसान पहुँचेगा; किन्तु इसलिए कि "मारवाड़ी समाज अपनी वर्तमान मनोवृत्ति में इससे कुछ भी लाभ नही उठावेगा; व्यर्थ ही आपस की खींचा-तानी होगी—जिससे दोनों तरफ हानि होगी" परन्तु मेरी सम्मति सहगल जी के ध्यान मे नही बैठी और वे अपनी स्वेच्छा से "मारवाड़ी अंक" निकाल रहे हैं।

मैं आप के एसोसियेशन को विश्वास दिलाता हूँ कि समाज की भलाई-बुराई का जितना ध्यान आप को है मुझे उससे कुछ भी कम नही है। मैं भी अन्तःकरण से समाज का हित चाहता हूँ—परन्तु वह हित वास्तविक होना चाहिए—केवल बाह्याडम्बर का नही।

भवदीय—
रामगोपाल मोहता

अबलाओं की पुकार

यहाँ अबलाओं की पुकार शीर्षक से लिखी गई मोहता जी की एक लावणी दी जा रही है, जिसमें नारी की असहाय अवस्था का सही चित्र उपस्थित किया गया है :—

(लावणी)

सजन सुनो दे कान, धरम का जो दम भरते हो ।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ।।टेर।।

अन्तरा

ब्रह्मा जी आदि काल में सृष्टी रची सारी, एक भुजा से हुआ पुरुष और दूजी से नारी ।टेक।
दोनों मिल कर गृहस्थ करो यह आज्ञा करी जारी, आप जगत के पिता हुए और हम भी महतारी ।
हम बिना आपका कोई काम नहीं चलता, नारी को दुख होने से धर्म नहीं पलता ।
जप तप व्रत तीरथ यज्ञ दान नहीं फलता ।

धरमशास्त्र के हैं ये वचन; ध्यान इन पर भी धरते हो ।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ।।१।।

कन्या का जब होय जनम तब दुखी आप होते; मन्द हमारे भाग यह कह कर मन ही मन रोते ।
चीज निकम्मी जान हमें नफरत की नजर जोते; प्रारब्ध से बड़ी होत मापों का मन भोरे ।।
फिर आखिर ब्याहने की नौबत आती है; बिन देखे भाले वर को दी जाती है ।
निर्दयी आपकी बाजार सी हाती है ।।

तुम अपने स्वारथ काज हमारा सब सुख हरते हो ।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ।।२।।

चाहे वर बालक हो नादान मूरख होवे दुराचारी; बुड्ढा हो बीमार पहिले मौजूद भी हो नारी ।
पशु दान देने में देखते पात्र सदाचारी; पर कुपात्र को दे देते हो कन्या बेचारी ।।
हम बिना उजर उसके पीछे हो जाती; बेजोड़ विवाह से उमर भर दुख पाती ।
सब सहती अत्याचार मरा मन मारती ।।

और हरदम करती टहल, आप फिर भी नहीं ठहरते हो ।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ।।३।।

हो भले हमारे भाग आपके पहले चली जावें; छोटी उमर में तो भी धन धन्य कहलावें;
नहीं सोच फिकर का काम सुख दुख नारी पावे; फटी चादरी फेंक नई ज्यों ऐसे लावे ।।
जिनके घर में बेटे पोते पोती हैं; सब अंग शिथिल आँखों की मन्द ज्योती है ।
उनके सारे सम कन्याएँ रोती हैं ।।

करो इस तरह के अनरथ प्यार नहीं ईश्वर से डरते हो ।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ।।४।।

दैव योग से अगर आपके पीछे रह जातीं; जन्म भ्रष्ट हो जात जगत में नहीं कोई साथी ।
आठ बरस से साठ बरस की बस उमर वालीं; बिना मरण हर बार सिसकतीं पड़ी अंधी जलतीं ।।
नहीं एक पलक भी सुख का दम भर सकतीं; नहीं योग जाप ईश सुखी ध्यान धर सकतीं ।
नहीं घर से बाहर एक कदम धर सकतीं ।।

करें हम पर यह अन्याय, आप सुख से विचरते हो ।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ।।५।।

काया के जो धरम छोड़ सकता नहीं कोई; योगी यती ब्रह्मा पण्डित चाहे जो होई।
ब्रह्मा विष्णु महेश ऋषि और मुनी हुए जोई; कुदरत के नियमों को जरा नहीं पलट सके कोई॥
इन विषयों के वेगों को किसने मारा; मन की चंचलता से अर्जुन भी हारा।
फिर साधारण अबलाओं का क्या चारा?

तब नाहक हमको दोष लगाने पर क्यों उतरते हो।
नारी नर से कहे जुल्म हम पर क्यों करते हो॥६॥

इस हालत पर भी हमको तुम ही फुसलाते हो; हम चाहें बचने को सत्त तुम ही डिगवाते हो।
धर्म भ्रष्ट जबरन करते जब मौका पाते हो; फिर भी ठेकेदार धरम के तुम कहलाते हो॥
छल छिद्र आन कर हमसे पाप करवाते; जब काम पड़े तब आप अलग हो जाते।
टीका कलंक का हमरे सिर लगवाते॥

करो तुम ऐसे खोटे काम फिर भी शेखी में मरते हो।
नारी नर से कहे जुल्म हम पर क्यों करते हो॥७॥

नारी नर से हाथ जोड़ कर अरज करे स्वामी; बन्द करो सब जुलम बुरी होवे अन्तरयामी।
आपनशान के धरम विचारो मेटो बदनामी; दोनों आँख एकसी देखो दूर करो खामी॥
इस समय धर्म की बहुत हो रही हानी; हिन्दू जाति दब रही है चारों कानी॥
हम अबलाओं की हो रही है हैरानी॥

ऋषि मुनियों के संतान धर्म अपना क्यों बिसरते हो॥
नारी नर से कहे जुल्म हम पर क्यों करते हो॥८॥

"मारवाड़ी सम्मेलन" की अध्यक्षता

यह विरोध अधिक दिन नहीं चल सका। आपने जिस सुधारक भावना से पुस्तक लिखी और प्रकाशित करवाई थी, उसी से प्रेरित होकर आप "माहेश्वरी" तथा "चाँद" में सामाजिक विषयों पर अपने विचारपूर्ण लेख समय-समय पर लिखते रहते थे। इसलिए आपकी भावना को समझने में लोगों को अधिक समय नहीं लगा। संवत् १९९० में जब आप कलकत्ता गए थे तब आप का विरोध करने वालों ने ही आपका विशेष सम्मान किया और संवत् २००१ में दिल्ली में हुए अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन में आप सभापति चुने गए। इस अवसर पर आप का विशाल जलूस निकाला गया और विशेष रूप से आप का सम्मान किया गया।

मारवाड़ी सम्मेलन के कार्य-क्षेत्र में समाज-सुधार का विषय सम्मिलित नहीं था। इसी कारण आपने एकाएक उसका सभापति होना स्वीकार नहीं किया था। बहुत आग्रह और विचार के बाद आपने इसलिए उसको स्वीकार किया कि उसमें बिना किसी ऊँच-नीच के विचार के सभी मारवाड़ी अर्थात् मारवाड़ अथवा राजस्थान के निवासी सम्मिलित हो सकते थे। इसी कारण आप बीकानेर से अपने साथ जिन प्रतिनिधियों को लाये थे उनमें मेहार जाति के पांचाराम, नागरमल तथा मेघवाल जाति के कुछ लोग भी सम्मिलित थे। सभा मण्डप में वे सब के साथ मंच पर बैठे और इनके भाषण भी हुए। भोजन में भी वे सब के साथ बैठते थे। देश के कोने-कोने से बड़े-बड़े मारवाड़ी सेठ-साहूकार दिल्ली आए थे। हरिजनों को अपने साथ उठने-बैठने और खाने आदि में किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। समाज सुधार की दिशा में आप ने यह बहुत बड़ा कदम उठाया था। अध्यक्ष पद से दिया गया आप का भाषण भी अत्यन्त उग्र क्रान्तिकारी विचारों से ओत-प्रोत था। गीता के समत्व योग के भारतीय दृष्टिकोण से उसमें साम्यवाद की व्याख्या अत्यन्त रोचक, ओजस्वी और मर्मस्पर्शी भाषा में की गई थी।

सम्मेलन के कार्य से निपट कर आप दिल्ली से हरद्वार गए और वहाँ दो मास रहे। आप के उस

प्रवास के दिनों में वहाँ वयोवृद्ध श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उसमें आप सम्मिलित हुए और उसके लिए पधारे हुए हिन्दी के विद्वानों का आपने सत्कार-सम्मान किया। ज्वालापुर महाविद्यालय को कई एकड़ जमीन खरीदने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, कन्या महाविद्यालय और सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के महावीर दल आदि का निरीक्षण करके उनको भी यथायोग्य आर्थिक सहायता प्रदान की।

सम्मेलन से त्याग-पत्र

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से समाज सुधार के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण आपने त्यागपत्र दे दिया। उसका कार्यालय कलकत्ता में था। आप से बिना परामर्श लिए सम्मेलन के मन्त्री ने केन्द्रीय धारा सभा में उपस्थित किए गए डा० देशमुख के हिन्दू स्त्रियों के अधिकार सम्बन्धी बिल का स्थानीय कमेटी की सम्मति से विरोध किया। महिलाओं के अधिकार के अन्यतम समर्थक होने के कारण आप उस विरोध से सहमत नहीं थे। त्याग-पत्र देने पर आप से अध्यक्ष बने रहने का बहुत अनुरोध किया गया, किन्तु आप ने यह कहकर उस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया कि स्त्रियों के अधिकारों का विरोध करने वालों के साथ आप काम नहीं कर सकते।

कुछ विविध कार्य

धर्मशाला का निर्माण

आप के पूर्वजों ने बीकानेर में स्टेशन के समीप जिस विशाल धर्मशाला, बावड़ी, कूएं और मन्दिर आदि का निर्माण करवाया उसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। संवत् १६७६ में सूनी में इसलिए धर्मशाला बनवाई गयी कि राजस्थान के विविध स्थानों विशेषतः बीकानेर से गिनर जाने वालों को वहाँ ट्रेन बदलने के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था। उनके विश्राम व भोजन आदि के लिए वहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। उनको उस धर्मशाला से बड़ा आराम मिलने लगा।

जिमखाना

कराची में आपने अनेक लोकोपकारी कार्यों में सक्रिय भाग लिया, अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ कायम की और उनके लिए आप के पिताजी ने और आपने कई बड़े-बड़े ट्रस्टों का निर्माण भी किया। उन ट्रस्टों के लिए अनेक विशाल भवनों की रजिस्ट्री करवा दी गई थी। कराची में अंगरेजों और मुसलमानों के सैर-सपाट, आमोद-प्रमोद तथा मनोरंजन के लिए अनेक क्लबें तथा जिमखाने आदि बने हुए थे। हिन्दुओं की कोई अपनी संस्था नहीं थी। अतः वहाँ के हिन्दू नागरिकों के अनुरोध पर आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी मोहता ने "श्री रामगोपाल गोवर्धन दास मोहता हिन्दू जिमखाना" के लिए एक विशाल भवन का निर्माण करवा दिया।

साहित्य भवन और विद्यालय

हिन्दी के प्रति आपके अनुराग की चर्चा यथास्थान की गई है। सिंध तथा कराची में हिन्दी के लिए वैसी अनुकूलता नहीं थी। फिर भी आपने एक हिन्दी साहित्य भवन कायम करके वहाँ हिन्दी प्रचार तथा हिन्दी साहित्य के लिए एक केन्द्र कायम कर दिया। इसी प्रकार मारवाड़ी समाज के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था
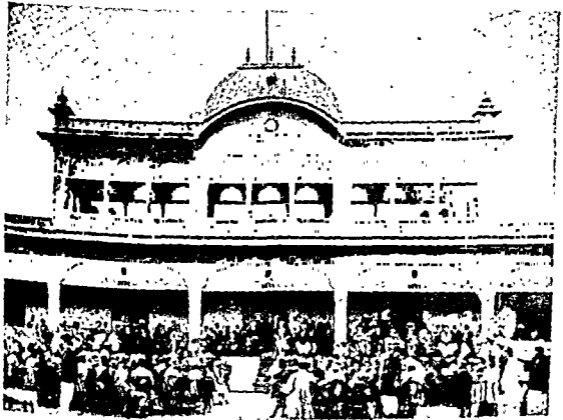
श्री रामगोपाल हिन्दू जिमखाना, कराची ।

महिला मंडल बीकानेर की एक सभा का दृश्य ।

न होने से उनकी बस्ती के केन्द्र में उनके बालक-बालिकाओं की शिक्षा की सुविधा के लिए एक मारवाड़ी विद्यालय और एक मारवाड़ी कन्या पाठशाला स्थापित करवाई।

श्रीमती जीताबाई मातृ सेवा सदन

बीकानेर में महिलाओं के लिए प्रसूति की कोई समुचित आधुनिक व्यवस्था नहीं थी, इसलिए प्रसव कालीन अनेक दुर्घटनाएँ होती थी। महिलाएं सुव्यवस्था के अभाव मे प्रसूति सम्बन्धी रोगों से पीड़ित हो जाती थीं, उनमें कई मर भी जाती थी। महिलाओं के इस कष्ट और अबोध शिशुओं की दुर्दशा आप सहन नहीं कर सके। इसलिए संवत् १९९७ मे आपने अपनी माता जी की पुण्य स्मृति मे श्रीमती जीताबाई मातृ सेवा सदन शहर के अपने विशाल भवन मे स्थापित किया। इसमें प्रसव के लिए सब प्रकार की आधुनिक सुविधाओं की व्यवस्था की गई। एक सुयोग्य नर्स और उपचारिकाएँ चौबीसों घण्टे निरन्तर वहाँ रहती हैं। इसमे १५ महिलाओं के लिए प्रसव का सुप्रबन्ध है। अनुमानतः ६०० रु० मासिक खर्च आप अपने ट्रस्ट में से देते हैं।

शरणार्थियों की सेवा

सन् १९४७ मे देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन होने पर पश्चिमी पंजाब और सिन्ध से हजारों हिन्दू अपने परिवार के साथ खदेड़े जाकर बीकानेर पहुँचे थे। कितने ही परिवार बहावलपुर के रास्ते पैदल चलकर बीकानेर आये थे। उन शरणार्थियों के लिए बीकानेर मे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। आपने कितने ही परिवारों को अपनी विशाल धर्मशाला तथा अन्य मकानों में आश्रय दिया और उनके लिए वस्त्र एवं भोजन आदि का प्रबन्ध किया। अनेकों को शनैः शनैः अपने और किराये के मकानों में भी बसाया। कई वर्षों तक उनके लिए वस्त्र एवं खान-पान की व्यवस्था जारी रखी गई। उनके बालक बालिकाओं की शिक्षा के लिए समुचित सहायता दी गई। ज्यों-ज्यों वे काम-काज में लग कर आत्म निर्भर होते गए त्यों-त्यों उन्होंने यह सहायता लेनी बन्द कर दी, परन्तु आपने किसी को निराश व निराश्रित नहीं रहने दिया। अनेक लोग आपकी सहायता के कारण अपने पैरों पर खड़े होकर अच्छे व्यापार-व्यवसाय में लग गए। अनेक बालक सुशिक्षित होकर अच्छी नौकरियों में लग गए। उनमें जो अपंग थे अथवा जो अनाथ विधवाएँ थीं उनको अब तक भी मासिक सहायता दी जाती है।

बहावलपुर से पैदल बीकानेर आने वालों में हरिजनों की संख्या अधिक थी। उनको शुरू में कोलायत जी में रख कर उनके लिए वस्त्र व भोजन आदि का प्रबन्ध किया गया। बाद में उनको गंगानगर में मुसलमानों द्वारा छोड़ी गई जमीनों पर आबाद करने में सहायता दी गई। इस प्रकार कितने ही शरणार्थी परिवार आपकी सामयिक सहायता से उपकृत होकर स्वावलम्बी बनने में समर्थ हुए। उनकी सेवा व सहायता करते हुए यह आप भूल ही गए कि आप और आपके कितने ही कुटुम्बी जन करोड़ों लाखों की जायदाद, व्यापार व्यवसाय तथा छोटे-बड़े उद्योग-धन्धे छोड़ कर स्वयं शरणार्थी बन कर बीकानेर आए थे। सबके दुख को अपना दुख मानकर आपने उसके निवारण का अत्यन्त यशस्वी एवं सराहनीय काम किया।

महिला मंडल

महिलाओं के उत्थान के लिए उनको शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। और महिलाओं की शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हुए आपने स्वतंत्रता दिवस १५ अगस्त, १९४७ को महिला मंडल की स्थापना की और उसका सारा प्रबन्ध महिलाओं के ही हाथों में रखा गया। आपकी सुशिक्षिता दौहित्री श्रीमती रतन बाई रम्भाणी "साहित्य रत्न" और श्रीमती गुलाब कुमारी जी देगावत ने उसकी स्थापना में विशेष भाग लिया है।

श्रीमती दम्माणी उसके प्रारम्भ से उसका संचालन बड़ी योग्यता से कर रही हैं। शहर के मध्य में "श्रीमती जीतावाई मातृ सेवा सदन" के भवन से सटा हुआ अपना एक दूसरा विशाल भवन उसके लिए आपने दे दिया। इसमें महिलाओं की उपयोगी शिक्षा के साथ-साथ अनेक प्रकार के हस्त कौशल व दस्तकारी के काम सिखा कर उनको स्वावलम्बी बनाया जाता है। यह संस्था महिलाओं की प्रगति के लिए काम करने वाली प्रमुख संस्था है।

आपके पिछली आधी सदी के सार्वजनिक जीवन का सिंहावलोकन करने पर यह बिना संकोच के कहा जा सकता है कि उसमें सार्वजनिक सेवा एवं समाज सुधार की गंगा, यमुना की सी दोनों धाराओं का सतत प्रवाह निरन्तर विद्यमान है। यही आपके जीवन की उत्कृष्ट विशेषता है। मानव जीवन के इस भारतीय आदर्श का कि वह सैंकड़ों हाथों से कमाये और हजारों हाथों से उसको लोकोपकार के कार्यों में लगाये, आपने अपने जीवन में सदा पालन किया है। आपने कभी भी अपनी इस उदार प्रकृति का सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं किया। विज्ञापन और प्रकाशन से आप सदा ही कोसों दूर रहे हैं। साधना के रूप में किये जाने वाली लोक सेवा और समाज सुधार का महान् कार्य आपके जीवन के महाव्रत रहे हैं। उनका पालन आपने निरन्तर धार्मिक अनुष्ठान की तरह किया है। सच तो यह है कि साम्प्रदायिक व धार्मिक कर्मकांड की अपेक्षा यही आपके लिए वास्तविक धर्म-कर्म है, जिसमें आप कभी भी चूकते नहीं।

८

साहित्य सृजन और वेदान्त की ओर झुकाव

धार्मिक गीतों और लावणियों की ओर आपका झुकाव बहुत छोटी अवस्था में ही हो गया था। माता पिता की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण घर का वातावरण कुछ ऐसा था कि आप में धार्मिक अभिरुचि पैदा करने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। वह आप में स्वाभाविक रूप से ही पैदा हो गई। माता जी से प्राप्त संस्कार और घर के निजी मन्दिर तथा उनमें होने वाले धार्मिक अनुष्ठान उसके लिए विशेष सहायक सिद्ध हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्वभावसिद्ध धार्मिक श्रद्धा तथा आस्तिक वृत्ति के साथ-साथ मुमुक्षु भावना भी आप में जन्मसिद्ध विद्यमान थी। पारिवारिक संस्कारों से प्राप्त रजोगुण के साथ सतोगुण की मात्रा भी कम नहीं थी। शंका समाधान तो आप कुछ अधिक नही करते थे किन्तु सब बातों की गहराई में जाकर उनको समझने का प्रयत्न आप अवश्य किया करते थे। हृदय की पवित्रता मस्तिष्क की जिज्ञासु भावना को प्रबल बनाने में सहायक हुई। व्यर्थ का वितंडावाद आपको पसन्द नही है। परन्तु मुमुक्षु दृष्टि भीतर ही भीतर अपना काम करती रही। उसका जो क्रमिक विकास हुआ उसकी सुनहरी रेखा आपके सारे जीवन में व्याप्त है और वह निरन्तर चमकती ही गई है। उसके प्रकाश में आप अपने जीवन का निर्माण करने में लगे रहे।

श्री उत्तम नाथ जी महाराज का सत्संग

आपके पिता जी साधु-संतों और महात्माओं को भोजन के लिए बड़ी श्रद्धा से निमन्त्रित किया करते थे। आप उनसे भी कुछ न कुछ ग्रहण करने का प्रयत्न किया करते थे। परन्तु अधिकांश साधु केवल भोजन भट्ट होते थे और उनसे आपको सीखने के लिए कुछ भी नही मिलता था। इसलिए आपकी उन पर श्रद्धा नहीं जम सकी। आप उनको समाज के लिए भार मान कर देश को निरुद्यमी बनाने और उसका पतन करने वाले मानते थे। परन्तु श्री उत्तम नाथ जी बहुत ही त्यागी, सदाचारी, विद्वान् तथा स्वतंत्र विचार के महात्मा थे। वेदान्त दर्शन के वे उच्चकोटि के मर्मज्ञ थे। वे जब आपके यहाँ भोजन करने आए तब उनसे आपकी बातचीत हुई। आपने उनसे अपनी मनोभावना प्रगट की। आप तब गीता का स्वाध्याय प्रारम्भ कर चुके थे और गीता पर लिखा गया लोकमान्य का "गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" भी आपने पढ़ लिया था। वेदान्त के निवृत्ति मार्ग पर आपकी श्रद्धा नही थी, इसलिए आपने श्री उत्तमनाथ जी के सम्मुख वेदान्त के निवृत्ति मार्ग के सम्बन्ध में अपनी शंकाएँ उपस्थित कीं। उन्होंने कहा कि वास्तव में वेदान्त का ठीक-ठीक रूप लोगों ने नहीं समझा है और वह निर्गुण-परक और अवनति का कारण नही है। तुम मेरे सत्संग में आकर गीता की कथा सुनो और अपनी शंकाओं का समाधान करो। तब तुम वेदान्त का वास्तविक रूप समझ सकोगे।" आपकी गोवरधन सागर बगीची में जिसको कि "पोह" कहते थे वे ठहरा करते थे। उनके सत्संग में जाना आपने शुरू किया। वे गीता की निवृत्तिपरक टीकाओं के आधार पर कथा और वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त की विशेष व्याख्या किया करते थे। विशेष प्रसंगों पर वे अनेक दृष्टान्त देकर और भजन गाकर विषय को बड़ा रोचक तथा आकर्षक बना दिया करते थे। धर्म व भक्ति के नाम पर प्रचलित पोल पाखंड का बड़ी निर्ममता से खंडन किया करते थे। सामाजिक कुरीतियों और भ्रष्टाचार की भी बड़ी कठोर आलोचना किया करते थे। उनके उपदेशों में आपका आकर्षण व रुचि दिन पर दिन बढ़ती गई। वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त में आपका विश्वास जम गया। आप यह मानने लग गए कि उनको

समझ कर उसके अनुकूल आचरण करने में ही मनुष्य का सारा पुरुषार्थ निहित है। जीवन की सफलता का यह मर्म आपके हृदय और मस्तिष्क में पूरी तरह बैठ गया।

स्वामी रामतीर्थ के भाषणों का अध्ययन

आपकी गोवरधन सागर की बगीची में एक बार बिहार के दो साधु ठहरे। उनके साथ आपकी चर्चा हुई। उन्होंने "विचार सागर" की बहुत कटु आलोचना की। स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यान पढ़ने का आपको परामर्श दिया। आपने लखनऊ से उनके व्याख्यानों के २८ भाग मंगाकर देखे और "गीता रहस्य" भी एक बार फिर ध्यान से पढ़ा। गीता पर लिखे गये अन्य निबन्धों और उसके भाष्य तथा टीकाओं की अपेक्षा इन पुस्तकों की एक यह विशेषता है कि जहाँ दूसरों में दया, सत्य, अहिंसा, क्षमा, सन्तोष, आर्जवता आदि नीति धर्मों को नित्य और शाश्वत माना गया है और हिंसा, काम, क्रोध, लोभ, छल, कपट आदि को सदा अधर्म माना गया है वहाँ इनमें इन सब के सदुपयोग करने और दुरुपयोग से बचने की विवेक दृष्टि आपको प्राप्त हुई जिसके आधार पर आप इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब उक्त नीति धर्मों से समाज की व्यवस्था बिगड़ती है तब यही अधर्म का रूप धारण कर लेते हैं और अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब हिंसा, काम, क्रोध, आदि अधर्म माने जाने वाले आचरणों का सदुपयोग समाज की सुव्यवस्था के लिये आवश्यक हो जाता है। तब यही धर्म का रूप धारण कर लेते हैं। वेदान्त के सिद्धान्त को जीवन के व्यवहार में उपयोग करने का यह महत्व आपकी समझ में आने लगा और उसमें आपका विश्वास एवं श्रद्धा जमती चली गई। अपने अनुभव और विचार से आपका यह विश्वास और श्रद्धा सुदृढ़ होती गई।

"सात्विक जीवन" और "दैवी सम्पद्"

संवत् १९८३ में आपने गीता के आधार पर "सात्विक जीवन" नाम की पहली पुस्तक लिखी। वह बहुत पसन्द की गई। उसमें गीता के कई श्लोकों का संग्रह सरल हिन्दी के अर्थों के साथ दिया गया था और गीता द्वारा प्रतिपादित जीवन के सात्विक पहलू पर प्रकाश डाला गया था। संवत् १९८४ में उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया गया और १९८७ में तीसरा और फिर चौथा संस्करण प्रकाशित हुआ। इसी विषय का कुछ अधिक विस्तार करते हुए संवत् १९८७ में "दैवी सम्पद" नाम से आपने एक बड़ी पुस्तक लिखी। वह भी बहुत पसन्द की गई। समाचार पत्रों में उसकी अत्यन्त उच्चकोटि की आलोचना हुई। लन्दन के 'इंडियन मैग्ज़ीन एण्ड रिव्यू' ने जुलाई सन् १९३१ के अंक में उसकी विस्तृत आलोचना करते हुए लिखा था कि "भारतीय इतिहास के इस युग परिवर्तन के अवसर पर, मि० मोहता ने, जो कि दर्शन-शास्त्र के एक उच्च कोटि के प्रकाण्ड पंडित हैं, इस (पुस्तक) में "गीता" के उच्च सिद्धान्तों की सुस्पष्ट व्याख्या करके तथा मानव सेवा में आत्म-त्याग के महत्व पर जोर देकर, समाज सुधार तथा अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव के पुनीत कार्य की सेवा की है। उनका किया हुआ मनोगत भावों की गुत्थियों का विश्लेषण, इस बात का प्रमाण है कि वे मानव समाज के मर्मज्ञ हैं और यह (विश्लेषण) अर्वाचीन मनोविज्ञान की समस्याओं में से एक को ठोस सहायता प्रदान करता है। पूर्व और पश्चिम दोनों के शिक्षित विचारवानों का झुकाव प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक समस्या के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने की ओर हो रहा है और लेखक ने यह पर्याप्त रूप से स्पष्टतया प्रदर्शित कर दिया है कि सम्पूर्ण मानव कर्म किस तरह विश्व-कल्याणार्थ प्रेम से प्रेरित होकर किए जाने चाहिए। लोगों की इस धारणा की धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं कि हिन्दू दर्शन शास्त्रों का अध्ययन केवल आलस्यपूर्ण जीवन की ओर ही ले जाता है, और साथ ही साथ आत्मा की मुक्ति के लिए समाजसेवा में आत्म-समर्पण करने के आदर्श पर

जोर दिया गया है। पुस्तक की मनोहरता, उसकी सुस्पष्ट और सुललित वर्णन शैली और सार्वजनिक भ्रातृभाव की भावना में, जिसकी भारत की भावी उन्नति के लिए इस प्रकार आवश्यकता है, भरी हुई है। इतना ही नहीं किन्तु राजनीतिक समस्याओं की पूर्ति का भी प्रयत्न किया गया है—संकुचित राष्ट्रीयता के भाव से नहीं वरन् प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय भातृ भाव के विस्तृत दृष्टिकोण से। ऐसी अत्युत्तम पुस्तक के लिए विश्व में "प्रेम, सत्य एवं शान्ति-स्थापना" के कार्य में संलग्न रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की ओर से मि० मोहता बधाई के पात्र हैं।"

भारत के प्रायः समस्त समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में इस पुस्तक की इसी प्रकार की उच्चकोटि की समालोचना की गई थी। मद्रास के दैनिक "हिन्दू" में पुस्तकों की समालोचना को अधिक स्थान नहीं दिया जाता है; परन्तु इस पुस्तक की विस्तृत आलोचना करते हुए लिखा गया था कि "यदि भगवद्गीता के व्यवहार दर्शन का यह संदेश सही-सही समझ लिया जाय और व्यावहारिक समाज जीवन में कार्य रूप में परिणित कर लिया जाय तो उन नाना प्रकार के दोषों से, जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जातियों में दीर्घ काल से प्रचलित हैं, सहज ही में निस्तार हो सकता है। अकर्मण्यता मृत्यु है और क्रियाशीलता जीवन है, यही गीता का सन्देश है।"

लेखक की भाषा धारावाहिक और ओजपूर्ण है और सर्वत्र विषय का प्रतिपादन तर्क शैली का विकास जितना प्रशंसनीय है उतना ही विशुद्ध है।"

श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय ने "सस्ता साहित्य मण्डल" की ओर से उसको प्रकाशित करने की अनुमति आपसे प्राप्त की और उसके कई संस्करण उन्होंने प्रकाशित किए। श्री उत्तमनाथ जी महाराज ने भी उन दोनों पुस्तकों को बहुत पसन्द किया। फिर आपने उनसे "ईशावास्य, कठ और बृहदारण्यक उपनिषद पढ़ कर बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य का मैत्रेयी को उपदेश और मधुविद्या के भावों पर दो बहुत सुन्दर भजन रचकर उनको सुनाये जिनसे वह बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि "मेरा परिश्रम सफल हो गया।"* (ये भजन प्रेम भजनावली नामक

---

* आत्म-प्रेम

जग में प्यारे लगे सब अपने लिये।
अपने लिये, अपने आपके लिए, जग में प्यारे० ॥ टेर ॥

अन्तरा

पति पत्नी को पत्नी पति को, पिता पुत्र प्यारे अपने लिये।
मात सुता भगिनी और बन्धु, मित्र भी प्यारे लगते अपने लिए ॥१॥
श्याल जार और सगे सम्बन्धी, गुरु शिष्य प्यारे अपने लिए।
राजा रैयत ग्राम नगर और, देश भी प्यारा लगता अपने लिए ॥२॥
अन्न धन वैभव वस्त्र आभूषण, भूमि भवन प्यारे अपने लिए।
पशु पक्षी वन वृक्ष लता फल, नदी पहाड़ प्यारे अपने लिए ॥३॥
आश्रम वर्ण जाति बुद्धि बल, मान बड़ाई प्यारी अपने लिए।
भोग नाक सुख स्वर्ग रचना मन, देह भी प्यारी लगती अपने लिए ॥४॥
वेद शास्त्र और धर्म कर्म सब, ईश्वर भी प्यारा लगता अपने लिए।
देवी देव सर्वादि सोद पुनि, मुक्ति भी प्यारी लगती अपने लिए ॥५॥
जो कोई जिसको अपना माने, उसको वह प्यारा लगता अपने लिए।
माने बेगाना जो कोई जिसको, वह नहीं प्यारा लगता अपने लिए ॥६॥
जिसने स्वरूप अपने माने, शेष बेगाने कोई अपने लिए।
अपनी वस्तु जब होय बेगानी, फिर नहीं प्यारी लगती अपने लिए ॥७॥

पुस्तिका में प्रकाशित किये गये हैं।) सचमुच ही गुरु की सफलता अपने शिष्य को अपनी शिक्षा में निपुण बनाने में ही है। स्वतन्त्र विचारों के जो अंकुर उन्होंने आपके हृदय में प्रस्फुटित किए थे उनको फलता-फूलता देखकर उनका प्रसन्न होना स्वभाविक था।

गीता का व्यवहार दर्शन

उसके बाद आपने गीता पर "व्यवहार दर्शन" के नाम से एक विस्तृत टीका लिखनी शुरू की और संवत् १९९० में चार अध्यायों की टीका प्रकाशित की गई। उसका कल्पना से भी अधिक स्वागत हुआ। उससे उत्साहित होकर आपने गीता के सम्पूर्ण १८ अध्यायों की टीका और अपने अनुभव के आधार पर विस्तृत स्पष्टी-करण लिख कर संवत् १९९४ में तैयार की। "अभ्युदय" के सम्पादक स्वर्गीय पंडित कृष्णकान्त जी मालवीय के कराची आने पर आपने उनको दिखाया। उन्होंने उसकी बहुत ही सराहना की। उनसे उसकी भूमिका लिखने के लिए जब आपने अनुरोध किया, तब उन्होंने कहा कि यह किसी उच्च कोटि के विद्वान से लिखवाई जानी चाहिए। उन्होंने दिल्ली जाकर लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे को उसके लिए सहमत कर लिया। वे तब हिन्दू महासभा के सभापति और वायसराय की कौंसिल के सदस्य थे। श्री चिन्तामणि विद्याभूषण को उसकी पांडुलिपि देकर उनके

लगते पदारथ जब तक प्यारे, अच्छे लगे जब वे अपने लिए।
मान किसी को अपना बेगाना, दुःख उपजावे क्यों अपने लिए ॥८॥
असली प्यारा अपना आप है, जो सदा अच्छा लगता अपने लिए।
सच्चिदानन्द आप है सब में, इसी से प्यारे सब अपने लिए ॥९॥
अपने आपको सब में जाने, सबको यह प्यारा लगता अपने लिए।
सब "गोपाल" नहीं कोई दूजा, यही समझ मन अपने लिए ॥१०॥

* मधु विद्या

सभी पदारथ हैं इस जग में, एक एक के उपकारी ॥ टेर ॥

अन्तरा

नभ वायु अग्नि पृथ्वी जल। रवि शशि तारा बिजली बादल।
नदी पहाड़ वन वृक्ष लता फल। पशु पक्षी और नर नारी ॥ १ ॥
देव असुर भूपति धन हीना। शूर और कायर मति दीना।
पण्डित मूरख वृद्ध नवीना। सज्जन और दुराचारी ॥ २ ॥
सुख सम्पत्ति विपद दुख नाना। हानि लाभ जीना मर-जाना।
हर्ष शोक रोना और गाना। अमृत जहर मधुर खारी ॥ ३ ॥
भले बुरे मोटे छोटे सब। ध्यान में मस्तक होवे जब।
अपने कार सब कर सकते तब। सन्यासी और पटवारी ॥ ४ ॥
ऊंचे नीचे हलके भारी। मनोरञ्जित सृष्टि सारी।
सभी परस्पर हैं हितकारी। उपकारकता भारी भारी ॥ ५ ॥
तिरस्कार करना न किसी का। एक आत्मा है सब ही का।
उपकारक और अपकारी का। भेद बुद्धि तजिये सारी ॥ ६ ॥
जड़ चेतन जो कुछ है होई। सब "गोपाल" और नहिं कोई।
सच्चिदानन्द एक नहीं दोई। अन्य भाव सब भारी ॥ ७ ॥

पास दिल्ली भेजा गया। उन्होंने सारा ग्रन्थ देखकर अंग्रेजी में बहुत सुन्दर और भावपूर्ण प्राक्कथन लिख दिया।

अणे जी का प्राक्कथन

लोकनायक श्री माधव श्री हरि अणे ने अपने प्राक्कथन में लिखा कि "इस सुरुचिपूर्ण तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखने और श्री मद्भगवत्गीता पर हिन्दी में सरल, स्पष्ट एवं तेजस्वी भाष्य लिखने के लिए श्री राम गोपाल जी मोहता बधाई के पात्र हैं। बैंकिंग, व्यापार व व्यवसाय के क्षेत्र में वे सुप्रसिद्ध हैं, परन्तु वे विद्वत्ता के क्षेत्र में भी अपने लिए प्रतिष्ठा का स्थान बनाने में वैसे ही और कुछ अंशों में उससे भी कहीं अधिक सफल हुए हैं। हिन्दी भाषी जनता ने उनके लिखे और प्रकाशित किए हुए दो ग्रन्थों "सात्विक जीवन" और "दैवी सम्पद" का बहुत सम्मान किया है और मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि वर्तमान ग्रन्थ "गीता का व्यवहार दर्शन" उनकी कीर्ति में चार चाँद और लगाएगा और विद्वानों की श्रेणी मे विशेषतः हिन्दी साहित्य में उनको एक ऊँचा स्थान प्राप्त कराएगा।"

"सम्पत्ति और विद्वत्ता का समन्वय अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए वह अनादि काल से ही पूर्व और पश्चिमी दोनों के कवियों तथा दार्शनिकों की प्रशंसा का निरन्तर विषय बना रहा है। सरस्वती और लक्ष्मी का संयुक्त निवास बहुत ही कम होता है और जब होता है तब उसके लिए प्रशंसा और सम्मान प्रगट करना अनिवार्य हो जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अमर कीर्ति प्राप्त करने वाले महान् कवि कालिदास ने अपने निम्न-लिखित शब्दों में उनको अपनी मूक श्रद्धा प्रगट की है जिनमें पुरानी परम्परागत कहावत के विरुद्ध सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी और विद्या की देवी सरस्वती दोनों एक साथ सम भाव से रहती हुई पाई गई।

निसर्ग भिन्नास्पदमेकसंस्थं यस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।"

"इस महान् ग्रन्थ के कुछ महत्वपूर्ण हिस्सों को देखकर मुझे यह विश्वास हो गया है कि श्री राम गोपाल जी निश्चय ही उन थोड़ी सी भाग्यशाली आत्माओं में से हैं जो लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के आशीर्वाद और कृपा का प्रसाद एक साथ भोगते हैं।"

गीता के महत्व, विश्वव्यापी प्रसार और सन्देश की व्याख्या करते हुए लोकनायक अणे जी ने फिर लिखा कि "जो लोग लोकमान्य तिलक के विशाल एवं महान् ग्रन्थ "गीता रहस्य" द्वारा गीता को समझने का समय और धैर्य नहीं रखते हैं, उनके लिए प्रस्तुत "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ गीता में प्रतिपादित परिस्थितियों की व्यावहारिक मर्यादा और उसके मन्तव्यों के गूढ़ अर्थ को स्पष्ट रूप में समझने के लिए बड़ा सहायक सिद्ध होगा।" "इसी प्रकार लेखक ने वेदान्त शास्त्र की परिभाषाओं की उलझनों में बिलकुल भी न पड़कर घरेलू भाषा में उस आत्मौपम्य अवस्था की विशेषता और आवश्यक रूप की जो व्याख्या इतने स्पष्ट से की है वह भगवान श्री कृष्ण के अनुसार किसी भी व्यक्ति के आत्मिक विकास की उच्चतम स्थिति है।

इस प्राक्कथन के अंत में बापूजी अणे ने लिखा है कि "उपनिषदें गाय हैं और गोकुल का बड़ा गोपाल बालक दूध दुहने वाला ग्वाला है, तीव्र बुद्धि रखने वाला अर्जुन कृपापात्र बछड़ा है और गीता में प्रतिपादित उपदेश दूध रूपी अमृत है।" उस अमृत के कुछ अंश को उन लोगों में बाँटने के लिए "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ के रूप में एक बहुत सुन्दर पात्र तैयार कर दिया गया है, जो अज्ञानी हैं और उस आध्यात्मिक रूप की दुर्गम व ऊँची चोटी पर पहुँचने में असमर्थ हैं, जिससे उसने आत्म-ज्ञान की पवित्र धारा प्रवाहित की है, जिसको देखो में कृपालुता और दयालुता का महासागर बहा गया है।"

"मेरी सम्मति में लेखक के श्रम का जनता द्वारा यही उचित पुरस्कार दिया जा सकता है कि इस ग्रन्थ की एक प्रति उपलब्ध की जाय।"

पुस्तिका में प्रकाशित किये गये हैं।) सचमुच ही गुरु की सफलता अपने शिष्य को अपनी विद्या में निपुण बनाने में ही है। स्वतन्त्र विचारों के जो अंकुर उन्होंने आपके हृदय में प्रस्फुटित किए थे उनको फलता-फूलता देखकर उनका प्रसन्न होना स्वभाविक था।

गीता का व्यवहार दर्शन

उसके बाद आपने गीता पर "व्यवहार दर्शन" के नाम से एक विस्तृत टीका लिखनी शुरू की और संवत् १९९० में चार अध्यायों की टीका प्रकाशित की गई। उसका कल्पना से भी अधिक स्वागत हुआ। उससे उत्साहित होकर आपने गीता के सम्पूर्ण १८ अध्यायों की टीका और अपने अनुभव के आधार पर विस्तृत स्पष्टीकरण लिख कर संवत् १९९४ में तैयार की। "अभ्युदय" के सम्पादक स्वर्गीय पंडित कृष्णकान्त जी मालवीय के कराची आने पर आपने उनको दिखाया। उन्होंने उसकी बहुत ही सराहना की। उनसे उनकी भूमिका लिखने के लिए जब आपने अनुरोध किया, तब उन्होंने कहा कि यह किसी उच्च कोटि के विद्वान से लिखवाई जानी चाहिए। उन्होंने दिल्ली जाकर लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे को उसके लिए सहमत कर लिया। वे तब हिन्दू महासभा के सभापति और वायसराय की कौंसिल के सदस्य थे। श्री चिन्तामणि विद्याभूषण को उसकी पांडुलिपि देकर उनके

लगते पदारथ जब तक प्यारे, अच्छे लगें जब वे अपने लिए।
मान किसी को अपना बेगाना, दुःख उपजाते क्यों अपने लिए ॥८॥
असली प्यारा अपना आप है, जो सदा अच्छा लगता अपने लिए।
सच्चिदानन्द आप है सब में, इसी से प्यारे सब अपने लिए ॥९॥
अपने आपको सब में जाने, सबको यह प्यारा लगता अपने लिए।
सब "गोपाल" नहीं कोई दूजा, यही समझ मन अपने लिए ॥१०॥

* मधु विद्या

सभी पदारथ हैं इस जग में, एक एक के उपकारी ॥ टेर ॥

अन्तरा

नभ वायु अग्नि पृथ्वी जल। रवि शशि तारा बिजली बादल।
नदी पहाड़ वन वृक्ष लता फल। पशु पक्षी और नर नारी ॥ १ ॥
देव असुर भूपति धन हीना। शूर वीर कायर मति दीना।
पण्डित मूरख वृद्ध नवीना। सज्जन और दुराचारी ॥ २ ॥
सुख सम्पति विपद दुःख नाना। हानि लाभ जीना मर-जाना।
हर्ष शोक रोना और गाना। कपूत सपूत मधुर खारी ॥ ३ ॥
भले बुरे मोटे छोटे सब। ध्यान में लाकर देखो अब।
अपने कार्य सब कर सकते तब। सहकारी और परोपकारी ॥ ४ ॥
ऊंचे नीचे इनके भारी। अन्योन्याश्रित सृष्टि सारी।
सभी परस्पर हैं हितकारी। आवश्यक भारी भारी ॥ ५ ॥
निरर्थक कारण न किसी का। एक कारण है सब ही का।
उपकारक और उपकारी का। भेद बुद्धि तजिये सारी ॥ ६ ॥
जड़ चेतन जो कुछ है सोई। सब "गोपाल" और नहीं कोई।
सच्चिदानन्द एक नहीं दोई। अन्य नाम रूप भारी ॥ ७ ॥

पास दिल्ली भेजा गया। उन्होंने सारा ग्रन्थ देखकर अंग्रेजी में बहुत सुन्दर और भावपूर्ण प्राक्कथन लिख दिया।

अणे जी का प्राक्कथन

लोकनायक श्री माधव श्री हरि अणे ने अपने प्राक्कथन में लिखा कि "इस सुरुचिपूर्ण तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखने और श्री मद्भगवत्‌गीता पर हिन्दी में सरल, स्पष्ट एवं तेजस्वी भाष्य लिखने के लिए श्री राम गोपाल जी मोहता बधाई के पात्र हैं। बैंकिंग, व्यापार व व्यवसाय के क्षेत्र में वे सुप्रसिद्ध हैं, परन्तु वे विद्वता के क्षेत्र में भी अपने लिए प्रतिष्ठा का स्थान बनाने में वैसे ही और कुछ अंशों में उससे भी कहीं अधिक सफल हुए हैं। हिन्दी भाषी जनता ने उनके लिखे और प्रकाशित किए हुए दो ग्रन्थों "सात्विक जीवन" और "दैवी सम्पद" का बहुत सम्मान किया है और मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि वर्तमान ग्रन्थ "गीता का व्यवहार दर्शन" उनकी कीर्ति में चार चांद और लगाएगा और विद्वानों की श्रेणी में विशेषतः हिन्दी साहित्य में उनको एक ऊँचा स्थान प्राप्त कराएगा।"

"सम्पत्ति और विद्वत्ता का समन्वय अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए वह अनादि काल से ही पूर्व और पश्चिमी दोनों के कवियों तथा दार्शनिकों की प्रशंसा का निरन्तर विषय बना रहा है। सरस्वती और लक्ष्मी का संयुक्त निवास बहुत ही कम होता है और जब होता है तब उसके लिए प्रशंसा और सम्मान प्रगट करना अनिवार्य हो जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अमर कीर्ति प्राप्त करने वाले महान् कवि कालिदास ने अपने निम्न-लिखित शब्दों में उनको अपनी मूक श्रद्धा प्रगट की है जिनमें पुरानी परम्परागत कहावत के विरुद्ध सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी और विद्या की देवी सरस्वती दोनों एक साथ सम भाव से रहती हुई पाई गईं।

निसर्ग भिन्नास्पदमेकसंस्थं यस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।"

"इस महान् ग्रन्थ के कुछ महत्वपूर्ण हिस्सों को देखकर मुझे यह विश्वास हो गया है कि श्री राम गोपाल जी निश्चय ही उन थोड़ी सी भाग्यशाली आत्माओं में से हैं जो लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के आशीर्वाद और कृपा का प्रसाद एक साथ भोगते हैं।"

गीता के महत्व, विश्वव्यापी प्रसार और सन्देश की व्याख्या करते हुए लोकनायक अणे जी ने फिर लिखा कि "जो लोग लोकमान्य तिलक के विशाल एवं महान् ग्रन्थ "गीता रहस्य" द्वारा गीता को समझने का समय और धैर्य नहीं रखते हैं, उनके लिए प्रस्तुत "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ गीता में प्रतिपादित परिस्थितियों की व्यावहारिक मर्यादा और उसके मन्तव्यों के गूढ़ मर्म को स्पष्ट रूप में समझने के लिए बड़ा सहायक सिद्ध होगा।" "इसी प्रकार लेखक ने वेदान्त शास्त्र की परिभाषाओं की उलझनों में बिलकुल भी न पड़कर घरेलू भाषा में उस आत्मौपम्य अवस्था की विशेषता और आवश्यक रूप की जो व्याख्या इतने कष्ट से की है वह भगवान श्री कृष्ण के अनुसार किसी भी व्यक्ति के आत्मिक विकास की उच्चतम स्थिति है।

इस प्राक्कथन के अंत में बापूजी अणे ने लिखा है कि "उपनिषदें गाय हैं और गोकुल का बड़ा [illegible] बालक दूध दुहने वाला ग्वाला है, तीव्र बुद्धि रखने वाला अर्जुन कृपापात्र बछड़ा है और गीता में प्रतिपादित उपदेश दूध रूपी अमृत है।" उस अमृत के कुछ अंश को उन लोगों में बाँटने के लिए "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ के रूप में एक बहुत सुन्दर पात्र तैयार कर दिया गया है, जो अज्ञानी हैं और उस [illegible] की दुर्गम व ऊँची चोटी पर पहुँचने में असमर्थ हैं, जिससे उसने आत्म-ज्ञान की पवित्र धारा प्रवाहित की है, जिसको वेदों में कृपालुता और दयालुता का महासागर कहा गया है।"

"मेरी सम्मति में लेखक के श्रम का जनता द्वारा यही उचित पुरस्कार दिया जा सकता है कि इस ग्रन्थ की एक प्रति उपलब्ध की जाय।"

"मैं इस प्राक्कथन को अपने मित्र पंडित कृष्णकान्त मालवीय को धन्यवाद देने के साथ समाप्त करना चाहता हूँ जिन्होंने लेखक का मुझ से परिचय करवाया और पंडित चिन्तामणि विद्याभूषण शास्त्री को भी मैं धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के कुछ मुख्य भाग मुझ को सुनाने और उनकी व्याख्या करने की कृपा की।"

संवत् १६६४ में उसको गीता का व्यवहार दर्शन नाम से पहली बार प्रकाशित किया गया था। यह ग्रन्थ लगभग ५५० पृष्ठों का है। बहुत से विद्वानों ने उसको पढ़कर बड़ी प्रशंसा की और प्रयाग के 'पायोनियर', लाहौर के 'ट्रीब्यून', मद्रास के 'हिन्दू' पूना के 'केसरी' बम्बई के 'बोम्बे क्रोनीकल' आदि देश के प्रायः सभी पत्रों में इस पुस्तक की बहुत प्रशंसात्मक समालोचनाएँ प्रकाशित हुईं। १६६५ में दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। दोनों संस्करण क्रमशः २५०० और ५००० प्रकाशित हुए। संवत् १६६६ में तीसरा संस्करण १०००० प्रतियों का प्रकाशित हुआ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ग्रन्थ के पहले दो संस्करण लोगों को बिना कीमत दिये थे, जिसका उल्लेख अणे जी ने अपने प्राक्कथन में किया है। तीसरे संस्करण में ग्रन्थ की नाममात्र कीमत एक रुपया रखी गई है।

"गीता विज्ञान"

गीता के इस व्यवहार दर्शन को सरल, सुगम और सुबोध बनाने के लिए आपने "गीता विज्ञान" नाम से एक और पुस्तक लिखी। युवकों और विद्यार्थियों के लिए रोचक बनाने के उद्देश्य से पिता-पुत्र के संवाद के रूप में उसको लिखा गया। उसका पहला संस्करण ८००० प्रतियों का और दूसरा १०००० प्रतियों का प्रकाशित किया गया। आपकी ये दोनों पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुई हैं और बिना किसी विज्ञापन तथा प्रचार के भी उनकी माँग देश के कोने-कोने से निरन्तर आती रहती है। दक्षिण में हिन्दी का प्रचार न होने पर भी वहाँ से इन पुस्तकों की विशेष माँग है। हिन्दू विश्वविद्यालय में "गीता का व्यवहार दर्शन" पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

गीता के इस व्यवहार दर्शन को आपने केवल लेखनी से ही नहीं लिखा किन्तु अपने जीवन को भी उसके अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया। उसके लिए आप अपनी गोवर्धन सागर बगीची में नियमित रूप से प्रतिदिन सत्संग, कथा एवं कीर्तन आदि करते हैं। यह पहले शहर में अपने पुराने मकान में होता था। अपने जीवन में व्यवहार दर्शन को उतारने का जो परिणाम हुआ उसकी चर्चा यथा प्रसंग की गई है।

"मान पद्य संग्रह"

संवत् १६६३ में जोधपुर के सुरदास साधु मोहन राम जी बीकानेर आए और वे आपके यहाँ ठहरे। वे महाराजा मानसिंह जी के व्यावहारिक वेदान्त के सम्बन्ध में बहुत से भजन गाया करते थे। वे आपके विचारों के सर्वथा अनुकूल थे और आपको बहुत पसन्द आए। श्री आत्माराम जी इन्हें उनको गाने के समय लिख लिया करते थे। उन भजनों का पहला संग्रह "मान पद्य संग्रह" अथवा "व्यावहारिक आत्मज्ञान" नाम से पहले भाग के रूप में संवत् १६६४ में आपने प्रकाशित करवाया, उसका दूसरा भाग संवत् १६६५ में और तीसरा भाग संवत् २००७ में प्रकाशित करवाया गया। प्रेम भजनावली के नाम से आपके वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप और समाज सुधार के सम्बन्ध में रचे गये भजन भी प्रकाशित किए गए। इन भजनों को भी लोगों ने बहुत पसन्द किया और उनसे समाज सुधार तथा वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप के प्रचार में बड़ी सहायता मिली। ये भजन बीकानेर के

स्वतन्त्रता की प्राप्ति-और उसको संभालने के लिए आवश्यक हैं। उसमें आपने जो स्वतन्त्र विचार प्रगट किए थे वे अब सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

इसी प्रकार संवत् २००७ में आपने "समय की माँग" अथवा "कृष्ण की क्रान्ति" नाम से एक और सामयिक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसमें आपने वर्तमान राज्य व्यवस्था की असफलता की सम्भावना को प्रगट करते हुए गीता के आधार पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक चार प्रकार की क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था। वर्तमान में प्रजातन्त्र को देश के लिए अनुपयुक्त बताते हुए आपने नेहरू जी जैसे "सर्वभूत हिते रता:" अर्थात् सब के हित में लगे रहने वाले महापुरुषों के नेतृत्व में अधिनायक शासन पद्धति का समर्थन किया। साम्यवादी भावों के उत्पन्न होने की अनिवार्यता को भी आपने प्रगट किया।

समय-समय पर दिए गए आपके भाषण भी आपके ऐसे ही विचारों से ओत-प्रोत रहते थे। दिल्ली में संवत् २००१ में मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए अपने भाषण में आपने सामाजिक एवं राजनैतिक क्रान्ति का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया था। अधिक मुनाफा पैदा करने के लोभ व लालच की आपने तीव्र निन्दा की थी और उसी की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप साम्यवाद की भावना का प्रबल होना बताया था।

कुछ सामयिक निबन्ध व लेख

समय-समय पर आप समाचार पत्रों तथा छोटी-छोटी विज्ञप्तियों द्वारा भी सामयिक विषयों पर अपने क्रान्तिकारी विचार प्रगट करते रहते हैं। उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह लेख है जो पहले दिल्ली के हिन्दी दैनिक "नव भारत टाइम्स" में प्रकाशित हुआ था और बाद में जिसको हिन्दी अंग्रेजी दोनों में विज्ञप्तियों के रूप में प्रकाशित किया गया था। इसमें धनिक वर्ग को एक कठोर किन्तु सामयिक चेतावनी दी गई थी। उस लेख से आपने एक क्रान्तिकारी योजना उपस्थित की थी। वह दिल्ली के दैनिक "नव भारत टाइम्स" के १ मई और ४ मई १९५१ के अंकों में "देश के सम्पत्तिवानों के हित का सुझाव" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। वर्तमान आर्थिक स्थिति के भीषण परिणामों से बचने के लिए उसमें जोरदार अपील की गई थी। सम्पत्तिवानों के नाम से यह इसलिए की गई कि आपकी दृष्टि में उन घातक दुष्परिणामों में उनका पहला बलिदान होना सुनिश्चित है। सम्पत्तिवान से आपका अभिप्राय केवल व्यवसायपतियों और उद्योगपतियों से ही नहीं था किन्तु वे सब लोग आपकी दृष्टि में सम्पत्तिवान हैं जिनके पास अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति जमा है, भले ही वे व्यापारी, उद्योगपति, जमींदार, जागीरदार, पंडा पुरोहित, साधु या महन्त, सरकारी कर्मचारी, डाक्टर, वकील, इंजीनियर, शिक्षक, कलाकार, साहित्यकार, दलाल, ठेकेदार और श्रमिक आदि में से कोई भी क्यों न हों?

आपने ऐसे समस्त लोगों से यह अपील की थी कि उनको अपनी संचित सम्पत्ति, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो, सरकार को सौंप देनी चाहिए और सम्पत्ति अर्जित करने वालों को हिस्सेदार मानकर एक सार्वजनिक धरोहर यानी "पब्लिक वैल्थ ट्रस्ट" कायम किया जाना चाहिए। इस प्रकार इस ट्रस्ट के कायम किए जाने से उससे होने वाले लाभों की आपने बहुत विस्तार से व्याख्या की थी और उनका सबसे बड़ा लाभ यह बताया था कि सम्पत्तिवालों को सम्पत्ति संभालने की चिन्ता दूर होकर उनको संभावित संकट से भी सर्वथा मुक्ति मिल जायगी। इस अपील अथवा चेतावनी का एक एक शब्द वेदना, अनुभूति तथा भविष्य के चिन्तन से लिखा गया था। वह आज भी वैसी ही महत्वपूर्ण है। यदि आज भी उसका पालन किया जा सके तो वर्तमान एवं भविष्य की अनेक भयानक प्रतीत होने वाली समस्याएँ सहज में हल की जा सकती हैं। सरकार और सम्पत्तिवान दोनों उस पर समय रहते ध्यान दे सकें तो सारे देश और सम्पूर्ण जनता का बहुत बड़ा हित हो सकता है और साम्यवाद रूपी उस विपत्ति को भी टाला जा सकता है जिसमें धनवानों को अपना सर्वस्व बिलकुल खोना पड़ता

श्री स्वामी उत्तम नाथ जी महाराज—मोहता जी के परमपद प्राप्त गुरुजी

है। पर यह एक अत्यन्त कड़वी दवा है जिसको आसानी से गले के नीचे नहीं उतारा जा सकता।

बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व

आपकी साहित्य-सेवा और साहित्य-साधना का उचित सम्मान करने के लिए आपको सुजानगढ़ में हुए बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का सभापति चुना गया था। आपने अपने भाषण में साहित्य के क्षेत्र में भी क्रांति लाने की आवश्यकता का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया। वह भाषण बहुत ही प्रभावशाली था और उसकी सभी क्षेत्रों में विशेष प्रशंसा की गई थी। वह आज भी वैसा ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है। वहां से लौटते हुए आप सरदार शहर गये। वहाँ आपने सेठिया औषधालय के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व किया। उसके अलावा वहाँ और रतनगढ़ में भी सार्वजनिक सभाओं में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए।

गुरु उत्तमनाथ जी महाराज

आपको गीता के गम्भीर अध्ययन की ओर प्रवृत्त करके वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप को जानने के लिए प्रेरित करने वाले आपके गुरु उत्तमनाथ जी महाराज के सम्बन्ध में यहाँ कुछ आवश्यक चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। उनके ही कृपा प्रसाद से आपको वेदान्त और गीता सम्बन्धी उच्चकोटि का गम्भीर साहित्य लिखने की प्रेरणा मिली और देश की सामयिक समस्याओं पर क्रान्तिकारी दृष्टि से विचार करने के लिए स्फूर्ति मिली। संवत् १९८५ में आपको जोधपुर से समाचार मिला कि श्री उत्तमनाथ जी महाराज मकान से गिरकर बुरी तरह घायल हो गए हैं और चिकित्सा के लिए अस्पताल में भरती किये गए हैं। आप उनको देखने और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था करने के लिए वहाँ पहुँच गए। नाक और मुँह की हड्डियों के साथ कुछ दाँत भी टूट गए थे। वे टूटी हुई हड्डियाँ उन्होंने बिना क्लोरोफार्म लिए आपरेशन करवा कर निकलवा लीं और कुछ भी पीड़ा अनुभव नहीं की। दो तीन मास में वे अच्छे हुए किन्तु मुँह में नासूर की शिकायत रह गई थी। उसका पीप निकलकर पेट में जाता था। उसके एक वर्ष बाद जोधपुर में ही एक और दुर्घटना घट गई। जंगल में एक पागल सूअर ने उन पर हमला कर दिया और उनको काट खाया। घायल होने पर भी उन्होंने सूअर को ऐसा पकड़ा कि वह अपने को छुड़ा नहीं सका। दूसरे लोग शोर सुनकर आए और उन्होंने उस पागल सूअर को ठिकाने लगा दिया। इसकी चिकित्सा के लिए उनको कसौली भेजा गया। सूअर के काटने का उपचार तो हो गया किन्तु नासूर की शिकायत वैसी ही बनी रही। उनको जलोदर हो गया। इसी बीमारी के कारण संवत् १९८८ माघ सुदी १० को बीकानेर में आपकी गोवरधन सागर बगीची में उनका देहान्त हो गया। उनके गुरु नवल नाथ जी बहुत लोभी, क्रोधी और क्रूर प्रकृति के थे। उसके विरुद्ध उत्तमनाथ जी पूर्ण विरक्त और शान्त प्रकृति के थे जिससे उनके प्रति लोगों में बहुत श्रद्धा थी। यह बात गुरु को सहन नहीं होती थी। नवल नाथ जी उत्तम नाथ जी द्वारा भेंटे लेकर धन संग्रह करना चाहते थे, यह काम वह नहीं कर सकते थे। नवल नाथ जी नाथ सम्प्रदाय का चिह्न कानों में मुद्राएं रखते थे और उत्तमनाथ जी ने कान फड़ा कर मुद्रा पहनना स्वीकार नहीं किया था। अन्य साम्प्रदायिक चिह्न भी वे धारण नहीं करते थे। परन्तु उनके समाधि भवन में जो उनका चित्र रखा गया है उसमें उनके कानों में चाँदी की मुद्रायें दिखाई गई हैं, यह सरासर धोखेबाजी है। इन और ऐसे कुछ कारणों से जीवन काल में उनकी आपस में नहीं बनती थी और नवल नाथ जी उनसे द्वेष रखते थे। श्री उत्तमनाथ जी महाराज में आपकी श्रद्धा भक्ति आज भी वैसी ही बनी हुई है। "गीता व्यवहार दर्शन" में उनका चित्र प्रकाशित करके आपने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण की।

साहित्य सृजन की प्रेरक भावना

आपके साहित्य सृजन के सम्बन्ध में जितना भी विवेचन किया जाय कम है। साहित्य आप के लिए साधना का ही मुख्य विषय रहा है; किन्तु उस साधना के पीछे एक व्यापक भावना विद्यमान थी और वह आप के सम्पूर्ण साहित्य में ओत-प्रोत है। उसको स्पष्ट करने के लिए यहाँ केवल एक उद्धरण दिया जा रहा है। "ईशावास्य उपनिषद" के व्यावहारिक भाष्य की भूमिका के अंतिम पैरे में आपने लिखा है कि "एक समय वह था कि हमारा भारतवर्ष बहुत उन्नत व सुख समृद्धि सम्पन्न एवं शान्ति से परिपूर्ण था। उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र आदि दर्शन शास्त्र इस देश की उन्नत अवस्था के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पर अपने मूल स्वभाव के अनुसार लोगों को एक ही स्थिति में रहना पसन्द नहीं था, इसलिए सब की एकता के आत्मज्ञान को छोड़कर पृथकता के भावों से, व्यक्तिगत स्वार्थों की खींचातानियों और भोगविलास, ऐश्वर्य, प्रमाद और आलस्य में लोग आसक्त हो गए और स्वतन्त्र विचार-शक्ति का तिरस्कार करके अंधविश्वासों और रूढ़ियों के दास हो गए। तमोगुण की बहुत प्रबलता हो गई। बुद्धि का विपर्यास होकर समाज अनेक सम्प्रदायों, मतमतान्तरों और जाति पाँति के भेदों में विभक्त हो गया। सत् शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ करके, स्वार्थी और हठधर्मी लोगों ने जनता को भ्रम में डाल दिया। उपनिषद् और गीता आदि सत् शास्त्र, जो मनुष्यों को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान देकर, संसार के इस खेल में अपना-अपना स्वांग यथावत सम्पादन करने के लिए, आत्मज्ञान सहित सांसारिक व्यवहार करने का सच्चा मार्ग दिखाने वाले, अनुपम ज्ञान भंडार के ग्रन्थ हैं, उनके अर्थ की भी खींचातानी करके इतनी दुर्दशा कर दी, कि सन्यास मार्गीय टीकाकारों ने तो सांसारिक व्यवहार सब छोड़कर, घर गृहस्थ त्याग कर, संन्यास लेकर वन में रहने का विधान उनमें बताया, और भक्तिमार्ग वालों ने केवल ईश्वर की उपासना और कर्मकांडों में ही निरन्तर लगे रहने का अर्थ लगाया। कर्म, उपासना और ज्ञान, इन तीन कांडों के सिवाय और कुछ नहीं बताया। सांसारिक व्यवहार की सब ने उपेक्षा की, जिसके बिना जनता का और स्वयं संन्यासियों, भक्तों और कर्मकांडियों का भी जीवन एक क्षण भी नहीं रह सकता। परिणाम यह हुआ कि इस देश की जनता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी। देश का इतना घोरतम पतन हुआ कि विदेशी लोगों ने यहाँ आकर लोगों को पराधीन किया और सर्वस्व हरण कर लिया। देश के टुकड़े हो गए। फिर भी पतन और विपत्तियों का अब तक कोई अन्त नहीं दीखता। पर जैसा कि मैं इस भूमिका के प्रारम्भ में कह आया हूँ, इस खेल में परिवर्तन का चक्कर निरन्तर चलता रहता है। लोग इस स्थिति में अब पड़े रहना नहीं चाहते, अपना सुधार करना चाहते हैं। अतः इन ग्रन्थों का सच्चा व्यावहारिक अर्थ समझ कर उनके अनुसार अपना जीवन बनाने की भावना जागृत हुई दीखती है। इसी से उत्साहित होकर मैंने पहले *"गीता का व्यवहार दर्शन"* लिखकर उसमें उसके व्यावहारिक अर्थ का विस्तार से खुलासा किया, जिसको जनता ने बहुत पसन्द किया। उस सफलता को देखकर "ईशावास्य उपनिषद" का व्यावहारिक भाष्य लिखकर जनता जनार्दन की भेंट करता हूँ। आशा है इस से लोगों को अपने अधःपतन की स्थिति को बदलकर, उन्नति के पथ पर चलने में सहायता मिलेगी।"

ऐसे बहुत से उद्धरण आपकी रचनाओं में से और भी उद्धृत किये जा सकते हैं।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि व्यावहारिक वेदान्त के सम्बन्ध में आपके विचार कितने उदार, उदात्त और व्यापक हैं। राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद भी देश की सामाजिक हीनता और धार्मिक दुराग्रह आपके हृदय में कितनी गहरी वेदना और चिन्ता पैदा किए हुए है। आपने अपने इन विचारों को फैलाने के लिए अनेक बार अनेक योजनाएँ बनाईं किन्तु परिस्थितियों की विषमता के कारण उनको कभी तो पूर्ण रूप नहीं दिया जा सका और कभी पूर्ण रूप देने पर भी उनको फैलाया नहीं जा सका।

चहुँमुखी क्रान्ति का लक्ष्य

सन् १९३९ ई० में आपने 'सूर्य' नाम से एक मासिक पत्र प्रकाशित करने की योजना बनाई थी, किन्तु युद्धजन्य परिस्थितियों और सरकारी नियन्त्रणों के कारण उसका प्रकाशन प्रारम्भ नहीं किया जा सका। इस पत्र का प्रकाशन आप चहुँमुखी क्रान्ति का सर्वसाधारण में प्रसार करने के लिए करना चाहते थे।

उसके उद्देश्य पत्र में "उद्धरेदात्मनात्मानं" श्लोक को उद्धृत करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थिति का विवेचन करके अपने देश की अत्यन्त विषम स्थिति का उल्लेख किया गया था, उसमें कहा गया था कि "जो मनुष्य, समाज अथवा राष्ट्र स्वयं अपनी उन्नति करने के लिए प्रयत्नशील नहीं होता, किन्तु दूसरों पर निर्भर रहता है, उसकी गिरावट होना अवश्यम्भावी है। प्रकृति के इस अटल नियम के अनुसार इस देशवासियों की भयंकर गिरावट हो गई और प्रत्येक विषय में ये दूसरों से पिछड़ गए। मानसिक और शारीरिक दुर्बलताओं ने इन्हें दबा लिया। मानसिक दुर्बलता के कारण यहाँ के लोगों ने अपने लिए अनेक प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बन्धन और परवशताएँ बना रखी हैं और जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त, सारी उमर इन बन्धनों में ही बीत जाती है। इनसे निकल कर कभी स्वतन्त्र होने का विचार भी इनके दिमाग में पैदा नहीं होता, धर्म भीरु होना भी श्रेष्ठ गुण समझ कर कल्पित और अदृष्ट कारणों से भय और वहम करते रहते हैं, जिससे सत्साहस और उत्साह से हाथ धो बैठे हैं।" देश की राजनीतिक पराधीनता का कारण इन्हीं दोषों को बताते हुए लिखा गया था कि "जब तक हम स्वयं अपने दुर्गुणों एवं निर्बलताओं को नहीं मिटा लेंगे, तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता कभी प्राप्त नहीं कर सकते।" इस प्रकार आत्म-निरीक्षण और आत्म-परीक्षण की भावना को प्रमुख रूप से अपनाते हुए पत्र की नीति के लिए निम्नलिखित दस सूत्री कार्य क्रम सम्मुख रखा गया था :—

(१) इसका उद्देश्य मनुष्य (स्त्री-पुरुष) मात्र के हित के लिए स्वतन्त्र साहित्य प्रकाशित करना होगा। यद्यपि भारतवासियों की सर्वाङ्गीण उन्नति में सहायक होना इसका प्रधान कर्तव्य होगा, परन्तु साथ ही अन्य लोगों के हित का ध्यान भी सदा रखा जायगा। व्यष्टि और समष्टि की एकता मानते हुए व्यष्टिहित समष्टि-हित के अन्तर्गत और समष्टिहित व्यष्टिहित पर निर्भर रहने के सिद्धान्त का सदा ध्यान रखा जायगा।

(२) अखिल विश्व के मूल में एक ही तत्व या शक्ति होने के कारण सारे विश्व का एकत्वभाव सत्य और नित्य माना जायगा। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, प्रकृति, स्वभाव आदि नाम उस एक सत्य और नित्य तत्त्व अथवा शक्ति के ही समझे जायेंगे और जगत की भिन्नता के अनन्त बनावों को उस एक ही सत्य और नित्य तत्त्व अथवा शक्ति के अनेक परिवर्तनशील कल्पित बनाव होने के निश्चयपूर्वक सबके एकत्व-भाव को सच्चा और नाना प्रकार के बनावों और उनके सम्बन्ध के सारे व्यवहारों को सदा बदलते रहने वाले कल्पित भाव समझा जायगा।

(३) यह किसी विशेष धर्म, मजहब, सम्प्रदाय, पन्थ, मत, वाद या दल का अनुयायी न होगा; किन्तु जिसमें जो बात लोकहितकर प्रतीत होगी, उसका समर्थन करेगा और जिसमें जो बात लोकहित के विरुद्ध अथवा वर्तमान परिस्थिति के अनुपयुक्त प्रतीत होगी, उसको अवश्य ही दिखाने का प्रयत्न करेगा।

(४) देश भेद, काल भेद, जाति भेद, धर्म भेद, व्यक्ति भेद, लिङ्ग भेद, सम्प्रदाय भेद आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना जिसमें जो गुण अथवा विशेषता होगी और जिसकी जो बात अच्छी अर्थात् लोक हितकर प्रतीत होगी, उसका वह समुचित आदर करेगा। जिसमें जो दोष अथवा त्रुटि होगी और जिसकी जो बात दोष-पूर्ण अर्थात् अहितकर प्रतीत होगी, उसका दोष एवं त्रुटि दिखाने में सङ्कोच नहीं करेगा।

(५) संसार के भूतकालीन और वर्तमान के महान् व्यक्तियों के प्रति समादर श्रद्धा और सम्मान

के भाव रखते हुए भी अन्धविश्वास किसी पर भी नहीं रखेगा और आवश्यकता होने पर उनकी उचित आलोचना करने में पूर्ण स्वतन्त्र रहेगा।

(६) इसके लेख किन्हीं विशेष विषयों में ही सीमाबद्ध एवं परिमित नहीं रहेंगे, किन्तु जिस समय जो विषय जनता की भलाई अथवा बुराई में सम्बन्ध रखेगा, उस पर आवश्यकतानुसार लिखने की सदा स्वतन्त्रता रहेगी।

(७) प्रत्येक विषय को "व्यावहारिकता" की तराजू पर तोलने का प्रयत्न किया जायगा और उसके सदुपयोग एवं दुरुपयोग के आधार पर उसके अच्छे पहलू के साथ-साथ बुरे पहलू को भी दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

(८) प्रत्येक विषय में बुद्धि से काम लेने के सिद्धान्त को महत्व दिया जायगा, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं होगा कि जो बात किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों की समझ में आवेगी, वही प्रामाणिक मानी जावेगी, और जो बात किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों की समझ में नहीं आ सकेगी, वह सर्वथा अमान्य ठहराई जायगी; क्योंकि बुद्धि का किसी ने ठेका नहीं लिया है। अपनी तरफ से जो बात प्रामाणिक कही जावेगी वह केवल अपनी व्यक्तिगत सम्मति होगी।

(९) इसकी भाषा, शब्द-योजना, लेख-शैली आदि यथाशक्य सरल, शिष्ट, संयत और गम्भीर रखने का ध्यान रखा जायगा।

(१०) अपनी तरफ से व्यक्तिगत वाद-विवाद से सदा बचे रहने का यत्न किया जायगा।

इस लम्बे उद्धरण से मोहता जी की उदार, व्यापक और स्पष्ट नीति का कितना सुन्दर परिचय मिलता है। यह चतुर्मुखी क्रान्ति आपके समस्त जीवन में ओत-प्रोत है जो कि आपके जीवन के समस्त व्यवहार में पाई जाती है।

अपने विचारों के प्रचार के लिए कुछ न कुछ करने में निरन्तर आप लगे रहते हैं। अपने विचारों के सम्बन्ध में कभी कोई समझौता आपने अपने व्यक्तिगत जीवन के व्यवहार में नहीं किया। यदि कुछ और नहीं कर सके तो विरोधी परिस्थितियों में अपने को अलग रख कर अपने विचार पर दृढ़ बने रहते हैं। आपकी यह दृढ़ता आपके समस्त साहित्य में ओतप्रोत है और यह सर्व साधारण के लिए अनुकरणीय एवं वन्दनीय है।

खंड २

१. चतुर्मुखी क्रान्ति की साधना

२. आपका आदेश अपने अन्तकाल के सम्बन्ध में

३. साहित्य सृजन की क्रान्तिकारी दृष्टि

श्री रामगोपाल जी मोहता ७८ वर्ष की आयु में

१
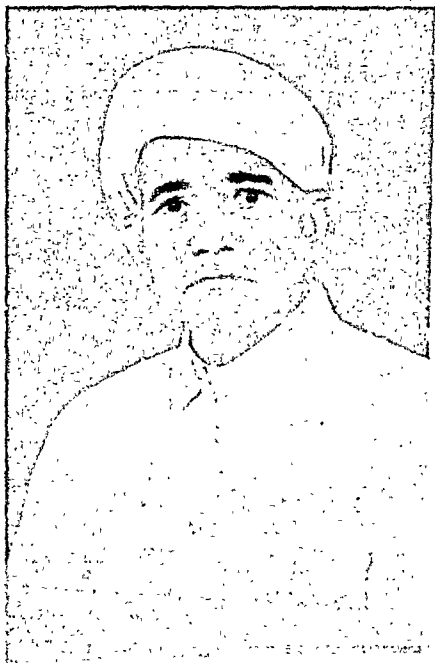
चतुर्मुखी क्रांति की साधना

गीता में श्री कृष्ण ने चतुर्मुखी क्रान्ति का प्रतिपादन अत्यन्त सुन्दर शब्दों में किया है। गीता का स्वाध्याय करने वालों को निश्चित रूप से चतुर्मुखी क्रान्ति का वह स्वरूप अपने सम्मुख आदर्श के रूप में सदैव उपस्थित रखना चाहिए और उसकी ओर अग्रसर होकर उसको सफल बनाने का प्रयत्न भी करना चाहिए। अन्यथा गीता का स्वाध्याय उपयोगी और लाभदायक नहीं हो सकता। उस चतुर्मुखी क्रान्ति का स्वरूप निम्न प्रकार है :—

१—धार्मिक क्रान्ति

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"(भेदभाव मूलक) सब (जाति और कुल) धर्मों को सर्वथा त्याग कर, सबकी एकता स्वरूप मेरी शरण में आ। मैं (सबका एकत्व भाव) तुझ को सब पापों से मुक्त कर दूंगा। तू (किसी प्रकार के पाप-पुण्य की कल्पना करके) शोक मत कर।"

२—सामाजिक क्रान्ति

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्वस्थो निर्योग क्षेम आत्मवान॥

"वेदादि शास्त्र मनुष्य को तीनों गुणों का विषयी बनाने वाले हैं। हे अर्जुन, तू तीनों गुणों से ऊपर उठकर, द्वन्द्व से परे, नित्य सत्व में स्थित, योग क्षेम की चिन्ता से रहित होकर आत्म-निर्भर हो।"

३—राजनीतिक क्रान्ति

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्व युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

("दुष्टों का दमन करने में दया करने की) नपुंसकता मत कर। हे अर्जुन! यह तेरे योग्य नहीं है। हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़कर, हे परंतप! तू उठ खड़ा हो।"

४—आर्थिक क्रान्ति

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

"अपने-अपने कर्तव्य कर्म करने रूपी इस चक्र को जो बर्ताव में नहीं लाता उस इन्द्रिय आरामी (भोग विलासी) का जीना पाप रूप है। वह नाहक जीता है।"

गीता की इस चतुर्मुखी क्रान्ति को हृदयंगम करके मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता ने उसकी साधना में अपने को लगाने का निरन्तर प्रयत्न किया है। गीता के इन आप्त वचनों को अपनी अनुभूति का विषय बना

कर आप जिन परिणामों पर पहुँचे हैं वे सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य के विचारों का निर्माण मुख्यतः दो साधनों से होता है; उनमें से एक है आप्त वचन और दूसरा है स्वानुभूति। अनुभूति का स्थान आप्त वचन से कहीं अधिक ऊँचा है। क्योंकि आप्त वचन अथवा आर्ष वचन से यदि कोई प्रेरणा एवं प्रोत्साहन न मिला और उनका मंथन न किया गया, तो उनसे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। वे तब केवल एक भार रह जाते हैं और उनका भार उठाने वाले पर यह उक्ति चरितार्थ होती है कि "यथा खरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।" वह उस भार को अनुभव करते हुए भी उसका गुण अनुभव नहीं कर सकता। आर्ष वचनों की अनुभूति की प्रयोगशाला में आप्त वचनों की परीक्षा की जानी आवश्यक है और इस परीक्षा व समीक्षा से जिज्ञासु के हृदय में जो भावनाएँ उद्दीप्त होकर विचार प्रगट होते हैं, वे ही मानव जीवन के लिए उपयोगी अथवा लाभदायक हो सकते हैं। इस प्रकार अपने विचारों का निर्माण करने वाले को ही मनीषी, मनस्वी, साधक अथवा तत्त्वदर्शी कहा जाता है और वह अपने साथियों के लिए भी पथ-प्रदर्शक बन सकता है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में केवल वे ही मनीषी, मनस्वी अथवा साधक नहीं हैं जो पद्मासन लगा-कर, आँखें मूँदकर और नाक पकड़कर लम्बे-लम्बे साँस लेने शुरू कर देते हैं। वे फुटबाल के एक खिलाड़ी को कहीं अधिक बड़ा मनीषी, मनस्वी अथवा साधक मानते हैं; क्योंकि उसमें उससे वह शक्ति पैदा होती है, जिससे वह गीता सरीखे आर्ष ग्रन्थों के आप्त वचनों का मर्म समझ सकता है। मानव के जीवन को इसी कारण प्रयोग-शाला कहा गया है कि वह प्रत्यक्ष व्यवहार एवं स्वानुभूति की कसौटी पर हर बात की परीक्षा करने की सामर्थ्य रखता है। ऐसे मनीषी, मनस्वी अथवा साधक की तरह ही तत्त्वदर्शी वह है जो सक्रिय जीवन की प्रयोगशाला में मानव व्यवहार के लिए आवश्यक तत्त्वों का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। केवल दर्शन शास्त्रों तथा अन्य ग्रन्थों को रट लेने वाले को तत्त्वदर्शी कहना बहुत बड़ी भूल है। उसके लिए चिन्तन और मन्थन चाहिये, जिसके बिना अंतर्ज्योति प्रज्ज्वलित नहीं की जा सकती।

मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन-परिचय और उनकी समत्व योग की साधना से पाठक यह भली प्रकार जान सकते हैं कि वे ऐसे ही साधक अथवा विचारक हैं। उन्होंने गीता में प्रतिपादित श्री कृष्ण के आप्त वचनों को व्यवहार अथवा अनुभूति की कसौटी पर कसकर उनका जो प्रत्यक्ष दर्शन किया, वह उनके उत्तरोत्तर विकास में सहायक सिद्ध हुआ और उसी के कारण उनके जीवन में एक ऐसी सर्वमुखी क्रान्ति पैदा हुई कि उससे उनके विचार परिष्कृत होकर उनमें मौलिकता पैदा हो गई और अपनी अनुभूति से उनको मानव जीवन का यथार्थ दर्शन मिल गया। आज उनके परिष्कृत मौलिक विचार और व्यावहारिक जीवन दर्शन दूसरों के लिए पथ-प्रदर्शक बन गए हैं।

धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र में

मानव का जीवन-क्रम मुख्यतः धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विभागों में बांटा जा सकता है। इन चारों विभागों में आमूल चूल क्रान्ति हुए बिना मानव जीवन पूर्ण नहीं बन सकता और न वह पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है। आज के युग में मानव की दुर्गति का एक बड़ा कारण यह है कि उसने रूढ़ गति को प्रगति मान लिया है। विवेक, बुद्धि, विचार अथवा दूसरों की अनुभूति से काम लेने की आवश्यकता उसको प्रतीत नहीं होती। अंतर्ज्योति प्रज्ज्वलित नहीं होती और बाह्य ज्योति से भी वह काम नहीं ले सकता। परिणाम यह है कि "अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः" की सी स्थिति हो रही है। सब अंधकार में भटक रहे हैं। ऐसी अवस्था में मोहता जी के मौलिक विचार और व्यावहारिक जीवन का दर्शन दूसरों के लिए पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं। इसीलिए इस प्रकरण में चारों क्रान्तियों के सम्बन्ध में उनके विचारों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक समझा

गया है। यह जरूरी नहीं कि आपकी हर बात को बाबा वाक्य मानकर स्वीकार किया जाय। इस अंध परम्परा के आप कट्टर विरोधी हैं। किसी का पल्ला पकड़ कर चलना आप मानव का घोर अपमान मानते हैं। जब देखने के लिए उसको दो आँखें मिली हैं और सोच विचार के लिए उन आँखों के ऊपर मस्तिष्क मिला है तब वह उनसे काम क्यों न ले ? अपने हृदय में जिज्ञासु भावना जगाकर और उसको अपना दीपक बनाकर हर व्यक्ति को अपने मार्ग की स्वयं खोज करनी चाहिए,—यह है पहला पाठ, जो आपके जीवन से हम सबको ग्रहण करना चाहिए। आप जिस परिवार में, जिस वातावरण में और जिन परिस्थितियों में पैदा हुए, पले, पोसे और बड़े हुए, वे आपके लिए अनुकूल नहीं थी। अत्यन्त प्रतिकूल और विपरीत परिस्थितियों में आपने अपना मार्ग खोजा, उसका निर्माण किया और पूरी दृढ़ता के साथ उस पर अग्रसर हो गए। यही है सच्ची प्रगति, जिसका एक सुन्दर उदाहरण वयोवृद्ध मोहता जी का सक्रिय एवं कर्मठ जीवन है। आपके घर का आज का चित्र उससे सर्वथा भिन्न है जब कि आप पैदा हुए थे और बीकानेर नगर के जीवन का चित्र भी तब से भिन्न है। इन दोनों के बदलने में आपका जो शानदार हिस्सा है उससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। उसका पैदा होना सार्थक बताया गया है, जिसके जन्म से वंश की उन्नति होती है और उदार चरित लोगों का वंश या कुटुम्ब आत्मीय जनों तक सीमित न रह कर सारी वसुधा में फैल जाता है। इसीलिए महापुरुष अपने निजी जीवन अथवा वंश का ही नहीं किन्तु समस्त मानव समाज का कायाकल्प करने में अपने को खपा देते हैं। मनस्वी श्री मोहता जी की गणना सहज से ऐसे महान् एवं उदार व्यक्तियों में की जा सकती है। दीपक यह नहीं देखता और यह नहीं जानता कि उसकी ज्योति कहाँ तक पहुँचती है, किन्तु यह घोर अंधकार को एक चुनौती देकर उसके साथ संघर्ष करने में जुट जाता है और अपने जीवन का उत्सर्ग कर डालता है। उसके इस उत्सर्ग के कारण ही संसार में कुछ प्रकाश बना हुआ है। उदार चरित महापुरुष भी इस दीपक के समान दूसरों के पथ-प्रदर्शन के लिए अपना कर्तव्य पालन करते हुए आत्मोत्सर्ग कर डालते हैं। यह उत्सर्ग-परम्परा मानव के लिए अनन्त और अपार ज्योति बनी हुई है। स्वामी विवेकानन्द का यह कहना कितना सार्थक है कि महापुरुषों का जीवन उस बत्ती के समान है जो दोनों ओर से जलती है।

राजनीति की अपेक्षा समाज सुधार की ओर आपका विशेष ध्यान था और समाज सुधार सम्बन्धी विषयों में आप अधिक रुचि लेते थे। कांग्रेस के साथ प्रतिवर्ष समाज सुधार सम्मेलन अथवा इंडियन सोशियल रिफार्म कानफ्रेंस भी हुआ करती थी, उसमें हुए भाषणों और स्वीकृत प्रस्तावों की रिपोर्ट आप बड़े चाव से पढ़ा करते थे। समाज सुधार के लिए इस प्रकार आपमें जो भावना व प्रवृत्ति पैदा हुई उसका पहला लाभ माहेश्वरी समाज को मिला। उसमें फैली हुई सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए आप कटिबद्ध हुए। अलीगढ़ से स्वर्गीय श्री भागीरथ दास जी भूतड़ा के सम्पादकत्व में "माहेश्वरी" नाम का साप्ताहिक पत्र निकलता था। श्री भूतड़ा जी की प्रेरणा से आपने भी उसमें अपने समाज सुधार सम्बन्धी विचार प्रगट करने शुरू किए। सबसे पहले आप ने "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" शीर्षक से एक लेखमाला लिखी। उसमें आपने यह दिखाया कि व्यापारिक स्थिति के सुधार के लिए भी समाज सुधार की कितनी आवश्यकता है और उसके बिना माहेश्वरी समाज व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता में दूसरों के सामने टिक नहीं सकता। उच्च शिक्षा के प्रचार, बाल विवाह, वृद्ध विवाह के बन्द करने, शादी गमी के अवसरों पर फिजूल खर्चों के रोकने, मृत्यु भोज के बन्द करने, दान की कुव्यवस्था मिटाकर उसका सदुपयोग करने, स्त्रियों की दयनीय दशा का अन्त करके उनको समाज के आधे अंग की जिम्मेवारी सम्भालने के योग्य बनाने, उनमें शिक्षा के प्रचार करने तथा पर्दा प्रथा के उन्मूलन करने आदि विषयों पर उचित सुझाव उस समय की परिस्थितियों के अनुसार आपने उस लेख-माला में प्रगट किए थे। कलकत्ता की माहेश्वरी सभा ने उसको पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करके समाज में बँटवाया और समाज में सामाजिक चेतना पैदा करने के लिए उस से विशेष सहायता मिली। यह उन दिनों की बात है, जबकि माहेश्वरी

तथा मारवाड़ी समाज में समाज सुधार की चर्चा का केवल सूत्रपात हुआ था। बीकानेर नगर में होली के अवसर पर डांडियों का जो खेल होता था उसके बीभत्स एवं अश्लील रूप को दूर करके आपने उसको जो सामाजिक एवं सार्वजनिक रूप दिया उससे भी समाज सुधार की प्रवृत्तियों को विशेष प्रेरणा मिली।

श्री शिवरतन जी के बड़े सुपुत्र श्री गिरधर लालजी का बिड़लाओं के यहाँ पिलानी में जब विवाह सम्बन्ध किया गया, जब बोलशार प्रकरण को लेकर बिड़लाओं तथा उनसे सम्बन्ध रखने वालों का माहेश्वरी समाज में "बीकू माहेश्वरी पंचायत" द्वारा सामाजिक बहिष्कार किया जा रहा था। आप पर भी श्री शिवरतन लाल की सगाई छोड़ने के लिए जोर डाला गया। आप सहमत नहीं हुए। विवाह आनन्द सम्पन्न हुआ। समाज के अनेक विवाह सम्बन्ध इस आन्दोलन के कारण टूट चुके थे और लड़कियों का अपने मायके आना-जाना तक छूट गया था। एक दूसरे के यहाँ खान-पान आदि का सब व्यवहार भी बन्द हो गया था। बीकानेर और बीकानेर का माहेश्वरी समाज उस आन्दोलन के मुख्य केन्द्र थे। श्री शिवरतन जी की पोती राजकुमारी बाई का शुभ विवाह अग्रवालों में कलकत्ता के श्री सर बद्रीदास जी गोयनका के पोते से हुआ है, जो कि माहेश्वरी समाज की दृष्टि से अंतरजातीय विवाह है।

अपनी धर्मपत्नी के देहान्त के बाद आपने जिस साहस का परिचय दिया वह भी अपने ढंग का एक ही उदाहरण है। विधवाओं के पुनरुद्धार को अपने जीवन का महान् व्रत बनाकर आपने उनके लिए जो कुछ किया उसकी चर्चा यहाँ दुबारा करने की आवश्यकता नहीं है। लाहौर के स्वर्गीय सर गंगाराम जी की तरह बीकानेर और समस्त राजस्थान अथवा राजस्थानी समाज में विधवा विवाह के पुरस्कर्ताओं में आपका पहला स्थान है। लाखों रुपया आपने इस सत्कार्य के लिए खर्च किया और कितनी ही विधवाओं का उद्धार कर उनको सद्गृहस्थी बनाने का यश सम्पादन किया उसके लिए बीकानेर में जनता तथा राज दोनों का विरोध सहन किया और समाज के बीभत्स लोकापवाद को भी हँसते हुए झेल लिया। विधवा विवाह को प्रोत्साहन देने वाली संस्थाओं और कार्यकर्ताओं के लिए आपके घर के द्वार सदा खुले रहे और उनकी मुक्त हस्त से सहायता करने में आप कभी पीछे नहीं रहे।

बीकानेर के दीवान मोहतों के कुछ वंशधर माहेश्वरी समाज में नीचे समझे जाते थे और उनमें उनके सामाजिक सम्बन्ध नहीं होते थे। कारण यह था कि उनके पूर्वज श्री बख्तावर सिंह जी बीकानेर के भूतपूर्व दीवान ने नाथी जी नाम की नाई जाति की कन्या से विवाह सम्बन्ध कर लिया था। उनकी सन्तति नाथीजी वाले कहलाते थे और उनसे सम्बन्ध करने वाले समाज और बिरादरी से हीन समझे जाते थे। स्वर्गीय श्री धनुर्भुज जी मोहता नाथी वालों की कन्या के विवाह योग्य हो जाने पर भी इसी कारण उसका कहीं विवाह नहीं होता था। धनुर्भुज जी का देहान्त हो गया था और उनके बच्चे छोटे-छोटे थे। आपके प्रयत्न करने पर एक माहेश्वरी युवक इस शर्त पर विवाह करने को सहमत हुआ कि आप स्वयं उस कन्या के पिता के रूप में बैठें और आपके घर के सब बालक उसके साथ बैठकर सहभोज करें। आपने उसकी शर्त स्वीकार की और घर वालों को भी उसके लिए सहमत कर लिया। कन्या का आनन्द समारोह विवाह हो गया। माहेश्वरी समाज में थोड़ी हलचल मची; किन्तु जल्दी ही शान्त हो गई। आपके इस साहस से एक कन्या का ही नहीं, किन्तु समस्त नाथीवालों का भी उद्धार हो गया और उनके सामाजिक सम्बन्ध का रास्ता खुल गया।

समाज में महिलाओं के समान ही हरिजनों की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय है। इनकी ओर भी आप का ध्यान गया और उनकी सेवा एवं सहायता करने में आप जुट गए। आप के कट्टर से कट्टर विरोधी भी आप की हरिजन सेवा की सराहना करते हैं। उनके लिए बीकानेर में आपने "हरिजन हितकारिणी" सभा की स्थापना की। कराची में उनके रहने योग्य कोई मकान न होने से "[illegible]" नाम से उनके लिए अच्छे घर के

कुंवर जगदीशप्रसाद गोयनका   सौभाग्यवती राजकुमारी जगदीशप्रसाद गोयनका
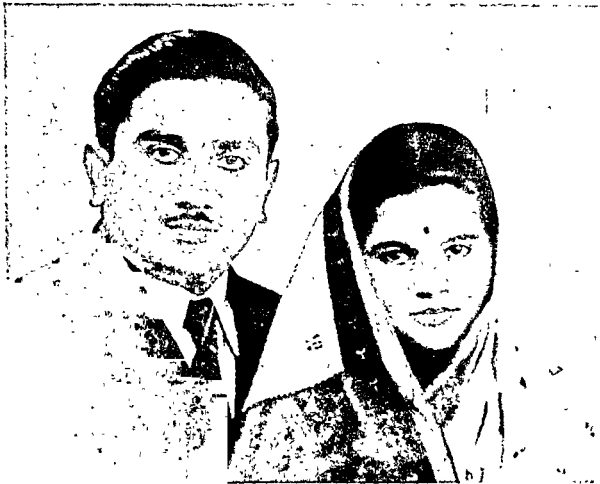
शिशु यशोधरा बाई गोगलेका

मकान बनवा दिये थे। उनकी आर्थिक दशा के सुधार के लिए "हरिजन बूट एण्ड शू कम्पनी" कायम की थी। इस कम्पनी की ओर से उनको आधुनिक ढंग से चमड़े का काम करने की शिक्षा देने और उनको काम-धन्धे में लगाने का प्रबन्ध किया गया था। कोलायत जी में उनके लिए रामदेव जी का मन्दिर बनवाया था। जिसमें सवर्ण हरिजन का कोई भेदभाव नही है। सब समान रूप से सम्मिलित होते हैं। इस मन्दिर का पुजारी हरिजन है। कोलायत जी में कार्तिक मे मेला लगने पर हजारों हरिजन भाई यहाँ इकट्ठा होते हैं उस समय आप उनके बीच बैठकर सत्संग करते हैं और उनको सामाजिक कुरीतियों एव रूढ़ियो का परित्याग कर अपना सामाजिक उत्थान करने का उपदेश करते हैं। कितने ही हरिजनों ने फिजूल खर्ची बन्द करके सामाजिक कुरीतियों का परित्याग किया है और अपने सामाजिक जीवन का सुधार किया है।

उनकी शिक्षा में आपने विशेष दिलचस्पी ली है। अनेक पाठशालाएँ आप के सहयोग से कायम की गई। अनेक हरिजन युवकों ने आपकी सहायता से विशेष उन्नति की है। उनमें संसद सदस्य श्री पन्नालाल बारुपाल और राजस्थान विधान सभा के सदस्य श्री धर्मपाल पंवार के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनों १६५२ के चुनावों के बाद १६५७ में भी ससद की लोकसभा और राजस्थान की विधान सभा के सदस्य चुने गए हैं। श्री धर्मपाल के पुत्र ओमप्रकाश सांगरिया के किसान विद्यापीठ से मैट्रिक पास करके जब बीकानेर कालेज में भरती होने आए तब कालेज के सवर्णों ने बड़ा विरोध किया और नगर में भी विरोध में तीव्र आन्दोलन शुरू हो गया। आप ने उसका पक्ष लिया और शिक्षा विभाग वालों को आप ने कहा कि शिक्षा प्राप्त करने का सबको समान अधिकार है। इसलिए उसको भरती करने से रोका नही जा सकता। मामला महाराजा शार्दूलसिंह जी के पास पहुँचा। धर्म के ठेकेदारों ने महारानी साहिबा को बरगला दिया और वे कैकेयी का सा हठ करके बैठ गई कि मेहतर का लड़का कालेज मे भरती नही हो सकता। महाराजा बड़े असमजस में पड़ गए। महाराजा ने अन्त में आप को बुलाया और आप से परिस्थिति को सम्भालने का अनुरोध किया। आप ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि उसको किसी भी कारण से भरती होने से रोका नही जा सकता। समस्त प्रजा को समान अधिकार प्राप्त हैं। उनमे किसी को भी वंचित नही किया जा सकता। महाराजा ने कहा कि मेरे यहाँ तो यह गृह-कलह मच गई है। आप किसी प्रकार उसको टालिये। आपने उनको यह मार्ग सुझाया कि उसको पचास रुपया महीना छात्रवृत्ति देकर लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में पढ़ने के लिए भेज दीजिए। वे वैसा करने के लिए सहसा ही सहमत हो गए। अब वह शिक्षा प्राप्त करके बीकानेर में पुलिस में सब इंस्पैक्टर के पद पर काम कर रहा है। अनेक हरिजन छात्रों को अपने पास से छात्रवृत्ति देकर आपने उनको उच्च शिक्षा प्राप्त करवाई और आज वे उच्च सरकारी पदों पर काम कर रहे हैं।

देहातो मे हरिजनों को पानी का विशेष कष्ट रहता है। उनकी इस असुविधा को दूर करने के लिए देहातों में आपने बावड़ी और कुंड बनवाए। गरमी के दिनों में अनेक स्थानों पर प्याऊ भी लगवाई जाती है। दुर्भिक्ष के दिनो में अकाल पीड़ितों को जो सहायता दी जाती है उनमे इनका विशेष ध्यान रखा जाता है। इन सब कार्यों का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है।

दिल्ली के पत्र "जनसत्ता" अप्रैल १६५३ के अंक में आप का एक लेख "दलितों का पुनरुत्थान कैसे हो ?" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उससे हरिजनों के प्रति आप की भावना और उनके पुनरुत्थान के लिए किये जाने वाले कार्यों के प्रति आप की सचाई, ईमानदारी एवं निष्ठा का पूरा परिचय मिलता है। इसलिए उसका अधिकांश भाग यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। उसमें आपने दिखाऊ काम की कड़ी आलोचना की थी। आप ने लिखा था कि गत् ४० वर्षों से दलितोद्धार में सहयोग देना मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य रहा है। अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार मैंने बराबर कार्य किया। पढ़ेंगी राज्य में चलने वाले कुछ्मकाव, आज

समाज आदि आन्दोलनों में मैंने दलितों के उत्थान की आशायें बाँधी थीं। गांधी जी के हरिजन प्रेम को देखकर स्वयं हरिजनों को विश्वास होने लगा था कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद हमारा दलितपन मिट जायगा। हमारे संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सूची और कांग्रेस के जाति, वर्ग और सम्प्रदाय रहित बनाने के लिखित लक्ष्य को देख कोई भी विदेशी यह कह सकता है कि भारत में किसी प्रकार की छुआछूत नहीं होगी। परन्तु अपने जीवन के दीर्घ और सक्रिय अनुभव को देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ कि भारत में दलितों की स्थिति में कोई वास्तविक प्रगति नहीं हुई। अछूतपन का कलंक भारत के पवित्र भाल पर आज भी लगा हुआ है। दक्षिण अफ्रीका में मलान सरकार की रंगभेद-नीति के खिलाफ शोर मचाने वाले हम भारतीय इस कटु सत्य से इनकार नहीं कर सकते कि हमारा देश आज भी छुआ-छूत के कलंक से कलंकित है। विधान और कानूनों के सब्जबाग केवल भीतरी गन्दगी ढकने के ऊपरी आडम्बरपूर्ण आवरण ही सिद्ध हो रहे हैं। साधारण हिन्दू जनता जाति-पांति के बन्धनों में जकड़ी हुई दलितवर्ग से घृणा करती है, अछूतपन की अपनी जड़ जन्म से जातिवाद में है। स्वयं दलितों के वर्गों में भी जाति-पांति के बहुत भेद हैं जो आपस में छुआछूत रखते हैं। जातिवाद का यह आधार ब्राह्मण जाति की जन्मजात सर्वोच्च श्रेष्ठता के प्रति अन्धविश्वास है। गत मास राष्ट्रपति ने ब्राह्मणों की चरण-वन्दना करके इसी बात को पुष्ट किया।

जब देश के मुख्य कर्णधारों की यह दशा है तब स्वभाव से ही अनाचारवादी और पदलोलुप अफसरों का कहना ही क्या। अधिकतर सरकारी अफसर स्वयं तो जाति भेद के कट्टर समर्थक हैं ही, तिस पर जब उन्हें ऊपर से नेताओं की कट्टरता और नीचे से रूढ़ि ग्रस्त जनता का सहारा मिल जाता है तब सामाजिक सुधार के आकांक्षियों का और हरिजनों का तो राम ही रक्षक है। जब से भारतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई है, तब से सब प्रान्तों में और खास करके "बी" और "सी" श्रेणी के राज्यों में हरिजनों की जो उपेक्षा और तिरस्कार हो रहा है वह आज के युग में लोकतन्त्र और मानव व्यक्ति के बुनियादी हकों पर विश्वास करने वालों को मार्मिक दुख पहुँचाने के लिए बड़ा कठोर आघात है।

सरकारी अफसरों और कांग्रेसी नेताओं द्वारा बरती जाने वाली इस प्रकार की घृणित नीति का एक प्रत्यक्ष उदाहरण कुछ दिन पूर्व राजस्थान में देखने को मिला है। गांधी जयन्ती पर राजस्थान सरकार ने जिलाधिकारियों को लोक दिखाऊ आज्ञाएँ भेजी थीं कि इस समारोह के अवसर पर एक दिन "हरिजन दिवस" मनाया जाय, क्योंकि हरिजनों का उत्थान दिवंगत राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के कार्यक्रमों में से एक प्रधान कार्यक्रम था। इस हरिजन दिवस के दिन राजस्थान के प्रसिद्ध शहरों व कस्बों के प्रसिद्ध देव-मन्दिरों में कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के सहयोग और राज्य प्रबन्ध की सहायता से हरिजनों व सवर्णों को मिलकर प्रवेश करने का आदेश दिया था। हरिजनों को सवर्णों के साथ आम कुओं व पानी के नलों से पानी भरवाने व आम पार्टियों में सहभोज करवाने का भी उसमें उल्लेख था। परन्तु उपरोक्त आदेश सिर्फ लोक दिखावे की योजना मात्र के लिए दिया गया था वैसा ही उस पर अमल भी हुआ। उपरोक्त तीनों बातों में से एक भी पार नहीं पड़ी। पड़ती भी कैसे? सरकारी अफसर और कांग्रेसी नेता प्रतिक्रियावादियों को प्रसन्न रखने के लिए इसको धारण करते रहे हैं। बेचारे गरीब हरिजनों के लिए बीकानेर जैसे कई स्थानों पर यह उल्टा अनर्थ का कारण हुआ। सवर्णों ने उनको पदलित ही और अपमानित किया। इस दुर्घटना से घोर दुखी होकर बीकानेर में जो हरिजनों ने एक नोटिस निकाल कर सरकार व कांग्रेस को कहना पड़ा कि यदि अब से हमारे कुछ अधिकार न हो सकें तो न सही, इस प्रकार के ढोंग करके हमारी हालत को और अधिक बद से बदतर बनाने की चेष्टाएँ नहीं करें तो बड़ी कृपा होगी। इस नोटिस के निवेदकों में भारतीय संसद के एक हरिजन सदस्य के भी हस्ताक्षर हैं।

हरिजन संसद सदस्यों के बीच मोहता जी। आपके बाईं ओर श्री पन्नालाल जी बारूपाल एम० पी० व श्रीमती पन्नालाल। दाईं ओर श्री धर्मपाल जी पवार एम० एल० ए० व श्रीमती धर्मपाल खड़े हैं।

राजस्थान प्रदेश दलित वर्ग संघ के प्रथम अधिवेशन के उद्घाटन पर भाषण देते हुए केन्द्रीय मंत्री श्री जगजीवन राम, बीच में श्री मोहता जी तथा श्री जयनारायण व्यास आदि।

सरकार यदि ईमानदारी से देश के जातिभेद से उत्पन्न इस घनीभूत कलंक अछूतपन को मिटाना चाहती है तो उसे—

(१) जाति-भेद और अछूतपन के बरताव के विरुद्ध कठोर कानून बना कर उसका पूरी तरह पालन करना चाहिए।

(२) जिन सरकारी अधिकारियों को जातिभेद मे विश्वास हो वे भारतीय संविधान के शत्रु करार कर दिये जायें और उन्हें सरकारी पदों पर कार्य करने के लिए अयोग्य करार कर देने के लिये पब्लिक सर्विस रूल्स मे संशोधन किये जावें।

(३) सरकारी और कांग्रेस के सार्वजनिक आयोजनों मे होने वाले सहभोजों में दलित वर्ग के लोगो के द्वारा पदार्थ परोसने का कार्य लिया जाय और इस बात की खास देखरेख रखी जाय कि सरकारी कर्मचारी इन समारोहों में सक्रिय रूप में शामिल होने में आनाकानी तो नही करते। जो दोषी दीखें उन्हें सरकारी नौकरी और कांग्रेस की सदस्यता से अलग किया जावे।

(४) जनता के जातिवाद व अछूतपन के खिलाफ चेतना फैलाने और विचार क्रान्ति उत्पन्न कराने वाली संस्थायें जैसे 'प्रगतिसंघ' हरिद्वार और "जातपांत तोड़क मण्डल" आदि को भारत सेवक समाज के आवश्यक अंग के रूप में मान्यता दी जावे; क्योंकि जातिवाद देश में जब तक प्रचलित है तब तक दलितोद्धार नहीं हो सकता।

यदि उपरोक्त तरीकों से काम लिया जावे तो दलितों का कुछ लाभ हो सकता है और लोकतन्त्र की बुनियाद भी कायम हो सकती है, परन्तु क्या कांग्रेस सरकार ऐसा करेगी? यह बहुत बड़ा सवाल है। अब तक का अनुभव इसका जवाब हाँ में नहीं देता, आखिरकार मरता क्या नही करता। अन्याय की पीड़ाओं से निराश अछूत भी इस गुलामी की अपेक्षा कम्यूनिज्म में अपने त्राण की आशा रखने लगें तो क्या आश्चर्य है, सब्र की भी हद होती है।'

सामाजिक क्रांति का रूप

इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य करते हुए आपने जो अनुभूति प्राप्त की उससे आपके सामाजिक विचार ऐसे परिपक्व हो गये कि उनमें विचार क्रान्ति-पूर्ण मौलिकता पैदा हो गई। चंहुमुखी क्रान्ति के ध्येय से आपने "प्रगति संघ" नाम से एक संस्था स्थापित की थी। उसके सम्बन्ध में सामाजिक क्रान्ति का खुलासा आपने इस प्रकार किया था—"समाज और व्यक्ति आपस में पूर्णतया सम्बन्धित हैं। व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व नहीं है और समाज के बगैर व्यक्ति का निर्वाह नही हो सकता। व्यक्तियों का योग ही समाज है। व्यक्ति समाज में रहता है, काम करता है और उसके द्वारा अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। इसलिए व्यक्ति और समाज परस्पर मे अन्योन्याश्रित हैं अर्थात् व्यक्ति पर समाज निर्भर है और समाज पर व्यक्ति निर्भर है: एवं परस्पर में नाना प्रकार से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं, जिस तरह माता-पिता का सन्तानो से संबन्ध भाई-भाई, बहनों-बहनों और भाई-बहनों का आपस का सम्बन्ध; स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध; कुटुम्बियों का आपस का सम्बन्ध; भाई बिरादरी का सम्बन्ध; मित्रों का पारस्परिक सम्बन्ध; शिक्षक-शिक्षित का सम्बन्ध; पड़ोसियों, मोहल्ले वासियों, नगर निवासियों और देशवासियों का आपस का सम्बन्ध इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आज के वैज्ञानिक और यान्त्रिक युग में तमाम दुनिया के मनुष्यों का एक दूसरे से निकट या दूर का, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। इस प्रकार के सम्बन्धों से प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्यों का दायित्व बढ़ा हुआ है और उसके अधिकार उसकी कर्तव्य परायणता पर निर्भर है। परन्तु हम अपने कर्तव्यों के दायित्व को यथोचित महत्व नहीं देते, किन्तु अधिकारों को अनुचित महत्व देते हैं; जिससे समाज

राजस्थान प्रदेश दलित वर्ग संघ के प्रथम अधिवेशन के उद्घाटन पर भाषण देते हुए केन्द्रीय मंत्री श्री जगजीवन राम, बीच में श्री मोहता जी तथा श्री जयनारायण व्यास आदि।

सरकार यदि ईमानदारी से देश के जातिभेद से उत्पन्न इस घनीभूत कलंक अछूतपन को मिटाना चाहती है तो उसे—

(१) जाति-भेद और अछूतपन के बरताव के विरुद्ध कठोर कानून बना कर उसका पूरी तरह पालन करना चाहिए।

(२) जिन सरकारी अधिकारियों को जातिभेद में विश्वास हो वे भारतीय संविधान के शत्रु करार कर दिये जायें और उन्हे सरकारी पदों पर कार्य करने के लिए अयोग्य करार कर देने के लिये पब्लिक सर्विस रूल्स में संशोधन किये जावें।

(३) सरकारी और कांग्रेस के सार्वजनिक आयोजनों में होने वाले सहभोजों में दलित वर्ग के लोगों के द्वारा पदार्थ परोसने का कार्य लिया जाय और इस बात की खास देखरेख रखी जाय कि सरकारी कर्मचारी इन समारोहों में सक्रिय रूप में शामिल होने मे आनाकानी तो नही करते। जो दोषी दीखें उन्हें सरकारी नौकरी और कांग्रेस की सदस्यता से अलग किया जावे।

(४) जनता के जातिवाद व अछूतपन के खिलाफ चेतना फैलाने और विचार क्रान्ति उत्पन्न कराने वाली संस्थायें जैसे 'प्रगतिसंघ' हरिद्वार और "जातपांत तोड़क मण्डल" आदि को भारत सेवक समाज के आवश्यक अंग के रूप में मान्यता दी जावे; क्योंकि जातिवाद देश में जब तक प्रचलित है तब तक दलितोद्धार नही हो सकता।

यदि उपरोक्त तरीकों से काम लिया जावे तो दलितों का कुछ लाभ हो सकता है और लोकतन्त्र की बुनियाद भी कायम हो सकती है, परन्तु क्या कांग्रेस सरकार ऐसा करेगी ? यह बहुत बड़ा सवाल है। अब तक का अनुभव इसका जवाब हाँ में नहीं देता, आखिरकार मरता क्या नहीं करता। अन्याय की पीडाओं से निराश अछूत भी इस गुलामी की अपेक्षा कम्यूनिज्म में अपने त्राण की आशा रखने लगें तो क्या आश्चर्य है, सब्र की भी हद होती है।'

सामाजिक क्रांति का रूप

इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य करते हुए आपने जो अनुभूति प्राप्त की उससे आपके सामाजिक विचार ऐसे परिपक्व हो गये कि उनमें विचार क्रान्ति-पूर्ण मौलिकता पैदा हो गई। सर्वतोमुखी क्रान्ति के ध्येय से आपने "प्रगति संघ" नाम से एक संस्था स्थापित की थी। उसके सम्बन्ध में सामाजिक क्रान्ति का गुणगान आपने इस प्रकार किया था—"समाज और व्यक्ति आपस में पूर्णतया सम्बन्धित है। व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व नहीं है और समाज के बगैर व्यक्ति का निर्वाह नहीं हो सकता। व्यक्तियों का योग ही समाज है। व्यक्ति समाज में रहता है, काम करता है और उसके द्वारा अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। इसलिए व्यक्ति और समाज परस्पर मे अन्योन्याश्रित हैं अर्थात् व्यक्ति पर समाज निर्भर है और समाज पर व्यक्ति निर्भर है; एवं परस्पर मे नाना प्रकार से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं, जिस तरह माता-पिता का सन्तानों से संबन्ध भाई-भाई, बहनों-बहनों और भाई-बहनों का आपस का सम्बन्ध; स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध; कुटुम्बियों का आपस का सम्बन्ध; भाई बिरादरी का सम्बन्ध; मित्रों का पारस्परिक सम्बन्ध; शिक्षक-शिक्षित का सम्बन्ध; पड़ोसियों, मोहल्ले वासियों, नगर निवासियों और देशवासियों का आपस का सम्बन्ध इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आज के वैज्ञानिक और यान्त्रिक युग में तमाम दुनिया के मनुष्यों का एक दूसरे से निकट या दूर का, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। इस प्रकार के सम्बन्धों से प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्यों का दायित्व बड़ा हुआ है और उसके अधिकार उसकी कर्तव्य परायणता पर निर्भर हैं। परन्तु हम अपने कर्तव्यों के दायित्व को यथोचित महत्व नही देते; किन्तु अधिकारों को अनुचित महत्व देते हैं; जिससे समाज

में अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता से कर्तव्य पालन करके समाज की आवश्यकतायें पूरी करने में योग दे और समाज प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो, तभी समाज सुव्यवस्थित रह सकता है। इसलिए अपने कर्तव्यों का बुद्धि द्वारा अधिक से अधिक विवेक और विचार करके उन्हें अपनी योग्यतानुसार पूरे करते रहना चाहिए। हम लोग इस आधुनिक युग में रहते हुए भी अन्धपरम्परा की व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, जातिगत और साम्प्रदायिक आधार पर संस्थापित अत्यन्त संकीर्ण प्राचीन रूढ़ियों और मर्यादाओं से इतने जकड़े हुए हैं कि अपने सामाजिक कर्तव्यों का यथावत् पालन नहीं कर सकते; जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति और सारा समाज घोर संकट का शिकार हो रहा है। इसलिए युग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, सब की एकता और समता के सिद्धान्त के आधार पर सामाजिक न्याय की भावना से, हमको अपने सामाजिक कार्यों में नीचे लिखे अनुसार क्रान्ति शीघ्र ही कर डालना चाहिए—

(१) वर्तमान युग में सभी मनुष्य एक ही समाज के सदस्य हैं, इसलिए उनके खानपान, विवाह सम्बन्ध तथा व्यवसाय में जाति-पाँति के भेद सर्वथा समाप्त किये जाने चाहिए, पर आचरण की शुद्धता पर अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। समान रहन-सहन, खान-पान, समान विचार और आचरण वालों से विवाह सम्बन्ध, जाति-पाँति के बन्धन तोड़कर करना सुखदायक होता है।

(२) गीता की वर्ण-व्यवस्था केवल सामाजिक कार्य-विभाग अर्थात् गुणों के अनुसार कार्यों का विभाग (Division of Labour) समाज के व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए है। यहाँ जन्म जात जाति-भेद का कोई उल्लेख नहीं है। अतः जिस शरीर की जैसी योग्यता हो, उससे उसके अनुसार और सेवा के काम करते हुए भी सब को एक मनुष्य-जाति समझना चाहिए। जाति-भेद अस्वाभाविक है, क्योंकि किसी भी जाति के पुरुष का किसी भी जाति की स्त्री से सन्तान हो सकता है। यदि जाति भेद प्राकृतिक होता तो जिस तरह एक जाति के पशु के नर का दूसरी जाति के पशु की मादा से सन्तान नहीं हो सकता, इसी प्रकार मनुष्यों में भी होता। इसलिए जाति-पाँति के आधार पर किसी के अधिकारों में अन्तर नहीं रखना चाहिए। (इस विषय का विशेष खुलासा गीता का व्यवहार-दर्शन अ, ५ श्लोक १८ के स्पष्टीकरण में देखना चाहिए)।

(३) जाति-पाँति के आधार पर बने हुए सब रीति-रिवाजों और मर्यादाओं को तोड़ देना चाहिए। किसी भी रीति-रिवाज पर पाबन्दी नहीं रखना चाहिए। जाति के पंचों की सत्ता और अधिकार समूल मिटा देना चाहिए।

(४) बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बेजोड़-विवाह और बहुविवाह का विरोध करना और विधवा-विवाह का प्रचार करना चाहिए। यह प्रचार शास्त्रों के प्रमाणों के आधार पर नहीं, किन्तु बुद्धि और विवेक के आधार पर करना चाहिए।

(५) विवाह सम्बन्ध, केवल स्त्री-पुरुष के सुखमय गृहस्थ जीवन के उद्देश्य से वर-कन्या की अनुमति से होना चाहिए। इसमें रुपये-पैसे, धन-सम्पत्ति, या गहनों आदि के लेन-देन, अथवा मान-प्रतिष्ठा के विचार का जरा भी प्रसंग नहीं रहना चाहिए। विवाह को किसी प्रकार का धार्मिक रूप नहीं देना चाहिए। किन्तु मनुष्य और समाज की सुव्यवस्था के लिए एक सामाजिक रूप समझना चाहिए। विवाह का उद्देश्य स्त्री पुरुष के परस्पर के सहयोग से दोनों की सुख शान्ति पूर्वक जीवन यात्रा करने का है परन्तु वर्तमान में इसके स्थान में विवाह के इस पवित्र उद्देश्य की सर्वथा उपेक्षा करके विवाह को मुख्यतया मनुष्य के आर्थिक लाभ का साधन बना लिया है। कहीं पर धन से अपनी कन्या बेची जाती है और कहीं वर धन (दहेज) से खरीदा जाता है। दोनों हालतों में कन्या का शोषण होता है और समाज में वैमनस्य तथा आर्थिक संकट उत्पन्न होते हैं। कन्या की बिक्री जितनी भयंकर है उससे अधिक दहेज प्रथा दुखदायी है। इन दोनों कुप्रथाओं को रोक

मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। (स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम और कर्तव्य के विषय में "गीता का व्यवहार दर्शन" अ, १२ में दिये गए पति और पत्नी के कर्तव्यों का खुलासा लोगों को समझाना चाहिए)।

(६) विवाह के अवसर पर जो रीति-रिवाजों में फिजूल खर्च किया जाता है, वह सब बन्द होना चाहिए। न कोई देव पूजन आदि धार्मिक कृत्य होना चाहिए। बालकों के नामकरण, चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत आदि, जो कई प्रकार के संस्कारों की व्यर्थ रूढ़ियाँ प्रचलित हैं वे सब बन्द करवानी चाहिए।

(७) मृत्यु के समय जो बिरादरी और ब्राह्मणों को प्रेत-भोजन देने की कुप्रथा है, वह सर्वथा उठा देनी चाहिए।

(८) स्त्रियों के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकार पुरुषों के समान ही समझने चाहिए। कार्य-विभाग के लिए गृहस्थी स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य अपने घर-गृहस्थी का काम करने और बच्चों के पालन-पोषण आदि करने का स्वाभाविक है, और पुरुष का मुख्य कर्तव्य अपनी स्त्री और बच्चों के पालन-पोषण के लिए कमाना और बाहरी कार्य करना स्वाभाविक है। परन्तु इस कार्य-विभाग के कारण हीनता व उच्चता का भेद उत्पन्न नहीं होना चाहिए; किन्तु गृहस्थ के दोनों अंग बराबर समझे जाने चाहिए। जिन स्त्रियों के गृहस्थ नहीं हों वे अपने स्वावलम्बन के दूसरे काम भी कर सकती हैं। विशेष करके समाज की सेवा के कार्य में तो स्त्रियों को पुरुषों के बराबर भाग लेना चाहिए। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार और उत्साह देना चाहिए। परदा अथवा घूंघट की कुप्रथा को फौरन सर्वथा मिटा देना चाहिए।

(९) वर्तमान समय में साधारण जनता पुत्र-जन्म के अवसर पर हर्ष उत्सव मनाती है और कन्या के जन्म पर दुख और शोक करती है तथा कन्या के पालन-पोषण और शिक्षण आदि की सर्वथा उपेक्षा करती है। विवाह सम्बन्ध करने में उसके भावी सुख-दुख का यथोचित विचार न करके पशुओं की तरह उसका दान किया जाता है। यह घोर अत्याचार और राक्षसीपन है। पुत्र-पुत्री का एक समान पालन-पोषण, शिक्षण आदि होने चाहिए। पुरुष स्त्रियों के गर्भ में ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए कन्या का आदर पुत्र के समान ही होना चाहिए।

(१०) शिक्षा—अक्षर ज्ञान के साथ-साथ सदाचार, शिष्टाचार और नागरिकता की शिक्षा, स्त्री-पुरुष दोनों के लिए आवश्यक है। साथ ही साथ किसी न किसी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा भी अवश्य होनी चाहिए जिससे अपने शरीर और गृहस्थ के जीवन निर्वाह के लिए परावलम्बी न बनना पड़े, किन्तु स्वावलम्बी हो जावे। शिक्षा के साथ शरीर स्वस्थ और सुदृढ़ बना रहे; यह प्रबन्ध भी अवश्य होना चाहिए। इस पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। युवक-युवतियों की सहशिक्षा (Co-education) हमारे देश की वर्तमान स्थिति के अनुकूल नहीं है। इसको उत्साह नहीं देना चाहिए।

हमारे देश की शिक्षा प्रणाली बहुत ही दोषपूर्ण है। यह मनुष्यों को सच्चा मनुष्य नहीं बनाती। स्वतंत्र विचार करने योग्य तथा स्वावलम्बी नहीं बनाती, किन्तु अधिकतर विलासों के कीड़े, परावलम्बी तथा उच्छृंखल बना देती है। इसको बदलकर सच्ची, हितकर शिक्षा प्रणाली बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इस विषय में दूसरे उन्नत देशों का आदर्श लेना चाहिए।

(११) आहार-विहार शरीर को स्वस्थ, पुष्ट, बलवान और दीर्घजीवी बनाने वाला होना चाहिए (इस विषय में 'गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय ६ श्लोक १६-१७ और अध्याय १७ श्लोक ८ से १० में दिये हुए स्पष्टीकरण को देखना चाहिए)।

(१२) रहन-सहन और वेश-भूषा (पोशाक) अवसर के अनुसार, शरीर की रक्षा और करने वाले कार्य के उपयुक्त होने चाहिए। सफाई और सुन्दरता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(१३) दूसरे सब व्यक्तियों से मिलते समय शिष्टता, नम्रता और मधुरता का बर्ताव करना चाहिए।

(प्राचीन आर्य-संस्कृति के शिष्टाचार का वर्णन गीता के अध्याय १७ श्लोक १४ से १६ में किया गया है। "व्यवहार दर्शन" में उसका स्पष्टीकरण देखना चाहिए)।

(१४) शरीर को स्वस्थ और बलवान रखने का सदा ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि स्वस्थ और बलवान शरीर ही अपने कर्तव्य ठीक तौर से पालन करने योग्य होते हैं। उसी से विचार शक्ति भी बढ़ती है। मादक और उत्तेजक पदार्थों के व्यसनों से बचना चाहिए।

(१५) उत्सव—जाति के जीवन का प्रमाण है; इसलिए विशेष अवसरों पर उत्सव अवश्य मनाने चाहिए; जिसमें अच्छे वस्त्र, अच्छे भोजन, हर्ष, उल्लास, हास्य, विनोद, गाने, बजाने, नृत्य करने आदि के व्यवहार सभ्यतापूर्ण हों परन्तु होली के अवसर पर अश्लील बोलने तथा रंग गुलाल आदि डालने के जो असभ्य व्यवहार होते हैं, वे फौरन बन्द होने चाहिए। आज कल के फैशन के स्त्री-पुरुषों के संयोग के जो डांस या बाल आदि होते हैं, उनका प्रचार समाज में नहीं होने देना चाहिए।

(१६) मनोविनोद के साधन और खेल-तमाशे तथा व्यायाम के साधन, जहाँ तक बन सके, बल बढ़ाने और जनता की नैतिक उन्नति और सुरुचि उत्पन्न करने में सहायक होने वाले होने चाहिए। वर्तमान में देश में मनोविनोद का एक मुख्य साधन "सिनेमा" हो रहा है। परन्तु सिनेमा वाले अपने लाभ के लिए, इसमें प्रायः ऐसे दृश्य दिखाते हैं, जिनसे जनता में विलासिता और कामुकता बढ़ती है, नैतिक पतन और कुसंगति व कुप्रवृत्ति अधिक होती है। इस विषय में क्रान्ति होने की आवश्यकता है। "सिनेमा" में दृश्य ऐसे दिखाने चाहिए, जिनसे शुद्ध विनोद हो; जनता का बौद्धिक और नैतिक विकास हो; विज्ञान और कला-कौशल का ज्ञान बढ़े; अज्ञान, अन्याय और दरिद्रता दूर करने की प्रेरणा प्राप्त होवे।

(१७) रेल-यात्रा, उत्सव, त्यौहार और मेलों-तमाशों व बाजारों में बहुत लोगों का जमघट होता है, वहां धक्कम-धक्का और लड़ाई-झगड़े होते हैं। ऐसा न होना चाहिए। ऐसे अवसरों पर एक दूसरे के अधिकार और सुविधा का ध्यान रखते हुए, व्यवस्थित रूप से सभ्यता का बर्ताव करना चाहिए।

(१८) पड़ोसियों के साथ स्नेह का बर्ताव रखना चाहिए। उनके दुख-दर्द में काम आना और यथाशक्ति सहयोग देना चाहिए। अपने घर की गन्दगी व कूड़ा-करकट या गन्दा पानी आदि पड़ोस के घर, गली और सड़क की तरफ नहीं फेंकना चाहिए। सफाई और स्वास्थ्य की आवश्यकता सब को रहती है, इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह फर्ज होना चाहिए कि वह केवल अपने ही घर की नहीं, किन्तु तमाम सार्वजनिक व मोहल्ले वालों के लिए भी सफाई, सुविधा व स्वास्थ्य का ध्यान रखे।

(१९) वर्तमान में अधिकांश व्यक्तियों के संतति इतनी अधिक होती है कि उनका उचित पोषण और शिक्षण करने में वे नितान्त ही असमर्थ रहते हैं, जिससे संतति निर्बल, रोगी, अल्पायु, मन्दबुद्धि और अशिक्षित रहने के अतिरिक्त उनके माता-पिता, उसके बोझ से दबे रहते हैं। देश में भी ऐसे बोझ का प्रभाव लोगों की जन-संख्या इतनी बढ़ गई है कि उनके जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक पदार्थों की बहुत कमी हो गई है। इस लिए संतति-निग्रह की अत्यन्त आवश्यकता है। जहां तक बन सके निर्दोष उपायों से संतति-निग्रह के लिए प्रयत्न ही प्रयत्न करना चाहिए। छोटी उम्र के विवाह भी संतति बढ़ने का एक मुख्य कारण है। यह कुप्रथा बन्द होने चाहिए।

(२०) प्रत्येक स्त्री-पुरुष को चाहिए कि वे अपने बच्चों का स्नेह पूर्वक लालन-पालन और शिक्षण अच्छी तरह से करावें और उन्हें हर प्रकार से शिष्ट और योग्य बनाने का प्रयत्न करें। सन्तान का कर्तव्य है कि वे अपने माता-पिता का आदर-सत्कार करें और वृद्धावस्था में उनका भरण-पोषण और सेवा-शुश्रूषा करें। पुत्र के विवाह का दायित्व माता-पिता पर नहीं होना चाहिए। परन्तु हम ने देश के वातावरण का ध्यान रखते हुए,

पुत्री के विवाह का दायित्व माता-पिता पर रहना आवश्यक है। संयुक्त परिवार की प्रथा एक निश्चित सीमा तक, माता-पिता की वृद्धावस्था में सुरक्षा और बालक-बालिकाओं के पालन-पोषण, शिक्षा, विवाह और उन्हें सदाचारी बनाये रखने के लिए आवश्यक है। परन्तु एक ही परिवार में एक से अधिक भाई, विवाहित और स्वतंत्र आजीविका अर्जन करने योग्य होने पर, उनका परिवार पृथक्-पृथक् होकर रहना सुविधाजनक होता है। एक संयुक्त परिवार में एक दम्पति, उनके माता-पिता और उनकी अविवाहित अथवा आजीविका रहित सन्तान और भाई-बहन ही रहने चाहिए। एक ही परिवार में रहने वाले कमजोर स्थिति वाले कुटुम्बियों की सहायता, अच्छी स्थिति वालों को करना अपना फर्ज समझना चाहिए। परिवार के पृथक् होने पर भी कुटुम्बियों को एक दूसरे की सहायता और सुख-दुख में काम आना चाहिए।

(२१) अनाथ बालकों और स्त्रियों की सुरक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध करने में सहायक होना चाहिए। पर वर्तमान में अनाथालयों और विधवाश्रमों के नाम पर जो धूर्त लोग जनता को ठगते हैं और दुराचार करते हैं, उनका भण्डाफोड़ करके अवश्य लोगों को बचाना चाहिए।"

धार्मिक क्रान्ति का रूप

वर्तमान समाज के जीवन में सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में अन्तर कर सकना बहुत कठिन है क्योंकि दोनों ही विषय एक दूसरे के साथ दूध पानी की तरह मिला दिए गये हैं। कदाचित ही कोई सामाजिक विषय ऐसा होगा, जिसको धार्मिक अंध विश्वासों एवं बन्धनों में जकड़ नहीं दिया गया है। इसी कारण धर्म के नाम से समाज में कितनी ही रूढ़ियाँ तथा अंध परम्पराएँ जारी कर दी गई हैं। उनमें मनुष्य के जीवन को जन्म से भी पहले से और मृत्यु के बाद भी जकड़ दिया गया है। उनसे तिलमात्र भी अलग होने पर उसके पतित होने की व्यवस्था समाजपतियों और धर्मपतियों द्वारा दे दी जाती है। लोकाचार का सम्बन्ध सामाजिक जीवन के साथ होते हुए भी उसको शास्त्राचार के समान धर्म के साथ बाँध दिया गया है। धर्म, धर्मशास्त्रों और धर्म गुरुओं के नाम से जो कुछ भी कह दिया जाता है उसको आँखें मूँदकर स्वीकार करने के सिवाय दूसरी कोई गति नहीं है।

तीस वर्ष की आयु तक आपके जीवन और धार्मिक विचारों का पुराना ही क्रम बना रहा। उसके बाद *यह जिज्ञासु एवं मुमुक्षु भावना जागृत होनी शुरू हुई जिसके संस्कार बीज रूप से मन में विद्यमान थे;* किन्तु प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियों में उनका पनप सकना सम्भव नहीं था। शनैः शनैः उन्होंने पढ़ना शुरू किया। कई घटनाएँ ऐसी घट गईं, जिनके कारण अन्तःकरण की अंध श्रद्धा और अंधभावना को बड़ी ठेस लगी। ज्योतिषियों, पंडितों, धर्माचार्यों और साधुओं के पोल पाखण्ड व अनाचार का प्रत्यक्ष परिचय आपको मिलने लगा और उनके प्रति घृणा पैदा होनी प्रारम्भ हो गई। शुद्ध नक्षत्रों में पंचांगों के मिथ्यापन की जानकारी भी आपको प्रत्यक्ष अनुभव होने लगी और आपने कुण्डली निकलवाना बन्द कर दिया। जन्मपत्री में ग्रहियाँ बनवाकर निकलवाने की पारिवारिक परम्परा का आपने परित्याग कर दिया और पंचांग बतानेवाले ज्योतिषियों, सिद्धों तथा हस्तरेखा देखने वालों पर से आप का विश्वास उठ गया। विवाहों के लग्न कराने व पुत्र-जन्म की पत्री बनाने सर्वथा बन्द कर दिए। सामयिक साहित्य के अध्ययन से आन्तरिक जिज्ञासा एवं मुमुक्षु भावना को बल मिला और अंध विश्वास व अंध धारणाएँ दूर होती चली गईं। समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों की ओर प्रवृत्ति होने पर यह समझने में अधिक समय नहीं लगा कि हमारा सारा सामाजिक जीवन धार्मिक रूढ़ियों, अंध परम्पराओं और धार्मिक अंध विश्वासों से जकड़ा हुआ है। उनको दूर किए बिना समाज सुधार का कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता और सामाजिक जीवन में कोई भी परिवर्तन किया नहीं जा सकता। सामाजिक क्रान्ति के लिए धार्मिक

है कि साधारण मनुष्य अपनी बुद्धि से सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन करके उनकी गहराई में नहीं पहुँच सकता। इसलिए आपका मत यह है कि जिन मनुष्यों की बुद्धि का पर्याप्त विकास हो जाता है और जो अपनी बुद्धि के सहारे तत्त्वदर्शी बन जाते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे साधारण जनों को अपनी बुद्धि से काम लेकर कुछ विचार करने के लिए प्रेरित करें। और उनको अन्धी भावना से मुक्त करके बुद्धिवादी बनाने का प्रयत्न करें। भावना का सदुपयोग करना सर्व-साधारण को सिखाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि आप ईश्वर के अस्तित्व को बिलकुल भी नहीं मानते; अपितु ईश्वर के अस्तित्व की भावना को आप अच्छी, लाभदायक और आवश्यक भी मानते हैं। परन्तु ईश्वर को व्यक्ति विशेष तक परिमित रख कर उसको विशेष गुणों वाला न मान कर सारे विश्व में व्यापक, सबमें एक समान और आत्मा रूप में सब में विद्यमान मानते हैं। इसी भावना को जन-जन में जागृत करके ईश्वर को सबके भीतर और मनुष्यों को उसके ही अनेक रूप समझ कर सबके साथ प्रेमपूर्ण, सहृदय व्यवहार करना ही आपकी दृष्टि में सच्ची ईश्वर-भक्ति है। सबके हित के लिए अपनी-अपनी योग्यतानुसार कर्तव्य कर्म करना ही आपके विचार से वास्तविक धार्मिक कर्मकांड है और उसी की शिक्षा-दीक्षा सबको दी जानी चाहिए। इसी प्रकार साधारण जनता की भावना का सदुपयोग करके सच्ची एकता स्थापित करके समाज का कल्याण व उपकार किया जा सकता है। एक ओर ईश्वर को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान मानते हुए दूसरी ओर विशेष गुणों वाले व्यक्ति विशेष के रूप में परिमित मानना या सीमित समझना परस्पर विरोधी भावना है। मनुष्यों की तरह ही ईश्वर को संसार से अलग किसी विशेष गुण-सम्पन्न, किसी विशेष व्यक्ति में अथवा किसी विशेष स्थान में प्रतिष्ठित मानना उसके ईश्वरत्व का अन्त करना है और यह सद्भावना नहीं, किन्तु दुर्भावना है। यह ईश्वर की पूजा या भक्ति नहीं, किन्तु तिरस्कार एवं अपमान है। यह तर्क और इस प्रकार विचार करने की प्रवृत्ति साधारण जनता में उत्पन्न करना आप अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। यद्यपि वंश परम्परा से दीर्घकाल से जड़ पकड़े हुए और दिल व दिमाग में जमे हुए अंधविश्वास तथा अंध भावना के संस्कार एकाएक मिट नहीं सकते और उनके लिए दीर्घकालीन प्रचार एवं प्रयत्न की आवश्यकता है, परन्तु आपका यह दृढ़ मत है कि धार्मिक जड़ता एवं अंधकार से जनता को मुक्त करने के सिवाय इसके दूसरा कोई मार्ग नहीं है — "नान्यः पंथा विद्यते अयनाय।" संक्षेप में आपके विचारों को आपके ही इन शब्दों में कहा जा सकता है कि स्वराज्य-आन्दोलन के दिनों में सारे देशवासियों की एकता की प्रतीक रूप में भावनामयी भारतमाता की कल्पना करके देश के समस्त लोगों को उसकी उपासना में जैसे लगा दिया गया था और देश की स्वतन्त्रता के लिए जैसे सब लोग अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार अपने कर्तव्य पालन में बड़े उत्साह के साथ लग गये थे ठीक वैसे ही उस आदर्श के अनुसार सारे देश के कल्याण के लिए सारे देशवासियों की एकता के प्रतीक सर्वात्म स्वरूप ईश्वर की, सबके साथ प्रेमपूर्ण सहृदय व्यवहार करने की उपासना और सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार कर्तव्य पालन के कर्मकाण्ड में सबको लगाया जा सकता है।" यही आपके मत के अनुसार सच्चा धर्माचरण और ईश्वर की भक्ति व पूजा है।

साधारण जन शास्त्रों पर अधिक विश्वास रखते हैं इसलिए शास्त्रों के सम्बन्ध में भी जनता को ठीक-ठीक जानकारी देकर नाना प्रकार के पोथी पत्रे के जंजाल से उसको छुटकारा दिलाना चाहिए। इसी दृष्टि से आपने "गीता का व्यवहार दर्शन", "गीता विज्ञान", "शान्तिमय जीवन" तथा "दैवी सम्पद" ग्रन्थों का निर्माण किया और "ईशावास्योपनिषद की व्यावहारिक व्याख्या" अत्यन्त सरल, सुबोध एवं सुगम शैली में की। साधारण ज्ञान रखने वाला भी इसका अध्ययन अथवा स्वाध्याय बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। ईश्वर, धर्म, भक्ति, ज्ञान तथा योग आदि विषयों पर आपने छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ मनोरंजक शैली और सरल भाषा में लिखी हैं। फिर भी आपके विचार से "ईशावास्योपनिषद" के पहले दो मंत्रों की व्याख्या तथा श्री मद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय

व्यक्तिगत स्वार्थपरता हमारे धार्मिक, साम्प्रदायिक और मिथ्या दार्शनिक अंधविश्वासों पर स्थापित है और हमारे मिथ्या विश्वासों की जड़, अदृष्ट शक्तियों की असत्य और कपोल कल्पित मान्यताओं पर दृढ़ता से जमी हुई है। यही कारण है कि हम असत्य को सत्य, अन्याय को न्याय, कर्तव्य को अकर्तव्य, अच्छाई को बुराई और बुराई को अच्छाई बताने का दुःसाहस करते हैं। इस समय हमको आवश्यकता धर्म, सम्प्रदाय और सूनी आध्यात्मिकता के अफीम की नहीं है। प्राचीन-शास्त्र, धर्मग्रन्थ, सन्त, भक्त, साधु, महात्मा, त्यागी, वैरागी, आचार्य, गुरु, पुरोहित, मुल्ले, मौलवी आदि हमारी समस्याएँ हल नहीं कर सकते। अगर कर सकते होते तो हजारों वर्ष पूर्व ही हमारा देश भूमि का स्वर्ग होगया होता। हमने सैकड़ों हजारों वर्षों तक गहरी श्रद्धा और भावुकता-पूर्वक यज्ञ किए, दान दिए, प्रार्थना और तप किए, भक्ति, जाप, पूजा, पाठ, यन्त्र, मन्त्र, और तन्त्रों की साधना की। श्मशान जगाये, अनुष्ठान किये, गृह, नक्षत्र, राशि, देवी, देवता, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, गंधर्व आदि के पीछे पड़े। योग साधे, समाधियें लगाईं, परन्तु राज, समाज और अर्थ (धन) के क्षेत्र में होने वाला अन्याय, अत्याचार और शोषण बन्द नहीं हुआ बल्कि और अधिक बढ़ता ही गया। हजारों वर्षों के बाद आज हमको होश आया है। हम समझने लगे हैं कि हमारा दुख हमारे धार्मिक और सामाजिक अन्याय का फल है। हमारा सामाजिक अन्याय हमारे धार्मिक और साम्प्रदायिक मूढ़ विश्वासों पर आश्रित है। इसलिए यदि हम सुख, शान्ति, एकता, और शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपनी अन्यायमूलक धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का मूलोच्छेदन करने के लिए, उन मूढ़ विश्वासों का विध्वंस करना पड़ेगा जिनकी बुनियाद पर ये अन्यायपूर्ण व्यवस्थाएँ खड़ी हुई हैं। जब तक हम इस कार्य में सफल नहीं हो जाते, देश में सत्य और न्याय की भावना प्रतिष्ठित नहीं होगी। सत्य और न्याय की चेतना रहित कोरी भावुकता के सहारे हम अपना और जनता का उद्धार नहीं कर सकते। जनता जब तक अपने माने हुए व्यक्ति-ईश्वर, देवी देवता, भाग्य और गृहों के चक्कर में पड़ी रहेगी तब तक वह अन्याय के प्रति क्रान्ति नहीं कर सकती। इसलिए विचार-क्रान्ति हमारी सर्वोपरि आवश्यकता है। यही धार्मिक क्रान्ति है। और वह इस तरह होनी चाहिए :—

(१) सब शरीरों और सारे विश्व में एक ही सूक्ष्म-तत्त्व या शक्ति या सत्ता सर्वव्यापक है। यह एकता ही सारे संसार का आधार है और यह सब की एकता का भाव ही ईश्वर या भगवान या परमात्मा है। इस सब की एकता के भाव के अतिरिक्त कोई अलग व्यक्ति ईश्वर या भगवान नहीं है। अपने से और संसार से अलग किसी व्यक्ति ईश्वर का मानना सारे अन्धविश्वासों का मूल कारण है। इसलिए अलग व्यक्ति ईश्वर की मान्यता समूल मिटा देनी चाहिए।

(२) सब मनुष्य संसार में उत्पन्न होते हैं, संसार में जीवित रहते हैं और संसार में ही मरते हैं; अतः संसार के साथ उनकी एकता है। इसलिए संसार के सुख-दुःख, हानि-लाभ शामिल हैं। किसी भी मनुष्य का यह सोचना कि "मेरा हित और सुख संसार के हित और सुख से अलग और विरुद्ध है, इसलिए संसार को चाहे हानि हो या लाभ, मुझे केवल व्यक्तिगत हित, सुख, कल्याण, मोक्ष, या निर्वाण के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए" सब से बड़ी भूल और पापाचार है। इस प्रकार की घोर व्यक्तिगत स्वार्थपरता के अंधविश्वास का शिकार होने वाला मनुष्य ही स्वर्ग और बैकुण्ठ के भोगों का लोभी बनकर, कर्मकाण्ड और उपासना के पाखण्डपूर्ण गर्त में पड़ता है और यही लोग व्यक्तिगत स्वार्थमूलक मिथ्या भावना लेकर अन्याय करवाते हैं। इस झूठी भावना को नष्ट कर सब के साथ अपनी एकता का भाव दृढ़ करना चाहिए और स्वर्ग, बैकुण्ठ और मोक्ष आदि के मिथ्या विश्वासों को मन से बिल्कुल निकाल देना चाहिए।

(३) ऐसे अंधविश्वासी व्यक्ति ही पुरुषार्थहीन, डरपोक, दुर्बलचित्त, और मार्गदर्शन रहित होकर, केवल मात्र अपने भोग और मोक्ष की मृगतृष्णा में पड़ कर देवी, देवता, भूत, प्रेत, आदि अज्ञात शक्तियों

का यज्ञ प्रकरण और पिछले अध्यायों के उपासना प्रकरण का स्पष्टीकरण जनता के सम्मुख विशेष रूप से किया जाना चाहिए। अन्य शास्त्रों से भी इनके समर्थक वचनों का संग्रह करके सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया जा सकता है। सर्वसाधारण की भ्रान्तिमूलक भावनाएँ और मिथ्या धारणाएँ अवश्य ही दूर की जानी चाहिए। आप पिछले अनेक वर्षों से, लगभग ३०-३२ वर्षों से इस प्रयत्न मे निरन्तर लगे हुए हैं।

आपने स्वयं अपने धार्मिक विचारों को इन शब्दों में लिखा है कि, "मेरे धार्मिक विचारों मे शनैः-शनैः क्रान्ति उत्पन्न होकर अन्त में मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि साम्प्रदायिक अन्ध विश्वासों और कट्टरता की खींचतान का मूल कारण जगत से अलग किसी अप्रत्यक्ष व्यक्ति-ईश्वर या अन्य किसी अप्रत्यक्ष शक्ति की मान्यता है। यह न तो वास्तविक धर्म है और न आस्तिकता अथवा आध्यात्मिकता ही है। सच्चा धर्म अथवा आध्यात्मिकता जगत को ही जगदीश्वर रूप समझकर सबके साथ प्रेम करने और समाज के प्रति अपने कर्तव्य पालन करने मे है। इसी धर्म और आध्यात्मिकता की इस समय आवश्यकता है। दूसरे सम्प्रदायों व धर्मों के ग्रन्थों की मुझे जानकारी नही है परन्तु मुझे विश्वास है कि उनमें भी धर्म के इसी रूप का निरूपण किया हुआ अवश्य मिलेगा और हमको क्षीर-नीर में विवेक करके वास्तविक धर्म को ग्रहण करने में संकोच नही करना चाहिए। किसी भी प्रकार का हठ व दुराग्रह नही होना चाहिए"।

आपने इन परिपक्व धार्मिक विचारों का सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए आपने समय-समय पर जो अनेक प्रयत्न किए उनमें "प्रगति संघ" का उल्लेख करना आवश्यक है। उसमें आपने धार्मिक क्रान्ति का खुलासा करते हुए जिन बातों का उल्लेख किया है आप उनके अनुसार व्यक्ति एवं समाज के धार्मिक जीवन को ढालना आवश्यक मानते हैं। इसमें आपने उन उपायों का उल्लेख भी किया है जिनका अवलम्बन करके धार्मिक क्रान्ति की प्रक्रिया को सफल बनाया जा सकता है। आपने लिखा है कि "हमारे देश मे अगणित मन्दिर, मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे, समाधिस्थल, मठ, आश्रम, विहार और तीर्थ आदि संस्थाओं की भरमार है। साधु, सन्यासी, यति, सन्त, महन्त, भक्त, मठाधीश, पंडे, पुरोहित, भिक्षु, भिक्षुणियें, आचार्य, महात्मा पंथी, मुल्ले और मौलवियों की एकत्रित संख्या लाखों करोड़ों तक पहुँचती है। इन लोगों द्वारा प्रतिदिन बहुत बड़ी मात्रा मे विभिन्न प्रकार की सम्प्रदायों का साहित्य पुस्तकों और पत्रिकाओं के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

हमारे साम्प्रदायिक व राजनैतिक नेता व समाचार पत्रों के सम्पादक उच्च स्वर से चिल्ला कर कह रहे हैं कि 'हमारा देश धर्म-प्रधान है। हमारी सभ्यता अध्यात्ममूलक है। हमारी संस्कृति सत्य और अहिंसामय है। हमारे जीवन का अंतिम लक्ष्य नजात, मोक्ष, निर्वाण अथवा भगवद्-प्राप्ति है। हमारी लक्ष्य पूर्ति के साधन त्याग, वैराग्य, सेवा, पूजा, जप, तप, ध्यान, व्रत, उपवास, प्रार्थना और भक्ति आदि हैं'।

उपरोक्त सब होते हुए भी हमारे यहाँ घोर अज्ञान मूढ़ता और अन्धविश्वास एवं दुःखों की भरमार है। दरिद्रता, दीनता, हीनता, रोग और दुर्बलता है। आत्मविश्वास का अभाव है। आत्म-प्रवंचना अर्थात् अपने आप को धोखा दिया जाता है। छल, कपट और दम्भ है। अछूतपन, भ्रूणहत्या, स्त्रीहत्या, बालहत्या, बलात्कार, उत्पीड़न और शोषण है। काला बाजार व रिश्वतखोरी है। जीवन के लिए नितान्त आवश्यक-श्रम, शक्ति और धन तथा मूल्यवान पदार्थों का अपव्यय हो रहा है। हमारी दृष्टि घोर व्यक्ति-मूलक, लौकिक और पारलौकिक स्वार्थ-सिद्धि की रहती है। राष्ट्र, समाज और संसार के प्रति हमारा दृष्टिकोण बहुत संकीर्ण, उदासीन और उत्तरदायित्वहीन है। हम स्वयं ये बुराइएँ करते हैं; दूसरों के द्वारा अनजान होकर होने देते हैं या जानते हुए भी करवाते हैं। हमारी जानकारी मे कोई व्यक्ति या वर्ग उपरोक्त अन्याय करता है तो हम उसे बुरा नहीं समझते, उसका प्रतिकार करने की चेष्टा नही करते। उसके खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठाते, उसके विरुद्ध संघर्ष नहीं करते। क्यों? इसीलिए कि हमारी सारी समाज-व्यवस्था केवल व्यक्तिगत स्वार्थपरता की नींव पर खड़ी हुई है। हमारी

व्यवहार दर्शन अध्याय ५ श्लोक १८-१६ के अर्थ और स्पष्टीकरण के आधार पर समझना और लोगों को समझाना चाहिए)।

(१२) सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए, *यथायोग्य साम्यभाव का बरताव करने से ही देश* में पूर्ण सुख, शान्ति और समृद्धि बनी रह सकती है और इसी से सब व्यक्तियों को भी सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है। अतः इस साम्यभाव के सिद्धान्त का प्रचार अच्छी तरह करना चाहिए। (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय ६ श्लोक २६ से ३२ तक का अर्थ और स्पष्टीकरण देखना चाहिए)।

(१३) मछलियों को आटे की गोलियाँ फेंकना, नदियों में दूध बहाना, चीटियों को सत्तू फैलाना, बन्दरों, कौवों, चीलों, कुत्तों आदि को अन्न खिलाना आदि, खाद्य पदार्थों की बरबादी से समाज के लिए आवश्यक खाद्य पदार्थों में कमी आती है इसलिए ये बड़े अन्याय हैं। इन पदार्थों के अभाव में मनुष्य भूखों मरते हैं और इस भुख-मरी की हत्या के दोषी, उपरोक्त दुष्कर्म करने वाले होते हैं। यही हाल देवताओं की मूर्तियों के आगे ढेर के ढेर अन्न का भोग-प्रसाद लगाने का है। इन्हें बन्द करवाना चाहिए।

(१४) तीर्थ यात्रा—करने से या नदियों में नहाने से पुण्य नहीं होता। तीर्थ यात्रा और मन्दिरों की उपयोगिता का रहस्य "गीता-विज्ञान" के पाठ १८ के अनुसार लोगों को समझाना चाहिए।

(१५) तप—यह है जो गीता के १७वें अध्याय में श्लोक १४ से १६ तक में कहा गया है। उनके स्पष्टीकरण के अनुसार शिष्टाचार ही तप है। शरीर को कष्ट देने वाले तपों का गीता के आधार पर ही खण्डन करना चाहिए। (अध्याय १७ श्लोक ५-६ और १६ के स्पष्टीकरण देखिए)।

(१६) धर्म—की व्याख्या जो "समय की माँग" में की गई है वह अच्छी तरह लोगों को समझाना चाहिए।

(१७) अहिंसा, सत्य, क्षमा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि, जो साधारण धर्म या नीति के नियम माने जाते हैं, उनका आचरण भी सब की एकता के भाव से किया जाता है, तब ही लाभकारी होता है। पर यदि व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए किया जाता है तो उसका दुरुपयोग होकर समाज के लिए हानिकर होता है। (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय १२ और १६ में इनके दुरुपयोग और सदुपयोग की व्याख्या लोगों को समझाना चाहिए)।

(१८) लोगों को यह समझाना चाहिए कि चौके-चूल्हे की छूआछूत अधर्म पर आश्रित है। इसकी जड़ में व्यक्ति विशेष की जन्मजात कुलीनता और श्रेष्ठता का घमण्ड है। यद्यपि सफाई और शुद्धता स्वास्थ्य के लिए अच्छे हैं, पर चौके-चूल्हे की और ऊँच-नीच जाति की छूत-छात से उसका कोई वास्ता नहीं है। इससे घोर अधर्म और पतन होता है।

(१९) मरे हुए रिश्तेदारों के पीछे जो प्रेत कर्म यानी श्राद्ध-तर्पण और ब्राह्मण भोजन आदि किए जाते हैं, वे बन्द कराना चाहिए। (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय १७ श्लोक ४ का स्पष्टीकरण देखिए)।

(२०) धर्म के नाम पर होने वाली भीख माँगने की वृत्ति को बन्द कराना चाहिए।

निस्सन्देह ये विचार और ये उपाय अत्यन्त उग्र कहे जा सकते हैं; किन्तु गहरी जमी हुई सामाजिक एवं धार्मिक जड़ता व मूढ़ता को साधारण उपायों से दूर नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्ण के समय से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्रान्ति का चतुर्मुखी चक्र अनवरत रूप से चल रहा है; किन्तु जनता की भावनाएँ तथा धारणाएँ इतनी जड़ व बद्धमूल हैं कि उनको दूर करना आसान नहीं है। इसीलिए तीव्र उपायों का अपनाया जाना आवश्यक एवं अनिवार्य हो गया है और उन्हीं का प्रतिपादन मैंने किया है।

व्यक्ति जिन विचारों को अपने जीवन में उतार नहीं सकता उनका दूसरों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। मोहता जी ने अपने जीवन को अपने सामाजिक एवं धार्मिक विचारों के अनुसार ढालने का प्रयत्न से

के ठेकेदारों के अनेक प्रकार के छलों के शिकार होते हैं और ग्रह नक्षत्रों के शुभाशुभ फल की भविष्य-चिन्ता में घुलते हुए जप, तप, पूजा, पाठ के झूठे ढकोसलों की ठगाई में आते हैं। इन लोगों को इस जाल से निकालना चाहिए।

(४) ये लोग सामाजिक सहयोग और पुरुषार्थ के प्रत्यक्ष महत्व को न समझने के कारण प्रारब्धवाद के चक्कर में पड़कर उद्यम-हीन हो जाते हैं। अतः प्रारब्धवाद का खण्डन करके पुरुषार्थ के प्रत्यक्ष लाभ और महत्व को सब को समझाना चाहिए।

(५) इस सच्चे रहस्य को जनता को अच्छी तरह समझाना चाहिए कि संसार का हित करना ही पुण्य है और केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की दृष्टि ही सब से बड़ा पाप है।

(६) जनता में यह प्रचार करना चाहिए कि लोकहित करना निष्काम-कर्म है और लोकहित की उपेक्षा करके अपनी पृथक् स्वार्थ-सिद्धि के लिए किये जाने वाले शारीरिक व मानसिक, तमाम कर्म सकाम व घोर पापमूलक हैं।

(७) जनता को यह बताना चाहिए कि पारलौकिक स्वार्थ-सिद्धि के अंधविश्वास में आग के अत्यन्त आवश्यक और दुर्लभ अन्न, घी आदि बहुमूल्य पदार्थों को आग में जलाकर होम करना 'यज्ञ' नहीं है किन्तु अपनी स्वाभाविक योग्यता के काम करके सब के साथ सहयोग-पूर्वक सामाजिक आवश्यकताओं के पदार्थ उत्पन्न करना ही सच्चा "यज्ञ" है। (इस विषय में गीता का व्यवहार दर्शन अ०, ३ श्लोक ६ से १६ तक का स्पष्टीकरण देखिए)।

(८) लोगों को यह समझाना चाहिए कि पंडे-पुजारी, गुरु-पुरोहितों, साधु-संत, फकीरों और पेशेवर भिखारियों को, अपने व्यक्तिगत लोक परलोक की स्वार्थसिद्धि व मान-प्रतिष्ठा के लिए दिया जाने वाला दान सच्चा दान नहीं है। किन्तु समाज के जिन व्यक्तियों के परिश्रम से भोग्य पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं उनकी, तथा जो लोग लोक-सेवा के किसी भी काम में लगे हुए हों उनकी यथार्थ आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहयोग देना तथा सहायक होना और लोगों को धार्मिक अंधविश्वासों व सामाजिक रूढ़ियों की गुलामी से छुटकारा दिलाना ही सच्चा दान है। (गीता का व्यवहार दर्शन अ०, १७ श्लोक २० से २१ तक का स्पष्टीकरण देखिए)।

(९) मन की एकाग्रता, बुद्धि के द्वारा व्यवस्थित रूप से विचार करने से होती है और उससे ही बुद्धि का विकास भी होता है। आँखें मूँदकर किसी रूप या मूर्ति या निराकार का ध्यान करने, किसी नाम का जाप करने या प्राणयाम आदि योग की क्रियाओं और प्रार्थनाओं से मन एकाग्र नहीं होता, उल्टे अपनी ही व्यक्तिगत भोग-वासनाओं से उत्पन्न होने वाले दिन के सपने दीखते हैं। (इस विषय में गीता का व्यवहार दर्शन अ० १८ श्लोक ५७ का अर्थ व स्पष्टीकरण लोगों को समझना चाहिए)।

(१०) लोगों को यह बताना चाहिए कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सबके स्वार्थों में जोड़ देना ही त्याग है। अपने कर्तव्य कर्मों को छोड़ देना वास्तविक त्याग नहीं है। गृहस्थ को छोड़ कर सन्यास का स्वांग धारण कर लेना सन्यास नहीं है, किंतु छोटे से कुटुम्ब के बदले विश्व को अपना कुटुम्ब समझ कर सब के हित में लग जाना ही सच्चा सन्यास है। यह चाहे गृहस्थ के स्वांग में हो या सन्यासी के। (गीता का व्यवहार दर्शन अ० ५ श्लोक १ से १६ व अध्याय १८ श्लोक १ से १२ तक का अर्थ व स्पष्टीकरण देखिए)।

(११) इस जीवन में सारी आयु दुख, दरिद्रता, दीनता, हीनता, शारीरिक और मानसिक कष्टों एवं अनेक प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बन्धनों में बिता देना और मरने के बाद स्वर्ग, बैकुण्ठ या मोक्ष या निर्वाण-प्राप्ति की आशा रखना बिल्कुल मिथ्या भ्रम है और अपने आप को धोखा देने की आत्म-हत्या है। किन्तु साम्यभाव के बरताव द्वारा इसी जीवन में सब प्रकार के सुख, शान्ति, स्वतन्त्रता और अपने ही प्रयत्न से सब प्रकार के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त करना ही सच्चा स्वर्ग या मोक्ष या निर्वाण है। (यह तत्व गीता का

व्यवहार दर्शन अध्याय ५ श्लोक १८-१६ के अर्थ और स्पष्टीकरण के आधार पर समझना और लोगों को समझाना चाहिए)।

(१२) सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए, यथायोग्य साम्यभाव का बरताव करने से ही देश में पूर्ण सुख, शान्ति और समृद्धि बनी रह सकती है और इसी से सब व्यक्तियों को भी सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है। अतः इस साम्यभाव के सिद्धान्त का प्रचार अच्छी तरह करना चाहिए। (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय ६ श्लोक २६ से ३२ तक का अर्थ और स्पष्टीकरण देखना चाहिए)।

(१३) मछलियों को आटे की गोलियां फेंकना, नदियों में दूध बहाना, चींटियों को सत्तू फैलाना, बन्दरों, कौवों, चीलों, कुत्तों आदि को अन्न खिलाना आदि, खाद्य पदार्थों की बरबादी से समाज के लिए आवश्यक खाद्य पदार्थों में कमी आती है इसलिए ये बड़े अन्याय हैं। इन पदार्थों के अभाव में मनुष्य भूखों मरते हैं और इस भुख-मरी की हत्या के दोषी, उपरोक्त दुष्कर्म करने वाले होते हैं। यही हाल देवताओं की मूर्तियों के आगे ढेर के ढेर अन्न का भोग-प्रसाद लगाने का है। इन्हें बन्द करवाना चाहिए।

(१४) तीर्थ यात्रा—करने से या नदियों में नहाने से पुण्य नहीं होता। तीर्थ यात्रा और मन्दिरों की उपयोगिता का रहस्य "गीता-विज्ञान" के पाठ १८ के अनुसार लोगों को समझाना चाहिए।

(१५) तप—वह है जो गीता के १७वें अध्याय में श्लोक १४ से १६ तक में कहा गया है। उनके स्पष्टीकरण के अनुसार शिष्टाचार ही तप है। शरीर को कष्ट देने वाले तपों का गीता के आधार पर ही खण्डन करना चाहिए। (अध्याय १७ श्लोक ५-६ और १६ के स्पष्टीकरण देखिए)।

(१६) धर्म—की व्याख्या जो "समय की मांग" में की गई है वह अच्छी तरह लोगों को समझाना चाहिए।

(१७) अहिंसा, सत्य, क्षमा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि, जो साधारण धर्म या नीति के नियम माने जाते हैं, उनका आचरण भी सब की एकता के भाव से किया जाता है, तब ही लाभकारी होता है। पर यदि व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए किया जाता है तो उसका दुरुपयोग होकर समाज के लिए हानिकर होता है। (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय १२ और १६ में इनके दुरुपयोग और सदुपयोग की व्याख्या लोगों को समझाना चाहिए)।

(१८) लोगों को यह समझाना चाहिए कि चौके-चूल्हे की छूआछूत अधर्म पर आश्रित है। इसकी तह में व्यक्ति विशेष की जन्मजात कुलीनता और श्रेष्ठता का घमण्ड है। यद्यपि सफाई और शुद्धता स्वास्थ्य के लिए अच्छे हैं, पर चौके-चूल्हे की और ऊँच-नीच जाति की छुत-छात से उसका कोई वास्ता नहीं है। इससे घोर अनर्थ और पतन होता है।

(१९) मरे हुए रिश्तेदारों के पीछे जो प्रेत कर्म यानी श्राद्ध-तर्पण और ब्राह्मण भोजन आदि किए जाते हैं, वे बन्द कराना चाहिए। (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय १७ श्लोक ४ का स्पष्टीकरण देखिए)।

(२०) धर्म के नाम पर होने वाली भीख मांगने की वृत्ति को बन्द कराना चाहिए।

निस्सन्देह ये विचार और ये उपाय अत्यन्त उग्र कहे जा सकते हैं; किन्तु गहरी जमी हुई सामाजिक एवं धार्मिक जड़ता व मूढ़ता को साधारण उपायों से दूर नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्ण के समय से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्रान्ति का चतुर्मुखी चक्र अनवरत रूप से चल रहा है; किन्तु स्वतः की कल्प-नाएं तथा धारणाएं इतनी जड़ व बद्धमूल हैं कि उनको दूर करना आसान नहीं है। इसीलिए तीव्र उपायों का अपनाया जाना आवश्यक एवं अनिवार्य हो गया है और उन्हीं का प्रतिपादन यहाँ किया है।

व्यक्ति जिन विचारों को अपने जीवन में उतार नहीं सकता उनका दूसरों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। मोहता जी ने अपने जीवन को अपने सामाजिक एवं धार्मिक विचारों के अनुसार ढालने का प्रयत्न कि

प्रयत्न किया है और उसके लिए अधिक से अधिक धैर्य, साहस एवं सहिष्णुता से काम लिया है। घरवालों को अपने अनुकूल बनाने में आपको उतनी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा जितना कि पुरातन पंथी लोगों की ओर से किए गए लोकापवाद का सामना आपने धैर्यपूर्वक किया है। आपके सुदृढ़ विचारों का पता उन आदेशों से भी लगता है जो आपने अपने देहावसान तथा अन्तिम क्रिया के सम्बन्ध में अपने सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रों को दिए हैं। वे आपने एक विशेष आदेश पत्र पर लिखकर रख दिए हैं। अपने इस जीवन में क्या, मृत्यु के बाद भी आपको किसी भी प्रकार की सामाजिक रूढ़ि तथा धार्मिक अंध परम्परा का किया जाना स्वीकार नहीं है। मृत्यु के उपरान्त प्रायः सम्बन्धी लोग मृतात्मा के प्रति भावावेश तथा उसको शान्ति एवं सद्गति प्राप्त कराने की सद्भावना आदि से प्रेरित होकर अनेक प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठान करना अपना कर्तव्य समझते हैं परन्तु आपने ऐसे किसी भी अनुष्ठान के न करने का आदेश दिया है। उस आदेश को इसी प्रकरण में अन्यत्र प्रकाशित करना हमने आवश्यक समझा है। उससे आपकी उत्कृष्ट सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्तिकारी भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है।

औसर निषेध

इसी प्रसंग में "औसर निषेध" शीर्षक से लिखा गया आपका गीत दिया जा रहा है, मृत्यु-भोज के रूप में औसर की सामाजिक परम्परा अत्यन्त हृदयहीन है। इसको आपने अपने घर से बिलकुल मिटा दिया है, वह गीत निम्नलिखित है :—

औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥टेर॥

अन्तरा

जब कोई प्यारा मर जावे, घर के सब रोवें चिल्लावें; औरत बच्चे सब रुल जावें, भाई बन्धु मान उडावें।
मन में तरस जरा नहीं लावें, कैसी है निर्दयताई, औसर से हो रहे जुल्म अपार औसर छोड़ो सब भाई ॥१॥

जिस भाई को निर्धन पावें, उसके घर जेवर बिकवावें; बोहरा से करजा दिलवावें, जो कुछ हो गिरवी रखावें।
दुःखियों को बेमौत मरावें, भाई है या कसाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥२॥

जो भाई कर दे इनकार, उसको सब करते लाचार; मारो दे तानों की मार, पंच करें न्याती से बार।
कितना है यह अत्याचार, इधर कुआ और उधर खाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥३॥

मरने ऊपर माल उड़ावें, साक्षात राक्षस बन जावें; नोचनोच दुःखियों को खावें, मन में ग्लानी कुछ नहिं लावें।
गीध काग पशु शरमाई; मनुष्य गुण कैसे पाई, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥४॥

बने धरम के ठेकेदार, ऐसे करते अत्याचार, पाप पुण्य का नहीं विचार, अन्त पड़े जम उनकी मार।
नहीं कोई मिले छुड़ावन हार, क्यों करते यह दुखदाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥५॥

कहे 'गोपाल' सभी समझाय, छोड़ो मिलो यह अन्याय; मत लेवो दुःखियों की हाय, इससे देश रसातल जाय।
बारी बारी सब दुख पाय, अब तो कर लो भुलाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥६॥

राजनीतिक विचार

आपके राजनीतिक विचारों के साथ क्रान्ति शब्द का प्रयोग करने में थोड़ा संकोच इसलिए होता है कि आपने कभी भी उग्र राजनीति अथवा राजनीतिक दलबन्दी में कोई भाग नहीं लिया। आप सक्रिय राजनीति से प्रायः अलग ही रहे हैं। यह आपके जीवन का मुख्य विषय नहीं रहा। फिर भी राजनीति के सम्बन्ध में आपने कुछ चिन्तन और मनन किया है। उसके परिणामस्वरूप आपकी विराजनीतिक भावधारा सर्वथा स्वतन्त्र रही।

बीकानेर सरीखे राज्य में उग्र राजनीतिक विचारों के लिए कोई अनुकूलता नहीं थी। इसका यह अर्थ नहीं है कि अंग्रेजी राज्य की बुराइयों अथवा ज्यादतियों को आपने कभी बुरा नहीं माना और देशी राज्यों की निरंकुश सत्ता अथवा जागीरदारों की मनमानी आप चुपचाप सहन करते रहे। सच तो यह है कि उनका विरोध करने में आपने संकोच नहीं किया और जागीरदारों को असन्तुष्ट करके उनका प्रकोप झेलने में आपने भय नहीं माना। उनकी ज्यादतियों का विरोध करने में आप पीछे नहीं रहे।

सन् १८६३ में अंग्रेजी का अभ्यास करते हुए आपके बंगाली मास्टर श्री मेघनाथ बैनर्जी ने आपको अंग्रेजी के सामयिक पत्र पढ़ाने शुरू किये। यह कांग्रेस का प्रारम्भिक काल था। भारत की राजनीति के भीष्म-पितामह श्री दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, डब्लु० सी० बैनर्जी, रास विहारी घोष, फीरोजशाह मेहता, दीनशा वाचा, विश्वम्भर नाथ, के० टी० तैलंग, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले आदि उन दिनों में कांग्रेस के नेता के रूप में भारत के राजनीतिक क्षितिज के चमकते सितारे थे। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन तथा उनके सम्बन्ध में जो समाचार समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ करते थे उनको आप विशेष चाव से पढ़ा करते थे। उनसे आप में सार्वजनिक जीवन के प्रति कुछ अभिरुचि पैदा हुई और आपने राजनीतिक तथा अन्य प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ सोचना और विचारना शुरू किया। नरम दलीय नेताओं महामना पंडित मदनमोहन जी मालवीय, राजर्षि श्री गोपालकृष्ण गोखले, महामहिम श्री श्रीनिवास शास्त्री, सुप्रसिद्ध पत्रकार, "लीडर" सम्पादक श्री सी० वाइ० चिन्तामणि और बम्बई के ख्यातनामा नेता सर फिरोजशाह मेहता आदि के विचारों का आप पर अधिक प्रभाव पड़ा। बाद में श्री तेजबहादुर सप्रू और श्री एम० आर० जयकर आदि के विचारों से आप अधिक सहमत रहे। महात्मा गांधी की उग्र राजनीति की ओर उनकी चरखे आदि की मशीन विरोधी आर्थिक विचारधारा के साथ आप कभी सहमत नहीं हुए।

आपका नरमदलीय नेताओं की तरह यह मत रहा कि अंग्रेजों के संसर्ग से उनके सद्गुण धारण कर देशवासियों को सुयोग्य बनाना आवश्यक है। अंग्रेज जाति की नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता और उनके अन्य गुणों से आप विशेष प्रभावित थे। उनमें आपको दैवी सम्पद के अनेक गुण प्रतीत होते थे और उनका अपने देशवासियों में अभाव आपको बहुत खटकता था। अन्य राष्ट्रों की तुलना में भी आप अंग्रेजों को जाति व राष्ट्र के रूप में बहुत उन्नत मानते थे। कराची के अपने व्यापार-व्यवसाय के कारण आप जिन अंग्रेजों के निकट सम्पर्क में आए और जिन सरकारी अंग्रेज अफसरों के साथ आपका सम्बन्ध हुआ उनकी सचाई, व्यावहारिक नैतिकता तथा शिष्टाचार आदि का आप पर विशेष प्रभाव पड़ा और आपके हृदय में अंग्रेज जाति के सम्बन्ध में बहुत ऊँचे विचार पैदा हो गए। आपको यह विश्वास हो गया कि उनसे भारतवासी बहुत कुछ सीख सकते हैं।

प्रथम महायुद्ध में आप अंगरेजों की जीत होना निश्चित मानते थे यद्यपि अधिकतर भारतीयों का विश्वास जर्मनी के विजयी होने में था। दूसरे महायुद्ध के कुछ दिन पूर्व आपके उन दिनों के मैनेजर श्री [illegible] यूरोप के दौरे से लौटे थे। उनसे जर्मनी में ईश्वर की तरह हिटलर की पूजा और अनिवार्य सैनिक शिक्षा आदि के जो समाचार सुने उनसे आपका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि यूरोप में दूसरे महायुद्ध की आग सुलगे बिना न रहेगी। चैम्बरलेन के म्यूनिक से लौटने के बाद तो आपकी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई। इस महायुद्ध में भी मित्रराष्ट्रों की विजय में आपका विश्वास बना रहा और हिटलर के रूस पर आक्रमण करने से तो उनकी विजय में आपको तनिक भी सन्देह नहीं रहा। महायुद्ध के दिनों में कांग्रेस की ओर से अंग्रेजों के विरुद्ध जो आन्दोलन शुरू किया गया उससे आप सहमत इस कारण नहीं थे कि आपको अंग्रेजों को अपना विरोधी या दुश्मन बनाना उचित प्रतीत नहीं होता था। महात्मा गांधी की विचारधारा, उनके [illegible] आन्दोलन को [illegible] और अहिंसा तथा चरखा चलाने आदि को आप अव्यावहारिक मानते थे। आपका यह मत था कि धर्म और

समाज को पूरी तरह अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। स्वर्गीय श्रीकृष्णदास जी जाजू आपके परम स्नेही थे। उनके साथ "माहेश्वरी" पत्र में इस बारे में कुछ विवाद भी चला और आपके तथा जाजू जी के कई लेख भी उसमें प्रकाशित हुए। महात्मा जी की मुस्लिमपरस्त नीति आपको बिल्कुल पसन्द नहीं थी। अली बन्धुओं को प्रमुखता देना, खिलाफत के लिए आन्दोलन करना व चन्दा जमा करना, श्री जिन्ना को कोरा चैक देना और बम्बई में उसके साथ सुलह करने के लिए गांधी जी का उसके घर जाना आदि आपको कभी पसन्द नहीं आया। पाकिस्तान के निर्माण और हिन्दुओं पर घोर संकट आने की स्पष्ट कल्पना आप कई वर्ष पहले कर चुके थे। अपने इन विचारों को आपने कभी छिपाया नहीं। समय-समय पर नेताओं के साथ चर्चा होने पर उनको प्रकट करने में आप संकोच नहीं करते थे और समाचार पत्रों में भी उनके सम्बन्ध में समय-समय पर लिखते रहते थे। भाई परमानन्द जी, श्री संतराम जी बी० ए० तथा लाला लाजपतराय जी आदि के साथ आपकी इस बारे में जो चर्चा हुई वह उल्लेखनीय है। श्री संतराम जी ने अपने पत्र "युगान्तर" में आपके उन सब विचारों को प्रकाशित किया था। उस पर एक कांग्रेसी महिला ने बड़ा रोष प्रकट किया था और आपने उसका विस्तृत उत्तर लिख कर "युगान्तर" में ही प्रकाशित करवाया था। महात्मा गांधी कराची पधारने पर आपके 'मोहता पैलेस' में १५ दिन ठहरे थे। तब आपने उनसे भी इस सम्बन्ध में चर्चा करके अपने विचार प्रकट किए थे।

अन्त में देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन होकर पाकिस्तान का निर्माण हो जाने के बाद मुसलमानों तथा पाकिस्तान के प्रति अपनाई गई नीति से भी आप सहमत नहीं थे। मुसलमानों को स्वदेश में रखने का आग्रह और उनको वापस बुलाकर यहाँ बसाने की नीति आपकी दृष्टि में दूरदर्शितापूर्ण नहीं थी। १९४५ में लार्ड वेवल द्वारा बुलाये गये शिमला सम्मेलन और उसके बाद भी हिन्दु-मुसलमानों में समझौता कराने के प्रयत्नों के सफल न होने को आप हिन्दुओं की दृष्टि से उचित मानते थे, क्योंकि उसमें भय यह था कि जो भी कोई समझौता होता उसमें हिन्दू घाटे में रहते और मुसलमानों का हाथ ऊपर रहता। जब कोई समझौता न हो सका और मुसलमानों की जिद् के कारण कांग्रेस को देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के लिए सहमत होना पड़ा और अंग्रेजों के प्रति विरोधभाव की नीति का परित्याग कर सहयोग की नीति से काम लिया गया तब आपको बड़ा सन्तोष हुआ। घटनाओं के क्रम को देखते हुए वैसा होना आपकी दृष्टि में अनिवार्य था। सहयोग की इस नीति का आपकी दृष्टि में यह शुभ परिणाम हुआ कि मुसलमानों की अनेक अनुचित माँगें स्वीकार नहीं की गई और स्वदेश का बहुत बड़ा भाग कांग्रेस के हाथों में रह गया। एक विशाल शक्तिशाली हिन्दू बहुल राज्य का आविर्भाव हो गया। देश के स्वतन्त्र होने के बाद पंडित जवाहरलाल जी नेहरू तथा अन्य नेताओं ने अत्यन्त दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए लार्ड माऊण्टबेटन को "स्वतन्त्र भारत" का पहला गवर्नर जनरल बनाए रखने का जो निश्चय किया वह आपको सर्वथा उचित प्रतीत हुआ।

उन्हीं दिनों में १९४५ में आपने "स्वतन्त्रता की तलाश" नाम से एक छोटी सी पुस्तिका लिखी थी। इसमें आपने गीता की दार्शनिक दृष्टि से स्वतन्त्रता का विवेचन करते हुए यह बताया था कि सच्ची स्वतन्त्रता का रूप क्या है? सबकी एकता अर्थात् एक में अनेक और अनेकों में एक के वेदान्त के सिद्धान्त को अपनाए बिना सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। जबतक कि व्यक्तिगत पृथक स्वार्थों की खींचातानी बनी रहेगी और धार्मिक अन्ध विश्वासों तथा सामाजिक रूढ़ियों की मानसिक गुलामी जारी रहेगी तब तक सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं किया जा सकता। अपने को स्वतन्त्र मानने वाले राष्ट्रों में भी इस सच्ची स्वतन्त्रता का अभ्युदय अभी नहीं हुआ है। और वे भी अधिकतर व्यक्तिगत स्वार्थों के संघर्ष में उलझे हुए हैं तथा मजहबी एवं सामाजिक गुलामी में फंसे हुए हैं। हमारे देशवासियों को पूर्ण स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त करने के लिए सब प्रकार की धार्मिक, सामाजिक एवं मानसिक गुलामी से छुटकारा पाना आवश्यक है। यदि ऐसा न किया जा सका, तो

सदियों बाद प्राप्त की गई राजनीतिक स्वतन्त्रता स्थायी नही बन सकेगी।

देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद लार्ड माउण्टबेटन को भी यहाँ से विदा करके जब श्री जवाहरलाल जी नेहरू अपने स्वतन्त्र विचारानुसार देश का राजनीतिक नेतृत्व और शासन संचालन करने लगे, तब उनके अद्भुत कार्य कौशल, अदम्य साहस, गम्भीर विचारशैली और दूरदर्शितापूर्ण निर्णयों से आप बहुत अधिक प्रभावित हुए। आप उनके अन्यतम प्रशंसक एवं समर्थक बन गए। आपने उस समय लिखा था कि "अनेकों में एक और एक में अनेक के वेदान्त के सिद्धान्त को मानते हुए सब मे एकता, समता और बन्धुभाव की भावना से राज्य शासन के संचालन करने तथा "सर्वभूत हिते रताः" के गीता के आदर्श का व्यावहारिक रूप मे पालन करके सबके यथार्थ हित के प्रयत्न में निरन्तर लगे रहने की उनकी अलौकिक नीतिमत्ता को देखकर मैं उनको एक विशेष विभूति सम्पन्न महापुरुष मानने लग गया और अनेक बातों मे भगवान कृष्ण से उनका मिलान करने लगा। उनकी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल मे सम्मिलित रहने की नीति मुझे बहुत पसंद आई। मेरी दृष्टि मे उन्होंने यह निर्णय भावुकता से ऊपर उठकर बुद्धि, विवेक और दूरदर्शिता मे किया। मेरी मान्यता यह है कि नेहरू जी के अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व के प्रभाव से ही इस देश की साम्प्रदायिक और सामाजिक बन्धनों से जकड़ी हुई स्वराज्य के अयोग्य जनता के लिए जनसत्तात्मक राज्य की व्यवस्था हो सकी है और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं नेतृत्व से ही सम्भवतः समय पाकर भारत की जनता इस स्वराज्य को स्थायी बनाने के योग्य हो सकेगी। साम्प्रदायिक और जाति-पाँति के भेद और आर्थिक विषमता मिटाने के नेहरू जी के विचार व समय-समय पर दिए जानेवाले वक्तव्य मुझे बहुत सुहाते रहे हैं। वे मेरे मत के सर्वथा अनुकूल है।"

उन दिनो मे "देश के विभाजन का सदुपयोग" शीर्षक से आपके कुछ लेख दिल्ली के दैनिक "अमर भारत" में प्रकाशित हुए थे। "समय की माग" नाम से एक पुस्तक भी आपने उन दिनों मे प्रकाशित की थी। उसमें आपने धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से क्रान्ति के चतुर्मुखी स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया था और बताया था कि इस समय उसी क्रान्ति की आवश्यकता है। उस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर गीता को हाथ मे लिए हुए भगवान श्रीकृष्ण और श्री जवाहरलाल जी नेहरू का चित्र देकर चतुर्मुखी क्रान्ति के विषय मे गीता के वे चार श्लोक उद्धृत किए गए थे जिनका उल्लेख इस प्रकरण के प्रारम्भ मे किया गया है। पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए आप चतुर्मुखी क्रान्ति को परम आवश्यक मानते हैं। इसके सम्बन्ध मे आपने अनेक लेख व पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की। आपने "प्रगति संघ" की स्थापना इस चतुर्मुखी क्रान्ति के आदर्श को सम्मुख रख कर की थी। ऐसी चतुर्मुखी क्रांतिकारी संस्था के लिए सर्वसाधारण का यथेष्ट सहयोग मिल सकना अत्यन्त दुस्साध्य था। देश की सर्वोपरि राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने जब से समाज गठन के लिए समाजवादी व्यवस्था के आदर्श को स्वीकार किया तब से नेहरू जी जात-पांत की सामाजिक ऊँच-नीच की संकुचित भावना तथा धार्मिक अंध विश्वासों को दूर करने पर कितना जोर दे रहे हैं, परन्तु गत आम चुनावों से यह पता चल गया है कि कांग्रेस जन भी उनके इस आदर्श से बहुत दूर है और सामान्य देशवासियों की तरह वे भी जन्मगत जात-पांत की सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्णता में फंसे हुए हैं। प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज और आर्यसमाज की स्थापना [illegible], [illegible] तथा ऐसी ही अन्य बुराइयों को जड़मूल से नष्ट करने के लिए की गई थी, किन्तु उनको भी [illegible] इस कार्य में पूरी सफलता नहीं मिली। युग युग से और जन्म जन्मान्तर से चिपटी हुई सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों को जड़ों से दूर करने के लिए सिवाय इस चतुर्मुखी क्रान्ति के दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस [illegible] का प्रतिपादन आप पिछले पचास वर्षों से निरन्तर करते आ रहे हैं।

समस्त राष्ट्रवासियों मे एकता, समता तथा बन्धुभाव पैदा करने के लिए [illegible] की प्रस्थापना मे किया गया है, उनके लिए आपकी दृष्टि मे [illegible], शिक्षा और [illegible] का [illegible]

एवं अपवाद के सब के लिए सुलभ करना अनिवार्य है। साधनहीन गरीब जनता अर्थाभाव के कारण न तो समुचित न्याय प्राप्त कर सकती है, न अपने बालकों को शिक्षित कर सकती है और न अच्छी चिकित्सा का लाभ उठा सकती है। समुचित न्याय प्राप्ति न होने से भ्रष्टाचार एवं अन्याय को बढ़ावा मिलता है, शिक्षा के अभाव में अज्ञान का अन्धकार चारों ओर बना रहता है और चिकित्सा के अभाव में बीमारियों का प्रकोप चारों ओर फैल कर लोग अकाल में काल का ग्रास बनते रहते हैं। जिस समाज व देश में अन्याय, अज्ञान और अकाल मृत्यु का बोल-बाला हो वह प्रगति या उन्नति कैसे कर सकता है ?

महाराजा शार्दूलसिंहजी ने राज्य में सिविल सप्लाई की बिगड़ती हुई स्थिति पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन किया था। उसमें आप को भी निमन्त्रित किया गया था। आपने राज्य की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए महाराजा को लक्ष्य करते हुए कहा था कि "आप के राज्य में अन्न के रहते हुए भी प्रजा भूखों मरेगी और कपड़ा होते हुए भी लोग नंगे फिरेंगे। लोगों को यह सन्देह है कि आप के मिनिस्टर लोग ही इस तरह की अव्यवस्था उत्पन्न करने के लिए जिम्मेवार हैं।" सम्मेलन में सब मन्त्री भी उपस्थित थे।

श्री मानवेन्द्रनाथ राय जो "एम० एन० रॉय" के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं अपने देश के महान् क्रान्तिकारी विचारक थे। वे कट्टर साम्यवादी थे। अनेक वर्ष विदेशों में बिताने के बाद वे छद्म वेश में स्वदेश लौटे थे और अंग्रेज सरकार की गुप्तचर पुलिस छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। उनके आर्थिक व राजनीतिक विचार अत्यन्त सुलझे हुए, परिपक्व और पूर्णतः क्रान्तिकारी थे। उन्होंने देश के आर्थिक विकास और राजनीतिक गठन के लिए जो योजनाएँ प्रस्तुत की थीं वे सर्वथा मौलिक थीं और मौलिक होने के ही कारण उनमें वर्तमान ढाँचे को आमूल-चूल बदल देने की क्षमता थी। कभी हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू भी उनकी अद्भुत प्रतिभा से बहुत प्रभावित थे। "मेरी कहानी" में नेहरू जी ने मास्को में उनके साथ हुई पहली मुलाकात का जो उल्लेख किया है उससे उनके क्रान्तिकारी स्वरूप तथा प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। मोहता जी उनसे देहरादून में मिले थे और उनके साथ आप का घनिष्ठ सम्बन्ध कायम होगया था। श्रीमती एलेन राय ने अपने संस्मरण में आप दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश डाला है।

इस विस्तृत विवेचन से आपकी राजनीतिक विचार-धारा के साथ-साथ राजनीतिक जीवन का भी कुछ स्पष्ट परिचय मिल जाता है। आपने अपने सक्रिय जीवन में राजनीति को अपना मुख्य विषय कभी नहीं बनाया। परन्तु एक विचारक के नाते राजनीतिक विषयों और देश की राजनीतिक स्थिति पर चिन्तन, मनन, एवं विचार करने से आप दूर नहीं रहे। समय-समय पर अपने विचारों को आपने अत्यन्त निर्भीकता के साथ प्रकट करने में संकोच नहीं किया। आपका यह दृढ़ मत रहा है कि सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति के बिना राजनीतिक क्रान्ति का सफल होना सम्भव नहीं है और इन क्रान्तियों से जनता के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हुए बिना न तो प्राप्त हुई स्वतन्त्रता सुरक्षित रह सकती है और न आम जनता उससे कुछ स्थायी लाभ उठा सकती है।

आर्थिक क्रान्ति

एक अत्यन्त श्रीमन्त, सम्पन्न व समृद्ध घर में और अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय से लखपति की हैसियत प्राप्त करने वाले पिता की गोद में जन्म लेने के बाद करोड़पति बन जाने पर भी आर्थिक क्रान्ति में आपका जो विश्वास, निष्ठा एवं आस्था है, वह अत्यन्त विस्मयजनक है। उसी के कारण कुछ क्षेत्रों में आप के सम्बन्ध में आप के साम्यवादी होने की धारणा पैदा कर दी गई। आपने भौतिक दृष्टि से साम्यवादी विचार-धारा को नहीं अपनाया, परन्तु गीता के आध्यात्मिक समत्व योग के आधार पर आर्थिक क्रान्ति करके सब को

समान अधिकार प्राप्त करवाने में आप की दृढ़ आस्था है। स्वर्गीय लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल आप के आर्थिक क्रान्ति के कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह कह दिया करते थे कि आप की बात क्या की जाय, आप तो साम्यवादी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि साम्यवादी न होते हुए भी आपकी विचार-धारा साम्यवादियों से कई अंशों में मिलती-जुलती है। "ज्ञान विज्ञान मण्डल" और "प्रगति संघ" दोनों संस्थाओं का काम इसी कारण अग्रसर न हो सका कि उनके सम्बन्ध में प्रकाशित किए गए साहित्य में आपने अपने जिन विचारों का उल्लेख किया था उनमें आर्थिक क्रान्ति का रूप साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था से भी कुछ आगे बढ़ा हुआ था। क्योंकि गीता के समत्व योग का आधार सब की मौलिक एकता का सिद्धान्त है और भौतिक साम्यवाद अनेकता के आधार पर अवलम्बित है। देश के सम्पत्तिवानों को आप द्वारा दी गई चेतावनी में भी साम्यवादी विचारधारा की झलक स्पष्ट रूप से विद्यमान थी। यही कारण है कि आपकी आर्थिक विचारधारा देश के वर्तमान सम्पत्तिवानों, पूंजीपतियों अथवा उद्योगपतियों और राजनीतिज्ञों को भी पसन्द नहीं है। लेकिन धीरे-धीरे देश आप के ही विचारों की ओर अग्रसर हो रहा है। जिस प्रकार सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में आपके विचारों के अनुकूल सर्वमुखी सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति का प्रतिपादन किया जाने लगा है और हमारे महान नेता श्री जवाहरलाल नेहरू भी प्रायः अपने प्रत्येक भाषण में जाति-पाँति और साम्प्रदायिकता के उन्मूलन पर जोर देने लगे हैं, ठीक वैसे ही वह दिन भी दूर नहीं है जब समाजवादी अर्थव्यवस्था को मूर्तरूप देने के लिए आप द्वारा प्रतिपादित धार्मिक विचारों एवं आर्थिक क्रान्ति का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जा सकेगा।

प्रगति संघ के कार्य-क्रम में आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए आप ने उसके लिए कुछ सक्रिय उपाय भी सुझाए। आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन आप ने निम्न शब्दों में किया है :—

(१) एकत्रित की हुई धन-सम्पत्ति पर किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार नहीं है किन्तु वह सार्वजनिक सम्पत्ति है, क्योंकि वह किसी के अकेले के उद्योग और श्रम से उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु सब के सहयोग से उत्पन्न हुई है; इसलिए उस एकत्र सम्पत्ति से सब को लाभ पहुँचाना चाहिए और सबकी आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। चाहे वह सम्पत्ति उद्योगपतियों, पूंजीपतियों व व्यापारियों के पास हो; या राजों-महाराजों, जागीरदारों, जमीनदारों, महंतों, मठाधीशों, गुरु, पुरोहितों, आचार्यों, पण्डे-पुजारियों या वकील, डाक्टरों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, सरकारी अफसरों, ठेकेदारों, एक्टरों आदि के पास हो। वह एक सार्वजनिक धरोहर के अन्दर आ जानी चाहिए; जैसा कि "समय की मांग" और "देश का आर्थिक संकट और उसको मिटाने का उपाय" नामक प्रकाशनों में बताया गया है। इस ट्रस्ट से पूंजी सार्वजनिक कामों में लगाई जानी चाहिए व इससे सार्वजनिक उपभोग के पदार्थों के उत्पादन का कार्य करना चाहिए।

(२) सारे उद्योग-धन्धे और रोजगार-व्यापार जनता की आवश्यकताएं पूरी करने के उद्देश्य से होने चाहिए, केवल व्यक्तिगत लाभ के उद्देश्य से नहीं होने चाहिए।

(३) शेयरों के सट्टे के स्टाक एक्सचेंज और माल के सट्टे के एक्सचेंज सब बन्द होने चाहिए, क्योंकि इनसे जनता की कोई आवश्यकता पूरी नहीं होती किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए जनता का शोषण किया जाता है।

(४) वर्तमान समय में घुड़दौड़, लाटरी और बड़े-बड़े शहरों में क्लब, व इस प्रकार अन्य के खेल चलते हैं। ये सब सरकारी तौर पर लाइसेंस द्वारा प्राप्त अधिकार की ओट में होते हैं और इन पर बड़ी भारी रकमों को दांव पर लगाया जाता है। यह जुआ हुआ है और इसमें करोड़ों रुपयों की बरबादी होती है। सरकार पर दबाव देकर इसको कानून द्वारा बन्द करवाना चाहिए।

(५) रूई के फीचरों के अंक—फरकों व वर्षा आदि के सट्टे गैर कानूनी होते हुए भी शासन की ढिलाई के कारण अनेक स्थानों पर चल रहे हैं और इनसे असंख्य गरीब नागरिक, मजदूर, कारीगर अपने गाढ़े पसीने की कमाई बरबाद करके घोर दुर्दशा को प्राप्त हो रहे हैं। सरकार व पुलिस के द्वारा इन्हें बन्द करवाना चाहिए।

(६) जुए के अड्डे बहुत बड़े बुराई के घर होते हैं। हमारे देश में यह दुर्व्यसन हजारों वर्षों से प्रचलित है। युधिष्ठर और नल जैसे धर्मात्मा राजा भी इस दुर्गुण के कारण बरबाद हो गये। सब देशों की सभ्य सरकारों ने जुए का खेल गैरकानूनी करार दिया हुआ है। राज्य और पुलिस के द्वारा इन्हें बन्द करवाना चाहिए।

(७) सबको यथायोग्य उत्पादक श्रम करते रहना चाहिए। निकम्मा रहकर जीवन व्यतीत करने का किसी को अधिकार नहीं है। ("समय की मांग" में "आर्थिक क्रान्ति" का पाठ इसके खुलासा के लिए देखना चाहिए)।

(८) सबको अपने काम की योग्यता के अनुसार वेतन मिलना चाहिए और सबको पूरा परिश्रम करके मनोयोग, फुर्ती और तत्परता से काम करना चाहिए। थोड़ा काम करके अधिक लाभ या वेतन लेने का अधिकार किसी को नहीं है।

(९) समय और श्रम, धन उत्पादन के मुख्य साधन हैं। इसलिए समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करना चाहिए। धार्मिक कर्मकाण्डों, ईश्वरोपासना, भजन, ध्यान, जप, तप, पूजा, पाठ, सामाजिक रीति-रिवाजों, ऐश-आराम और नशे आदि कुव्यसनों में तथा आलस्य में पड़े रहकर या लड़ाई-झगड़ों में समय और शक्ति का अपव्यय किसी को न करना चाहिए।

(१०) धार्मिक कर्मकाण्डों और उपासना तथा दान-पुण्य आदि में और सामाजिक रीति-रिवाजों तथा बिरादरी या ब्राह्मण-भोजन आदि में पदार्थों और धन की बरबादी सब बन्द कर दी जानी चाहिए; क्योंकि इनसे जनता की आवश्यकताओं की कुछ भी पूर्ति नहीं होती किन्तु केवल व्यक्तिगत कल्याण व मान बड़ाई के लिए ये काम किये जाते हैं।

(११) वर्तमान में हमारे देश में एक ओर तो घोर गरीबी, दरिद्रता और बेकारी बढ़ रही है। विदेशी-व्यापार का संतुलन बिगड़ रहा है। यहाँ से जितने मूल्य की वस्तुएँ विदेशों को भेजी जाती हैं, उससे अधिक मूल्य की वस्तुएँ विदेशों से यहाँ मँगवाई जा रही हैं और देश इनसे दिवालियापन की ओर अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार बाहर से आने वाली वस्तुओं में, करोड़ों रुपयों के मूल्य की विलासिता की वस्तुएँ—लिपस्टिक, फैशनेबल पाउडर, क्रीम (चहरे पर लगाने को मलहम), सिगार, सिगरेटें, सुगन्धित तेल, सैंट, दंत मंजन, विलायती शराब, विदेशी रेशमी, ऊनी व अन्य वस्त्र, बहुमूल्य फाऊन्टनपैन, सजावट का सामान (फर्नीचर) और २०-२५-४० हजार तक के भारी मूल्य की मोटरगाड़ियाँ और फिल्मी सामान शामिल हैं। अंग्रेजों से राजनैतिक अधिकार लेने से पूर्व जो स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम व प्रचार की भावना हम लोगों में थी, वह अधिकार प्राप्ति के बाद नष्ट हो कर उल्टा विदेशी व विलासिता की वस्तुओं का प्रचार और खपत बहुत जोरों से बढ़ रही है। इससे देश का आर्थिक सर्वनाश हो जावेगा इसलिए इन्हें फौरन बन्द करने-कराने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(१२) कलकत्ता, बम्बई व दिल्ली जैसे शहरों में, बड़े-बड़े सरकारी अफसरों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, वकील-बैरिस्टरों, बैंकर्स व व्यापारियों के पास, उचित व अनुचित सब प्रकार की आय के अत्यधिक साधनों से होने वाली सम्पन्नता के कारण, उनके द्वारा होटलों, रेस्टोरां, क्लबों और मसूरी, नैनीताल आदि पहाड़ी विलास-स्थलों

(हिल स्टेशनों) पर अत्यन्त खर्चीले, विनाशकारी, विलासितापूर्ण काकटेल पार्टियां, डान्स, बाल आदि आडम्बरों के आयोजन होते रहते हैं, जिनके देखा-देखी अन्य देशवासियों पर भी उनके अनुकरण व संगति का प्रभाव पड़ता है। जिससे जनता के गाढ़े पसीने की कमाई का घोर अपव्यय होकर अनैतिकता और दुराचारों में वृद्धि होती है। इसके विरुद्ध जोरों से प्रचार करके इन्हें बन्द करवाना चाहिए।

(१३) आर्थिक क्रान्ति के सम्बन्ध में रूस और चीन की अर्थ व्यवस्था का अध्ययन करना चाहिए और उनकी जो व्यवस्थायें इस देश के अनुकूल हों, उन्हें अपनाना चाहिए।

इन उपायों के सम्बन्ध में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होना चाहिए कि आपके हृदय में देश की गरीबी के लिए जो दर्द, पीड़ा अथवा तड़पन है, उनका स्पष्ट आभास इनसे मिल जाता है।

यद्यपि आप चर्खा नहीं चलाते और हाथ से कते सूत की ही खादी नहीं पहनते, परन्तु आपको गृह-उद्योग से बहुत प्रेम है और उसके लिए सहायता देते रहते हैं। जहां तक बनता है देश की बनी हुई चीजें बरतने का ध्यान रखते हैं। मिल के सूत के हाथ करघे से बने हुए कपड़े आपको बहुत पसन्द हैं और इस उद्योग को प्रोत्साहन देते रहते हैं। स्वर्गीय महाराजा गंगासिंह जी के शासन काल में राज्य ने जब खादी-भण्डार बन्द कर दिया था तब आपने उसके स्थान में बीकानेर वस्त्र-भण्डार खोल कर हाथ करघे के उद्योग को प्रश्रय दिया था। यद्यपि उसमें हानि उठानी पड़ी थी। गाँवों के गरीब बुनकरों को मिल का सूत देकर कपड़ा बनवाने का उद्योग चलाते ही रहते है। और भी कई प्रकार के गृह-उद्योगों को आप सहायता देते रहते हैं। गाड़िये लोहारों और सरकंडे के खारी, छाजले बनाने वाले नायकों तथा चमड़े का काम करने वाले चमारों और ऊन के कम्बल बनाने वाले मेघवालों को विशेष रूप से सहायता देते हैं। चित्रकला में भी आपकी रुचि है। परन्तु आप राजा रवि वर्मा के चित्रों जैसे भावपूर्ण, सुडौल और सुरुचिपूर्ण चित्र पसन्द करते हैं, आजकल के बेडौल चित्र आपको पसन्द नहीं हैं।

देश के सर्वांगीण जीवन का जिस सूक्ष्मता से अध्ययन करके आपने धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में फैली हुई फिजूलखर्ची तथा विलासिता की प्रवृत्ति पर रोक लगाने का जो अनुरोध किया है उसकी आवश्यकता को हमारे राजनीतिक नेता भी अब स्वीकार करने लगे हैं। परन्तु उनकी दृष्टि जनता के धार्मिक जीवन में आमूल चूल परिवर्तन करने की अपेक्षा केवल पंचवर्षीय योजनाओं के लिए धन एवं साधन संग्रह करने तक ही सीमित है। आम जनता के जीवन को सादगीमय बनाये बिना आर्थिक क्रान्ति का क्रम सफल नहीं हो सकता। इसके लिए आपने जो साधन बताये हैं उनकी यों ही उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि हर कोई आपके विचारों से शत-प्रतिशत सहमत हो अथवा उनको स्वीकार करे; परन्तु उनमें निहित चतुर्मुखी क्रान्ति की आवश्यकता से सहज में असहमत नहीं हुआ जा सकता। प्रस्तुत प्रकरण में आपके विचारों के अनुसार चतुर्मुखी क्रान्ति के स्वरूप, उसकी आवश्यकता और उनके साधनों के प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया गया है। इससे सहृदय पाठकों को आपकी विचारधारा के जानने का लाभ मिल सकेगा और वे भी चतुर्मुखी क्रान्ति की साधना के पथ पर अग्रसर होकर देश की इस समय की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति करने में कुछ सहायक हो सकेंगे।

हमारे महान् नेताओं ने भी इस चतुर्मुखी क्रान्ति के महत्व को स्वीकार कर लिया है। जनता के किसी भी दृष्टि से दरिद्रावस्था में बने रहने पर राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य में सफल नहीं हुआ जा सकता और समाजवादी आदर्शों के अनुसार सामाजिक व्यवस्था कायम नहीं की जा सकती। शोषण के स्थान योग का भाव ही समाज में समानता का प्रस्थापित करता है। यह समता जीवन में सम्पूर्ण रूप से स्थापित की जानी चाहिए और

वह चतुर्मुखी क्रान्ति के बिना नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से आपके विचार, सुझाव तथा आप द्वारा प्रतिपादित कार्यक्रम निश्चय ही पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं और उनसे गीता के "सर्वभूत हिते रताः" के महान् आदर्श को सहज में पूरा किया जा सकता है।*

ठेकेदारी

मोहता जी द्वारा रचित यह गीत इस प्रसंग के सर्वथा अनुकूल है।

*सुख पूरित भारत को गारत करवा दिया ठेकेदारों ने। सब लोगों को अपना माथा मुंडवा दिया ठेकेदारों ने ।।टेर

अन्तरा

कई ठेकेदार स्वयम् बनके, धन धर्म जाति और शासन के। जनता के सब अधिकारों को छिनवा दिया ठेकेदारों ने ।।१।।
रच धर्म नेम के फाँसों को, भक्ति के पन्थ-विरचकों को। जीवन को बकरा गुपानी में बंधवा दिया ठेकेदारों ने ।।२।।
सब पुरुषारथ का नाश किया, बुद्धि बल का भी ह्रास किया। और आतम शक्ति पर परदा डलवा दिया ठेकेदारों ने ।।३।।
स्वारथ की आग लगी भारी, जल गई प्रेम की फुलवारी। एकता सम्पत का दिव्य मन्दिर गिरवा दिया ठेकेदारों ने ।।४।।
भूतों प्रेतों और पीरों को, पाखण्डी सन्त फकीरों को। गुरु पंच उठाईगीरों को पुजवा दिया ठेकेदारों ने ।।५।।
मौसर के अत्याचारों से, भादरों की जीमनवारों से। कुरीती के फंदे जिनों को मरवा दिया ठेकेदारों ने ।।६।।
कन्या बिकती कहीं वर बिकते, नारि बिकती कहिं नर बिकते। शोषण कुरीति कुचालों का चलवा दिया ठेकेदारों ने ।।७।।
ब्याह देने अबोध बालों को, भारत के लाखों लालों को। कुछ रूढ़ियों का अन्ध कूप खुदवा दिया ठेकेदारों ने ।।८।।
छोटी बच्ची को हत्यारे, बूढ़े बनते के वर सारे। दादे पोते का गठजोड़ा जुड़वा दिया ठेकेदारों ने ।।९।।
कई विधवाएँ भारी भरती, सधवाएँ दुखी ये और पति। नारी जीवन को नरक में [illegible] दिया ठेकेदारों ने ।।१०।।
कहिं भ्रूण हत्या कहिं शिशु हत्या, नारी हत्या कहिं पशु हत्या। इन अत्याचार को अत्याचार, बनवा दिया ठेकेदारों ने ।।११।।
"मोहता" सुमति दे वीरों को, तोड़ो इन लिखी जंजीरों को। जिनसे इस भारत [illegible] को [illegible] दिया ठेकेदारों ने ।।१२।।

२

आपका आदेश अपने अन्तकाल के सम्बन्ध में

"मेरे देहान्त के समय जो कुटुम्बी लोग या मेरी सेवा करने वाले मेरे पास हों उनको मेरे हृदय के निश्चित आदेश देता हूँ कि जब मेरे शरीर का अन्त निकट प्रतीत हो, कोई असाध्य रोग होकर बेहोशी, सन्निपात आदि की दशा हो जाय, जबान रुक जाय, बोलना बन्द हो जाय, मैं अपने मन के भाव प्रकट न कर सकूँ, उस दशा में कोई औषध दवा न दी जाय न कोई इन्जेक्शन लगाया जाय। खाने पीने के लिए भी कुछ देने की चेष्टा न की जाय, क्योंकि ऐसा करने से अन्त समय में अशांति होती है। शान्तिपूर्वक प्राण बिस्तरे ही में निकलने दिया जाय। यदि हो सके तो प्राण जल्दी निकलने का कोई उपाय किया जाय, इसमें किसी को कोई दोष नहीं लगेगा। जब प्राण साफ निकल जाय तब उसके आध घण्टे बाद लाश को खाट से उठा कर जमीन पर रखदी जाय और उसे शुद्ध जल से धोकर उस पर सफेद सूती कपड़ा ढक दिया जाय। फिर सीढ़ी पर रखकर किसी नजदीक के श्मशान में ले जाकर पीपल अथवा और किसी प्रकार की लकड़ी में दाह कर दिया जाय। जब चिता ठण्डी हो जाय तब अस्थियों सहित भस्मी को खड्डा खोद कर उसमें पूर दी जाय अथवा कोई नदी या समुद्र पास ही हो तो उसमें बहा दी जाय। बस इसके सिवाय कोई क्रिया कर्म, पिण्डदान आदि कुछ भी न कराया जाय। अन्त समय में गीता सुनाने या सन्यास दिलाने आदि का जो ढोंग करने की रिवाज है, गंगाजल, रेणुका, तुलसी की लकड़ी, बागा आदि लाश पर रखे जाते हैं और दान-पुण्य किये जाते हैं ये कुछ भी न किए जावें। जो लोग वहाँ उपस्थित हों वे ओंकार का उच्चारण करें तो अच्छा है। गीता तो मेरे हृदय में रमी हुई है और सन्यास वास्तव में मन से होता है सो मेरे मन में पूर्ण वैराग्य है। स्वांग का सन्यास सच्चा सन्यास नहीं होता। मेरे पीछे कोई पारलौकिक कृत्य, प्रेतकर्म, ब्राह्मण-भोजन, धर्मपुण्य आदि कुछ भी न किये जावें क्योंकि मेरे मन में किसी प्रकार की ममता, कामना और वासना शेष नहीं रही है; इसलिए देहान्त के बाद मैं पूर्ण शान्ति के परम-निर्वाण पद को प्राप्त होऊँगा यह मुझे दृढ़ निश्चय है। अतः इस आशंका से कि मेरी आगे दुर्गति होगी इसलिए मेरे देहान्त के बाद उक्त आडम्बर करना, यह मेरे साथ द्वेष और शत्रुता करना होगा। देहान्त के बाद यहाँ के लोगों के किए हुए किसी भी काम से मेरा कोई सम्पर्क नहीं रहेगा, न मुझे इस लोक की किसी प्रकार की सहायता की कोई आवश्यकता रहेगी, इसलिए मेरे विषय में किसी तरह का शोक या चिन्ता करके मेरे प्रति दुर्भावना न रखें।

"मृत्यु के बाद दस दिनों तक साथरा या बैठक रखने की जो रिवाज है वह बिल्कुल न रखी जावे किन्तु शरीर का दाह करने के बाद सब कोई अपने-अपने कामों में लग जावें। जो लोग समवेदना दिखाने के लिए आवें उनको शिष्टाचार-युक्त धन्यवाद देकर मेरे भावों को समझा देना चाहिए। मेरे देहान्त पर किसी प्रकार का शोक नहीं रखा जाय क्योंकि मेरा देहान्त कोई शोक या हर्ष का कारण नहीं है। मैंने अपने इस सारे जीवन में जो कुछ करने योग्य था सब कर लिया, किसी बात की मन में नहीं रखी। जन्मना और मरना तो स्वाभाविक है, इस विषय में शोक और चिन्ता किस बात की।

"मेरे पीछे कोई स्मारक स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। मेरे कृत्य और मेरी बनाई हुई पुस्तकें मेरे प्रचुर स्मारक हैं। यदि कोई मेरा स्मारक रखना चाहे तो मेरे बताए हुए मार्ग पर चले और मेरी पुस्तकों का अध्ययन करके उनके अनुसार आचरण करे और उनका प्रचार करे।

"मेरे उपरोक्त आदेश दूसरे लोगों को भी यथाशक्य बता दिये जायं। आम तौर से लोग अपने मरे हुए सम्बन्धियों की दुर्गति होने, यमराज के पास जाने, प्रेतगति प्राप्त करने आदि की दुर्भावना करके उनके लिए पितृकर्म और पारलौकिक कृत्य अनेक तरह के करते हैं। ये सब बातें मृत सम्बन्धियों के प्रति द्वेष और अपूजा करना है। मृत सम्बन्धियों के लिए यहाँ से किसी प्रकार की सहायता पहुँचाने का विश्वास बिल्कुल मिथ्या है। प्रत्येक व्यक्ति अपने किए हुए कर्मों का फल अनिवार्य रूप से भोगता है। इसको कोई भी किसी भी पितृकर्म या दान-पुण्य आदि करके उसका फल भेजकर अन्यथा नहीं कर सकता। मरे हुए सम्बन्धियों को सहायता पहुँचाने के लिए कुछ भी करना बिल्कुल मूर्खता है और यह विश्वास तामसी अन्ध विश्वास है। गीता में कहा है कि "प्रेतान्भूत गणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः" (अ० १७ श्लोक ४) अर्थात् मरे हुए लोगों और भौतिक पदार्थों का यजन पूजन तमोगुणी लोग करते हैं। ये आदेश मैंने शरीर की स्वस्थता और मन की पूर्ण शान्त दशा में लिखे हैं।"

—रामगोपाल मोहता

ईश्वर के नाम पर

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सब काम-काज अर्थात् सांसारिक व्यवहार छोड़ कर तथा ईश्वर को जगत से भिन्न कोई विशिष्ट व्यक्ति या शक्ति मानकर दीनता और दासता से दिन रात उसके भजन स्मरण में लगा रहे और परावलम्बी बन जाय।

भारतवासी ईश्वर को सबसे अलग आसमान में अथवा दूसरे लोकों में बैठा हुआ एक व्यक्ति मानकर उसे दूर से बुलाते हैं और उससे अपनी नाना प्रकार की व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि करना चाहते हैं तथा उसे किसी विशेष स्थान में बन्द करके अपने ताले के भीतर रखना चाहते हैं और जगत को उससे भिन्न मानकर एक दूसरे से घृणा, तिरस्कार और द्वेष करना धर्म समझते हैं।

भगवान् कहते हैं कि "मैं सबका आत्मा सबके अन्दर हो हूँ", परन्तु भारतवासी उसके विरुद्ध उसे यहाँ बर्फ के लदे हुए पहाड़ों की चोटियों पर, अथवा पर्वतों की गुफाओं में अथवा जंगलों एवं नदी, नालों, समुद्रों में अपने ग्रामों एवं नगरों की तंग गलियों में तथा मन्दिरों-मठों में ढूंढते फिरते हैं।

सुधारक—बहिष्कार से विचलित न हों

यदि हमारा कोई बहिष्कार करे तो हमको जरा भी विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि संसार में जितने सुधारक हुए हैं, जितने लोक सेवा के सच्चे कार्यकर्ता हुए हैं, उन लोगों ने उन सबका एक बार बहिष्कार किया, परन्तु पीछे जाकर उसी जनता ने उनके सुधारों, उनकी सेवाओं को अपने मस्तक पर उठाकर उनका सम्मान किया।

बहिष्कार के डर से, जन साधारण की सम्मति बिना, सुधार के कामों को दबाए रखना मानसिक निर्बलता है। इस कमजोरी को दूर करना चाहिए।

स्वयं आगे बढ़ कर पथ-प्रदर्शक बनो, फिर लोग पीछे-पीछे स्वयं चले आवेंगे।

समाज की उन्नति यदि किसी ने की है तो बहुजन समाज के आगे चलने वालों ने की है, उनके पीछे चलने वालों ने कभी नहीं की।

(मोहता जी के विचार)

३

साहित्य सृजन की क्रान्तिकारी दृष्टि

[लेखक : श्री प्रकाश चन्द्र जी शर्मा, आचार्य भारतीय विद्या मन्दिर, बीकानेर]

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियं हितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ —गीता १७-१५

मोहता जी की साहित्य-सर्जना प्रधानतः प्रज्ञा प्रेरित है परंतु अनुभूति से शून्य नहीं है। उनमें वाङ्मय का तप है। उनके वाक्य 'सत्यं' से भास्वर हैं, 'हितं' से अनुप्राणित हैं उनमें "स्वाध्यायाभ्यसनं" है, पर, वे प्रायः 'प्रियं' [सुन्दरम्] नहीं और यत्र-तत्र 'अनुद्वेगकरं' भी नहीं। फिर भी, उनमें प्रभाव डालने की शक्ति है। वे निर्मल और निभ्रान्त हैं, स्वच्छ और स्फूर्तिदायक हैं तथा स्पष्ट और सरल हैं। मोहता जी के लिये साहित्य स्वयं साध्य नहीं है—वह वाहन व साधन मात्र है। लेखक ने शब्दों को मिश्री की तरह काम में लिया है—कहीं व्यर्थता नहीं आने दी। अर्थशास्त्र की शब्दावली में प्रत्येक शब्द का 'अधिकतम उपयोग' किया गया है। वाणी का यह संयम मोहता जी की कृतियों का प्राण है। सन्तों की भाषा जैसी सरल, सीधी और अनलंकृत है—उसी का अनुसरण मोहता जी की रचनाओं में है। लेखक ने लिखने के लिये कुछ भी नहीं लिखा— लिखा इसलिये है कि लेखक कुछ कहना चाहता है, कुछ देना चाहता है—इसी अन्तःप्रेरणा से मोहता जी ने लेखनी उठाई है।

प्रज्ञावाद के प्रहरी

मोहता जी व्यवसायी हैं, दानी हैं, समाज सुधारक हैं, स्वतन्त्र चिन्तक हैं, सात्विक कार्यकर्ता हैं, साधक हैं, मूक दलित वर्ग के मर्म भेदी स्वर हैं, गीता के भाष्यकार हैं, रूढ़ियों की लौह शृंखलाओं को तोड़ने वाले विद्रोही हैं और सब से बढ़कर 'प्रज्ञावाद' के सजग प्रहरी हैं। सेठ जी का व्यक्तित्व गंगा के समान सहस्र धाराओं में फूटकर बहा है; जिसका उद्गम एक है, जिसकी दिशा एक है, जिसका गन्तव्य एक है।

मोहता जी के अनेक रूपों में, उनकी अनेक भेदों की तह में एक अभेद रूप है—वह है उनका प्रज्ञावाद, उनकी बौद्धिक जागरूकता। बुद्धियोग उनके व्यक्तित्व व कृतित्व का अभिन्न अंग है। इसी प्रज्ञा ने उनको विद्रोही बनाया—उन्होंने दृढ़ता, तेजस्विता, ओजस्विता और निर्भयता के साथ धार्मिक अन्ध विश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया—डटकर विरोध किया—सतत विरोध किया।

एक ओर पुरातन रूढ़ियों की भर्त्सना। दूसरी ओर सुधारक दल का अभिनन्दन—पर, सेठ जी दोनों के बीच अडिग-निर्भीक दीपशिखा की तरह निष्कम्प और अचंचल! यही समन्वय की साधना है, यह साधना आध्यात्मिक उतनी नहीं है, जितनी लौकिक। जिस वणिक् वर्ग में सेठ जी ने जन्म धारण किया—उस वर्ग की संस्कृति बाजार की संस्कृति है—जिसका मन्त्र है—सबके बीच में से बचते हुए अपना मार्ग निकालना तथा अपने को हानि से [illegible] न होने देना। बाजार की संस्कृति—'लाभ निरपेक्ष' संस्कृति समझी जाती है—यही वणिक् धर्म है और यही उनकी शब्दावली में 'व्यावहारिक दर्शन' है। यद्यपि मोहता जी का [illegible] व्यवहार को वणिक ही मानता है—

"हम लोग भी तो वणिक् जगत् में वणिक व्यवहारों की कल्पना ही कर सकते हैं।" (गीता का व्यवहार दर्शन, पृष्ठ ८६)।

इस प्रकार मोहता जी ने अपने वंशानुप्राप्त इस रिक्थ को संवार कर, संभाल कर और संजो कर रखा—और उसी का उपयोग उनके कार्यों, कृतियों और रचनाओं में है।

दीन दलितों के वे आशा केन्द्र हैं, वे दानी हैं, उनकी दानशीलता भी प्रज्ञा-प्रेरित है। वे करुणा विगलित होकर कभी कुछ नहीं देते; सोचकर, समझकर दूरगामी प्रभाव देख कर देते हैं। देश, काल व पात्र का विचार कर देते हैं। विधवाओं, हरिजनों, समाज सुधार के कार्यों और रुग्णों के लिये उनकी थैली खुली है। थैली का मुँह खोलने के पहले अपने विवेक को सतत जाग्रत रखते हैं।

आंग्ल कवि गोल्डस्मिथ ने अपने 'ऊजड़ ग्राम' नामक करुण-काव्य में एक ग्राम-पादरी का चित्रण करते हुए लिखा है कि वह करुणा से अभिभूत होकर देता है, वह यह नहीं देखता कि लेने वाला पात्र है या कुपात्र। पर, मोहता जी—जो गीता के अनुरागी और प्रचारक हैं—वे तो गीता के प्रज्ञावाद के पुजारी हैं। गीता के अनुसार वे सात्विक दानी कहे जा सकते हैं—जहाँ देश, काल व पात्र का सम्यक् विवेक है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकम् स्मृतम् ॥ —गीता १७-२०

मोहता जी 'दूर दृक्' हैं—जिसे जन-भाषा में 'आगिल बुद्धि' कहा गया है। महाकवि कालिदास ने ठीक ही लिखा है कि सन्तजन अपने विवेक की कसौटी पर कस कर ही किसी बात की महत्ता व गुरुता स्वीकार करते हैं—मूढ़ जन पर प्रत्यय बुद्धि होते हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते, मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः॥

श्री मोहता जी सत्य के साधक हैं, उनमें सत्यसन्धानकारी बुद्धि है। गीता में जिस निर्मल बुद्धि को 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' कहा गया है उसी को जीवन संबल बना कर मोहता जी के समग्र कार्य-कलाप गतिशील हैं।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहु शाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ —गीता २-४१

आपने अपने ग्रन्थ "गीता का व्यवहार दर्शन" में स्थान-स्थान पर बुद्धिवाद की महत्ता का कथन किया है। मोहता जी के शब्दों में—

"गीता के उपदेशों में सर्वत्र बुद्धियोग ही को महत्व दिया गया है, क्योंकि संसार के व्यवहार करने में बुद्धि की प्रधानता रहनी चाहिये और वह बुद्धि जब साम्यभाव में जुड़ी हुई अर्थात् आत्मनिष्ठ हो, तभी संसार के व्यवहार पूर्णतया ठीक-ठीक हो सकते हैं—यही गीता का सिद्धान्त है।"

यही बुद्धि योग मोहता जी की साहित्य सर्जना का प्रेरणा-स्रोत है, जो लोक संग्रह की पावन भावना से प्रवाहित होकर श्रेयाभिमुख है।

साहित्य-सर्जना की पूर्व पीठिका

मोहता जी के विचार निर्माण में सन्तों की वाणी का गहरा प्रभाव है। कबीर आदि 'निर्गुण पन्थी सन्त धर्म के आडम्बरों विरोधी थे, अन्ध विश्वासों व रूढ़ियों को उखाड़ने वाले थे—पण्डितों, मुल्लों मौलवियों—सभी को उन्होंने फटकारा। मोहता जी ने भी पंडों, पुजारियों, महन्तों मठाधीशों की खूब खबर ली है। मृतक भोज का जोरदार विरोध किया है। समाज-सुधार की पुरजोर आवाज बुलन्द की है। अन्धश्रद्धा की जड़ पर प्रहार किया है। मानव की एकता व समरसता की कसौटी भी मोहता जी पा गये हैं—जिसके कारण संसार

के नानाविध व्यवहारों के बीच सहज में व्याप्त अद्वैत की अनुभूति कर सके हैं। चिन्तन क्षेत्र में अद्वैतवाद मोहता जी का जीवन साथी रहा—पर, वह कबीर आदि की तरह भावना का क्षेत्र न पा सका—जिसके कारण मोहता जी की कृतियाँ सन्त साहित्य की तरह मर्म भिद् न हो सकी। सन्तों ने संसार को मिथ्या व असत्य माना—मोहता जी ने उसकी व्यावहारिक सत्ता स्वीकार की—तभी गीता उनके लिए विरक्ति का साधन न बनकर जगत् प्रपंच के बीच भी उपयोगी बन सकी। संसार के लिये गीता को दीपक बनाकर मोहता जी ने रखा है जिसका प्रकाश व्यष्टि समष्टि सभी पाकर कृत कार्य हो सकते हैं।

सन्तो ने नारी को माया का प्रतीक माना—पर, मोहता जी के लिये दु:खिनी पीडिता नारी भगवान का ही रूप बनकर आई। अबला कहलाने वाली नारी की व्यथा-कथा मोहता जी के द्वारा प्रभावशाली ढंग से कही गई। सन्तों ने 'जाति पाति पूछै नही कोई, हरि का भजै सो हरि का होई' कहकर शूद्रों को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। मोहता जी ने भी दलित-जातियों के पक्ष-समर्थन में और उनको उठाने व आगे बढाने में सब प्रकार तन, मन, धन से सहयोग दिया।

यह स्पष्ट है कि श्री मोहता जी के व्यक्तित्व व विचार निर्माण में निर्गुण सन्त वाणी का प्रभाव है। पर, उस प्रभाव ग्रहण में अन्ध धार्मिकता नही, जड़ साम्प्रदायिकता नहीं; एक विवेकी की मौलिकता है, एक कुशल व्यापारी का हानि-लाभ, घाटा-नफा सोच कर उठाया गया कदम है।

सन्त-साहित्य के अतिरिक्त श्री मोहता जी ने अपने जीवन को गीतामय बना दिया है। गीता उनके जीवन का आदर्श है, उनके चिन्तन व सृजन का मूल उत्स है— वह एक ऐसी दिव्यौषधि है—जो सारी बीमारियों पर अमोघ प्रभाव डाल सकती है। आपकी मान्यता है कि गीता हमारी सारी समस्याओं को सुलझाने का साधन है, वह हमारे जीवन का विकास मार्ग है—संसार की सुख-शान्ति व तुष्टि-पुष्टि का यही उपाय है। अद्वैत, व्यष्टि समष्टि की एकता, आत्मौपम्य दृष्टि—इसी आधार पर मोहता जी ने जीवन के सभी क्षेत्रों को जाँचा और परखा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहन राय आदि समाज सुधारकों के आन्दोलनों का भी सेठ जी के व्यक्तित्व निर्माण में प्रमुख भाग रहा है। सेठ जी के हृदय में भी समाज सुधार की आग है, अन्ध विश्वासों के प्रति क्षोभ है, महन्तों, मठधारियों व पंचों के प्रति आक्रोश है—यह समाज सुधारक का रूप सेठ जी का इतना जाग्रत्, सबल और प्रधान है कि उनके जीवन पर और उनकी कृतियों पर निविड़ भाव से छाया हुआ है।

सेठ जी पर यदि सब से कम प्रभाव पड़ा है तो राष्ट्रीय आन्दोलनों का सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सत्याग्रह के रूप में समग्र भारतीय जनता जिस वन्द्य बापू के नेतृत्व में जिस प्रकार उद्बुद्ध होकर जीवन के विकास मार्ग पर आगे बढ़ रही थी—घने अंधेरे को चीर कर स्वातंत्र्य सूर्य का प्रकाश भारतीय क्षितिज को जिस प्रकार उद्भासित कर रहा था—उस की अनुभूति सेठ जी की कृतियों में नहीं है। उस महान् प्रसंग का मूल्यांकन भी मोहता जी न कर पाये।

लोकमान्य तिलक ने "गीता रहस्य" को, यद्यपि जिज्ञासा वश गण्य गुरुदास के एक 'प्रसंग' का भाव लेकर सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति मात्र माना है, पर यह निर्विवाद है कि तिलक ने शंकराचार्य के अध्यात्म बड़े-बड़े मनीषि आचार्यों से भिन्न पथ का अनुसरण कर, प्रारब्ध को मानने के कारण निष्क्रिय मानव के लोक-जीवन में कर्मण्य-भावना का पुनः संचार किया—इसीलिये इसे 'कर्मयोग शास्त्र' की संज्ञा दी गई। सेठ जी ने तिलक द्वारा प्रदर्शित सृजन पथ से लाभ उठाकर गीता के सन्देश को जन साधारण तक पहुँचाने का व्यावहारिक मार्ग अपनाया। इस बात की निम्न शब्दों में स्पष्ट स्वीकृति है—

"तुमने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का 'गीता रहस्य' और कर्म योग शास्त्र नहीं देखा होगा। यदि

उसे देखते तो इस विषय का विवेचन अच्छी तरह ध्यान में आ जाता और उससे भी अधिक विस्तृत और सरल विवेचन श्री राम गोपाल मोहता लिखित 'गीता का व्यवहार दर्शन' ग्रन्थ में किया गया है।"—गीता विज्ञान, पृष्ठ १७।

इस प्रकार सन्त वाणी, गीता, सुधारकों की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, तिलक का गीता रहस्य आदि विविध प्रभावों से श्री मोहता जी की विचार-धारा पुष्ट बनी है—जिसमें निजी अनुभव, सूझ-बूझ और विवेक का योग रहा है।

कृतियों का वर्गीकरण और परिचय

मोहता जी ने जो कुछ लिखा है, वह बहुत अधिक न हो कर बहुत कम भी नहीं है। लेखों, प्रचार पुस्तिकाओं, सम्पादित ग्रन्थों, मौलिक कृतियों, अध्यक्षीय भाषणों आदि के द्वारा सेठ जी ने अपने विचार जनता जनार्दन के सामने रखे हैं। विचार-प्रचार में मिशनरी उमंग से काम लिया है। अपनी बात अनेक बार कही गई है। मोहता जी के विचारों में स्पष्टता है। राजनीति, व्यापार, अर्थशास्त्र, समाज-सुधार, उत्सव-त्योहार, साहित्य—सभी पर सेठ जी ने अपने विचार प्रकट किये हैं। विचारों में नूतन पथ का अनुगमन है। विज्ञान के प्रकाश में, विवेक की तुला पर तोल कर, सावधानी के साथ विचारों को प्रकट किया गया है।

मोहता जी की कृतियों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—यह वर्गीकरण केवल व्यवहारिक मात्र है—काम चलाऊ है।

(१) गीता सम्बन्धी रचनाएँ
- [अ] सात्विक जीवन
- [आ] दैवी सम्पद्
- [इ] गीता का व्यवहार दर्शन
- [ई] गीता विज्ञान
- [उ] समय की माँग अर्थात् कल्प की क्रान्ति
- [ऊ] ईशावास्य उपनिषद् (व्यवहारिक भाष्य सहित)

(२) संग्रह व सम्पादन
- [अ] ज्ञान पद संग्रह अथवा व्यवहारिक आत्मज्ञान [पहला भाग]
- [आ] ,, ,, [दूसरा भाग]
- [इ] ,, ,, [तीसरा भाग]

(३) नारी सम्बन्धी रचना
- अबलाओं का इन्साफ [छद्म नाम—श्रीमती स्फूर्ता देवी]

(४) लोक साहित्य का संग्रह, सम्पादन व सृजन
- [अ] बीकानेरी गीत संग्रह
- [आ] डाखियों का खेल
- [इ] प्रेम भजनावली

(५) अध्यक्षीय भाषण—
- [अ] अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा अष्टम अधिवेशन, पंढरपुर: १६२६ ई०
- [आ] तृतीय बीकानेर साहित्य सम्मेलन, सुजानगढ़: १६४०

[इ] अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन,
पाँचवाँ अधिवेशन, दिल्ली; १६४६

(६) विशिष्ट लेख व पुस्तिकाएँ : प्रकीर्णक

[अ] युद्ध और भीतरी व्यापार
[आ] स्वतंत्रता की तलाश
[इ] देश का आर्थिक संकट और उसके मिटाने का उपाय
[ई] दीपोत्सव
[उ] धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का खुलासा
[ऊ] ए सजेशन टु दी रिच [अंग्रेजी]
[ए] दोषी कौन ?
[ऐ] श्री महालक्ष्मी का सच्चा पूजन !
[ओ] दलितों का पुनरुत्थान कैसे हो ?

इस वर्गीकरण में मोहता जी के प्रायः समस्त साहित्य का आकलन कर दिया गया है। इस वर्गीकरण को भी मुख्यतः दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है :—

एक स्थायी साहित्य और दूसरा सामयिक साहित्य। सामयिक साहित्य की विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उसमें मोहता जी ने सामयिक समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किए हैं। वे गीता की तरह स्थायी नहीं है और वर्तमान स्थितियों के बदल जाने के बाद उनका कोई विशेष महत्व अथवा उपयोग भी नहीं है। यहाँ केवल स्थायी साहित्य की ही चर्चा करनी अपेक्षित है।

गीता सम्बन्धी रचनाएँ

(अ) सात्विक जीवन—यह गीता पर आधृत है। मनुष्य जन्म को किस प्रकार सुखी, सम्पन्न, समृद्ध बनाया जा सकता है—इसी का व्यवहार-मार्ग इस पुस्तक में है। मोहता जी सचमुच इस बात के लिये सादर याद किये जायंगे कि उन्होंने गीता के पुण्य प्रसाद को घर-घर पहुँचाने का प्रयास किया। 'सात्विक जीवन'—एक प्रेरणाप्रद पुस्तक है। चरित्र निर्माण में ऐसी पुस्तकों का विशेष महत्व है। लेखक ने मानव के कर्तव्यों का विशद विवेचन किया है। लेखक का दावा है कि जो मनुष्य गीतानुसार व्यवहार करता है, उसे सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने और परम पद की प्राप्ति करने में देर नहीं लगती। यह काम बहुत कठिन भी नहीं, किन्तु सुसाध्य है।

सारी पुस्तक सात कर्तव्यों में विभक्त है। इन सातों कर्तव्यों का विधिवत् पालन करने से व्यष्टि और समष्टि सभी सुखी हो सकते हैं। कर्तव्यों को भोजन, व्यायाम से लेकर मन-वाणी की शुद्ध साधना को पार कर कुटुम्ब, समाज, ग्राम, नगर, देश, मानव मात्र ही नहीं अपितु विश्व तक फैला दिया गया है। यही भारत की उदार संस्कृति का सार है। विकास-क्रम के ये सोपान जीवन को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर और उज्ज्वलतम बनाने वाले हैं। यह पुस्तक मानव मात्र के लिये पठनीय है। केवल पठनीय ही नहीं, इस पुस्तक का एक-एक वाक्य हृदयंगम करने योग्य है। इस पुस्तक का सन्देश है—विश्व के हित के लिये कर्म करना ही सच्चा धर्म योग है।

[आ] दैवी सम्पत्—मोहता जी की यह महत्त्वपूर्ण कृति है। गीता के १६ अध्याय में दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद् का उल्लेख है, उसी पृष्ठभूमि पर इस कृति का निर्माण हुआ है। मोहता जी ने 'दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता' के अनुसार मोक्ष और बन्धन का सच्चा स्वरूप निर्धारित किया है।

यह पुस्तक चार प्रकरणों में विभक्त है। प्रथम प्रकरण—लेखक ने बताया है कि सात्विकता ही

'बन्ध' है—यह पराधीनता राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि अनेक प्रकार की हो सकती है। स्वाधीनता या मोक्ष लेखक की दृष्टि में पर्याय मात्र हैं। द्वितीय प्रकरण—इसमें मानव समाज के आत्मविकास की पांच प्रधान श्रेणियों का वर्णन है। इस प्रकरण में लेखक ने देश की सामाजिक पतन की दशा का विशद वर्णन किया है। तृतीय प्रकरण—लेखक ने इसमें सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों के लक्षणों पर प्रकाश डाला है और बताया है कि इस कर्मशील संसार में तीनों गुणों का सम्मिश्रण पाया जाता है। सात्विक गुणों को अधिक से अधिक प्राप्त करने से यह संसार सुखी हो सकता है—इसका खुलासा इस प्रकरण में है। अन्तिम प्रकरण में लेखक ने सारी युक्तियों का सार संचयन करते हुए बताया कि व्यष्टि, समाज व राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए दैवी सम्पत् की आवश्यकता है।

आज जब कि विश्व में आसुरी भावों का बोलबाला है। दर्पित राष्ट्रों के अधिनायक आज भी गीता के इन श्लोकों को दंभ भरी वाणी में चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ —गीता १६-१३, १४

इस भयंकर समस्या का एक मात्र हल यही है कि जन जन के मन में दैवी सम्पत् की पुन. प्रतिष्ठा हो। द्वेष, दर्प और दंभ की ज्वाला से जलते मानव हृदयों में यदि अभय, सत्व शुद्धि, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य अक्रोध आदि दैवी सम्पत् रूपी सुर सरिता की शीतल वारि धारा प्रवाहित की जा सके तो मानव जाति फूलों की तरह खिल उठेगी। मोहता जी ने सरल व सुस्पष्ट शैली में सारी बातें रखी हैं। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इन उदात्त मानवीय भावनाओं को हृदयंगम करके अपने जीवन को ही नहीं, मानव जाति की हित साधना में भी योग देकर समष्टि-जीवन को भी धन्य बना सकता है।

[इ] गीता का व्यवहार दर्शन—मोहता जी की यह जीवन व्यापी साधना है। मोहता जी ने जो कुछ सीखा, अनुभव किया उसको इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ में सुरक्षित कर दिया है। मोहता जी का 'व्यवहार दर्शन' उनकी कृतियों का सर्वोच्च शिखर है—उत्तुंग, मुक्त और गरिमामय शिखर। यह ग्रन्थ लिखकर मोहता जी ने सचमुच अपने जीवन को धन्य कर लिया है। भविष्य की कौन जाने—पर, ऐसा लगता है कि सुदूर भविष्य में दानी मोहता जी भुला दिये जावेंगे, उनका सुधारक रूप संसार के समाज सुधार के इतिहास में एक धुंधली रेखा मात्र बनकर रह जायगा—उनकी सत्संग मण्डली बिखर जायगी। दूसरे छोटे मोटे ग्रंथ विस्मृति के अतल गह्वर में फेंक दिये जायगे, फिर भी काल के क्रूर दण्ड प्रहार से अपने को बचाकर रखने की योग्यता केवल मात्र इसी ग्रन्थ में है। मोहता जी का यह सच्चा रूप है, जो आगे भी चमकता रहेगा। 'गीता का व्यवहार दर्शन' लिख कर—बड़े-बड़े आचार्यों, पंडितों, सन्तों, साधकों, कर्मयोगियों, भक्तों की दीर्घ परम्परा के बीच—इस भीड़-भाड़ में से मोहता जी ने अपना अलग मार्ग निकाल कर एक कोने में अपने को खड़ा कर लिया है। हजारों वर्षों से गीता पर जो कुछ लिखा गया है उससे भिन्न मार्ग अपना कर मोहता जी ने भाष्यकारों के हस्ताक्षरों की पंक्ति में लोक मान्य के समान अपने भी नये हस्ताक्षर कर दिये हैं—गीता के भाष्यों के इतिहास में अपने लिये भी एक स्थान सुरक्षित कर लिया है। यह साहस अद्भुत है, यह धर्म कौतूहल का सुन्दर निदर्शन है, यह एक व्यवसायी की सफल सूझ-बूझ है, यह प्रतिभा का नूतन मार्ग है। सचमुच प्रतिभा क्षुण्ण मार्ग पर नहीं चलती, यह अपने लिए नूतन पथ-सन्धान कर लेती है। मोहता जी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

व्यवहार दर्शन में निःसन्देह भगवान शंकराचार्य, महाप्रभु वल्लभाचार्य एवं रामानुजाचार्य जैसी दार्शनिक

पूर्ण शास्त्रीय स्थापना नहीं, ज्ञानदेव महाराज जैसी भक्ति परिप्लुत अनुभूति व द्रवणशीलता नहीं, लोकमान्य तिलक जैसी अतल स्पर्शी मेधा व चतुर्दिक व्याप्त दृष्टि नहीं, गांधी जैसी अनासक्ति नहीं, सन्त विनोबा जैसी शान्तिदर्शिता नहीं—फिर भी व्यवहार दर्शन में कुछ ऐसी बात है, जो दूसरों में नहीं है—वह है उसकी दुनियाई भाषा में सरलता, स्पष्टता। मोहता जी ने इसी जीवन के बीच, इसी संसार के बीच, इसी भोग राग के बीच—गीता का ज्ञान-दीप संजो कर रख दिया है। आपका व्यवहार दर्शन पढ़ने से बाद ऐसा लगता है गीता हम से दूर नहीं, वह हमारे जीवन के चारों ओर है—वह इस अंधेरे में हमें झिड़कती नहीं, फटकारती नहीं, माँ के रूप में हमारे दोषों को दुलरा कर प्यार से आगे बढ़ने को कहती है। यह व्यवहार दृष्टि मोहता जी की विशेषता है। जिसके कारण जन-साधारण अपने जीवन को गीतामय बना सकता है। सारे ग्रंथ में मोहता जी का सुधारक खामोश नहीं है, हमें शिकायत है वह ज्यादा वाचाल है, प्रगल्भ है, वावदूक है—काश, थोड़ा चुप रहता ! हर समय विधवा विवाह की विकालत, मृत्यु-भोज का खण्डन, महन्तों, मठाधीशों को फटकार, पंचों को ललकार पीड़ित नारी की व्यथा-कथा, दलितवर्ग का हाहाकार, सामाजिक व धार्मिक अन्धविश्वासों पर उनका सुधारक—बराबर गदा प्रहार करता रहता है। यह ग्रंथ मनुष्य को यह सिखाता है—जीवन एक कला है, उसे सुन्दरता से जिया जा सकता है—उसे भार मुक्त किया जा सकता है। बात को स्पष्ट करने के लिए विज्ञान का भी यत्र-तत्र सहारा लिया गया है। लेखक का लक्ष्य यह रहा है कि यह जीवन उदात्त व सर्वाङ्ग रूप से समुन्नत व सरल बने। इस लक्ष्य को लेखक ने कभी ओझल नहीं होने दिया।

राजा भागीरथ ने जिस प्रकार हिमालय के शिखरों पर ही खो जाने वाली गंगा को लाने में निरन्तर श्रम कर भारत भूमि को उर्वर बनाया—सेठ जी ने भी उसी प्रकार पांडित्य के जटाजूट में रमने वाली गीता गंगा को व्यवहार की धरती पर उतारने में भगीरथ प्रयत्न किया है—जिससे लोक मानस सात्विक भावों की अनन्त लहरों से लहरा सके। इस प्रयत्न में मोहताजी को सफलता मिली है, जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

मोहता जी की मान्यता है "गीता पर जितनी टीकाएँ हैं, वे प्रायः किसी न किसी प्रकार की साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक (मजहबी) अथवा मत मतान्तर की भावना को लिए हुए है। जब कि मोहताजी ने सिद्ध किया है वे गीता व्यावहारिक वेदान्त का कर्तव्य शास्त्र है और इसमें सर्व भूतात्मैक्य साम्य भाव से जगत के व्यवहार का प्रतिपादन है।

लेखक ने एक संदेश दिया है वह यह कि—जहाँ सब की एकता के साम्य भाव की पूर्णता स्वरूप महायोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहां युक्ति सहित शक्ति सहित अर्जुन है; दूसरे शब्दों में जहाँ सबकी एकता के साम्य भाव हैं और जहाँ विद्या, बुद्धि और बल है, वहाँ ही निश्चय पूर्वक राजलक्ष्मी रहती है, वहीं सब प्रकार की शोभा और कीर्ति है, वहीं विजय है, वहीं वैभव और ऐश्वर्य है वहीं अटल नीति है। जहाँ एकता नहीं, तथा विद्या, बुद्धि और बल नहीं, वहाँ दरिद्रता, अकीर्ति, पराजय, दासता और मूर्खता का अविचल साम्राज्य रहता है।" हमारा स्वतंत्र राष्ट्र भी इस महान् व क्रान्तिकारी सन्देश के बल पर अपना सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है।

(६) गीता विज्ञान—इस पुस्तक में गीता के अनुसार सांसारिक व्यवहार का पिता-पुत्र के संवाद रूप में संक्षिप्त खुलासा किया गया है। यह संवाद पिता पुत्र का नहीं—जगत में संक्रमण काल की दो पीढ़ियों का है—जिनकी भाषा अलग, दृष्टिकोण अलग, मान्यता अलग, सत्य अलग—उस समय गीता उनमें किस प्रकार एकता और समन्वय भाव की सिद्धि कर सकती है—यही लेखक का विवेच्य विषय है। गीता के सम्बन्ध में जो भ्रान्त व मिथ्या धारणा की धुन्ध जम गई है उसे भी झाड़ बुहार कर, साफ कर प्रकट करने की कोशिश की गई है। [illegible] में वर्णित त्याग क्या है—इसका इसमें सरल व शुभ्र रूप और यही निर्देश। "त्याग और ग्रहण [illegible] नहीं रहते। इसलिए व्यक्तित्व के भार को त्यागने का अर्थ यह होता है कि अपने को दूसरों से अलग न मानें

के निश्चय को ग्रहण किया जाय, अर्थात् अपने आपको सब के साथ जोड़ दिया जाय। एक छोटे से व्यक्तित्व के तुच्छ भाव को छुड़ाकर अखिल विश्व के साथ एकता के महान भाव की प्राप्ति करना—यही गीता का त्याग है।' इसी प्रकार राग, विराग, यज्ञ, कर्म, ईश्वर आदि के जो रूढ़ अर्थ हैं उनमें नवीन अर्थोन्मेष किया गया है—यह मोहता जी के मौलिक चिन्तन का प्रकाश है—जिनसे कितनी ही पुरानी जड़ बातें नवीन शक्ति से प्रोद्भासित हो उठी हैं। यहाँ दार्शनिक मोहता जी अपनी मौलिक चिन्तना के साथ सुसज्जित हैं। यह पुस्तक आज के नवयुवकों को गीता की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से लिखी गई है। सभी जगह तर्क पुष्ट विचार-धारा, विवेक बुद्धि के प्रकाश में जगमगा रही है। नास्तिक व भ्रान्त व्यक्ति भी इस पुस्तक को पढ़ने के बाद गीता के माहात्म्य की अनुभूति कर सकता है, लेखक की यह सफलता सचमुच स्पृहणीय है।

प्रकीर्णक—विशिष्ट लेख व पुस्तिकाएँ

मोहता जी के अन्य साहित्य को भी देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पिटे-पिटाये रास्ते पर नहीं चलते, बासी, पुराने व सड़े-गले विचारों के स्थान पर कुछ नया चिन्तन लाते हैं—इससे उनके विचार चाहे सब को ग्राह्य न हों—पर, उनकी स्फूर्ति, ताजगी व नवीनता एक बार सबको झकझोर देती है। लिखने का ढंग सीधा व सबल है—बाण की तरह सीधा वार करता है।

श्री मोहता जी एक कुशल व्यवसायी हैं। भारत में जो उद्योग विकास का इतिहास है, उसमें भी मोहता जी का एक विशिष्ट स्थान है। सुधारक विचार क्रान्ति में श्री मोहता जी को राजस्थान में ही नहीं भारतवर्ष में भी सम्मान योग्य स्थान प्राप्त है।

दार्शनिक साहित्य के क्षेत्र में मोहता जी ने गीता को अपना प्रेरक ग्रन्थ बना कर महान् देन दी है। "गीता का व्यवहार दर्शन" लिख कर श्री मोहताजी ने भारतीय दार्शनिक साहित्य के महत्त्व शताब्दियों से प्रवाहित होने वाले ज्ञान गंगा के एक उपेक्षित किनारे पर अपना घाट बना लिया है—जहाँ भविष्य में मुमुक्षु जन सदा सदा विश्राम कर गीता के मधुर, व्यवहार-प्रसन्न शान्तिस्वरूप को देखकर अपने जीवन को ऊँचा उठाने का उद्योग करेंगे। श्री मोहता जी की यह उपलब्धि महान् है, गरिमामय और स्पृहणीय है। यह नवीनता उनकी उस क्रान्तिकारी दृष्टि का सत्यं, शिवं, सुन्दरम् परिणाम है, जो उनके समस्त साहित्य सृजन में और व्यावहारिक जीवन में भी ओत-प्रोत है।

खंड ३

१. श्री माधव श्रीहरि अणे
२. उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन
३. श्री जगजीवनराम
४. श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन
५. श्रीमती रतन राय
६. आचार्य पं० नरदेव शास्त्री
७. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
८. स्वामी जोन धर्मतीर्थ
९. आयुर्वेदाचार्य श्री शिव शर्मा

१०. आचार्य चतुरसेन शास्त्री
११. श्री मन्मथनाथ गुप्त
१२. श्री सन्तराम बी० ए०
१३. श्री अक्षय कुमार जैन
१४. श्री मुकुटविहारीलाल वर्मा
१५. सेठ घनश्यामदास बिड़ला
१६. श्री ब्रिजलाल बियाणी
१७. सेठ गजाधर सोमाणी
१८. श्री सीताराम सेकसरिया
१९. स्वामी केशवानन्द एम० पी०
२०. श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका एम० पी
२१. श्री भागीरथ कानोडिया
२२. सेठ लक्ष्मीनारायण गाड़ोदिया
२३. रा० ब० सेठ शिवरतन मोहता
२४. श्री पन्नालाल बारूपाल एम० पी०
२५. श्री बालकृष्ण मोहता
२६. श्री कन्हैयालाल सेठिया
२७. श्री वृजवल्लभदास मूंधड़ा
२८. श्री कन्हैयालाल कलयंत्री
२९. श्री जयनारायण व्यास
३०. श्री गोकुलभाई भट्ट
३१. डा० जुगलसिंह खीची एम०ए०, पी०एच०डी०, बार एटला
३२. श्रीमती जानकी देवी बजाज
३३. श्रीमती गंगादेवी मोहता
३४. श्रीमती रतनदेवी दम्माणी
३५. श्रीमती कौशल्यादेवी मोहता

अनेक राजनेताओं, पत्रकारों, लेखकों, श्रीमंत सेठ-साहुकारों, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और मोहता जी के परिजनों तथा संगी-साथियों के रोचक, उपयोगी और महत्वपूर्ण संस्मरण इस प्रकरण में दिए गए हैं। उसमें मोहता जी के आनन्दमय जीवन की अनेक सुन्दर झाँकियाँ देखी जा सकती हैं।

१

जनक का क्रियाशील जीवन

लगभग पच्चीस वर्ष व्यतीत हुए जब मैं अपने अभिन्न मित्र और सहयोगी स्वर्गीय श्री कृष्णकान्त मालवीय जी के द्वारा श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्पर्क में आया था। उन्होंने मुझ से मोहता जी की सुप्रसिद्ध पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" पर कुछ शब्द लिखने को कहा था।

उसके बाद मैंने मोहता जी की गीता पर लिखी कुछ और पुस्तकें तथा दार्शनिक विषयों पर लिखे उनके कुछ निबन्ध पढ़े। उनका प्रभाव मुझ पर यह पड़ा कि उनके ग्रन्थ और लेख भगवद्गीता के उपदेशों के गम्भीर चिन्तन और श्रद्धायुक्त अध्ययन के परिणाम हैं। उस व्यक्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक है जो कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से अपने जीवन मे इस संसार के ईश्वरीय प्रयोजन को पूर्ण श्रद्धा से सम्पन्न करते हुए उसके जगतव्यापी स्वरूप का विश्लेषण करना चाहता है और जो अपनी अन्तरात्मा में इस संसार में अपने जीवन के मिशन के प्रति पूरी तरह जागरूक है। राजा जनक के सम्बन्ध में गीता में जो कुछ कहा गया है उसके महत्व को मोहता जी के क्रियाशील जीवन से पूरी तरह समझा जा सकता है। "कर्मण्यैव हि संसिद्धि मास्थिता जनकादय।"

मोहता जी कर्तव्यपालन के उस पुनीत पथ के श्रद्धालु पथिक हैं जो कि सिद्धि की प्राप्ति के लक्ष्य पर पहुँचाने वाला है।

माधव श्री हरि अणे

(लोकमान्य तिलक की चातुर्यपूर्ण राजनीति के उत्तराधिकारी, बरार—मध्यप्रान्त के वयोवृद्ध नेता, हिन्दू महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष, वाइसराय की परिषद के भूतपूर्व सदस्य, स्वतन्त्र भारत में बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल और वैदिक एवं संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पंडित। आपने ही मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण उपोद्घात लिखा है।)

२

साधना और सेवा का जीवन

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री रामगोपाल जी मोहता अपने जीवन के इक्यासीवें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। यह शुभ लक्षण है कि व्यापारी लोग भी सांस्कृतिक कार्यों में अभिरुचि रखते हैं और वे

उसके मौलिक सिद्धान्तों के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। श्री रामगोपाल जी का सम्पूर्ण जीवन साधनामय एवं सेवामय रहा है और उनके रचित ग्रन्थ बहुत दिलचस्पी के साथ पढ़े जाते हैं।

एस० राधाकृष्णन
उप-राष्ट्रपति

(अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दार्शनिक, विचारक और शिक्षाशास्त्री, पौर्वात्य और पाश्चात्य शास्त्रों के सुप्रसिद्ध ज्ञाता।)

●

३

निर्लिप्त मोहता जी

मोहता जी एक निर्लिप्त योगी हैं। संसार और समाज तजकर योगी होना तो उतना कठिन नहीं पर समाज में रहकर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए सांसारिक प्रवृत्तियों से निर्लिप्त रहना वास्तव में कठिन साधना का फल है। मोहताजी जनक जैसे विदेह हैं। समाज-सेवा ही उनका एकमात्र धर्म है।

जगजीवनराम

(केन्द्रीय मंत्रिमंडल के सुयोग्य सदस्य, वर्तमान रेलवे मन्त्री, दलित व शोषित वर्ग के आशादीप और कांग्रेस के प्रभावशाली नेता।)

●

४

एक आदर्श की पूर्ति

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री रामगोपाल जी मोहता की इक्यासवीं वर्षगांठ के अवसर पर उनको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया जा रहा है। समाज-सुधार, धर्म, उदारता तथा साहित्य के क्षेत्र में श्री मोहता जी द्वारा किए गये कार्यों का यह ग्रन्थ दिग्दर्शन करेगा और उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को मनोरंजक विस्तार के साथ जनता के सामने प्रस्तुत करेगा। मुझे पूरी आशा है कि यह ग्रन्थ एक बड़े आदर्श की पूर्ति करेगा क्योंकि यह उन लोगों के लिए मार्ग-दर्शक होगा जो दूसरों के जीवन के पहलुओं को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं।

मैं इस अवसर पर श्री मोहता जी की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

सरदार स्वर्णसिंह
केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण मंत्री

५

प्रेरक जीवन

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री रामगोपाल जी मोहता की इक्यासिवीं वर्ष गाँठ के शुभ अवसर पर अभिनन्दन समिति की ओर से "एक आदर्श समत्व योगी" के नाम से एक विशेष अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशित करने का आयोजन किया जा रहा है। श्री मोहता का जीवन त्याग और आदर्श का जीवन रहा है। विभिन्न रूप से जन-सेवा एवं साहित्य सेवा उनके इस दीर्घ जीवन का ध्येय रहा है। जिसको भी श्री रामगोपाल जी मोहता से साक्षात्कार का शुभ अवसर मिला है वह उनके उदार चरित्र, सरल जीवन एवं वृहद ज्ञान से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। जिन सिद्धान्तों एवं आदर्शों का उन्होंने निरन्तर अपने जीवन के दैनिक व्यवहार में पालन किया है, उनसे आज से नवयुवकों को प्रेरणा मिल सकती है। इस शुभ अवसर पर मैं भी अपनी शुभ कामनाएँ प्रेषित करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आदरणीय श्री मोहता जी को चिरायु करें जिससे कि हम सब और भी अधिक उनके ज्ञान एवं अनुभव से लाभ प्राप्त कर सकें।

मोहनलाल सुखाड़िया
मुख्य मंत्री—राजस्थान

●

६

Source of Insipiration

Humanity is passing through a crisis of spirit. The bewildering success of scientific technology raises on the one hand a hope of complete conquest of the universe and on the other a fear of total annihilation. The world is in the throttling grip of greed and avarice, turmoil and trouble There is a clash of ideals and ideologies and groups of people are in an armed poise against one another. Nations and individuals are in a state of high nervous tension and peace has vanished from the world. Against such a background the lives of persons like Shri Ramgopalji Mohta are like bacons leading others to the heaven of peace. In Shri Mohta we see a rare combination of business acumen, erudition, spirit of social service and profound religiosity. He has based his life on the ancient wisdom of India but is resilient enough to take in the impact of materialism to his best advantage. The "Iron King" of Karachi has not a heart of steel. The milk of human kindness flows profusely from it. As a successful businessman, he has amassed great wealth but all his acquisitions he is utilising in the service of humanity. To him property is not private. He holds it in trust for the downtrodden and the needy."

His service to the poor and to the people suffering from social disabilities does not stem from any charitable motivation but from a sense of duty. He has established dispensaries, libraries, Dharamshalas, Harijan Service Centres and the rest not in a spirit of generosity but as his inescapable duty to his needy fellow countrymen. It is not the desire of recompense that impels him to these various social activities. He practises Karma Yoga, the way of disinterested and dedicated works as taught by the Gita. In his books he has preached what he has practised himself. He has evinced a holy indifferences to pleasure or pain and has done his duty with his heart within God overhead. His life is a source of inspiration to all of us. It shows how one can live "true to the kindred points of heaven and home". I hope and pray that he would live long enough to shed his lustre on our countrymen groping in darkness.

Prafulla Chandra Sen
Minister Food, Relief and
Supplies West Bengal.

प्रेरणा के स्रोत

मानव समाज भावनात्मक संघर्ष में से गुजर रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में चकाचौंध पैदा करने वाली जो सफलता प्राप्त की जा रही है, उससे एक ओर सम्पूर्ण विश्व को जीतने की आशा, की जा रही है और दूसरी ओर सर्वनाश का भय व्याप रहा है। विश्व का गला लोभ-लालच, लिप्सा-[illegible] और [illegible] में घुट रहा है। विविध विचारों और मान्यताओं का संघर्ष चारों ओर मचा हुआ है। मानव समाज के विभिन्न समुदायों में एक दूसरे के विरुद्ध जहर घोला जा रहा है। राष्ट्रों और व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन में भी भीषण तनाव बना हुआ है। मानव की सुख-शान्ति का सर्वथा अन्त हो चुका है। इस पृष्ठ-भूमि में श्री रामगोपाल जी मोहता सरीखे व्यक्तियों का जीवन उस प्रकाश स्तम्भ के समान है जो साधारण मनुष्यों को स्थायी सुख शान्ति का मार्ग दिखा रहा है। मोहता जी में हमको व्यावसायिक विवेक, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, समाज-सेवा की भावना और उदार धार्मिकता किंवा आस्तिकता का दुर्लभ समन्वय मिलता है। उन्होंने अपने जीवन का आधार भारत के प्राचीन व्यवहार दर्शन को बनाया है; परन्तु वे वर्तमान काल के भौतिकवाद के प्रति भी पूरी तरह जागरूक हैं। कार्नेगी के "आयरन किंग" (इस्पात के बादशाह) का हृदय लोहे का बना हुआ नहीं है। उसमें से मानव सहृदयता का दूध भी पर्याप्त मात्रा में बहता रहता है। एक सफल उद्योगपति के नाते उन्होंने एक विशाल सम्पत्ति का संचय किया; परन्तु अपने सारे संचय का सदुपयोग वे मानव-सेवा के लिए कर रहे हैं। उनके लिए सम्पत्ति किसी उपभोग के लिए नहीं है। वे सामाजिक दृष्टि से पददलितों और गरीबों की जो सेवा कर रहे हैं, वह किसी के प्रति उपकार करने अथवा उदारता प्रदर्शित करने की भावना से नहीं; किन्तु एक मात्र कर्तव्य-भावना से करते हैं। उन्होंने औषधालयों, पुस्तकालयों, धर्मशालाओं तथा हरिजन सेवा-केन्द्रों की स्थापना और इसी प्रकार के अन्य कार्यों का सम्पादन किसी पर उपकार करने की भावना से नहीं किन्तु अपने देश के अभावग्रस्त भाइयों के प्रति अपने अनिवार्य कर्तव्य-पालन के रूप में किया है, उन्होंने कुछ बदला लेने की इच्छा से कार्यों को [illegible]-

जिक कार्यों में नहीं लगाया। वे कर्मयोगी हैं। उन्होंने कर्मयोग का अभ्यास गीता में प्रतिपादित आदर्श के अनुसार निस्वार्थ भाव से फलाकांक्षा से सर्वथा रहित होकर पूरी तत्परता से किया है। उन्होंने अपनी पुस्तकों में जो प्रतिपादन किया है उसको अपने जीवन के व्यवहार में पूरा किया है। उन्होंने अत्यन्त पवित्र और शुद्ध भाव से अपने को सुख-दुख व हानि-लाभ से सर्वथा निरपेक्ष रख कर अपने कर्तव्य का पालन ईश्वर को सदा साक्षी रखकर किया है। उनका जीवन हम सबके लिए प्रेरणा का स्रोत है। उससे पता चलता है कि गृहस्थ और स्वर्ग के प्रति सम-भाव और समान दृष्टि रखते हुए कैसे जीवन का सांसारिक व्यवहार किया जा सकता है। मैं पूरे विश्वास से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे चिरजीवी हों और अन्धकार में भटकते हुए देशवासियों के पथ-प्रदर्शन के लिए दिव्य ज्योति के समान सदा प्रकाशमान रहें।

प्रफुल्लचन्द्र सेन
मंत्री खाद्य, राहत और सिविल-सप्लाइज,
पश्चिमी बंगाल।

•

७

महान् आध्यात्मिक व्यक्ति

आपने मुझे श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन-सम्बन्धी अनुभवों को लिखने के लिए कहा है, यह आपकी बड़ी कृपा है। मेरा मोहता परिवार के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध रहा है। परन्तु जब से मैंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया तब से मोहता जी ने कराची रहना छोड़ दिया था और प्रायः बीकानेर में ही रहना प्रारम्भ कर दिया था। अतः केवल उनके जीवन की आकस्मिक झाँकियों को देखने के अतिरिक्त कोई ऐसा अवसर मुझे नहीं मिला जिससे कि मैं उनके निकट सम्पर्क में आ सकता।

हम सभी को ज्ञात है कि मोहता जी एक महान् आध्यात्मिक व्यक्ति, गम्भीर समाज सुधारक और अत्यन्त साहसी व्यक्ति भी हैं। उन्होंने समाज-सुधार सम्बन्धी अपनी विचारधारा का समर्थन करने में प्रायः अपनी जाति के विरोध का सामना भी किया है।

इतना ही नहीं लोग यह भी जानते हैं कि प्राचीन साहित्य और दर्शन दोनों के ही क्षेत्र के मोहता जी महान् मुमुक्षु हैं।

लालजी महरोत्रा

(भूतपूर्व मेयर कराची कार्पोरेशन, अध्यक्ष अखिल भारतीय उद्योग व्यापार संघ और वर्तमान में बर्मा में भारतीय राजदूत।)

•

८

एम० एन० राय और मोहता जी

१९४३ की गर्मियों में देहरादून में हमारे घर एक अजनबी दर्शक आया। अनेक कारणों से उसका आना कुछ अजनबी सा लगा। कोई विरला ही नया आदमी बिना सूचना दिये हमारे यहां आता था। जब हम अपने काम में लगे नहीं होते थे तब हम अपने इस दूरस्थ मकान में बड़ा एकान्त और शान्त जीवन बिताया करते थे। दिन में जब एम० एन० राय काम पर लगे होते थे तब भी हमारे मित्र प्रायः नहीं आया करते थे। मैंने अपनी यह आदत बना ली थी कि मैं आने वालों को रोकने के लिए बरामदे में बैठकर काम किया करती थी ताकि काम में या आराम में कोई विघ्न न पड़े। परन्तु १९४३ की गर्मी के शुरू दिनों में आने वाला यह दर्शक एक और कारण से भी अजनबी प्रतीत हुआ। वह वृद्ध सज्जन पुराने ढंग का था और पुराना लिबास पहने हुए था। वह हमारी रैडीकल डेमोक्रेटिक पार्टी के युवक सदस्यों से बिलकुल भिन्न था और उन स्थानीय कांग्रेसियों से भी मेल नहीं खाता था जो राजनैतिक मत-भेद रखते हुए भी व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठा के कारण प्रायः मिलने के लिए आ जाया करते थे।

यह अजनबी दर्शक सेठ रामगोपाल मोहता थे। वे गर्मी की ऋतु हरिद्वार में बिता रहे थे और किसी डाक्टरी सलाह-मशवरे के लिए वे कुछ दिनों के लिए देहरादून आये थे। यह और भी अधिक विस्मयजनक था कि वे एम० एन० राय से मिलना चाहते थे। हमने सोचा कि वे भी उनमें से एक होंगे, जो कि यहां आकर बड़ी दुखी आवाज में यह पूछा करते हैं कि जब सारे नेता जेलों में बन्द हैं तब आप युद्ध का समर्थन क्यों करते हैं और आप महात्मा गांधी की आलोचना क्यों करते हैं? ऐसे ही अन्य प्रश्न भी वे पूछा करते थे। उनके इन प्रश्नों का उत्तर तत्कालीन इतिहास और दर्शन शास्त्र का विस्तार से विवेचन किये बिना नहीं दिया जा सकता था उनके लिए एकमत पर पहुँचने का कोई समान धरातल साधारणतया नहीं होता था और जिसका सन्तोषजनक समाधान उस शिष्टाचारपूर्ण मामूली मुलाकात में नहीं किया जा सकता था।

हमारे लिए यह कितना सुखद आश्चर्य था कि हमने देखा कि पुरातन पन्थी दीख पड़ने वाले सेठ जी न केवल एम० एन० राय की विचारधारा और कार्यकलाप से पूरी तरह परिचित थे अपितु अधिकांश में उनसे सहमत भी थे। उन्होंने उनके साथ अपनी पूर्ण सहमति प्रगट करते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की। हमने उनको केवल [illegible] और मौलिक विचारक ही नहीं पाया, अपितु उनको अत्यन्त मित्र व स्नेही भी अनुभव किया। आरम्भ के पहले ही वार्तालाप तथा विचार-विनिमय के बाद सेठ जी ने कहा कि आपका घर बहुत ही सुन्दर है। हमने उनके साथ बगीचे के चारों ओर एक चक्कर लगाया और मैंने उनके लिए कुछ फूल तोड़ कर इकट्ठे किये। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने उन फूलों को वहीं ही फेंक नहीं दिया अथवा वहीं ही छोड़ भी नहीं दिया जैसा कि उन नाजुक और सुन्दर चीजों के प्रति असावधान लोग प्रायः किया करते हैं परन्तु वे, बड़ी सावधानी से उनको अपने साथ ले गये।

उनके जाने के बाद एम० एन० राय ने मुझे बताया कि वे सेठ जी से कैसे प्रभावित हुए थे। भारतीय दर्शन शास्त्र तथा अन्य शास्त्रों के सम्बन्ध में उनका अध्ययन और गम्भीर ज्ञान उनकी श्रेणी के तथा उनकी सी परिस्थितियों में रहने वाले के लिए असाधारण बात थी। उन्होंने कहा कि कट्टर मारवाड़ी परिवार और [illegible] आलोचनात्मक विचार रखने वाला ही मानसिक और सामाजिक रूढ़ियों तथा परम्पराओं से इतनी शीघ्र ऊपर उठ सकता है।

अगले सात-आठ वर्षों में दोनों में मैत्री का सम्बन्ध कायम हो गया। वे अनेक मामलों में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे और यदि उनकी विचारधारा में कुछ मुद्दे ऐसे भी थे जिन पर वे एकमत नहीं हो सकते थे, फिर भी उनके कारण उनमें आपस का सम्मान और सम्बन्ध कम नहीं हो सका। उसके कारण उन वर्षों में सेठ जी से प्राप्त होने वाली अत्यन्त उदार सहायता भी बन्द नहीं हो सकी। उनकी वह सहायता सदा ही दुर्लभ कृपा एवं शालीनता से प्राप्त होती थी। सेठ जी ने वह केवल इसलिए ही प्रदान नहीं की कि वे एक विद्वान् थे ; परन्तु वे एक सफल व्यवसायी भी थे। वे बहुधा हमको हमारी पुस्तकों, समाचार पत्रों के प्रकाशन आदि के बारे में परामर्श भी देते रहते थे। यह हमारा ही दुर्भाग्य था कि हम उनके सत्परामर्श पर भी अपने सामाजिक व राजनैतिक कार्यों सम्बन्धी प्रकाशनों को कभी भी पैसा कमाने के लिए व्यापाराना ढंग पर नहीं चला सके। हम जो कुछ भी कर सके, वह इतना ही था कि अपने आन्दोलन के प्रति श्रद्धा भक्ति रखने वालों को धन्यवाद दें कि उन कामों को हम जारी रख सके और हम पर किसी प्रकार का कोई ऋण नहीं हुआ। हमारे सब साधन और व्यक्तिगत सहयोग हमारे कार्य को आर्थिक सहायता पहुँचाते रहे।

मुझे एकबार फिर सेठ जी की देहरादून की पहली यात्रा का स्मरण होता है। उनके जाने के बाद हमें अपनी टेबल पर एक बन्द लिफाफा मिला, जिसमें बड़े-बड़े बैंक नोटों के रूप में एक बड़ी भेंट प्रदान की गई थी और उसके लिए एक भी शब्द नहीं कहा गया था। एम० एन० राय ने गद्गद् होकर सेठ जी को धन्यवाद देते हुए अपने पहले ही पत्र में लिखा था कि, "यह वास्तव में ही आपकी बड़ी कृपा थी कि आपने यह सहायता ऐसे समय प्रदान की, जबकि उसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। यह ठीक ऐसे अवसर पर प्रदान की गई, जब कि यहाँ ऐसी युवा महिलाओं का अध्ययन कैम्प चल रहा था, जो कि सार्वजनिक कार्यों में हिस्सा लेने को बहुत उत्सुक थीं। उनमें से ४० के लगभग विविध प्रान्तों से आई थीं। और वे यह सोचकर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लौटीं कि वे देश की भलाई का कुछ कार्य करने के योग्य बन गई हैं। जीवन निर्वाह की मँहगाई के इन दिनों में ऐसे कैम्प का चलाना हमारे साधारण साधनों के लिए एक बहुत बड़ा भार था। इसलिए आपकी यह सहायता हमारे लिए ईश्वर-प्रदत्त ही थी। आप जानते ही हैं कि ईश्वर में मेरा विश्वास नहीं है, परन्तु सज्जनता अथवा भलाई सम्भवतः ईश्वर से भी अधिक बड़ी है और मैं जानता हूँ कि सज्जनता की सराहना और आराधना किस प्रकार की जाती है।"

इन अन्तिम पंक्तियों में एम० एन० राय और सेठ रामगोपाल जी मोहता दोनों का ही चरित्र चित्रित हो जाता है।

श्रीमती एलन राय

स्वर्गीय श्री राय और मोहता जी का पत्र व्यवहार

स्वर्गीय श्री मानवेन्द्रनाथ राय हमारे देश के प्रथम कोटि के क्रान्तिकारी विचारक, दार्शनिक और मर्मशास्त्री थे। विदेशों में रहकर उन्होंने क्रान्तिकारी विचारधारा का गहन अध्ययन किया था। श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "मेरी कहानी" में श्री राय के साथ मास्को में हुई मुलाकात का उल्लेख किया है और लिखा है कि उनके बुद्धि वैभव का मुझ पर गहरा असर पड़ा। वे प्रमुख कम्युनिस्ट थे और कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के पहले भारतीय सदस्य थे। वे चोरी से भारत आए थे। कानपुर में उनको गिरफ्तार किया गया और मेरठ में चलाये गये षड्यंत्र के सुप्रसिद्ध मुकदमे में वे प्रमुख अभियुक्त थे। उन्हें उनके कम्युनिस्ट विचार धारा फैलाने के लिए षड्यंत्र करने के अपराध में सख्त सजा दी गई। मोहता जी के साथ उनका जो संपर्क

सम्पर्क था उसका कुछ परिचय उनके पत्र-व्यवहार से मिलता है। कुछ पत्रों का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।

श्री राय का पत्र

देहरादून—१३ जुलाई, १९४१

प्रिय सेठ जी,

आपकी जिस उदारता के लिए मैं धन्यवाद भेज रहा हूँ उसमें इस कारण से देर हो गई कि मैं हरद्वार के उस स्थान का पता नहीं जानता था जहाँ आप दूसरा माग बिताने वाले थे। वास्तव में यह आपकी बड़ी उदारता थी कि आपने ठीक उस समय सहायता पहुँचाई जबकि उसकी आवश्यकता थी। यह ठीक उस समय प्राप्त हुई जबकि सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा रखने वाली महिलाओं के प्रशिक्षण शिविर के कठिन दिन थे।

उनमें से लगभग ४० तो विभिन्न प्रान्तों से आई थीं और वे यह समझकर पूर्ण सन्तोष के साथ यहाँ से विदा हुई हैं कि उन्होंने अपने को कुछ देश सेवा करने के लिए योग्य बना लिया है। आजकल की मँहगाई के दिनों में इस प्रकार का शिविर चलाना हम लोगों के साधारण साधनों के लिए बहुत बड़ा भार था। इसलिए आपकी सहायता ईश्वर-प्रदत्त थी।

आप जानते हैं कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता लेकिन इतना मानता हूँ कि आवश्यकता तत्काल ईश्वर से भी बड़ी है और मैं जानता हूँ कि किस प्रकार सज्जनता की सराहना और पूजा की जानी चाहिए। मुझे आशा है कि आपने इस स्थान पर आना सर्वथा निरर्थक नहीं समझा होगा और भविष्य में भी मुझसे सम्पर्क बनाये रखने का कष्ट स्वीकार करेंगे।

भवदीय
एम० एन० राय

श्री मोहता जी का उत्तर

बीकानेर जुलाई २०, १९४१

प्रिय श्री राय,

आपका दिनांक १३ का पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं नहीं समझता कि मैंने आपकी कोई सहायता की है। यह उस हार्दिक सहानुभूति का केवल एक संकेत था जो कि देश सेवा के लिए मैं अनुभव करता हूँ और जिसमें आप प्राणपण से जुटे हुए हैं।

आप समानता और पारस्परिक सहयोग के जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं मैं उनसे पूर्ण सहमत हूँ और मैं उनका अपने ढंग से प्रचार और प्रसार करता हूँ। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि आप समय समय पर अपने मिशन की प्रगति के विषय में मुझे सूचित करते रहेंगे।

भवदीय
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

जनवरी ३०, सन् १९५४

प्रिय महोदय,

आपके २५ ता० के पत्र के लिए मैं अनुगृहीत हूँ जो कि मुझे यहाँ भेजा गया है। दिल्ली में हम अपने कार्य के लिए जो व्यर्थ में कर रहे हैं उसके सम्बन्ध मे आपके तर्कपूर्ण विचारो को जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे आश्चर्य है कि क्या आप उनको प्रकाशित करने की अनुमति दे सकेंगे ? यदि आप ऐसा कर सकें तो कृपया वैंगार्ड आफिस (३० फैज बाजार, दिल्ली) को सूचना भेज दें। वस्तुतः यह मेरे लिए बड़ा हर्ष का विषय है कि आप हम लोगों के कार्यों में इतनी रुचि लेते हैं और उसकी सफलता की कामना करते हैं। समाचार पत्रों में हमारे सम्बन्ध में प्रकाशन के बहिष्कार के कारण जनता को हम लोगों की गतिविधि की बहुत ही कम जानकारी मिल पाती है। हम अपनी आशा से भी अधिक गति से आगे बढ़ रहे हैं। हम "वैंगार्ड" के आभारी हैं कि उसके कारण हमारे मित्रों और शुभचिन्तकों को हमारी गतिविधि की जानकारी मिल सकती है। वह हमारे प्रचार व प्रकाशन का एक मात्र साधन है इसलिए हम उसको एक पहली श्रेणी का समाचार पत्र बनाने के लिए इच्छुक हैं। अकल्पित कठिनाइयों के बावजूद भी हम उसको लगभग दो वर्ष से चलाते आ रहे हैं। लेकिन अपना स्वयं का प्रेस न होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी बाधा है। इसमे केवल आर्थिक कठिनाइयाँ ही नही उत्पन्न होतीं अपितु पत्र भी समय पर प्रकाशित नहीं हो पाता। हमारे वे सब प्रयत्न विफल हो जाते हैं जो हम पत्र के प्रचार को बढ़ाने के लिए करते है। हम उसके मुद्रण की व्यवस्था को अधिक संतोषजनक बनाने के लिए उत्सुक हैं। हम इस स्थिति मे नहीं हैं कि अपना निजी प्रेस कायम कर सकें। सम्भवतः आपको मालूम नही है कि हमने केवल कुछ सौ रुपयों से इस पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इसका निर्माण पूर्ण रूप से स्वेच्छापूर्ण मेहनत से किया गया है और अब यह एक स्वावलम्बी पत्र है।

क्या आप इस सम्बन्ध मे हमारी कुछ सहायता करने के लिए विचार कर सकेंगे ? हम आपसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नही चाहते। क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो दिल्ली मे प्रेस लगाने को तैयार हो सके और हमारे पत्र की छपाई को प्राथमिकता दे सके। इसके अलावा हम उसको अपना सभी छपाई का काम दे देंगे जो कि बहुत अधिक है।

सारांश यह है कि हमारी छपाई के काम के सहारे प्रेस को मुनाफे का धन्धा बनाया जा सकता है। अभी इसमें ५० हजार से अधिक पूंजी लगाने की आवश्यकता नही होगी। यदि आप इस सम्बन्ध मे कुछ करने का विचार रखते हों तो हमारे जनरल सेक्रेटरी श्री भी० पी० मानिक एडवोकेट, ३०-फैजरोड, दिल्ली से पूरी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मुझे आशा है कि आप समय समय पर मुझे पत्र देते रहेंगे।

आपका,
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

बीकानेर १८ फरवरी, १९५४

प्रिय महोदय,

इसी १० तारीख का आपका पत्र मुझे प्राप्त हुआ। मेरे मित्र श्री बालकृष्ण मोहता दिल्ली से वापस लौट आए हैं। उनसे महाजन के नाम से किये जाने वाले फिजूल खर्च के विरुद्ध आन्दोलन करने के "वैनगार्ड" से

बड़ी सहायता मिली है। उनका आन्दोलन मेरे विचारों के सर्वथा अनुकूल था। इस सम्बन्ध में आपने जो सहायता की, उसके लिए मेरा धन्यवाद आप स्वीकार करें। मैं जानता हूँ कि अपना निजी प्रेस न होने के कारण आपको साहित्य और "वैनगार्ड" के छापने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता होगा। मेरा सुझाव है कि वैनगार्ड तथा अन्य साहित्य के मुद्रण के लिए एक प्रेस लगाने को एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना की जानी चाहिए और उसकी पूँजी एक लाख रुपये रखी जाय। इस पूँजी का आधा पेशगी वसूल कर लिया जाय। मैं समझता हूँ कि इसके हिस्से जल्दी ही बिक जायेंगे। मैं १०,००० के हिस्से लेने को तैयार हूँ।

इस सुझाव पर विचार करने की कृपा करें और मुझे सूचना दें कि आपको मेरा यह सुझाव पसन्द है कि नहीं।

भवदीय,
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

देहरादून २२ फरवरी, १९४४

प्रिय महोदय,

मुझे अपने पत्र का उत्तर पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि आप हमारे काम में बहुत दिलचस्पी ले रहे हैं। आपका सुझाव हमारी बहुत सी कठिनाइयों को दूर कर सकता है। लेकिन हम लोग व्यापारी नहीं हैं। एक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना, और विशेषतः उसके लिए धन जुटाना हमारे जैसे नौसिखुओं का काम नहीं है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि आपका सुझाव व्यवहार में तभी आवेगा जब कि आप इस लिमिटेड कम्पनी को अपना ही समझकर स्थापित करने का कष्ट स्वीकार करेंगे। यदि आप किन्हीं अन्य कामों में लगे हुए हों तो अपना कोई आदमी नियुक्त करने की कृपा करें, जो आपके मार्ग-दर्शन में इस काम को पूरा कर सके।

मुझे आशा है कि आप इस विषय पर उचित ध्यान देंगे और अपनी सुविधानुसार उत्साहपूर्वक उत्तर देने की कृपा करेंगे।

भवदीय,
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

बीकानेर २८ मार्च, १९४४

प्रिय साथी राय,

मुझे अभी आपका दिनांक १४ का पत्र प्राप्त हुआ। मैंने "वैनगार्ड" में और "इन्डिपेन्डेन्ट इण्डिया" में "आर्थिक विकास की जन योजना" को देखा है। मुझे यह बहुत पसन्द आई और विचारपूर्ण भी प्रतीत हुई। मैं आपके इस विचार से भी पूरी तरह सहमत हूँ कि प्रेस की स्थापना के लिए हमें कुछ भी सम्भावित भी "कोशिश" करनी चाहिए। मुझे पता चला है कि लखनऊ का नेशनल हेराल्ड प्रेस या तो बिकने वाला है, या उसे ठेके पर दिया जा सकता है। यदि उचित शर्तों पर उसे ठेके पर लिया जा सकता है तो उसके लिए कुछ व्यवहार करना ठीक होगा। मुझे बताया गया है कि प्रेस "अपटूडेट" और पूर्ण है। आपके विचार के लिए यह एक सुझाव है।

जोधपुर जाते समय रास्ते में श्री सत्यपाल शास्त्री जोशी से यहाँ बातचीत हुई थी और उससे किताब

मुझे वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके शास्त्रज्ञान और उसको आजकल की प्रगति के लिए काम में लाने के उनके अनुभव से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। अपने उद्धार के लिए हमें ऐसे पंडितों की विशेष आवश्यकता है। जिस कार्य और उद्देश्य का आप प्रतिपादन कर रहे हैं उसके लिए तथा प्राचीनतम इतिहास से लाभ उठाने के लिए वे सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

मैं सौ-सौ रुपयों के दस करेन्सी नोटों के आधे हिस्से इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ। शेष आधे हिस्से इस पत्र की प्राप्ति की मुझे सूचना मिलने के बाद भेजे जायेंगे। अपने कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आप जैसा उचित समझें वैसा इन एक हजार रुपयों का उपयोग कर सकते हैं।

विनम्र आभार के साथ।

आपका
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

देहरादून अप्रैल २, १९५४

प्रिय सेठ जी,

आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी के विचारों को आपने बहुत पसन्द किया। नेशनल हेराल्ड प्रेस की स्थिति को जानने के लिए मैं लखनऊ पत्र लिखवा रहा हूँ। यह एक रोटरी मशीन है और मुझे डर है कि कहीं यह कीमती न हो। इसको किराये पर लेना भी बहुत मँहगा होगा। जैसे ही हमारे पास पूरी जानकारी आवेगी मैं आपको उसकी सूचना दूँगा।

आपकी सहायता के लिए मैं आपका आभारी हूँ। मेरे दिल्ली के पते पर नोटों के शेष आधे हिस्से भी भिजवा देने की कृपा करें।

मुझे आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि यह आपकी सहायता कितनी कीमती है, विशेष रूप से उस आन्दोलन के लिए जो कि हम अपनी आर्थिक विकास की योजना को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रारम्भ करने वाले हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने इसे पसन्द किया है।

आपका
एम० एन० राय

बीच में कुछ वर्षों तक आपसी पत्र व्यवहार का यह सिलसिला बन्द रहा। फिर दुबारा जो पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ उसमें से भी कुछ महत्वपूर्ण पत्र यहाँ दिये जा रहे हैं।

श्री राय का पत्र

१३, मोहिनी रोड
देहरादून
२ अक्तूबर, १९५०

आदरणीय सेठ जी,

आपकी नई पुस्तक की पहुँच की सूचना देने के लिए मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। उसके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार करें।

यह देखकर कि आपने मुझे नहीं भुलाया, मेरा हृदय गद्गद् हो गया और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

जोधपुर और बीकानेर के कुछ मित्र मुझसे राजस्थान का दौरा करने के लिए आग्रह कर रहे हैं। बहुत सम्भव दिसम्बर के मध्य में मैं यह दौरा करूँगा। आशा है कि आप उस समय बीकानेर होंगे। उस अवसर आपसे मिलकर और आपके प्रति अपना सम्मान प्रगट करके मुझे बड़ी प्रसन्नता अनुभव होगी।

शुभकामना और सम्मान सहित।

आपका
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

नई दिल्ली

मेरे प्रिय साथी राय,

आपका २ अक्तूबर का पत्र यथासमय मिला उसके लिए धन्यवाद। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप दिसम्बर के मध्य में इधर आयेंगे और चिरकाल बाद आप से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। आप पूरी तरह स्वस्थ होंगे।

आदर सहित।

आपका
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

१३, मोहिनी रोड
देहरादून
२८ अक्तूबर, १९५०

प्रिय सेठ जी,

आपके पत्र के लिए धन्यवाद। मुझे इसको प्राप्त करके बड़ी प्रसन्नता हुई। पिछले कुछ समय आपके साथ पत्र-व्यवहार नहीं हो सका, इसका मुझे बड़ा दुःख है।

बहुत सम्भव दिसम्बर के मध्य में मैं आपसे बीकानेर में मिल सकूँगा। मैं आपको अपनी राजस्थान यात्रा के उद्देश्य से अवगत कर देना चाहता हूँ।

मुझे आशा है कि आप हमारी संस्था की गतिविधि से परिचित होंगे। पर्याप्त धन के अभाव से मुझे दुःख है कि हम कोई विशेष प्रगति नहीं कर सके। आपकी उदार सहायता के अलावा हमको कोई विशेष सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। परन्तु मैं यह नहीं मानता कि उपयुक्त क्षेत्र में प्रयत्न करने पर यह साधन भी नहीं जुटाये जा सकेंगे। मेरी राजस्थान की यात्रा का यही उद्देश्य है, मुझे आशा है कि इसके लिए मुझे आपका सहयोग प्राप्त होगा।

शुभ कामना और सम्मान सहित।

आपका
एम० एन० राय

श्री राय का पत्र

१३, मोहनी रोड
देहरादून
१० दिसम्बर, १९५०

आदरणीय सेठ जी,

मैंने बीमारी के कारण शरद ऋतु मे बीकानेर और जोधपुर की यात्रा स्थगित कर दी है। मुझे पता चला है कि छगनलाल जी अभी दिल्ली में हैं और कुछ समय तक बीकानेर नही जा सकेंगे। उनकी सलाह भी यह है कि फरवरी के अन्त या मार्च के शुरू के लिए मुझे अपनी यात्रा स्थगित रखनी चाहिए।

"वैनगार्ड" के भूतपूर्व और "फाट" के वर्तमान सम्पादक श्री रामसिंह भाई से मुझे पता चला है कि आप दिल्ली आने वाले हैं। मैं आपसे तुरन्त नही मिल सकूँगा इसलिए मैंने उनको अपनी ओर से आपसे मिलने के लिए कहा है। वे आपके सामने मेरी ओर से विचार के लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत करेंगे, जिससे कि आप अपना कुछ निर्णय फरवरी के अन्त तक कर सकें, जबकि मैं आपसे बीकानेर में मिलूँगा।

आपको मालूम है कि मैंने राजनीति से पूरी तरह हाथ खींच लिया है और उसके कारण भी सार्वजनिक रूप से प्रगट कर दिए हैं। अनुभव से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मेरा वर्षों पुराना अभिमत बिलकुल ठीक है कि राजनीतिक गतिविधि और आर्थिक पुनर्निर्माण से पहले वर्षों तक देश में सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्र मे काम किया जाना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। सच्चे अर्थों में स्वतंत्र और प्रजातंत्री समाज की नींव रखी जानी अभी बाकी है। मैं अपना शेष जीवन इसी काम मे लगाना चाहता हूँ।

कुछ मित्रों की सहायता से मैंने यह काम कुछ वर्ष पहले अपनी शक्ति अनुसार सामान्य रूप मे शुरू कर दिया था। हमारा पहला लक्ष्य यह है कि कुछ निस्वार्थ विचारकों का पहले एक दल तैयार किया जाय जो कि जनता तक सांस्कृतिक और बौद्धिक स्वतंत्रता का संदेश पहुँचाने का काम कर सकेगा। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि हमारा काम जनता को शिक्षित करने वालों को प्रशिक्षित करना है।

मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे प्रारम्भ से ही कम-से-कम आवश्यक धन के अभाव की भारी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। अब यह स्थिति आ गई है कि मुझे इस काम को छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ेगा अन्यथा मुझे कुछ उदार और प्रगतिशील धनवानों का इस कार्य के लिए संरक्षण प्राप्त करना होगा। इसलिए मैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्तिम प्रयत्न के रूप मे राजस्थान की यात्रा करना चाहता हूँ।

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मेरे विचारों के साथ आपकी सहानुभूति है, भले ही कुछ मामलों में आपका मुझसे मतभेद हो। हर हालत में मैं आप पर निर्भर रहने का साहस कर सकता हूँ और आपको यह अवश्य ही देखना चाहिए कि मुझे अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में निराशा का सामना करके उनको व्यर्थ में न गँवाना पड़े। मैं आप से इस बात में पूरी तरह सहमत हूँ कि सांस्कृतिक और बौद्धिक पुनर्जागरण के लिए प्रेरणा प्राप्त की जानी चाहिए और वह भारत के इतिहास से प्राप्त की जा सकती है। आपके ध्यान में यह आया होगा कि भारतीय इतिहास के अनुसंधान का कार्य हमारी संस्था के कार्यक्रम में मुख्य स्थान रखता है। मैं भारत के सांस्कृतिक और दार्शनिक विकास का इतिहास लिख रहा हूँ। परन्तु यह आपको मालूम नहीं होगा कि सप्ताह के अधिक दिन मुझे अपनी आजीविका के निर्वाह मात्र के लिए पैसा जुटाने को अनेक पत्रों के लिए लेख लिखने में लगा देने पड़ते हैं इसी कारण मैं कुछ प्रगति नहीं कर सकता हूँ।

मेरे पास सिवाय इसके दूसरा कोई रास्ता नहीं है कि मैं आपसे उदार संरक्षण के लिए सादर प्रार्थना करूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आप इस संस्था के बारे में कुछ गंभीर दिलचस्पी ले सकें, तो राजस्थान

के ऐसे अनेक धनीमानी सेठ साहूकार हमारी सहायता कर सकेंगे जो ऐसे साहसपूर्ण कार्यों में प्रायः सहयोग देते रहते हैं। इस विश्वास से मैं फरवरी के अन्त में बीकानेर आऊंगा।

शुभ कामनाओं और विशेष सम्मान सहित।

आपका,
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

मोहता भवन
बीकानेर
१८ दिसम्बर, १९५०

प्रिय श्री राय,

आप के २० अक्तूबर और १० दिसम्बर के दिल्ली के पते पर लिखे गए पत्र यथा समय प्राप्त हो गए। मुझे यह जान कर दुःख हुआ कि आप ने अस्वस्थता के कारण राजस्थान की अपनी प्रस्तावित यात्रा फरवरी के अन्त या मार्च के शुरू के लिए स्थगित कर दी है। मुझे यहां आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता होगी। मुझे आप को यह सलाह देनी आवश्यक प्रतीत होती है कि आप इस प्रदेश में आकर अपने कीमती समय, शक्ति और धन को व्यर्थ में खर्च न करें। मैं यह अनुभव करता हूं कि जिस उद्देश्य से आप यहां आयेंगे, वह पूरा नहीं होगा, मुझे यहां ऐसे अधिक आदमी दीख नहीं पड़ते, जो आप द्वारा प्रतिपादित ऊंचे विचारों और गम्भीर एवं गहन दर्शन शास्त्र को समझ सकें और उनकी सराहना कर सकें। धनी लोगों में ऐसों का और भी अधिक अभाव है। वे अधिकतर अशिक्षित और अत्यन्त स्वार्थी हैं। वे आप से मिलना भी नहीं चाहेंगे। वे स्वार्थ जाल में उलझे हुए, अपनी सम्पत्ति में मदान्ध, धार्मिक अंध विश्वासों और पुरातन कट्टरता में फंसे हुए हैं। जहां तक मेरा प्रश्न है, यदि स्वास्थ्य अनुकूल रहा तो मैं गरमियों या बरसात के दिनों में देहरादून आकर आप से मिलूंगा और बात चीत करके यह तय करूंगा कि मैं आपके शुभ कार्य में क्या सहयोग दे सकता हूं?

मेरा अंगरेजी का ज्ञान बहुत मामूली है इसलिए मैं आप के ऊंचे पाण्डित्य पूर्ण लेखों को उनके पारिभाषिक शब्दों और परिभाषाओं के कारण समझने में असमर्थ हूं। परन्तु आप की संस्था के साहित्य से मैं यह जान सका हूं कि आप व्यावहारिक वेदान्त की पुरानी विचारधारा के बहुत नजदीक पहुंचते जा रहे हैं। आप सरीखे विद्वानों और स्वतन्त्र विचारकों को अंत में उसको अपनाना ही चाहिए। मुझे यह भी विश्वास है कि आप का अनुसंधान कार्य जैसे प्रगति करेगा, वैसे आप इसके अधिक नजदीक आते जायेंगे। आप यह अनुभव करेंगे कि आप लोगों को जिस सांस्कृतिक, और बौद्धिक, उससे भी अधिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील हैं उसको उपनिषदों और गीता से प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि उसका अध्ययन मेरी टीका और व्याख्या के प्रकाश में किया जा सके। मैंने अपनी पुस्तकों "गीता का व्यवहार दर्शन" और "सत्य की खोज" में जो कि हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं, इन विचारों को बहुत ही स्पष्ट रूप में प्रकट किया है। यह कठिनाई है कि आप हिन्दी नहीं जानते अन्यथा मेरी पुस्तकें पढ़कर उन पर विचार कर सकते जो मैंने लिखा है। यह दुर्भाग्य है कि बड़े-बड़े विद्वानों, पंडितों और राजनीतिज्ञों की मान्यताएं धर्मान्धता, साम्प्रदायवाद, अंध विश्वास, पुरातन पंथी कर्मकाण्ड, मिथ्या धारणा और भ्रम भावना के आधार पर टिकी हुई हैं। वे भारत पतन के लिए उत्तरदायी हैं और इस देश के शिक्षित व अशिक्षित सभी की स्वतन्त्र विचार शक्ति को उन्होंने कुण्ठित कर दिया है।

जैसा कि आप को मालूम है सर्वसाधारण हिन्दू समाज का बहुमत और विशिष्ट वर्ग भी गीता का अंध भक्त है। वह उनके उपदेशों का यथार्थ मर्म नहीं जानता। उपनिषदों के लिए भी उसमें बड़ा सम्मान है। स्थिति यह है कि सब धार्मिक और साम्प्रदायिक नेता अपनी साम्प्रदायिक कपोल कल्पनाओं को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए गीता और उपनिषदों को प्रमाण के रूप में उपस्थित करते हैं। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि जिन शिक्षितों को आप प्रशिक्षण देना चाहते हैं उनको स्वयं इन प्राचीन महान ग्रन्थों के व्यावहारिक दर्शन के वास्तविक मर्म को भली प्रकार समझ लेना चाहिए और मिलावटी, नकली, जाली तथा स्वार्थपूर्ण व्याख्याओं को उन्हें अलग रख देना चाहिए। इसी प्रकार वे आप के विचार के अनुसार जनता को सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ा सकेंगे और उनके अंधकार को दूर करके उनको प्रकाश दिखा सकेंगे। मेरे विचार से इस प्रकार आप को अधिक आसानी से सफलता मिल सकेगी। जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है इस देश के लोग अपनी स्वतन्त्र विचार की शक्ति खो चुके हैं और अंधविश्वास के गुलाम बन चुके हैं। उनको इस अंध विश्वास से लाभ उठाकर उनको उससे मुक्त किया जाना चाहिए। मैं यह साहस-पूर्वक कह सकता हूँ कि देश में फैली हुई इस पक्षपात की बीमारी का यह सरल और निश्चित इलाज है।

मेरा विश्वास है कि आप उस बीमारी से सर्वथा निरोग होंगे, जिसका उल्लेख आपने अपने पत्र में किया है।

शुभ कामनाओं के साथ।

आपका
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

कलकत्ता
२५ जनवरी, १९५१

आदरणीय सेठ जी,

मेरे पत्र के उत्तर में आपका पत्र मुझे दिसम्बर के मध्य में बम्बई में मिला। तब से मैं निरन्तर भ्रमण में हूँ। मुझे आप के विचारों और सुझावों का उत्तर देने में जो अनिवार्य देरी हुई उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैंने उन पर बहुत गम्भीर विचार किया है और उनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आपकी अंगरेजी निर्दोष है। मुझे दुख है कि मैं आप के साथ हिन्दी में पत्र व्यवहार करने में असमर्थ हूँ। फिर भी मैं आप की रचनाएँ तथा अन्य उपयोगी रचनाएँ भी पढ़ सकता हूँ। यदि मैं अंगरेजी में लिखना पसन्द करता हूँ तो उसका कारण यह है कि उसमें लिखी गई पुस्तकें उन लोगों तक पहुँचती हैं जिनको हमें पहले प्रभावित करना चाहिए, भले ही वे थोड़े हैं परन्तु वे सुशिक्षित और प्रगतिशील हैं। कुछ समय बाद हिन्दी देश की सार्वभौम भाषा बन सकती है, परन्तु मुझे तो दक्षिण और बंगाल के लोगों में भी इस समय अपने विचारों का प्रचार करना है और यह तभी हो सकता है जब कि मैं उन्हें अंगरेजी में प्रकट करूँ। हिन्दी क्षेत्रों में भी जो मेरे विचारों को जानना चाहते हैं वे आसानी से अंगरेजी में उनको पढ़ सकते हैं।

मैं इससे पूरी तरह सहमत हूँ कि आम जनता के लिए उसकी भाषा का ही प्रयोग किया जाना चाहिए, परन्तु भारत के सारे लोग एक ही भाषा नहीं बोलते और किसी के लिए भी भारत की सब भाषाओं में बोलना और लिखना सम्भव नहीं है। इस कठिनाई में यही मार्ग है कि उस भाषा का सहारा लिया जाय,

जिसको सारे देश के शिक्षित और प्रगतिशील लोग समझ सकते हैं। एक बार वे किसी बात को समझ लें तो वे आम जनता के साथ उसकी मातृभाषा में बात कर सकेंगे।

कोई भी भारत की समस्त भाषाओं में नहीं लिख सकता। मुझे बड़ी खुशी होगी यदि मेरी पुस्तकें समस्त भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की जा सकें। यह आर्थिक साधनों पर निर्भर है जिनका मेरे पास अभाव है। मैं यह सोचने का साहस कर सकता हूँ कि जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, आप मेरी सहायता करेंगे। यदि कुछ सहायता प्राप्त हो सके तो मेरे प्रकाशक मेरी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद और आप की बहुमूल्य पुस्तकें सरीखे अन्य हिन्दी साहित्य का भी प्रकाशन कर सकते हैं।

आप ने प्राचीन भारत के बुद्धिवादी विचारों पर जो जोर दिया है, उसके सम्बन्ध में मैं अपनी संस्था के उद्देश्यों तथा नियमावली की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वे ये हैं—भारतीय इतिहास का अनुसंधान करना, प्रेरणा के स्रोतों का पता लगाना और वर्तमान स्थिति में सुधार कर उसका पुनर्निर्माण करना। हम यह सब काम सामान्य रूप से कर रहे हैं। यदि आवश्यक साधन सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सके तो हम उसको कुछ अधिक रूप में कर सकते हैं। मैं यह साहस और आशा रखता हूँ कि आप के सहयोग से ऐसे कुछ धनी लोगों का संरक्षण प्राप्त हो सकेगा जो कि रचनात्मक कार्यों में अपना सहयोग देते रहे हैं। मुझे बताया गया है कि जयपुर के सेठ सोहनलाल जी को आप की प्रेरणा से इस कार्य के लिए तैयार किया जा सकता है। ऐसे कुछ दूसरे लोग भी हो सकते हैं।

इसलिए मैं फरवरी के अंत में राजस्थान की यात्रा का विचार त्यागना नहीं चाहता। आप पर अपनी संस्था के लिए कुछ धन जमा करने को मैं निर्भर हूँ। हमारी तुरन्त आवश्यकता २ लाख रुपये की है। इससे हम अपनी संस्था का विस्तार करके कुछ विद्वानों और शिक्षकों के निवास की व्यवस्था कर सकेंगे।

मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आप आगामी ग्रीष्म में देहरादून पधारेंगे। परन्तु हम बीकानेर में पहले ही मिल सकेंगे, जैसा कि मैं चाहता हूँ। मैं इस समय आप के सामने आपके विचार के लिए हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध में एक योजना प्रस्तुत करूँगा। हमारी प्रकाशन संस्था एक निजी लिमिटेड कम्पनी है। इस समय मेरी जो रायल्टी मुझे दी नहीं जा सकी है उस रकम के हिस्सों के कारण संस्था के अधिकांश हिस्से मेरे नाम पर हैं। प्रारम्भिक पूँजी कुछ मित्रों ने आपस में जुटा दी थी। कम्पनी पर किसी प्रकार का कोई देना नहीं है इसलिए उसके काम काज को फैलाने का असीम क्षेत्र विद्यमान है। परन्तु उसके लिए कुछ अधिक पूँजी की आवश्यकता है। यदि आप चाहें तो आप कम्पनी का नियन्त्रण अपने हाथों में ले सकते हैं और उसके लिए बेचे हुए हिस्से अपने नाम कर सकते हैं। अधिकृत पूँजी १ लाख है। ४० हजार के हिस्से बिक चुके हैं। ३० हजार के हिस्से मेरी रायल्टी के बदले के हैं। दूसरे लिफाफे में कम्पनी की नियमावली और मेमोरेण्डम के कागज भेजे जा रहे हैं। मुझे आशा है कि आप मेरे इस सुझाव पर मेरे बीकानेर पहुँचने तक विचार कर लेंगे।

शुभ कामनाओं और अत्यन्त सम्मान के साथ।

आपका

एम० एन० राय

९

मोहता जी की मन्थन शक्ति

मुझे अब स्मरण नहीं कि मैंने श्री मोहताजी को कहाँ देखा और कब देखा; पर कहीं देखा है अवश्य कदाचित् ज्वालापुर महाविद्यालय में। मैं अब ७८ वर्ष का हो गया हूँ और दो एक वर्ष में ८० के पेट में चला जाऊँगा इसलिए इतनी पुरानी बात आज याद नहीं आ रही है। पुरानी स्मृतियों पर नई स्मृतियों का ढेर पड़ा हुआ है। ऊपर की स्मृतियों का ढेर निकलने पर ही पुरानी स्मृतियाँ जाग सकती हैं।

मुझे स्मरण आ रहा है कि बहुत वर्ष पूर्व मोहता जी की ओर से महाविद्यालय को कोई दान मिला था, शायद भूमि मिली थी। तब तो महाविद्यालय बहुत छोटा था, उसका इतना विस्तार नहीं था—अब तो बड़ा विस्तार है। शायद उस समय का वह दान है। परन्तु दान की वजह से मैं मोहता जी को इतना नहीं जानता जितना कि उनको उनकी व्यावहारिक गीता के कारण जानता हूँ—बहुत वर्ष हो गए मोहता जी ने अपनी गीता, मेरे पास आदरार्थ भेजी थी अथवा किसी ने मुझे लाकर दी थी मैं कह नहीं सकता—उस गीता को मैं दो-तीन बार देख गया था अवश्य। उन्होंने गीता के तत्त्वज्ञान को व्यवहार के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है अवश्य—और मुझे आश्चर्य हुआ कि यह लक्ष्मीपुत्र गीता पर लिखने बैठा है और व्यावहारिक मार्ग का दिग्दर्शन करा रहा है, देखें क्या कहता है, कैसे व्यवहार से मेल बैठाता है—मैंने स्वयं गीताविमर्श लिखा था जेल में। उस समय मुझे गीता-सम्बन्धी बीसियों टिप्पणियों, भाष्यों को देखने का अवसर मिला था—इसलिए मैं उत्सुकतापूर्वक उनकी गीता को देख गया—और मुझे प्रतीत हुआ कि मोहता जी ने अपने ढंग से उस पर अच्छा प्रकाश डाला है—मुझे यह अब स्मरण नहीं है कि मुझे उनकी कौन-सी विवेचना अच्छी लगी और कौनसी नहीं लगी। अब उनकी पुस्तक मेरे सामने नहीं है। इस समय मैं पर्वत पर हूँ। इसलिए मैं स्पष्ट रूप से भेद-प्रभेद कुछ न लिख सकूँगा। मैं कोई मोहता जी का मित्र नहीं हूँ जो गुण ही गुण देखता जाऊँ—और शत्रु तो हूँ ही नहीं जो दोषान्वेषण अथवा छिद्रान्वेषण करूँ। मैं तो एक मध्यममार्गी समालोचक हूँ और इसीलिए लिखता हूँ कि मोहता जी ने जो कुछ लिखा है उसमें उनका बुद्धि कौशल स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है।

गीता के विषय में विद्वानों ने इतना मन्थन किया है, इसके इतने भाष्य और इतनी टिप्पणियाँ लिखी हैं कि पूछिये नहीं—अब भी लोग लिखे जा रहे हैं और सम्भव है यह क्रम प्रलय तक चलेगा, चलता रहेगा।

मुझे स्मरण आ रहा है कि उदयपुर के पानी महल में मैंने एक ऐसा चित्र देखा था कि जिसके सामने खड़े होने से वह ऊँट प्रतीत होता था। एक कोने में बायीं ओर खड़े होने से वह व्याघ्र प्रतीत होता था, दायीं ओर कोने से वह सिंह-सा दिखलाई पड़ता था। कारीगर की कुशाग्रबुद्धि और कुशलता का एक सुन्दर अनुपम नमूना था वह।

इसी प्रकार गीता को जिस किसी ने, जिस किसी स्थान से खड़े होकर, जिस किसी दृष्टि से देखा उसको कुछ न कुछ विभिन्न दिखलायी पड़ा और अब भी दिखलाई पड़ रहा है। गीता में ध्यान योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि का दिग्दर्शन है पर मुख्ययोग क्या है यही पर मतविभ्रम रहता है।

कहने की अपनी-अपनी शैली ही तो है। लेखक, वक्ता अथवा कलाकार सब किसी पर लिखता हुआ भी अपने ढंग में, लेख में, भाषण में किसी एक विशिष्ट बात पर जोर देता ही है—इस दृष्टि से देखा जाय तो भगवान् कृष्ण का उद्देश्य केवल यह था कि युद्ध क्षेत्र में स्पष्ट गर्जना करके किरीट, किरीटधारी होकर रथ के कोने में बैठने वाले अर्जुन को अपने स्वभावनियत कर्म अर्थात् युद्ध में प्रवृत्त किया जाय। इसीलिए, उनको

१०

प्रगतिशील मोहता जी

यों तो पहले सन् १९२४ में जब मैं कराची प्रचार के लिए गया था तो वहाँ पर सेठ रामगोपाल जी मोहता अपना लोहे का व्यापार चला रहे थे। लेकिन पब्लिक कामों में उनकी उस समय भी बड़ी रुचि थी। नगर में मेरे कई व्याख्यान हुए और मेरी उनसे बराबर भेंट होती रही। वे दिन थे मेरे पोलिटिकल जीवन के और मैं देश की स्वाधीनता का दृष्टिकोण रखकर सब प्रकार के विषयों पर व्याख्यान देता था। हिन्दी प्रचार का कार्य मुख्यतया उस समय मैं किया करता था और लोगों को यह समझाता था कि एक लिपि हुए बिना यह विशाल देश संगठित नहीं हो सकता। सेठ जी उन दिनों "आयरन किंग" (लोहे के राजा) कहलाते थे और नगर में उनका बड़ा प्रभाव था। अपने यहाँ बुलाकर उन्होंने मेरा आदर-सत्कार किया था। वे दिन मुझे भूल भुला गये। नेत्रों के कष्ट के कारण मैं पब्लिक जीवन से ज़रा दूर हटता गया, तो भी राजनीतिक क्षेत्र में जो मेरी अभिरुचि थी, वह बराबर बनी रही, और देश के बड़े नेताओं के साथ मेरा बराबर सम्पर्क रहा। मैं धनी पुरुषों के द्वार पर जाया नहीं करता और स्वावलम्बी सन्यासी होने के नाते अपने खर्च के लिए मैं पैसा कमा लेता हूँ। इसी कारण सेठ जी से मेरा किसी प्रकार का सबंध नहीं रहा था।

सन् १९५४ में मैं जब ईस्ट पटेल नगर नई दिल्ली गया तो सेठ जी मेरे स्थान पर मुझे ढूँढते हुए आ निकले, और मेरी पुस्तकों का एक सेट खरीद लिया। थोड़ी सी बातचीत में मैंने भाँप लिया कि कराची के ये प्रसिद्ध लोहे के व्यापारी धर्म तक सेवा के कार्यों में दिलचस्पी लेते हैं, इस कारण जब मैं ज्वालापुर अपने निकेतन में आ गया तो उनके विषय में अपने प्रेमियों से पूछताछ करनी आरम्भ की। मुझे पता लगा कि सेठ रामगोपाल जी मोहता यद्यपि धनी व्यक्ति हैं, किन्तु हैं बड़े प्रगतिशील और वे पुरानी दकियानूसी रूढ़ियों को पसन्द नहीं करते। रूढ़िपन्थी बीकानेर के दकियानूसी मारवाड़ी समाज के एक सेठ में आधुनिक प्रगतिशीलता आ जाये, यह मेरे लिए बड़े अचम्भे की बात थी, इस कारण मैं उनके विषय में अधिक जानने के लिए उत्सुक हो उठा।

इसी बीच में मेरे कानों में यह खबर पहुँची कि हमारे कुछ साहित्य-प्रेमी सज्जन सेठ जी को अभिनन्दन भेंट करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। मैं इस प्रकार की योजनाओं में कुछ अधिक रुचि नहीं रखता हूँ। किन्तु जब मेरे पास मेरे अत्यन्त प्रेमी पं० सत्यदेव विद्यालंकार का पत्र इस विषय का पहुँचा और उन्होंने मुझ से आग्रह किया कि मैं उस अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए दो लेख लिखूँ—एक तो "सेठ जी के सम्बन्ध में" और दूसरा "विचार-क्रान्ति का रूप" विषय पर—तो मेरी अभिरुचि जाग उठी। क्रान्ति के विषय में मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ। आजकल मेरे मन में भीषण क्रान्ति की लहरें उथल-पुथल मचा रही हैं। मैं सोचता था कि अपने अन्दर की ज्वाला को मैं देशवासियों के सामने किस प्रकार प्रकट करूँ। मेरे हाथ में कोई पत्रिका नहीं—और न है कोई समाचार पत्र, इस कारण मन मसोस कर बैठ रहा था।

जुलाई १९५७ की २१वीं तारीख को एक सज्जन मुझ से भेंट करने आये। पूछने पर पता लगा कि वे सेठ रामगोपाल जी मोहता के पास कार्य करते हैं। बातचीत के बाद उन्होंने मुझे सेठ जी के यहाँ भोजन का निमन्त्रण दिया, जिसे मैंने ईश्वर का भेजा हुआ समझा, क्योंकि सेठ जी से साक्षात्कार करने की मेरी प्रबल इच्छा हो रही थी। २४ जुलाई को सवेरे साढ़े आठ बजे मैं उन सज्जन के साथ सेठ जी की मोटर में सवार होकर साहित्य भवन की ओर चला। हरिद्वार में जितने मनमोहक सुन्दर भवन बने हुए हैं, वे प्राय: [illegible]

है। सेठ जी जहाँ ठहरे हुए थे वह बिल्कुल भागीरथी के तट पर था, इस कारण मुझे कई-सीढ़ियाँ उतर कर उनके पास पहुँचना पड़ा। सेठ जी ने बड़े आदर से मुझे आसन पर बिठलाया और भोजन की तैयारी हो गई। भोजनोपरान्त हमारा वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। मैं एक जबरदस्त आस्तिक व्यक्ति हूँ, जिसकी ईश्वर पर अटूट श्रद्धा है। प्रायः लोग बड़े-बड़े धार्मिक ग्रन्थों को पढ़कर सिद्धांत स्वीकार किया करते हैं और उन्हें अपने धर्म का अंग बना लेते हैं। मुसलमान समाज में पैदा हुआ व्यक्ति कुरान के सिद्धान्तों को जन्म से ही स्वीकार कर लेगा, इसी प्रकार एक ईसाई माँ-बाप के घर में पैदा हुआ व्यक्ति बाइबिल को ईश्वरकृत मानने लग जाता है, ऐसे ही सनातन धर्मी, सिख, जैनी, और शैव आदि उन समाजों में जन्म लेने के कारण इन सिद्धान्तों के अनुयायी बन जाते हैं, लेकिन मैं उनसे भिन्न व्यक्ति हूँ। मैं ईश्वर को इसलिए नहीं मानता कि वेद उसकी चर्चा करते हैं अथवा उपनिषदें उसका बखान करती हैं या गीता या रामायण ने उसका गुण वर्णन किया है—नहीं, नहीं। मेरा ईश्वर तो मेरे व्यक्तिगत अनुभवों पर खड़ा है और मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर उस सृष्टि-कर्ता में विश्वास रखता हूँ।

१९वीं शताब्दी में प्रगतिशील व्यक्ति का लक्षण यह होता कि वह ईश्वर को नहीं मानता था। १९वीं शताब्दी के बड़े-बड़े क्रान्तिकारी वे लोग हुए जिन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को मानने से इनकार कर दिया। राबर्ट इंगरसोल, टौमस पेन, वाल्टेयर और रूसो आदि ऐसे ही व्यक्ति थे। वह युग था बाइबिल के विरोधियों का। किन्तु आज ईसा की २०वीं शताब्दी में, पाश्चात्य जगत के गम्भीर विचारक सृष्टिकर्ता के अस्तित्व को स्वीकार करने लगे हैं। परन्तु भारतवर्ष चूंकि सन् १९४७ के अगस्त मास में स्वाधीन हुआ है इसलिए यहाँ की अर्वाचीनता अभी तक १९वीं शताब्दी का द्वार खटखटा रही है। हमारे प्रगतिशील विचारक यह समझते हैं कि वे यदि ईश्वर को मानने लग जायेंगे तो उनकी प्रगतिशीलता खत्म हो जायगी।

भोजनोपरान्त हमारी चर्चा प्रारम्भ हुई। जब मैंने अपना ईश्वर पर ऐसा दृढ़ विश्वास बतलाया तो सेठ जी आश्चर्य चकित होकर पूछने लगे कि इसका प्रमाण क्या है? इस प्रकार का वार्तालाप मेरे साथ नास्तिक नवयुवकों का बराबर होता रहता है, वे कहा करते हैं कि सृष्टि का कर्ता कोई नहीं—यह दुनिया तो अपने आप बन गई है—जर्मनी में एक बार इसी प्रकार की चर्चा हो गई थी तो मैंने नास्तिक व्यक्तियों के सुन्दर चित्र की ओर इशारा करके यह कहा था कि यह तैल चित्र भी आप ही आप बन गया है। उस समय वे अत्यन्त विस्मित हो उठे थे और कहने लगे—भला यह तैल चित्र आप ही आप कैसे बन सकता है, तब मैंने मुस्करा कर उनसे कहा था कि जब यह तैल चित्र आप ही आप नहीं बन सकता तो जो दिव्य चित्र रात को अपनी रात के समय आकाश का मैं दिखलाता हूँ, जब चन्द्रमा तारे और दूध धारा अपनी रमणीय छवि दिखलाते हुए दर्शक का मनोरञ्जन करते हैं तो वह चित्र आप ही आप कैसे बन सकता है? मैंने सेठ जी को समझाया कि इसे अस्तित्व है यह कहने का कि हम उसके विषय में अभी तक कुछ नहीं जानते किन्तु जिन लोगों ने जाना है उनसे सीखने का प्रयत्न तो करना चाहिए, मैं अपने ७६ वर्षों के अनुभव से यह कह सकता हूँ कि जब-जब मैंने ईश्वर का दरवाजा खटखटाया है, उसने मुझे कभी निराश नहीं किया है। सेठ जी ने पूछा कि क्या उसका कोई आकार है? आप तो साकार पूजा की बातें करते हैं और हम निराकार को समझना चाहते हैं। तब मैंने उत्तर कहा—जैसे बच्चे को जब वर्णमाला पढ़ाई जाती है तो उन अक्षरों का सही आकार समझाने के लिए अक्सर करना पड़ता है उसे अच्छी प्रकार स्पष्ट करने के लिए एक मानसिक चित्र बनाना पड़ता है।

इस प्रकार हमारी बड़ी दिलचस्प बातें भिन्न-भिन्न विषयों पर हुईं। मैंने जान लिया कि सेठ जी जो पुराने दकियानूसी विचारों से विरक्त चुके हैं और वे अपनी उदार दृष्टिकोण का द्वार खटखटा रहे हैं। ... को आगे बढ़ाने के लिए वे सब प्रकार का आर्थिक योगदान करने को उद्यत हैं और विश्वास सब लोगों की ...

करते रहते हैं जो मानव जाति को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाते हैं, अपना कमाया हुआ धन बड़ी प्रसन्नता से देश में—प्रगतिशीलता को फैलाने के लिए खर्च करने को उद्यत हैं, परन्तु खेदजनक बात यही है कि ईमानदारी से क्रान्ति चाहने वाले और समाज को उन्नत-पथ पर ले जाने वाले सच्चरित्र व्यक्ति नहीं मिलते। पैसे की टोह में घूमने वाले लोग क्रान्ति और प्रगतिशीलता का स्वांग रच कर धनीमानी लोगों को ठगते फिरते हैं। उस विचार-क्रान्ति का असली रूप क्या है और वह किस प्रकार मानव-मस्तिष्क में जन्म लेती है, अपने दूसरे लेख में हम इस अत्यन्त उपयोगी विषय पर अपनी सम्मति पाठकों को बतलायेंगे।

सेठ जी से विदा लेकर मैं उसी सज्जन के साथ मोटर में अपने स्थान पर लौट आया और मैंने जान लिया कि आज अपने देश के एक सत्पुरुष धनी व्यक्ति से मेरी भेंट हो गई।

सत्यदेव परिव्राजक

(स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक देश के उन विचारशील, वयोवृद्ध सज्जनों में से हैं, जिन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों तथा भावनाओं के विरुद्ध आज से लगभग आधी सदी पहले बिगुल बजाया था। आज समाजवादी व्यवस्था के लिए जिन विचारों की चर्चा की जाती है, स्वामी जी उनकी चर्चा अपने व्याख्यानों, लेखों तथा पुस्तकों द्वारा कब से कर रहे हैं? अपने देश में ऐसे लोग बहुत कम हैं जिन्होंने विश्व के परिभ्रमण से आप के समान ज्ञान व अनुभव प्राप्त किया है। अपने क्रान्तिकारी और बुद्धिवादी विचारों का प्रचार करने के लिए आपने ज्वालापुर में "सत्य ज्ञान निकेतन" आश्रम की स्थापना की है और आँखों की ज्योति को खोकर भी अन्तर्ज्योति के बल पर उपयोगी साहित्य का निर्माण कर अपने क्रान्तिकारी विचार निरन्तर जनता के सम्मुख रखते रहते हैं।)

•

११

अनिवार्य आवश्यकता

जीवन एक शाश्वत गति है, वह कभी स्थिर नहीं होता। निर्माण के लिए वह विनाश करता है। आज जो कुछ निर्माण हो रहा है वह शीघ्र ही पुनर्निर्माण के गर्भ में समा जाता है। सच यह है कि वास्तव में न तो कुछ नष्ट होता है और न पैदा होता है। ये दोनों शब्द आपस में जो सम्बन्ध रखते हैं उसी की दृष्टि से इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जाता है। पुरानी वस्तु कभी भी पूरी तरह समाप्त या नष्ट नहीं होती। वह नष्ट इसलिए नहीं होती कि उसके तत्व से ही नूतन का निर्माण होता है। वह उत्पन्न भी नहीं होता क्योंकि नूतन पुरातन का ही अंश है और उन कारणों का परिणाम है जो पहले से ही विद्यमान थे। वह केवल या उनका निकट भविष्य में प्रकट होने वाला मूर्तरूप है।

गये हैं। उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्तियां भौतिक उत्थान को येन-केन-प्रकारेण अच्छे या बुरे साधनों से प्राप्त करने के लिए अतृप्त तृष्णा में बदल दी गई हैं।

इस देश के पुराने दुर्गुण और कमजोरियां जो गुलामी की लम्बी अवधि में सुगुप्त सी हो गई थी वे फिर अवसर पाकर जागृत हो गई हैं और सच्ची भक्ति प्राप्त कराने वाली शक्तियों पर हावी हो रही हैं। देश की एकता और संघ-शक्ति जिसको धैर्यपूर्वक पालपोसकर स्वस्थ और शक्तिशाली भारत को ऐसी भयानक स्थिति में केवल ऐसी योजना और विचार धारा ही उसके अपने जीवन यात्रा के संकटाकीर्ण मार्ग में अग्रसर कर सकती है, जो क्रान्तिपूर्ण होते हुए भी शान्त हो, राष्ट्रीय होते हुए भी सार्वभौम हो और व्यावहारिक दृष्टि से भौतिक तथा उसका मूलभूत आधार नैतिक हो। उसको ऐसे नेताओं और अनुयायियों, गुरुओं और शिष्यों, तथा शासकों और राजनीतिज्ञों की आवश्यकता है जो समत्व और सर्वोदय की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें।

साहस हो या न हो परन्तु हमको सर्वोदय व समत्व की भावना की सुरक्षा के लिए तथा जीवन का उत्थान करने वाले नैतिक अभ्युदय के लिए दृढ़तापूर्वक कुछ न कुछ अवश्य करना ही होगा। भारत स्वयं एक संसार है। एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण ही उसके लोगों को संगठित कर सकता है और उसकी समस्याओं को हल कर सकता है। परन्तु मुझे ऐसी आशा करने का साहस नहीं होता है कि मनुष्य को गुलाम बना देने वाले पूंजी और मशीन रूपी राक्षसों के भयानक आक्रमणों से इस भावना की रक्षा हो सकेगी। राष्ट्रीय जीवन के समस्त प्रतिक्रियावादी और भ्रष्टाचारी तत्व नवोदित स्वातंत्र्य रूप को ढकने की कोशिश कर रहे हैं। किसी भी प्रकार की संकीर्णता देश की एकता और स्वतन्त्रता के नाश का कारण बन सकती है।

सर्वोदय की विचार धारा को लोकप्रिय बनाने और उसको देश के राष्ट्रीय जीवन में स्फूर्ति का संचार करने वाली अदम्य शक्ति बनाने के लिए एक राष्ट्रीय आंदोलन इस समय की हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सेठ जी सरीखे व्यक्ति यदि अपने विचार और साधनों को इस महान कार्य में लगा सकें तो यह भारत के निर्माण के लिए एक महान्, शक्तिशाली और महत्वपूर्ण अद्भुत देन होगी। हमको देश के नैतिक पुनर्निर्माण के लिए भी कुछ पंचवर्षीय योजनाओं की आवश्यकता है।

स्वामी जीन धर्मतीर्थ

(स्वतन्त्र प्रगतिशील विचारक, सिद्धहस्त लेखक, धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति के पोषक और क्रांतिकारी विचारों से पूर्ण अनेक ग्रन्थों के प्रभावशाली निर्माता।)

•

मौलिक बीज का बाहरी विकास

मानव की शान्ति का प्रयोजन परिवर्तन-शून्यता अथवा गति-शून्यता में नहीं है। ऐसी शान्ति असंभव है। सतत् परिवर्तन शक्ति जीवन का भाग है और उसे उसके साथ अवश्य विकसित होना चाहिए। इस सत्य को स्वीकार न करना ही संघर्ष और कष्ट-क्लेश का मूल कारण है। अविवेकी पुरुष उसी से चिपक जाते हैं जिसे वे अपरिवर्तित समझते हैं और इसीलिए वे प्राचीनता को ससम्मान तिलांजलि देने से इनकार करते हैं तथा अवश्यम्भावी नूतन का स्वागत करने के लिए हाथ नहीं बढ़ाते हैं। इस प्रकार के लोग सदा संघर्षों से घिरे रहते हैं। उनके लिए जीवन एक कलह है।

परन्तु ऐसे व्यक्ति विरले ही कहीं मिलते हैं, जो इस विश्वास के साथ शान्त और प्रसन्न रहते हैं कि जीवन का निर्दोष स्रोत निरन्तर आगे की ओर बहता रहता है और वे अपने को उसकी निर्दोष-गति में तन्मय कर देते हैं, अथवा उसकी धाराओं के साथ तैरने का गुप्त प्रयास करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे भारत की तीव्र धारा के साथ बहने में भयभीत नहीं होते मानो कि उनको अपना कुछ नष्ट होने का भय नहीं है तथा वे सर्वथा सुरक्षित हैं। ऐसों में से एक श्री रामगोपाल जी मोहता प्रतीत होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि मोहता जी अपने चारों ओर सहयोगात्मक अभिव्यक्ति की भावना से देखते हैं। केवल वही व्यक्ति ऐसा कर सकता है जिसमें समत्वयोग की साधना से प्राप्त की गई शान्ति हो। उन्होंने जीवन के लिए ऐसा व्यवहार खोज निकाला है जो प्राचीन के अभाव से भयभीत नहीं है और न नवीन के आगमन से आशंकित है। सामान्य विशाल वास्तविकता में दोनों का समन्वय होता है। भारत को आज ऐसे व्यक्तियों की पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यकता है। भारत आज जैसे पूरी तरह परिवर्तन के भँवर में फँसा हुआ है। ऐसे पहले कभी नहीं फँसा था। उसका शरीर, मन और आत्मा सभी कुछ पुनर्निर्माण के भीषण कष्ट को सहन कर रहे हैं। विचार और कार्य के सम्बन्ध में इस प्रकार पैदा होने वाले सामान्य विभ्रम को पूरी तरह दूर नहीं किया जा सकता लेकिन मोहता जी सरीखी आत्माएँ नित नूतन सहानुभूति के साथ केवल व्यक्तियों को ही नहीं अपितु उन सभी एक दूसरे से विभिन्न विचारों और सिद्धान्तों को भी विनाश से बचा सकते हैं, जो कि भारत की महानता को भी खतरा पैदा कर रहे हैं।

भारत का इतिहास दुर्भाग्य पूर्ण आघातों से भरा पड़ा है। यहाँ सुधार, प्रगति, स्वतन्त्रता और धार्मिक तथा आध्यात्मिक आन्दोलनों का बार-बार दुरुपयोग किया गया है और निहित स्वार्थ रखने वाले राजाओं, पुरोहितों तथा पंचों ने उनको बुरी तरह कुचला है। इस दुखी देश के लाखों दलित लोगों में जिन राष्ट्रीय सुधारों से सुख-सुविधा की आशा जागृत हुई उनसे उन्हें निरन्तर निराशा प्राप्त हुई है। हम यह नहीं कह सकते कि वर्तमान संकट का परिणाम भी ऐसा ही न होगा। भारत जाति प्रथा, पुरोहित पूजा की रूढ़ियों और अंधविश्वासों की बेड़ियों को तोड़ना चाहता है और विषमता के घावों को भरकर-यह अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में स्वतन्त्रता, समता-समानता और बन्धुभावना से प्रकाश में अग्रसर होना चाहता है। उसके द्वारा उसको सर्वोदय का सन्देश मुक्त-जीवन के उद्देश्य से दिया था। परन्तु उसकी उन शक्तियों ने हत्या कर स्वामी जो सदियों से राष्ट्र की स्व-तन्त्रता की भावना को निराशा में परिणत करती आई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के भाग्य को अब उसके जिन शिष्यों द्वारा सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है उनका अपने गुरु की शिक्षाओं में विश्वास कुछ कम हो गया है। नव-निर्माण के कार्यों में परस्पर विरोधी योजनाएँ और सिद्धान्त एक दूसरे से होड़ करते दीख पड़ते हैं। उनसे लोगों के जीवन में नैतिक विभ्रम पैदा होता है, क्योंकि उनको असहाय अवस्था में उनसे निरंतर एक के बाद दूसरे परीक्षणों और साहसिक कार्यों में लगाया जाता है और शाश्वत मानव मूल्यांकन करने में अपार भूल कर दी जाती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष केवल राजनीति की शतरंज के प्राणशून्य मुहरे बना दिये

गये हैं। उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ भौतिक उत्थान को येन-केन-प्रकारेण अच्छे या बुरे साधनों से प्राप्त करने के लिए अतृप्त तृष्णा में बदल दी गई हैं।

इस देश के पुराने दुर्गुण और कमजोरियाँ जो गुलामी की लम्बी अवधि में सुषुप्त सी हो गई थी वे फिर अवसर पाकर जागृत हो गई हैं और सच्ची भक्ति प्राप्त कराने वाली शक्तियों पर हावी हो रही हैं। देश की एकता और संघ-शक्ति जिसको धैर्यपूर्वक पालपोसकर स्वस्थ और शक्तिशाली भारत को ऐसी भयानक स्थिति में केवल ऐसी योजना और विचार धारा ही उसके अपने जीवन यात्रा के संकटाकीर्ण मार्ग में अग्रसर कर सकती है, जो क्रान्तिपूर्ण होते हुए भी शान्त हो, राष्ट्रीय होते हुए भी सार्वभौम हो और व्यावहारिक दृष्टि से भौतिक तथा उसका मूलभूत आधार नैतिक हो। उसको ऐसे नेताओं और अनुयायियों, गुरुओं और शिष्यों, तथा शासकों और राजनीतिज्ञों की आवश्यकता है जो समत्व और सर्वोदय की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें।

साहस हो या न हो परन्तु हमको सर्वोदय व समत्व की भावना की सुरक्षा के लिए तथा जीवन का उत्थान करने वाले नैतिक अभ्युदय के लिए दृढ़तापूर्वक कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही होगा। भारत स्वयं एक संसार है। एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण ही उसके लोगों को संगठित कर सकता है और उसकी समस्याओं को हल कर सकता है। परन्तु मुझे ऐसी आशा करने का साहस नहीं होता है कि मनुष्य को गुलाम बना देने वाले पूँजी और मशीन रूपी राक्षसों के भयानक आक्रमणों से इस भावना की रक्षा हो सकेगी। राष्ट्रीय जीवन के समस्त प्रतिक्रियावादी और भ्रष्टाचारी तत्व नवोदित स्वातंत्र्य रूप को ढकने की कोशिश कर रहे हैं। किसी भी प्रकार की संकीर्णता देश की एकता और स्वतन्त्रता के नाश का कारण बन सकती है।

सर्वोदय की विचार धारा को लोकप्रिय बनाने और उसको देश के राष्ट्रीय जीवन में स्फूर्ति का संचार करने वाली अदम्य शक्ति बनाने के लिए एक राष्ट्रीय आंदोलन इस समय की हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सेठ जी सरीखे व्यक्ति यदि अपने विचार और साधनों को इस महान कार्य में लगा सकें तो वह भारत के निर्माण के लिए एक महान्, शक्तिशाली और महत्वपूर्ण अद्भुत देन होगी। हमको देश के नैतिक पुनर्निर्माण के लिए भी कुछ पंचवर्षीय योजनाओं की आवश्यकता है।

स्वामी जौन धर्मतीर्थ

(स्वतन्त्र प्रगतिशील विचारक, सिद्धहस्त लेखक, धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति के पोषक और क्रान्तिकारी विचारों से पूर्ण अनेक ग्रन्थों के प्रभावशाली निर्माता।)

१२

मोहता जी का सक्रिय देश-प्रेम

देश-विभाजन के समय १९४७ में, बल्कि उससे एक डेढ़ वर्ष पहले ही, पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश में, साम्प्रदायिक हत्याकांड, बलात्कार और अग्निकांड ने जो भयंकर रूप धारण किया, वह भारत के किसी अन्य भाग में, यहाँ तक कि पूर्वी बंगाल में भी, जहाँ से लाखों हिन्दू अपनी जन्म भूमि और पूर्वजों की एकत्रित की हुई असीम सम्पत्ति को छोड़ कर खाली हाथ भाग आए, आंशिक रूप में भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

विभाजन से एक वर्ष पूर्व लगभग एक लाख सिख रावलपिण्डी आदि उत्तर पश्चिमी पंजाब तथा सीमान्त प्रदेश के नगरों और ग्रामों को छोड़ कर भाग आए थे और वे दक्षिण-पूर्वी पंजाब तथा पटियाला, नाभा, फरीदकोट, नालागढ़ आदि पंजाब की रियासतों में तथा भारत के अन्य भागों में आ बसे थे। वे लोग अपनी सम्पत्ति साथ नहीं ला सके थे। कुछ की तो स्त्रियाँ भी वहीं छीन ली गई थीं। शासक अंग्रेज थे। उनकी सहानुभूति मुस्लिम लीग के साथ थी। उन्होंने हवाई जहाजों से वहाँ के दंगे के चित्र लिए, भागते हुए सिक्खों के और उनका पीछा करते हुए गुण्डों के। इनमें से एक चित्र लाहौर के एंग्लो-इण्डियन दैनिक "सिविल एण्ड मिलिटरी गजट" (Civil & Military Gazatte) में छपा भी। परन्तु जिन वायुयानों द्वारा केवल एक अंग्रेजी महिला उठा ले जाने पर बमों द्वारा पठानों के गाँव के गाँव स्वाहा कर दिए गये थे उनसे हजारों सिख स्त्रियों के अपहरण के समय केवल चित्र उतारने का ही काम लिया गया। उस समय पंजाब के एक योग्य नवयुवक श्री प्रबोध चन्द ने (Rape of Rawalpindi) रावलपिंडी का बलात्कार नामक एक पुस्तक भी लिखी थी जिसमें इन अत्याचारों के वास्तविक छायाचित्र भी प्रकाशित किए गए थे। वह पुस्तक सरकार ने जब्त कर ली थी।

अस्तु। यह तो केवल इतना दिखाने के लिए लिखा गया कि हत्या और बलात्कार विभाजन के समय की तात्कालिक घटनाएँ नहीं थीं। किन्तु यह एक पूर्व निश्चित, सुसंगठित और सुनिर्दिष्ट योजना थी जो दो वर्ष पहले कुछ विदेशी शासकों और स्थानिक लीगियों के बीच गठ चुकी थी। यह सत्य है कि लार्ड माउंट बैटन आदि का इसमें हाथ नहीं था; परन्तु लीगी नेता ऊपर से नीचे तक इससे पूर्वपरिचित थे।

हम लोग उस समय लाहौर में ही रहते थे। उत्तर-पश्चिम भारत से पीड़ित शरणार्थियों की तरंगों की तरंगें अत्यन्त दयनीय दशा में लाहौर में आ रही थीं और उनके लिए स्थान-स्थान पर कैम्प खोले जा रहे थे। उस समय किसी को यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि एक वर्ष के अनन्तर लाहौर-निवासियों की भी यही दशा होगी और हम लोगों को इससे भी हीन दशा में भागना पड़ेगा।

लाहौर में जब इस कांड ने अपना पूर्ण रूप धारण किया तब इसका चित्र निम्न प्रकार था :—

पूर्ण नगर पर कर्फ्यू लगा दिया गया था जो ६, ७ दिन में एक बार राशन इकट्ठा करने के लिए एक-दो घंटे के लिए हटाया जाता था। यह कर्फ्यू कोई मास-भर लगा भी रहा। सड़कें दिन-रात खाली पड़ी रहती थीं। रात को कुत्तों के रोने की आवाज ही कान में पड़ती थी। रात के सन्नाटे में यह भय, त्रास और पीड़ा से भरा क्रन्दन बहुत कटु और अपशकुनपूर्ण प्रतीत होता था। कभी-कभी किसी फौज या पुलिस की कार सड़क पर से निकल जाती थी। अन्य कोई शब्द कदाचित् ही सुनाई देता था। दूसरे शब्द थे कहीं से क्रन्दन और हाहाकार, कहीं से गोली चलने की आवाज—कहीं गुण्डों का हल्ला—परन्तु ये शब्द सिर्फ रात्रि में ही थे।

कर्फ्यू पास (बाहर निकलने के आज्ञा-पत्र) प्रायः लीगियों को ही मिले हुए थे। बाहर वहाँ एक और लीग के इतर मिनिस्टर भी रात को बाहर नहीं निकल सकते थे वहाँ कई गुण्डों के झुण्ड के झुण्ड रातों को

स्वतन्त्र और अनियन्त्रित घूमते फिरते थे। उनके पास ताश के पत्तों की तरह कर्फ्यू पासों के थव्वे के थव्वे होते थे। परन्तु उनकी कोई पड़ताल नहीं होती थी।

उन्हें किसी प्रकार की रोक टोक नहीं थी। रात्रि को हिन्दुओं और सिक्खों के घरों में आग लगाने की ड्यूटी इन्हीं के सुपुर्द थी।

इस समय टेलीफोन के दफ्तर में, बिजली घर में, म्यूनिसिपैलिटी में, पुलिस और फौज में प्रायः मुसलमान भाई ही कार्य कर रहे थे। सिक्ख तो बहुत से मार दिए गए थे और शेष भाग गए थे। हिन्दू कहीं-कहीं किसी मुसलमान मित्र की कृपा से, कहीं रुपया खिला कर, कहीं भाग्य से ही थोड़े बहुत बचे हुए थे।

अंग्रेज अधिकारियों और लीगियों का यह निश्चय था कि प्रत्येक हिन्दू और सिख को भयभीत करके पाकिस्तान से निकाल दिया जाए और जो न निकले उसे समाप्त कर दिया जाए।

आक्रमण के पूर्वक्रम की रूपरेखा स्पष्ट थी। जिस मुहल्ले में रात्रि को आग लगानी और लूटमार करनी होती थी उसके टेलीफोन दिन में ही "बिगड़" जाते थे, फिर पानी के नलके बन्द हो जाते थे, फिर बिजली कट जाती थी।

जब जब हमारे मुहल्ले पर हल्ला बोला गया उसी दिन उससे पहले मेरे टेलीफोन की करण्ट बन्द हुई, १५ मिनट बाद म्यूनिसिपल नलों से पानी आना बन्द हुआ, फिर पंखे और बत्तियों की करंट भी कट गई। टेलीफोन के अभाव में बाहर के संसार से सम्पर्क कट जाता था। पानी के अभाव में आग नहीं बुझाई जा सकती थी। बिजली के अभाव में मोटरों वाले ट्यूबवेलों से भी पानी नहीं ले सकते थे। तब रात को जो पुलिस और फौज की लारियां जनता की "रक्षा" के लिए छोड़ी हुई समझी जाती थीं उन्हें सड़क पर खड़ा करके उनके ही टैंकों में से आग लगाने के लिए पिचकारियों से पेट्रोल निकाला जाता था। यह पेट्रोल उन पास होल्डरों के झुण्डों को मिलता था जो कर्फ्यू पास लिए शहर में इसी काम के लिये घूमते थे। इस पेट्रोल से ही घरों को आग लगाई जाती थी। कोई बाहर निकलता उस पर पुलिस या फौज गोली चलाती थी। सिख तो सड़कों पर चूहों की तरह मरे पड़े होते थे। उनके लिए कोई न्याय और रक्षा का उपाय नहीं था। कई लोग जो ऊपर बरामदे में निकल कर नीचे देखने लगे कि उनके घर को आग लगी है या किसी दूसरे के घर को, वे अपने मकानों पर खड़े हुए ही "रक्षक" पुलिस की गोली का शिकार हो गए। इस प्रकार की कायरतापूर्ण हत्याओं में लाहौर के मजिस्ट्रेटों तक ने भाग लिया।

मैं गांधी स्क्वेयर नामक हिन्दुओं के समृद्धिशाली मुहल्ले में रहता था। शहर का यह भाग कई कारणों से अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित था। चारों ओर लोहे के बड़े दृढ़ द्वार थे जो बन्द रहते थे। पाँच-पाँच सौ गैलन के पाँच फौजी मैन्येज टैंक हर समय पानी से भरे रहते थे। मुहल्ले के निवासी सब के सब हिन्दू या सिख ही थे। उन्होंने एक आग बुझाने का १२ हॉर्स पावर का इंजन भी खरीद लिया था और अपना फायर ब्रिगेड स्वयं तैयार कर लिया था। मेरे तथा कुछ अन्य मित्रों के घरों में म्युनिसिपल नलकों के अतिरिक्त मोटर ट्यूब वेल भी लगे थे। हम सब ने उनमें दूसरी ट्यूब (नाली) उतरवाकर उन्हें हैंड पम्पों में भी परिवर्तन करा लिया था जिससे बिजली की करण्ट कट जाने पर हाथ से पानी निकाला जा सके। आत्म-रक्षा के लिए सब मुहल्लेदारों ने अपना-अपना काम बाँटा हुआ था।

इस मुहल्ले के अधिकांश घर नगर के अन्य कम सुरक्षित मुहल्लों से आने वाले शरणार्थियों के लिए बिल्कुल धर्मशालाओं में वास्तविक रूप में परिवर्तित हो गए थे। इसे अधिक सुरक्षित स्थान समझा जाता था।

शहर के भीतर एक स्थान मुहल्ला मशीन के नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ बहुत से हिन्दू रहते थे। परन्तु

इसके चारों ओर मुस्लिम मुहल्ले थे। यहाँ बहुत घर जलाए गए और बहुत हिन्दू मारे गए। जो बचे वे मानो हाथ और कई तो एक आध कपड़ा ही तन पर लेकर निकले।

इन दिनों जहाँ निहत्थे हिन्दुओं को कायरतापूर्ण राक्षसी मार काट का शिकार होना पड़ रहा था वहाँ अद्भुत वीरता और निस्वार्थता की कई अजीब घटनाएँ भी देखने में आईं।

एक दिन इसी मुहल्ला सरीन से ११ जख्मी गांधी स्क्वेयर में लाए गए। इनमें एक दसवर्षीय बालक भी था जिसके हाथों, टांगों और शरीर पर कई व्रण थे। ७ छर्रे तो मेरे सामने हाथों में से सर्जन ने निकाले। जब जख्मों पर औषध लगा कर पट्टी बाँध दी गई तो बालक से पूछा गया कि वह कहाँ जाना चाहता है। उसने तुरन्त उत्तर दिया "मुझे ठीक करके वापिस मुहल्ला सरीन में भेज दीजिए। मैं अपने शेष भाइयों की रक्षा के लिए पुनः वहीं जाकर लड़ना चाहता हूँ।"

इसी समूह में एक अन्य युवक भी था जिसने अपना नाम "डी० एन०" बताया। इसकी जाँघ में एक बड़ा व्रण था; जहाँ से स्वयं ही चाकू से चीर कर उसने गोली निकाल ली थी। इसकी कथा अद्भुत है और इसी की जीवन रक्षा के सम्बन्ध में मैं सेठ रामगोपाल जी मोहता द्वारा दी गई निर्भीक और उदार सहायता का वर्णन करना चाहता हूँ।

मैं सर्जन के साथ जब इस युवक की शय्या पर पहुँचा तो यह एक हिन्दू लखपती व्यापारी के घर में रक्त से लथपथ पड़ा था और बहुत क्षीण हो गया था। सर्जन ने वेदनाशामक इंजेक्शन देकर अस्थायी उपचार कर दिया और दूसरे दिन तक विश्राम देने के लिए कहा। कुछ शक्ति आई तो उसने अपनी कथा सुनाई।

वह मुहल्ला सरीन में कुछ मित्रों की सहायता के लिए गया था जब कि मकान को एक ओर से आग लगा दी गई। कई घण्टे तक वह लोग उस मकान से बाहर न निकले—जो एक दो निकले उनकी हत्या कर दी गई। एक पुलिस का सिपाही ब्रेनगन अथवा स्टेनगन लिए खड़ा था। जो भी बाहर निकलता था उसे ही गोली मार देता था। "डी० एन०" अपने मकान की छत पर से ऊपर ही एक दूसरे मकान की छत पर कूद और इस दूसरे मकान में जाकर इसकी एक खिड़की में से उस सिपाही के कंधों पर कूद पड़ा। सिपाही बुरी तरह नीचे गिरा। उसके दो नहीं तो एक कंधा तो जरूर टूट गया होगा। बन्दूक उसके हाथ से गिर पड़ी। "डी० एन०" ने बन्दूक उठाकर पहली गोली से तो उस सिपाही को ही मार दिया। उसकी गोलियों की पेटी भी इसने निकाल ली। उसका कहना था कि जीवित बचकर भागने के लिए उसे २० से ऊपर सिपाहियों और गुन्डों की हत्या करनी पड़ी। फिर बन्दूक फेंक कर और एक गोली जो किसी अन्य व्यक्ति की बन्दूक या पिस्तौल से उसकी जाँघ में लगी थी उसे स्वयं निकालकर वह मुहल्ला सरीन की गलियों से निकल कर बाहर सड़क पर पहुँच गया वहाँ सौभाग्य से फौज के डोगरे सिपाहियों की एक टुकड़ी ने उसे एक कार में बिठा कर हिन्दू मुहल्ले में पहुँचा दिया। उसने यह भी कहा कि पुलिस उसकी खोज अवश्य कर रही होगी अतएव उसे किसी सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया जाए।

लाहौर के एक बड़े व्यापारी के एक खाली बंगले में शहर से बाहर उसे अविलंब पहुँचा दिया गया। उसकी वीरता की चर्चा जो हिन्दू लाहौर में बचे हुए थे उनके कानों तक पहुँची तो उसकी सहायता के लिए फल, दूध, अन्न, रुपया चारों ओर से बरसने लगा। यहाँ तक कि एक सज्जन ने तो शहर से बम्बई के हवाई जहाज के टिकट भी भेज दिए।

जिस बंगले में उसे ले जाया गया वहाँ सर्जन ने आकर पुनः उसकी मरहम पट्टी की। परन्तु वहाँ की रक्षा इतना बढ़ गया कि वहाँ का मुस्लिम माली लाश बाहर पड़ा देख कर अन्दर आ गया। उसे आराम से लेटे हुए देख कर वह बोला, "बाबू जी, आप की तो बहुत खातिर हो रही है। हमारे मुसलमान भाई तो

हिन्दुओं द्वारा फेंके गए बमों से जख्मी होकर मस्जिदों में पड़े सड़ रहे हैं। उनकी तो ऐसी खातिर कोई नहीं करता।"

मुझे कर्फ़्यू पास मिला हुआ था। कई मुस्लिम उच्चाधिकारी मेरे रोगी थे। मुझे प्रतिदिन मुस्लिम मुहल्लों में जाना पड़ता था। तो भी आत्मरक्षा के लिए मैंने खाकी फौजी कपड़े पहनने आरम्भ कर दिए थे और अंग्रेजी खाकी टोप ही मैं हर समय लगाए रखता था। इससे गुण्डों का ध्यान मेरी ओर कम जाता था और मैं खासा बेरोक टोक घूमता रहता था। जब उस लड़के का भोजन लेकर गया तो उसने मुझ से कहा कि मालो ऐसी बातें करके गया है और उसके अनन्तर कुछ लोगों को साथ लाकर दिखा भी गया कि हिन्दू जख्मी की कैसी खातिर होती है। पुलिस पहले ही खोज में है वहाँ से किसी दूसरी जगह चला जाए तो अच्छा हो।

इधर बंगले के मालिक के किसी ईर्ष्यालु और निकट सम्बन्धी ने पाकिस्तान सरकार का अधिक शुभ-चिंतक और प्रिय बनने के लिए पुलिस को यह सूचना दे दी कि उनके बंगले में कोई बड़ा अपराधी रखा हुआ है। अस्तु यह तो हिन्दुओं का पुराना रोग है।

बंगले के मालिक ने पुलिस को हजारों रुपए अपनी रक्षा के लिए रिश्वत में दिए हुए थे। किसी मित्र ने वहाँ से टेलीफोन कर दिया कि उनके बंगले पर पुलिस आएगी। वह भागे हुए मेरे पास आए और कहने लगे "तुम ने तो मुझे बहुत बुरी तरह फँसा दिया।" मैंने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि 'पुलिस आए तो आप कह दें कि यह बंगला जख्मियों की सेवा के लिए आप से गांधी स्क्वेयर वालों ने ले लिया है। वे ही सब प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।"

जब तक पुलिस उन से मिली तब तक "डी० एन०" को वहाँ से निकाल कर एक अन्य व्यापारी के निजी निवासस्थान में पहुँचा दिया गया जो पुलिस को रिश्वत देकर प्रसन्न रखने के लिए लाहौर में प्रसिद्ध था। इस पर कभी भी किसी को संदेह नहीं हो सकता था और पहले बंगले को गांधी स्क्वेयर के सभी जख्मों से जाकर भर दिया गया। उपचार आहार का सब प्रबन्ध वहीं कर दिया गया। पुलिस जब तक वहाँ पहुँची तो वहाँ ३५ से ऊपर जख्मी पड़े थे। वह सब की अच्छी प्रकार जाँच-पड़ताल करके चली गई। उन्होंने यही समझा कि या तो वह व्यक्ति वहाँ आया ही नहीं था उन जख्मियों में मिलकर निकल गया जो बिना अच्छे हुए ही अपने-अपने घरों को अथवा लाहौर से बाहर जा रहे थे।

यह इस युवक का अन्तिम स्थान था। यहाँ पर ११, १२ दिन उसका उपचार हुआ। उसका जख्म अच्छा हुआ और उसको लाहौर से बाहर निकालने की समस्या उपस्थित हुई। उसे कहाँ किस के पास पहुँचाया जाए?

मैं ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के समर्थ व्यक्तियों के नाम एक-एक करके सोचे कि किस से सहायता माँगी जाए। मेरा ध्यान एक ही व्यक्ति—बीकानेर के श्री रामगोपाल जी मोहता की ओर गया। इसी से अनुमान हो सकता है कि मेरे हृदय में उनके प्रति क्या भाव है। मैं एक-दो बार पहले भी बीकानेर में उनके दर्शन कर चुका था। उनके सौजन्य, उदारता, आध्यात्मिक दृष्टिकोण और राष्ट्र-प्रेम से मैं परिचित हो चुका था। मुझे निश्चय था कि वहाँ से निराशा न होगी। एक बीकानेर-निवासी लाहौर छोड़ कर घर जा रहा था। उसने बीकानेर जाकर सेठ जी से सम्पूर्ण कथा कही। मुझे बीकानेर से तार आ गया :—

"Your fees acceptable, come with my man by first plane." (आप की फीस स्वीकार है। मेरे आदमी के साथ पहले वायुयान से आ जाइए)।

अर्थ स्पष्ट था। मैं बीकानेर, जोधपुर अपने रोगी देखने वायुयान द्वारा पहले भी जाता था। इस बार पर किसी को संदेह नहीं हो सकता था। साथ में दूसरे व्यक्ति को अपने आदमी के रूप में रखने को दिखाकर कहीं

हिन्दुओं द्वारा फेंके गए बमों से जख्मी होकर मस्जिदों में पड़े सड़ रहे हैं। उनकी तो ऐसी खातिर कोई नहीं करता।"

मुझे कर्फ्यू पास मिला हुआ था। कई मुस्लिम उच्चाधिकारी मेरे रोगी थे। मुझे प्रतिदिन मुस्लिम मुहल्लों में जाना पड़ता था। तो भी आत्मरक्षा के लिए मैंने खाकी फौजी कपड़े पहनने प्रारम्भ कर दिए थे और अंग्रेजी खाकी टोप ही मैं हर समय लगाए रखता था। इससे गुण्डों का ध्यान मेरी ओर कम जाता था और मैं खासा बेरोक टोक घूमता रहता था। जब उस लड़के का भोजन लेकर गया तो उसने मुझ से कहा कि माली ऐसी बातें करके गया है और उसके अनन्तर कुछ लोगों को साथ लाकर दिखा भी गया कि हिन्दू जख्मी की कैसी खातिर होती है। पुलिस पहले ही खोज में है वहां से किसी दूसरी जगह चला जाए तो अच्छा हो।

इधर बंगले के मालिक के किसी ईर्ष्यालु और निकट सम्बन्धी ने पाकिस्तान सरकार का अधिक शुभ-चिंतक और प्रिय बनने के लिए पुलिस को यह सूचना दे दी कि उनके बंगले में कोई बड़ा अपराधी रखा हुआ है। अस्तु यह तो हिन्दुओं का पुराना रोग है।

बंगले के मालिक ने पुलिस को हजारों रुपए अपनी रक्षा के लिए रिश्वत में दिए हुए थे। किसी मित्र ने वहां से टेलीफोन कर दिया कि उनके बंगले पर पुलिस आएगी। वह भागे हुए मेरे पास आए और कहने लगे "तुम ने तो मुझे बहुत बुरी तरह फंसा दिया।" मैंने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि 'पुलिस आए तो आप कह दें कि यह बंगला जख्मियों की सेवा के लिए आप से गांधी स्क्वेयर वालों ने ले लिया है। वे ही सब प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।"

जब तक पुलिस उन से मिली तब तक "डी० एन०" को वहां से निकाल कर एक अन्य व्यापारी के निजी निवासस्थान में पहुंचा दिया गया जो पुलिस को रिश्वत देकर प्रसन्न रखने के लिए लाहौर में प्रसिद्ध था। इस पर कभी भी किसी को संदेह नहीं हो सकता था और पहले बंगले को गांधी स्क्वेयर के सभी जख्मी से जाकर भर दिया गया। उपचार आहार का सब प्रबन्ध वहीं कर दिया गया। पुलिस जब तक वहां पहुंची तो वहां ३५ से ऊपर जख्मी पड़े थे। यह सब की अच्छी प्रकार जांच-पड़ताल करके चली गई। उन्होंने यही समझा कि या तो वह व्यक्ति यहां आया ही नहीं या उन जख्मियों में मिलकर निकल गया जो बिना अच्छे हुए ही अपने-अपने घरों को अथवा लाहौर से बाहर जा रहे थे।

यह इस युवक का अन्तिम स्थान था। यहां पर ११, १२ दिन उसका उपचार हुआ। उसका घाव अच्छा हुआ और उसको लाहौर से बाहर निकालने की समस्या उपस्थित हुई। उसे कहां किस के पास पहुंचाया जाए?

मैं ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के समर्थ व्यक्तियों के नाम एक-एक करके सोचे कि किस से सहायता मांगी जाए। मेरा ध्यान एक ही व्यक्ति—बीकानेर के श्री रामगोपाल जी मोहता की ओर गया। इसी से अनुमान हो सकता है कि मेरे हृदय में उनके प्रति क्या भाव हैं। मैं एक-दो बार पहले भी बीकानेर में उनके दर्शन कर चुका था। उनके सौजन्य, उदारता, आध्यात्मिक दृष्टिकोण और राष्ट्र-प्रेम से मैं परिचित हो चुका था। मुझे निश्चय था कि वहां से निराशा न होगी। एक बीकानेर-निवासी लाहौर छोड़ कर घर भाग रहा था। उसने बीकानेर जाकर सेठ जी से सम्पूर्ण कथा कही। मुझे बीकानेर से तार आ गया :—

"Your fees acceptable, come with my man by first plane." (तार का अर्थ था आपकी फीस स्वीकार है। मेरे आदमी के साथ पहले वायुयान से आ जाइए)।

अर्थ स्पष्ट था। मैं बीकानेर, जोधपुर अपने रोगी देखने वायुयान द्वारा पहले भी जाता था। इस पर किसी को संदेह नहीं हो सकता था। साथ में दूसरे व्यक्ति को अपने आदमी के रूप में साथ ले जाकर,

हँस देते, पर पैदल चलने की आदत उन्होंने नहीं छोड़ी। वे उन सेठों की हवा खोरी को नापसन्द करते थे जो खुली घोड़ा-गाड़ियों में बैठकर घूम आते। उनका कहना था कि यह तो घोड़ों के लिये हवा खोरी है।

विधवाओं को काम दिलाने और विवाह की इच्छा रखने वाली विधवाओं के विवाह कार्य में वे हमेशा मुतहहरत सहायता करते रहे हैं, हरिजनों की शिक्षा और सेवा में उनका सदा हाथ खुला रहा है एवं देश में जब कभी आपत्ति आई है उनकी थैली खुली पाई गई है।

शिक्षा और साहित्य के प्रसार में उनका सदा योग रहा है। और इन सब बातों के पीछे उनकी एक ही भावना रही है, देश का जीवन सादा और सात्विक हो, देश के पिछड़े वर्ग आगे बढ़ें और दूसरे वर्गों की बराबरी में आवें।

जयनारायण व्यास

(राजस्थान के राजनीतिक जीवन के निर्माताओं में व्यास जी का प्रमुख स्थान है और एक-चौथाई से भी अधिक लम्बे समय का उनका सार्वजनिक सेवा का अत्यन्त शानदार लेखा जोखा है। वे देशी राज्यों की मूक जनता की आशा, प्रकाश और आकांक्षाओं के प्रतीक रहे हैं। उसके लिए उन्होंने बड़े से बड़ा कष्ट और लम्बी-लम्बी कठोर जेल-यातनाएँ भोगी हैं। अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद् के वे वर्षों कर्मठ मन्त्री रहे हैं। उनकी संगठन-शक्ति का लोहा माना जाता है। वे सम्पादक, पत्रकार, लेखक, कवि, विचारक और अथक काम करने वाले हैं। उनकी कविताओं में जीवन के अमर संदेश की पुट और लोह लेखनी में मुर्दों को भी जिलाने की शक्ति विद्यमान है; परन्तु उनके ये सब रूप राजनीतिक संघर्ष की घटा में छिपे रहे और वे अपने वास्तविक रूप में, सिवाय राजनीतिक योद्धा के, प्रगट नहीं हो सके। जोधपुर राज्य में लोकप्रिय शासन कायम होने पर वे मुख्य मन्त्री बनाए गए। बाद में राजस्थान के भी मुख्य मंत्री रहे। इस समय संसद के सदस्य हैं और राजभाषा आयोग के भी सदस्य हैं।)

•

१४

चेहरे चेहरे पर रामगोपाल

जब जब मैं बीकानेर जाता हूँ तब तब कुछ व्यक्तियों से मिलने का लोभ रहता है। उन व्यक्तियों में से एक और सर्व प्रथम हैं पूज्य रामगोपाल जी मोहता। उनके नाम और काम से मैं थोड़ा बहुत परिचित था, लेकिन एक बार सन् १९५५ में बीकानेर के मेरे दौरे के दौरान में बीकानेर शहर की एक हरिजन बस्ती में एक समारोह में शामिल होने का सौभाग्य मिला। पूज्य श्री रामगोपाल जी का आग्रह भी था।

समारोह में अपूर्व उत्साह था। इतना ही नहीं परन्तु स्वाभाविक आनन्द नजर आता था। इसका कारण मैं ढूंढने लगा तो मालूम हुआ कि उनके बीच में उनके बाबा मौजूद थे, जिन्होंने अपनी शक्ति पिछड़े हुओं को जागृत करने में, आगे लाने में, लगाई है। इन बाबा के विचार "सनातनी" नहीं परन्तु प्रगतिशील हमें मानवधर्म से प्रेरित हैं। उनका उस दिन का भाषण सिद्धान्त व व्यवहार में मेल लाने वाला था, इतना ही नहीं परन्तु समस्त संसार में व्यक्ति का क्या स्थान, मान और प्रमाण है उसका निर्देश करनेवाला था। मानव

मूल्यों का गणित वे सिखा रहे थे। उनके शब्दों में आडंबर नहीं था, उनकी वाणी में कृत्रिमता नहीं थी, उनके भावों में संदिग्धता नहीं थी। उनके विचारों में विशदता थी, उद्‌गारों में प्रेरणा, अनुकम्पा व अनुभूति थी। एक सिद्ध पुरुष की साधुवाणी सुनने को मिली। लेकिन उस सभा में मैंने एक और दर्शन पाया। वहां बैठे आयान वृद्ध के चेहरे-चेहरे पर रामगोपाल अंकित था। वे अपने बाबा को अपने बीच में पाकर अत्यधिक आनन्द विभोर थे। उनके मन पर रामगोपाल जी उनके सर्वस्व अंकित थे। उनके उपदेशों का अनुसरण करने को वे तत्पर थे। उन्होंने अपने इस बाबा के कहने पर अनेक बुराइयां छोड़ दी थीं। जीवन-परिवर्तन के मार्ग पर वे लग गये थे। ऐसे गुरु की उपस्थिति में समारोह का होना अपूर्व प्रसंग था। मेरे लिये वह एक पुण्यदर्शन था।

जिनके कार्य का परिणाम इतनी तह तक पहुंच गया है वे अपने राजस्थान के ही नहीं परन्तु भारतवर्ष के छिपे हुये रत्नों में से शांत मुद्रा वाले, तपःपूत कर्मयोगी रामगोपाल जी मोहता हैं। स्व० पूज्य श्री कृष्णदास जी जाजू जब बीकानेर भूदान प्रवास में पधारते थे तब मनस्वी रामगोपाल जी के यहां ही ठहरते थे। उनके बीच में विचारविमर्श होता था। मुझे भी सुनने का सौभाग्य मिलता था और इस तरह वे मुझे अपनी तरफ खींचते जाते थे। मेरा पूज्यभाव दिन पर दिन इस प्रकार बढ़ता गया।

रामगोपाल जी की व्यवहार शुद्धि के कारण ही स्व० जाजू जी की मान-वृद्धि उनके प्रति बढ़ती रहती थी। रामगोपाल जी की जीवनी एक आदर्शपुरुष की दीपमाला है। वे आज भी अपनी इस बढ़ती जाती उम्र में शुद्ध विचार और आचार का पालन करने वाले योगी हैं, गीताधर्म को चरितार्थ करने वाले संन्यासी हैं।

समाजसेवा की प्रतिमारूप पूज्य रामगोपाल जी के लिये शतं जीव शरदः यह शब्द सहज ही निकलते हैं क्योंकि ऐसे साम्ययोग के उपासक इस संसार में ज्यादा साल तक जिन्दा रहें उतना ही विशेष लाभ समाज को मिलेगा।

जिनका का काम कोने-कोने में बोलता है, जिनका नाम हर जबान पर है वे यशस्वी हैं। वे दीर्घायु हों, शतायु हों, चिरायु हों।

गोकुल भाई भट्ट

(वयोवृद्ध श्री गोकुल भाई भट्ट राजस्थान के उन कर्मठ नेताओं में से हैं, जिन्होंने गांधीजी द्वारा प्रदर्शित रचनात्मक कार्यों को अपना जीवन व्रत बनाया हुआ है। पहले सिरोही प्रजा परिषद् के और बाद में वर्षों राजस्थान प्रदेश कांग्रेस के भी आप प्रमुख रहे। राजस्थान की जन-जागृति में आप का मुख्य हाथ रहा। इन दिनों में आप भूदान के कार्य में संलग्न हैं। आप की वक्तृत्व शक्ति और सेवा भावना अनुकरणीय व सराहनीय है।)

•

१५

A Great Yogi

It is a very gladdening news that you propose to write a biography of Revered Old Manaswi Ram Gopalji Mohata under the title "Ek Adarsha Samatva Yogi" and to dedicate the book to him in memory of his services to humanity and great love for

Sahitya, Ayurved, Geeta, Godly devotion, classical music and above all for his unparalleled generosity, or called a great Philanthropist.

I have always felt myself a very lucky follow whenever I have had occasions to come in contact with him so much so that sometimes in the heart of my hearts I feel to be in company with him throughout my life as there is much for me to learn from him about this mundane world. But, alas, it is not my lot.

Atonce I am one with you in your object to dedicate the above Book to him at *this most opportune time.*

I pray God to give long life to this great Yogi.

Narayan Rao Vyas
(Reknowned musician)

एक महान् योगी

यह मेरे लिए बड़ा हर्षप्रद समाचार है कि आप "एक आदर्श समत्वयोगी" के नाम से धर्मात्मा, वयोवृद्ध, मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता की जीवनी प्रकाशित कर रहे हैं। मानव समाज के प्रति उनकी सेवाओं, साहित्य, आयुर्वेद, गीता, साधनामय जीवन तथा शास्त्रीय संगीत के प्रति उनके अगाध अनुराग और सर्वोपरि उनकी अनुपम उदारता के प्रति जिसके कारण उनको महान दानवीर कहा गया, इस ग्रन्थ को आप ठीक ही अर्पित कर रहे हैं।

मुझे जब भी कभी उनके सम्पर्क में आने का शुभवसर प्राप्त हुआ, मैंने अपने को अत्यन्त भाग्यशाली अनुभव किया। यहाँ तक कि मैं अपने अंतस्तल में यह अनुभव करता हूँ कि मेरा जीवन निरन्तर उनके सम्पर्क में बना रहे; क्योंकि इस व्यावहारिक दुनिया के बारे में मैं उनसे बहुत कुछ सीख सकता हूँ। किन्तु मुझे दुःख है कि मेरे भाग्य में ऐसा नहीं लिखा है।

आप के उनको इस ग्रन्थ के समर्पित किए जाने के उद्देश्य से मैं सर्वथा सहमत हूँ, जिसके लिए यह सर्वथा उपयुक्त अवसर है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह महान् योगी दीर्घजीवी हो।

नारायण राव व्यास
(भारत के प्रख्यात संगीतज्ञ)

१९

तत्वज्ञानी विदेहजनक

नवम्बर सन् १९२९ में मैंने इलाहाबाद के "चांद" के "मारवाड़ी विशेषांक" का सम्पादन किया। उस समय पत्र के स्थायी सम्पादक श्री सहगल ने जो संचित मैटर भेजा, उसमें कुछ ऐसे प्रभावशाली और क्रांतिकारी लेख थे जिनकी मैं आशा नहीं कर सकता था। लेखों पर छद्म नाम था। छद्म नामों का सदुपयोग मैं इससे प्रथम इसी पत्र में "फांसी" विशेषांक में कर चुका था। स्वनामधन्य क्रांतिकारी श्री भगतसिंह ने मेरे अनुरोध से उस अंक के लिए पूरी शताब्दी के राजनैतिक प्राणदण्ड पाए हुए हुतात्माओं का सचित्र विवरण संग्रह करके भेजा था। यह संग्रह उन्होंने बड़े यत्न और असाधारण कठिनाइयों में किया था। सारे पंजाब और दिल्ली की पुलिस उनकी तलाश में थी। काल कोठरी और फांसी की रस्सी उनका इन्तजार कर रही थी। वे रात को मेरे गुसलखाने में बैठकर मैटर तैयार करते और सुबह चार बजे की गाड़ी से सहारनपुर चल देते थे। बाहर घर-घर घूम कर चित्र और चरित्र उनके साथी एकत्र कर रहे थे। यह सब कोई सत्तर पृष्ठ का अप्रतिम मैटर उन्होंने मुझे दिया था जो आगे सैकड़ों ग्रंथ कर्ताओं के लिए सहारा बन गया। उसे मैंने ३०-४० टुकड़ों में काटकर काल्पनिक नामों से छापा था। जब भगतसिंह गिरफ्तार हो गए, और सरकार की नजर "फांसी अंक" पर पड़ी, तब उन लेखों के मूल लेखक का सही नाम पता जानने के लिए—पंजाब की पुलिस ने मुझे कितना दिक किया था, अब उसकी चर्चा करना व्यर्थ समझता हूँ।

"चांद" का "मारवाड़ी अंक" फांसी अंक की भांति राजनैतिक अंक न था पर उसका प्रभाव-मूल्य फांसी अंक से कम न था। कारण इस काल में सामाजिक क्रान्ति की तीव्रता भी राजनैतिक तीव्रता से कम न थी। भारतीय समाज उस समय केवल अंग्रेजों के लोह पंजे से ही छुटकारा पाने को ही नहीं छटपटा रहा था, वह तो अपनी दिमागी गुलामी और रूढ़ियों के बन्धन की भी असह्य पीड़ा सहन कर रहा था।

समूचे भारत में उस समय राजस्थान सबसे पिछड़ा हुआ था। शताब्दियों तक मार काट, षड्यन्त्र और संघर्ष के जीवन ने उसे निष्प्राण, निस्तेज कर डाला था। वह सो रहा था, अथवा बेहोश पड़ा था। कदाचित जन्म जात साहित्यिक व्यक्ति होने के कारण मैं न तब न अब किसी राजनैतिक आग में कूदा—न समाज क्रान्ति का ही अग्रदूत था। परन्तु मेरी सम्पूर्ण निष्ठा और सत्ता मेरी कलम की नोक पर था कभी। मैं न मदहोश था—न बेख़बर। दुनिया की करवट लेते मैं देख और समझ रहा था। इसलिए अपने साहित्य सेवा के उन दिनों में मैं न कल्पना का सहारा लेता था, न रसोत्कर्ष की परवाह करता था। मैं तो आग खाता था और आग ही उगलता था। उस आग से कहाँ कौन जलता है—इसे देखने की मुझे फुर्सत नहीं थी। मैं स्वयं जल रहा था—तो दूसरों के जलने पर मैं कैसे तरस खा सकता था? मैं भारत में एक भी व्यक्ति की दासता सहन करने को तैयार न था। न राजनैतिक न सामाजिक। दोनों में मैं अन्तर नहीं मानता था। इसलिए विरोध चाहे राजनैतिक हो चाहे सामाजिक मेरी कलम आग उगलने और विध्वंस करने में धीमी नहीं होती थी। इसी से मैंने "चांद" के 'फांसी अंक' के बाद 'मारवाड़ी अंक' की योजना बनाई थी, मारवाड़ से मैं उठ चुका था। मेरी प्रथम पत्नी का सम्बन्ध मथुरा खानदान उसी प्रदेश से स्थापित हुआ था, और द्वितीय सम्बन्ध मारवाड़ की कन्या थी। इसलिए मुझे अति निकट से मारवाड़ को जानना था, उसके कदम कदम, उसकी कुरीतियों का अनुभव प्राप्त था और इस अवसर को पाते ही मैंने कुल्हाड़ी चला दी। किसी की नहीं। धन रहित और धन मुक्ति नहीं तो मेरे हथियार थे और बकवासी मेरा श्रृंगार। इसी से जब मारवाड़ी अंक को मैं

हाथ में लिया तो मैंने समस्त मारवाड़ी समाज को एक सन्देश प्रेषित किया था—जो आज भी वैसा ही ज्वाला-मुखी के प्रवाह की भाँति अग्नि समुद्र है—जैसा कि अब से तीस बरस पहले था—मैंने लिखा था—
भाइयो !

बम्बई कलकत्ता के वैभव पर मत इतराओ। गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं और भड़कदार मोटरों पर गर्व मत करो। इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ सकती।

आओ, अपनी करोड़ों की सम्पत्ति लेकर देश को लौट आओ। मारवाड़ उजाड़, सुनसान, मुर्दा, श्मशानवत् पड़ा है, उसे आबाद करो, उसमें कला कौशल, व्यापार और उद्योग की वेगवती गंगा बहा दो, तुम्हारे हाथ में करोड़ों की सम्पत्ति है। व्यापार की क्षमता और योग्यता है, ईश्वरदत्त मुस्तैदी, धैर्य और सहिष्णुता है। उसे इस पुण्य भूमि में बखेर दो। मारवाड़ सोता है उसे जाग्रत करो, उसमें महालक्ष्मी की प्रतिष्ठा करो, उसके शासन मे योग्य नागरिक की तरह अधिकार प्राप्त करो। तुम कलकत्ता बम्बई में जस्टिस आफ दी पीस हो—पर तुम्हारी जन्मभूमि ठिकानेदारी की स्वेच्छाचारिता की गुलाम बन रही है। बीसवीं शताब्दी की कोई जाति इसे सहन नहीं कर सकती। उठो, ऐसा करो, जिससे भारतवर्ष का माथा मारवाड़, हिन्दुत्व का सार मारवाड़, पृथ्वी की महाजातियों का पवित्र मारवाड़, निकट भविष्य में आने वाले स्वाधीन भारत के नवीन युग में अपनी जन्म सिद्ध प्रतिष्ठा और स्थान का अधिकारी हो।
माताओ और दादियो !

तुम हमारे रास्ते से हट जाओ। हमें कदम-कदम पर नामर्द और हास्यास्पद मूर्ख मत बनाओ। हम अपने भाग्य से युद्ध करने चले हैं, हम रूढ़ियों को कुचल कर युगधर्म का अनुसरण करेंगे। "मेरे जीते जी ऐसा न होने पावेगा" ऐसा निकम्मा रोड़ा हमारे मार्ग में मत अड़ाओ। हमें दौड़ने दो, वह देखो, वह भयानक प्रवाह प्राचीन महासत्ताओं को कुचलता हुआ "उठो और जियो" की तूफानी गर्जना करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है। तुम झूठे मोह वश हमें रूढ़ियों के दलदल में फाँस रखोगी तो तुम्हारे यशस्वी वंश का बीज नाश हो जावेगा।
बहनो !

तुम अपने उन्नतमना, जाग्रत पतियों की सहधर्मिणी बनो। पैर की जूती बनने के दिन गए। इस बेहूदे घूँघट को और भद्दे घाघरे को लात मार कर फैंक दो। हाय ! कैसे तुम [illegible] में कैदी की तरह दिन काटती हो ? क्या तुम्हें याद है कि तुम्हारी माताओं और दादियों ने स्वाधीनता के नाम पर धधकती चिता पर अपने स्वर्ण शरीर को राख कर दिया था। तुम उस प्राचीन गौरव के नाम पर महाशक्ति का अवतार बनो। घूँघट को फाड़ डालो, मत डरो कि कोई तुम्हें कुदृष्टि से देखेगा। सिंहनी पर गीदड़ दृष्टि नहीं डाल सकते। सूर्य की ओर देखने वाले की आँखें चौंधिया जाती हैं। तुम सूर्य के समान तेजस्विनी और सिंहनी के समान साहसी बनो। परिश्रम, त्याग, सादगी, विद्या, विवेक और पवित्रता की साकार बनो। तुम्हारे नाम पर वह घर, खानदान धन्य हो जाय जिसमें तुम जन्मी हो और जिसमें तुम सौभाग्य की चुनरी ओढ़कर गृह-लक्ष्मी बन कर गई हो। अपने पतियों को धर्मात्मा और त्यागी बनाओ। अपने पुत्रों को वीर और साहसी बनाओ। तुम मारवाड़ की देवी, मारवाड़ की पावन, मारवाड़ की बहू, मारवाड़ की जीवनधन और मारवाड़ की प्राण हो। ऐसा कोई काम न करो जिससे मारवाड़ को लज्जित होना पड़े। भारी-भारी गहने पहनने का बेहूदा मोह त्याग दो। एक कटार सदा पास रखो, बेखटके घर के बाहर, बन्धु बान्धवों में चली जाओ। जो कोई जरा भी तुम्हारे अप-मान का साहस करे, कटार से काम लो। भारतवर्ष देखे कि मारवाड़ की सिंहनी कैसी होती है। विषय-लम्पट की गुलाम मत बनो, पतियों की अनुचित आज्ञा मत मानो। घर में व्यभिचार, मद्यपान, जुआ की बुरी लत है

हों तो उसे बलपूर्वक ठीक करो। तुम उसकी जगह उसी तरह स्वामिनी हो जैसे वह तुम्हारा है। धर्मात्मा सच्चरित्र पति की तन, मन से सेवा करो।

बेटियो !

विद्या तुम्हारा शृंगार है। जितना पढ़-लिख सको, पढो लिखो, घमण्ड मत करो। घर के छोटे-बड़े सभी काम, अपने हाथों से करने का अभ्यास करो, दिन में कभी न सोओ। नौकर को कभी मुँह मत लगाओ। ऐसे शब्द बोलो, जैसे फूल झड़ते हैं। माता-पिता, भाई सभी की मन से सेवा करो। गुड़िया मत खेलो। हठ मत करो, गन्दी मत रहो। कम बोलो, अधिक सोचो।

युवको !

बुजुर्गों की उन आज्ञाओं को मानने से इन्कार कर दो जो अधर्म सम्मत हों। तुम अपने को योद्धा समझो। साहस, वीरता, त्याग और सेवा नस-नस में भर लो। पेट की चिन्ता में न पड़ो, पेट तो कौवे और कुत्ते भी भर लेते हैं। तुमने क्या नहीं सुना —'नरा मारवाड'— अर्थात् मारवाड के मर्द प्रसिद्ध हैं। तुम वही मर्द हो। अगर तुम्हारे रहते पृथ्वी पर मारवाड़ी पगड़ी का अपमान हुआ, तो तुम्हारा जीवन धिक्कार है। जाओ सीधे विलायत पर धावा बोल दो। देखो जीवित जातियों के बच्चे किस तरह पृथ्वी पर लात मार कर आगे बढ़ा करते हैं। नहीं नहीं कला कौशल सीखो और अपने प्यारे मारवाड में आकर जीवन की फूंक फूंक दो। ऐसे बनो कि मारवाड़ की आन शान भारत में सबसे बढ़ी-चढ़ी हो जाय।

पाखण्डियो !

मारवाड़ से अपना शनैश्चर हटा लो। उसे पोथी-पत्रे, ग्रहदशा और झूठे वहमों में मत फँसाओ। उसे सच्चे रास्ते पर आने दो—अपने पेट के लिए देश का नाश मत करो। देश में उजाला होने दो। तुम पाखण्ड छोड़ दो—ठोस योग्यता प्राप्त करो। सच्चा आत्म सम्मान मन में रखो। पापी पेट के लिए पाप मत करो—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा।

परन्तु यह तो हुई मेरी बात। किन्तु जब मेरे सम्मुख वे लेख छद्म नाम से आये तो मैं चौंका। कौन है यह दुधारी बांध कर मेरी प्रतिस्पर्धा करने वाला? मैंने इस सम्बन्ध में "चांद" के स्वामी श्री सहगल को लिख कर पूछा—उत्तर में उन्होंने लिखा, वह नाम प्रकट नहीं किया जा सकता है। अतः छद्म नाम से आप भी सन्तुष्ट रहें। भला यह भी कभी सम्भव हो सकता था। उन दिनों गुस्सा मेरी नाक पर रखा रहता था—झट से मैंने कलम फेंक दी और सहगल को तार दे दिया कि जब तक वह नाम मेरे आगे नहीं प्रकट होगा मैं इस अंक के सम्पादन से इन्कार करता हूँ। यह इंकार साधारण बात न थी। इसके पारिश्रमिक के पैसे लेकर खा पी चुका था। उन्हें लौटाना सम्भव न था। उन दिनों निर्वाह खटपट-पटपट ही होता था। सदा ही से मैं स्वभाव से असावधान रहा हूँ। फिर उस समय तो मेरा सारा तारुण्य इस क्रांति के द्वार पर मेरी कलम की नोक द्वारा बिखर कर भारत खण्ड में फैल रहा था। पर उससे क्या? किसी भी कठिनाई के आगे घबराना या मनुष्य के आगे झुकना तो मेरी परम्परा में था ही नहीं। इस घटना से कुछ ही प्रथम मैं पंजाब यूनिवर्सिटी की नौकरी पर लात मारकर आया था एक जरा सी बात पर। वह बात भी सुन लीजिए—डी० ए० वी० कालेज में मैं आयुर्वेद का सीनियर लेक्चरर नियुक्त हुआ। प्रिंसिपल थे लाला साईंदास जी। किसी एक अवसर पर मैंने लिखित परीक्षा ली। पर्चे स्वयं लाला जी को बांटने थे। उन्हें नियत समय से पंद्रह मिनट विलम्ब हो गया और मैंने ऊब कर एक नोट प्रिंसि-पल को लिखा—जब वे आये तो क्रोध से अधीर हो रहे थे। अपने अधीनस्थ की यह धृष्टता भला वे कैसे सह सकते थे। किन्तु मुझ से कहा सिर्फ इतना ही—कि आप अपना काम देखा कीजिए—प्रिंसिपल के काम में दखल मत दीजिए। उसे और भी बहुत काम होते हैं। जिनके सम्बन्ध में आप कुछ नहीं जानते। बात कुछ ऐसी असु-

चित भी न थी। पर मुझे तो वह सहन न हुई मैंने आहिस्ता से कहा—"आप मुझे क्षमा कीजिए भाता जी, मैं यह बात बिलकुल ही भूल गया कि आप मेरे अफसर और मैं आपका मातहत हूँ—मुझे भय है कि मैं फिर भूल जाऊँगा क्योंकि किसी की मातहती में काम करने का मैं अभ्यस्त नहीं हूँ। अतः कल से आप दूसरा प्रबन्ध कर लीजिए। आज मैं आपकी सेवा में हूँ। इस्तीफा सेवा में पहुँच जायेगा।" और मैं उसी दिन चला आया—यह आरामदेह और प्रतिष्ठित नौकरी छोड़कर दर-दर पेट के लिए भटकने के लिए।

सो भला श्री सहगल का वह जवाब मैं कैसे सह सकता था। पर सहगल कच्चे खिलाड़ी न थे। उन्होंने तार देकर मुझे बुलाया और सारी हकीकत समझा कर वह गुप्तनाम भी बता दिया। नाम सुन कर मैं सन्न रह गया। बहुत देर तक गुमसुम बैठा रहा। मैं सोच भी न सकता था कि एक जन्मजात मारवाड़ी व्यक्ति, जन्मजात श्रीमन्त करोड़पति, लक्ष्मी का वरद् पुत्र, अन्धविश्वासों-रूढ़ियों में अपनी आयु व्यतीत किया हुआ प्रौढ़ आयु का पुरुष भी रूढ़िवाद के विरुद्ध इतनी आग हृदय में सुलगाये बैठा है। ऐसी तीखी उसकी कलम की नोक है। बहीखाते लिखने वाली कलम में इतनी तीखी ज्वाला तो मैंने पहली बार ही देखी।

परन्तु इससे मुझे बड़ा सहारा मिला। मेरा बड़ा भारी संकोच दूर हो गया। मैं सोच रहा था—कहीं मुझे लोग यह न कहें कि यह स्वयं मारवाड़ी नहीं है। अतः मारवाड़ी समाज पर द्वेष और घृणा से कीचड़ उछालता है। अब तो मेरे कन्धे से कन्धा मिला कर दुधारी चलाने वाला एक समर्थ पुरुष मिल गया था—जो मुझ से अधिक प्रौढ़ था। मुझ से अधिक मारवाड़ की दुरावस्था से चिन्तित और दुखी था। मुझ से अधिक मारवाड़ को मुक्त और उद्ग्रीव देखने को उत्सुक था। और वह मेरी तरह मारवाड़ के लिए पराया आदमी—कोरा छिद्रान्वेषी न था—मारवाड़ का लाल था। साधारण लाल नहीं—मारवाड़ के अपने काल में कुलीन पुरुषों का अग्रगण्य-अग्रज, समर्थ और उत्तरदायित्वों से सम्पन्न वह व्यक्ति था सेठ रामगोपाल मोहता।

यह नाम मेरे लिए बिल्कुल ही अपरिचित न था। परन्तु मैं उन्हें भारत के चोटी के व्यापारी के रूप में ही जानता था। उनके लेखों को मैंने संजो कर—विरोधों का विप्लव एक ओर धकेल कर उस अंक में छापा और फिर इसके बाद एक दिन मैंने उनके दर्शनार्थ—बीकानेर की यात्रा की। इस यात्रा में तीन दिन मैंने उनसे सहवास रहा। मैंने देखा—व्यर्थ इस सत्पुरुष को 'सेठ' के नाम से दूषित किया जा रहा है। सेठ जैसी तो इस पुरुष में कोई बात ही न थी। छोटे से एक दालान में एक ओर तख्त दूसरी ओर चटाई। उस पर खद्दर का अति साधारण—कहना चाहिए अपर्याप्त परिधान पहने एक तपस्वी मूर्ति बैठी जो मुझे देखते ही उठ खड़ी हुई। एक मन्द मुस्कान होंठों पर, सहज-सरल-तरल वाणी कण्ठ में—और तीव्र जिज्ञासा नेत्रों में।

बात बहुत कम हुई। जैसे हम दोनों ही एक दूसरे के निकट होते ही तृप्त हो गए। कौन किस बात की जिज्ञासा करे। बात कुछ हुई भी तो सानिध्य का आग्रह। अद्भुत उद्वेग। मैंने उसी क्षण उस सन्त पुरुष के चरणों में अपने को छोटा अनुभव किया। प्रदर्शन न करने पर भी मैंने अपनी मूक श्रद्धांजलि अर्पण की। जब लौटा तो ऐसा प्रतीत हो रहा था—तीर्थ-यात्रा से लौट रहा हूँ देवता के दर्शनों से कृत-कृत्य हो कर।

फिर तो मैत्री-सम्बन्ध दृढ़ होता चला गया। मुलाकातें अवश्य कम हुईं। पर उस एक ही प्रथम दर्शन ने जो एक आध्यात्मिक एकता का बीज वपन किया था उसके अंकुर फूटे, नाना शाखाएँ निकलीं और हम दोनों की परस्पर घनिष्ठता ही बढ़ती गई।

परन्तु दो व्यक्तियों की यह आध्यात्मिक एकता थी बड़ी विचित्र। एक ओर वय में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ में श्रेष्ठ, आचरण में सन्त और ज्ञान में बड़ा [illegible] [illegible] से कोरमकोर निरक्षर—ईश्वर, धर्म, कलियुग, हिन्दुधर्म पर अचल मूर्ति सेठ रामगोपाल मो[illegible] [illegible] और धर्म और परलोक में अटूट आस्था, [illegible] सत्ता और लक्ष्मी [illegible] पर लिए कई चक्[illegible] [illegible] बढ़ता हुआ साहित्यकार—जिसका न कोई अपना

देश, न धर्म, न जाति न समाज, न राष्ट्र और न इस सब के प्रति उसका कोई कर्त्तव्य शेष । जो केवल मानव तत्व का पुजारी मनुष्य की दुनिया की सब से बड़ी इकाई मानकर कलम की नोक से सब आवेग, सब संतार सब बंधनों को त्याग—केवल मानव मूर्ति के शृंगार में कोमल, भावुक, रसस्रोत में डूबता उतराता जीवन और उसके रहस्यों के रेखा चित्र बनाता जा रहा था। जिसने मानव तत्व की श्रेष्ठता का विचार कर उसके ऊपर ईश्वर तत्व से इनकार कर दिया। श्रद्धा और तर्क दोनों का सहारा त्याग केवल भावना को मूर्त करने में जी-जान से लगा हुआ था। कैसे उस सिद्ध-संत पुरुष से आध्यात्मिक एकता प्राप्त कर सका।" इसमें एक रहस्य था। मनोवैज्ञानिक रहस्य। जो शुष्क प्रेम और शुष्क निष्ठा पर आधारित था।

दो और अविस्मरणीय मुलाकातें हुई। सेठजी के कोई एक आत्मीय शायद रतनगढ़ में जलोदर रोग से पीड़ित थे। उन्हीं की चिकित्सा मे मुझे बुलाया था। रोगी की दशा आशातीत थी। मैंने एक घण्टे तक रोग और रोगी की छानबीन की। बीकानेर और रतनगढ़ के कई नामांकित चिकित्सक भी उपस्थित थे। अन्त मे जैसी कि मेरी आदत थी, मन का भाव छिपा कर कुछ हास्य मुद्रा मे मैं कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और उनके निजी चिकित्सक को चिकित्सा सम्बन्धी बातें समझाने लगा। परन्तु रोगी ने मेरे अन्तस्तल में बैठकर सत्य को जान लिया था। जब तक मैं उसकी परीक्षा करता रहा, वह स्तब्ध चुपचाप पड़ा मेरी ओर ताकता रहा, जब मैं चिकित्सा और औषध सम्बन्धी आदेश दे रहा था उसने अनुरोध किया जरा बैठ जाइए और आग्रह किया कि उसे काशी पहुँचा दिया जाय।

रोगी अब एक सप्ताह से अधिक जीवित नही रह सकता था तथा यात्रा मे जीवन का अकस्मात् खतरा था—मैंने बहुत कहा पर उसका आग्रह अचल था। मुझे स्वीकृति देनी पड़ी। वह सन्तुष्ट हुआ। उस समय उसके मुख मण्डल पर जो दीप्ति आई उसे मैं आज भी नही भूला हूँ।

उसने दिन भर अपनी सम्पत्ति के बंटवारे मे खत्म किया। आत्मीयों को इच्छा धन दिया। लगभग सम्पूर्ण धन दान दे दिया। बहुत ब्राह्मण उसके घरों में किराए पर थे। जो जिस घर में था वह उसे ही दे दिया। इसके अतिरिक्त एक बड़ी राशि सेठ रामगोपाल मोहता को सुपुर्द कर दी कि वे जैसा ठीक समझें लोकहित मे खर्च कर दें। मैं सब कुछ देखकर हैरान था। आत्मा की इतनी पवित्रता और मृत्यु की ऐसी शानदार तैयारियाँ तो महाज्ञानी-वीतरागी में भी दुर्लभ होती हैं। उसके आग्रह पर मैंने उसे काशी पहुंचाया। आशा थी यह लक्षाधिपति किसी शानदार कोठी मे वहाँ रहेगा, पर जब उसने धर्मशाला की एक कोठरी में भूमि पर बिछौना किया तो मेरे नेत्र बरबस गीले हो गए। उसके धैर्य और तप को देखकर नहीं। उस सन्त की याद करके— कि जिसकी शिक्षा, सान्निध्य और उपदेश से यह धनिक वणिक ऐसा श्रद्धावान बना। वहाँ पहुँचकर उसने स्नान-भोजन से निवृत्त होते ही मुझे बुलाया। कौड़ी पाई मेरी फीस मेरे आगे धरी और जबरदस्ती विदा कर दिया। मैंने बहुत कहा कि मैं इस हालत में आपको छोड़कर नहीं जाऊँगा, फीस भी नहीं लूँगा और सन्त सा जो कुछ कर सकूँगा, करूँगा। पर उसने एक न सुनी। मुझे बद्धांजलि हो विदा किया। कृतज्ञता के फूल मेरी राह में बखेर कर। और उसके तीन दिन बाद उसने जीवन-लीला समाप्त की।

दूसरी घटना शायद सुजानगढ़ की है। कोई एक साहित्य समारोह था—जिसमें मुझे भी बुलाया गया था। ठहरने के स्थान पर जाकर देखा—सेठजी भी आए हुए हैं। उन्हें भी मेरे पहुँचने की खबर मिली तो बाहर निकल आए। अपने साथ ही ठहरने का आग्रह किया। वह सन्त—वही रहन-सहन—वही जीवन। पर इसी मैंने उनके जीवन का एक और अध्याय पढ़ा। सन्ध्या समय बोले, एक स्थान पर चलना है। कष्ट नहीं तो चलिए। भला सन्त समागम में कष्ट कैसा ? हम चले पैदल। गली की धूल उड़ाते हुए। साथ में १०–२० जन

और। पहुँचे भंगियों की बस्ती में, जहां दो कुर्सियां थीं हमारे लिए, शेष जन धरती पर धूप में बैठे थे। बालक, बूढ़े, युवा, स्त्रियां और पुरुष सब। कोई दो सौ व्यक्ति।

बैठते ही सेठ जी ने कहा तुम में से जो गाना जानते हों वे आगे आ बैठें। एक प्रसन्नतापूर्ण उत्सुकता की लहर सब के मुख मण्डल पर दौड़ गई। कुछ युवक, बालक और स्त्रियां आगे सरक आए। सेठजी ने कहा कोई भजन किसी को याद हो तो गाए। पर शायद संकोचवश कोई न बोला। सेठजी ने कहा, अच्छा मैं गाता हूँ, तुम सब मेरे साथ गाओ। और मुझे आश्चर्य सागर में डुबोते हुए सेठजी ने गाना प्रारम्भ किया। क्षण भर बाद ही आबाल-वृद्ध का संयुक्त स्वर उनका अनुकरण करने लगा। दो तीन भजन गाए। फिर तो इन हरिजनों ने भी खूब उत्साह से गाया। स्त्रियों ने भी भजन गाए। सेठजी ने मुझसे कहा कि कुछ बोलूं। पर मेरी वाणी जड़ थी। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था—जैसे सेठजी और ये सब एकरस थे। केवल मैं एक बाहरी पुरुष था। तभी मैंने देखा कि मनुष्य का सच्चा पुजारी तो यही सेठ है। मैं तो झूठा ही दम्भ करता हूँ। उस समय सेठजी की अपेक्षा मैं अपने को अतिशय नगण्य समझ रहा था। मुझे यह दृश्य चमत्कारी सा दीख रहा था। मैंने सेठ जमनालाल बजाज के साथ रहकर भी हरिजन सेवा के दृश्य देखे थे। पर एक क्षण के लिए भी मैंने ऐसा नहीं अनुभव किया कि सेठ जमनालाल और वे एक हैं। सर्वत्र एक उद्धारक के रूप में हम और आप रहे। पर यहां तो सेठ रामगोपाल उनके उद्धारक नहीं—उन्हीं के एक परिजन से उनमें रमे गए थे और मैं अकेला असहाय सा रह गया था।

भजन के बाद बातचीत हुई। बातचीत ही थी यह। उपदेश न था। बातचीत की भाषा उन्हीं लोगों की भाषा थी। बात ही बात में एक बात यह निकली कि अछूतों को जल का भारी कष्ट है। उनके लिए उनका अपना कोई कुंआ नहीं है। सवर्ण उन्हें कुओं पर चढ़ने नहीं देते हैं। सेठजी ने सुना—चुप हो गए। पर बाद में सुना—लगभग दो हजार रुपया लगा कर उनके लिए पक्का कुआं बनवा दिया।

नहीं जानता, ऐसे-ऐसे कितने सत्कर्म इस महा वीतराग-सन्त कर्म पुरुष ने किए हैं। इसका लेखा जोखा तो उसके पास भी न होगा।

अन्तिम मुलाकात उस दिन हुई दिल्ली में। भाई सत्यदेव विद्यालंकार ने कहा—सेठजी दिल्ली आए हैं। मुद्दत से नहीं देखा था। मिलने की इच्छा प्रकट की—जाकर देखा—वह स्वस्थ पुष्ट शरीर काफी जर्जर हो गया है। पर एक प्रकार का तेज इस समय भी उस शरीर से फूट रहा था। सादा कुरता, धोती पहने पलंग पर बैठे थे। रुग्ण थे। देखा तो सदा कि भांति उठ खड़े हुए—छोटे भाई राय बहादुर शिवरतन मोहता भी आ बैठे। कराची की तबाही में उन पर बीती घोर उसका हाल शिवरतन जी सुनाने लगे। इधर उनकी [illegible] सरल बालक की भांति निरीह आंखें थीं। सुनकर दिल में दर्द होने लगा। करुण कहानी। कैसे वह अपने [illegible] 'महल' से निकाले गए, लूटे गए, उन पर घोर जुल्म हुए। सुनाते जा रहे थे—एक विवशता उनके स्वर में थी। सब सुन कर मैंने एक प्रश्न किया—कैसे आपने इतना सहन किया और इस समय भी प्रसन्न हैं। तो इन्होंने शान्त स्वर में कहा 'भाई जी की बदौलत। इनका आत्मबल मेरा अवलम्ब रहा—बहुत मर गए—बहुत पागल हो गए। मुझे तो लाखों नहीं करोड़ों का विसर्जन करना पड़ा। भाई जी का व्यवहार [illegible] यदि मेरी इच्छा को प्रकाश न दिखाता तो—हम जीते यहां न आते ही नहीं। आज भी यही [illegible] हमें [illegible] और सुखी बना रहा है।' मेरी आंखें गीली हो रही थीं और मैं शिवरतन जी की ओर आंख भर कर देख भी नहीं सकता था। मैंने उस श्रेष्ठ सन्त को मन ही मन प्रणाम किया जिसे जनता ने केवल 'सेठ' के नाम से पुकारा है और [illegible] यह भावना मन में दृढ़ करते—कि यह पुण्य—भाव का विरल अमर [illegible] है, [illegible] अवतार है।

परम सन्त सेठ रामगोपाल मोहता अब अस्सी को पार कर रहे हैं। मैं कामना करता हूँ कि वे अपना सौवाँ वसन्त देखें—और तब तक मैं भी जीवित रहूँ—और उनके सौवें वसन्त का उत्सव मेरे ही हाथों सम्पन्न हो।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

(आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री साहित्य जगत में अपने ही तेज से देदीप्यमान सूर्य के समान हैं। कुशल और सुप्रतिष्ठित वैद्य के रूप में वे लक्ष्मीपति बन सकते थे; परन्तु उन्होंने कामधेनु वैद्यक को ठुकरा कर साहित्यिक का गरीबी बाना स्वेच्छा से स्वीकार किया और गरीब रहकर भी हिन्दी साहित्य के भण्डार को अनूठे रत्नों से भर दिया। आपने लगभग ६० ग्रन्थ हिन्दी को प्रदान किए हैं। आप लौह लेखनी के धनी, शब्दों के कुबेर, भाषा के अनूठे शिल्पी, कल्पना के चतुर चितेरे, अपनी शैली के स्वयं जनक और मौलिक रचनाओं की सृष्टि के अद्भुत विधाता हैं। आप अपने साहित्यिक जीवन की गरीबी में वैसे ही मस्त हैं जैसे कोई धन कुबेर अपने वैभव में भी मस्त नहीं रह सकता।)

•

१७

मोहता जी

सेठ रामगोपाल एक लेखक भी हैं। इस नाते मैं उनकी पुस्तकें देख गया और ज्यों-ज्यों मैं उन पुस्तकों को पढ़ता गया और साथ ही अपने मन में यह याद रखता रहा कि इस समय सेठजी की उम्र ८१ वर्ष की है, तो यह विचार मेरे मनमें अनायास हो आया कि इस उम्र के लोगों में सेठजी अवश्य ही बहुत प्रगतिशील विचार के व्यक्ति हैं।

उनकी पुस्तकों के हर पृष्ठ पर उनके स्वतन्त्र चिन्तन का परिचय प्राप्त होता है। वे धर्मों से बहुत चिढ़े हुए हैं। वे हरिद्वार से आए ही थे, जबकि मैं उनसे पहली बार मिला। वे हरिद्वार धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि आबोहवा की दृष्टि से जाया करते हैं। पर वहाँ के साधुओं और धर्म-ध्वजियों के हथकंडों को देखकर वे बहुत दुखी थे। वे इस निश्चय पर आज नहीं बल्कि २०-२५ साल पहले ही पहुँच चुके थे कि इस तरह के साम्प्रदायिक धर्मों से काम नहीं चलने का। कहना न होगा कि ये विचार बहुत क्रान्तिकारी हैं। उनकी पुस्तकों में मैंने सर्वत्र इसी प्रकार के विचार देखे।

वे यह स्पष्ट कह रहे थे कि धर्म-ध्वजियों के पास करोड़ों की सम्पत्ति जमा है और वह सम्पत्ति देश के किसी भी काम नहीं आ रही है बल्कि इससे कुछ ऐसे लोगों का पालन हो रहा है जो देश की कोई भी सेवा नहीं करते। वे कहते थे कि यदि इस धन का उपयोग पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बनाने में किया जाए तो हमें किसी विदेशी शक्ति का मुंह न देखना पड़े। आज हजारों आदमी यही बात सोच रहे हैं। पर पता नहीं क्यों यह बात कार्य रूप में परिणत नहीं हो पा रही है। क्या यह विचार कभी कार्य रूप में परिणत हो सकता ?

मुझे यह जानकर बहुत ही खुशी हुई कि बरसों से सेठजी का परिचय सुप्रसिद्ध लेखक, विचारक और क्रान्ति के उपासक श्री एम० एन० राय से था और सेठजी जब-तब उनकी सहायता किया करते थे। [illegible]

ही है कि श्री एम० एन० राय के साथ उनके सारे विचार नहीं मिलते थे। फिर भी उनमें यह उदारता थी कि वे उनके बड़प्पन को अच्छी तरह समझते थे और मतभेद रखते हुए भी उन्हें यथाशक्ति सहायता करते थे। मनुष्य के चरित्र में मैं इस गुण को बहुत बड़ा मानता हूँ कि वह अपने से विभिन्न मत रखने वाले लोगों के दृष्टिकोण को भी समझ ले। बहुत कम लोग ऐसा कर पाते हैं। सच तो यह है कि बहुत बड़े-बड़े लोग जो दूसरे अर्थों में बहुत बड़े थे, वे भी इस मामले में बहुत चूक जाते थे। महात्माजी अहिंसा के पुजारी और प्रतिपादक थे, वे क्रान्तिकारियों के त्याग और उनकी तपस्या को मानते भी थे, पर वे जब-तब ऐसे उनकी रिहाई के मामलों पर ऐसे वक्तव्य दे दिया करते थे जिनसे कि क्रान्तिकारी बहुत चिढ़ते थे और इससे यह सूचित होता था कि उनमें सहनशीलता उतनी नहीं है जितनी कि होनी चाहिए।

सेठजी को जो थोड़ा बहुत प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिला, उसमें मैं निश्चयपूर्वक इस बात पर पहुँचा कि वे नियम और समय के बहुत पाबन्द हैं और शायद उनके दीर्घ जीवन का यही रहस्य हो। इससे भी बड़ी बात यह है कि उनका शरीर ही नहीं, मन भी बहुत स्वस्थ है। हरिद्वार में फैले हुए अनाचारों से वे जिस प्रकार क्षुब्ध और उत्तेजित थे, उससे यही ज्ञात हुआ कि वे अभी तक बराबर स्वतन्त्र चिन्तन करते हैं और लोगों को अपनी बुद्धि के अनुसार रास्ता दिखाने के लिए भी तैयार हैं।

मैं यही चाहता हूँ कि वे दीर्घायु हों। एक साथी लेखक के नाते मेरी यही कामना है।

मन्मथनाथ गुप्त

(श्री मन्मथनाथ गुप्त पुराने सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, लेखक, विचारक एवं दार्शनिक हैं। काकोरी डकैती के सुप्रसिद्ध षड्यन्त्र में आपको ३४ वर्ष की सजा हुई थी और आपकी युवावस्था का बड़ा भाग जेलों में ही बीता है। आपने जितना पढ़ा और लिखा है उतने पढ़ने और लिखने वाले मिलने कठिन हैं। इस समय आप "योजना" पाक्षिक पत्र के सम्पादक हैं। राजनीतिक मामलों में ही नहीं; किन्तु धार्मिक एवं सामाजिक मामलों में भी आप प्रगतिशील विचारों के कट्टर सुधारक और क्रान्तिकारी हैं। आपका लिखा हुआ साहित्य आपके ऐसे ही विचारों से ओतप्रोत है। विविध विषयों पर आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आप सफल कहानी लेखक और उपन्यासकार भी हैं।)

●

१८

जैसा मैंने उन्हें देखा

सर्व साधारण की प्रायः धारणा है कि मारवाड़ी सेठ केवल धन कमाने की ही मशीन होते हैं, साहित्य दर्शन, राजनीति और अध्यात्म विद्या उनको छू तक नहीं गई। मेरी अपनी भी कुछ ऐसी ही धारणा थी। परन्तु मार्च सन् १९३५ ई० में करांची में मुझे एक ऐसे मारवाड़ी महानुभाव के दर्शन हुए जिनसे बातचीत करने पर मुझे उपर्युक्त धारणा भ्रमात्मक जान पड़ी। सेठ रामगोपाल जी बीकानेर निवासी, रायबहादुर सेठ गोवर्द्धनदासजी ओ० बी० ई० के सुपुत्र और करांची के तत्कालीन मेयर सेठ रायबहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता के बड़े भाई हैं। करांची के सबसे सुन्दर स्थान क्लिफ्टन पर इनका एक विशाल मोहता पैलेस था। जो [illegible]

जाते थे वे मोहता पैलेस भी अवश्य देखते थे। भगवत्कृपा से सेठ रामगोपाल जी कोट्याधीश हैं। आप लाखों रुपया दान में दे चुके हैं। आपका कारबार सारे भारत में फैला हुआ है। इस पर भी आप सादगी, सौजन्य, नम्रता और पाण्डित्य की सजीव मूर्ति हैं। आपके इन्हीं गुणों को देखकर मारवाड़ी सेठों के संबन्ध में मुझे अपनी धारणा में संशोधन करना पड़ा था।

मेरा अनुमान था कि मोहता पैलेस जैसे अप-टू-डेट ढंग से सुसज्जित राजभवन में निवास करने वाले सेठ साहब भी अप-टू-डेट शान-बान के मनुष्य होंगे, परन्तु देहाती ढंग का खद्दर का दूध सा सफेद कुरता और ज्योत्स्ना के समान धवल धोती पहने, सिर नंगा और पाँवों में बीकानेरी देसी जूता देख मेरे मन में उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव सहसा उत्पन्न हो आया। सेठजी की प्रशंसा मैंने बहुत सुन रखी थी। मैं समझता था कि धन कुबेरों के गुण-गायक और चाटुकार हुआ ही करते हैं। पंजाबी में एक कहावत है—जिसकी कोठी दाने उसके बावले भी सयाने। इसलिए निश्चय किया कि सेठजी की दानशीलता और बाहरी सौजन्य को अलग रखकर उनके वास्तविक व्यक्तित्व और निजी विचारों को देखना चाहिए। इसके लिए सेठ जी से दीर्घकाल तक विचार-विनिमय करना आवश्यक था। कराची के दो सप्ताह के प्रवास में इसके लिए मुझे सुअवसर भी मिल गया। मैंने तथा जात-पाँत तोड़क मंडल के महोपदेशक श्री० भूमानन्द जी ने तीन-चार दिन कई-कई घण्टे तक सेठ जी से वार्तालाप किया।

सेठजी गीता के अनन्य भक्त और वेदान्त के पारङ्गत पण्डित हैं। आपने 'सात्विक जीवन', 'दैवी सम्पद्' और 'गीता का व्यवहार दर्शन' नामक तीन पुस्तकें भी लिखी हैं। आपको पुत्र कलत्र कोई नहीं। एक कन्या थी, सो उसका भी देहान्त हो चुका है। उस समय आपकी अवस्था कोई साठ वर्ष के लगभग होगी। वेदान्त का व्याव-हारिक ज्ञान होने से आप सदा प्रसन्न रहते हैं। उदासी कभी आपके पास नहीं फटकती। इतना ही नहीं, आपकी सत्संगति से दूसरों की भी निराशा, चिन्ता और उदासीनता कुछ काल के लिए तो जरूर दूर हो जाती है। संसार में कई मनुष्य ऐसे होते हैं जो दूर से देखने पर ही बड़े जान पड़ते हैं। आप उनके जितना निकट जाएँगे उतना ही आप को उनसे विरक्ति वरन् घृणा उत्पन्न होगी। परन्तु सेठ जी इसके सर्वथा विपरीत हैं। उनके जितना निकट मनुष्य जाता है, वह उनको उतना ही अधिक मधुर और आकर्षक पाता है।

सेठ जी का समाज-सुधारक रूप भी मुझे देखने को मिला। सेठ जी स्त्री-जाति के बड़े हितैषी हैं। वे जन-समाज में स्त्रियों के लिए सम्मान का भाव पैदा करने और उनको उनके मानवी अधिकार दिलाने के लिए सदा प्रयत्नवान रहते हैं। आपने कलकत्ता के हिन्दू अबला आश्रम को चालीस हज़ार रुपया और निजुवा का बगीचा व कोठी प्रदान की है। बालविवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, पर्दा-प्रथा आदि के विरुद्ध प्रचार किया है। आपने इसके लिए अनेक सुन्दर गीत भी बनाए हैं। सेठ जी कोरे प्रचारक ही नहीं, क्रियात्मक सुधारक भी हैं। आपके छोटे भाई सेठ शिवरतन जी की धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती देवी आप से घूँघट नहीं करतीं। सेठजी को अतिथियों के खान-पान और रहन-सहन के विषय में स्वयं आकर पूछ-ताछ करते देख हमें बड़ा हर्ष हुआ। सचमुच सच्चा सुधार घर से ही आरम्भ होता है।

कोई मनुष्य वास्तव में कैसा है, इसका पता दो-चार घंटे के मेल-मिलाप से नहीं लग सकता। मनुष्य के चरित्र का सच्चा दर्शन उसकी पत्नी, उसके बच्चे, और उसके भाई-बन्द ही होते हैं। कारण यह कि इन सब लोगों से मनुष्य की कोई भी बात छिपी नहीं रह सकती। मैं तो उसी मनुष्य को अच्छा कहूँगा जिसे उसके कुटु-म्बजन और भाई-बन्धु अच्छा कहते हैं। जिस मनुष्य से उसकी भार्या सन्तुष्ट है, जिससे उसका भाई प्रेम करता है, जिसे देखकर उसके बच्चे प्रसन्न होते हैं, समझ लीजिए कि वह सचमुच सज्जन है। सेठ रामगोपाल जी के कुटुम्बजन तो हैं ही नहीं, केवल उनके भाई ही हैं। सेठ शिवरतन जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनसे सेठ

रामगोपालजी के घरू व्यवहार का कुछ पता चल सकता है। जो उनके आचार-विचार और व्यवहार में धर्म के प्रति अगाध भक्ति और निर्व्याज प्रेम का भाव प्रदर्शित होते देख सेठ रामगोपाल जी की महत्ता का प्रमाण मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती।

सेठ जी बड़े आनन्दी मनुष्य हैं। जिन दिनों मैं उनके दर्शनार्थ कराची गया उन दिनों होली का त्योहार मनाया जा रहा था। सेठ जी सुधारक होने के कारण होली में गंदगी बखेरने और बेहूदा बकवास करने के विरुद्ध हैं। इसलिए आपने पवित्र होली मनाने का आयोजन किया। नगर के दूसरी ओर, बस्ती से कुछ दूर हटकर एक सुरम्य वाटिका थी। वहाँ मारवाड़ी युवकों और बड़े-बूढ़ों को निमंत्रित किया गया। पहले सेठ जी ने होली का प्रवचन किया। फिर दो बड़े-बड़े नगाड़ों के साथ सभी उपस्थित सज्जनों ने सेठ जी के बनाए हुए समाज सुधार सम्बन्धी दो गाने गाये। एक तो होली पर था और दूसरा था 'अबलाओं की पुकार' उसका आरम्भ इस प्रकार था :—

टेर

सजन सुनो दे कान, धर्म का जो दम भरते हो।
नारी नर से कहे, जुल्म हम पर क्यों करते हो॥

अन्तरा

ब्रह्माजी ने आदि काल में सृष्टि रची सारी।
एक भुजा से हुआ पुरुष और दूजी से नारी॥
दोनों मिलकर गृहस्थ करो यह आज्ञा करी जारी।
आप जगत के पिता हुए और हम भी महतारी॥
हम बिना आप का कोई काम नहीं चलता।
नारी को दुःख होने से धर्म नहीं पलता।
जप तप व्रत तीरथ यज्ञ दान नहीं फलता॥
सजन सुनो दे कान ……………………।

पहले सेठ जी स्वयं गाते थे, उनके पीछे दूसरे सज्जन एक साथ-स्वर में गाते थे। साथ-साथ नगाड़ा बजता जाता था। इससे इन सुधार-गीतों का प्रभाव बहुत बढ़ जाता था। भजन गान के बाद एक डाण्डिया खेल हुआ। युवकों ने हाथ में दो-दो डंडे लेकर एक गोल चक्कर बना लिया। इसमें दो-दो युवक एक दूसरे की ओर मुंह किये खड़े थे। चक्कर के बीच में दो बहुत बड़े नगाड़े रखे गये। तब सेठ जी ने स्वयं इन नगाड़ों को एक विशेष ताल के साथ बजाना आरम्भ किया। नगाड़े पर चोट पड़ते ही चक्राकार खड़े युवकों ने नाचना आरम्भ किया। धीरे-धीरे इनकी गति तीव्र होने लगी। वे घूमते भी जाते थे और डंडों के साथ एक विशेष प्रकार का व्यायाम भी करते जाते थे। इस उत्सव में सेठ जी के छोटे भाई राय बहादुर सेठ शिवरतन, उनके पुत्र और सेठ जी के अन्य प्रतिष्ठित सम्बन्धी सभी सम्मिलित होकर नाच और गा रहे थे। बड़ा सुन्दर दृश्य था। ऐसे खेलों का सामाजिक मूल्य सचमुच बहुत अधिक है। इनसे व्यायाम और मनोरंजन के अतिरिक्त समता और बन्धुत्व का भाव भी उत्पन्न होता है। खेल की समाप्ति पर प्रीति-भोजन हुआ। जितने दिन होली रही यह आनन्द कार्यक्रम उतने दिन रोज होता रहा।

सेठ जी के विचार

सेठ जी के सामाजिक विचार यद्यपि बड़े उदार थे, परन्तु मुझे इतने से सन्तोष नहीं हुआ। मनुष्य को परखने की मेरी एक अपनी कसौटी है। जो उस कसौटी पर पूरा उतरे मैं उसे ही पूरा समझता हूँ। मैंने सेठ जी को भी उसी कसौटी पर कस कर देखना चाहा। मैंने उनसे पूछा कि जात-पाँत के सम्बन्ध में आपका क्या मत है? आप ने कहा, जात-पात को मैं नहीं मानता, परन्तु आपके मण्डल से भी सर्वांश में सहमत नहीं हूँ।

मैंने पूछा, किन बातों में आपका मत-भेद है? आपने कहा कि आप लोग केवल तोड़ते हैं, बनाते कुछ नहीं। जब तक जात-पाँत को छुड़ा कर उसके स्थान पर कोई नई चीज़ नहीं देंगे, तब तक काम न चलेगा। इस पर मैंने कहा कि मैं तो जात-पाँत को एक रोग समझता हूँ। इसको दूर कर देने की आवश्यकता है। इसी से हिन्दू जाति स्वस्थ हो जाएगी। इसको दूर करके इसके बजाय कोई दूसरा रोग लाने की आवश्यकता नहीं। फिर यदि आप कोई नई चीज बनाना ही चाहते हैं तो हमें इस जात-पाँत के खंडहरों को पहले साफ कर लेने दीजिए, इसके बाद हमारे साफ किए हुए मैदान पर आपके लिए नया भवन बनाना सुगम हो जाएगा। जीर्ण-शीर्ण खंडहरों की ऊबड़-खाबड़ धरती पर कोई नया भवन बनाना सम्भव नहीं। चातुर्वर्ण्य के विषय पर बड़ी लम्बी-चौड़ी बातचीत हुई। मेरे यह कहने पर कि वर्तमान काल में वर्ण-व्यवस्था की व्यावहारिता और उपयोगिता समझाइए, सेठ जी ने साफ कहा कि मैं गीता का मानने वाला हूँ। गीता में कर्म-विभाग है, जाति विभाग नहीं। गीता व्यवहार ग्रन्थ है, धर्म ग्रन्थ नहीं। उसमें अंध विश्वास और अव्यवहार्य कल्पनाओं का लव-लेश तक नहीं। वर्ण-व्यवस्था मनुष्यों के लिए है, मनुष्य वर्ण-व्यवस्था के लिए नहीं। आज-कल का वर्ण विभाग समाज के लिए हितकर नहीं। व्यष्टि को समष्टि के लिए और समष्टि को व्यष्टि के लिए सहायक होना चाहिए। विवाह में केवल गुण, कर्म, स्वभाव देखने चाहिए, जाति नहीं। मैं स्वयं अपने एक ब्राह्मण मित्र की विधवा कन्या का विवाह एक माहेश्वरी बनिए से कराना चाहता था। विवाह में आचार-विचार की अनुकूलता परम आवश्यक है। जो गीता समत्व योग का उपदेश करती है वह कर्म विभाग में-वर्णों में—ऊँच-नीच कैसे मान सकती है? हिन्दुओं में एकता लाने के दो ही साधन हैं—एक तो सब मतों को मिटा दो, दूसरे जात-पाँत को उठा दो। इसीलिए—गीता कहती है—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अर्थात् सब मत-मतान्तरों को छोड़ कर एक मेरी शरण—एकत्व भाव—को ग्रहण कर। जो लोग कहते हैं कि गीता समदर्शी होने को तो कहती है, पर समवर्ती (सब के साथ समता का बर्ताव वाला) होने को नहीं, वे भारी भूल में है। समवर्ती हुए बिना समदर्शी होने का कुछ अर्थ ही नहीं। देखिए गीता में साफ कहा है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते ॥

अर्थात् जो एकता का अवलम्बन करके सब प्राणियों में रहने वाले मुझ को भजता है वह योगी सब प्रकार से बर्तता हुआ भी मुझ में रहता है।

सेठ जी ने कहा कि कलकत्ता में बंगाली और गैर बंगाली का प्रश्न बड़ा विकट रूप धारण कर रहा है। पिछले दिनों बंगालियों की एक सभा हुई थी। वहां कुछ मारवाड़ी भी गए हुए थे। उन्होंने बंगालियों से कहा, आप हमसे द्वेष क्यों रखते हैं? हम तो अब नाम के ही मारवाड़ी रह गये हैं, वास्तव में कई पीढ़ियों से हम बंगाल में ही बसते हैं। हम सब बंगाली ही हैं। इस पर उस सभा के प्रधान डाक्टर सर पी० सी० राय ने उत्तर दिया कि यदि आप बंगाली हो गये हैं तो बतलाइये, कितने मारवाड़ी पुरुषों ने बंगाली लड़कियों से विवाह किया है और कितनी मारवाड़ी लड़कियां बंगालियों से ब्याही गई हैं? यदि इसका उत्तर नकार में है, और आप अब

तक भी मारवाड़ियों में ही विवाह करते हैं, तो आप बंगाली कैसे हैं ? इस पर सब मारवाड़ियों को चुप रह जाना पड़ा। आपने फिर कहा—

यदि आप सनातन धर्मियों में से जात-पाँत को मिटाना चाहते हैं तो आप को उनमें गीता का प्रचार करना चाहिए। कारण, गीता जाति-भेद को नहीं मानती। अर्जुन ने जब युद्ध करने से इन्कार करते हुए कहा कि इससे कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाएंगे और वर्ण-संकरता फैल जाएगी, तो भगवान् ने उसके इन विचारों को क्लीवता बता कर खूब डाँट-डपट की और इन सब धर्मों को छोड़कर एकत्व और समत्व की शरण लेने को कहा। यदि गीताकार जात-पाँत मानने वाला होता, तो वह इन धर्मों को छोड़ने को न कह सकता। मेरे प्रश्न करने पर कि आप इतने स्वतन्त्र विचार रखते हुए भी गीता की गुलामी क्यों कर रहे हैं, सेठ जी ने कहा कि मैं गीता का अंधविश्वासी नहीं हूँ। इसकी सब बातों को बुद्धि-पूर्वक परखने के बाद ही मैं इसकी प्रशंसा करता हूँ। गीता स्वयं अन्ध-विश्वास के विरुद्ध है। देखिए गीता का संपूर्ण उपदेश सुना चुकने के बाद भगवान् ने अर्जुन से कहा—

इतिते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

अर्थात् मैंने तुझे यह गुह्य से भी गुह्यतर ज्ञान बतलाया है, अब तू अपनी बुद्धि से काम लेकर जैसा तुझे उचित जान पड़े वैसा कर। भगवान् ने उसे यह नहीं कहा कि जो कुछ मैं कहता हूँ उसे तुम जरूर ही स्वीकार करो।

सेठ जी ने कहा कि आप लोग भी आर्य समाज के संकुचित मत में बन्द हैं, इसलिए सारे हिन्दू जाति में समता और एकता नहीं ला सकते। मैंने कहा कि सेठ जी, मेरा आर्यसमाज कोई संकुचित संप्रदाय या मत नहीं। मैं तो सब मत-मतान्तरों से परे एक सार्वभौम धर्म को ही अपना धर्म मानता हूँ।

सेठ जी गीता के श्लोकों की ऐसी अनूठी और युक्तियुक्त व्याख्या करते थे कि सुनकर तबियत फड़क उठती थी। आपने तीसरे अध्याय के १४ वें श्लोक—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म ,समुद्भवः ॥

का बड़ा अनूठा और व्यापक अर्थ किया। प्रायः "अन्न" का अर्थ खेती से पैदा होने वाले खाद्य-पदार्थ "पर्जन्य" का अर्थ मेघ या वर्षा, और "यज्ञ" का अर्थ अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकाण्ड किया जाता है। परन्तु आप ने कहा कि ये अर्थ बहुत ही संकुचित हैं, क्योंकि सब भूत प्राणी केवल कृषि-जन्य अन्न से ही नहीं होते। अनेक प्राणी पृथ्वी, जल अथवा वायु से भी होते हैं और उन्हीं पर निर्भर रहते हैं। जगत में सभी पदार्थ परस्पर में भोक्ता-भोग्य अर्थात् एक दूसरे का भोजन हैं। वर्षा भी केवल अग्निहोत्र आदि कर्मकाण्डों से नहीं होती। जिन देशों में हवन नहीं होते, वहाँ भी प्रचुर पानी बरसता है। इसलिए "अन्न" शब्द का व्यापक अर्थ "सभी भोग्य पदार्थ" —चाहे वे वर्षा से उत्पन्न हों और चाहे और तरह से, 'पर्जन्य' का व्यापक अर्थ "अर्थात् उत्पादक शक्ति"—चाहे वह वर्षा रूप में हो या दूसरे रूपों में हो, और "यज्ञ" शब्द का व्यापक अर्थ "प्राणी के अपने कर्तव्य कर्म करना" अधिक उपयुक्त है। सब के अपने-अपने कर्तव्य कर्म करते रहने से जगत की उत्पादक शक्ति बनती है, जिससे प्राणी-मात्र के भोग्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

सेठ जी को इस प्रकार व्याख्या करते देख बड़ा अचरज भी मालूम होता था। कभी वह कहते, जो लोग प्रत्येक हिन्दू-सन्तान के गुण-कर्म स्वभाव की परीक्षा करके उस पर किसी न किसी वर्ण का लेबल लगाने की चिन्ता में डूबे रहते हैं वे सेठ को एक कोठा लेकर समझेंगे, जो एक ओर तो करोड़ों का व्यापार करते हैं और दूसरी ओर इण्डस्ट्रियल के स्वामी बनते हैं।

देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर बात चलने पर सेठ जी ने कहा कि मैं तो समझता हूँ कि हिन्दुओं के पूर्व जन्मों के पापों का प्रायश्चित महात्मा गांधी के रूप में हुआ है। हिन्दुओं का जितना अहित कांग्रेस कर रही है उतना शायद और किसी ने नहीं किया। हिन्दुओं को अंग्रेजों के राज्य में उन्नति का बड़ा अच्छा अवसर मिला था। इनको चाहिए था कि इस शान्ति के राज्य मे अपनी त्रुटियों को दूर करके अपने को संगठित करते और बलवान बनाते। परन्तु उलटा इन्होंने अंग्रेजों से शत्रुता पैदा कर ली। यह मूर्ख लोग मुसलमानों की तो मित्रता के लिए लालायित हैं; परन्तु अंग्रेजों को अपना शत्रु समझते हैं। अंग्रेज कुछ भी हो सुसभ्य मनुष्य हैं, नर पिशाच नहीं। उन्होंने आज तक न तो किसी हिन्दू के पेट में छुरा घोपा है और न किसी की बहू-बेटी को ही बलात् उठा ले गए हैं। उलटा उनकी बेटियाँ कई हिन्दुओं के घरों मे हैं। उन्होंने हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों को भी कभी नहीं जलाया। उलटा वे उनकी रक्षा करते हैं। कांग्रेस वाले कहते हैं कि अंग्रेज भारत का रुपया बाहर ले जा रहे हैं परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो उनका यह आरोप भी सत्य नहीं। अंग्रेजों के आने के पूर्व सोना तो दूर, लोगों को ताँबे के टके भी देखने को नहीं मिलते थे। परन्तु अब देखो तो सोने-चाँदी के गहनों का कुछ ठिकाना नहीं। इतना सोना पहले कहाँ था ? यदि कहा जाय कि ये भारत की उपज-अनाज दाना ले जाते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि इससे भूमि को कुछ भी हानि नहीं होती। यदि उपज बाहर जाने से किसी देश की हानि होती तो अमेरिका, आस्ट्रेलिया और रूस अपना गेहूँ और कपास कभी बाहर न भेजते।

अब रही अपने राज्य की बात, सो उसका नमूना हम देसी रजवाड़ों में देख सकते हैं। अंग्रेजी अमलदारी में तो योग्यायोग्य और सच्चे-झूठे का बहुत कुछ अन्तर रखा जाता है, परन्तु देसी रजवाड़ों में तो अयोग्य से अयोग्य राजपूत को रियासत का बड़े से बड़ा अफसर बना दिया जाता है और दूसरी जाति के योग्य से योग्य मनुष्य को भी जगह नहीं दी जाती। वहाँ न किसी का दाद-फर्याद है और न इंसाफ-अदालत। देसी रियासतों को छोड़कर स्वयं कांग्रेस को ही ले लीजिए। इसके राज्य की बानगी भी हिन्दुओं को मिल रही है। सरहद्दी सूबे और पंजाब, सिन्ध तथा सीमा-प्रान्त मे मुस्लिम राज सभी उसी भावी स्वराज्य के नमूने हैं। कितनी लज्जा की बात है कि जिस अंग्रेजी सरकार ने हिन्दू-जनता के प्राणों की, सम्पत्ति की और इज्जत-आबरू की कराची में गोली चलाकर रक्षा की उन्हीं के विरुद्ध असम्बली के हिन्दू सदस्य निन्दा का प्रस्ताव पास करते हैं। उस दिन कराची मे गोली न चलती तो अंग्रेज का तो बाल भी बाँका न होता। मुस्लिम हजूम का सारा क्रोध निहत्थे हिन्दुओं पर ही निकलता। परन्तु असम्बली के कांग्रेसी हिन्दू अंग्रेजों की इसलिए निन्दा करते हैं कि उन्होंने उस बेलगाम जन-समूह को क्यों रोका, उसे हिन्दुओं को लूटने, मारने और बेइज्जत करने क्यों नहीं दिया ? यह है कांग्रेसी स्वराज्य ! अंग्रेजों के चले जाने के बाद कांग्रेस हिन्दुओं को ऐसा ही स्वराज्य देगी। उधर अंग्रेजों की सहनशीलता देखिए। असम्बली में कांग्रेसियों से फब्तियाँ और गालियाँ सुनकर भी वे शान्त रहते हैं, आपे से बाहर नहीं हो जाते। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुओं को अंग्रेजों के राज्य से लाभ उठाकर अपने को उन्नत तथा सबल बनाना चाहिए। अराजकता फैल जाने पर फिर उन्हें अपने को संभालने का मौका न मिलेगा और वे मारे जायेंगे।

सेठ जी के मत से चाहे कोई सर्वांश में सहमत न भी हो तो भी मुझे आशा है कि हिन्दू-जनता इस पर जरूर गम्भीरता-पूर्वक विचार करेगी।

सन्तराम

(श्री सन्तराम जी बी० ए० लाहौर के जात पात तोड़क मंडल के संस्थापक मंत्री के नाते सारे देश में प्रसिद्धि पा चुके हैं। आप की "क्रान्ति" और "युगान्तर" पत्रिकाओं के एक-एक शब्द से क्रान्तिकारी अग्नि

किन्तु उसे लिया कैसे जाय ? विचार हुआ कि बेली रोड वाली सम्पत्ति और मशीनों आदि को बंधक रख बंगला खरीदा जाय किन्तु इलाहाबाद में ऐसा कोई न दीख पड़ा, जो आवश्यक पच्चीस हजार हमें दे सकता। संयोगवश इसी समय मोहता जी के छोटे भाई रायबहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता प्रयाग पधारे। उन्हें जब उक्त बात मालूम हुई तो उन्होंने साधारण भाव से कहा कि "हम बैंक को लिखे देते हैं, आपका काम हो जायगा।" वे तो वापस चले गए और इधर अपने बैंक से सम्पर्क स्थापित किया। किन्तु बैंक ने साफ जवाब दे दिया कि मशीनों पर और मकानों पर रुपया नहीं दिया जाता। फलतः मोहता जी की शरण जाने के सिवा हमारे पास कोई दूसरा चारा नहीं था। उन्हें टेलीग्राम दिया गया और अपने उदार स्वभाव के अनुसार उन्होंने तत्क्षण कार्यवाही की। इम्पीरियल बैंक का आदमी हमारे यहाँ आया और सूचित किया कि टेलिग्रेफिक ट्रांसफर से आपके नाम २५,००० रुपये आए हैं। आकर ले लीजिए। इस प्रकार २८ एडमान्सटन रोड वाला बंगला ले लिया गया। इसी समय हम लोगों ने यह विचार किया कि यदि २५००० रुपये मिल जायें तो जान डिकिन्सन कम्पनी का पावना भी चुका दिया जाय और बेली रोड वाला बंगला तथा मशीनें मोहता जी के नाम बंधक कर दी जायें। तदनुसार मोहता जी को लिखा गया और तुरन्त ही यह धन राशि भी हमें पूर्ववत् टेलिग्रेफिक ट्रांसफर से मिल गई। इस प्रकार थोड़े ही समय में मोहता जी ने हमें ६०,००० रुपये की सामयिक सहायता प्रदान की और बिना किसी लिखा-पढ़ी के। यह उनकी असाधारण उदारता का ही परिचय था। इन रुपयों को उन्हें वापस करने हेतु हजार-हजार के साठ चैक हमने उन्हें भेजे थे, जिससे प्रति मास की किस्त वे लेते जायें। सम्भवतः दो ही चार महीने बाद उनका पत्र आया कि उक्त चैक या तो खो गए हैं या कहीं इधर-उधर हो गए हैं। आप बैंक को मना कर दें कि इन चैकों का भुगतान न किया जाय। इस पत्र से मोहता जी के चरित्र की एक दूसरी अनूठी विशेषता का परिचय मिला। बैंक को मना कर दिया गया और चैक पुनः भेज दिए गए।

"चाँद" की महिलाओं-सम्बन्धी नीति से ही मोहता जी हम लोगों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। उन्होंने अनुभव किया कि "चाँद" के पढ़ने से भारत का महिला समाज जागृत और उद्बुद्ध हो सकता है। उन्होंने तुरन्त हमें लिखा कि हम चाँद में एक सूचना इस आशय की छाप दें कि "जो महिलाएँ चाँद को पढ़ना चाहती हैं किन्तु अर्थाभाव से उसकी ग्राहिका नहीं बन सकतीं, वे प्रार्थना पत्र भेजें, उन्हें "चाँद" मुफ्त भेजा जायगा।" साथ ही हमें लिखा कि इस प्रकार के जो प्रार्थना पत्र प्राप्त हों, उनके अनुसार "चाँद" का भेजना प्रारम्भ कर दिया जाय और शुल्क का बिल उनके नाम भेज दिया जाय। उन दिनों "चाँद" में दयनीय परिस्थितियों में पड़ी हुई महिलाओं के अनेक पत्र प्रायः प्रति अंक में प्रकाशित हुआ करते थे। उनसे प्रभावित होकर मोहता जी ने हमें लिखा कि हम लोग इलाहाबाद में उक्त महिलाओं के लिए एक शरण-गृह क्यों नहीं खोल देते। इस पर उन्हें यह लिखा गया कि धन का अभाव है तो तुरन्त १०,००० रुपये उन्होंने भेज दिए और लिखा कि "खर्च की चिन्ता न करें, गृह अवश्य खोला जाय।" महिला-समाज की समस्याओं के प्रति उनकी इस व्यावहारिक जागरूकता का परिचय पाकर हम लोग मुग्ध हो गए। यह मोहता जी की ही सहायता और प्रेरणा का फल था कि इलाहाबाद में मातृ-मन्दिर की स्थापना हुई, जिसके द्वारा पचासों महिलाओं को पथभ्रष्ट होने से बचाया गया। यह नहीं, बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि "चाँद" ने महिलाओं की समस्याओं को लेकर जो महत्त्वपूर्ण कार्य सफलता के साथ सम्पन्न किया, उसका बहुत श्रेय मोहता जी को ही है। चाँद कार्यालय द्वारा प्रकाशित "अबलाओं का इन्साफ" नामक जिस पुस्तक ने समाज-क्षेत्रों में हलचल उत्पन्न कर दी थी, वह वस्तुतः मोहता जी की लेखनी का प्रसाद है। इसी प्रकार "चाँद" के जिस मारवाड़ी अंक को मारवाड़ी समाज का क्रान्तिकारी सुधार करने का श्रेय प्राप्त है, उसे प्रस्तुत करने में मोहता जी के केवल बहुमूल्य परामर्श ही नहीं, किन्तु बहुत सी सम्पूर्ण सामग्री उन्हीं से हमें प्राप्त हुई थी। उससे हमें पता चला कि मोहता जी कितने बड़े

समाज-सुधारक हैं। मारवाड़ी समाज का आज जो प्रगतिशील रूप है, उसकी नींव डालने वाले वस्तुतः मोहता जी हैं। महिलाओं के सम्बन्ध में जो असंख्य कल्याण-कार्य उन्होंने किये और कराए, उनमें से एक "मातृ-मन्दिर" का ऊपर उल्लेख किया गया है।

"चाँद" और चाँद कार्यालय से मोहता जी के घनिष्ठ सम्पर्क की जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे उनके साहित्यिक अनुराग का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। उनकी लिखी अनेक कृतियाँ वास्तव में अपने ही ढंग की और अनूठी हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर उन्होंने "गीता का व्यवहार-दर्शन" नामक जो पुस्तक लिखी है उसे जिसने पढ़ा होगा, उसे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मोहता जी कैसे तत्त्वदर्शी, मर्मज्ञ, व्यवहार-कुशल और सुलेखक हैं। इसी प्रकार उनकी अन्य पुस्तकें "सात्त्विक जीवन" और 'समय की माँग" आदि भी अत्यन्त उपयोगी हैं। उनसे कितनों ने ही लाभ उठाया और आज भी उठा रहे हैं। "समय की माँग" में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि भारत में केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता से अपेक्षित सुधार नहीं हो सकता, अपितु उसके लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में क्रान्ति होनी आवश्यक है। एक बार हमने अपने एक साहित्यिक मित्र से पूछा कि चाँद कार्यालय द्वारा प्रकाशित "अबलाओं का इन्साफ" आपने पढ़ा है? उन्होंने कहा कि हाँ, पढ़ा है। प्रारम्भ के तीन विवरण मुझे भाषा, कथा और विचार की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट प्रतीत हुए। कहना न होगा कि ये तीनों मोहता जी के लिखे हुए थे। यहाँ पर कहना ठीक ही होगा कि उनकी साहित्यिक रचनाएँ जहाँ सिद्धान्तात्मक और उपादेयात्मक हैं, वहाँ उनमें उत्कृष्ट साहित्यिक गम्भीरता की पर्याप्त पुट पाई जाती है। ऐसी दशा में यदि मोहता जी को भविष्यद्रष्टा साहित्यकार के रूप में अभिनंदित किया जाय तो उचित ही होगा।

निजी रूप से मैं और मेरा परिवार मोहता जी का कितना ऋणी है, यह वाणी या लेखनी के शब्दों से व्यक्त कर सकना सम्भव नहीं है। आज भी वयोवृद्ध श्री मोहता जी व उनके योग्य अनुज रायबहादुर सेठ शिव-रतन जी मोहता की कृपा हमें पूर्ववत् प्राप्त है और इन पंक्तियों को लिखते समय अपने प्रति मोहता जी की शालीनता, उदारता और आत्मीयता की बातों को स्मरण कर मैं यही अनुभव कर रहा हूँ कि सेठ जी ने गीता के समत्व योग का जो अनुशीलन और स्पष्टीकरण किया है, उसे उन्होंने वास्तव में अपने जीवन में व्यवहार का रूप प्रदान किया है। अन्यथा कहाँ वे और कहाँ हम?

नन्द गोपाल सिंह सहगल

(यू० पी० प्रिंटिंग प्रेस के श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल सुप्रसिद्ध पत्रकार, "चाँद" संस्थापक व सम्पादक स्वर्गीय श्री रामरख सिंह सहगल के छोटे भाई हैं, जिन्होंने अपने भाई के स्वर्गवास के बाद "चाँद" की परम्परा को जीवित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया है। परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे सफल नहीं हुए। फिर भी उनके हृदय में वैसी ही लगन, धुन और कर्मठ शक्ति विद्यमान है। मोहता जी के निकट सम्पर्क में आने और उनको बहुत समीप से देखने का आपको सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके ये संस्मरण उनकी निजी अनुभूति हैं।)

२०

स्वप्नद्रष्टा

उन दिनों मैं स्कूल का एक छात्र था। तारीख याद करने पर यह भी याद नहीं आ रही; किन्तु वर्ष सम्भवतः १६३० के आसपास के थे। तब प्रयाग और काशी से प्रकाशित होने वाले साहित्यिक पत्रों में मैं श्री मोहता जी के लेख पढ़ा करता था। उन लेखों में समाज का जो चित्र प्रस्तुत रहता था उसे पढ़कर मैं सोचा करता था कि मोहता जी जिस समाज की कल्पना करते हैं वह निश्चित रूप से एक उन्नत और स्वस्थ समाज होगा। उनके स्वप्न के समाज की स्थापना में हम सब नवयुवकों को योग देना चाहिए।

उन लेखों का प्रभाव मेरे मन पर इतना गहरा पड़ा था कि एक बार जब अन्तर-स्कूली वाद-विवाद प्रतियोगिता में मुझे बोलने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने मोहता जी के लेखों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्हीं के तर्क प्रस्तुत किये थे और उस समय पुरस्कार स्वरूप प्राप्त दो पुस्तकें आज भी मेरे पास हैं।

देश के राजनीतिक उत्थान में सामाजिक चेतना लाने का कितना महत्व है, यह हम सब जानते हैं। रूढ़ियों के अंधविश्वास के अन्धकार से समाज को निकालना उस समय राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में कितना लाभप्रद सिद्ध हुआ, यह भी सर्वविदित है।

मोहता जी की उस समय की प्रगतिशील विचार धारा की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि तब थी। सामाजिक उत्थान के लिये कानून भी बनाये गये हैं किन्तु जब तक जन-जन के मानस में यह प्रगतिशील विचारधारा घर न करले तब तक खाली कानून से मतलब पूरा न होगा। सामाजिक क्रान्ति वर्गहीन समाज की स्थापना कर सकेगी। मेरी निश्चित धारणा है कि वयोवृद्ध मोहता जी की विचारधारा को आज और भी बल मिलना चाहिए।

राजस्थान में तब सामन्ती दौर होने के कारण प्रायः यह समझा जाता था कि यहाँ के लोग धर्म-संग्रह में तो बहुत कुशल हैं किन्तु रूढ़िवादिता में जकड़े हैं। यह धारणा कुछ-कुछ ठीक भी थी किन्तु राजस्थान के उन थोड़े से उदीयमान व्यक्तियों में मोहता जी भी हैं जो उस समय भी जागरूक और स्पष्ट द्रष्टा थे जब देश पराधीन था और समाज पिछड़ा हुआ था।

मैं मोहता जी की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

अक्षयकुमार जैन

(श्री जैन दिल्ली और बम्बई से प्रकाशित होने वाले प्रमुख हिंदी दैनिक "नवभारत टाइम्स" के प्रधान सम्पादक हैं। बी० ए० एल० एल० बी० परीक्षा पास करने पर भी आपने वकील न बनकर साहित्यकार बनना पसन्द किया। आप यशस्वी कहानी लेखक, स्वतंत्र विचारक और प्रतिभा संपन्न पत्रकार हैं। "नवभारत टाइम्स" सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक "टाइम्स आफ इंडिया" की मालिक बैनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी की पत्र माला का एक उज्ज्वल रत्न है।)

व्यक्ति स्वातंत्र्य को हर उपाय से दबाने पर उतारू थे। विधवा विवाह करना तो दूर यहाँ तक कि महिलाओं का परदा दूर करने पर भी सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। सामाजिक बहिष्कार एक ऐसा प्रबल अस्त्र था कि उसका पंच लोग प्रगति और सुधार के हर काम के विरुद्ध यहाँ तक कि विचार स्वातन्त्र्य को दबाने के लिए भी उपयोग करने में पीछे नहीं रहते थे। पंच प्राय धनी होते थे और समाज पर उनका आतंक छाया हुआ था इसलिए समाज को उनकी मनमानी को सहन करना पड़ता था। यदि कोई निर्भीक व्यक्ति उनके निरंकुश शासन तथा मनमानी की अवहेलना करता, उसे बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया जाता था।

ऐसे प्रक्षुब्ध एवं अंधकारयुक्त सामाजिक वातावरण में प्रगति और समाज सुधार का प्रकाश दिखाने वाली विभूतियों में श्री रामगोपाल जी मोहता का अग्रणी स्थान है। समाज सुधार की दृष्टि से राजस्थान पिछड़ा हुआ प्रदेश है। बीकानेर सामाजिक कट्टरता का एक बड़ा गढ़ रहा है; परन्तु श्री रामगोपाल जी मोहता जैसे नर रत्न को जन्म देकर उसने अपने को धन्य बना लिया है। श्री मोहता जी ने यद्यपि माहेश्वरी वैश्य कुल में जन्म लिया फिर भी उनका जीवन गंभीर-चिन्तन, मनन, त्याग, तप और लोक सेवा के कारण ऋषि-तुल्य बन गया है। उनको सभी जातियों और वर्गों का स्नेह तथा आदर प्राप्त हुआ है। बीकानेर के पिछड़े वातावरण में रहते हुए भी वे सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत बनकर सामने आये। वे हिन्दू समाज में नये जीवन और प्रगतिशील विचारों का प्रसार करने के लिए सदा तन-मन-धन से तत्पर रहे हैं।

उस समय हिन्दू समाज में सामाजिक जागृति का शंखनाद करने वाले पत्रों में "चाँद" का प्रथम स्थान था। "चाँद" अपने आकर्षक स्वरूप और निर्भीक तथा सामाजिक क्रान्तिकारी लेखों के लिए बहुत लोकप्रिय था। समाज के सभी प्रगतिशील व्यक्ति और विशेषतः नवयुवक उसको चाव से पढ़ते थे और उससे प्रेरणा लेकर समाज सुधार के पथ पर तेजी से आगे बढ़ते थे। चाँद प्रेस से प्रकाशित पुस्तकें भी इसी प्रकार की क्रान्तिकारी भावना से ओतप्रोत रहती थी और उन्हें बड़े शौक से पढ़ा जाता था। श्री मोहता जी चाँद संस्था के समर्थक और पोषक थे। कलकत्ता उस समय सामाजिक क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र था। मारवाड़ी समाज में उस समय जबरदस्त सामाजिक उथल-पुथल फैली हुई थी और इस क्रान्तिकारी विचार धारा को "चाँद" के द्वारा सब से अधिक बल तथा स्फूर्ति मिलती थी। उन्ही दिनों में चाँद कार्यालय से "अबलाओं का इन्साफ" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें समाज द्वारा महिलाओं पर होने वाले अनेक अत्याचारों और अन्यायों का बड़े हृदय विदारक ढंग से प्रतिपादन किया गया था। इस पुस्तक से मारवाड़ी समाज में बड़ी हलचल फैली। उसके बाद चाँद का "मारवाड़ी अंक" प्रकाशित हुआ। उसमें मारवाड़ी समाज की कुरीतियों पर करारी चोट की गई थी और मारवाड़ी महिलाओं की स्थिति तथा उन पर होने वाले अत्याचारों का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन किया गया था। उसमें ऐसे कुछ चित्र भी थे जिनमें महिलाओं की विकृत वेष भूषा पर नाना प्रकाश डाला गया था। "चाँद" के इस विशेषांक के विरुद्ध मारवाड़ी समाज में तूफान उठ खड़ा हुआ। कुछ सुधारवादी तक उसकी निन्दा करने लगे। "चाँद" के मारवाड़ी अंक की प्रतियाँ जलाई गईं—उसका बहिष्कार किया गया और उस सम्पादक के विरुद्ध मुकदमा चलाने का अनुरोध सरकार से किया गया। इस प्रसंग में श्री रामगोपाल जी मोहता की भी काफी आलोचना की गई और उन पर तरह-तरह के कटाक्ष भी किए गए। यह दबाव भी डाला गया कि वे चाँद कार्यालय से अपना सम्बन्ध तोड़ लें। उन्होंने उसकी परवाह नहीं कि। "चाँद" में समाज सुधार और आध्यात्मिक विषयों पर मोहता जी के लेख समय-समय पर प्रकाशित होते थे।

उस समय तक श्री मोहता जी के दर्शन करने का मुझे अवसर न मिला था। परन्तु उनके लेखों व ग्रंथों को पढ़कर मैं उनके महान् व्यक्तित्व के प्रति काफी अनुरक्त हो चुका था। उनके चचेरे [illegible] श्री रामकृष्ण जी मोहता उस समय कलकत्ता के सामाजिक जीवन में एक उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति [illegible] रहे थे। कलकत्ते

थी ऐसी कोई राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति न थी जिसको उनका संरक्षण एवं प्रेरणा प्राप्त न होती हो। मारवाड़ी समाज में उस समय वे सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। वे कोई बड़े धनी नहीं थे परन्तु दानवीरता में वे बड़े-बड़ों को भी मात कर देते थे। महात्मा गांधी जी जब १९२१ में तिलक स्वराज्य फंड के लिए चन्दा करते कलकत्ता पहुँचे तब ७५ हजार रुपये की सबसे बड़ी रकम उन्हें भेंट करने वाले ये ही थे। उनके सहयोग व ४००००) की सहायता से कलकत्ता में माहेश्वरी विद्यालय की स्थापना हुई और उसका विकास एवं भव्य भवन निर्मित हुआ। अनेक संस्थाएं उनका संरक्षण पाकर स्थापित हुईं। उनके द्वारा समाज सेवा व जन जागरण का विपुल कार्य हुआ। अनेक देश भक्तों और क्रान्तिकारियों को भी वे गुप्त रूप से गुप्त सहायता देते रहते थे। न जाने कितने छात्र, कार्यकर्ता और विद्वान् उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त करते रहते थे। उनके जीवन पर उनके ज्येष्ठ भ्राता विद्वद्वर श्री रामगोपाल जी मोहता के प्रगतिशील विचारों तथा कार्यों की गहरी छाप रही थी। उनके सरल, उदार व सात्त्विक जीवन को मनस्वी मोहता जी के जीवन का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।

१९३१-३२ में माहेश्वरी महासभा का एक शिष्टमण्डल प्रचार करता हुआ बीकानेर पहुँचा। श्री राम-गोपाल जी ने मण्डल का स्नेहपूर्वक स्वागत किया। मोहता विद्यालय के छात्रागार की छत पर सभा का आयोजन किया गया। श्री मोहता जी सभा के अध्यक्ष पद पर विराजमान थे। जैसे ही व्याख्यान आरम्भ हुए कि सभा स्थल पर बाहर से पत्थर फेंके जाने लगे। महासभा के विरोधियों की ओर से यह विघ्न डालने का प्रयत्न किया गया था। मोहता जी ऐसी विघ्न बाधाओं से विचलित होने वाले नहीं थे। वे तो सामाजिक कट्टरता के गढ़ में रहते हुए ही समाज सुधार का शंखनाद यथार्थ रूप से कर रहे थे। श्री मोहता जी ने अपने भाषण में कहा कि विरोधी भाई इस तरह का प्रदर्शन करके महासभा के प्रभाव को स्वीकार कर रहे हैं और महासभा के शिष्टमण्डल के प्रचार का उद्देश्य स्वयमेव पूर्ण हो रहा है। उस शिष्टमण्डल में माहेश्वरी पत्र के सम्पादक के रूप में मैं भी सम्मिलित था। श्री रामगोपाल जी ने उस समय अपने अनुज श्री रामकृष्ण जी मोहता का बड़े स्नेहपूर्ण रूप में स्मरण किया और उनकी माता जी से शिष्टमण्डल का परिचय कराते हुए कहा कि "रामकृष्ण समाज की बहुत बड़ी सेवा कर रहा है। यह सब उसी के निमित्त है। उसी की प्रेरणा से यह सब हो रहा है।" मैंने उस समय बीकानेर में श्री मोहता जी की मूक सेवा के दर्शन किये। मैंने देखा कि उनका 'धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय', 'संस्कृत विद्यालय', 'मोहता मूलचन्द हाई स्कूल', 'वनिता आश्रम' आदि संस्थाएं लोक सेवा और जन जागरण का ठोस महत्वपूर्ण कार्य कर रही थीं। बीकानेर के बाहर कराची, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली तथा अन्य नगरों में भी उनकी प्रेरणा तथा सहायता से जन सेवा और लोक जागरण की अनेक प्रवृत्तियां चल रही थीं। इस तरह बीकानेर की मरुभूमि में बैठकर श्री मोहता जी देश के विभिन्न भागों में अपनी सहृदयता की सरिता प्रवाहित कर रहे थे।

प्रसिद्धि और मान विज्ञापन की भावना से अलिप्त रहकर लोक सेवा का ठोस कार्य करना मोहता जी का आरम्भ से ही स्वभाव रहा है। उनका झुकाव आरम्भ से ही अध्यात्म की ओर रहा है और 'श्रीमद्भगवद् गीता' तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन, प्रचार और साधु सन्तों तथा विद्वानों के सत्संग में उनका विशेष समय जाता है। परन्तु देश के राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और सामाजिक जागरण की प्रवृत्तियों से भी वे उदासीन नहीं रहे। हिन्दू समाज की अंधविश्वास, अज्ञान, कुरीतियों और सामाजिक रूढ़ियों के [illegible] और उधर सदा ध्यान रहा है। मारवाड़ी समाज की जन जागृति में उनकी आरम्भ से ही रुचि रही और उन्होंने सदा समाज में क्रान्तिकारी विचारों के प्रसार का प्रयत्न किया।

१९२४-२५ के सामाजिक संघर्ष में माहेश्वरी समाज के बोलपट्ट प्रकरण का प्रमुख स्थान है। माहे-श्वरी समाज का एक बड़ा प्रतिक्रियावादी मारवाड़ से [illegible] उनको बड़ा बोलपट्ट कहा जाने लगा था। माहेश्वरी समाज में सामाजिक जागृति पैदा होने पर [illegible]

सामाजिक संस्थाओं में आना, जाना शुरू किया और माहेश्वरी समाज में पुनः घुलमिल जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर जो विवाद खड़ा हुआ उसके कारण उनके सम्बन्ध में जाच करने के लिए महासभा ने एक कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन ने सारे देश में भ्रमण किया, लोगों के विचार जाने, सब प्रकार के तत्सम्बन्धी प्रमाण एकत्र किये और यह सम्मति दी कि कोलवार शुद्ध माहेश्वरी हैं। यह रिपोर्ट माहेश्वरी महासभा के समक्ष प्रस्तुत होने ही वाली थी कि श्री रामेश्वरदास जी बिड़ला ने कोलवार माहेश्वरी कन्या से विवाह कर लिया।

इस विवाह के पश्चात् इस विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। कलकत्ता में एक महापंचायत पक्ष स्थापित हो गया। उसने इस विवाह का विरोध किया और कोलवारों को माहेश्वरी मानने से इन्कार करते हुए उनके साथ रोटी बेटी सम्बन्ध करने वालों का सामाजिक बहिष्कार करने की घोषणा की। महापंचायत के विरुद्ध दूसरा पक्ष उठ खड़ा हुआ जिसने कोलवारों को माहेश्वरी घोषित किया और उनके साथ रोटी बेटी सम्बन्ध करने का खुला समर्थन किया। इसी बीच १९२४ में बम्बई में अ० भा० माहेश्वरी महासभा का सप्तम अधिवेशन श्री गोविंददासजी मालपाणी की अध्यक्षता में हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष श्री रामेश्वरदास बिड़ला थे; परंतु उनके विवाह को लेकर जो विवाद उठ रहा था उसके कारण उन्होंने अपने पद का त्याग कर दिया और उनके स्थान पर स्व० सेठ रामरिख जी मालपाणी पीपाऊ वाले स्वागताध्यक्ष चुने गए।

बम्बई में माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन का आरम्भ बड़े क्षुब्ध तथा संघर्षमय वातावरण में हुआ। कलकत्ता कोलवार कलह का केन्द्र था। वहाँ से भारी संख्या मे प्रतिनिधि आये और उनमें कोलवार विरोधी पक्ष प्रबल था। अन्य स्थानों से भी भारी संख्या में प्रतिनिधि आये। महासभा में पहला संघर्ष कोलवारों को महासभा का प्रतिनिधि बनाने या न बनाने पर हुआ। स्वागत समिति ने उन्हें प्रतिनिधि नहीं बनाया था। महासभा अधिवेशन का कार्य आरम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष के भाषण निर्विघ्न हुए और विषय निर्वाचिनी समिति गठित हुई। विषय निर्वाचिनी समिति मे कोलवार प्रश्न उपस्थित हुआ—तत्सम्बन्धी जांच कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई और उस पर चर्चा हुई। महासभा के प्रमुख नेता और समाज के बुद्धिमान लोग इस प्रश्न को शान्ति से सुलझाना चाहते थे ताकि महासभा अधिवेशन मे विग्रह न पैदा हो। परन्तु कलकत्ते का महापंचायत पक्ष इस पर तुला था कि इसी अधिवेशन में कोलवारों को अन्तिम रूप से गैर माहेश्वरी घोषित किया जाय और उनके साथ रोटी बेटी सम्बन्ध रखने वालों को जाति बहिष्कृत किया जाय। विषय निर्वाचिनी समिति ने समझौते का मार्ग यह निकाला कि कमीशन की जांच अधूरी है अतः फिर दोबारा जाँच की जाय और तब तक कोलवारों के साथ विवाह सम्बन्ध न किये जायें।

विषय निर्वाचिनी के इस प्रस्ताव के समर्थक बहुत लोग थे क्योंकि सभी लोग समाज में विग्रह उत्पन्न होने की स्थिति को टालना चाहते थे। परन्तु पंचायत पक्ष ने खुले अधिवेशन मे में विषय निर्वाचिनी के प्रस्ताव का विरोध करने और कोलवार विरोधी प्रस्ताव पास कराने का निर्णय कर लिया था। अतः जैसे ही अधिवेशन आरम्भ हुआ और विषय निर्वाचिनी का कोलवार विषयक प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि सभा में चारों ओर हल्ला होने लगा। सभापति ने परिस्थिति को सम्भालने की बहुत कोशिश की, विरोधी पक्ष के वक्ताओं को बोलने का अवसर दिया और दोनों पक्षों मे समझौता कराने का भी प्रयत्न किया परन्तु विरोधी दल अपनी जिद पर अड़ा रहा। सभा का कार्य चलना असम्भव समझकर सभापति ने अधिवेशन के समाप्त होने की घोषणा कर दी।

विरोधी पक्ष ने महासभा के टूट जाने की घोषणा करके नागपुर निवासी स्वर्गीय सेठ शिवनारायण जी राठी की अध्यक्षता में अ० भा० माहेश्वरी महापंचायत का अधिवेशन का गठन कर डाला और उसमें कोलवारों को गैर माहेश्वरी ठहराते हुए उनके साथ रोटी बेटी सम्बन्ध करने वालों का जाति बहिष्कार करने का ऐलान कर दिया। सुधार पक्ष (जिनमें राजस्थान केसरी चांदकरण जी शारदा व श्री कन्हैयालाल जी कलंत्री प्रमुख थे) अपनी

समाज को तेजी से अग्रसर करना शुरू कर दिया। सबसे बड़ा काम यह हुआ कि महासभा ने फोलवारों के समान समाज से बिछड़े हुए अन्य अनेक अंग उपागों को भी समाज में मिलाकर उसको एक सूत्र में संगठित कर दिया। श्री मोहता जी की विशेष प्रेरणा से अ० भा० माहेश्वरी महिला परिषद् की स्थापना श्रीमती गुलाब देवीजी (चाची जी) की अध्यक्षता में श्री कलयंत्री दम्पति के विशेष प्रयत्न से हुई। इस प्रकार सर्वप्रथम राजस्थानी नारी जागरण और शिक्षा प्रचार का कार्य भी किया गया।

विश्वम्भर प्रसाद शर्मा

(शर्मा जी पुराने लोक सेवक और पत्रकार हैं। माहेश्वरी समाज तथा अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के साथ आपका वर्षों सम्बन्ध रहा है। उसके साप्ताहिक पत्र "माहेश्वरी" का आपने अनेक वर्ष सम्पादन किया है। माहेश्वरी समाज की वर्तमान जागृति एवं प्रगति का आपको "जीवित इतिहास" कहा जा सकता है। "आलोक" नाम का यशस्वी पत्र आपने पहले सहारनपुर से और बाद में नागपुर से प्रकाशित किया था। इस समय आप "राजस्थानी" नाम से एक पत्र का संचालन, प्रकाशन व सम्पादन कर रहे हैं। समाज सेवा आपका स्वभाव बन गया है। माहेश्वरी महासभा के रजत जयन्ती उत्सव पर आपने समाज की प्रगति का एक सुन्दर इतिहास लिखा था। इसीलिए आपने मोहता जी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसके प्रामाणिक होने में सन्देह नहीं किया जा सकता।)

•

२३

ऋषिवर मोहता जी

हिन्दी में सामाजिक साहित्य के कर्मठ पत्रकार स्व० भाई श्री रामरख सिंह जी सहगल ने सेठ रामगोपाल जी मोहता के गीता सम्बन्धी ज्ञान और कर्मठ जीवन विवेक के क्रियात्मक दर्शन पाने के बाद अपने स्त्रियोपयोगी मासिक "चाँद" में सुन्दर आर्ट-पेपर पर एक अच्छी हलकी रंगीन पृष्ठभूमि पर आपका चित्र देते हुए आपको "ऋषिवर" लिखा था।

राजस्थान के हम लोगों को मरानी और बीकानेर के सेठ रामगोपाल जी मोहता के गीता ज्ञानमय जीवन का जब पता चला तब आपको श्री सहगल द्वारा "ऋषिवर" कहे जाने पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। आप करोड़पति होते हुए भी कर्मयोग के पथिक बन रहे थे। लेकिन शेष हिन्दी संसार ने इस विशेषण की यथार्थता और गहराई को नहीं समझा क्योंकि उसको मोहता जी के इस महान जीवन की कोई जानकारी नहीं थी।

उन दिनों के कोट्याधीश राजस्थानी सेठों ने हिन्दी साहित्य को शक्तिशाली प्रेरणा देने का जो महान कार्य किया उनमें मोहता जी का परिवार, बिड़ला परिवार तथा स्वर्गीय सेठ जमनालाल जी बजाज का योगदान कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। बजाज जी ने स्वर्गीय श्री विजय सिंह जी पथिक के सम्पादन एवं भाई [illegible] जी विद्यालंकार के सम्पादकत्व में "राजस्थान केसरी" का प्रकाशन १९२० में किया था। उनको राजस्थान तथा मारवाड़ी समाज में क्रान्ति का बीजारोपण करने का श्रेय प्राप्त है। कलकत्ते के [illegible] साहित्य सदन तथा उसकी मासिक पत्रिका "[illegible]भूमि" के प्रकाशन का श्रेय सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला को है। उन्हीं दिनों के [illegible]

आध्यात्मिक चिन्तन में लीन रहे; फिर भी आपकी चहुंमुखी सेवामयी जीवन साधना राजस्थान विशेष कर बीकानेर के जन जागरण में अपना ही स्थान रखती है। जब भी कभी इस महान जागृति का निष्पक्ष इतिहास लिखा जाएगा तब उसमें आपके व्यक्तित्व, सेवा और साधना का उल्लेख बड़े गर्व के साथ किया जायगा। बिना उसके यह इतिहास अधूरा रहेगा।

जगदीश प्रसाद "दीपक"

('मीरा' सम्पादक श्री जगदीश प्रसाद जी माथुर को उपहास में उनके साथी "महिला पत्रकार" कहा करते हैं। तात्पर्य इसका यह है कि उन्होंने सचमुच ही महिला जागृति को अपने पत्रकार जीवन का मुख्य लक्ष्य बना रखा है। उन्होंने अपना समस्त पत्रकार जीवन इसी मिशन के अर्पित किया हुआ है। महिला जागरण का दीपक हाथ में लिए उसकी ज्योति घर-घर में फैलाने में "दीपक" जी अब भी लगे हुए हैं।)

●

२४

मेरे गुरुदेव

श्री मोहता जी जैसे महान विद्वान, उनके क्रान्तिकारी सामाजिक सांसारिक एवं आध्यात्मिक विचारों और उनके द्वारा लिखे गये अनेक ग्रंथों के विषय में कुछ लिखने की मुझ में न कोई क्षमता और न मुझे कोई अधिकार ही है। तथापि उनसे और उनके परिवार से कई पीढ़ियों का सम्पर्क होने के नाते मुझे उनके अनुकरणीय जीवन को निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे पितामह स्व० श्री रामजीदास जी ८० वर्ष पूर्व (वि० संवत् १९३४ में) व्यवसायार्थ कराची गये थे और तभी से हम लोग वहीं रहते आये थे। अतः श्री मोहता जी के सुविख्यात पिता स्व० रायबहादुर सेठ गोवर्धनदास जी मोहता, ओ० बी० ई० जब से कराची पधारे तभी से मेरे पूर्वजों का उनसे निकट सम्पर्क रहा है जो अब तक चला आ रहा है। मुझे तो इनके परिवार ने यहाँ तक अपनाया कि मैं हरियाणे का होते हुए भी मेरी भाषा ऐसी ठेठ बीकानेरी बन गई कि बहुत लोग प्रायः मुझे बीकानेर का ही समझते हैं। इसी नाते मैं अपने संक्षिप्त संस्मरण लिखने का साहस कर रहा हूँ। सम्भव है अल्पज्ञता के कारण मेरा दृष्टिकोण उतना विशाल न रहा हो जितना कि पूज्य मोहता जी के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिये आवश्यक था। तथापि मेरे संशयात्मक स्वभाव ने दीर्घकाल के अध्ययन के बाद उन्हें एक तपस्वी के रूप में स्वीकार किया है।

सन् १९२४ के करीब स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों की एक पुस्तक से शरीर और आत्मा का भेद जाना जिससे आध्यात्मिक विषय की ओर मेरा कौतूहल बढ़ा। सन् १९३० में जब सेठ रामगोपाल जी मोहता कराची पधारे तब उनके कपड़ा मारकेट स्थित श्री सत्य नारायण जी के मन्दिर में उनका सत्संग आरम्भ हुआ। अब तक मेरी जानकारी में, या यूं कहिए कि मेरी भावनाओं में मोहता जी एक कुशल, कठोर, क्रोधी एवं अभिमानी स्वभाव के बहुत बड़े धनी के रूप में थे जिनसे सब डरते थे। इनके परिवार के प्रायः सभी छोटे बड़ों का व्यवहार विनम्र और हंसमुख था। इनकी पुण्यशीला माता जी तो साक्षात् मातृत्व की प्रतिमा थीं। उन्हें इनके सांसारिक वैभव-समृद्धि आदि का जैसे ज्ञान ही नहीं था। वे सब को आदर, प्यार, सम्मान आदि से सुशि

से एक फिल्म कम्पनी संगठित करना चाहता था। कराची से इनके छोटे सहोदर रावबहादुर श्री शिवरतन जी के आदेश से मैं इनके पास कलकत्ते पहुँचा। उस समय फिल्म व्यवसाय बहुत बदनाम था और मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि ये मेरी योजना में कोई दिलचस्पी लेंगे। किन्तु इन्होंने सब सुनकर मुझे पूर्ण प्रोत्साहन दिया और न केवल स्वयं सहमत हुए वरन् अपने समधी सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला को भी साथ लेने का विचार किया। मुझे इनके विचार स्वातंत्र्य पर आश्चर्य हुआ। मुझे दूसरे दिन आकर इनसे एक सिफारशी पत्र श्री बिड़ला जी के नाम ले जाने का आदेश हुआ; किन्तु उसी दूसरे दिन इनकी अत्यन्त वात्सल्य भाजन अनुजवधू (स्व० श्री मूलचन्द जी की विधवा धर्मपत्नी) का देहावसान इनके सामने ही हो गया। मैं समवेदना प्रकट करने पहुँचा तो इन्हें सदा की तरह बेफिक्र पाया। ये अपने पत्र लेखन आदि में व्यस्त थे। मेरे कुछ कहने सुनने से पहले ही इन्होंने वही मेरी योजना की बात छेड़ दी और मुझे पुनः प्रोत्साहित करते हुए श्री बिड़ला जी के नाम एक पत्र लिख दिया। मुझे इनकी स्थिरता पर बड़ा आश्चर्य हुआ और वहीं मेरी रही सही सब शंकाओं का समाधान हो गया। मैंने जान लिया कि वास्तव में यह इतना आश्चर्य जनक परिवर्तन भीतर और बाहर सब जगह हो चुका है। किन्तु मैं निश्चय न कर सका कि मैं अपनी श्रद्धा किस तरह प्रकट करूँ। अतः एकलव्य की तरह मैंने इन्हें मन ही मन प्रणाम किया।

सन् १९३८ में जब मुझे भयजनित मानसिक उद्वेग की बीमारी हुई तब मैंने इन गुरुदेव को अपनी वेदना लिखी और इनके उत्तर से मुझे कुछ शान्ति मिली। सन् १९४३ में जब ये दिल्ली में अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन का सभापतित्व करने गये और मैं वहाँ बीमार था तो इनके फिर दर्शन हुए। तब मैंने देखा कि वृद्धावस्था में इनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। इनके चेहरे पर तेज बढ़ता ही जा रहा है। सन् १९४४-४५ में एक बार फिर कराची में उसी श्री सत्यनारायण जी के मन्दिर में इनके उसी सत्संग का सुअवसर मिला। अब की बार मैं आध्यात्म विषय पर कुछ चर्चा करने लायक हो गया था इसलिए सत्संग का विशेष लाभ उठाया। कई बातों में मैं इनसे सहमत नहीं हो पाता था; किन्तु इस पर इन्हें कोई क्षोभ न था। ये समुद्र की तरह शान्त थे।

मुझ-सा अलज्ञ अपने आपको मोहताजी जैसे महान ज्ञानी का शिष्य बताये यह मेरी ओर से एक प्रकार का ढोंग ही है; किन्तु जो कुछ भी है और जैसे भी है मेरे तो ये गुरुओं में हैं ही। मेरे बहुमुखी, रिक्त, विकृत एवं तमोगुणी जीवन में यदि कहीं किसी तरह की सरलता, सौन्दर्य एवं प्रकाश की कुछ क्षीण रेखाएँ हैं तो उनका श्रेय कुछ ऐसे गुरुजनों ही को है जिनमें पूज्य मोहता जी प्रधान हैं। आज के भौतिकता में डूबे हुए अपने संसार में हमें मोहता जी जैसे अनासक्त जीवन से ही भूतकाल के जनकादिक जैसे विदेहों के जीवन का प्रत्यक्ष आभास मिलता है।

भगवान ऐसे महात्माओं को इस तरह अखिल संसार के उद्धारार्थ चिरकाल तक इस भूमि पर रहने दे। इस कामना के साथ मेरा पूज्य मोहता जी को श्रद्धामय प्रणाम है।

नाथूराम गोयन्न

(मोहता जी के पुराने अंतरंग साथी।)

इसी बीच श्री रामगोपाल जी के कुछ लेख और विचार मैंने पढ़े। मुझ पर उनका कुछ असर हुआ। मैं दिल में कल्पना करता रहा कि किसी दिन वे माहेश्वरी महासभा के सभापति होंगे, पर वे तब ही हो सकेंगे जब माहेश्वरी समाज उनके प्रभावी समाज-सुधारकत्व की आंच सहन कर सकेगा।

समय आया। माहेश्वरी समाज में अनेक क्रान्तिमय विचारधाराएँ शीघ्र गति से प्रवाहित होने लगी। कौंसवार आन्दोलन आया। समाज मे प्राचीन और नवीन विचारों में घोर संघर्ष हुआ। माहेश्वरी समाज के नव विचारों की परीक्षा हुई और नव विचार सफल हुए।

माहेश्वरी महासभा का पंढरपुर में अधिवेशन हुआ। श्री रामगोपाल जी एकमत से इस अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए। श्री मोहता जी अपने विचारों में और कृति मे दृढ रहे, परन्तु अब समाज उनके साथ जाने की शक्ति प्राप्त कर चुका था। मुझे उस दिन अपार हर्ष हुआ जिस दिन श्री मोहता जी ने माहेश्वरी महासभा का सभापतित्व किया।

पंढरपुर में प्रथम बार उनके दर्शन हुए। उनका व्यक्तित्व परिणामकारी दिखाई दिया। उनकी शान्त मुद्रा, उनका स्मित, उनकी गम्भीर चर्चा प्रणाली और उनकी सादगी किसी पर भी असर करने योग्य है। मैंने उनसे अनेक विषयों पर चर्चा की और पाया कि उन्होंने विषयों का गम्भीर अध्ययन किया है।

माहेश्वरी महासभा का, सभापति के स्थान से उन्होंने उत्तम कुशलतापूर्वक संचालन किया और प्रतिनिधियों के दिल पर उनके व्यक्तित्व का काफी असर हुआ। पंढरपुर के पश्चात् दिल्ली में उनसे फिर मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी अवस्था काफी वृद्ध थी और शरीर कुछ निर्बल हो गया था, परन्तु उनकी आत्मा में और विचारो मे वही शक्ति थी। चिन्तन और अध्ययन में उनकी प्रभावी वृत्ति थी। प्रेम से मुझसे मिले और जब जब मैंने उनसे पत्रव्यवहार किया, तब बड़ी सहृदयता का मुझे परिचय मिला।

श्री मोहता जी से अधिक सम्पर्क मैं प्राप्त न कर सका, परन्तु जो कुछ थोड़ा सम्पर्क मैंने उनसे प्राप्त किया उस से मैंने एक बलवान और निर्भीक आत्मा के दर्शन किये, जो अपने रास्ते पर चलने की शक्ति रखता है। माहेश्वरी समाज ने उन्हें जन्म दिया, परन्तु वे भारतीय समाज के व्यक्ति बन गये।

विकास में ही जीवन की सफलता है। श्री मोहता जी ने वह प्राप्त की है।

ब्रजलाल बियाणी

("बरार केसरी" के नाम से प्रसिद्ध बियाणी जी यशस्वी लेखक, प्रभावशाली वक्ता और सुयोग्य नेता हैं। १६२० में एल-एल० बी० की अन्तिम परीक्षा के अवसर पर गांधी जी की पुकार पर शिक्षा का परित्याग कर आप असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। गांधी जी के सभी आन्दोलनों में आपको लम्बी सजाएं और मुसीबतें भोगनी पड़ी। संत विनोबा के बाद युद्ध विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह करने वाले आप दूसरे सत्याग्रही थे। अत्यन्त साधारण स्थिति से अत्यन्त विषम परिस्थितियों में आपने स्वयं अपना निर्माण किया है। बरार प्रदेश कांग्रेस, केन्द्रीय एसेम्बली, संविधान परिषद और बरार मध्यप्रान्त विधान सभा के वर्षों सदस्य रहे और बरार मध्यप्रान्त के अर्थमन्त्री के पद को भी सुशोभित किया। मारवाड़ी समाज सुधारक नेताओं में आपका अग्रणी स्थान है। आपकी लेखनशैली मौलिक, रसपूर्ण और हृदयग्राही है। आपकी वाणी ओजस्वी और मर्मस्पर्शी आकर्षक है।)

२७

श्रद्धा के पात्र मोहता जी

वयोवृद्ध श्री रामगोपाल जी मोहता से मेरा बहुत समय से घनिष्ट परिचय है और वह सदैव मेरे श्रद्धा के पात्र रहे रहे हैं। उनका क्रियाशील जीवन, त्यागवृत्ति, दानशीलता, क्रान्तिपूर्ण विचार एवं सेवामयी साधना आदि अनुकरणीय विशेषताएँ हैं।

कलकत्ता के पास लिलुआ में स्थित हिन्दू अबला आश्रम व अनाथालय नामक सार्वजनिक संस्था से मेरा आरम्भ से ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। जैसा नाम से ही बोध होता है यह संस्था गृहविहीन, आश्रयहीन, समाजग्रस्त, अनाथ विधवाओं, अबलाओं, कन्याओं, तथा बच्चों को शरण देने व उनके भरणपोषण तथा शिक्षण के लिए स्थापित की गई थी। इसी वर्ष यह संस्था बंगाल सरकार के सुपुर्द कर दी गई है। मुझे वर्षों इसकी प्रबन्धकारिणी का अध्यक्ष रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आरम्भ में उचित स्थान के अभाव में इस संस्था को अपने कार्यों में बहुत असुविधाएँ रहा करती थीं। सन् १६३० के लगभग की बात है। उस समय लोगों की, विशेषकर समाज की, इस प्रकार के सेवा कार्यों के प्रति बहुत रुचि नहीं थी और न ऐसे कार्यों में भाग लेने वालों को समाज की ओर से सहयोग मिलता था। ऐसे समय में आपने लगभग २० बीघा के क्षेत्रफल का कलकत्ता के पास लिलुआ में स्थित अपना बृहत् बगान और उसमें बना हुआ दोमंजला मकान उक्त संस्था के निःशुल्क उपयोग के लिए देकर अपनी अपूर्व उदारता का परिचय दिया जिससे इस संस्था की बड़ी समस्या का सहज ही में समाधान होगया। कलकत्ता के आस पास में लिलुआ एक बड़ा भारी औद्योगिक क्षेत्र है और वहाँ की भूमि औद्योगिक दृष्टिकोण से बहुत कीमती है। आप चाहते तो इस सम्पत्ति का अन्यरूप से उपयोग कर सकते थे या इसे ऐसे धर्मार्थ कार्यों में लगा सकते थे जिनसे उनका बड़ा नाम हो सकता था। पर आप जैसे सच्चे सेवाव्रतियों को नाम की भूख नहीं होती। लगभग २७ वर्ष तक इस स्थान में अनगिनत निराश्रय एवं अनाथ अबलाओं व बच्चों को शरण मिलती रही। और इस वर्ष जब यह संस्था बंगाल सरकार को सुपुर्द कर दी गई तो आपने भी इस भूमि का अधिकांश भाग, १५ बीघा से अधिक, बंगाल सरकार को उदारतापूर्वक दान में दे दिया। इस भूमि का शेष भाग भी सार्वजनिक संस्था के काम में आये ऐसी आपकी इच्छा है।

जब भी मुझे आपसे किसी काम के लिए बात करने का अवसर प्राप्त हुआ, आपका सहर्ष सहयोग सदा मिलता रहा। परोपकार और सहयोग के लिए आपकी प्रवृत्ति सदैव प्रबल देखी गई।

यह तो केवल केवल एक मात्र घटना का उल्लेख है जिससे इन पंक्तियों के लेखक का विशेष परिचय है, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके जीवन में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलेंगे जिनसे अनगिनत नरनारियों का उपकार हुआ है और जिनसे उपकृत मानव आपका सदैव मूक अभिनन्दन करता रहेगा।

जिनका जीवन सर्वदा स्तुत्य व अभिनन्दनीय रहा है उनके अभिनन्दन का यह आयोजन केवल हमारे संतोष व समाधान के लिए किया गया है।

प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

(आप कलकत्ता के बहुत पुराने, लोकप्रिय सार्वजनिक, सामाजिक और राजनीतिक नेता हैं। कांग्रेस में विशेष भाग लेते रहे हैं। कलकत्ता के मारवाड़ी समाज के जो युवक सब से पहले सरकार के कोपभाजन बने थे उनमें आप प्रमुख थे। तभी से सार्वजनिक प्रवृत्तियों में आप विशेष भाग लेते हैं। अनेक सार्वजनिक संस्थाओं

तथा धर्मादा ट्रस्टों के आप पदाधिकारी हैं। कलकत्ता व बंगाल के समान असम में भी आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आप यशस्वी एटार्नी-एट-ला हैं। इन दिनों में संसद की राज्यसभा के सदस्य हैं।)

०

२८

मातृ पूजा का अनुष्ठान

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। श्री मोहता जी समाज के वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, सेवा परायण सुधारवादी सज्जन हैं। उन्होंने ५० वर्ष पहले जिस समय समाज सुधार की बात सोची उस समय समाज की जो स्थिति थी उसमें समाज सुधार की बात कहना व करना कितना कठिन था उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। मोहता जी जैसे सज्जनों के प्रयत्न का फल है कि आज उग्र से उग्र सामाजिक कार्य करना सहज हो गया है। पर, इस स्थिति को पैदा करने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कैसे कैसे लांछन अपमान सहन करने पड़े हैं, उनका विवरण ही मोहता जी का जीवनवृत्त है। मोहता जी का कार्यक्षेत्र राजस्थान और राजस्थान में भी बीकानेर रहा। वहाँ राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से काम करना तो दूर सोचने वालों की भी बहुत कमी थी। पर मोहता जी ने यह संस्कार यानी मानवता के संस्कार अपनी आध्यात्मिक विचारधारा से ग्रहण किये हैं। इसलिए विरोध का तथा अन्य किसी कठिनाई का प्रभाव उन पर कम-से-कम हुआ। वे अपने विवेक के सहारे अपना काम करते गये। वे शुष्क सुधारवादी ही नहीं हैं किन्तु उनमें सामाजिकता भी खूब है। इसलिए उनको साथी भी मिलते रहे। बीकानेर में मोहता जी के साथियों की एक छोटी सी टोली रही जो, बीकानेर में रसिकता के साथ-साथ उनके कारण नयी भावना ग्रहण करती रही।

समाज सुधारक को शिक्षा के क्षेत्र का सहारा लेना ही पड़ता है। मोहता जी ने लड़के और लड़कियों दोनों की शिक्षा का प्रबन्ध करने में पहल की है। उनके स्थापित किए हुए मोहता मूलचन्द विद्यालय, श्री भैरव रत्न मातृ पाठशाला और महिला मंडल इसकी साक्षी हैं। पुस्तकालय, संगीत विद्यालय तथा भजनों वालों तथा सत्संग आदि द्वारा भी सुधार का प्रचार कार्य उन्होंने किया; परन्तु जब हरिजनों का कार्य करने लगे, विधवा विवाह की बात करने लगे, पर्दा प्रथा का बहिष्कार करने के लिए कहा, बाल विवाह और वृद्ध विवाह का विरोध किया, स्त्रियों पर होने वाले अन्यायों का विरोध किया तब उनको समाज का कोप भाजन बनना पड़ा। परन्तु वे अपने विश्वास के साथ आगे बढ़ते रहे। हर समाज सुधारक के जीवन में ऐसे अवसर आया करते हैं जब वह समाज के विरोध का, कोप का, रोष का और अपमान का शिकार होता है। "न्यायेन पंथा विचलन्ति न धीराः" की तरह जो अपने उद्देश्यों का सच्चाई के साथ पालन करते हैं अन्त में समाज उनका आदर और उनके कार्यों की प्रशंसा करने लग जाता है। बिना किसी स्वार्थ के मानवीय विकास और कल्याण की भावना से किये हुए कार्यों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

श्री मोहता जी के विचारों का विशेष प्रभाव उनके परिवार के प्रायः समस्त लोगों पर पड़ा और घर के सारे लोग उनकी विचारधारा से सोचने विचारने लगे। मोहता जी के छोटे भाई श्री शिवरतन जी मोहता की

पत्नी ने शायद बीकानेर में सबसे पहले परदे का त्याग किया और उनके घर में एक नवीन वातावरण पैदा हुआ। उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि उनका परिवार सुधार प्रिय बन गया।

सम्भवतः सन् १६२४-२५ की बात होगी जब हिन्दी मासिक "चांद" द्वारा स्त्रियों के अधिकार, विकास, स्वतन्त्रता और उन्नति का जोरों से प्रतिपादन किया जा रहा था। कोई भी स्त्री उन्नति का पक्षपाती "चांद" के लेखों से प्रेरणा और उत्साह प्राप्त किए बिना नहीं रह सकता था। शायद बहन महादेवी जी उन दिनों "चांद" का सम्पादन करती थी। "अपनी बात" के शीर्षक से उनके लेख बहुत ही सुन्दर, पठनीय और मननीय होते थे। इसके अलावा भी चांद कार्यालय द्वारा स्त्रियों में नवीन जागृति उत्पन्न करने का साहित्य प्रकाशित किया जाता था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि इस प्रेरणा के पीछे श्री रामगोपाल जी मोहता का हाथ था। उसी समय से मैं मोहता जी की ओर आकर्षित हुआ। जैसे-जैसे उनके बारे में जानकारी बढ़ी, उनकी लिखी पुस्तकें पढ़ने का मौका मिला, उनके साथियों से उनके बारे मे जो कुछ सुना और उनकी दिनचर्या की बातें मालूम हुई उनसे ऐसा लगा कि उनके हृदय में मातृजाति की पूजा तथा स्त्री जाति की उन्नति का विशेष भाव है।

समाज में स्त्रियों की, हरिजनों की जो स्थिति है वह सब दबी हुई अवस्था के कारण है। उनके साथ समाज जो बर्ताव करता है वह मानवीय नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है कि भारतीय नारी की स्थिति समाज में किसी भी समय बहुत उन्नत नहीं रही। वह पतियों, पिताओं और पुत्रों के द्वारा भी शसित और अपमानित होती रही है। भारतीय इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, पर उन सब का यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता। महाभारत काल के सबसे पवित्र पुरुष और महान त्यागी पितामह भीष्म के द्वारा एक साथ तीन स्त्रियों को स्वयंम्वर से उठाकर ले जाना, युधिष्ठर जैसे महात्मा, धर्मराज के द्वारा द्रोपदी जैसी स्त्री को जुए के दाव पर लगा देना और फिर भरी सभा में भीष्म, द्रोण जैसे महानुभावों के सामने उसको वस्त्रहीन करने का साहस करना और उसका जरा भी किसी ने नैतिक या अन्य किसी प्रकार का विरोध न करना भारतीय नारी की दयनीय स्थिति को प्रगट करता है। उसके बाद के युग में कबीर जैसे क्रान्तिकारी सन्त को भी कहना पड़ा— 'नारी नर्क का दुवारे, मूर्ख बशा देख दिवाना हुआ रे।' और तुलसीदास जी ने तो यह कह दिया कि—

"विधि हू न नारी हृदय गति जानी
सकल कपट अघ अवगुन खानी।"

भला हो महात्मा गांधी का जिन्होंने अपने आश्रम में नारी को बराबर का स्थान दिया और उसके विकास के लिए भारतीय समाज में एक नई लहर पैदा कर दी। श्री मोहता जी ने मेरे ख्याल से इन्हीं सब कारणों से व्यथित होकर नारी जगत की उन्नति का प्रयत्न शुरू किया होगा।

मोहता जी के अनेक कामों में मुझे उनका मातृपूजा का अनुष्ठान सबसे प्रिय और सबसे श्रेष्ठ लगता है। कलकत्ते में अपना लिलुवे का बगीचा आपने अपने छोटे भाई की पत्नी के नाम पर समाज से बहिष्कृत, प्रताड़ित, भूली-भटकी बहनों की सेवा और आश्रय पाने के लिए दिया था। जिसमें आज भी अबला आश्रम चल रहा है। इसी प्रकार के अन्य कई काम भी उन्होंने किये हैं। अब उनकी आयु ८० वर्ष से अधिक हो गई है। इस वृद्धावस्था में भी वे सतत प्रयत्नशील हैं और उनके द्वारा समाज हित के अनेक काम हो रहे हैं। आज समाज में नई विचार-धारा प्रवेश कर रही है पर मोहता जी इस अवस्था में भी अनेक सुधारकों से आगे हैं। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण वे युग की गति को पहचानते हैं, उसके आगे चल पाते हैं। ईश्वर की हम पर कृपा हो कि ऐसे विशिष्ट

व्यक्ति जितने दिन समाज में जीवित रह सकें उतना ही समाज का कल्याण है। इन शब्दों में मैं इस अभिनन्दन अवसर पर मोहता जी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

सीताराम सेक्सरिया

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन के महिला सेक्सरिया पुरस्कार के प्रतिष्ठाता श्री सेक्सरिया जी गांधीवादी सुधारक और सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं। गांधी युग में आप कई बार जेल गए हैं। रचनात्मक कार्यों में आपकी सबसे अधिक रुचि महिला जागृति में है। मातृ पूजा का अनुष्ठान आपके जीवन का सबसे बड़ा व्रत है। कलकत्ता में आपने इस क्षेत्र में अत्यन्त ठोस काम किया है और महिलाओं सम्बन्धी अनेक संस्थाओं का गठन एवं संचालन किया है। इस क्षेत्र में आपने मोहता जी की तरह ही इस सेवा पथ का अवलम्बन किया है।)

•

२९

उनकी मान्यताएँ सफल हों

श्री रामगोपाल जी मोहता के अभिनन्दन की बात जानकर प्रसन्नता हुई। समाज में प्रचलित हानिकारक कुरीतियों को तोड़ने में तथा स्वस्थ साहित्य, शिक्षा और संगीत के प्रचार में समाज को उनकी अच्छी देन है। महिला जागृति के सम्बन्ध में उनके द्वारा किए गए काम का महत्व मारवाड़ी समाज तथा राजस्थानी जनता के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। हरिजनों की सेवा का भी आपने आदर्श उपस्थित कर दिखाया है। समाज की आने वाली पीढ़ी उन्हें कृतज्ञता के साथ याद रखेगी। इस अवसर पर श्री मोहता जी के सुखी और दीर्घ जीवन के लिए तथा उनकी मान्यताओं की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनाएँ स्वीकार करें।

भागीरथ कनोडिया

(आप कलकत्ता के लोक सेवा भावी, उदारचेता और सात्विक वृत्ति के सरल सज्जन हैं। १९४२ में आप को लम्बे समय तक आप की सार्वजनिक प्रवृत्तियों के कारण नजरबन्द रखा गया था। गांधीजी की विचारधारा के मानने वाले सर्वथा मौन रहकर सब रचनात्मक प्रवृत्तियों में आप पूरा सहयोग देते हैं। कलकत्ता और राजस्थान में आप ने लाखों रुपया सार्वजनिक संस्थाओं तथा सार्वजनिक कामों के लिए दिया और दिलवाया है। महिला उद्धार, हरिजन सेवा, समाज सुधार तथा शिक्षा प्रसार आदि में आप भी मोहता जी के ही समान अभिरुचि रखते हैं।)

•

३०

क्रियाशील जीवन का आदर्श

श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता के साथ कभी प्रत्यक्ष परिचय न होने पर भी आपके सात्विक जीवन के सम्बन्ध में परिचय पाकर मेरा सम्मान और श्रद्धा आपके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई है और मैंने सदा ही अपने को आपके अत्यन्त समीप अनुभव किया है। आपने गीता को अपने जीवन का आदर्श बनाकर उसके सम्बन्ध में "सात्विक जीवन", "दैवी सम्पद" तथा "गीता का व्यवहार दर्शन" आदि जो ग्रन्थ लिखे हैं और उसके ढाँचे में अपने क्रियाशील जीवन का जो आदर्श निर्माण किया है वह हमारे लिए आपकी सबसे बड़ी देन है। आपके आदर्श सात्विक जीवन से यदि वर्तमान पीढ़ी कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकती है, तो आपका निर्मित आध्यात्मिक साहित्य सदियों तक आगामी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा तथा स्फूर्ति का पुंज बना रहेगा और उसके प्रकाश में कितने ही भटकते हुए अपने मार्ग की खोज कर सकेंगे। आपकी गणना इसी साहित्य के कारण देश के मनस्वियों और मनीषियों में की जाती रहेगी। मैं माहेश्वरी, मारवाड़ी तथा राजस्थानी होने के नाते पूज्य मोहता जी के समकालीन होने का गौरव अनुभव करता हूँ। आपने यह सिद्ध कर दिया कि कोट्यधिपति होने पर भी मनुष्य कैसे अपने को धार्मिक, सात्विक एवं आध्यात्मिक पथ का सफल एवं यशस्वी अनुगामी बना सकता है।

पूज्य मोहता जी ने समाज के त्रस्त, पीड़ित एवं शोषित वर्ग, स्त्री समाज तथा हरिजन भाइयों की सेवा को अपने जीवन का व्रत बनाकर सामाजिक कल्याण का भी एक आदर्श हमारे सामने उपस्थित कर दिया। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने देशी राज्यों तथा जागीरों में फैली हुई दास-दासियों की कुप्रथा के उन्मूलन करने में पहल की और बीकानेर सरीखे दकियानूसी राज्य में उसके लिए सबसे पहले आवाज उठाई। समाज सुधार के क्षेत्र में मृतक भोज आदि का अन्त करके शिक्षा प्रचार के लिए जो कार्य आपने किया उससे बीकानेर नगर का तो कायाकल्प ही हो गया। समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियों का आपने न केवल अपने घर से किन्तु बीकानेर नगर से भी उन्मूलन कर दिया। लोकोपकार के कार्य के लिए आपने कड़े विरोध और गहरे लोकापवाद का जिस धैर्य और शान्त भाव से सामना किया उसका उदाहरण कहीं और मिलना कठिन है। अपने इस धैर्य व शान्त स्वभाव से आपने अपने कट्टर विरोधियों और आलोचकों को भी अपना बना लिया, क्योंकि उनका उपकार तथा भलाई करने में भी आप कभी चूके नहीं। "उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्" आपके जीवन का आदर्श रहा है।

आपके लोकसेवा के महान कार्य का कुछ परिचय मुझे तब मिला जब १९५१-५२ में बीकानेर राज्य में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था। तब मेरे पास बीकानेर से घास व पत्ती आदि से बनी हुई उन रोटियों का एक नमूना भेजा गया था जिनसे दुर्भिक्ष पीड़ित देहाती भाई किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह किया करते थे। तब मैंने लोक सभा में बीकानेर के दुर्भिक्ष का प्रश्न उठाकर केन्द्रीय सरकार तथा अन्न मंत्री का ध्यान उस ओर आकर्षित किया था और उन्होंने वहाँ विषम स्थिति का पैदा होना स्वीकार किया था। तब मुझे पता चला था कि किस प्रकार मोहता जी उन दुर्भिक्ष पीड़ित भाई-बहनों की सेवा और सहायता करने में लगे हुए थे। उनके कार्यकर्ता लारियों पर खाद्य सामग्री और वस्त्र आदि ले जाकर देहातों में बाँटा करते थे। जो लोग अपने कुलाभिमान के कारण मुफ्त सहायता लेने में संकोच करते थे उनको उनकी सांत्वना के लिए उधार सहायता दी जाती थी, किन्तु उस उधारी की कोई लिखा-पढ़त नहीं की जाती थी। मुझे यह भी पता चला कि मोहता जी के परिवार में दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा और सहायता करना एक पुरानी वंश-परम्परा है और उसको आपने सारी रचना

श्री गजाधर सोमाणी के संस्मरण में

नौरंग देसर गांव में अकाल के समय मोहता जी को घास की गंठी दिखाते हुए वहां के किसान ।

मोहता भवन बीकानेर में अकाल पीड़ितों को वस्त्र प्रदान किए जा रहे हैं ।

मुक्त हस्त से खर्च करके चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। आपका घर, धर्मशाला और गोवरधन सागर बगीची आदि सब स्थान दुर्भिक्ष पीड़ितों के राहत स्थान बने रहते हैं और कोई भी दुर्भिक्ष पीड़ित नर-नारी आपके यहाँ से निराश नहीं लौटता। इस प्रकार पीड़ित, दलित तथा शोषित मानव की सेवा करके दरिद्र नारायण की पूजा में अपने को लगाकर आपने जो पुण्य संचय किया है वह आप के सात्विक जीवन को और भी अधिक ऊँचा उठाने वाला है।

मुझे यह सर्वथा उपयुक्त प्रतीत हुआ है कि आपके अभिनन्दन के निमित्त "एक आदर्श समत्व योगी" नाम से एक विशाल ग्रन्थ का प्रकाशन करके गीता के समत्व योग का न केवल सैद्धान्तिक स्वरूप किन्तु क्रियाशील कर्मठ जीवन का आदर्श भी सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है, जो कि वास्तव में ही स्फूर्ति एवं प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हो सकता है। अपने को इस अभिनन्दन समारोह में सम्मिलित कर मैं मनस्वी श्री मोहता जी के आदर्श एवं अनुकरणीय जीवन के प्रति अपनी विनीत श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को धन्य मानता हूँ। मेरी यह हार्दिक कामना है कि आप हमारा पथ प्रदर्शन करने के लिए हमारे बीच दीर्घकाल तक उपस्थित रहें। भगवान की कृपा से आप दीर्घायु हों और शतायु हों।

गजाधर सोमाणी

(संसद के सदस्य सेठ गजाधर जी सोमाणी पुराने देशभक्त और समाज सेवी हैं। अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के साथ आपका बहुत पुराना सम्बन्ध है। आप भी सात्विक वृत्ति के अत्यन्त, सरल एवं प्रगतिशील उद्योगपति हैं और देश सेवा तथा समाज सेवा के कार्यों में उदार सहयोग देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। देश के उद्योगपतियों में आपका प्रमुख स्थान है और बम्बई मिल ओनर्स एसोसियेशन के आप वर्षों से अध्यक्ष पद पर विराजमान हैं।)

●

२१

छोटे भाई की दृष्टि में

मैं गीता का उपासक होने के कारण उसके वचनों को यथार्थ मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि गीता के अध्याय ६ श्लोक ४१-४२ के अनुसार मैं भी कोई पूर्वजन्म का योग भ्रष्ट जीवात्मा हूँ, इसलिए मेरा जन्म ऐसे कुल में हुआ है जहाँ मुझे पूज्य माताजी व पिताजी द्वारा सदुपदेशों का अमृत पान करने का सुअवसर मिला और समत्व योगी ज्येष्ठ भ्राता जी रामगोपाल जी मोहता के संरक्षण में यह मेरा जीवन रूपी पौधा उनके वात्सल्य प्रेम जल से सिंचित होता हुआ अपनी सर्वांगीण भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति कर रहा है। मुझे तो ऐसा लगता है कि श्री रामचन्द्र जी का श्री लक्ष्मण जी के प्रति भ्रातृ प्रेम व वात्सल्य का जो अनुपम उदाहरण है वही सौभाग्य से मुझे प्राप्त हुआ है। मैं तो मेरे ज्येष्ठ भ्राता की दूरदर्शिता, गम्भीर विचार शक्ति और [illegible] की चमत्कारिक सात्विक व्यवसायात्मिका बुद्धि को देख कर गीता के १०वें अध्याय के ४१वें श्लोक में जो भगवान ने कहा है कि "जो जो सत्व विशेष चमत्कारिक विभूति सम्पन्न शक्ति-युक्त व ऐश्वर्य है उनको तू मेरे ही तेज के

अंश में हुआ समझ"। वही परमात्मा के तेज का विशेष अंश उनमें प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ अर्थात् उनको परमात्मा की एक विभूति समझता हूँ।

मुझे उनके समत्व योगी होने का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है और अनेक अवसरों पर उनका "वसुधैव कुटुम्बकम्" वर्ताव देखने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। कई काम ऐसे देखे जिनसे विस्मय में पड़ जाता हूँ। मैं उनसे १२ वर्ष छोटा हूँ। मेरे १२ वर्ष की अवस्था तक की बातें तो मुझे याद नहीं हैं अतः पूज्य भाई जी के २४ वर्ष की उम्र तक के संस्मरण मुझे याद नहीं। उसके पीछे की कई बातों का मुझे स्मरण है जो मैं संक्षिप्त रूप में लिखता हूँ।

दैवी सम्पद के गुण जो गीता अध्याय १६ श्लोक १–३ में बताये हैं वे आप में पूरे से विद्यमान हैं। बड़ों के प्रति आदर, छोटों के प्रति वात्सल्य व सखा सम्बन्धी के प्रति मित्रता का वर्ताव आपका स्वभाव है। गुणीजनों यानी विद्वानों के प्रति मित्रता का वर्ताव आपका स्वभाव है। विद्वानों, संगीतज्ञों, कवियों व अन्य कलाकारों का आप सत्कार करते हैं। बाहर से आये हुए गुणीजनों के गुणों का परिचय आप अवश्य लेते हैं और *उनका यथोचित सत्कार करते हैं। पाखंडियों के लिए आपके यहाँ कोई जगह नहीं है, जिससे वे लोग बहुत नाराज* होते हैं। फिर भी आपके मन में विक्षेप नहीं होता। आपने लाखों ही रुपया परोपकार व सार्वजनिक कामों के लिए दान में दिया जिससे सरकार भी बहुत प्रभावित होकर आपको पदवी देकर मान प्रतिष्ठा प्रदर्शित करना चाहती थी; परन्तु आपने कोई पदवी आदि लेना स्वीकार नहीं किया।

इस संसार में सबको अपने कामों के अनुसार दुख सुख, हानि-लाभ, यश अपयश आदि द्वन्द प्राप्त होते रहते हैं। इसलिए हमारा कुटुम्ब भी इससे वंचित कैसे रह सकता था, परन्तु उन परिस्थितियों में आपके मन का सन्तुलन बना रहा।

सन् १९०६ में हमारा कुटुम्ब भौतिक सुख का खूब अनुभव कर रहा था। हम तीन भाई थे— (१) श्री रामगोपाल जी (२) मैं और (३) सब से छोटा मूलचन्द। उस समय हम क्रमशः ३१, १९ और १४ वर्ष की आयु के थे। सब का विवाह हो चुका था। धन, मान, प्रतिष्ठा खूब बढ़ी चढ़ी थी; परन्तु मुझे याद है कि पूज्य भाई जी के मन में इस वैभव का कोई अहंकार नहीं हुआ।

सुख के बाद दुख का परदा पड़ा। सन् १९०८ में मैं और मूलचन्द पूज्य माता जी व पिता जी के साथ कराची गये। वहाँ पर मैं बवासीर की असह्य पीड़ा के कारण बहुत बीमार हुआ और छोटे भाई मूलचन्द को निमोनिया होकर पाँच ही दिन में आकस्मिक दुखद मृत्यु हो गई। उस समय उसकी आयु १६ वर्ष की थी। पूज्य भाई जी मेरी और मूलचन्द की बीमारी का समाचार पहुंचने पर बीकानेर से कराची पहुँच गये। सारे शहर में हाहाकार मच गया। पूज्य श्री माता जी व पिता जी को जो हृदयविदारक शोक हुआ उसका अनुभव उनके सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता। सबसे छोटे का देहान्त व उससे बड़े का रोग ग्रस्त बिस्तर में पड़े रहना वृद्ध-माता-पिता के अति शोक का कारण हुआ। उस समय पूज्य भाई जी के हृदय का जिस किसी ने धीरज देखा वह चकित रह जाता था। आपके मन को दुख का अनुभव होना स्वाभाविक था और हुआ भी, परन्तु ज्ञान पूर्वक सहन किया। एक आँसू तक इसलिए नहीं बहाया गया कि माता-पिता का क्या हाल होगा और भाई जो बिस्तर में पड़ा है उसका क्या हाल होगा? मालूम होता है कि उस ३१ वर्ष की अवस्था में ही "अशोच्यानन्वशोचस्त्वं" गीता अध्याय २, श्लोक ११ से ३० तक का उपदेश हृदयंगम हुआ था। इन्हीं श्लोकों को पढ़कर उसका अर्थ पूज्य माताजी व पिताजी को सुना कर उनको सान्त्वना देते थे। अपने हाथों से अपने छोटे भाई का अन्तिम संस्कार किया। इसी दारुण शोक में पूज्य माता जी ने अपनी नेत्रों की ज्योति उन्हीं १२ दिनों में खो दी और पिता जी सब काम काज से निवृत्त होकर हमेशा आत्मज्ञान के सद्शास्त्रों के पढ़ने सुनने और

अपनी सदा की शैली के अनुसार परोपकार के कामों में शेष आयु विताते रहे। उस समय पूज्य पिताजी और माता जी तो कराची में ही रहे और मूलचन्द की विधवा व हम सब लोगों को लेकर पूज्य भाई जी बीकानेर आ गए।

उन दिनों में छोटी उम्र वाले के मरने पर भी ब्रह्म भोज हुआ करता था, वह नहीं करके पूज्य भाईजी ने उसकी यादगार में "मोहता मूलचन्द विद्यालय" की स्थापना की। पूज्य माता जी की ब्राह्मण भोज कराने की पहले तो इच्छा थी परन्तु पूज्य भाई जी के विनीत भावयुक्त उपदेशों का उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा और मैंने तो जैसे श्री कपिलमुनि ने अपनी माता को उपदेश दिया वह दृश्य देखा। मेरी पूज्य माता जी ने आपके उपदेशों के कारण भेद-भाव के सब पूजा पाठ का त्याग कर दिया और ज्ञान रूपी सर्वात्मभाव का सूर्य उनके हृदय में चमकने लगा। उन्होंने मृतक भोज, श्राद्ध इत्यादि करना त्याज्य समझ लिया था और सात्विक दान गीता अध्याय १७, श्लोक १६ के अनुसार ही करने लगे। बीकानेर शहर में मृतक के पीछे इस प्रकार का सात्विक कार्य यह पहला ही हुआ, जिसका अनुकरण बहुत पीछे दूसरे लोगों ने भी किया। इसीलिए तो गीता में कहा है जो श्रेष्ठ लोग काम करते हैं उसका अनुकरण अन्य लोग भी करते हैं अतः श्रेष्ठ लोगों के ऊपर कर्तव्य व अकर्तव्य की जिम्मेवारी बहुत है। विद्यालय स्थापित हुआ। उसी दिन के उत्सव में स्व० पंडित कृष्ण शंकर तिवारी का मूलचन्द की मृत्यु पर मर्मस्पर्शी भाषण हुआ, जिसे सुन कर मैं तो फूट फूट कर रोने लगा। उस समय पूज्य भाई जी ने मुझको फटकार कर कहा, अरे कायर मूलचन्द के लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा है, यह समय रोने का नहीं किन्तु प्रसन्न होने का है। यह कह कर मुझे धीरज बंधाया तथा सब उत्सव का काम आपने बहुत प्रसन्न चित्त से किया। शोक में भी इस तरह सम रहे और अपने शोक को दूसरों के उपकार में परिणत कर दिया। इस विद्यालय का स्थायी ट्रस्ट तीन लाख का कराची में जायदाद देकर बनाया।

पूज्य भाई जी की इकलौती पुत्री गुलनी बाई (जिसकी पुत्री सौ० रतनबाई है) और उस पुत्री के इकलौते पुत्र भैंरवरतन का असामयिक देहान्त बहुत छोटी उम्र में हुआ। उस समय भी आपकी स्थिति बहुत शान्त बनी रही। अपनी पुत्री व उसके पुत्र की यादगार में भी श्री "भैंरवरतन मातृ पाठशाला" की स्थापना की। जिसमें इस समय ३५० लड़कियाँ शिक्षा पा रही हैं।

जब गुलनी बाई का देहान्त हुआ तब सौ० रतनबाई की उम्र ३ वर्ष की थी। उसका लालन-पालन व शिक्षा आदि सब आपने किया। आपके सत्संग के आध्यात्मिक उपदेशों का उस पर बचपन से ही प्रभाव पड़ा। फलतः यह भी स्त्री शिक्षा तथा प्रौढ़ स्त्रियों को पढ़ाना आदि सिखाकर आत्मनिर्भर बनाने में बहुत दिलचस्पी लेती है। तदर्थ बीकानेर में "महिला मण्डल" की स्थापना की गई, जिसका सब काम उसी के ऊपर निर्भर है। उसके बचपन में ही उसके पालन-पोषण व शिक्षा आदि के लिए आपने ५ लाख की सम्पत्ति का ट्रस्ट बना दिया था। आपके हृदय में पुत्र व पुत्री के लिए एक जैसा ही स्थान है।

आप नारी जाति के दुःख निवारण के लिए हमेशा यथाशक्य तत्पर रहते हैं। इस काम के लिए "रामगोपाल, गोवर्धनदास मोहता धर्म ट्रस्ट" ५ लाख रुपये का सन् १९२८ में बना दिया था।

सन् १९२९ में जोधपुर महाराजा श्री उम्मेदसिंह जी के छीतर हिल पर पैलेस बनाने का ठेका लिया। जिस के बनाने का एक करोड़ रुपयों का तखमीना था। जिस दिन इस पैलेस (महल) की नींव का मुहूर्त हुआ उसी दिन पूज्य भाई जी ने एक लाख रुपया का दान स्त्रियों के उत्थान के कार्य के करने के लिए महाराजा को प्रदान किया। महाराजा ने प्रसन्न होकर कहा कि ठेकेदारों की कमाई हो जाती है तो भी बहुत कम लोग उस शहर के लोगों की भलाई के लिए कोई दान देते हैं; परन्तु मोहता जी ने तो काम शुरू होने के पहले ही इतनी बड़ी रकम दे दी। श्री महाराजा ने उसी समय इस रकम से "श्री महारानी अजितकुंवरी हिन्दू अबला आश्रम" नाम का एक होम स्थापित करना स्वीकार किया और श्री गोवर्धनदास जी मोहता के सुपुर्द की उसी इसकी

गृह के स्त्री पुरुष सबको सोने का कड़ा पैरों में पहनने को दिया। यह इज्जत उन दिनों महाराजाओं की रियासतों में बहुत ऊँची समझी जाती थी।

हमारे पूज्य पिता जी चार भाई थे। सबसे बड़े पूज्य शिवदास जी थे जिनका कारोबार तो पहले से ही अलग था। श्री शिवदास जी के पुत्र श्री गंगादास जी की छोटी उम्र में मृत्यु हो गई थी। उनकी स्त्री का दिमाग ठीक न होने के कारण जायदाद बर्बाद हो जाने की स्थिति पैदा हो गई थी। तब आपने अथक परिश्रम करके श्री गंगादास के नाबालिग बच्चों की जायदाद राज्य के "कोर्ट्स आफ वार्ड्स" में दिलवा कर उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करवा दिया। पूज्य जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी व मेरे पिता जी का काम अन्दर भागीदारी में बहुत वर्षों तक चलता रहा। जब इनके साथ काम-काज का बटवारा हुआ तो बहुत ही प्रेम पूर्वक हुआ। यहाँ तक कि बटवारा हो जाने के बाद भी बहुत समय तक दुकानों के नाम पुराने ही चलते रहे। लोगों को मालूम हुआ तो बड़ा आश्चर्य करते थे। पूज्य जगन्नाथ जी का पूज्य भाई जी पर अपने लड़कों से भी अधिक वात्सल्य प्रेम था और हमेशा इनको "गोपाल" के छोटे प्यारे नाम से पुकारते थे। पूज्य भाईजी भी उनका बहुत आदर करते थे और उनकी आज्ञा का सदा पालन करते थे। पूज्य जगन्नाथ जी के बड़े पुत्र श्री मदनगोपाल जी का तो पूज्य भाई जी से बहुत ज्यादा प्रेम था और देहान्त तक वे हमारे कलकत्ते के कपड़े के काम में भागीदार रहे। पूज्य लक्ष्मीचन्द जी के बड़े पुत्र कन्हैयालाल जी के साथ आपका बड़ा स्नेह था। जब कभी हमारे कुटुम्ब के भाइयों को आवश्यकता हुई तो पूज्य भाई जी उनकी तन-मन-धन से सेवा व सहायता करते थे। उनके आपस में वैमनस्य हो कचहरी जाने की नौबत भी आई तो पूज्य भाई जी ने उनका पंच बनकर उनको कचहरी में झगड़ने की हैरानी व खर्चों से बचा लिया। पूज्य भाई जी का सबके साथ समता का व प्रेम का बरताव था। इस लिए उन पर सबकी एक जैसी प्रेम श्रद्धा रहती थी। कुटुम्बी जनों के कई छोटे बच्चों को अपने बच्चों की तरह रखकर उनका पालन-पोषण किया। शिक्षा दिलवाई। उनकी ब्याह-शादी की और व्यापार में लगाया। कुटुम्बी जनों में किसी के कारोबार में रुपयों की जरूरत हुई तो लाखों रुपये उनके कार्यों के लिए दिए।

हमारे कुटुम्ब के सब लोगों का आपके समता के बर्ताव के कारण आपसे बहुत ज्यादा प्रेम था। मुझे याद है जब कभी 'पिकनिक (सैर) पार्टी होती, कुटुम्ब के सब नवयुवक व बच्चे सम्मिलित होते और पूज्य भाईजी विदेश में होने के कारण उपस्थित नहीं होते थे तो सबके मुख से यह शब्द निकलते थे कि रामगोपाल के बिना सब अलूण है यानी फीका है। पूज्य मदनगोपाल जी, कन्हैयालाल जी व भीखणचन्द जी राठी तो कहते कि "एक पति बिन पाव रति को" यानी रामगोपाल बिना यह खाना, गाना, पीना सब फीका लगता है। हमारे बहन नहीं थी। (एक बहन थी वह छोटी उम्र में चल बसी)। मेरे पूज्य पिता जी के ३ बहनें थी। उनके बाल बच्चों के साथ भी पूज्य भाई जी का बर्ताव अपने भाई बच्चों जैसा रहा है। हमारी एक भुवाजी की सन्तान हमारे सब काम-काज में बचपन से ही शामिल है और उसके साथ आपका और आपके साथ उसका पिता पुत्र जैसा बर्ताव रहा है। अपने मामेरे के परिवार के साथ भी आपका अत्यन्त घनिष्ट प्रेम बना रहा और अपने काम-काज में उनका साझा (पत्ति) रखकर उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी बना दी।

हमारे काम-काज में श्री लक्ष्मीनारायण गाड़ोदिया, श्री रामप्रसाद खन्डेलवाल और इनके तीनों भाई व श्री केशव, श्री बास जी आदि छोटी अवस्था में भागीदार व मैनेजर तथा सहायक मैनेजर होकर वर्षों तक काम रहे और जब वे अलग हुए तो बड़े प्रेम के साथ उनको विदा दी और उन्होंने हमारे जैसा उसी लाईन का अलग काम किया। आज वे करोड़पति हैं तो भी पूज्य भाई जी को अपना मालिक समझ कर आदर करते हैं। यह उन लोगों का बड़प्पन है; परन्तु पूज्य भाई जी का भी उनके साथ जो बर्ताव रहा, वही इसका मूल कारण है।

मेरी भाभी साहिबा की टी॰ बी॰ की, कम अवस्था में आपने अपने हाथों से मरण पर्यन्त अटूट सेवा

सुश्रुषा की। नारी पुरुष व ऊँच-नीच के भेद-भाव का आप पर कुछ भी असर नहीं था। स्त्री को अपने से हीन समझने वाले आपकी यह सेवा सुश्रुषा देखकर बहुत आश्चर्य करते थे और कहते थे कि स्त्री की रुग्ण अवस्था में इस तरह सेवा करने वाला कोई विरला ही हो सकता है। पूज्य भाई जी के पुत्र नहीं हुआ। मेरी माता जी की दृढ़ इच्छा थी कि पूज्य भाई जी दूसरा विवाह कर लें परन्तु उन्होंने हाँ नहीं भरी तो पूज्य माता जी ने मेरे से उनको प्रार्थना करवाई, क्योंकि पूज्य भाई जी मुझ से बहुत स्नेह रखते थे और मेरी उचित प्रार्थना हमेशा स्वीकार कर लेते थे। आपने मुझे जवाब दिया कि तुम लोग नजदीक का सुख देखते हो और परिणाम के ऊपर विचार ही नहीं करते। मेरे लिए तो ये जितने बालक हैं वे सब मेरे ही पुत्र हैं। जो तेरे पुत्र होंगे वे भी लोक प्रथा के अनुसार मेरे ही आत्मज होंगे। समाज में स्त्रियों के साथ जो अन्याय होता है उसका भी ज्ञान मुझे कराया और कहा कि कुछ विचार करो। इसी तरह यदि मैं बीमार होता तो क्या मैं तुम्हारी भाभी को दूसरा विवाह करने की अनुमति देता ? मुझ पर मेरी आत्मा के विरुद्ध क्यों दबाव डालते हो। इस तरह के नारी पुरुषों के समान अधिकारों का निश्चय आपके मन में उस समय भी विद्यमान था। व्यापारिक काम-काज का भार तो सब आपके ऊपर ही था क्योंकि मैंने तो २४ वर्ष की आयु के पश्चात् काम-काज में दिलचस्पी लेनी शुरू की। मुझे आप पूज्य माता जी के पास बीकानेर में ही रखते थे। पूज्य पिता जी का कारोबार विलायत से कपड़ा आयात करने का था, इस काम में मि० जे० एलिगर एक अंग्रेज भागीदार था। जब यह अंग्रेज विलायत जाने लगा तो उसने पूज्य पिता जी को कहा कि मेरी अनुपस्थिति में किसी दूसरे अंग्रेज को रखने की जरूरत नहीं है, मि० रामगोपाल का अंग्रेजी लिखने-पढ़ने का अभ्यास बहुत बढ़ा हुआ है। यह सब चिट्ठी पत्री मेरे जैसी ही लिख-कर लेता है। कराची चैम्बर आफ कामर्स में भारतीयों को सदस्य नहीं बनाया जाता था; परन्तु पूज्य भाई जी को उन्होंने बड़ी खुशी से अपनी कार्यकारिणी तक का सदस्य बना लिया। आप अंग्रेजी भाषा में कानूनी दस्तावेज भी ऐसा लिखते थे कि बड़े-बड़े कानूनदाँ भी ताज्जुब करते थे। आपकी स्मरणशक्ति गजब की है। जितना काम आप करते हैं एकाग्र चित्त से करते हैं। इसलिए आध्यात्मशास्त्र सरीखा सूक्ष्म विषय तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले श्लोक आदि आपको कंठस्थ हैं। व्यापारिक घटनाएँ, संगीत, चौपाई और कविताएँ आदि कण्ठस्थ होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

मैं अपनी २५ वर्ष की आयु से काम-काज में साथ देने लगा। मेरा स्वभाव रजोगुणी है और मैं बिना भावी परिणाम का समुचित विचार किए बड़े-बड़े कामों का आरम्भ कर दिया करता था, परन्तु मेरे प्रति आपका इतना ज्यादा प्रेम था कि मुझे कभी भी ताड़ना नहीं दी और मेरे किये हुए कामों को आप सम्मान देते थे। सन् १९२८ से आपने काम-काज से सब प्रकार का अवकाश ले लिया था। जब कभी भी आप से सम्मति प्राप्त किये बिना मैंने कोई काम किया उसमें तकलीफ ही पाई। हैदराबाद सिन्ध में जहाँ रेलवे लाईन भी नहीं थी मैंने गुड़ (शक्कर) का एक कारखाना स्थापित करने का निश्चय करके काम शुरू कर दिया। सिन्ध में गन्ना नहीं होता था। मैंने १०००० एकड़ जमीन भी गन्ने की खेती के लिए नहर के किनारे से ली और 'मोहता नगर' नाम से गाँव बसाया। जब आपने यह सुना तो मुझको लिखा कि यह काम विचारपूर्वक नहीं किया गया। इसमें बहुत तकलीफ होगी और अन्त में ऐसा ही हुआ।

सन् १९३० में मैंने कराची में अपने रहने के लिए समुद्र तट पर बड़ा मकान बनवाना शुरू किया, जो बाद में हवाई महल नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुझे उसको बनवाने का इतना शौक था कि मैं बवासीर व अल्सर की बीमारी से पीड़ित तथा अस्वस्थ हालत में भी पास के मकान से इस बनते हुए मकान को देखने और इन्जीनियर को आदेश देने पहुँच जाया करता था, परन्तु पूज्य भाई जी मुझे यही कहा करते थे तुम अपने रहने के लिए जो इतना बड़ा महल बनवा रहे हो यह उचित नहीं है। इसमें तुम्हारा ढेर पैसा बहुत लग जायगा और यह रजोगुणी काम एक दिन दुख का कारण बन जायगा। मैंने उनके उपदेश पर उस मकान की

योजना को कुछ कम कर दिया व बजाय तीन मन्जिल के दो ही मन्जिल बनाकर समाप्त कर दिया। इस 'मोहता पैलेस' को लोगों ने बहुत पसन्द किया। महात्मा गांधी व अन्य बड़े-बड़े नेता, राजा महाराजा आदि गण्यमान्य सज्जन वहाँ पर रहे। परन्तु देश के विभाजन के साथ वह मोहता पैलेस जिसको बनाने में अति परिश्रम किया गया और जिस पर २० लाख रुपया खर्च किया गया था पाकिस्तान में निष्क्रांत जायदाद में चला गया व अब उसमें पाकिस्तान सरकार का विदेश कार्यालय है। अब पूज्य भाई जी के उन दिनों के सदुपदेश व चेतावनी याद आती है।

काम-काज के बारे में आप प्रायः कहा करते थे कि तुम लोगों का गीता में कथित वैश्य के कर्तव्य कर्म में विश्वास नहीं है। लोगों की जरूरत पूरी करते हुए अपने निर्वाह के लिए बहुत थोड़ा लाभ रखना चाहिए; परन्तु यह तो लूट खसोट की जा रही है। एक दूसरे को धप्पड़ मारकर येनकेन प्रकारेण रुपया उपार्जन ही वैश्य अपना कर्तव्य समझते हैं। देश स्वतन्त्र हुआ तो क्या हुआ जब तक तुम वैश्य लोग अपनी सरकार का तन-मन-धन से साथ नहीं दोगे तब तक देश का उत्थान नहीं हो सकता। दस वर्ष पूर्व आपने इस बारे में कई लेख लिखे और पुस्तकें भी प्रकाशित कीं।

"देश के सम्पत्तिवानों के हित का सुझाव" नाम के आपके लेख को पढ़ कर, जिसको गीता का साम्यवाद कहो या नेहरू जी का समाजवाद कहो, एक बहुत बड़े विद्वान व्यापारी ने मुझसे कहा कि आपके भाई *साहब के दिमाग की कील निकल गई दीखती है। अपने आप कौन अपनी धन-सम्पत्ति देश के सुपुर्द करेगा।* अभी १० वर्ष भी नहीं बीते कि वही व्यापारी आज कहते हैं कि श्री रामगोपाल जी ने जो लिखा था वह ठीक था। अगर हम सब लोग मिलकर सरकार का इस दूसरी पंचवर्षीय योजना में साथ दें तो देश सहज में समृद्धिशाली हो सकता है और हम भी एक भारी विपदा से बच सकते हैं। आयन्दा सन्तान हमारी बुद्धिमानी के लिए कृतज्ञ रहेगी, नहीं तो हमारी सन्तान दुखी रहेगी। वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ "एक समत्व योगी" ऐसी दूरदर्शिता की बातें लिख कर सबके सन्मुख उपस्थित करता है। फिर भी यदि व्यापारी लोग व सरकार उनको काम में न लेकर मखौल उड़ावें अथवा उचित ध्यान न दें तो देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

पूज्य भाई जी हर एक वस्तु की गहराई में जाकर उसकी जड़ पकड़ते हैं और उसके बाद अपनी सम्मति देते हैं। किसी भी दोष का उपचार उसके मूल कारण का ख्याल रखते हुए करते हैं। आपका कहना है कि गौण बातों पर शक्ति खर्च मत करो। पत्तों को पानी में सींचना फिजूल है। जड़ में पानी दो तो पत्ते अपने पनप जायेंगे। इसी तरह का व्यवहार आप करते हैं। सबकी भलाई यानि "वसुधैव कुटुम्बकम्" तो आपका मूल मन्त्र है। आपकी सेवा क्षणिक सुखदायी न होकर स्थायी सुख देने वाली होती है। साधारण जनता इसकी अज्ञानता के कारण शुरू में आपकी सेवा का महत्व नहीं समझ सकती जैसा गीता में अध्याय २, श्लोक ६९ में कहा है "या निशा सर्वभूतानाम् तस्यांजागृति संयमी। यस्यां जागृति भूतानि सानिशा पश्यतो मुनेः।" परिणाम स्वरूप जब अज्ञानी लोगों को उनकी सेवाओं से चिरकाल रहने वाला लाभ मिलता है तब उनकी प्रशंसा करते हैं। आपकी दूरदर्शिता के अनेक चमत्कारपूर्ण दृष्टान्त मैं दे सकता हूँ; परन्तु यहाँ एक ही दृष्टान्त देता हूँ।

सन् १९४६ में अगस्त महीने में आपने बीकानेर से कराची पत्र देकर मुझको लिखा कि मुझे पाकिस्तान बनने और पंजाब व सिन्ध में हिन्दुओं पर जल्दी ही विपत्ति आती दीखती है। यह हिंसा मुसलमानों की समझ में आ जायगा और तुम लोगों का वहाँ पर रह सकना मुश्किल ही नहीं किन्तु असम्भव हो जायगा इसलिए तुम लोग अपने कारोबार को अभी से निपटाना शुरू कर दो और वहाँ से शीघ्रातिशीघ्र हटने के लिए तैयार रहने की योजना बना लो। हम लोगों को यह बात ठीक नहीं लगी। मैंने उनको उत्तर में लिखा कि अगर देश का बंटवारा भी हुआ तो यह दोनों ही बहुत तरक्की करेंगे व कुशल व्यापारियों की सबको जरूरत रहेगी अतः हमारा बड़ा कारोबार और जमीन जायदादें यहाँ रहेंगी तो अधिक लाभ होगा। उसका जवाब आया कि हाँ है उन्नति कर

मोहत्ता पैलेस, क्लिफ्टन कराची ।
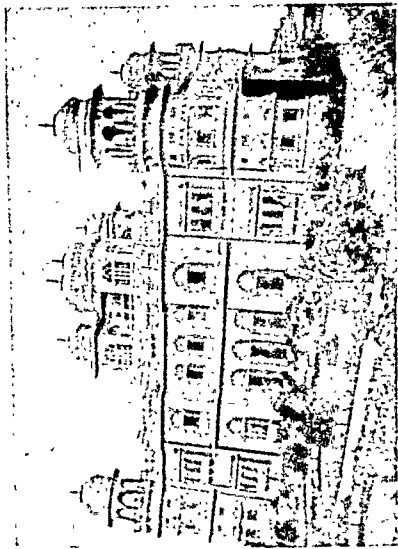
राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में रा० ब० श्री शिवरतन जी मोहता राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और पाकिस्तान के भू० पू० प्रधान मंत्री श्री मोहम्मद अली से मोहता पैलेस कराची के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए।

सकते हैं; परन्तु तुम को वहाँ कोई लाभ न होगा। वह उन्नति हिन्दुओं के लिए नहीं होगी। तुम लोग वहाँ पर रह नही सकोगे और ज्यादा दाशोपंज में न पड़ कर जो मैं लिखता हूँ उस पर ध्यान देकर विचार करो, फिर जैसे तुम्हारी इच्छा। जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ मेरी पूज्य भाई जी के वचनों में बहुत श्रद्धा होने के कारण मैंने १९४६ के नवम्बर से हाथ (कारोबार) पैर सम्हालने शुरू कर दिये। १५ अगस्त १९४७ को जिस दिन देश का बंटवारा हुआ उस दिन जिन्ना साहब से मेरी मुलाकात हुई। उससे मुझे निश्चय हो गया कि यहाँ पर वे हम लोगों को रखना नहीं चाहते और हिन्दुओं पर बड़ी भारी विपत्ति आने की सम्भावना मुझे स्पष्ट दीख पड़ने लगी। तब मैं अपने स्त्री, पुत्रों और भागीदारों श्री चाँदरतन मूंधड़ा आदि की सम्मति के विरुद्ध उसी दिन अर्थात् ता० १६-८-१९४७ को अपने छोटे पोते और पोती को लेकर कराची से रेल में बैठकर बम्बई आ गया। उनको तब भी यह ख्याल था कि ऐसी कोई डरने वाली बात नही है। थोड़े ही दिनों बाद जो हुआ वह सबको मालूम है। मेरे दूसरे रिश्तेदारों को भी अपनी जान बचाने के लिए थोड़े ही दिनों बाद कराची छोड़ कर हवाई जहाज और समुद्री रास्ते से बम्बई आने के लिए बाध्य होना पड़ा। आपकी दूरदर्शिता के कारण हमारे प्राण बचे और कुछ जायदाद भी बच गई।

सन् १९५० के सितम्बर मास में जब कराची की कुछ जायदाद का देहली के मुसलमानों की जायदाद के साथ तबादला करने का सौदा पक्का होने लगा तो मैंने पूज्य भाई जी से आज्ञा माँगी। आपका जवाब आया कि अपनी निजी जायदाद का तबादला करने से पहले जो धरमादे ट्रस्ट हैं (रामगोपाल चैरिटी ट्रस्ट और गोवरधन दास मोहता चैरिटी ट्रस्ट) उनकी जायदाद का तबादला पहले किया जाना चाहिए नहीं तो सौदा पक्का नहीं करना। देहली के मुसलमान इन ट्रस्टों की जायदाद से अपनी जायदाद का तबादला करने को तैयार नहीं थे; परन्तु पूज्य भाई जी को अपनी निजी जायदाद से इन ट्रस्टों की जायदाद की चिन्ता अधिक थी इसलिए निजी जायदाद में कुछ कसर खाकर ट्रस्ट की जायदाद का भी तबादला करने के लिए मुसलमानों को समझा-बुझा कर सौदा किया गया। ट्रस्टीज के कर्तव्य के पालन व धरमादे की रकम की रक्षा करने की आपकी तत्परता से मुझको यह अनुपम अनुभव मिला।

मैं अपनी रजोगुणी प्रकृति के कारण काम-काज में फंसा हुआ रहता था और जब कभी दर्शन करने को बीकानेर आता तो आप यही कहते कि मैं तेरा भाई हूँ और दूसरों के साथ-साथ तेरी भी भलाई का मुझे ख्याल रहता है इसलिए मैं कहता हूँ कि अब भी सचेत हो जा। यह मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसको फिजूल मत खो। अब तो अपने आपका भी विचार कर कि तू कौन है ? अब इस देह और देह से सम्बन्ध रखने वाले सब पदार्थों से आसक्ति छोड़ और रजोगुण के ऊपर उठ, सात्त्विक गुणों को बढ़ा कर अपने रंग में रंग इस संसार रूपी खेल में सबके साथ एकत्व यानि प्रेम रखता हुआ अपनी योग्यता के कर्म कर। जिस तरह कीड़े को भंवर डंक मार कर अपना रूप बना लेता है उस तरह आप मुझको बार-बार मेरा कर्तव्य कर्म याद दिलाते रहते है। मैंने भी दूसरे कामों से आसक्ति हटा कर अब भंवर बनने के कारखाने में काम करना तो शुरू कर दिया है। परन्तु मालूम होता है कि मेरे कर्मों में कोई की कमी रही हुई है शायद इस जन्म में यह कीड़ा भंवर नहीं हो सके अतः मेरी यह शुभ कामना है कि आपकी कृपा छाया हमेशा बनी रहे और भगवान बार-बार मेरे जैसे कीड़ों को तरंग के भाव से उठाकर वास्तविक समुद्र रूप का अनुभव कराते रहें।

शिवरतन मोहता

(मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के अनुज, साहसी व महत्वाकांक्षी प्रमुख उद्योगपति। सच्चाई और ईमानदारी से अपने बड़े भाई का अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील। सरल, भावुक और मिलनसार।)

●

३२

जीवन मुक्त की कोटि

पूज्य रामगोपाल जी मोहता मेरे से १६ वर्ष बड़े हैं। जब मैं ११ वर्ष का था तब उनके खोले हुए पुस्तकालय में पुस्तकें पढ़ने जाया करता था। वह मोहतों के चौक में था। वही बाद में गुण प्रकाशक सज्जनालय के नाम से आज भी कोट गेट के पास बीकानेर में चल रहा है। उनके सार्वजनिक काम तथा सामाजिक सुधार सम्बन्धी बातें तो बहुत हैं।

मेरी जान पहिचान दूर से ही थी। सन् १९१८-१९ में सारे देश में इनफ्लुएंजा बुखार फैला। उस समय मैं बीकानेर में था। उसकी दवाइयाँ भाईजी के यहाँ से बँट रही थीं। मैं भी गाँवों में जाकर उनकी दवाइयाँ बाँटा करता था। तब नजदीक में ज्यादा आना हुआ।

मुझे उन दिनों काम की आवश्यकता थी और मैंने भाई जी से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए? तुरन्त उपयोगी जवाब दिया तथा बीकानेर या कराची में काम देने को कहा; किन्तु मैं कलकत्ता चला आया। यह सब बातें १९१९ या २० की हैं। सन् २२-२३ में भाई जी कलकत्ता आए। भाई जी इस बीच में उत्तमनाथ जी महाराज के सम्पर्क में आ चुके थे और मैं भी उनके सम्पर्क में था इसलिए भाई जी मुझ से ज्यादा स्नेह रखने लग गए थे। जब कलकत्ता आए तो मेरे व्यापार के काम में काफी सहायता देने लगे थे। कुछ समय बाद फिर दुबारा भाई जी कलकत्ता आए तो मुझे सार्वजनिक कार्यों के लिए सहायता देने लगे। सामाजिक सुधार में हम दोनों एक ही विचार के थे इसलिए वे पुत्रवत मुझ से स्नेह रखते थे। आज तक वे मुझे अपने पुत्र के समान ही समझते हैं तथा ज्यादा से ज्यादा स्नेह व विश्वास रखते हैं। व्यवहार के हर काम में भाई जी जैसे नीतिवान हैं वैसे करोड़ों में नहीं मिलेंगे। जब से उत्तमनाथ जी का संसर्ग हुआ तब से वेदान्त का प्रचार व सत्संग बराबर कर रहे हैं। बहुतों को सत्संगी बनाया है। वेदान्त का आपने जो मनन और निदिध्यासन किया है और कर रहे हैं उससे मैं आपको जीवन-मुक्त की कोटि में समझता हूँ।

स्त्रियों की भलाई के लिए अपने लाखों रुपया खर्च किया है। हरिजनों की आप सब प्रकार से सहायता करते हैं मानों हरिजनों के प्राण ही हैं।

बीकानेर में समाज सुधार का काम भाई जी से ही शुरु हुआ। तीन पड़े की कुप्रथा आपके परिवार में पहले पहल आपके ही प्रयत्न से बन्द की गई थी। इससे ब्राह्मण समाज बहुत क्रुद्ध हुआ। क्रोधी समाज ने जो कुछ भी किया वह सब आपने सहन किया। मोहता समाज का श्मशान का आपस का जातिगत झगड़ा बहुत कुछ आदमियों की ईर्ष्या से शुरू हुआ था। अन्त में वर्षों बाद आप इसमें सफल हुए। एक सुधार सम्बन्धी संघर्ष हिन्दुस्तान भर में माहेश्वरी समाज में चला। वह था कोलवार माहेश्वरी विवाह सम्बन्ध का। बड़ा कोहराम मचा। बहुत से विवाह सम्बन्ध टूटे। कमजोर विचार वालों को बहुत कष्ट पहुँचा। आपने इसमें जो हिस्सा लिया वह प्रशंसा के योग्य है। अन्त में सुधारक विचार वालों की ही बात ठीक रही। संघर्ष ५-६ वर्ष चला। जो इनके विचारों के थे उनकी बात रही और संघर्ष करने वालों के साथ जो रहे वे आज भी कलकौम के भागीदार हैं।

विधवा विवाह के भाई जी करीब ५० वर्ष से समर्थक हैं। विधवा विवाह को चालू करने के लिए आपने लाखों रुपया खर्च किया और कर रहे हैं। आपका घर कभी बीकानेर में विधवा आश्रम ही था। हर समय पांच-सात विधवाएँ रहती थीं। फिर आपने एक विधवा आश्रम खोला। समाज सुधार विरोधी लोगों के बहकावे में आकर महाराज गंगासिंह जी के नाराज होने से आपने विरोध स्वरूप बीकानेर में उसको बन्द कर दिया और

जोधपुर में निजी मकान व ट्रस्ट बनाकर उसको चलाया। आप एक दफा कलकत्ता आए तब मैं हिन्दू अबला आश्रम का काम देखता था। आप अबला आश्रम को देखकर बहुत प्रसन्न हुए तथा आपने मेरे कहने पर तिनुआ से सर सेठ हुकमचन्द जी से एक बागान २० बीघा जमीन की आलिशान कोठी सहित खरीद कर आश्रम के लिए दे दिया। यह सन् १९३५-३६ की बात है। आश्रम के सभापति जी ने १६ बीघा जमीन और कोठी, मकान आदि हिन्दू अबला आश्रम चलाने के लिए बंगाल सरकार के सुपुर्द कर दिया। वह इस समय तीन लाख की सम्पत्ति है। सुना है सरकार आश्रम को बन्द कर रही है और वह स्थान किसी दूसरे काम में लाया जायगा। यह काम जिनकी स्मृति में हुआ है उनको स्वर्ग में अच्छा नहीं लगेगा तथा आप भी इसको ठीक समझेंगे इसमें मुझे शंका है। आश्रम को यह बागान दिलाने के बाद जब आप फिर चिरंजीव ब्रजरत्न का विवाह बिड़ला परिवार में करने कलकत्ता आए तब आपको आश्रम की लड़कियों की तरफ से अभिनन्दन पत्र दिया गया। उस समय आपने बहुतों से आश्रम को सहायता दिलवाई। विधवा विवाह के लिए एक ट्रस्ट बना रखा है जिसमें दस हजार रुपया भाई छोटूलाल जी मोहता ने दिया और उतना ही रुपया आपने दिया। ट्रस्ट माहेश्वरी विधवा विवाह करने वालों को जो चाहे एक हजार तक उपहार स्वरूप देता है। स्त्री जाति की उन्नति के लिए आप तन, मन, धन से बराबर सहायता दे रहे हैं।

आप साहित्य, संगीत और कला से भी अच्छा प्रेम रखते हैं तथा दूसरों को इनसे बराबर लाभ पहुंचाते हैं। आप वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली के विरुद्ध हैं और उसके विरुद्ध प्रचार भी करते हैं। आप निरन्तर समाज की भलाई की ही चिन्ता करते रहते हैं और उसकी भलाई करने में वाणी व शरीर से लगे रहते हैं।

आप की चिन्तन शक्ति इतनी तीव्र है कि आप भविष्य की सूझबूझ बराबर रखते हैं और वह अधिकांश में सत्य होती है।

बीकानेर में स्कूल, अस्पताल, धर्मशाला आदि जितने काम आप चला रहे हैं वे सब सामने ही हैं।

लगभग तीस पैंतीस वर्षों से आप अपनी दिनचर्या नियमित तथा रहन-सहन सादा रखते हैं। घर के सब लोगों को सादा जीवन बिताने का उपदेश हर समय देते रहते हैं। विनोबा जी के विचारों से प्रायः सहमत हैं। मेरे तो आप गुरु हैं और गुरु की जितनी प्रशंसा अथवा जितने गुणानुवाद किए जायं या गुणों को बखाना जाय वह थोड़ा है।

बालकृष्ण मोहता

(मोहता जी कट्टर समाज सुधारक और प्रगतिशील विचारों के क्रान्तिकारी हैं। वर्तमान पूंजीवाद, समाज व्यवस्था तथा शासन की रीति-नीति के भी आप कट्टर विरोधी हैं। अपनी धुन के पक्के व लगन के सच्चे हैं। मिशनरी भावना से अपने विचारों का प्रचार करने में निरन्तर लगे रहते हैं। पोस्टर हाथ में ले, गेरुआ कपड़ा पहन स्वयं अपने विचारों के पत्र, विज्ञप्तियां तथा अन्य साहित्य बांटने में आप तनिक भी संकोच अथवा लज्जा अनुभव नहीं करते। अपने पौत्र और पौत्री का विवाह आपने समस्त सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों को तिलांजलि देकर बड़ी सरलता के साथ किया है। आप सादे रहन-सहन और ऊँचे विचार के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। आपका सारा परिवार पत्नी, पुत्र, पुत्र वधू, पौत्र तथा अन्य परिजन आपके क्रान्तिकारी विचारों में पूरी तरह रंगे हुए हैं। समाज सुधारक की दृष्टि से आपके परिवार को आदर्श कहा जा सकता है। बीकानेर राज्य में आपकी विरोधी सामाजिक एवं विचार क्रान्ति पैदा करने वाली प्रवृत्तियों को भी कभी पसन्द नहीं किया गया था।)

३३

श्रद्धा के दो पुष्प

सम्माननीय वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के अभिनन्दनार्थ जो अभिनन्दन समिति स्थापित हुई है उसके पुनीत कार्य में सहयोग देकर श्री मोहता जी के सेवा में "श्रद्धा के दो पुष्प" मैं भी भेंट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मैं तो श्री मोहता जी को अपने बचपन से ही जानता हूँ; किन्तु वे मुझे तब से जानते हैं जब कि मैं उनके निकट सम्पर्क में आया। इस परिचय की अवधि भी ३५ साल से कम नहीं है।

मैंने श्री मोहता जी को जितना निकट से देखने का प्रयत्न किया है उनमें उतनी ही विशेषताएँ पाईं। उनकी विचारशक्ति साधारण समझदार मनुष्य से चौथाई सदी आगे चलती है। वे अपनी दूरदर्शिता से जो जो बातें आज कहते व करते हैं, वे रूढ़िवादी समाज को आज अप्रिय लगती हैं किन्तु देखा है कि वे ही बातें उसी समाज का समय पाकर समर्थन प्राप्त कर लेती हैं।

मानव मात्र में कुछ न कुछ कमी होनी सम्भव है और यदि कोई श्री मोहता जी में केवल कमी की ही खोज करेगा तो उसका मिलना असम्भव नहीं। सर्वथा निर्दोष और निर्विकार तो ईश्वर ही है, मानव नहीं। यदि तुलनात्मक दृष्टि से विशेषताओं और त्रुटियों को तराजू के दो पल्लों पर रख तोला जायगा तो मुझे विश्वास है कि श्री मोहता जी की विशेषताओं का पल्ला दूसरे पल्ले से इतना अधिक भारी होगा कि उसके मुकाबले हजारों में भी किसी एक व्यक्ति का मिलना कठिन होगा। अतएव श्री मोहता जी हमारी परम श्रद्धा के पात्र हैं और आज उनके अभिनन्दन में अपनी श्रद्धा अर्पण करने का सुअवसर प्राप्त होना हमारे लिए परम सौभाग्य की बात है।

श्री मोहता जी के जीवन में समाज सुधार प्रधान लक्ष्य रहा है। आपने साहित्य रचना की। गीता पर आपका गहरा अध्ययन है। गीता की व्यावहारिकता पर आपने पुस्तकें लिखीं, भाषण दिये। आप ने अनेक ग्रन्थ भी लिखे, कई पदों की रचनायें की और गायन बनाये। यदि गौर से देखा जाय तो इन सबकी बुनियाद में सामाजिक क्रान्ति मिलेगी। अतएव आप मेरी दृष्टि में बड़े से बड़े समाज सुधारकों में एक हैं। साहित्य के क्षेत्र में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचनायें आप करते हैं और विचार इतने मंजे हुए हैं कि आपको लिखने में न तो विलम्ब होता है और न अधिक श्रम।

एक दफे की बात है कि मैंने अपने पुत्र के विवाह में सामाजिक गीत सुधार के लिए आपसे अनुरोध किया। मैंने कहा कि विवाह में समधी को जो सीठने गाये जाते हैं उन के भाव बहुत भद्दे होते हैं। आप इनमें परिवर्तन कर स्वागत योग्य सुन्दर शब्द भर दें तो बड़ी कृपा हो और अपने पुत्र के विवाह में इन्हें गवाऊँ। बस कहने की देरी थी कि आपने दूसरे ही दिन सीठनों के स्थान पर स्वागत के सुन्दर शब्द भर दिये। मैंने अपने यहाँ उनका प्रयोग किया और लोगों ने उनको बहुत पसन्द किया। बीकानेरी भाषा के चालू गानों को यदि सुन्दर रूप में बदल कर चलाया जाय तो श्री मोहता जी से काफी मदद मिल सकती है। यह केवल सामाजिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक सुधार भी है जिसका बड़ा भारी महत्व है।

आपकी सार्वजनिक सेवायें भी बहुत महत्व रखती हैं। आपकी मुख्यरूपा से बीकानेर में "गुण प्रकाशक सज्जनालय" स्थापित हुआ जिसमें आपने काफी भाग लिया। तब से अब तक न जाने कितनी संस्थाओं से आपका निकट सम्पर्क रहा। आपकी सभी पारमार्थिक संस्थाओं में आपका मुख्य भाग रहा। बीकानेर में शिवरतन मोहता

धर्मशाला, मोहता औषधालय, मोहता रसायनशाला, मोहता मूलचन्द विद्यालय, संस्कृत पाठशाला, संगीतालय, वनिता आश्रम महिला मंडल आदि अनेक ऐसी संस्थायें हैं।

आपको संगीत का बड़ा शौक है। डांडिया नृत्य और डांडिया गायन बीकानेर का प्रसिद्ध मनोरंजन हैं जिसमें आपका मुख्य भाग रहा है। राजा मानसिंह जी की सामाजिक क्रान्ति मूलक वाणी आप गाया करते हैं, उनका प्रचार करते हैं और उनमें भरी हुई समाज सुधार की भावनाओं को रागों से पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। आपने अबला, विधवा, और हरिजन सेवा में सक्रिय भाग उस समय से आज तक लिया जिस समय समाज में इसका तीव्र विरोध था।

आप अपने विचारों को मन ही मन सड़ने नहीं देते। उन्हें निधड़क होकर प्रगट करते हैं, प्रचार करते हैं, और स्वयं अपनाते भी हैं। अकाल के समय आप अकाल पीड़ितों की सेवा केवल अन्न वस्त्र से ही नहीं करते; किन्तु उन्हें स्वावलम्बी बनाने के लिए आवश्यक साधन भी जुटाते हैं।

अनाथ, असहाय, विधवाओं को घर बैठे गुप्त सहायता भी आपके द्वारा बड़ी मात्रा में पहुँचाई जाती है। इसका लेखा जोखा तो आप के सिवाय और कोई नहीं जानता।

आप अखिल भारतीय माहेश्वरी महा सभा के पंढरपुर अधिवेशन के सभापति उस समय बने जिस समय समाज में बोलवार आन्दोलन ने विकट रूप धारण किया हुआ था। विचार स्वतंत्रता को दबोचा जा रहा था, और महासभा के प्रति विषाक्त वातावरण जोरों पर था। बोलवार आन्दोलन में भी आपने बहुत बड़ा भाग लिया। विचार स्वातंत्र्य की मर्यादा की रक्षा की। साथ ही आपने अपने विचारों के साथियों के विपरीत दूसरे विचार वालों के पक्ष में कभी कभी ऐसे कठिन निर्णय भी दिये जिसे आपकी न्याय प्रियता की चरम सीमा ही कहा जाना चाहिए।

बोलवार आन्दोलन के भयंकर दिनों के मध्य की बात है। श्री कृष्ण लाल जी पिरानी का विवाह श्री रामेश्वरदास जी बिड़ला की पुत्री से देहली में होने वाला था और दोहू माहेश्वरी संघ ने उसमें सहयोग देने का निर्णय लिया। इस पर बीकानेर में संघ वालों की बैठक हुई और उसमें मतभेद पैदा हो गया। फलतः संघ के बिगड़ने की नौबत पैदा हो गई। आप धर्मशाला में बीमार थे। बीकानेर में संघ के प्रधान नेता स्वर्गीय श्री रामरतन जी बागड़ी ने दोनों दलों को इस शर्त पर राजी कर लिया कि श्री रामगोपाल जी मोहता के हाथ में अन्तिम निर्णय छोड़ दिया जाय और उनका जो भी निर्णय हो वह सबको मान्य हो। इस लोग जो विवाह में जाना चाहते थे वे राजी हो गये और न जाने विरोधी विचार वालों को श्री बागड़ी जी ने कैसे राजी कर लिया और आखिर श्री मोहता जी ने श्री बागड़ी जी से परामर्श करने के बाद निर्णय दिया कि संघ के सभी सदस्य स्वतंत्र हैं और जिनकी इच्छा हो वे जावें और जिनकी इच्छा न हो न जावें। साथ ही यह भी निर्णय दे डाला कि जो लोग जावेंगे उनके साथ संघ के दूसरे लोग सामाजिक व्यवहार रखें या न रखें इसके लिए भी सबको स्वतन्त्रता है।

इस निर्णय से मजबूत दिल वालों के भी दिल हिल गये कि एक ओर पंचायत वालों से हमारा सम्बन्ध टूट चुका है और दूसरी ओर संघ वालों के साथ भी सम्बन्ध संदिग्ध हो जाता है। ऐसी स्थिति में हमारे लड़के लड़कियों के सम्बन्ध में कितनी कठिनाई पैदा होगी। सभी बड़ी असमंजस स्थिति में पड़ गए। निर्णय मान्य हुआ और मजबूत दिल वाले भविष्य को भगवान के भरोसे छोड़कर दिल्ली की शादी पर तैयार हो गये और आखिर भगवान की कृपा से वे सफल हो गए। फलतः आज विचार स्वातंत्र्य ही क्या, व्यवहार स्वातंत्र्य भी सुलभ है और प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्ति स्वातंत्र्य मिल गया है। न समाज की कहीं रुकावट है और न सामाजिक बहिष्कार नाम की कोई चीज बची है। सामाजिक बहिष्कार के कलंक का भी अन्तिम संस्कार यहीं हुआ।

राजनैतिक और व्यापारिक क्षेत्र में भी आप की योग्यता बहुत ऊँची है। बीकानेर के म्युनिसिपल बो०

शार्दूल सिंह जी अपने राजकाज में आपसे परामर्श लिया करते थे और भारत के विभाजन के समय करांची के अपने व्यापार को समेट कर भारत में ले आने में आप ही के कारण आपका फर्म सफल रहा। अपनी दूरदर्शिता से आपने अपने को खूब संभाला और बड़े मंदा में आप बहुत बड़ी हानि से बच गये। आपका प्रत्येक भागीदार मुनीम, गुमाश्ता सब ही का आप पर पूरा भरोसा रहता है और वार्षिक आंकड़ों के जमा खर्च आपके द्वारा जो भी करा दिए जाते हैं वे सभी को सहर्ष मान्य होते हैं। आप के व्यक्तित्व पर सभी को एक सा भरोसा और विश्वास रहता है।

आपने समाज को, खासकर महिला समाज को अपनी दोहित्री श्रीमती रतनबाई दम्माणी के रूप में ऐसी देन दी है जिस पर समाज को गौरव है। श्रीमती रतनबाई दम्माणी आप ही के द्वारा तैयार की गयी समाज सेवा की एक जीती जागती संस्था है। जिनसे समाज चाहे तो अपने महिला समाज की प्रगति के लिए यथेष्ट सेवा ले सकता है। रतनबाई को मैंने बाल काल से देखा है, उसके प्रति अत्यन्त आदर के भाव के साथ साथ वात्सल्य का भाव भी मेरे हृदय में विद्यमान है। अतः उसको हार्दिक आशीर्वाद दूं तो भी अनुचित नहीं। उसकी विचारधारा पर श्री मोहता जी के विचारों की छाप है और कार्यशैली, वक्तृत्व शैली, सभा संचालन क्षमता, किसी योग्य से योग्य महिला में भी वैसी मिलनी दुर्लभ है। मैं यह चाहता हूँ कि यह देवी और आगे बढ़े। अपने और श्री मोहता जी के नाम की शोभा में चार चांद लगाये। इस अवसर पर मुझे मोहता परिवार के कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों का भी सहज में स्मरण हो आता है। उनमें रायबहादुर सेठ मदन गोपाल जी मोहता और स्वनामधन्य सेठ रामकिशन जी मोहता मुख्य हैं। सामाजिक मामलों में सेठ मदन गोपाल जी मोहता ने समय-समय पर बड़े साहस का परिचय दिया। बोलवार आन्दोलन के दिनों में उन्होंने विशेष साहस का परिचय दिया। स्वर्गीय सेठ रामकिशन जी मोहता भी वैसे ही साहसी, परन्तु उदारचेता, गम्भीर और समाज सेवी विशिष्ट व्यक्तित्व रखने वाले थे। १६२० में महात्मा गांधी के कलकत्ता आने पर वे उनकी पहली सभा में सभापति हुए थे, जिसमें उन्होंने कांग्रेस की तिलक स्वराज्य निधि में स्वेच्छा से २५ हजार की धनराशि प्रदान की थी और आग्रह करने पर उसको दुगना यानी ५० हजार कर दिया था। कलकत्ता से दी गई यह सबसे बड़ी धनराशि थी। वे इसी प्रकार कांग्रेस को और व्यक्तिगत रूप से देश सेवकों और क्रान्तिकारियों को भी मुक्त हस्त से सहायता देते रहते थे। वर्षों वे अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के प्रधान मंत्री रहे, केवल २३ वर्ष की आयु में उसके इन्दौर अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए और बोलवार प्रकरण में उन्होंने असीम साहस से महासभा का साथ दिया और बोलवार जाँच कमीशन के सदस्य के रूप में काम किया। लाखों रुपया उन्होंने देश सेवा और समाज सेवा के लिए खर्च किया होगा। वे अत्यन्त सरल, मिलनसार और सात्विक वृत्ति के थे।

अपने महान नेता, सच्चे समाज सेवी, दानवीर यशोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के अस्सी वर्ष के सफल जीवन पर अपनी श्रद्धा के दो पुष्प सादर भेंट करता हुआ उनके दीर्घ जीवन की मंगल कामना भगवान से करता हूँ।

बृजवल्लभदास मूंदड़ा

(श्री मूंदड़ा जी पुराने समाज सेवी और सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं। अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के संचालन में आपका प्रमुख हाथ रहा है। कलकत्ता में माहेश्वरी समाज की सार्वजनिक प्रवृत्तियों में आप प्रमुख भाग लेते रहे हैं। बोलवार आन्दोलन में विचार स्वातंत्र्य के लिए आपने डीडू माहेश्वरी संघ की स्थापना करके जो कार्य किया उसको कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। संघ के प्रधान मंत्री के पद पर रहकर आपने सराहनीय सेवा की और डीडू माहेश्वरी महा पंचायत के केन्द्र स्थान कलकत्ता में उसके तीव्रतम विरोध को

आपने बड़े धैर्य एवं साहस से सहन किया। उन दिनों में समाज की नैतिकता को बनाए रखने वालों जिनको श्रेय है उनमें आपका मुख्य स्थान है। माहेश्वरी महासभा के आपने प्रधानमंत्री के कार्य को निभाया और उसके अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। इस समय आप कलकत्ता और रंगून में टिम्बर मर्चेन्ट का काम कर रहे हैं।)

●

३४

सच्चे कर्मयोगी

श्रद्धेय मोहता जी को बहुत समीप से देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। वे कुशल व्यापारी होते हुए भी सच्चे कर्मयोगी हैं। उनकी सादगी सराहनीय है। उनमें दयालुता और दृढ़ता का बड़ा सुन्दर समन्वय है। श्रीमद्भागवत गीता का उनका अध्ययन और मनन बहुत गहरा और गम्भीर है। उनके गीता के व्यावहारिक दर्शन से कितने ही प्राणियों ने अनुपम लाभ उठाया है। मुझे भी उनके कितने ही प्रवचन सुनने का लाभ मिला है।

मैं उस आनन्द को जीवन भर भूल नहीं सकता, जो उनकी भजन मंडली अथवा सत्संग में सम्मिलित होने पर मुझे प्राप्त हुआ। वे छोटे बड़े और गरीब-अमीर आदि का सब भेदभाव भुलाकर सबके साथ मिलकर जिस समभाव से गीत व भजन गाते हैं वे दृश्य मेरी आँखों के सामने सदा बने रहते हैं और मैं सदा उनकी सराहना करता रहता हूँ। होली पर भी वे डांडिया खेल में सब के साथ बिना किसी भेदभाव के शामिल होते हैं। तब योगेश्वर श्रीकृष्ण की बालगोपाल लीला का एक सुन्दर और पवित्र दृश्य उपस्थित हो जाता है।

समाज सुधार के क्षेत्र में मोहता जी सदा ही अग्रसर रहे हैं और कड़ी-से-कड़ी कटु आलोचना की भी परवाह न कर पूरे साहस से अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ़ रहे हैं। किसी भी प्रकार की निन्दा या विरोध उनको विचलित नहीं कर सकता। उनका दान भी अद्भुत है। कितने ही लोकोपकारी कार्य उन्होंने प्रारम्भ किये और लाखों रुपया लगाकर उनको जारी रखा।

गीता के उपदेशों को मोहता जी ने अपने जीवन में उतारने का पूरा प्रयत्न किया है। इसी कारण उनका व्यावहारिक ज्ञान बड़ा प्रखर है और उनसे सलाह करने व परामर्श लेने में बड़ा संतोष व प्रोत्साहन मिलता है और अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।

रामप्रसाद गंदेरवाल

(मोहता जी के कराची के पुराने साथी और कराची व्यापारी।)

●

३५

मोहता जी का जीवन दर्शन

पूज्य रामगोपाल जी मोहता से मेरा प्रथम साक्षात् दिसम्बर १९४१ में हुआ था; परन्तु कई वर्षों के बाद उनका पूरा परिचय मिल सका है। उनसे मिलने से पहले भी उनके विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों से जो कुछ परिचय प्राप्त हुआ था उससे श्रद्धेय मोहता जी जैसे मनस्वी को पूर्णतया जाना नहीं जा सकता था। कुछ लोग कहते थे कि आप एक साम्यवादी धर्म-भ्रष्ट आदमी हैं और कुछ लोग कहते थे कि आप एक विचारशील मननशील, वेदान्तवादी हैं। इस प्रकार परस्पर सर्वथा विपरीत कथनों से उनके बारे में न कुछ मैं जान सकता था और न जानने का कोई विशेष आग्रह ही था; परन्तु भाग्यचक्र से जब मैं उनके निकट सम्पर्क में आ गया तो मैंने प्रथम साक्षात् से ही यह अनुभव किया कि जन-श्रुति केवल ज्ञानहीन तथा विकृत मस्तिष्क की उत्तेजना मात्र थी। *मैंने देखा कि श्रद्धेय मोहता जी साम्यवादी तो थे परन्तु जीवन के हर एक पहलू में उत्कृष्ट एवं पवित्र थे।* उनका साम्यवाद समत्वबोध का एक सुन्दर, उज्ज्वल और पवित्र रूप है। इस में न तो कोई विकृत बुद्धि की सम्भावना है न पाशविकता या निष्ठुरता का कोई आभास है। *यह एक प्रकार का मानव का स्वाभाविक धर्म है जिसे* अविमूढ़ एवं निर्मल-चित्त स्वतः ग्रहण करता है और आनुष्ठानिक धर्म के मायाजाल से अपने को मुक्त कर सहज सत्य की ओर बढ़ता जाता है। उनका साम्यवाद एक प्रकार का उच्च कोटि का सत्यदर्शन है। उनका जीवन इस सत्यदर्शन से ओतप्रोत है। यह कभी क्रान्ति के रूप में, कभी समाज-सुधार के रूप में, कभी शिक्षा-प्रचार या सत्य-प्रचार के रूप में प्रकट होता है। साम्यवाद के विस्फुरण से जो परिचित हैं लेकिन पूज्य मोहता जी के समत्व भेद से जो अपरिचित हैं वैसे मनुष्य इस प्रकार के क्रान्तिकारी सत्य-दर्शन को भ्रान्ति से साम्यवाद समझते हैं। वास्तव में यह उनकी निर्मल बुद्धि का एक सफल प्रयास है।

मानव अनुभव ज्ञान, भक्ति एवं कर्म इन तीनों से प्राप्त किया जाता है और ये तीन तत्व अनुभव रूपी त्रिभुज के तीन कोण हैं। इसलिए तीनों एक दूसरे के आधार पर अवलम्बित हैं। आज के समाज में हम प्रायः यह देखते हैं कि मनुष्यों का ज्ञान उनके कर्म तथा श्रद्धा (भक्ति) से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। इसी प्रकार मनुष्यों का कर्म ज्ञान एवं भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। इससे संसार में अन्ध-विश्वास तथा अन्ध श्रद्धा का जन्म हुआ है और इस अन्ध-विश्वास के फलस्वरूप समाज में विभिन्न कुरीतियाँ, व्यभिचार, अन्याय तथा पाशविकता धर्मानुष्ठान के नाम से प्रचलित होकर समाज-जीवन को दूषित, कलंकित एवं दुःखमय बनाते हैं। पूज्य मोहता जी ने इस विषय का यथार्थ अनुशीलन किया है और जरजरित समाज-जीवन को निष्कलंक, निर्दोष एवं निर्मल बनाने की प्रवृत्ति से उन्होंने समत्व-बोध को जीवन के हर पहलू में लागू किया है। मैं उनका उद्योग, व्यापार व व्यवसाय के क्षेत्र में समत्व-बोध का व्यावहारिक रूप क्या बना है यह नहीं जान सका; परन्तु शिक्षा एवं समाज-सुधार के क्षेत्र में उनका जो अमूल्यदान है उससे परिचित हूं। शिक्षा-क्षेत्र में आप एक ऐसा परिवर्तन ले आये हैं जिसके फलस्वरूप आज बीकानेर शहर का एक निर्दोष, अशिक्षित एवं स्थूल बुद्धि सम्पन्न समाज वर्षों की मोह-निद्रा तथा अज्ञानान्धकार से जाग्रत और मुक्त होकर आत्मा के स्वाधीन, सरल एवं आनन्दमय मार्ग पर आ गया है। इसका ज्वाजल्यमान प्रमाण 'मोहता मूलचन्द विद्यालय' है जहाँ के विद्यार्थी आज राजस्थान सरकार के विभिन्न विभागों में उच्च पदों पर आसीन हैं और आज से तीस वर्ष पूर्व की क्रान्ति का सुफल प्राप्त कर रहे हैं। इसी विद्यालय से ही बीकानेर राज्य के सर्व प्रथम हरिजन छात्र ने ज्ञानयोग प्राप्त किया है और अपने तथा अपने समाज के जीवन को सुसंस्कृत बनाने में लगा हुआ है। बीकानेर राज्य के कर्मचारी

असंस्कृत, निरक्षर सम्प्रदायों को पूज्य मोहता जी ने शिक्षित एवं सुसंस्कृत बनाकर उनके जीवन को सार्थक बनाया है। देश विभाजन की उलझन में जब सहस्र आर्त नर-नारी बीकानेर राज्य में आश्रय प्राप्त करने की क्षीण आशा लेकर आये थे उस समय पूज्य मोहता जी ने उनका हृदय से स्वागत कर उनको अपनी हवेलियों में बसाया एवं उनकी पेट पूर्ति के लिए अपने धनकोष का द्वार खोल दिया था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूज्य मोहता जी के साम्यवाद में धन लोभ, यशोलिप्सा एवं स्वार्थ की भावना नहीं है बल्कि यह एक विशुद्ध-बुद्धि का प्रकाश है जो कि उनके विभिन्न क्रान्तिकारी कार्यों में उत्तरोत्तर देदीप्यमान होकर समाज जीवन को आलोकित करता जा रहा है। इसमें शोषण व हृदय-हीनता का कोई चिह्न नहीं है। ज्ञान, भक्ति एवं धर्म का यह एक सुन्दर समन्वय है जो कि श्रद्धेय मोहता जी के भिन्न-भिन्न कर्मों से स्पष्ट प्रतीत होता है।

पूज्य मोहता जी सम्पर्क में आकर और उनके सत्य-दीप्त, कर्म-सुन्दर और ज्ञान-निर्भूत उज्ज्वल चरित्र के मधुर सान्निध्य में मैंने यह अनुभव किया कि जो भक्ति या श्रद्धा या अनुराग मंगल-ज्ञान-प्रसूत नहीं है वह भक्तिधारा जीवन-मरुस्थल में शुष्क एवं लुप्त हो जाती है यानि वह भक्ति या श्रद्धा अथवा अनुराग जीवन को सुस्निग्ध, सफल, पल्लवित तथा पुष्पित नहीं कर सकती है। वह केवल सन्त-जीवन पर एक सन्नाटा पैदा करके हृदय को एवं मस्तिष्क को आप्लावित करती है जिससे मनुष्य एक अलीक कल्पना राज्य में रह जाता है एवं जीवन की सार्थकता को उपलब्ध नहीं कर पाता है। मैंने उनसे यह शिक्षा भी ली है कि जो धर्म के पश्चात् मन की स्वाभाविक रुचि या वृत्ति नहीं है उस धर्म से जीवन को मधुमय तथा सरस बनाया नहीं जा सकता है। यद्यपि उनकी विचारधारा मेरे लिए पूर्णतः बोध-गम्य नहीं है; परन्तु उस प्राणमयी समुज्ज्वल धारा-प्रवाह के किनारे पर बैठकर मैं अपने जीवन को यथेष्टमात्रा में स्निग्ध, सरस, तथा सार्थक बनाने में समर्थ हुआ हूँ। उनकी स्मृति में मैं जीवन के अन्तिम दिवस तक श्रद्धांजलि अर्पित करता रहूँगा एवं उनकी इस इक्यासिवीं वर्ष-गाँठ पर विशेष रूप से श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हूँ। सहृदय पाठक इस श्रद्धा के मूल उत्स को पूर्ण रूप से समझ कर अपने जीवन को इसी प्रकार सफल एवं सरस बनायेंगे यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है। मनस्वी रामगोपाल जी मोहता एक नीरस, बुद्धि-मार्गी न्यूटन या एक निष्क्रिय अथवा वेदान्तिक या एक हृदयहीन, प्रेमहीन कर्मयोगी नहीं कहे जा सकते हैं, परन्तु ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का जो उत्कृष्ट अंश है उससे उनका जीवन अभिषिक्त एवं उद्दीप्त होकर हमारे सामने प्रस्फुटित पुष्प की भांति शोभायमान है। इसे देखकर हमें आनन्द प्राप्त होता है। इसकी सुगन्धि से हम मोहित होते हैं और इसके कोमल स्पर्श से हम विमल आनन्द प्राप्त करते हैं। शरद्-पूर्णिमा की रात्रि में पूज्य मोहता जी को जिसने सदानन्द उत्सव मनाते हुए देखा उसने अवश्य ही इस बात को जान लिया होगा कि जीवन में स्वाभाविक आनन्द की एक विशेष आवश्यकता है। इस आनन्द को प्राप्त करना ही जीवन का परम तथा चरम उद्देश्य है और इसी आनन्द को हम जीवन-देवता कह सकते हैं। इसी आनन्द के अनुभव से हमें वास्तविक अनुभूति प्राप्त होती है एवं ऐसे आनन्द के प्रवाह से ही हमारी चित्त-वृत्ति जागृत होकर जीवन को नई शक्ति से परिप्लावित करती है। इस दृष्टि से आनन्द ही है जीवन का ध्येय तथा साध्य परन्तु इसे केवल भौतिक आनन्द ही नहीं समझना चाहिए, इसे साम्यवाद का उत्कट आनन्द नहीं समझना चाहिये, इसे विलासिता का दूषित आनन्द नहीं समझना चाहिये, बल्कि इसे मंगल-बोध के निर्मल आनन्द के रूप में हृदयंगम करना चाहिये। इस आनन्द में मोह नहीं है, मादकता का चमत्कार नहीं है, स्वार्थ की नीच भावना या हिंसा की हृदयहीनता नहीं है। यह आनन्द मंगलमय है और इसकी प्राप्ति से मनुष्य जीवन सफल होता है तथा जन्म सार्थक होता है। हमारे समाज के आधुनिक दुराचारों से जो बीभत्स आनन्द परिलक्षित होता है उससे समाज आज उच्छृंखल, कलुषित व विषाक्त हो गया है। ऐसे समाज को आनन्द बतलाता है जीवन का सत्य और वह है "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"। मैं जानता हूँ कि समाज के पुरुषों के सिद्धान्त [illegible] के बाद साधारण लोगों को अविश्वसनीय होते हैं, परन्तु यह [illegible]

सब को विदित है कि सिद्धान्त को जीवन में नहीं अपनाने से वह परित्यक्त स्वर्ण-खण्ड की तरह दीप्ति-हीन हो जाता है और उसके प्रकाश से जीवन का कोई भी क्षेत्र आलोकित नहीं हो पाता है। अतः इस अभिनन्दन-ग्रन्थ के द्वारा समाज-जीवन में पूज्य मोहता जी का सिद्धान्त चिरकाल के लिए समुज्ज्वल रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

श्री माणिकचन्द्र भट्टाचार्य

(आप एम० ए०, बी० एस० और बी० टी० हैं। पहले मोहता मूलचन्द हाई स्कूल के मुख्याध्यापक थे और अब श्री गंगा नगर में इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स हैं।)

•

३६

समदर्शी मोहता जी

श्रीमद्भगवत गीता को समझने के लिए लोकमान्य तिलक ने हमें एक नई दिशा दी। वह थी कर्म-योग की। मोहता जी ने भी गीता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। जिसमें समत्वयोग का मार्ग प्रशस्त रूप में दिखाया गया है। मोहता जी बहुत अंशों में तिलक को आदर्श मानते हैं।

विशिष्ट व्यक्तियों में अनेक विशेषतायें होती हैं। उनकी प्राप्ति उन्हीं लोगों को होती है जिनकी उनमें रुचि होती है। श्री रामगोपाल जी मोहता में अनेक विशेषतायें हैं; किन्तु मेरा ध्यान उनकी ओर तब आकर्षित हुआ जब "चांद" के मारवाड़ी अंक के प्रकाशन के अवसर पर लोगों ने विरोधी आन्दोलन खड़ा किया। तब से मैं बराबर उनकी विचारधारा और कार्यकलाप की ओर ध्यान देता रहा हूँ। स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिला और दलित लोगों को सवर्णों के समान स्तर पर लाने के उनके हार्दिक प्रयत्नों में मैंने उनके समदर्शी रूप के दर्शन किये हैं। जब वे अपनी घोड़ा गाड़ी (टमटम) पर बैठकर नित्य सायंकाल गंगाशहर की हरिजन बस्ती में हरिजनों के कथा कीर्तन में शामिल होने जाते थे तब कट्टरपंथी हिन्दू गलियों में दीवारों पर "मोहता भंगी है" सरीखे शब्द लिखकर अपनी आत्मतुष्टि करते थे; किन्तु हर्ष व शोक अथवा निन्दा और स्तुति में समभाव रखने वाले मोहता जी पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। अपितु उन्होंने उसी गति से अपने कर्तव्य कर्म को जारी रखा।

स्त्रियों अथवा हरिजनों में वे आत्मा का वही पवित्र रूप देखते हैं जोकि ब्राह्मण आदि द्विज कहलाने वाले लोगों में है। वे सम्पत्ति के मोह में फंसे हुए नहीं हैं। वे अपनी सम्पत्ति को कौड़ी नाली में नहीं फेंक देते, किन्तु जहां जन हित का कार्य होते देखते हैं वहां बिना मांगे ही सम्पत्ति दान करते हैं। मरुभूमि की बैसिक शिक्षा योजना में उन्होंने स्वयं बुलाकर मुझे इक्यावन सौ रुपये की सहायता प्रदान की। कोलायत का बना हुआ मकान उन्होंने हरिजन सेवा कार्य के लिए दे रखा है। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि श्री रामगोपाल जी मोहता धर्म में निष्ठा रखने वाले विवेकशील, निस्पृह और समदर्शी पुरुष हैं। योगियों में प्रायः इसी प्रकार के लक्षण होते हैं।
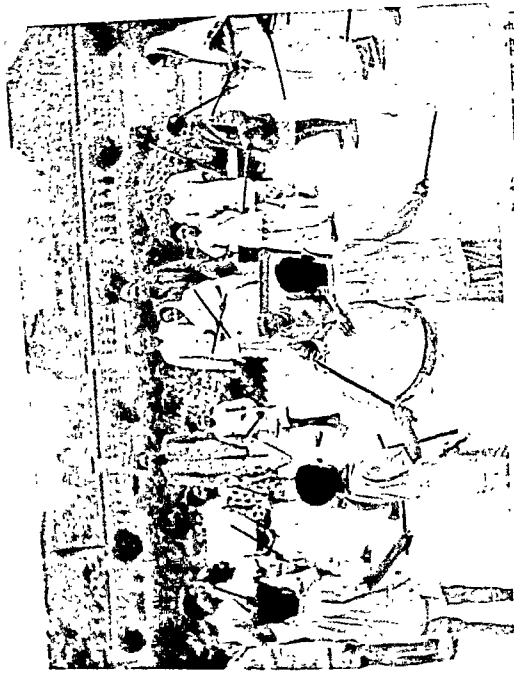
हरिजन बालकों को डांडियों का खेल सिखाते हुए श्री मोहता जी मध्य में बैठे हुए नगाड़ा बजा रहे है।
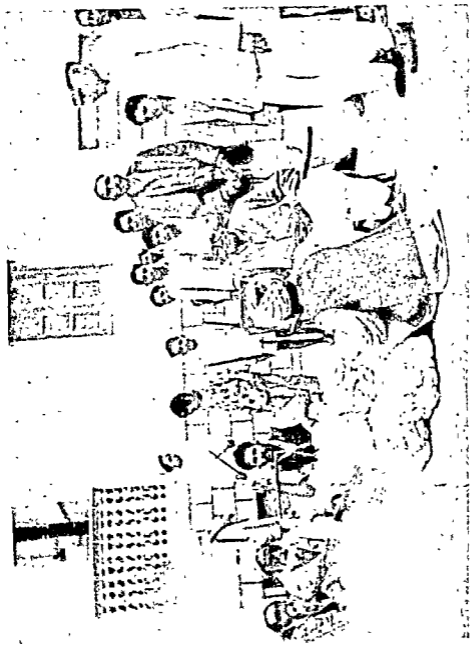
अकाल पीड़ितों को कपड़ा बुनने के लिए सूत प्रदान करते हुए मोहता जी व पन्नालाल जी बारुपाल, एम० पी०

अतः यह उचित ही है कि उनके सम्मान में 'आदर्श समत्व योगी' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

केशवानन्द

(आप अपने वंशानुगत मठ का परित्याग कर कर्मठ सन्यासी बन गए हैं और शिक्षा प्रसार के महत्वपूर्ण कार्य के लिए आपने अपने को न्यौछावर कर दिया। पाकिस्तान की एक सीमा अबोहर में आप द्वारा संस्थापित "हिन्दी पुस्तकालय" पंजाब की अपने ढंग की एक ही संस्था है। उसकी दूसरी सीमा संगरिया में आपने बालकों और बालिकाओं की जिन शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की है वे भी अपने ढंग की अनोखी हैं। राजस्थान शिक्षा की दृष्टि से भी एक मरुस्थल है। मरुस्थलमें हरयावल के दुर्लभ स्थानों की तरह संगरिया का शिक्षा केन्द्र एक बड़ा आकर्षण बन गया है जो कि स्वामी जी की ठोस सार्वजनिक सेवा की जीती जागती निशानी है। स्वामी जी इन दिनों में संसद की राज्य सभा के सदस्य हैं।)

●

३७

"बाबा"—एक आदर्श पुरुष

सेठ रामगोपाल जी मोहता दृढ़प्रतिज्ञ, निर्भीक, धुन एवं निश्चय के पक्के, विचारक, दानवीर, रूढ़ियों के विरोधी और दृढ़ समाज सुधारक हैं। हरिजनोद्धार, दीनहीन पीड़ितों की सहायता, समाज द्वारा पीड़ित अबलाओं एवं विधवाओं के कल्याण के लिए उन्होंने जो निःस्वार्थ कार्य किया व कर रहे हैं, उसकी गणना शब्दों में नहीं की जा सकती। उसका अनुमान तो समाज से पीड़ित महिलाओं तथा देहातों में फैले लाखों हरिजनों के हृदयों को टटोलने से स्वतः हो जायगा। बीकानेर के इलाके में हरिजनों के लिए उन्होंने कुण्ड बनवाए, तालाबों की खुदाई हेतु दान दिए, सहायता देकर स्कूल चालू कराये और बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया, उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए विद्यार्थियों की सहायता की, मेलों में व सत्संग में अस्पृश्यता की निर्मूलता का तात्विक विवेचन किया, हरिजन मोहल्लों में जाकर उनको संभाला, कार्यकर्ता तैयार किए और उन्हें बराबर मार्ग पर आगे बढ़ाते रहे। सार्वजनिक स्थानों में हरिजनों का प्रवेश कराया, अकाल पड़ने व बीमारी फैलने पर अनाज, कपड़े, व दवाई से हर प्रकार की सहायता की। श्री मोहता जी ने हरिजनोत्थान व नारी कल्याण के लिए न केवल अपना काफी समय ही लगाया है, बल्कि उन्होंने लाखों रुपयों की सहायता देकर, अनेक सवर्ण व हरिजन कार्यकर्ता तैयार करके हिन्दू समाज एवं राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा की है।

मुझ जैसा एक साधारण व्यक्ति उन जैसे महान व्यक्तित्व एवं साधक के बारे में क्या लिख सकता है? आज मैं जो कुछ भी हूँ, वह सब उन्हीं की देन है। अगर मुझे उनका आशीर्वाद, मार्गदर्शन, सहयोग व सहायता नहीं मिली होती तथा सामाजिक मान्यताओं एवं विषमताओं के भंवर में विचलित हो जाने पर उन्होंने मुझे धैर्य बंधाकर पुनः सही मार्ग पर न लगाया होता तो पता नहीं मैं किस दुर्दशा हालत में होता! आज मैं भारत की संसद (पार्लियामेंट) का सदस्य भी बन सका हूँ यह सब परमेश्वर, मोहता जी की कृपा का ही फल है।

मोहता जी के सम्पर्क में मैं विद्यार्थी अवस्था में आया था। सन् २९-३१ में मैं जब उनके सम्पर्क में आया

था तब उनके पास चन्दे के लिए पहली बार गया था। उसी समय मुझ पर उनका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं सत्संग में जाने लगा। उन्होंने रामदेव पाठशाला को सहायता देकर हरिजनों में शिक्षा प्रसार का कार्य शुरू करवाया। पिता जी की मृत्यु के बाद जब मैं घोर आर्थिक संकट में फंस गया, तब उन्होंने ही मुझे उससे बचाया। उनके द्वारा किए गए विश्लेषण से मुझे पता लगा कि मेरे परिवार के लिए आर्थिक संकट का मूल कारण सामाजिक रूढ़ि के नाम पर पिता के पीछे मृतक भोज का करना था। उनकी प्रेरणा से प्राप्त शक्ति के बल पर मैंने अपने दस साथियों सहित मृतक भोज न करने व उसे बन्द करने का व्रत लिया। मेरी बड़ी माँ की मृत्यु पर इस व्रत का पालन किया गया, जिस पर मुझे न केवल जाति बहिष्कृत ही होना पड़ा, बल्कि अन्तिम क्रिया में मुझे भाग नहीं लेने दिया गया। आज तो अनेक गाँवों में हजारों हरिजन परिवारों ने मृतक भोज बन्द कर दिए हैं और निरन्तर इस दिशा में प्रगति हो रही है।

संवत् १९९६ मे अकाल पड़ा, उसके बाद भी कई अकाल पड़े, बीमारियाँ फैलीं। उस समय उन्होंने मेरे पर जो भार डाला, वह यह था कि मैं भूखों व नंगों की खोज करके लाऊँ व उन्हें सहायता दिलाऊँ। वे अनाज व कपड़े की सहायता देते थे, पर साथ ही उन्होने यह ध्यान रखा कि कहीं उनमें भिक्षा वृत्ति घर न कर जाय, इसलिए उन्होंने कताई व बुनाई का कार्य भी दिया और घाटा उठाकर उनसे सूत व कपड़ा लेकर उन्हें सहायता पहुँचायी। वर्षा होने पर उन्होंने खेती के लिए बीज, हल व तकावी दी। पीड़ित गायों के लिए उन्होंने विशेष व्यवस्था करके गोधन की रक्षा की।

उनके सभापतित्व में सन् ४३ में हरिजन हितकारिणी सभा की स्थापना हुई, जिसमें कई सवर्ण भाई आगे आए और उन्होंने बीकानेर में हरिजन कल्याण के लिए सराहनीय कार्य किया। हरिजन सेवक संघ, दलित वर्ग संघ व अन्याय हरिजन हितैषी संस्थाओं व कार्यकर्ताओं को उन्होंने हर तरह से प्रोत्साहन व सहायता दी है। बीकानेर मे सर्वप्रथम गणेश जी के मन्दिर के द्वार हरिजनों के लिए खुलवाने में उनका योग व आशीर्वाद रहा। वृद्धावस्था एवं रुग्णावस्था के बावजूद वे कोलायत व बीकानेर में हरिजनों के मध्य व सत्संग में शामिल होकर प्रेरणा देते रहे हैं। उनके प्रयत्नों से स्वयं हरिजनों में व्याप्त जातीय भेदभाव एवं असमानता की समाप्ति की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। श्री कोलायत में "जगजीवन सर्वोदय आश्रम" के लिए जमीन व सहायता देकर उन्होंने एक ऐसी संस्था की नींव डाली है, जिससे सब लोग प्रेरणा लें और उसके लिए लक्ष्य को पूरा करके शिक्षा व औद्योगिक प्रशिक्षण द्वारा हरिजनों को प्रशिक्षित बनाकर उन्हें महत्वपूर्ण कार्यों मे भी योग देने का अवसर देवें। मेरी कामना है कि उनके जीवन में ही बीकानेर क्षेत्र में कुओं से हरिजनों के द्वारा बेरोक-टोक पानी लेने की समस्या शान्ति से हल हो जाय और सभी सार्वजनिक स्थानों के द्वार उनके लिए खुल जावें।

पूज्य श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन के सम्बन्ध में आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व मैंने अपने हृदय के उद्‌गार टूटी फूटी भाषा में व्यक्त किए थे, वे यहाँ उद्‌धृत कर रहा हूँ जिसमें भाषा का सौष्ठव व अलंकार व छन्द का कोई चमत्कार नही है केवल हृदय की एक भावना है :—

चिरजीवो श्री गोपाल जी, दीनों को बचाने वाले॥ टेर॥
श्री गोरधनदास के जाये, मोहता रामगोपाल कहलाए।
श्री उत्तमनाथ गुरु पाए जी, ब्रह्मज्ञान बताने वाले॥ १॥
ईश्वर अजर अमर अविनाशी, सचिदानन्द पूर्ण सुख राशी।
आप हो उसके प्रकाशी, सात्विक जीवन बिताने वाले॥ २॥
है दिव्य दृष्टि तुम्हारी, क्या दुनिया जाने बेचारी।
आप हो कृष्ण रूप अवतारी, गीता विज्ञान बताने वाले॥ ३॥

श्री कांतानगर में सत्संग, मोहता जी, साधु मोहनराम जी, श्री चांदमल जी,
श्री पन्नाराम जी बागान व अन्य सत्संगी ।

शरद पूर्णिमा को मोहता भवन बीकानेर में सत्संग करते हुए रा० ब० सेठ शिवरतन जी मोहता, श्रीमती रतन बाई दम्माणी तथा अन्य सत्संगी ।

जब अधर्म देखा भारी, नर देह आपने धारी ।
हो आप बड़े उपकारी, सब का कष्ट मिटाने वाले ॥ ४ ॥
जब अकाल पड़े थे भारी, सब दुखी हुए नरनारी ।
आप हुए अन्न वस्त्र दातारी, गौ वंश बढ़ाने वाले ॥ ५ ॥
समता संगठन को जोड़ा, सब द्वैत भाव को छोड़ा ।
सब पोल पंथ को तोड़ा सत्त मार्ग दिखाने वाले ॥ ६ ॥
औसर का भांडा फोड़ा, पोपों का मुंह मरोड़ा ।
कुरीति का बंधन तोड़ा, भ्रम जाल छुड़ाने वाले ॥ ७ ॥
अछूतों को कंठ लगाए, छुआ छूत के भूत भगाए ।
राम सम प्रेम भाव उर लाए, सम दृष्टि चाहने वाले ॥ ८ ॥
कहीं विद्यालय बनवाये, कई औषधालय खुलवाए ।
कहीं कुए तालाब खुदवाये, धर्म मन्दिर बनाने वाले ॥ ९ ॥
कहीं विधवाश्रम बनवाए, कई पुनर्विवाह रचवाए ।
अबलाओं के कष्ट मिटाए, भ्रूण हत्या से बचाने वाले ॥ १० ॥
है सत्संग नाव तुम्हारी, जिसमें तैरते हैं नरनारी ।
आप हो धर्मराज व्रतधारी, नीति न्याय चलाने वाले ॥ ११ ॥
है "पन्नालाल" अभिलाषी, अंखियाँ तो, दर्शन की प्यासी ।
आप हो आदर्श पुरुष सन्यासी, राम सम नियम निभाने वाले ॥ १२ ॥

पन्नालाल बाल्पाल

(श्री बाल्पाल उन व्यक्तियों में से हैं जिनका निर्माण मोहता जी ने किया है । उसी का परिणाम है कि एक साधारण घर में जन्म लेकर भी आज वे संसद के सदस्य हैं । राजस्थान प्रदेश दलित वर्ग संघ के आप अध्यक्ष हैं ।)

●

३८

मनस्वी मोहता जी

आदरणीय वयोवृद्ध श्री रामगोपाल जी मोहता का जीवन इतना विपुल और उनकी सर्वतोमुखी प्रवृत्तियाँ इतनी व्यापक हैं कि उनका किसी भी एक ग्रन्थ में समग्र रूप से मूल्यांकन कर सकना सम्भव नहीं है । ऐसे कर्मठ समाज सेवियों का अभिनन्दन करना एक परिपाटी बन गई है । इसके पीछे स्वभावतः आदर है किन्तु मेरी उसमें इतनी रुचि नहीं है । केवल गुण वर्णन करना अथवा अपने प्रेम के जोश में किसी को बढ़ा चढ़ा देना हमारा ध्येय नहीं होना चाहिए । परन्तु हमें यह सोचना चाहिए कि हम जिनका अभिनन्दन कर रहे हैं उनमें [illegible] सत्य भी है कि नहीं ?

हमें उनका अभिनन्दन इसलिए करना चाहिए कि हम उनकी कार्यपद्धति, अनुभूति और विचारों का सही और सरल तरीके से दर्शन कर सकें। उनके जीवन सागर में से जीवन-संगीत, जीवित कला और अनुकरणीय गुणों का संग्रह करके उनके आदर्शों को अपने और अपने साथियों के सामने रख सकें, तो हम सबके लिए यह उत्साहवर्धक और प्रेरणादायक हो सकता है। किसी जलाशय में से हम जल लेकर उससे अपनी प्यास बुझाते हैं तो वह उपकृत नहीं होता अपितु हम ही उससे उपकृत होते और जीवन ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार मनस्वी श्री मोहता जी के जीवन में से उनके कार्य और कृतियों का हमें वह अप्रतिम सत्य, शिव और सुन्दर प्राप्त करना है जिससे हमारा जीवन परिपूर्ण बन सके। हमारे लिए अपने जीवन में ये ही अमूल्य रत्न और सहारा साबित हो सकेगा। उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के यही सर्वोत्तम उपाय हैं। मोहता जी के तपस्वी जीवन के प्रति अपनी विनीत श्रद्धांजलि अर्पित करके मैं अपने को धन्य मानता हूँ।

कमलनयन बजाज

(संसद सदस्य श्री कमलनयन बजाज सुप्रसिद्ध देशभक्त सेठ जमनालाल जी बजाज के सुपुत्र और एक यशस्वी उद्योगपति हैं। आप भी स्वर्गीय बजाज जी के समान देश की सार्वजनिक प्रवृत्तियों में यथोचित भाग लेते रहते हैं। विदेशों का भी आपने कई बार भ्रमण किया है।)

●

३६

भारत के टालस्टाय

श्रद्धेय रामगोपाल जी मोहता का परिचय वैसे तो आज से ४४ वर्ष पूर्व अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के पाली अधिवेशन के सुअवसर पर आपके लघुभ्राता रायबहादुर शिवरतन मोहता द्वारा वितरित 'हमारी वर्तमान दशा का विवेचन' नामक आपकी लिखी पुस्तक पढ़ने से हुआ था। किन्तु प्रत्यक्ष व निकट परिचय, सन् १९२८ में पंढरपुर में आपकी ही अध्यक्षता में हुए माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन पर हुआ। सन् १९२४ में कोलवार माहेश्वरी व बिड़ला सम्बन्ध को लेकर न सिर्फ माहेश्वरी समाज में अपितु समस्त देश के राजस्थानी समाज में पुराने व नये विचारों का जोरदार संघर्ष उठ खड़ा हुआ था। उस बवंडर ने साधारण ही नहीं समाज सुधारक होने का अभिमान रखने वालों तक के पैर भी उखाड़ दिए थे।

ऐसे विकट समय में शक्ति और धैर्य के पुंज मोहता जी ने समाज की बागडोर हाथ में नहीं ली, बल्कि अपने सिंहनाद द्वारा पर्दा व दहेज कुप्रथा, बाल, वृद्ध अनमेल विवाहों एवं मृतक बिरादरी भोजों का जोरदार विरोध करने के साथ-साथ विधवा विवाह, असवर्णीय विवाह, समुद्र यात्रा आदि का जोरदार समर्थन भी किया। मैंने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि विषय निर्वाचिनी समिति व खुले अधिवेशन में भी कर्मवीर मोहता जी १०-२० घंटे तक कुशल सेनापति की भाँति कार्य संचालन करते रहे।

मैं उस समय (अखिल भारतीय माहेश्वरी युवक महा मण्डल, अखिल भारतीय माहेश्वरी महिला परिषद के प्रथम अधिवेशन, संगीत सम्मेलन, लेखक व कवि सम्मेलन, सम्पादक सम्मेलन, कला प्रदर्शनी आदि सात आयोजनों का संयोजक व संचालक था। अतः मोहता जी यह सब देखकर बड़े प्रसन्न हुए थे। उन्होंने मुझे

एक स्वर्ण पदक भी प्रदान किया था। श्री मोहता जी के विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षीय भाषण की रिपोर्ट सब स्थानों के अनेक अंग्रेजी, गुजराती, मराठी व हिन्दी समाचार पत्रों ने अपनी प्रशंसात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित की थी।

कर्वे महिला महाविद्यालय पूना को सहायता

पण्ढरपुर से लौटते हुए आपके साथ हम लोग पूना आये। वहाँ कर्वे महिला विद्यालय की संचालिका, स्त्री शिक्षा प्रेमी श्री मोहता जी को संस्था देखने का निमंत्रण देने आईं। श्री मोहता जी ने भोजन की देरी की परवाह नहीं की और स्वर्गीय उदारमना रामकृष्ण जी मोहता तथा हम सब साथियों सहित वहाँ गये। संस्था को देखने के पश्चात श्री मोहता जी ने दो हजार रु० और श्री रामकृष्ण ने १,००० रु० संस्था को प्रदान किए। इस दूरस्थ अल्प परिचितों की इस उदार सहायता को प्राप्त कर संचालक बड़े प्रभावित हुए।

× × ×

पण्ढरपुर अधिवेशन के ४ मास पश्चात समाज सुधार सम्बन्धी कार्य के लिए श्री मोहता जी ने मुझे बीकानेर बुलाया। सौभाग्य से श्री रामकृष्ण जी मोहता भी कलकत्ता से वहाँ आए हुए थे। १-२ दिन के स्थान में एक सप्ताह मुझे रोक लिया गया। प्रतिदिन ५-६ घण्टे समाज व देश सुधार के मसलों पर बातचीत हुआ करती। मैं तो एक राजनैतिक कार्यकर्त्ता था। अतः मेरी प्रार्थना पर श्री रामकृष्ण जी मोहता ने बीकानेर के प्रसिद्ध वकील व उनके ३-४ साथियों को निमंत्रित करके एक बन्द कमरे में मीटिंग की। उन्हें कार्य संचालनार्थ आर्थिक सहायता का आश्वासन भी दिया। कहना नहीं होगा कि, दोनों भ्राताओं ने हजारों रुपये देकर राजनैतिक जागृति का बीकानेर में बीजारोपण किया। यह उस समय किया गया जबकि फौलादी कहे जाने वाले महाराजा गंगा सिंह का शासन था, जो अपने राज्य में राजनैतिक हवा को भी फटकने देना नहीं चाहता था। उन दिनों में श्री जगनारायण जी व्यास मोहता जी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। मुझे व्यास जी के हाथों २५१ रु० विदा रेलवे स्टेशन पर भिजवाये। मैं तो किसी से विदा लेता नहीं था। अतः सधन्यवाद वापिस कर दिया।

× × ×

संवत् १९९६ में यानि सन् १९३८ में जोधपुर और बीकानेर में भयंकर दुष्काल पड़ा था। पशु और किसानों की तबाही हो रही थी। जोधपुर में महाराजा उम्मेदसिंह जी ने सहायता का भारी प्रबन्ध कर रखा था। हमारी राजपूताना दुष्काल सहायक समिति (बम्बई) भी मारवाड़ में सहायता वितरण का सारा कार्य कर रही थी। मैं उसका एक मंत्री था। किन्तु बीकानेर राज्य ने तो दुष्काल की तबाही का [illegible] दे रखा था। राज्य की ओर से कोई खास कार्य किया नहीं जा रहा था। ऐसे विकट समय में [illegible] मोहता जी चुप नहीं बैठ सकते थे। आपने अपने आध्यात्म चिन्तन, लेखन व गीता प्रवचन के कार्य को प्रायः बाद में रख कर लगातार १०-१० मास तक हजारों पशु व किसानों [illegible] हरिजनों के लिए [illegible] तन, मन व धन से [illegible] कार्य किया, जिसे देखकर लोग दंग रह गए। मैं जब बीकानेर आया, देखकर मुग्ध हो गया। सहसा मुँह से निकल पड़ा कि "[illegible] के आगे बीकानेरी [illegible] धन्य है।" आपके सम्बन्ध में एक कवि ने मुझे कविता सुनाई थी कि "[illegible]।" इस कार्य के लिए नियत कार्यकर्त्ता प्रथम दिन घूम-घूम कर [illegible] को [illegible] के [illegible] लिख कर [illegible] देते थे। दूसरे दिन सवेरे से ही 'मोहता भवन' में [illegible] और [illegible] का [illegible] लग जाता था। पहले से ही अन्न व [illegible] के ढेर लगा दिए जाते थे। शहर के व बाहर गांवों के [illegible], [illegible] मोहता जी के [illegible] अपने दुःख की [illegible] करते [illegible] कर सहायता देकर [illegible] जाते थे। बाद [illegible] की [illegible] मिलने पर

हमें उनका अभिनन्दन इसलिए करना चाहिए कि हम उनकी कार्यपद्धति, अनुभूति और विचारों का सही और सरल तरीके से दर्शन कर सकें। उनके जीवन सागर में से जीवन-संगीत, जीवित कला और अनुकरणीय गुणों का संग्रह करके उनके आदर्शों को अपने और अपने साथियों के सामने रख सकें, तो हम सबके लिए यह उत्साहवर्धक और प्रेरणादायक हो सकता है। किसी जलाशय में से हम जल लेकर उससे अपनी प्यास बुझाते हैं तो वह उपकृत नहीं होता अपितु हम ही उससे उपकृत होते और जीवन ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार मनस्वी श्री मोहता जी के जीवन में से उनके कार्य और कृतियों का हमें वह अप्रतिम सत्य, शिव और सुन्दर प्राप्त करना है जिससे हमारा जीवन परिपूर्ण बन सके। हमारे लिए अपने जीवन में ये ही अमूल्य रत्न और सहारा साबित हो सकेगा। उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के यही सर्वोत्तम उपाय हैं। मोहता जी के तपस्वी जीवन के प्रति अपनी विनीत श्रद्धांजलि अर्पित करके मैं अपने को धन्य मानता हूँ।

कमलनयन बजाज

(संसद सदस्य श्री कमलनयन बजाज सुप्रसिद्ध देशभक्त सेठ जमनालाल जी बजाज के सुपुत्र और एक यशस्वी उद्योगपति हैं। आप भी स्वर्गीय बजाज जी के समान देश की सार्वजनिक प्रवृत्तियों में यथोचित भाग लेते रहते हैं। विदेशों का भी आपने कई बार भ्रमण किया है।)

●

३९

भारत के टालस्टाय

श्रद्धेय रामगोपाल जी मोहता का परिचय वैसे तो आज से ४४ वर्ष पूर्व अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के पहली अधिवेशन के शुभवसर पर आपके लघुभ्राता रायबहादुर शिवरतन मोहता द्वारा वितरित 'हमारी वर्तमान दशा का विवेचन' नामक आपकी लिखी पुस्तक पढ़ने से हुआ था। किन्तु प्रत्यक्ष व निकट परिचय, सन् १६२८ में पंढरपुर में आपकी ही अध्यक्षता में हुए माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन पर हुआ। सन् १६२४ में कोलवार माहेश्वरी व बिड़ला सम्बन्ध को लेकर न सिर्फ माहेश्वरी समाज में अपितु समस्त देश के राजस्थानी समाज में पुराने व नये विचारों का जोरदार संघर्ष उठ खड़ा हुआ था। उस बवंडर ने साधारण ही नहीं समाज सुधारक होने का अभिमान रखने वालों तक के पैर भी उखाड़ दिए थे।

ऐसे विकट समय में शक्ति और धैर्य के पुंज मोहता जी ने समाज की बागडोर हाथ में नहीं ली, बल्कि अपने सिंहनाद द्वारा पर्दा व दहेज कुप्रथा, बाल, वृद्ध अनमेल विवाहों एवं मृतक बिरादरी भोजों का जोरदार विरोध करने के साथ-साथ विधवा विवाह, असवर्ण विवाह, समुद्र यात्रा आदि का जोरदार समर्थन भी किया। मैंने वहाँ आश्चर्य के साथ देखा कि विषय निर्वाचिनी समिति व खुले अधिवेशन में भी कर्मवीर मोहता जी २०-२० घंटे एक कुशल सेनापति की भांति कार्य संचालन करते रहे।

मैं उस समय (अखिल भारतीय माहेश्वरी युवक महा मण्डल, अखिल भारतीय माहेश्वरी महिला परिषद के प्रथम अधिवेशन, संगीत सम्मेलन, लेखक व कवि सम्मेलन, सम्पादक सम्मेलन, कला प्रदर्शनी आदि सात आयोजनों का संयोजक व संचालक था। अतः मोहता जी यह सब देखकर बड़े प्रसन्न हुए थे। उन्होंने मुझे

एक स्वर्ण पदक भी प्रदान किया था। श्री मोहता जी के विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षीय भाषण की रिपोर्ट मय व्लाकों के अनेक अंग्रेजी, गुजराती, मराठी व हिन्दी समाचार पत्रों ने अपनी प्रशंसात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित की थी।

कर्वे महिला महाविद्यालय पूना को सहायता

पण्ढरपुर से लौटते हुए आपके साथ हम लोग पूना आये। वहाँ कर्वे महिला विद्यालय की संचालिका, स्त्री शिक्षा प्रेमी श्री मोहता जी को संस्था देखने का निमंत्रण देने आई। श्री मोहता जी ने भोजन की देरी की परवाह नहीं की और स्वर्गीय उदारमना रामकृष्ण जी मोहता तथा हम सब साथियों सहित वहाँ गये। संस्था को देखने के पश्चात श्री मोहता जी ने दो हजार रु० और श्री रामकृष्ण ने १,००० रु० संस्था को प्रदान किए। इन दूरस्थ अल्प परिचितों की इस उदार सहायता को प्राप्त कर संचालक बड़े प्रभावित हुए।

× × ×

पण्डरपुर अधिवेशन के ४ मास पश्चात समाज सुधार सम्बन्धी कार्य के लिए श्री मोहता जी ने मुझे बीकानेर बुलाया। सौभाग्य से श्री रामकृष्ण जी मोहता भी कलकत्ता से वहाँ आए हुए थे। १-२ दिन के स्थान में एक सप्ताह मुझे रोक लिया गया। प्रतिदिन ५-६ घण्टे समाज व देश सुधार के मसलों पर बातचीत हुआ करती। मैं तो एक राजनैतिक कार्यकर्ता था। अतः मेरी प्रार्थना पर श्री रामकृष्ण जी मोहता ने बीकानेर के प्रसिद्ध वकील व उनके ५-४ साथियों को निमंत्रित करके एक बन्द कमरे में मीटिंग की। उन्हें कार्य संचालनार्थ आर्थिक सहायता का अभिवचन भी दिया। कहना नहीं होगा कि, दोनों भ्राताओं ने हजारों रुपये देकर राजनैतिक जागृति का बीकानेर में बीजारोपण किया। यह उस समय किया गया जबकि फौलादी कहे जाने वाले महाराजा गंगा सिंह का शासन था, जो अपने राज्य में राजनैतिक हवा को भी फटकने देना नहीं चाहता था। उन दिनों में श्री जयनारायण जी व्यास मोहता जी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। मुझे व्यास जी के हाथों २५१ रु० विदा रेलवे स्टेशन पर भिजवाये। मैं तो किसी से विदा लेता नहीं था। अतः सधन्यवाद वापिस कर दिया।

× × ×

संवत् १९९६ में यानि सन् १९३८ में जोधपुर और बीकानेर में भयंकर दुष्काल पड़ा था। पशु और किसानों की तबाही हो रही थी। जोधपुर में महाराजा उम्मेदसिंह जी ने सहायता का काफी प्रबन्ध कर रखा था। हमारी राजपूताना दुष्काल सहायक समिति (बम्बई) भी मारवाड़ में सहायता वितरण का खासा कार्य कर रही थी। मैं उसका एक मंत्री था। किन्तु बीकानेर राज्य ने तो दुष्काल को तबाही का लायसेन्स दे रखा था। राज्य की ओर से कोई राहत कार्य किया नहीं जा रहा था। ऐसे विकट समय में श्रद्धेय मोहता जी चुप नहीं बैठ सकते थे। आपने अपने आध्यात्म चिंतन, लेखन व गीता प्रवचन के कार्य को प्रायः बाजू में रख कर अहोरात्र १०-१० मास तक हजारों पशु व किसानों विशेषतः हरिजनों के लिए कैम्प लगाकर तन, मन व धन से वह कार्य किया, जिसे देखकर लोग दंग रह गए। मैं जब बीकानेर आया, देखकर मुग्ध हो गया। सहसा मुँह से निकल पड़ा कि 'पीड़ितों के माता-बीकानेरी पिता तू धन्य है।' आपके सम्बन्ध में एक कवि ने मुझे कविता सुनाई थी कि "रानीकेन जायो नूं जायो वणियाणी के।" इस कार्य के लिए नियत कार्यकर्ता प्रथम दिन घूम-घूम कर पीड़ितों को जरूरत के सामान की चिट लिखकर सौंप देते थे। दूसरे दिन सवेरे से ही 'मोहता भवन' में नये और पुराने दुष्काल पीड़ितों का तांता लग जाता था। पहले से ही अन्न व सिले, बिन सिले वस्त्रों के ढेर लगा दिये जाते थे। शहर के व बाहर गाँवों के खानदानी स्त्री, पुरुष अलग कमरे में आकर दीनबन्धु मोहता जी के सन्मुख अपने दुःख की गठरी खाली करके अन्न, वस्त्र की गठरी बाँध कर मूक धन्यवाद देकर चले जाते थे। बाद लोगों की जानकारी मिलने पर

उनको अन्धेरे उजियाले में सहायता पहुँचाई जाती थी, दूरस्थ बाहर गाँवों में भी उसी प्रकार सहायता पहुँचाने का कार्य किया जाता था।

इस प्रकार केवल जीवन रक्षण की वस्तुएँ ही नही प्रदान की जाती थीं। अपितु अनेकों के आपस के अनेक प्रकार के झगड़े निपटाने के लिए आपको जज का भी काम करना पड़ता था। किसी स्त्री को उसके पति ने मारा है। किसी की सास, जेठाणी, देराणी, या ननद उसके हिस्से की रखी हुई रोटी खा गई। किसी का पड़ौसी स्त्री को फुसलाता है। न जाने क्या-क्या छोटी-मोटी शिकायतें यह देवता स्वरूप जज सुन कर समाधान करने में प्रसन्नता अनुभव करता था। पीड़ित बन्धुओं को अक्षरज्ञान, आत्मज्ञान व तत्वज्ञान की भी बातें समझाई जाती थीं। हरिजनों के मध्य में बैठकर ईश्वर व आत्मा सम्बन्धी भजन (वाणी) सुनाये जाते थे, और उनके स्वर में लय मिलाकर गाये जाते थे। वास्तव में मोहता जी दरिद्री और पीड़ितों में भगवान के दर्शन करते हैं।

इस प्रकार मुनाफा न देने वाले व्यापार के लिए की जाने वाली लाखों रुपयों की हुण्डियों को, 'भरत सम' लघुभ्राता रा० ब० शिवरतन जी, दूरस्थ कराची में बैठे चुपचाप सीकार तो देते ही थे। बल्कि जितनी आवश्यकता हो, खुशी-खुशी खर्च करने के लिए सन्देश भिजवाते रहते। सहस्त्रों मुखों से पीड़ित कहा करते थे कि "धन्य हैं मोहता जी और उनके माता, पिता तथा उनका वैभव।"

× × ×

पहले पहल जब मैं सन् १६२२ में बीकानेर गया था उस समय मोची, मेहतर व कुम्हार जातियों की शराब छुड़ाई थी। तब प्रसिद्ध मोहता धर्मशाला में ठहरा था व श्रद्धेय मोहता जी द्वारा स्थापित व संचालित अनेक संस्थाओं को देखा भी। किन्तु जब मैंने अनेकों पुष्करणा ब्राह्मणों के मुँह से दानवीर मोहता जी को गालियाँ देते हुए सुना कि "यह गोपाल मोहता हमारे लड़कों को अपनी मोहता मूलचन्द विद्यालय में छात्रवृत्ति का लोभ देकर अंगरेजी शिक्षा से उन्हें क्रिश्चियन बना देगा। उनके पूर्वजों ने अनेकों ब्रह्मभोज किये थे, यह तो नास्तिक है, ब्राह्मणों को अमावस, पूनम भोजन भी नहीं कराता।" मैं हैरान था कि सहस्त्रों-सहस्त्रों मुँह से गाली सुन कर भी यह कैसा पुरुष है कि हजारों रुपये देकर उन्ही की सन्तानों को पढ़ाता है। मेरे मन में प्रश्न था "यह मानव है या देव"। उत्तर अब ३५ वर्ष पश्चात मिल गया कि वह वास्तव में एक आदर्श समत्व योगी है। अगर किसी को देवत्व से भी ऊपर इस पद की आकांक्षा हो तो इस ८१ वर्ष के वृद्ध समत्व योगी के चरणों में बैठ कर उनसे कुछ सुने, समझे। गीता के मर्मज्ञ, तथा शास्त्र जिसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं, वैसा बनें। आज उसी पुष्करणा समाज के विद्वान व प्रतिष्ठित पुरुष हृदय से स्वीकार रहे हैं कि मोहता जी हमारे परम हितैषी हैं।

नाम, गुण, संकीर्तन के लिए नहीं किन्तु लाखों-लाखों मानवों के त्रास कर धनिकों के प्रकाश स्तम्भ समत्व योगी को जो अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है, उसमें चन्द संस्मरण के रूप में मेरी यह श्रद्धांजलि प्रेषित है। मेरी दृष्टि में रूस के उमराव टालस्टाय का सा जीवन इस भारतीय (बीकानेरी) टालस्टाय का है।

कन्हैयालाल कलयंत्री

(श्री कलयंत्री जी पुराने मंजे हुए और पक्के हुए राजस्थान के कार्यकर्ता और नेता हैं। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में आपने अपने कर्मठ व्यक्तित्व का परिचय दिया है। देशी राज्यों की मूक जनता के लिए आपने अथक श्रम किया है। मध्यभारत, राजपूताना देशी राज्य लोक परिषद के आप प्रधान मंत्री और अध्यक्ष रहे हैं। राजस्थान सेवा संघ में आपने स्वर्गीय श्री विजय सिंह जी पथिक को सराहनीय सहयोग दिया था। आप प्रगतिशील विचारों के समाज सेवी और राष्ट्र सेवी हैं। राजपूताना प्रान्तीय किसान सभा के आप अध्यक्ष हैं।)

गीता सत्संग भवन गोवर्धन सागर बगीची बीकानेर में होते हुए सत्संग में मोहता जी मध्य में तानपूरा लिए हुए भजन गा रहे हैं।

४०

मोहता जी का सत्संग

श्री जगत गुरू श्री भारती कृष्ण तीर्थ शंकराचार्य गौवरधन भट्ट सन् १६३५ में बीकानेर पधारे थे। उन्होंने गीता की कथा सर्व साधारण को बागड़ियों की बगीची मे सुनाई थी। उनकी कथा मे मैं हर रोज जाता था। उस कथा में केवल एक ही अध्याय सुना गया था मगर मेरे हृदय में एक तीव्र उत्कठा उत्पन्न हो गई कि सारी गीता बहुत अच्छी तरह पढ़नी और समझनी चाहिए। १६३५ से १६४८ तक मैं गीता को अपने आप या किसी की मदद से पढ़ता रहा मगर मुझे तसल्ली न हुई और सदैव यही सोचता रहा कि किसी बड़े विद्वान से गीता पढूं। १६४८ में श्री रामकृष्ण आचार्य (कलकत्ता) ने मेरे पूछने पर कहा कि बीकानेर मे श्री रामगोपाल जी मोहता जैसा कोई गीता का धुरन्धर विद्वान नही है। आप उनसे गीता पढ़िये। मैं उनके सम्पर्क में आया और जैसे-जैसे अदालत के कामों से समय मिलता रहा मैं उनके सत्संग में शामिल होता रहा। मैं उन दिनों मे डिप्टी कमिश्नर बीकानेर था और साधारण काम के अतिरिक्त तमाम रियासत मे आए हुए शरणार्थियों की जिनकी तादाद २७,००० के करीब थी बसाना भी मेरे सुपुर्द था। इसलिए समय बहुत नही मिलता था मगर श्री मोहता जी ने मेरी जिज्ञासा को देख कर मुझे हर तरह से सुभीता दिया और गीता एक ही दफा नही बल्कि दो तीन बार पढ़ाई। विषय बहुत सूक्ष्म होने के कारण जब भी गीता का पुनः पाठ होता था हर बार पहिले से अधिक आनन्द आता था।

१६४६ में राजस्थान बन गया और मेरा तबादला बतौर कलेक्टर, पाली हो गया। अब तो सत्संग बहुत दूर हो गया। जब भी बीकानेर आना हुआ सत्संग का फायदा उठाता रहा। सन् १६४६ से लेकर सन १६५३ तक मैं बीकानेर से बाहर रहा, मगर तीन-चार महीने बाद सत्संग का मौका मिलते हुए भी दिल में यह बात पूर्ण रूप से घर कर गई कि असली सत्संग है तो वह गीता का और यदि कोई उसका वास्तविक मर्मज्ञ है तो श्री मोहता जी। केवल विद्वान ही नही बल्कि जिनका जीवन भी गीता है और जिनके तमाम व्यवहार गीता के अनुसार हैं।

सौभाग्य से १६५४ के शुरू में मेरा तबादला बहोदे अडिशनल कमिशनर, बीकानेर हो गया। फिर तो सत्संग का हर रोज समय मिलने लगा। इस स्थान पर दौरे का भी काम न था। यह बहुत दिनों तक नही चला और चार माह बाद कलेक्टर, झूंझनू बन कर बाहर जाना पड़ा। झूंझनू रहते हुए साल मे दो-चार बार सत्संग में शामिल होने का मौका मिलता रहा। झूंझनू से मेरा तबादला उदयपुर-मेवाड़ बहोदे अडिशनल कमिश्नर हो गया जो बीकानेर से दूर होने के कारण सत्संग में १० महिने के अन्दर एक ही दफा आना हुआ। उदयपुर मे १० महीने गुजारने के पश्चात् मेरी उम्र ५५ साल की पूरी होने में तीन माह की कमी रही। इस अरसे में मैंने प्रिपेरेटरी रिटायरमेंट (अवकाश) प्राप्त किया और उसी रोज से यानि ६ दिसम्बर, १६५५ से बराबर सत्संग का फायदा उठा रहा हूँ।

यह मेरे ऊपर सत्संग का ही प्रभाव था कि अवकाश प्राप्त होने पर मुझे बड़ी खुशी हुई और फिर नौकरी करने की इच्छा तक भी न हुई। राजस्थान गवर्नमेंट के एक उच्चाधिकारी के अपने आप मुझे फिर सर्विस मे रखने की तजवीज को भी मैंने स्वीकार नहीं किया। इससे कोई यह न समझ ले कि श्री मोहता जी सत्संग मे निकम्मे रहना सिखाते हैं। गीता का व्यवहार दर्शन सफा ५३४ देखें। १८ अध्याय के ४७ वें श्लोक का अर्थ करते हुए उन्होंने लिखा है कि अपने कर्तव्य कर्म करके आपस में एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरी करने

की लोक सेवा रूप यज्ञ करने ही से सबके समष्टि भाव परमात्मा का पूजन होता है। मेरी ५५ साल की उम्र पूरी हो चुकी थी। २८ साल नौकरी कर चुका था। पेन्शन का हकदार हो चुका था। अपना व्यक्तिगत स्वार्थ फिर नौकरी करके और रुपया कमाना छोड़कर लोक सेवा रूप यज्ञ में शामिल होना मेरे लिए ही नहीं बल्कि हर मनुष्य के लिए जरूरी है बशर्ते कि उसकी आवश्यकतानुसार पेन्शन व बचत काफी हो।

सत्संग हर शहर में कई जगह होते हैं और श्री मोहता जी के सत्संग में बड़े-बड़े होते हैं, जिनमें उपस्थिति हजारों की तादाद में होती है। मैं भी कई एक सत्संगों में उपस्थित हुआ हूँ। हर सत्संग में यह देखने में आया है कि आम तौर पर उपदेशक अपने को गुरु बता कर सत्संग करता है और नीचे लिखे दोहे के अनुसार अपने में अंध विश्वास का प्रचार करता है।

गुरु गूंगा गुरु बावला गुरु देवन का देव।
एक पलक बिसरो मति करो गुरु की सेव ॥

जयपुर में मुझे एक सत्संग में शामिल होने का मौका मिला। गुरुजी मौजूद थे। उनके अनुयाई ने एक कहानी सुनाई कि किसी जमाने में एक बुलाकी नाम के गुरु अपने शिष्यों के साथ एक नदी पार कर रहे थे। गुरु जी ने कहा कि तुम सब लोग मेरा नाम लेते हुए पानी में चलते रहो। उन शिष्यों में से एक शिष्य डूबने लगा तो गुरु जी ने कहा कि तुम मेरा नाम नहीं लेते तो उसने कहा कि मैं राम राम कहता हूँ। गुरुजी नाराज हुए और कहा कि मेरा नाम लो। फिर क्या था वह डूबने से बच गया। इस कहानी का उद्देश्य यही मालूम हुआ कि गुरुजी राम से बड़े हैं और उसके नाम में राम के नाम से भी ज्यादा असर है। ऐसी ऐसी कहानियों या दोहों से लोगों का गुरु पर विश्वास कराया जाता है ताकि गुरु और उसके साधक लोग भोले भालों से नाजायज फायदा उठा सकें। ऐसे सत्संगों में भेंट पूजा भी ली जाती है और रिसाले व पुस्तकें बेचकर रुपया भी इकट्ठा किया जाता है।

अधिकतर सत्संगों में खालस आत्म ज्ञान का उपदेश नहीं होता। कुछ पुट में सार मिला ही देते हैं जिससे सत्संगियों का जमघट कम न हो किन्तु श्री मोहता जी के क्रान्तिकारी उपदेश मौलिक अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर होते हैं जिनमें द्वैतवाद की जरा भी लाग लपेट नहीं रहती। न द्वैतवाद के साथ किसी प्रकार का समझौता व रियायत की गुंजाइश ही रहती है।

श्री मोहता जी, सत्संग में जब कोई आदमी उनको गुरुवर कह कर पुकारता है तो उसी वक्त मना कर देते हैं और कहते हैं कि मैं गुरु नहीं हूँ। न मेरे पैर को हाथ लगाने की जरूरत है। मैं तो आपकी नाईं एक मनुष्य हूं। भेंट पूजा लेने का तो सवाल ही नहीं बल्कि सत्संग व सत्संगियों के लिए अपनी जेब से खर्च करते हैं। पुस्तकें जैसे—गीता का व्यवहार दर्शन, गीता विज्ञान, सात्विक जीवन, समय की मांग, मान पद संग्रह, प्रेम भजनावली आदि आदि आम तौर पर मुफ्त ही बांटते हैं। गीता के बारहवें अध्याय के अनुसार जीती जागती मूर्तियों की सेवा ही उनकी साकार भक्ति है। जो मनुष्य उनके सम्पर्क में आता है उसकी जरूरत के मुताबिक मदद करते ही रहते हैं।

अब सवाल यह उठता है कि जब श्री मोहता जी अपने मान के लिए व लोभ के लिए सत्संग नहीं करते हैं तो फिर उनका क्या उद्देश्य है कि ८० साल से ज्यादा उम्र के होने पर भी हर रोज तीन घंटे व कभी कभी चार-चार घंटे बैठे रहते हैं। बंगले से तकरीबन ढाई-तीन मील पैट्रोल जलाकर "गोवर्धन सागर बगीची" आते जाते हैं और बगीची में पन्द्रह सीढ़ियां ऊपर चढ़ कर, क्योंकि सत्संग भवन ऊपर ही है, सत्संग करते हैं। उनका पन्द्रह सीढ़ियों पर एक हाथ में लकड़ी का सहारा और दूसरी ओर किसी सत्संगी के कंधे का सहारा लेकर चढ़ना व उतरना देखकर आश्चर्य होता है। एक करोड़पति सेठ, जिसके बंगले पर कई मोटर-कार हैं, किसी

बात की कमी नही है, भाई, बेटे, भतीजे, पोते, पड़पोते, बहुएं आदि बड़ा परिवार है और सब अच्छी तरह उनका बड़ा सत्कार करते हैं, उनके बीच न बैठ कर और कुनबे का आनन्द न लेकर बीकानेर में उनसे जुदा रहकर सत्संग करने में इतनी तकलीफ उठाते हैं। कई दफा सत्संगियों ने तजवीज की कि सत्संग बंगले पर ही कर लिया जाय ताकि उन्हें इतनी तकलीफ न हो पर उसका यही जवाब दिया कि बंगला बाजार के नजदीक होते हुए लाउडस्पीकर रेडियो, मोटरों आदि का बहुत शोर रहता है, आत्म ज्ञान जैसे सूक्ष्म विषय का सत्संग निरुपाधिक शान्त स्थान में ही होना उपयुक्त है।

मुझे तो उनके सत्संग करने का एक ही उद्देश्य जान पड़ा जो श्री जीयाराम जी महाराज ने अपनी वाणी में कहा है कि जीवो हेतु वपु धर आए—अज्ञानी जीवों को सच्चा मार्ग दिखाने के लिए यह शरीर धारण करके आए हैं। श्री मोहता जी ऊपर लिखी तकलीफ व खर्च की बिल्कुल भी परवाह नही करते है और सदैव इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि किसी तरह नर-नारियों को अपने स्वयं के बनाए हुए बन्धनों व साम्प्रदायिकता तथा गुरुडम के पाखंडी चंगुल से छुटकारा मिले और सत्य ज्ञान को प्राप्त करके सुख से अपना जीवन बिताएं।

श्री मोहता जी के सत्संग में हमेशा आत्म ज्ञान के उपदेश के साथ साथ ऐसे कामों को त्याग देने का भी उपदेश होता है जिन कामों से द्वैत भाव बढता है। उन कामों को नहीं करने के लिए निडर होकर बिना किसी लाग लपेट उनके दोष बतलाते हैं। श्री मोहता जी का कहना है कि जब तक कपड़े का मैल साफ नहीं होगा तब तक उस पर दूसरा रंग नही चढ़ेगा। देहाभिमानी द्वैतवादी लोगों को उनका दोष बताना अच्छा नहीं लगता अतः इनके सत्संग में तीव्र जिज्ञासु ही आते है और जो आते हैं उनमें बहुतो का अन्ध विश्वास, वहम आदि कम होते जा रहे हैं। रूढ़िवाद हटने से भी उनको बहुत लाभ पहुँचा है।

सत्संग मे कई दफा सत्संगी ऐसी आलोचना करते हैं जिनको सुनकर मामूली आदमी को क्रोध आ जाय, मगर श्री मोहता जी इन आलोचनाओं का बड़ी शान्ति से उत्तर देते हैं और हर तरह से उनको सच्चा ज्ञान देने की कोशिश करते हैं। एक पढ़े-लिखे सज्जन ने, जो श्री मोहता जी से "प्रगति संघ" संस्था के नाते प्रभावित था, सत्संग मे असंयमित भाषा में कहा कि "इस हर रोज के सत्संग से क्या फायदा है? एक बात को हर रोज कहने से क्या नतीजा? किसी सत्संगी पर कोई असर नहीं पड़ता। खाना, पीना, सोना और बैठना उसी तरह है।" ऐसी आलोचना ६०-७० सत्संगियों की मौजूदगी में सुन कर श्री मोहता जी विक्षिप्त नहीं हुए बल्कि एक सत्संगी जिसने इस आलोचना का जवाब देने की आज्ञा मांगी तो कहा संयम से उत्तर देना। क्रोध, विक्षिप्तता, व्याकुलता श्री मोहता जी के नजदीक ही नही रहती है। एक बात को कई बार भी समझाते हुए बिल्कुल शान्त रहते हैं और शंकाओं को समझा कर मिटाते हैं न कि रौब से।

श्री मोहता जी की स्मृति और हाजर जवाबी ८० साल की अवस्था में भी अद्भुत है। गीता, उपनिषद, पातंजल योगशास्त्र आदि जब किसी भी आध्यात्मिक ग्रंथ का पाठ व उस पर विवेचन होता है, तब उसी प्रकरण के, अपने स्वयं रचित भजनों व राजा मान सिंह जी के, बनानाथ जी व कबीर जी तथा किसी और महात्मा की वाणी व भजनों को वे तत्काल गा कर सुनाते हैं और उसी प्रसंग के मनोरंजक दृष्टांत कहावत, अपने अनुभव की आख्यायिकाएं और विनोदी चुटकले आदि सुना कर विषय को इतना सरस बनादेते हैं कि सत्संगियों को वह मुश्किल प्रकरण आसानी से समझ में आ जाता है। एक रोज योग वशिष्ठ में पढ़ा गया कि आशाओं और वासनाओं का त्याग दो प्रकार का होता है। पहिला ध्येय व दूसरा ज्ञेय जैसा कि नीचे लिखे श्लोको से विदित है :—

अन्तः शीतलया बुद्धा कुर्वत्या लीलया क्रियाम्।
यो नूनं वासनात्यागो ध्येयो राम स कीर्तितः॥

निर्मूलं कलनां त्यक्त्वा वासनां यः समं गतः ।
ज्ञेय त्यागमयं विद्धि मुक्तं तं रघुनन्दन ॥

श्री मोहता जी ने राजा मान सिंह जी का निम्नलिखित भजन सुनाकर प्रकरण को आसानी से समझा दिया :—

आस दूर कर कीजे आसावरी आस दूर कर कीजे ।
जो यह आसा माने नहीं तो, घोट छान कर पीजे ॥
चूर चूर आसा को होवे, फिर न कभी उलझीजे ।
आस मिटी निरास भये जब, निर्भय पिया सूं मिल लीजे ॥
आसा मद को उलट कर पीजे, सुख भर सदा रहीजे ।
उल्टी आस सीधी कर लेवे, सब दुख दूर हरीजे ॥
कोमल तीव्र छांट कर न्यारे, समझ समझ स्वर दीजे ।
अर्ध तीव्र मधु स्वर करके, तार बजे सुन लीजे ॥
किनकी आस कौन रह्यो न्यारो, जग मम रूप लखीजे ।
मानसिंह यह सुन्दर रागिनी, ज्ञान प्रभात उचरीजे ॥

केवल भजन ही नहीं तमाम गीता श्री मोहता जी को ऐसी याद है कि किसी अध्याय का कोई श्लोक सुन लो । इतना होने पर भी आप कोई बात सत्संग में अधिकार जमाने के तौर से नहीं कहते हैं । सत्संग में ऐसे लोगों को भी निमन्त्रित करके भाषण कराया जाता है जिनके विचार आपके विचार से बिल्कुल नहीं मिलते । एक रोज श्री भजामिशंकर दीक्षित को जो भौतिकवादी हैं और जो बीकानेर में पधारे हुए थे, सत्संग में बुलाकर उनका भाषण कराया और उन्होंने अपने विचार के अनुसार ईश्वर का न होना बताया । सत्संग में गीता के अनुसार यह हर रोज कहा जाता है कि ईश्वर हर प्राणी के हृदय में मौजूद है । मगर सत्संगियों ने दीक्षित जी के विचारों को व उनकी दलीलों को गौर से सुना और एक सत्संगी ने अपने ख्याल भी ज़ाहिर किये । दोनों तरफ से तीन चार दफा सवाल व जवाब होते रहे और बहस बड़े सुखे दिल से और प्रेम से समाप्त हुई । मगर सत्संगी लोग अपने विचार पर दृढ़ रहे । इसी तरह एक रोज श्री शिवकुमार मुनि गोरखपुर वालों का भी सत्संग में भाषण कराया गया । एक बार जैन आचार्य मुनि श्री कान्ति सागर जी महाराज का भाषण कराया गया । गीता प्रेस वाले श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार का भी एक बार भाषण हुआ । कहने का मतलब यह है कि सत्संग साम्प्रदायिक चहार दिवारी के अन्दर नहीं किया जाता और न सत्संगियों को घेरे का पशु ही बनाया जाता है । उनको औरों के विचार सुन कर स्वतन्त्र विचार करने का मौका दिया जाता है । कृष्ण ने भी अर्जुन को तमाम गीता का ज्ञान देकर कहा :—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

यानि मैंने तुझे यह गुह्य से भी गुह्य ज्ञान कहा है । इस पर पूर्ण रूप से अच्छी तरह विचार करके फिर तेरी जो इच्छा हो वह कर । श्री मोहता जी ने अपनी गीता के व्यवहार दर्शन में ५३६वें सफे पर लिखा है कि ज्ञानी महापुरुष एवं सद् शास्त्र मनुष्य को विचार करने में सहायता देने एवं बुद्धि बढ़ाने के लिए हैं न कि उसकी बुद्धि अथवा विचार शक्ति छीन कर अपना पालतू पशु बना देने के लिए । इसी विचार से पुरस्कृत श्री मोहता जी सत्संग में ज्ञान देते हैं । यह बात और सत्संगों में नहीं मिलेगी ।

इनके सत्संग में केवल शुष्क वेदान्त का उपदेश नहीं होता किन्तु वेदान्त के अनुसार व्यवहार किये

सत्संग के अवसर पर परसनेऊ गांव में उपदेश देते हुए मोहता जी।

जायं और सुनने वाले व्यक्ति का समाज के प्रति क्या फर्ज है यह बताया जाता है। समाज के उत्थान व समाज में प्रचलित कुरीतियों को हटाने व अखिल भारतवर्ष व विश्व में सुख शान्ति कैसे हो इन विषयों पर भी चर्चा होती है। श्री मोहता जी इस बात पर खास जोर देते हैं कि अपनी अपनी योग्यतानुसार शुभ काम केवल निजी स्वार्थ के लिये नहीं, किन्तु कर्तव्य समझ कर करना ही ईश्वर की सच्ची उपासना है और हम सब लोग अपने कर्तव्य पालन करने द्वारा एक दूसरे की जरूरत पूरी करने में सहायता देंगे और निजी स्वार्थ की लूटखसूट बंद करेंगे तब ही हमारा यह रचा हुआ संसार सुखमय बनेगा। श्री नेहरू जी विचार व्यावहारिक वेदान्त के अनुकूल होने के कारण सत्संग में सदा उनके विचारों की पुष्टि जनता के हित के लिए की जाती है।

जहां शुष्क वेदान्ती लोग ज्ञान और कर्म का विरोध बता कर, आत्म ज्ञान सहित संसार के व्यवहार होना असंभव कहते हैं, वहाँ श्री मोहता जी निरसंकोच होकर अकाट्य प्रमाणों और युक्तियों से ज्ञान और कर्म के योग को ही सच्चा अद्वैत वेदान्त सिद्ध करते हैं, जिसको गीता में समत्व योग कहा है।

श्री मोहता जी के सत्संग का प्रभाव केवल बीकानेर में ही नहीं है। आसपास के गांवों के लोग भी सत्संग में शामिल होते रहते हैं। माह मार्च ५७ में चान्दाराम चौधरी गांव बाना वाले के अनुरोध से उन लोगों ने परसनेऊ गांव में सत्संग रक्खा और श्री मोहता जी व अन्य सत्संगियों को भी आमन्त्रित किया। श्री मोहता जी को आयु वृद्ध होने के कारण रेल पर चढ़ना व उतरना व सफर में तकलीफ होना व वहां ठहरने में सहूलियत का कम मिलना पहले से ही मालूम था, तो भी अन्य २२ सत्संगियों के साथ परसनेऊ पधारे और वहाँ २४ व २५ मार्च को खूब सत्संग किया। वहाँ सत्संग में १००० के करीब सत्संगी निम्नलिखित गांवों से सत्संग के लिए पधारे थे। श्री मोहता जी की और उनकी श्रद्धा व प्रेम देखकर अचम्भा होता था।

१. बेणीसर २. डूंगरगढ़ ३. बाना ४. बिग्घा ५. किल्याणसर ६. कूपनी ७. राड़ी ८. कीतासर ९. धीरदेसर प्रोहितों वाला १०. धीरदेसर जाटों का ११. ठुकरियासर १२. जातासर १३. माणक सर १४. गुसाईं सर १५. मालसर १६. ढढेरू १७. रामसरो १८. जेगणिया १९. राजलदेसर २०. सिमरसियो २१. धामरियो २२. भावल देसर २३. रिड़मलसर २४. डुडेरो २५. पाबूसर २६. रतनगढ़ २७. आरासर २८. बनड़ाऊ २९. मालक सर ३०. लाडनू ३१. सुजानगढ़ ३२. छापर ३३. बीदासर ३४. सूडसर ३५ टेऊ ३६. जोरावरपुरा ३७. लाछरसर ३८. बंडुआ ३९. बानीदो ४०. कूंतासर ४१. पांडूराई ४२. परसनेऊ ४३. दसूसर ४४. पायली ४५. सुरजनसर ४६. आडसर ४७. सेजरासर आदि आदि।

इन गांवों से आए हुए नर-नारियों में से अनुमानतः ५०० ने मृतक के पीछे जो जीमनवारें होती हैं उनमें नहीं जीमने की प्रतिज्ञा की। औसर निषेध के सम्बन्ध में मोहता जी का निम्नलिखित भजन कितना सारगर्भित है :—

औसर निषेध

(तर्ज "करमन की रेखा न्यारी, किस विध लखूं मुरारी" की)

औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥टेर॥

अन्तरा

जब कोई प्यारा मर जावे, घर के सब रोवें चिल्लावें, औरत बच्चे सब रुल जावें, भाई बन्धु माल उड़ावें।
मन में तरस जरा नहीं लावें, कैसी है निर्दयताई, औसर से हो रहे जुल्म अपार औसर छोड़ो सब भाई ॥१॥
जिस भाई को निर्धन पावें, उसके घर जेवर बिकवावें, बोहरों से करजा दिलवावें, जो कुछ हो गिरवी रखवावें।
दुखियों को बेमौत मरावें, भाई है या कसाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥२॥
जो भाई करदे इनकार, उसको सब करते लाचार, गाली दे तानों की मार, पंच करें न्याती से बार।
कितना है यह अत्याचार, इधर कुआ और उधर खाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥३॥

मरने ऊपर माल उड़ावें, साक्षात राक्षस बन जावें; नोच-नोच दुःखियों को खावें, मन में ग्लानी कुछ नहीं आवै।
गीध काग घबू शरमावें, मनुष्य जूण कैसे पावें, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥४॥

बने धरम के ठेकेदार, ऐसे करते भ्रष्टाचार, पाप पुण्य का नहीं विचार, अन्त पड़े जब जमकी मार।
नहीं कोई मिले छुड़ावन हार, क्यों करते यह दुखदाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥५॥

कहे 'गोपाल' सबी समझाय, छोड़ो मित्रो यह अन्याय, मत लेवो दुःखियों की हाय, इससे देश रसातल जाय
बारी बारी सब दुख पायें, अब तो कर लो सुनवाई; औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥६॥

एक दुःखित अबला का विलाप

(तर्ज—तरकारी ले लो, मालन तो आई बीकानेर की।)

औसर कर हूँ तो, घर री रही न कोई घाट री। सुन लो सब भाई, बीती सुनाऊँ थाने आपरी ॥१॥
पास रही नहीं फूटी कौडी घर भी गयो बिकाई। जेवर थो सो बीमारी में बैद गया सब खाई ॥२॥
कदे न आया बीमारी में पूछण ने दुख मांई। मरतां ही हो गया इकट्ठा ज्यूं माख्यां गुड मांई ॥३॥
बड़ियाजी काकाजी कहकर बोल्या लोग लुगाई। बारे तो हुई चार मिठाई आपां करसां कांई ॥४॥
म्हाने तो रोटी री मुश्किल पास रही नहीं पाई। आगे पडूं तो कुवो है और पाछे पडूं तो खाई ॥५॥
एक तो मालक गयो घरां सूं आतो बात विचारो। दया करो म्हारे पर अब मत मरियोड़ी ने मारो ॥६॥
थे केवो सो सिर माथे पर ऐसो रखो न म्हारे। दिन परण्योड़ी छोरी म्हारी छोड़ गयो है लारे ॥७॥
ठेकेदार धर्म रा बोल्या चोखी बात विचारी। बूढे ने परनावण खातिर झट कर दीनी त्यारी ॥८॥
औसर प्रथा बुरी है इणने छोड़ो जद सुख होई। जड़ामूल से खोदो जिससे फेर करे नहीं कोई ॥९॥

सत्संग का विषय अद्वैत वेदान्त है। जिसकी सिद्धि गीता, योगवशिष्ठ व महात्माओं जैसे देवनाथ जी, राजा मानसिंह जी, सुखराम जी, बनानाथ जी, कबीर जी और उत्तमनाथ जी आदि आदि के भजनों से होती है।

श्री मोहता जी ने यह ज्ञान श्री उत्तमनाथ जी महाराज से लिया और उन्हीं से गीता पढ़ी, श्री उत्तमनाथ जी को ही अपना गुरु मानते हैं। यहाँ श्री उत्तमनाथ जी के बारे में इतना ही लिखना काफी होगा कि उनको देह भाव बिल्कुल न था। एक दफा किसी आपरेशन कराने की जरूरत पड़ी तो डाक्टर को कह दिया कि मुझे बेहोश करने की जरूरत नहीं है, आप आपरेशन कर दीजिये। उन दिनों इन्जेक्शन से किसी शरीर के हिस्से को मुर्दा करने का अमल नहीं था। डाक्टर बहुत मुश्किल से माना और आपरेशन करने के बाद बहुत चकित हुआ।

जब श्री मोहता जी के गुरु इतने उच्च कोटि के थे तो श्री मोहता जी का भी वैसा होना स्वाभाविक है। श्री मोहता जी को भी देह भाव बिल्कुल नहीं है। कई दफा देखा गया है कि बीमारी में बड़ी शान्ति से ओम् का जाप करते हुए पार हो जाते हैं। यह समत्व योगी मनस्वी चिरायु हो और अपने सत्संग व सात्विक कामों द्वारा जनता को सच्चा मार्ग दिखाता रहे।

ओम्—तत्—सत्

मनोहर लाल मित्तल

(बी० ए० एल० एल० बी०, आर० ए० एस० अवसर प्राप्त एडिशनल कमिश्नर राजस्थान बीकानेर। प्रधान मंत्री मनस्वी श्री रामगोपाल मोहता अभिनन्दन समिति)

४१

दुर्लभ गुणों की मूर्ति

मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता है कि वयोवृद्ध साहित्य मनीषी श्री रामगोपाल जी मोहता के इक्यासिवें वर्ष में पदार्पण करने के शुभ अवसर पर उनका विशेष अभिनन्दन किया जा रहा है और उनको "एक आदर्श समत्व योगी" नाम से विशेष ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है। श्री मोहता जी ने समाज और देश की जो सेवा की है उसके कारण वे अभिनन्दन के पूर्णतः अधिकारी हैं। यह समारोह बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था; परन्तु जब भी समाज अपने सेवकों को पहिचान ले और उनका सम्मान करे तभी ठीक है। श्री मोहता जी इस अभिनन्दन को पाकर बड़े नहीं हो जावेंगे—वे तो अपनी सेवा के कारण स्वतः ही बड़े हैं परन्तु समाज उनकी सेवा के ऋण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। मोहता जी का वास्तविक अभिनन्दन तो उनकी सेवाओं का अनुकरण करना, उनकी कार्य पद्धति को अपनाना और उनके गुणों को अपने जीवन में उतारना है। मोहता जी सच्चे साहित्य सेवी एवं समाज सेवी हैं। जिन्हे उनके निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला है वे उनकी विद्वता, सज्जनता, मिलनसारिता आदि अनेक मानवीय गुणों से अवश्य प्रभावित हुए है। उनके वृद्ध शरीर में युवा मस्तिष्क एवं स्नेह भरा हृदय निवास करता है। वे सच्चे कर्मयोगी हैं। उनका दृष्टिकोण व्यापक है और वृत्ति विश्व के प्रति मैत्रीभाव से परिपूर्ण है। दोषों को वे घृणा की दृष्टि से देखते है परन्तु दोषी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हैं और उसके सुधार के लिए तन-मन-धन से प्रयत्न करते हैं। पुरातन और नवीन दोनों के प्रति वे सदैव विवेक पूर्ण संतुलन रखते हैं। नवीन अथवा पुरातन दोनों में से किसी के भी प्रति उनमें कट्टरता नही है। वे नैतिकता एवं उच्च मानवीय मूल्यों की कसौटी पर प्रत्येक वस्तु को देखते हैं। अपने शब्दों के प्रयोग में वे बहुत नपे तुले रहते हैं और जैसा कहते हैं वैसी ही उनकी भावना होती है। मोहता जी दुर्लभ गुणों के मूर्तिमान स्वरूप हैं। यही कारण है कि वे अनेक साहित्य सेवियों और गुणी जनों के आदर के भाजन है। मोहता जी का लिखा "गीता का व्यवहार दर्शन" "गीता विज्ञान", "दैवी सम्पद", "सात्विक जीवन", "समय की मांग" आदि पुस्तकें पढ़कर मुझे उनके विचारों का जो परिचय मिला उसका मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। सुजानगढ़ में "बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन" का तीन दिवस का सम्मेलन हुआ जिसके अध्यक्ष श्री मोहता जी मनोनीत किये गये थे। श्री मोहता जी जब बीकानेर से सुजानगढ़ पहुँचे, तब वहां के अनेक प्रमुख नागरिक आप के स्वागत के लिए स्टेशन पहुँचे थे। विपुल सम्पत्ति शाली होते हुए भी मोहता जी की सादगी, मिलनसारिता और प्रेम भरे व्यवहारों की जो झलक लोगों को स्टेशन पर मिली उसमें लोग बड़े प्रभावित हुए। जहाँ मोहता जी को ठहराया गया था वहाँ कई बार संगीत व भजन आदि का कार्यक्रम हुआ। जब मोहता जी तम्बूरे पर भजन गाते थे तब ऐसे तन्मय हो जाते थे कि देखते ही बनता था। एक बार मैं बीकानेर गया था। मोहता जी के साथ उनके गोवरधन बगीची के आश्रम में गया था जहाँ उनका सत्संग लगता है। वहाँ अनेक स्त्री पुरुष उसके लिए एकत्रित होते हैं। मोहता जी के प्रभावशाली प्रवचन और भजनों से मुझे लगा कि इस प्रकार के सुलझे हुए विचारों के व्यक्ति अपने समाज में विरले ही हैं।

—बद्दराज सिंघी

(सुजानगढ़ के पुराने समाजसेवी और साहित्य प्रेमी)

४२

मनीषि मोहता जी

लक्ष्मी और सरस्वती के वरद् पुत्र सेठ साहब रामगोपाल जी मोहता राजस्थान के उन इने गिने सपूतों में से हैं जिनका व्यक्तित्व अखिल भारतीय स्तर का है। यों तो मैं उनके नाम और काम से बहुत वर्षों से परिचित था पर साक्षात्कार करने का सौभाग्य मुझे १९४२ में हुये बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन के सुजानगढ़ अधिवेशन के अवसर पर मिला। उन्होंने सम्मेलन की अध्यक्षता स्वीकार कर ली है इस सूचना से ही हिन्दी के महान विचारक श्री जैनेन्द्र जी और बहु प्रसिद्ध कथाकार आचार्य चतुरसेन जी का दर्शन लाभ भी सुजानगढ़ को अनायास ही प्राप्त हो गया। सेठ साहब के सुजानगढ़ के अल्पकालीन आवास में मुझे उनके सत्संग और सेवा का इच्छित अवसर मिला। भारत के महान उद्योगपति, गम्भीर दार्शनिक और सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत सेठ मोहता मुझे उच्च विचार और नियमित सादे जीवन के वस्तुतः ही प्रतीक प्रतीत हुये। खादी की पाग, बन्द गले का कोट और घुटनों तक चढ़ी हुई राजस्थानी धोती की यह साधारण पोशाक ही जैसे उनकी असाधारणता बन गई है। महिला जागरण और हरिजन सेवा का काम तो उन्हें अपने जीवन से भी अधिक प्रिय है। साहित्य सम्मेलन के व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद भी वे हरिजन बस्ती में भंगी भाईयों के बीच में बैठकर कीर्तन करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। उनकी 'प्रेम भजनावली' के राष्ट्रीय और सामाजिक उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण लोकगीत आज भी कतिपय घरों की प्रातः कालीन प्रार्थना बने हुये हैं। अब भी जब कभी मैंने किसी सार्वजनिक काम के लिये विशेष कर हरिजन सेवा के प्रसंग में उनके सहयोग और अमूल्य परामर्श की कामना की है तो वह मुझे सहज ही प्राप्त होता रहा है। कार्य कर्त्ताओं की उनको बड़ी पहचान और परख है। आज के कितने ही मेधावी और कुशल व्यक्तित्व सेठ मोहता की ही प्रेरणा और पितृ तुल्य प्रोत्साहन की देन हैं। मानव जीवन के मूल्यों के प्रति उनकी गहरी निष्ठा है और सामाजिक विकास में ही व्यक्ति का विकास निहित है इस युग-सत्य को उन्होंने पूर्णतया समझा है। मैं मनीषी सेठ रामगोपाल जी मोहता के इक्यासीवें वर्ष में शुभ पदार्पण के अवसर पर उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और उनके दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

कन्हैयालाल सेठिया

(राजस्थान के यशस्वी कवि, लेखक व विचारक और मूक सार्वजनिक कार्यकर्ता। सरल, भावुक और सहृदय व्यक्तित्व।)

●

४३

जन सेवा का उदाहरण

श्री रामगोपाल जी मोहता से कुछ समय से मेरा परिचय रहा है। जिन दिनों में बीकानेर में कमिश्नर था मुझे उनके समाज सेवा के कार्यों को देखने का अवसर मिला और खासकर सन् १९५१-५२ के अकाल के

दिनों में राहत कार्य के दौरान में मेरा उनसे और भी अधिक सम्पर्क हुआ। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जन-सेवा का जो उदाहरण उन्होंने उस समय प्रस्तुत किया वह हम सब के लिए अनुकरणीय हो सकता है। बीकानेर क्षेत्र में श्री मोहता जी का "पर्दा-निवारण", "मृतक-भोज निषेध" संबंधी कार्य और अन्य समाज-सेवा के कार्यों मे विशेष महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि श्री रामगोपाल जी दीर्घायु हों और समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने में जिसका उन्होंने बीड़ा उठाया है, उन्हे अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो।

भगवतसिंह मेहता
आई० ए० एस० (राजस्थान)

•

४४

लोकोपकारी व्यक्तित्व

विद्या विवादाय धनम् मदाय,
शक्ति परेशाम पर पीड़िनाय।
खलस्य साधो-विपरीत मेतत्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

विद्या से विवाद, धन से अहंकार और सत्ता से परपीडन; ये दुष्टों का स्वभाव होता है। इसके विरुद्ध सज्जन लोगो में विद्या से ज्ञान, धन से दान की इच्छा और सत्ता से सेवा भाव उत्पन्न होता है।

इस ग्रन्थ के चरित्र नायक श्री रामगोपाल जी मोहता राजस्थान के गण्यमान्य धनाढ्य व्यक्तियों मे से हैं साथ ही वे उच्चकोटि के विद्वान भी हैं। इन दोनों विभूतियों का इन्होंने आदर्श उपस्थित किया है। विद्या प्राप्त करके ये ज्ञानी बने और समाज में ज्ञान वितरण का भरसक प्रयत्न किया। अपने धन का पूर्ण सदुपयोग किया व लाखों रुपये ज्ञान सेवा में खर्च किये। अपना स्वयं का जीवन सादा और संयमी बनाकर रखा। मेरा उनसे करीब ३० साल से अधिक का परिचय है और अत्यधिक घनिष्ठता रही है। अतः मुझे श्री मोहता जी के विषय में काफी जानकारी है। मुझे आपके साथ बीकानेर में रहने का अनेक बार अवसर मिला है। जोधपुर नगर में श्री मोहता जी की ओर से स्थापित वनिता-विश्राम भवन के प्रबन्ध के सम्बन्ध मे सभी नगर निवासी भली प्रकार परिचित हैं। मैं, जो कि इस विश्राम भवन की प्रबंधक समिति का अध्यक्ष तथा ट्रस्टी रहा हूँ, अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि श्री मोहता जी के समकक्ष विवेकी और उदार हृदय व्यक्ति बहुत कम देखने में आये हैं। मैंने कई वर्ष पूर्व श्री मोहता जी से बीकानेर में कहा था कि पूँजीपति लोग यदि आपके जीवन को आदर्श बनाकर उसका अनुकरण करें तो हमारे देश मे साम्यवाद और समाजवाद की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, क्योंकि भारत के ऋषि-मुनियों ने अपने बुद्धि व तपोबल के प्रभाव से इस देश की संस्कृति और समाज व्यवस्था ऐसी बनाई थी कि जिससे सबका हित और कल्याण होता था।

यह विश्व ईश्वर की एक रचना है और हरेक व्यक्ति इस रचना का एक अंग है। इसलिए प्रेम और

सहयोग का जीवन बिताना ही व्यक्ति जीवन में उत्थान का सबसे बड़ा कारण है। जिस व्यक्ति से जितना लाभ समाज को होता है यही उसकी योग्यता और विवेक की कसौटी है। भारतीय संस्कृति में स्वार्थ व द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं था। अपितु कर्तव्य परायणता पर सारी सामाजिक व्यवस्था आधारित थी। जैसा कि हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि 'परस्परम् भावयंता श्रेयः परम वाप्स्यथ:। (Make your contribution and co-operate for the benefit of one and all)।

एक बार मैंने मोहता जी से कहा था कि भारत में साम्यवाद और समाजवाद का पदार्पण हो गया है और यदि पूंजीपति नहीं सम्भलेंगे तो इसका परिणाम बहुत ही अवांच्छनीय होगा। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे अपने परिचितों का ध्यान इस ओर आकर्षित करें। इस पर उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। यह बहुत पुरानी बात है। उसके बाद बड़े-बड़े परिवर्तन होते रहे हैं और भविष्य में अत्यधिक होते रहने की सम्भावना है। आर्थिक दृष्टि से तो यह चीज अवांच्छनीय नहीं है पर धार्मिक दृष्टि से यह अत्यधिक अवांच्छनीय है। क्योंकि हमारी संस्कृति में तो अभ्युदय (Material Prosperity) और श्रेय (Spiritual Uplift) दोनों का सुन्दर समन्वय किया गया था कि आधुनिक समाजवाद और साम्यवाद में श्रेय के लिए कोई स्थान नहीं रक्खा गया है जिससे जीवन का बहुत बड़ा अंग अपंग सा हो जाता है। यह विश्वव्यापी सिद्धान्त है और सनातन धर्म का मूल मन्त्र है। (Charity Covereth a multitude of Sins)। हर प्रकार का दान सब से ऊँची और आवश्यक वस्तु है। जब विद्या और धन दोनों का दान साथ होता है तो समाज को बहुत लाभ होता है। इस दृष्टि से श्री मोहता जी का जीवन बहुत सफल एवं सार्थक रहा है। उससे लोगों को बहुत शिक्षा मिली है और मिलती रहेगी। इस ग्रन्थ की भी यही सफलता होगी कि इससे सबको प्रेरणा मिलती रहे।

मैं इस ग्रंथ के द्वारा श्री मोहता जी को श्रद्धांजलि अर्पित करने में अपना सौभाग्य समझता हूँ।

रणजीतमल मेहता
(रिटायर्ड जज, हाईकोर्ट, जोधपुर)

•

४५

महान व्यक्ति

श्रीमान् मोहता उच्च कोटि के आदर्श महान व्यक्ति हैं। ऐसे महान व्यक्ति ढूंढने से भी बहुत कम मिलेंगे। उनमें ३०-३५ वर्ष की आयु में ही साहित्यिक प्रतिभा झलकने लग गई थी। उस समय आपने "डांडियों का खेल" व "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" नामक पुस्तकें लिखी थी और डांडियों के गायन में जो अश्लील भाव थे उन्हें निकाल कर उनकी जगह शिक्षाप्रद भावों का समावेश किया और कई नये गायन अपनी ओर से बनाये जो शिक्षाप्रद थे। फिर स्वामी उत्तमनाथ जी के सत्संग से आप का झुकाव आध्यात्मिक ज्ञान और वेदान्त की ओर हुआ। "सात्विक जीवन", "दैवी सम्पद" एवं "गीता का व्यवहार दर्शन" आदि कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। सारी गीता और उसका भाष्य आपको कंठस्थ है। यह आपके रोम-रोम में बसा हुआ है। आपने श्रीकृष्ण के उपदेशों के अनुसार अपने जीवन को ढालने का यत्न किया है। श्री डूंगर कालेज में गीता के सम्बन्ध

सेठ चांदरतन जी बागड़ी
(मोहताजी की स्वर्गीया पुत्री मुगनीबाई के पति)

में एक सभा हुई थी तब आपने यह कहा था कि "मेरे रोग शय्या पर पड़े होने पर भी यदि कोई गीता के विषय मे मुझ से प्रश्न करेगा तो यथा शक्ति उत्तर देने मे मुझे बड़ी खुशी होगी।"

आपकी गृहणी भी बड़े सरल स्वभाव की और आपकी आज्ञानुसार चलने वाली मिली थी। उनकी अस्वस्थता में आपने उनकी बड़ी सेवा की और धन भी खूब खर्च किया। आपके परिवार मे आपकी पुत्री, स्त्री एवं दोहिते का स्वर्गवास प्रायः एक साथ ही हुआ। उस सब को आपने बड़े धैर्य से सहन किया। आपके पास कोई सहानुभूति प्रदर्शित करने जाता तो आप कहते कि पहले मेला भरा हुआ था अब खिंडता हुआ है इसमें सोच काहे का। इस तरह के घोर दुःख में इतना धैर्य रखना आप जैसे महान आत्मा का ही काम था।

आपका स्वभाव बहुत ही शांत, सरल एवं सात्विक है। जब कभी शारीरिक कष्ट आ जाता है तो आप बहुत शांति से उसे सहन कर लेते हैं। आपकी स्मृति इस वृद्धावस्था में भी नौजवानों से कहीं अधिक है। बुद्धि भी बड़ी तीव्र है। जिस समस्या को सुलझाने में लोग हार खा जाते हैं उसे आप सहज ही में सुलझा देते हैं। सबको सच्ची व हित की सलाह देते है। आपका खाना व पहनना सब सादा है।

दान देने में आपकी बहुत रुचि है। अपना कर्त्तव्य समझ कर गीता में लिखे अनुसार आप सात्विक दान देते हैं। बीकानेर शहर मे आपके माफिक और आपसे ज्यादा कई धनवान हैं परन्तु दान देने में आपकी आपका बराबरी कोई नही कर सकता।

आपका शिक्षा विशेषतः स्त्री शिक्षा पर बहुत अधिक ध्यान है। उनकी गिरी हुई दशा सुधारने में काफी हाथ है।

शारीरिक शिथिलता रहते हुए भी आप नित्य सत्संग करते हैं और आपके सत्संग एवं उपदेशों से बहुतों को लाभ पहुंचता है।

चांद रतन बागड़ी

(मोहता जी के दामाद और सौभाग्यवती रतन बाई दम्माणी के पिताश्री)

•

४६

कर्मयोगी मोहता जी

मैं श्रीमान् रामगोपाल जी मोहता के अभिनन्दन ग्रन्थ की हृदय से सफलता चाहता हूँ। मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क में गत ४० वर्षों से रहा हूँ। वे वास्तव में राजर्षि व कर्मयोगी सारी आयु रहे हैं और एक आदर्श समत्व योगी हैं। उनसे हजारों लोगों ने मार्ग दर्शन प्राप्त किया। यह बड़े सौभाग्य की बात होती यदि मैं विस्तृत रूप से उनके सार्वजनिक जीवन के विषय में कुछ लिख सकता। मैं निरन्तर बीमार रहता हूँ। अतएव विस्तार से लिखना सम्भव नहीं है। वास्तव में वे अपने आध्यात्मिक चिंतन द्वारा देश में राजनैतिक क्रान्ति लाने की पृष्ठभूमि व नींव स्वरूप रहे। उन्होंने मारवाड़ी समाज में धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न की है। देश, राष्ट्र, समाज, धर्म एवं आर्य संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए जीवन संग्राम में उनकी तपस्या प्रत्येक भारतीय के

लिए आदर्श है। महा दयालु परमपिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि वे भारत माता की इसी प्रकार निरन्तर सेवा करते रहें।

चन्द्रानन सरस्वती

(सुप्रसिद्ध कर्मवीर, देशभक्त स्वर्गीय श्री चांदकरण जी शारदा ने वानप्रस्थ में अपना नाम "चन्द्रानन सरस्वती" रखलिया था। १९२० में आप कट्टर कांग्रेसी और असहयोगी थे; किन्तु अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ आपने कांग्रेस को छोड़ दिया और हिन्दू महासभा तथा हिन्दू संगठन के काम में अपने को तन्मय कर दिया। तब से आपकी प्रमुख हिन्दू और आर्य समाजी नेताओं में गणना की जाती थी। वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति के आप दीवाने थे। माहेश्वरी किंवा मारवाड़ी समाज के पहली श्रेणी के पुराने सुधारकों में आपके परिवार की गणना की जाती है। शारदा परिवार को आपके और स्वर्गीय दीवान बहादुर श्री हरविलास जी शारदा के कारण विशेष ख्याति प्राप्त हुई।)

•

४७

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य हृष्यामिव पुनः पुनः

सन् १९१९ में श्रीमान सेठ रामगोपाल जी मोहता से सम्पर्क प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। यह साल बीकानेर के इतिहास में अनेक सुधार-योजनाओं के लिए स्मरणीय है। शिक्षा-विभाग में प्रगति की योजना का मुख्य स्थान था। इस योजना के फलस्वरूप इस वर्ष के अक्टूबर मास में श्री सम्पूर्णानन्द जी का और मेरा राजकीय विद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पदों पर प्रवेश हुआ। मैं यदा कदा श्री गुण प्रकाशक सज्जनालय में समाचार पत्र पढ़ने जाया करता था। मोहता जी उसके पदाधिकारी होने के कारण उसका काम देखने पधारा करते थे। एक दिन शिक्षा के सम्बन्ध में उनसे बातचीत हुई। हम दोनों के विचारों में समता होने के कारण मित्रभाव का प्रादुर्भाव हो गया। उन दिनों में मैं सरदारों के स्कूल (वाल्टर नोबुल्स स्कूल) का प्रधानाचार्य था। उनके ही प्रेमपूर्ण आग्रह से मैं पुस्तकालय का सभासद बन गया और सन् १९२० में उसका मन्त्री चुना गया। श्रीमान सेठ शिवरतन जी मोहता भी इस संस्था के कार्य में प्रमुख भाग लिया करते थे। इस प्रकार दोनों बंधुवरों से मेरी घनिष्ठता हो गई। उनके सौजन्य, शिक्षा प्रेम, और देश-सेवा के लिए अदम्य उत्साह का विशेष प्रभाव मेरे युवक हृदय पर पड़ा।

सन् १९२१ में मुझे श्री मोहता मूलचंद विद्यालय की प्रबन्धकारिणी समिति का सदस्य चुना गया। सन् १९२२ के दिसम्बर के अन्त में एक दिन मोहता जी मेरे स्थान पर पधारे। उन्होंने फरमाया कि विद्यालय के संचालन में मैं आपका सक्रिय सहयोग चाहता हूँ। मुझसे सकारात्मक उत्तर मिलने पर उन्होंने अवैतनिक मन्त्री का पद स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा। जब सेठ साहब मेरी यह बात सहर्ष मान गये कि कोषाध्यक्ष के पद पर रहते हुए वे उपमन्त्री बनना स्वीकार करेंगे, तब पहली जनवरी १९२३ से यह कार्य-भार लेना मैंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उन्होंने मुझे जो आश्वासन दिया था कि वे विद्यालय को उच्च श्रेणी की शिक्षा-संस्था बनाने के लिए तन व धन से सर्वथा और सर्वदा सहयोग देंगे उसका पालन उन्होंने अक्षरशः किया। मन्त्री पद

पर मैं जून १९४१ तक कार्य करता रहा तब बीकानेर राज्य के शिक्षा-विभाग का संचालक होने के नाते मुझे इस सेवा का परित्याग करना अनिवार्य हो गया था। पुस्तकालय मे पहले मन्त्री और बाद मे सभापति के पदों पर मैं सेठ साहब के साथ सन् १९२० से १९३५ तक कार्य करता रहा। इतने दीर्घकाल तक मोहता जी सरीखे मनीषी और शिक्षा प्रेमी के साथ जनता-जनार्दन की सेवा करने का सुयोग मिलने को मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। इस अवधि मे घटी हुई ऐसी अनेक घटनाएँ और प्रसंग है कि उनसे मोहताजी के महान व्यक्तित्व और उनके दिल और दिमाग की विशेषताओं की गहरी छाप मुझ पर ऐसी लगी है कि उनके सम्बन्ध में संजय के यही शब्द कहे जा सकते हैं। कि "तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य हृष्यामिच पुनः पुनः"। अर्थात् उनको स्मरण करके मैं बारबार पुलकित हो जाता हूँ।

बीकानेर में श्री गुण प्रकाशक सज्जनालय सब से पहली सार्वजनिक संस्था और श्री मोहता मूलचन्द विद्यालय सबसे पहली आधुनिक शिक्षा संस्था थी। इन दोनों संस्थाओं द्वारा जनता में जो जागृति हुई और शिक्षा का प्रसार हुआ, उसके कारण मोहता परिवार विशेषतया सेठ साहब के प्रति प्रत्येक सहृदय बीकानेरी का मन आभार से भरा रहेगा। सुबह से शाम तक पाठकों की इतनी भीड़ रहती थी कि बैठने के स्थान के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। विद्यालय मे प्रोत्साहन के लिए छात्रों को पुस्तकें और लेखन सामग्री मुफ्त दी जाती थी। दीन छात्रों को जिनकी संख्या अधिक होती थी और छात्रालय में प्रत्येक कक्षा में योग्य छात्रों को मासिक वृत्तियाँ दी जाती थी। छात्रालय मे दीन छात्रों को कुछ नही देना पड़ता था और अन्य छात्रों से केवल ५ रु० मासिक फीस ली जाती थी। राज्य के सभी भागों से छात्र आकर इन सुविधाओं से लाभ उठाते थे। सन् १९२५ के प्राप्त आंकड़ों के अनुसार केवल छात्रालय पर लगभग १०,००० रु० वार्षिक व्यय आता था।

"विद्यालय" का संचालन प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता था। सभापति यथा समय चुना जाता था और प्रत्येक निर्णय बहुमत से होता था।

सन् १९२५ से सेठ साहब की उदारता के कारण हाई स्कूल की परीक्षा मे प्राइवेट तौर पर बैठने वाले छात्रों के लिए अध्यापन का प्रबन्ध हो गया था। सन १९२८ में यह निश्चय हुआ कि हाई स्कूल परीक्षा के लिए 'विद्यालय' का सम्बन्ध राजपूताना बोर्ड अजमेर से कर दिया जाय। बोर्ड की ओर से निरीक्षण के लिए स्वर्गीय प्रो० अमरनाथ झा (जो बाद में प्रयाग और पटना के विश्वविद्यालयों के उपकुलपति नियुक्त हुए थे) बीकानेर पधारे थे। वे विद्यालय के प्रबन्ध और पढ़ाई से परम प्रसन्न हुए और सेठ साहब को बधाई दी कि उनकी उदारता से इतनी अच्छी शिक्षा संस्था चल रही है। जुलाई सन् १९२९ से संस्था श्री मोहता मूलचन्द हाई स्कूल में परिणित हो गई। सन् १९३० से राज्य की ओर से १२०० रु० की वार्षिक सहायता मिलने लगी। सन् १९३३ में अर्थकरी विद्या के सिद्धान्त के अनुसार छात्रों के हित के लिए छात्रालय मे "शिल्प-शाला" खोली गई जिसमें प्रतिदिन शाम को अनेक उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाने लगी।

सेठ साहब सौहार्द और सौजन्य की मूर्ति हैं। जब सन् १९३० के सितम्बर मास में दो साल के लिए कानून, शिक्षा-शास्त्र और मनोविज्ञान का अध्ययन करने के लिए मैं लंदन विश्वविद्यालय में पढ़ने गया, तो उन्होंने फरमाया कि महत्वपूर्ण मामलों मे मेरा परामर्श लिया जाता रहेगा, इसलिए मन्त्री के पद में परिवर्तन करना अनावश्यक है। अपना अमूल्य समय निकाल कर वे मुझे स्कूल के मामलों के बारे में अवगत करते रहे। सन् १९३६ की जुलाई में आगरे के सेंट जौन्स कालेज में तीन साल के लिए दर्शन शास्त्र का प्रोफेसर होकर मैं गया; तब भी पूर्ववत् मैं मंत्री बना रहा। यह उनका मित्रभाव था और साथ ही हृदय की विशालता। प्रसंगवश उनकी गहन ज्ञान-गरिमा के बारे में कहना पड़ता है कि सन् १९३७ में जब उनकी पुस्तक "दैवी सम्पद" का अवलोकन विश्व-विख्यात विद्वान प्रो० ग्रियर्सन ने किया तो उन्होंने मुक्त कंठ से मोहता जी की विद्वत्ता की सराहना की। यह समालोचना विलायत के मासिक पत्र "इंडियन रिव्यू" में प्रकाशित हुई थी।

समत्व योग सेठ साहब के व्यवहार में व्यापक है। एक छोटी घटना लिखी जाती है। उस समय स्वर्गीय मूलचन्द जी मोहता की धर्मपत्नी जीवित थी। उनका एक निकट सम्बन्धी वार्षिक परीक्षा में फेल हो गया और अन्य फेल हुए बालकों के साथ उसे भी कक्षा में रुकना पड़ा। बहुत कुछ कहा-सुनी होने पर भी सेठ साहब अपने सिद्धान्त पर अचल रहे कि सब छात्रों के साथ समान व्यवहार होना चाहिए और अनुत्तीर्ण छात्रों की भलाई पूर्व कक्षा में रहकर कमजोरी दूर करने में है। किसी ने सच कहा है कि "न्यायात पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।"

किसी प्रश्न पर अपनी सम्पत्ति अनासक्त होकर सेठ साहब प्रकट करते हैं। सन् १६३५ में शिक्षा विभाग के संचालक मि० बी० ए० इंगलिश हाई स्कूल की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य बनाये गये। उन दिनों श्री शिवशंकर जी अग्निहोत्री बी० ए० स्कूल के एक्टिंग प्रधानाध्यापक थे। अजमेर बोर्ड के नियमों के अनुसार हाई स्कूल के हेडमास्टर के लिए एम० ए० या बी० ए० ट्रेंड होना जरूरी था, अतएव इस योग्यता वाले व्यक्ति के लिए विचार होते समय मि० इंगलिश ने यह भी राय दी कि श्री अग्निहोत्री को सैकंड मास्टर बना दिया जाय और उसके स्थायी पद एसिस्टेंट हैडमास्टर पर उनके नीचे काम करने वालों श्री कपूर एम० ए० को उन्नत कर दिया जाय। अनुभवी और पुराने मुख्याध्यापक श्री अग्निहोत्री को एक पद नीचे गिरा देने के प्रस्ताव का विरोध हुआ। उन दिनों मैं श्री डूंगर कालेज का प्रधानाचार्य था। शिक्षा विभाग का डाइरेक्टर होने के कारण मि० इंगलिश को पूरी आशा थी कि सेठ साहब उनके प्रस्ताव का अनुमोदन करेंगे। पर उन्होंने साहब से कहा कि हमारे स्कूल में सबके साथ न्याय का बर्ताव होता है, अतएव बिना कारण श्री अग्निहोत्री को कैसे एसिस्टेंट हैडमास्टर से द्वितीय अध्यापक किया जा सकता है। अन्त में बहुमत साहब के विरुद्ध हुआ और वे ऐसे खिसिया गये कि कमेटी में आना छोड़ दिया।

वेदान्ती होते हुए भी मोहता जी विनोद प्रिय हैं। जब छात्रालय में प्रीतिभोज हुआ करते तो वे शिक्षकों और छात्रों के साथ बैठकर भोजन ही नहीं करते, प्रत्युत संगीत, कविता-पाठ और विनोद-वार्ताओं में भाग लेकर सबका मनोरंजन करते। एक शिक्षक महाशय ऐसे भोजन भट्ट थे कि चौबे न होने हुए भी मथुरा के चौबों को मात कर सकते थे। एक दिन भोजन करने के बाद भी किसी मित्र की दावत में सहसा पहुँचकर अस्सी गुलाब-जामुन और चार लड्डू अपनी दुरंतपूर्ण उदरदरी में पहुँचा कर ही डकार ली और फिर भी अपने घर लौटकर औटा हुआ सेर भर दूध पी गये। सेठ साहब उनके पास जा जा कर भोजन सामग्री परोसवाते। एक प्रीतिभोज में उन महाशय को खूब छका कर तर माल खिलाया गया। जब वे तुलवाये गये तो उनका वजन चार सेर अधिक हुआ। वे भोजन-भूपति कहलाने लगे। सेठ साहब के बनाए हुए भजन अनेक हैं और वे बड़े सरल, सरस और भावपूर्ण हैं।

इस छोटे से लेख में मैंने विशेषणों के बजाय सेठ साहब के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख विशेषतया किया है, क्योंकि किसी कवि ने कहा है कि "करणी ही कह देत आप कहिये नहिं सांई।" समत्व साधक के लिए ऐसा करना ही समीचीन है। अन्त में मेरी यह कामना है कि सेठ साहब शतायु हों और स्वस्थ रहें जिससे उन सरीखे सज्जन द्वारा हमारे देश की विविध सेवाएँ निरंतर सम्पादित होती रहें।

ठाकुर जुगलसिंह खींची

एम० ए०, पी० एच० डी०, बार-एट-ला,

(बीकानेर के वयोवृद्ध सुशिक्षित शिक्षा प्रेमी दर्शन-शास्त्री। राजपूत सरदारों में आप सरीखे शिक्षा प्रेमी इने गिने ही व्यक्ति हैं। मोहता जी के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में सहयोगी होने का परम सौभाग्य आपको प्राप्त है।)

४८

कुछ अविस्मरणीय प्रसंग

मोहता आयुर्वेद औषधालय के प्रधान चिकित्सक होने के नाते मुझे वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता को बहुत समीप से देखने का अवसर मिला है और उनका स्नेह, विश्वास तथा कृपा भी मुझे भरपूर मात्रा मे प्राप्त हुई है। अपने कुछ भाव प्रगट करके उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने की प्रबल इच्छा होते हुए भी मैं उनको केवल इसलिए प्रगट करना नहीं चाहता कि उनको अपनी प्रशंसा सुनने की कतई इच्छा नही है और वे उसको बुरा मानते हैं। फिर भी अपने कुछ भाव प्रगट करने की इच्छा का संवरण मैं नहीं कर सका। परन्तु कठिनाई यह है कि उनको कहाँ से प्रारम्भ करूं और कहाँ समाप्त करूं। मोहता जी के व्यक्तिगत गुणों और लोक सेवा का विस्तार इतना अधिक है कि उनका कोई ओर छोर पाना कठिन है। जब से आप ने अपने व्यापार व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धो को संभालना शुरू किया है उससे भी पहले से आपकी लोकसेवा प्रारम्भ है। अपने को अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी मानकर उसका विनियोग जन सेवा के लिए करने का कोई भी अवसर आपने हाथ से जाने नही दिया। प्रगट सेवा की अपेक्षा मूक सेवा कही अधिक है। उसको आपके सिवाय कदाचित ही कोई दूसरा जानता होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का समान रूप से वरदान देते हुए भगवान ने आपको दयाभाव से भी ओतप्रोत कर दिया है। दीन दुखियों के प्रति उदारता, सहृदयता और सहानुभूति से आपका हृदय सराबोर है। उनका करुणापूर्ण आर्त्तनाद आप सुनते ही पसीज जाते हैं। वैसे तो समाज का कोई भी पददलित वर्ग आपकी सेवा से वंचित नहीं है; परन्तु सहज भाव से उसका सबसे अधिक लाभ हरिजनों और महिलाओं को प्राप्त हुआ है; क्योंकि समाज में वे ही सबसे अधिक दलित, शोषित एवं पीड़ित हैं।

हरिजनों के प्रति उदार एव सहृदय भाव रखते हुए आपने उनकी जो सेवा की है वह गीता के निष्काम कर्त्तव्य पालन का सर्वोत्तम उदाहरण है। उसके लिए आपको रूढ़ि पंथियों तथा पुरातन पंथियों के प्रकोप का सबसे अधिक शिकार बनना पड़ा है। एक चिकित्सक के नाते मेरा प्रवेश प्रायः सभी तरह के विचारो के लोगो के घरों मे होता रहता है और मुझे मोहता जी की आलोचना सुनने का भी पूरा अवसर मिलता है। लोग आपके सेवाभाव की सराहना करते हुए भी हरिजनों के प्रति प्रगट की गई आपकी आत्मीयता को सहन नहीं करते और कहते हैं कि आपका अछूतोद्धार और विधवा विवाह का काम सर्वथा निन्दनीय है। अपनी विरोधी भावनाओं को आप तक पहुंचाने का मुझे सर्वोत्तम साधन मानने के कारण भी वे मेरे सामने खुल जाते हैं। बहुत से तो भद्दी भद्दी गालियां देने में ही अपने विरोध प्रदर्शन को सार्थक समझते हैं। वैश्यों और ब्राह्मणों के मुहल्लों में दीवारों पर मोटे मोटे अक्षरों में यह लिखा होता था कि "रामगोपाल मोहता भंगी है", "रामगोपाल मोहता का नाश हो" और "रामगोपाल मोहता अछूत है।" आपके नाम से गंदे गीत लिखकर आपकी कोठी के सामने झांझ आदि बजाकर गाए जाते थे। घर की महिलाओं तक के लिए अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु आप धीर, वीर एवं विश्वासी व्यक्ति की तरह अपने सेवाभाव तथा कार्य मे निमग्न रहे। मैंने एक बार आप से पूछ ही लिया कि जब ये लोग आपके सुधारों को अच्छा नही मानते, गाली देते हैं और बुरा भला कहते हैं तब आप अपना लाखों रुपया और अमूल्य समय तथा तन मन, इन कार्यों में क्यों खर्च करते हैं और क्यों इतना कष्ट उठाते हैं? सहज स्वभाव से उत्तर मिला कि सबको अपना अपना कर्त्तव्य करने की स्वतंत्रता है।

* * *

महिला वर्ग की सेवा का जो कार्य अकेले सेठ साहब ने किया है वह अनेक संस्थाएं भी मिलकर नहीं कर सकी। महिलाओं की शिक्षा, उन्नति, प्रगति तथा विकास के लिए अनेक संस्थाएं और उनके उद्धार तथा विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए वनिता आश्रम सरीखी अनेक संस्थाएं आप द्वारा स्थापित व संचालित इस समय भी विद्यमान हैं। इस क्षेत्र में काम करने वाली अनेक संस्थाओं को आपकी सहायता प्राप्त हुई है।

व्यक्तिगत रूप से किसी भी संत्रस्त, पीड़ित अथवा उपेक्षित महिला को सहायता एवं संरक्षण प्रदान करने के लिए आप सदैव तत्पर रहते हैं। सन् ४२ के मार्च मास की एक घटना है कि दुपहर की धूप में दिन में दो बजे मैंने एक महिला को देखा, जो एक दो दिन के शिशु को बत्ती से बतासे का पानी पिला रही थी। मुझे कुछ संदेह हुआ तो मैंने पूछताछ की। मुझे पता चला कि वह अभागी कन्या किसी ऐसी संत्रस्त विधवा की पुत्री है जो उसको अपने स्तन का दूध भी पिलाना नहीं चाहती और वह उसको यहाँ ऐसे ही छोड़ गई। मातृस्नेह विहीन, अरक्षित तथा अनाथ ऐसी कन्याओं का सहारा उन दिनों में केवल मोहता जी के ही यहाँ मिलना सम्भव था। उस कन्या का भी लालन पालन किया गया। ऐसी कितनी ही कन्याएं माया, ललिता तथा लक्ष्मी आदि के नाम से बड़ी होकर अच्छे घरों में ब्याह दी गई और मातृपद को सुशोभित कर सद्गृहस्थ का जीवन बिता रही हैं।

उसी वर्ष के मई मास की एक और घटना है। धर्मशाला के जमादार ने मुझे सूचना दी कि एक अज्ञात युवा महिला धर्मशाला में आकर मोहता जी का पता पूछ रही है। मैं उससे जाकर मिला। उसकी आयु लगभग २१-२२ वर्ष की होगी। क़द लम्बा, शरीर स्वस्थ, बोलचाल में चतुर और विचारों में कुछ गम्भीर जान पड़ी। उसका हृदय बड़ा ही संत्रस्त व व्याकुल दीख पड़ा। कहीं से दुखी होकर मोहता जी की शरण में आई प्रतीत होती थी। इलाहाबाद से निकलने वाली पत्रिका "चांद" की एक प्रति और पहने हुए कपड़ों के सिवाय उसके पास कुछ और न था। बातचीत करने पर उसने एक पत्र मुझे दिया जिस पर केवल इतना लिखा था—"गरीब महिलाओं के शिक्षण के लिए सेठ जी समुचित प्रबन्ध कर देते हैं।" बड़ी व्याकुलता से उसने कहा कि "मुझे सेठ जी से मिला दीजिए। वे मेरी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध करके मुझे नर्स बना दें। मैं सेठ जी के खर्च पर कन्या गुरुकुल देहरादून में शिक्षा प्राप्त करना चाहती हूँ।"

मोहता जी कराची में थे। एक लम्बे तार से उनको उसकी सूचना दी गई। अर्जेन्ट तार से उत्तर मिला कि उसकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध अभी बीकानेर में ही कर दिया जाय। युवती को यह तार बता दिया गया और उसको मैंने अपनी माता जी के संरक्षण में रख कर पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया।

कुछ समय बाद वह कुछ शांत हुई और घर की स्त्रियों से उसने कुछ अपनापन अनुभव करना शुरू किया। अपनी पत्नी की मार्फत मुझे पता चला कि वह बनारस के एक संभ्रान्त कायस्थ परिवार की कन्या है। दो भाइयों में से एक रेलवे में और दूसरा पुलिस में मुलाजिम है। तीन बहनें हैं। माता जीवित है। दोनों भाइयों का विवाह हो चुका है। घर गिरवी रखकर किसी प्रकार दो बहनों का भी विवाह कर दिया गया है। उसके विवाह के लिए एक आंख में कुछ दोष होने के कारण जो दहेज मांगा जाता है वह भाइयों की सामर्थ्य के बाहर है। भौजाई तंग करती रहती है, भाई उदास रहते हैं और माता रोती रहती है। वह अपने कारण सबको दुखी देखकर स्वावलम्बी बनने का निश्चय करके घर से निकल पड़ी है। अपनी कुछ सहेलियों से बातचीत करने पर उसको "चांद" पत्रिका की यह प्रति मिली और उसमें उसको सेठ जी का पता मालूम हुआ। इसी प्रकार उसके घर का पता भी मालूम कर लिया गया। बनारस में पुलिस में काम करने वाले उसके भाई को तार से सूचना दे दी गई। उसका भाई तार पा कर बीकानेर आ पहुँचा। मोहता जी के उदार स्वभाव से प्रदत्त सहायता से वह स्वावलम्बी बनने के सम्बन्ध में निश्चित हो चुकी थी इसलिए घर लौटने को तैयार न थी। भाई ने दो

रो कर उसको लौटने के लिए सहमत किया और मोहता जी तथा हम लोगों को उसने उसके साथ सद्व्यवहार करने का विश्वास दिलाया; परन्तु दहेज के अभिशाप के कारण उसका वह भाई कभी कभी बुरी तरह रो पड़ता था, जिसको सहन करना भी बड़ा कठिन था। अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन दोनों का बीकानेर से विदा होना और समाज की दहेज की कुप्रथा से संत्रस्त उन भाई बहन के विलखने का दृश्य अब भी जब याद आता है तो हृदय रो पड़ता है। यह केवल एक उदाहरण है उन अनेक घटनाओं में से जिनमें मोहता जी का आश्रय पाकर न मालूम कितनी महिलाओं ने अपने जीवन का सुधार एवं निर्माण किया है।

*　　　　*　　　　*

मोहता जी सामाजिक रूढियों तथा धार्मिक अंध परम्पराओं को समूल नष्ट कर देने के लिए प्रयत्न-शील हैं। महिलाओं की हीनता द्योतक किसी भी प्रथा या रूढ़ि को आप बिल्कुल भी सहन नहीं करते। इसी कारण दहेज की कुप्रथा के सबसे अधिक विरोधी हैं और बड़ी कठोरता से इस सम्बन्ध में आचरण करते और करवाते हैं। आपके घर के कई लड़कों के बड़े बड़े घरानों में विवाह सम्बन्ध हुए हैं; किन्तु कभी भी किसी भी विवाह में दहेज देखने में नहीं आया और सभी विवाह अत्यन्त सौहार्दपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुए हैं। पिछले ही दिनों में आपकी दोहिती श्रीमती रतनबाई दम्माणी के पुत्र का विवाह एक बड़े धनी घराने की कन्या के साथ हुआ। उस घराने के लोग समाज सुधार के मामलों में मोहता जी के समान प्रगतिशील नहीं हैं। फिर भी विवाह मे उनसे दहेज आदि कुछ भी लिया नहीं गया। सम्बन्ध करने के समय ही यह ठहरा लिया गया था कि दहेज आदि का किसी भी प्रकार का लेन देन नहीं किया जायगा। अन्य बहुत से रीति रिवाज भी इस विवाह में नहीं किए गए।

*　　　　*　　　　*

श्री मोहता आयुर्वेद विद्यालय को सरकार से स्वीकृत कराने और कुछ सहायता प्राप्त करने का प्रसंग उपस्थित हुआ। अंगरेजी के एक बड़े विद्वान् सज्जन से प्रार्थना पत्र तैयार करवाया गया। कुछ और सज्जनों को भी दिखाने के बाद उसे टाइप करवाकर और अपने हस्ताक्षर करके मैं मोहता जी के पास उसको लेगया। उन्होंने उसको अपने पास रख लिया और दूसरे दिन लेजाने को कहा। मैं दूसरे दिन गया तो संशोधन की हुई वह प्रति आपने मुझे दी। मैंने उसको फिर दुबारा टाइप करवाया और तत्कालीन शिक्षा संचालक श्री देसाई के पास ले गया। श्री देसाई भारत प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर मनुभाई मेहता के बहनोई थे। उन्होंने उस आवेदन पत्र को पढ़ा तो उसकी भाषा और भाव देखकर मुझसे पूछ ही लिया कि वह किसका लिखा हुआ है। कहने को तो मैंने उन अंग्रेजीदां विद्वान् का नाम ले दिया; परन्तु मैं मन ही मन मोहता जी के अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की गहराई पर मुग्ध हो गया।

इसी प्रकार मोहता जी हिन्दी और संस्कृत के भी मर्मज्ञ हैं। उनकी विद्वत्ता और पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन का अभ्यास उनके ग्रन्थों से पाकर बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ भी चकित रह जाते हैं। उनकी हिन्दी की शैली ऐसी नपी तुली है, जैसे कि एक-एक शब्द नाप-तोल कर रखा गया हो। मोहता जी को बहुत समीप से न जानने वाले बड़े आश्चर्य के साथ यह पूछने देखे जाते हैं कि आपने संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा कब और कहां प्राप्त की? क्योंकि कोई यह नहीं जानता कि आपने कभी किसी संस्था में अथवा किसी गुरु से इन को सीखा हो। आपके कमरे में हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी के बड़े-बड़े कोषों का संग्रह और अपने लेखन प्रसंग में उनका अध्ययन व उपयोग करते देखकर मैं भी कई बार चकित रह गया। आपके इस अगाध ज्ञान के देखते हुए मुझसे एक दिन रहा नहीं गया और मैं पूछ ही तो बैठा कि आपने विद्यालय में किस कक्षा तक अध्ययन किया है? मोहता जी ने सहज भाव से उत्तर दिया कि आठवीं कक्षा तक। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा और मैं सोचने लगा कि बड़े-बड़े

व्याकरण और संस्कृत के ग्रन्थ रट लेने वाले भी आपका पार नही पा सकते। कोरे अध्ययन और चिन्तन व मनन मे यही तो अन्तर है।

*   *   *

प्यासे को पानी पिलाना बहुत बड़ा धर्म माना गया है इसी भावना के कारण शहरों में सेठ साहूकारों की ओर से प्याऊ लगाई जाती और कुएँ भी बनवाये जाते हैं। अनेक स्थानो पर उन्होंने तालाब आदि भी बनवाए हैं। लेकिन, जिस स्थान पर कोई यश व कीर्ति प्राप्त नहीं होती वहाँ ऐसा धर्म करने वाले प्रायः नही मिलते। बीकानेर, जैसलमेर और जोधपुर की जहाँ सीमाएँ मिलती हैं वहाँ के बियावान रेगिस्तान मे पानी का प्रबन्ध करने का श्रेय मोहता जी को प्राप्त है। मुझे एक बार पता चला कि वहाँ लगाए हुए कुछ प्याऊ बन्द हो गए। यह सोचकर कि वहाँ के लोगों पर क्या बीतती होगी मैंने मोहता जी से वहाँ जाने और प्याउओं की व्यवस्था ठीक कराने का निवेदन किया। मोहता जी ने मुझसे कहा कि तुम वहाँ कैसे पहुँचोगे? वहाँ तीस-तीस पैंतीस-पैंतीस मील तक कोई आबादी नही है। रास्ता बताने वाला भी कोई न मिलेगा और वहाँ अधिकतर कोई आदमी भी दीख नही पड़ता। उन्होंने रूडीचा रामदेव जी की मोटर यात्रा का स्मरण कराते हुए कहा कि रास्ते के कष्टों का तुम अनुमान तक नहीं लगा सकते। तुम कैसे वहाँ जाओगे? मैंने कहा कि घोड़ों पर। आपने फिर कहा कि उस निर्जन और निर्जल प्रदेश में तुम और तुम्हारी सवारी दोनों ऐसे लापता हो सकते हैं कि यहाँ ढूंढने पर भी पता न चलेगा। उन प्याउओं के लिए भी ऊँटों के ऊपर लादकर पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस मील की दूरी से पानी लाया जाता है और उनको चालू रखने में सदा झंझट ही बना रहता है। गाँवों के पशु भी पन्द्रह-पन्द्रह मील दूर जाकर चार-पाँच दिन में एक बार मीठा पानी पीते हैं। पंडित जी आप यहाँ शहर में रहते है। आपको उन गाँवों की कोई कल्पना नही हैं। यहाँ महाराजा गंगासिंह जी और कलकत्ता व बम्बई आदि के सेठ साहूकारों की कृपा से आपको यथेच्छ पानी मिल जाता है। वहाँ तो कुछ गाँवों में यह हालत है कि ठाकुर साहब के यहाँ तीज-त्योहार पर सूचो होकर आने की मना दी करने पर ही लोग पानी से गुदा प्रक्षालन करते हैं। उन गाँवों में आप कैसे यात्रा कर सकेंगे? मैं मोहता जी की बातें सुनता गया और देहाती भाइयों के असीम कष्ट-क्लेश में आपके सेवा कार्य का महत्व मेरे हृदय पर और भी अधिक अंकित होता गया।

मोहता जी को देहाती किसान की तरह खेती से भी बड़ा प्रेम है। दुर्भिक्ष के दिनों में आप किसानों की जो सेवा करते हैं, उससे भी अधिक बड़ी सेवा तब की जाती है जब वे वर्षा होने का समाचार पाकर बड़ी आशा और उत्साह से अपने घरों को लौटते हैं। तब उनको वस्त्र, खेती के लिए बीज और अन्य साधन जुटाने के लिए नगद सहायता दी जाती है और आपके यहाँ एक बड़ा सा मेला लग जाता है।

कोलायत जी के पास बीकानेर से ४० मील की दूरी पर आपकी अपनी ३ वर्ग मील की भूमि है, जहाँ कि आपने गोपालपुरा नाम से एक रेगिस्तानी गाँव बसाया है। वहाँ आपकी अपनी खेती के अलावा अन्य किसान भी अपनी खेती करते हैं। उन सब के लिए गुड़, तेल, तम्बाकू आदि आवश्यक सामान की व्यवस्था आपकी ओर से की जाती है। किंवदन्ती यह है कि कभी वह आपके पूर्वजों की बनाई हुई गोचर भूमि थी। यह किंवदन्ती सत्य हो या न हो, किन्तु यह सत्य है कि आपने लाखों की लागत से बसाया गया वह गोपालपुरा गाँव अपनी लहलहाती खेती और वह सारी जमीन बीकानेर की पिंजरापोल गऊशाला को अर्पित कर दी है। यहाँ प्रायः हर वर्ष मोहता जी पकी खेती देखने और किसानों के साथ कुछ समय बिताने जाया करते थे।

एक बार एक कुआँ बनवाने का प्रसंग उपस्थित हुआ। जनश्रुति यह थी कि यहाँ पूर्वजों के बनाये हुए कुछ कुएँ बालू मे दबे पड़े हैं। उनकी तलाश करवाई गई। भेड़ों के रेवड़ बैठाए गए। एक जगह पर एक प्राचीन कुआँ मिला। उसको नए ढंग से बनाने के लिए ४० हजार रुपया खर्च किया गया। इस प्रदेश मे ३००-४००

फुट गहराई में पानी की स्थायी धारा हाथ लगती है और कुआं बनाने वाले चलुए (कूप निर्माण विशेषज्ञ) ऊपर से कुआं बनाना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे नीचे की मिट्टी खोदते हुए वर्तुलाकार चिनाई नीचे की ओर करते चले जाते हैं। यहाँ अन्य स्थानों की तरह नीचे से कुएं का निर्माण करना सम्भव नहीं है। तीन-चार सौ फीट की गहराई तक की एक साथ खुदाई करना आसान नही है। उस खुदाई के बाद भी मिट्टी के खिसकने और नीचे काम करने वालो के उसमे धँस जाने का खतरा बना रहता है। इस कारण यहाँ नीचे की ओर से नही; किन्तु ऊपर से नीचे की ओर चिनाई की जाती है। इतनी भारी मेहनत और हजारों रुपया खर्च करने के बाद भी यदि कही खारी पानी निकल आया तो सब किया कराया बेकार हो जाता है। इस कुएँ का भी यही हाल हुआ परन्तु मोहता जी निराश नही हुए। आपने १० हजार की लागत से एक सुन्दर बावड़ी और ५ हजार की लागत से एक बड़ा कुंड बनवा दिया। उनमे संचित वर्षा के पानी से लोग अपना और अपने पशुओं का काम चलाते हैं।

जो लोग कभी इन गाँवों मे नही गए वे वर्षा के पानी को जमा करने के लिए बनाए गए इन कुंडों और बावड़ियों का महत्व नहीं समझ सकते। मुझे एक बार जैतपुर गाँव में जाने का अवसर मिला। वह रेलवे से १० मील पर है। वहाँ मैंने देखा कि सड़क के और खेतों के किनारे-किनारे सैकड़ों कच्चे कुंड बने हुए थे और उनकी सुरक्षा के लिए उन पर लकड़ी के किवाड़ लगे हुए थे। गाँव वालों और उनके पशुओ का जीवन उन पर ही निर्भर था। ऐसे प्रदेश में मोहता जी ने पानी की जो व्यवस्था की है वह कितना बड़ा लोकोपकारी कार्य है।

*   *   *

१९४८ में स्वराज्य प्राप्ति के ठीक बाद सेठ साहब ने "समय की माँग" नाम से जो पुस्तक लिखी, उसमे आपने पंडित जवाहरलाल नेहरू जी को श्रीकृष्ण की चतुर्मुखी क्रान्ति का प्रवर्तक बताया है, पढने वालो को वह नेहरू जी की अतिशयोक्ति पूर्ण अनावश्यक श्लाघा सी प्रतीत होती थी। मैंने एक दिन लोगों की यह आशंका मोहता जी पर प्रगट कर दी और कह दिया कि नेहरू जी की यह श्लाघा कुछ ठीक नही जँचती।

आपने अपने सहज सरल स्वभाव से इतना ही कहा कि तुम्हारी हमारी जिन्दगी बनी रही तो हम प्रत्यक्ष इसकी सचाई को देख लेंगे।

आज नौ-दस वर्ष बाद मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि आप की दूरदर्शिता कितनी सत्य और लोगों की आशंका कितनी निर्मूल सिद्ध हुई।

दिल्ली में मैं मोहता जी के अनुज रा० ब० सेठ शिवरतन जी के पास बैठा हुआ था। उस समय केन्द्रीय मंत्रालय के एक बहुत बड़े अधिकारी आशा भरी दृष्टि से उनके साथ बातचीत कर रहे थे और कह रहे थे कि जिस प्रकार आपने दिल्ली में एक करोड़ के कीमत की लगभग की सम्पत्ति का विनिमय कर लिया है, उसी प्रकार क्वेटा की मेरी दो कोठियों के बदले में यदि आप मुझे यहाँ एक ही कोठी दिलवादें तो मैं जीवन भर आपका ऋणी रहूँगा। दूसरे दिन मैंने उनके साथ जाकर बदले में लिए हुए मकान, दुकान, बाग बगीचे, कोठियां और कुछ कारखाने देखे और बम्बई मे बनाए गए श्री गोवरधन दास मार्केट की चर्चा भी उनके साथ हुई। मैंने आनन्दविभोर होकर बड़े विस्मय से उनसे पूछा कि वर्तमान कठोर प्रतिबन्धों में आपने यह सारी सम्पत्ति कैसे प्राप्त की? उन्होंने एकाएक उत्तर दिया कि भाईजी की लोकोपकारी भावना, सेवा और साधना का ही यह पुण्य प्रताप है। अधिक पूछना हो तो बीकानेर जाकर भाईजी से पूछ लेना। मैंने बीकानेर आकर मोहता जी से भी उस सम्बन्ध में चर्चा की और उसका कारण पूछा तो उन्होंने गीता का यह श्लोक सुना दिया कि:—

अधिष्ठानं तथाकर्ता करणंच पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवंच पात्र पंचमम्॥
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्व कर्मणाम्।

गीता में आपकी अपार श्रद्धा देखकर मैं अवाक् रह गया।

मेरा मोहता जी के साथ ऐसा निकट सान्निध्य है कि मैं व्यास जी की लेखन-शैली के अभाव में गणेश जी के समान कितने ही दिनों तक ऐसे संस्मरण निरन्तर सुना सकता हूँ। प्रतिदिन कोई न कोई ऐसी बात, घटना अथवा प्रसंग आँखों के सामने आता ही रहता है, लेकिन अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए मैं इतना ही पर्याप्त समझता हूँ।

शंकर दत्त वैद्य

(मोहता आयुर्वेद संस्थान के अध्यक्ष व संचालक। आपको लगभग २८ वर्ष तक मोहता जी के अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आप उनके चिकित्सक ही नहीं किन्तु विश्वसनीय साथियों में से भी एक हैं।)

•

४६

वसंत के रसिया गोपाल जी

अपने गोपाल जी के विषय में संस्मरण लिखने की उमंग को रोक सकना मेरे लिए कठिन है। मैंने इसमें गोपाल जी के आत्म-ज्ञान, उनकी समाज सेवा, दानशीलता, व्यवहार कुशलता, कुशाग्र बुद्धि, गंभीर सूक्ष्म विचार, साहित्य सृजन आदि का गुणगान नहीं किया है; किन्तु उनके जीवन का वह पहलू लिखा है जिसको बड़े-बड़े विचारक और विद्वान लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। उससे दूसरे लोग अच्छी तरह परिचित नहीं हैं। उनके उपरोक्त गुणों के विषय में तो मेरी समझ में करीब-करीब सभी विद्वान लेखक इस अभिनन्दन ग्रन्थ में लिखेंगे ही, कारण उनके ये गुण तो सर्व विदित हैं और गीता जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक पर इतना विद्वतापूर्ण भाष्य लिखकर उन्होंने केवल अपने समाज में ही नहीं बल्कि सारे भारतीय विज्ञ पुरुषों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

संवत् १६७१ के सर्दी के दिनों की बात है। बीकानेर में हमारे श्रद्धाभाजन नेता गोपाल जी मोहता ने (यद्यपि उनका पूरा नाम रामगोपाल जी है परन्तु आम लोगों को 'गोपाल जी' का प्यारा नाम ही अच्छा लगता था।) होली के वसंतोत्सव में बरती जानेवाली असभ्यता और अश्लीलता को हटा कर सभ्यतापूर्वक इस त्योहार को उत्साह और उमंग के साथ राग-रंग युक्त मनाने का निश्चय किया। मैं उस समय अनुमानतः २० वर्ष का था। मेरे पिता जी स्वर्गीय श्री रामकृष्ण जी करनाणी और उनके मित्र स्वर्गीय श्री शिवकृष्ण जी भीमाणी दोनों के साथ आपका घनिष्ट प्रेम था। श्री मरुनायक जी के मन्दिर में जो भजन आदि होते थे उनमें तीनों सम्मिलित होते थे। मेरे पिताजी और शिवकृष्ण जी मरुनायक जी के मन्दिर के चौधरी (प्रबन्धक) थे। उस मन्दिर के आगे के विस्तृत चौक में होली के अठवाड़े (होलिकाष्टक) के दिनों में "डांडियों का खेल" प्राचीन काल से बड़े समारोह से हुआ करता था, परन्तु कई वर्षों से वह शिथिल पड़ गया था। उसका जीर्णोद्धार करने का भार तीनों ने आयोजन किया। हम नवयुवकों के दिनों में इस आयोजन से उत्साह और उमंग की बाढ़ आ गई।
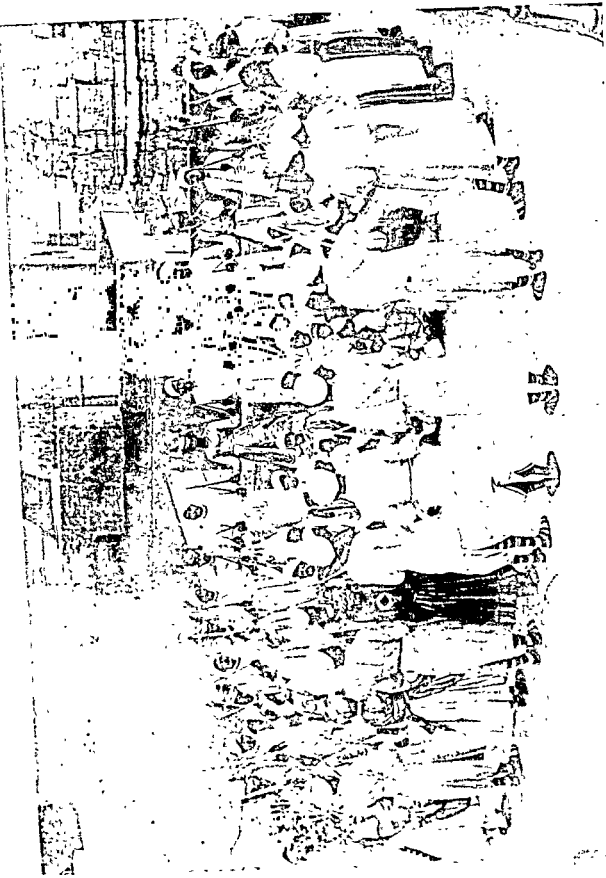
डाडियों का खेल—इसमें श्री मोहताजी, उनके परिवार व सगे सम्बन्धी तथा सभी जातियों के आबाल वृद्ध बिना किसी भेदभाव के एक साथ खेल रहे हैं

डाढियों के खेल में श्री मोहताजी सम्वत् २०१८।

इस खेल में दो जोड़ी नगाड़े, एक बड़ा ढोल, दो जोड़ी झांझ बीच में रख कर बजाये जाते थे और उनके इर्द-गिर्द वृहत् कुंडलाकार वृत्त में सैकड़ों मनुष्य दोनों हाथों मे रंगे लकड़ी के "डांडियों" लिए हुए ढोल नगाड़ों की ताल पर एक दूसरे मे डांडिये लड़ाते हुए और ताल पर ही पैर उठाते तथा हाथ घुमाते हुए चक्कर काटते थे। साथ ही गायन भी गाये जाते थे। नगाड़ों की ताल आरम्भ में १६ मात्रा की बहुत विलंबित होती थी जो शनैः शनैः तेज करते हुए अन्त में अत्यन्त चलित दो मात्रा तक पहुंच जाती थी। गायन विलंबित ताल के अलग होते थे और बढ़ती हुई तेज तालों के अलग-अलग होते थे। ये गायन २५, ३० मनुष्यों की मंडली गाया करती थी। इस खेल के लिये नगाड़े और ढोल बजाने वालों, डांडिया खेलने वालों और गाने वालों को विशेष रूप से अभ्यास करवा कर तैयार करने की आवश्यकता थी। इस खेल में संगीत के तीनों अंग—गाना, बजाना और नाचना एक साथ होता था। इसलिये इनका अभ्यास होली के तीन महीने पहले ही आरम्भ कर दिया गया। इस खेल मे भाग लेने वाले अर्थात् गाने-बजाने और नृत्य करने वाले सब की एक ही तरह की रंग-बिरंगी पोशाक बिजली की बत्तियों के प्रकाश में बहुत सुहावनी लगती थी। कई नृत्य करने वाले पैरों में घूंघरू बांध कर नाचते थे। हमारे गोपाल जी संगीत के इन तीनों अंगों के मर्मज्ञ थे। परन्तु किसी ताल के बाजे बजाना, उस पर नृत्य करते हुए खेलना और गायन गाना, साधारण गाने की तरह सहज नहीं था। विशेष कर उस विलंबित ताल पर गाये जाने वाले लोक गीत सांगोपांग गा सकना बहुत ही कठिन था। इन गीतों के जानकार केवल दो तीन वृद्ध मनुष्य शेष रह गये थे। उनसे गोपाल जी ने स्वयं ये गीत सीखने का अभ्यास किया। ये गीत राग-रागिनियों के गायन की तरह एक ही व्यक्ति नही गा सकता था। इनकी लय बहुत लम्बी होती थी और ऊंचे स्वर से गाये जाते थे क्योंकि खुले मैदान में हजारों स्त्री-पुरुषों के जमघट के बीच ढोल और नगाड़ों के बाजों के साथ नीचे स्वरों का गायन सुनाई नही दे सकता था, इसलिये कम से कम २०, २५ मनुष्य मिल कर समवेत स्वर से (Chorus के रूप में) ये गीत गाते थे और सब को ताल और स्वर के साथ जुड़ा रहना अनिवार्य था। अगर इन लोगों मे से कोई एक भी स्वर और ताल से अलग हो जाता तो गाना बिगड़ जाता और रंग फीका हो जाता। गायन का लय घूम-घाम कर ताल के सम पर आवे तभी आनन्द आता है इसलिये ताल के सम पर ध्यान रखने की बड़ी आवश्यकता रहती है। हमारे गोपाल जी की स्मरण शक्ति और धारणा शक्ति अद्भुत थी और वे जो काम करने का निश्चय कर लेते उसको पूरी तरह सांगोपांग सिद्ध करने के लिए कुछ भी उठा नही रखते थे; अतः इन्होंने स्वयं इन गीतों का अभ्यास किया और साथ ही साथ सारी गायन मण्डली को भी अभ्यास कराया। इन गायनों के छन्दों व कविता की गठन (बंदिश) पुराने ढंग की बहुत मनोहर और भावपूर्ण थी परन्तु साधारण तया लोग इनके रहस्य को नहीं समझते थे। गोपाल जी की मनन शक्ति बहुत तेज थी इसलिये वे इन कविताओं के अर्थालंकारों का मर्म और रहस्य खूब समझते थे। पक्के (शास्त्रीय) संगीत में राग-रागिनी पांच, छः और सात स्वरों की होती हैं जिनको क्रमशः औडव, षाडव और सम्पूर्ण कहा जाता है परन्तु इन गीतों में से एक गीत में तो केवल चार ही स्वर लगते हैं और वह गीत बहुत ही मीठा लगता है। इन गीतों की कविता और भाव बहुत उच्च कोटि के हैं। एक 'धोबण' का गीत है जिसमें जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह और एक धोबण (धोबिन) के संवाद की कल्पना की गई है। महाराज धोबण की परीक्षा करने के लिये उसके पास जाकर पानी पिलाने को कहते हैं। धोबण उनके मन का भाव ताड़ जाती है और कहती है कि मेरा पानी पीने वाला जीवित नहीं रह सकता। महाराजा पूछते हैं कि तेरा पति कैसे जीता है तो धोबण इसका उत्तर देती है कि मेरा पति बहुत चतुर सुजान है। वह वासुकी नाग का जहर उतार सकता है। फिर महाराजा उससे अपने कपड़े धोने को कहते हैं तब धोबण कहती है कि और लोगों के कपड़े तो मैं कभी-कभी धोती हूँ पर आपके कपड़े तो मैं दीपक के प्रकाश में भी धो दूंगी। इस पर महाराजा प्रसन्न होकर उसको इनाम में अजमेर, दिल्ली और आगरे के शहरों

को धुलाई का काम लेने को कहते हैं पर धोबण कहती है कि उन शहरों की कमाई करने को कौन जावे। महाराज कहते हैं कि तेरे स्वसुरजी अजमेर और तेरे पति दिल्ली, आगरा जा सकते हैं। तब धोबण उत्तर देती है कि मेरे स्वसुर जी की जावे बला—अर्थात् वे नहीं जा सकते और मेरे पति को भेजने से घर का काम नहीं चलता। धोबण परीक्षा में पूर्णांकों से उत्तीर्ण हुई।

एक तम्बाकू का गीत है जिसमें बणजारा तम्बाकू के बोरे लाता है। एक स्त्री के पति को तम्बाकू पीने का व्यसन है। वह बणजारे से तम्बाकू का मूल्य पूछती है। बणजारा एक माशे के २५) रुपये और पूरे तोले के २००) मूल्य करता है, जिस पर स्त्री अपने पति को कहती है कि तम्बाकू की बहुत दुर्गन्ध आती है। आप कम से कम १५ दिन के लिये तो इसको पीना छोड़ दो। वह नहीं मानता तब स्त्री कहती है कि आपका हुक्का और चिलम फेंक दूंगी। इस पर पति कहता है कि मैं अपना हुक्का रतन से और चिलम मोती मूंगे से जड़ाऊंगा। तब पत्नी कहती है कि मुझको मेरे पीहर पहुँचा दो और आप लौटते हुए पूगलगढ़ की पद्मिनी को ब्याह लाना। इस तरह अनेक गीत भावपूर्ण हैं। अधिकतर गीत पति-पत्नी के प्रेम और विरह के हैं। कई गीतों में कुछ अश्लीलता थी उनको गोपाल जी ने बदल कर उनमें समाज सुधार और नीति की कविता भर दी। उनकी तर्जें वही रखी क्योंकि तर्जें बहुत ही मधुर थीं।

डांडियों में गाये जाने वाले गीत बीकानेर में बड़े चाव के साथ आम तौर से अनेक अवसरों पर गाये जाते हैं। विशेष कर विवाह आदि उत्सवों और त्यौहारों पर स्त्रियां बहुधा गाया करती हैं; परन्तु ये स्वर और ताल के लय पर सुव्यवस्थित रूप से डांडियों के खेल में ही गाये जाते हैं। इस तरह हमारे गोपाल जी ने डांडियों के संगीतमय खेल का जीर्णोद्धार करके उसको सुव्यवस्थित किया। जिस समय यह खेल होता था उस समय गाने बजाने और नाचने वाले तथा हजारों की संख्या में एकत्रित दर्शक स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध इतने आनन्द मग्न हो जाते थे कि अपना सब दुःख सुख बिसार कर एक गोपाल जी की तरफ टकटकी लगाये रहते थे। सब की उनके साथ लौ लगी रहती थी। सब कोई उनके ही अधिकार में रहते थे मानो सब एक ही सूत्र में पिरोये हुए हैं। गीता के ७ अध्याय का ७वां श्लोक "मयि सर्वमिदम् प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव" प्रत्यक्ष सामने खड़ा दीखता था। सब लोग उस एकता के भाव में इतने मुग्ध हो जाते थे कि किसी को कोई दूसरी बात याद ही नहीं आती थी। कोई चूं तक नहीं करता था। एक प्रकार से सब समाधिस्थ हो जाते थे। सारे भेद भाव मिट कर सर्वत्र समता का साम्राज्य हो जाता था। हर कोई अपने आप को काबू में रखता था। यदि कोई व्यक्ति भूल से कभी कुछ अल्हड़ पन कर देता तो उसका पड़ौसी उसको रोक देता था। उन आठ दिनों में रात्रि के चार पांच घंटों के लिये तो लोग आपस के रागद्वेष भूल जाते थे और इसीलिये पुलिस के जाने की आवश्यकता नहीं रहती थी। श्री मद्भागवत में वर्णित रास मंडल का दृश्य नजरों के सामने दीखता था। भगवान कृष्ण ने ब्रजवासियों को अपने प्रेम की बांसुरी बजा कर आकर्षित किया और सब तन मन की सुधि भूल गये वह कथा असंभव नहीं प्रतीत होती थी।

श्री गोपाल जी ने जनता जनार्दन की और जो सेवायें की उनसे यह सेवा भी कुछ कम महत्व की नहीं है। इस सेवा से अमीर व गरीब, विद्वान व मूर्ख, हाकिम व रैयत, बाल व वृद्ध और स्त्री-पुरुष सब को एक सा अमूल्य आनन्द प्राप्त होता था।

संसार परिवर्तनशील है। गोपाल जी बहुत वृद्ध हो गये अतः बीकानेर में यह खेल अब फिर कमजोर हो गया। परन्तु कलकत्ते और बम्बई में बीकानेर प्रवासी इसे बड़े उत्साह के साथ अब भी खेलते हैं। हां, डांडियों के वे गीत तो गोपाल जी के साथ ही रहेंगे।

हमारे गोपाल जी श्रीकृष्ण भगवान के अनन्य भक्त हैं। उनके गीता में बताये हुए मार्ग पर वे चलने

की प्रयत्न करते हैं। इसीलिये वे संसार को दु:ख रूप या बन्धनरूप होने की झूठी मान्यता से गृहस्थ के व्यवहार त्याग कर निवृत्तिपरक सूखे आत्मज्ञान के अभ्यास में अथवा जप, तप, पूजा, पाठ आदि में नीरस जीवन बिताना उचित नहीं समझते; किन्तु संसार को भगवान कृष्ण का रूप समझकर इस नाटक के अभिनय में आमोद प्रमोद के साथ भाग लेते हुए तथा संसार को आनन्दमय अनुभव करते हुए, अनासक्ति पूर्वक उसका रस लेते हुए जीवन यात्रा करना ठीक समझते हैं। गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक ६४-६५ के अनुसार राग-द्वेष रहित होकर सांसारिक विषयों में रमते हुए प्रसन्न रहने से ही मनुष्य की बुद्धि समता रूप परमात्मा में स्थित रह सकती है। उनका यही निश्चय है।

जिस मनोयोग से एक कुशल व्यापारी अपने व्यापार की सफलता के लिए उद्योग करता है उसी तरह एक सफल व्यापारी के नाते वे अपनी आत्म-ज्ञान रूपी दुकान खोलकर उसके व्यापार की बराबर सफलता पूर्वक वृद्धि कर रहे हैं।

उनकी कुशाग्र बुद्धि और गम्भीर सूक्ष्म विचार का परिचायक एक ही उदाहरण काफी होगा। भारत और पाकिस्तान के विभाजन होने के बहुत दिनों पूर्व ही अपने घर वालों को एवं नाते रिश्ते वालों को जो पाकिस्तान (कराची, लाहौर वगैरह) में व्यापार वगैरह कर रहे थे, चेतावनी दे दी थी कि विभाजन के पश्चात जान-माल की सुरक्षा होनी मुश्किल हो जायेगी। इस तरह से इतने विशाल भारतवर्ष में इतने बड़े नेताओं में से केवल एक-दो अन्य नेता ही इस भविष्य में आने वाले संकट की ओर संकेत कर सके थे। विभाजन के बाद काफी सम्पत्ति पाकिस्तान में ही रह गई फिर भी उनको कभी उदास-चित्त नहीं देखा गया।

ब्रजरतन करनाणी

(आप कलकत्ता की श्री आसाराम लालचन्द फर्म के मालिक और प्रसिद्ध समाज सुधारक हैं। आप के पिता जी मोहता जी के बचपन के साथी थे और आप छोटी आयु से ही मोहता जी पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं।)

●

५०

उदार चेता मोहता जी

इस संसार में असंख्य ऐसे अभागे प्राणी जन्म लेते हैं जो किसी प्रकार का भी मानवोचित कार्य न कर अजागलस्तनवत् व्यर्थ ही जीवन व्यतीत कर, जल के बुदबुदे के समान विलीन हो जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी महान् व्यक्ति प्रकट होते हैं जो अपने अनुपम एवं अलौकिक कार्यों द्वारा मानव जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होकर अपने पीछे संसार यात्रा-मार्ग की कंकरीली चट्टानों पर ऐसे अमिट चिह्न अंकित कर जाते हैं, जो जीवन के उच्च शिखर पर पहुंचने की अभिलाषा वाले अन्य यात्रियों को पथ-प्रदर्शन करते हुए उन्हें अपने परम लक्ष को प्राप्त करने में साहस एवं प्रेरणा प्रदान करते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों का जन्म सफल है, नहीं तो इस परिवर्तनशील संसार में आवागमन तो होता ही रहता है। स्वनाम-धन्य श्री सेठ रामगोपाल जी मोहता इसी उच्च श्रेणी के महापुरुषों में से हैं।

अनुमानतः वि० सं० १९६४ से अर्थात् प्रायः ५० वर्षों से इन पंक्तियों के लेखक का सेठ जी के साथ विभिन्न रूप में सम्पर्क रहा है। एक लक्षाधीश के घर में जन्म लेने पर भी तथा धनाढ्य वातावरण में पालन-पोषण प्राप्त करने पर भी, अन्य धनिक नव-युवकों के असदृश्य, जनसाधारण के अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर उनके अभावों को हृदयंगम करने की तथा उनसे वेदना का अनुभव कर उन्हें निवारण करने की आपकी भावना युवावस्था से ही रही। समाज-कल्याण एवं राष्ट्रोत्थान की भावना के बीज आपकी बढ़ती हुई आयु के साथ ही साथ अंकुरित, प्रस्फुटित, पल्लवित एवं पुष्पित होते गए हैं। प्रारम्भ में आपका कार्यक्षेत्र प्रधानतः बीकानेर नगर ही रहा, जहाँ के आप स्थायी निवासी हैं और कुछ अंश में कराची नगर भी, जो आपका व्यापार-स्थान था। उस समय आपकी विचारधारा एवं कार्यप्रणाली स्वभावतः ही प्राचीन परम्परा के अनुसार तथा उस समय की आवश्यकता के अनुकूल रही। बीकानेर नगर में दीन अनाथ व विधवाओं की गुप्त सहायता-फण्ड के निर्माण के अतिरिक्त, नगर के पूर्व में मोहता धर्मशाला तथा संस्कृत पाठशाला, दक्षिण में प्याऊ तथा यात्रियों का निवास स्थान, पश्चिम में मोहता मूलचन्द विद्यालय, मध्य में मोहता आयुर्वेदिक औषधालय तथा उत्तर में मोहता बोर्डिंग हाउस इत्यादि मोहता परिवार द्वारा संस्थापित अनेक परोपकारी संस्थाओं तथा अन्य जनहितकारी कार्यों के के कारण जनता में उस समय यह एक साधारण उक्ति हो गई थी कि "मोहतों का पुण्य नगर के चारों कोनों में है।" यद्यपि मोहता परिवार के अन्य व्यक्तियों का इनमें से कई कार्यों में सहयोग था, तथापि प्रायः इन सभी संस्थाओं की स्थापना अथवा इनके संचालन का प्रधान श्रेय आपको ही है।

आयु के साथ-साथ जैसे-जैसे आपका अनुभव, विचारशीलता तथा साधन-सम्पत्ति आदि बढ़ते गये, वैसे-वैसे आपका कार्यक्षेत्र भी विस्तृत होता गया। अब आपका क्षेत्र बीकानेर और कराची नगर तथा उनके निवासियों तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु सारे भारतवर्ष को अपनी कार्य-परिधि में लेकर समस्त मानव जाति के हित की भावना आपके अन्तस्तल में जाग्रत हुई और आपने "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्", के सिद्धान्त को अपना कर, दीन, हीन, अनाथ, विधवाएँ तथा पिछड़े हुए वर्ग के अधिकाधिक हित को विशेष कर अपना लक्ष्य बनाया। साथ ही साथ आपकी विचार धारा एवं सहानुभूति व उदारता का स्रोत, रूढ़ि और परम्परा से ऊँचे उठकर, वर्तमान व भविष्य की दृष्टि से सर्वजनहितकारी, प्रगतिशील, समाज-कल्याण-कार्यों की ओर प्रवाहित होने लगा। यद्यपि इस परिवर्तन के कारण आपको रूढ़िवादियों के घोर विरोध का सामना करना पड़ा और आप उनके निन्दास्पद भी बने, परन्तु आप इनसे तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपने निर्धारित कर्तव्य पथ पर निरन्तर अग्रसर होते रहे। परिणामस्वरूप, आज से २५-३० वर्ष पूर्व आपके जो कार्य रूढ़िवादियों द्वारा समाज-विनाशक तथा धर्म-विघातक समझे जाते थे, आज वे ही कार्य अधिकाधिक जन सम्मत माने जाते हैं तथा जन साधारण उनके मतानुसार आचरण कर अपने को सुखी और आपके प्रति अनुगृहीत मानते हैं। इसके अतिरिक्त, जब जब बाढ़, दुर्भिक्ष, महामारी आदि कोई दैवी प्रकोप आया तभी आपने अन्य किसी के सहयोग की प्रतीक्षा न कर, अपनी साधन-सामग्री को उस ओर लगा कर अपना निजी द्रव्य प्रचुर परिमाण में व्यय करके असंख्य मनुष्यों व पशुओं के कष्टों का निराकरण किया।

धीरे-धीरे अध्यात्म विषय की ओर भी आपकी प्रवृत्ति हुई। परन्तु विस्तार-भय से इस सम्बन्ध में यहाँ पर अधिक न कह कर मैं आपके केवल एक ग्रन्थ "गीता का व्यवहार दर्शन" का ही यहाँ पर उल्लेख करूँगा, जिसके पढ़ने से आपकी अद्वितीय विचारधारा, प्रखर प्रतिभा शक्ति, विषय पर पूर्ण अधिकार तथा सुन्दर विवेचन पद्धति आदि का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जायगा। ऐसे गम्भीर एवं कठिन विषय का ऐसा सरल विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है कि यदि थोड़ा सा भी चित्त को एकाग्र कर के कोई इसे पढ़े और तदनुसार मनन करके तदनुसार आचरण करे तो वह अपने जीवन को सुन्दर, सुखमय एवं शान्तिमय बना सकता है।

आप स्वभाव से ही बड़े सरल, धीर, सहृदय एवं समत्व-भावना युक्त हैं। आपकी गम्भीरता, स्पष्ट-वादिता तथा मितभाषिता आदि उच्चतम श्रेणी की व अनुकरणीय हैं और इसी कारण कोई-कोई नवागन्तुक व्यक्ति जिसका पूर्व सम्पर्क आपके साथ नहीं हुआ है, कभी-कभी आपके अभिमानी होने की भ्रमपूर्ण धारणा भी कर लेता है। परन्तु वही व्यक्ति कुछ अधिक सम्पर्क में आने के बाद समझने लगता है और आपके पूर्वपरिचित तो जानते ही हैं, कि आप शरद-ऋतु के मेघ-जाल के समान नहीं जो व्यर्थ की गर्जना करते हैं और बरसते ही नहीं; किन्तु आपकी गम्भीरता श्रावण मास के नव-नीर पूरित नीलमेघ के समान है; जो गरजता नहीं किन्तु थोड़े से स्निग्ध गम्भीर निर्घोष के साथ ही अमृतमय जल प्रदान कर भूतल को सरस बना देता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया श्री सेठ जी के साथ अनुमानत. ५० वर्षों से मेरा सम्पर्क है, अतः इस आत्मीयता के सम्बन्ध के कारण मैं आपके विषय में अधिक कहना उचित नहीं समझता, क्योकि ऐसा करने से आत्मप्रशंसी होने का दोष-भागी बनने का मुझे भय है। फिर भी यदि असत्य भाषण करना पाप है तो सत्य को छिपाना भी वैसा ही है; इसी विचार से कुछ लिखने का साहस किया है। अन्त में केवल इतना ही कहूँगा कि जैसे, आपका नाम "रामगोपाल" है, वैसे हीश्रीराम के "पुरुषोत्तमत्व" और भगवान श्रीकृष्ण के "कर्मयोग' के सुन्दर सम्मिश्रण की झलक आपके चरित्र में पर्याप्त रूप से अंकित है।

अनन्त लाल व्यास

(बीकानेर नगर में संस्कृत व हिन्दी का प्रचार तथा अध्यापन का श्रीगणेश कराने वाले राजस्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पंडित गणेशदत्त जी शास्त्री चुरूवालों के आप ज्येष्ठ पुत्र हैं। भूतपूर्व बीकानेर राज्य में एकाउन्टेंट जनरल और वर्तमान राजस्थान राज्य में एकाउन्ट आफीसर के पदों पर आप सफलतापूर्वक कार्य कर चुके हैं। इस समय अवकाश प्राप्त कर कई सार्वजनिक संस्थाओं का कार्यभार संभाले हुए हैं।)

●

५१

कुछ प्रेरक प्रसंग

ऐसे कितने ही होंगे, जिनके पास श्री सेठ रामगोपाल जी मोहता के छोटे-बड़े निजी संस्मरण होंगे, जो भुलाये नहीं जा सकते। लाखों नहीं तो हजारों व्यक्ति अवश्य उनके निकट सम्पर्क में आये होंगे। यद्यपि मेरा संनिकट का या व्यक्तिगत सम्पर्क मोहता जी से नहीं रहा, फिर भी मोहता संस्था से वर्षों तक सम्बन्धित रहने के कारण कुछ संस्मृतियाँ ऐसी हैं, जो भुलाई नहीं जा सकतीं।

सर्वप्रथम सन १९३८ में मैं मोहता आयुर्वेद विद्यालय के छात्र के रूप में उनके सम्पर्क में आया। यह कहूँ तो अधिक उपयुक्त होगा कि उस समय विद्यालय और मोहता जी एक दूसरे के पर्यायवाची थे। मोहता धर्मार्थ ट्रस्ट के अग्रणी के नाते विद्यालय की व्यवस्था और संचालन में उनका पूरा हाथ था। उनकी आज्ञा सर्वोपरि मानी जाती थी और बाद के दिनों में श्री मोहता धर्मार्थ औषधालय श्री कोलायत जी के प्रधान चिकित्सक के नाते तो मुझे उनके व्यवस्था सम्बन्धी कौशल का नजदीकी ज्ञान प्राप्त हुआ। उन दिनों विद्यालय में प्रति सोमवार को गीता पर विवेचनात्मक भाषण हुआ करते थे। मोहता जी के साथ नगर व बाहर के सुप्रसिद्ध

विद्वान् इन भाषणों में भाग लिया करते थे। मोहता जी के गीता पर अधिकार सम्पन्न ज्ञान पर सब चकित रह जाते थे।

सन् १९४२ में सुजानगढ़ में बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन का चौथा अधिवेशन बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ था। श्री मोहताजी उसके अध्यक्ष थे। मुख्य अतिथि के रूप में इस सम्मेलन में आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा श्री जैनेन्द्र जी ने भाग लिया था। मनोनीत अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव रखा गया और राजस्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान्, दार्शनिक श्री पं० केदारीप्रसाद जी शास्त्री ने बड़ी रोचक भाषा में सत्यवादिता के साथ प्रस्ताव का समर्थन किया। उनके शब्द ये थे कि "हर्ष और विषाद का द्वन्द्व आज मेरे अन्तराल में हो रहा है, क्योंकि आज के सम्मेलन की अध्यक्षता मेरे परम मित्र व परम शत्रु करने जा रहे हैं। परम मित्र इसलिए कि साहित्य और समाज को लेकर अनेक बार हुई चर्चाओं में मैंने सेठजी को न कहने वाले कठोर शब्द कहे, पर धीर गम्भीर सेठ साहब (मोहता जी) ने हँस कर उनका उत्तर इन शब्दों में दिया कि 'आप यह कहने के अधिकारी हो', जब कि मुझ जैसे निर्धन ब्राह्मण से ऐसा वे क्यों सुने ? यह सब सेठ जी की उदात्त भावना, ऊँचे विचार और क्षमता का प्रतीक है। इन्हीं अनुपम गुणों के कारण वे मेरे परम मित्र हैं, और परम शत्रु ! परम शत्रु इस कारण कि मैं शतप्रतिशत पुरातन परम्पराओं का भक्त हूँ वे और पुरातन परम्परा, आचार-विचार, तथा रीति-रिवाजों के तोड़क, खण्डक व उन्मूलक हैं। इन दो विरोधी भावनाओं का टकराना ही हर्ष और विषाद का कारण है, फिर भी मैं अध्यक्षता के लिए सेठ साहब के नाम का हर्ष और विषाद भरे हृदय के साथ समर्थन करता हूँ।"

कहना न होगा कि शास्त्री जी के इस अनूठे और परिचयात्मक समर्थन के वैचित्र्य से उपस्थित जन समुदाय खिलखिलाकर हँस पड़ा और जन समाज की माँग के कारण स्वयं शास्त्री जी का परिचय तत्काल मुझे देना पड़ा।

* * *

बाजार की बनी मिठाइयों से मोहता जी को सदा ही घृणा रही है, इसका एक उदाहरण मेरे सामने है—कोलायत के मेले पर मोहता जी प्रतिवर्ष जाया करते हैं। जब मोहता औषधालय वहाँ था, तो वे वहीं ठहरा करते थे। सन् ४२–४३ में मैं उक्त औषधालय में प्रधान चिकित्सक था। मेरे बैठने के कक्ष से लगा हुआ कमरा सदैव की भाँति उनके ठहरने के लिए चुना गया था।

एक दिन प्रातः उनकी पोती श्रीमती रतनदेवी दम्माणी ने बाजार की बनी जलेबियाँ मँगवाई। जलेबियाँ बीकानेर के उस हलवाई की दुकान की थीं, जो अपनी प्रामाणिकता व विशुद्धता के लिए विख्यात था; किन्तु सेठजी ने तत्काल वे जलेबियाँ फिकवा दीं और कहने लगे, "क्या मेरे साथ रहकर तुम मेले के बाजार की चीजों का उपयोग करोगी ? तुम्हारे पास एक से एक अच्छे हलवाई हैं, यदि चाहो तो उसी दुकान के हलवाई को बुलाकर अपनी पाकशाला में जलेबियाँ निकलवा सकती हो।" इस से स्पष्ट है कि स्वास्थ्य के नियमों का दृढ़ता से पालन करना मोहता जी के गुणों में से एक है। प्रतिदिन टहलना, हल्का व्यायाम, सादा व सात्त्विक भोजन, समय पर सोना, मनन और सत्संग, सभी कार्य मोहता जी की दिनचर्या में नियम से अपेक्षित रहे हैं।

* * *

बात संवत् १९९६ की है—राजस्थान में भयंकर दुष्काल पड़ा। पेट की ज्वाला को शान्त करने सैकड़ों हजारों ग्रामीण रोजी की टोह में नगरों की ओर दौड़ पड़े। सेठ जी ने अकाल पीड़ित पशुओं के लिए बीकानेर में एक स्थायी बस्ती का निर्माण किया। मोहता धर्मशाला के पिछले खुले मैदान में प्रतिदिन उन्हें अनाज वितरित किया जाता था और इसी मैदान में प्रति अमावस्या को उन्हें भरपेट भोजन कराया जाता था। गुड़ की लापसी

और चने की दाल उस दिन का भोजन होता था। लगभग दो ढाई हजार स्त्री-पुरुष-बच्चे पंक्तिबद्ध होकर व्यवस्था के साथ भोजन करते और सेठ साहब स्वयं खड़े-खड़े इस व्यवस्था का संचालन करते।

एक दिन सेठ साहब के अनुज रावबहादुर श्री सेठ शिवरतन मोहता सेठ साहब के साथ इन अकाल पीड़ितों की बस्ती को देखने गये। नग्न और अर्धनग्न इन दुःखियों के लिए कपड़े की व्यवस्था तो मोहता जी ने कर दी थी पर अपनी आदत के मुताबिक रहते ये मैले कुचैले ही थे। सेठ शिवरतन जी ने सुझाव दिया कि इनके लिए साबुन की व्यवस्था की जाय। स्त्रियों के लिए 'काजल' 'कूंपला' (नेत्र-अंजन काजल का पात्र) वितरित किया जाय और अनाज बाँटते समय सफाई की अनिवार्यता प्रत्येक पर लागू हो। तुरन्त सभी उपकरणों की व्यवस्या की गई और कहना न होगा कि दूसरे तीसरे दिन से ही वे मैले-कुचेले ग्रामीण साफ-सुथरे और सुन्दर दिखाई देने लगे।

*　　　　*　　　　*

सन् १९४२-४३ में राजस्थान मे भीषण रूप से विषम ज्वर (मलेरिया) फैला। कोलायत वैसे ही मलेरिया का क्षेत्र है और इसके प्रदेशव्यापी रूप ले लेने से वहाँ इसका प्रसार और भी उग्र हो गया। दूसरे महासमर के कारण जावा-सुमात्रा द्वीप समूह से आने वाली कुनीन दुष्प्राप्य या दुर्लभ ही हो गई। काले बाजार मे इसकी कीमत साढ़े चार सौ रुपया पौंड तक पहुँच गई। श्री मोहता जी ने कुछ भागों में वैद्यों और आयुर्वेद कालेज के योग्य छात्रों को मलेरिया-ग्रस्त क्षेत्रों मे चिकित्सार्थ भेजा। कोलायत के मेले पर मोहताजी जब वहाँ आये तो गाँवों की करुण-कहानी सुनकर दहल उठे। अविलम्ब उन्होने बैलगाड़ियों से मलेरिया पीड़ित ग्रामीणों को कोलायत बुलवा लिया और मेरी मदद के लिए दो अन्य चिकित्सक नियुक्त कर दिये। कुनीन व इसके इंजेक्शनों की व्यवस्था भी कर दी ताकि शीघ्र ही बुखार से छुटकारा मिल सके। कुछ ऐसे अशक्त बीमार भी थे, जो घर छोड़ने मे असमर्थ थे। उनके लिए तुरन्त मोहता जी ने अपनी मोटर देकर चिकित्सकों को उनके घर भेजा। इस प्रकार दीन हीन अछूत जन की सेवा में इन्होंने अपना बहुत कुछ अर्पण किया है।

वैद्य ठाकुर प्रसाद शर्मा
आयुर्वेदाचार्य

(आपने श्री मोहता ट्रस्ट द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय में आयुर्वेद की उच्च शिक्षा प्राप्त कर कुछ वर्षों तक उसी संस्था के चिकित्सालय विभागों में काम किया और इस समय श्री स्वामी केवलराम आयुर्वेद सेवा निकेतन में प्रधान चिकित्सक के पद पर कुशलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। राजस्थान राज्य के इण्डियन मेडीसन बोर्ड के आप उपाध्यक्ष हैं। आप प्रगतिशील विचारों के युवक विद्वान हैं।)

●

५२

मानव समाज के उपकारी

माहेश्वरी समाज ही नहीं मारवाड़ी समाज के मोहता जी एक अमूल्य रत्न हैं। उनकी प्रतिभा का आभास उनकी बहुमुखी सेवाओं में प्रचुरता से मिलता है। समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में उनके प्रति

में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करूँ। समाज की धार्मिक एवं सामाजिक कार्य प्रणाली का प्रवाह सन्मार्ग की ओर हो और रूढ़िवाद में ग्रसित मारवाड़ी समाज का प्रत्येक व्यक्ति मानव जीवन के सच्चे रहस्य को जान सके इस हेतु आपने विद्यालय, अनाथाश्रम, विधवा आश्रम, धार्मिक प्रवचन, अनाथ असहाय समाज में त्रस्त और पीड़ित व्यक्तियों को उठाने तथा उनकी सहायता करने की अपनी विशुद्ध कर्तव्यानुमोदिता पवित्र एवं उत्कृष्ट भावनाओं को कृति का रूप देकर मानव समाज का बड़ा कल्याण किया है।

अपनी कुशाग्र व्यापारिक बुद्धि एवं कौशल से करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति का संचय कर उससे सहसा विरक्त हो आपने अपने जीवन को एक संन्यासी के समान जन-कल्याण के महान् कार्य में लगा दिया है। आपके कान में जरा सी आवाज आनी चाहिए कि अमुक स्थान पर अमुक बन्धु या बहन कष्ट से पीड़ित है अथवा बाढ़ या अकाल का कलेवर कहीं बढ़ने वाला है तो वहाँ आप भगवान बुद्ध के समान सहायता का अपना हाथ फैला देते हैं।

भाग्य के भरोसे न बैठ, कर्मयोग में पूर्ण विश्वास रखने वाले श्रद्धेय मोहता जी का स्मित मुख, दयार्द्र हृदय, जन कल्याण के लिए मुक्त हस्त सर्वसाधारण को मुग्ध किये बिना नहीं रह सकता। आपने गीता का व्यवहार दर्शन लिखकर जो उपकार मानव समाज का किया है उसे कौन भूल सकता है।

'समो मे सर्वभूतेषु' इस भगवद् वाक्य पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखने वाले मोहता जी ने कभी सामाजिक बहिष्कार की परवाह नहीं की और मनुष्य मनुष्य में भेद भाव की कलुषित भावनाओं को अपने हृदय में पैदा होने नहीं दिया।

कोलवार काण्ड में रूढ़िवादी पंचायतिष्ठों का माहेश्वरी समाज तथा महासभा पर जब तांत्रिक प्रहार हुआ तब उसका नेतृत्व सम्भाल कर जो पथ प्रदर्शन आपने किया वह समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

ऐसे महान् पुरुष, कर्मवीर, नरश्रेष्ठ के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए मैं बड़ा हर्ष अनुभव करता हूँ। भगवान उन्हें जन कल्याण के लिए दीर्घजीवी करे।

रामप्रसाद हुरकट

(सांभर निवासी वयोवृद्ध श्री रामप्रसाद जी हुरकट पुराने समाजसेवी, सुधारक और लेखक हैं। आपने अनेक वर्षों तक अनेक सामाजिक पत्रों का कुशलता-पूर्वक सम्पादन किया है और अनेक प्रगतिशील सामाजिक संस्थाओं के साथ आपका सम्पर्क रहा है। कुछ वर्ष पूर्व आपको सार्वजनिक एवं सामाजिक सेवाओं के लिए आपको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था।)

प्रशंसनीय है। सन् १९५१-५२ मे जब राजस्थान, विशेषकर बीकानेर में जो अकाल पड़ा था उसका दृश्य बड़ा ही दर्दनाक था। उस अवसर पर मुझे श्री मोहता जी की सेवा-भावना का परिचय मिला था। काफी वृद्धावस्था होने के कारण उनका शरीर उनका साथ नहीं दे रहा था, फिर भी गाँव-गाँव में घूम-घूम कर वे तथा उनके आदमी दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों की सहायता कर रहे थे। उनकी सेवा-भावना ने हम लोगों में अद्भुत प्रेरणा का संचार किया और मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की ओर से इस संकट काल में जो सहायता की गई वह एक प्रकार से इसी प्रेरणा का परिणाम थी। मेरे मानस पर तो उस सब का आज भी एक गंभीर प्रभाव है।

उनका यह काम प्रचार और प्रकाशन से सर्वथा परे है। एक मूक साधक की तरह वे अपने काम में जुटे रहते हैं। उनके मन में गरीबों के प्रति एक जलन है। अपनी सेवा का अधिक भाग उन्होंने समाज से उपेक्षित, दलित एवं शोषित हरिजनों के कल्याण मे लगाया। इसी से उनकी उदार मनोवृत्ति का परिचय हमको मिलता है। गरीबों को किस प्रकार ऊँचा उठाया जाय यह उनकी एक साधना है और वह किसी यश और मान-प्राप्ति की भावना से सर्वथा परे है। उनका कार्य-क्षेत्र ऐसा है कि जहाँ सिवा सेवा और साधना के कुछ और नही है। उनका जीवन समाज-सेवकों के लिए एक आदर्श जीवन है।

बदरी नारायण सोढ़ाणी

(राजस्थान के पुराने समाजसेवी)

०

५४

प्रभावशाली व्यक्तित्व

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वयोवृद्ध समाज-साहित्यसेवी श्री रामगोपाल जी मोहता के छयासीवें वर्ष में प्रवेश करने पर कुछ मित्र उनके अभिनन्दन में एक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। श्री मोहता जी से मेरा परिचय काफी पुराना है। जब कभी बीकानेर जाने का अवसर मिला, मैंने उनसे मिलने का प्रयत्न किया है। उनके सात्विक स्वभाव, उच्च चरित्र एवं लोकसेवा की सहज ही हृदय पर प्रेरणादायक छाप पड़ती है। ऐसा बहुत कम होता है कि एक व्यक्ति पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा एक सी हो। श्री मोहता जी इसके अपवाद हैं। लक्ष्मी की कृपा के साथ साथ ही उनकी विनम्रता, लोकपरायणता और साधुता दर्शनीय है। जो भी उनसे मिलता है उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मैं उनके दीर्घ क्रियाशील जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

हरिभाऊ उपाध्याय

(अर्थ मन्त्री, राजस्थान)

●

५५

जन सेवा के धनी मोहता जी

श्री रामगोपाल जी मोहता का जीवन समाज सुधारक और समाज-सेवक के रूप में जब सामने आया, तब वह बड़ा कठिन काल था। उस समय समाज सुधारक की बात तक करनी कठिन थी। सामाजिक विरोध, जाति-बहिष्कार और शासन की कुदृष्टि का शिकार उसके लिए बनना पड़ता था। आज समाज सुधार और समाज सेवा प्रतिष्ठा-सूचक हैं। जब कि उस समय यह कार्य अपमान, घृणा और खतरा पैदा करता था। ऐसे काल में सेवा-व्रत लेना और समाज सुधार में लगना साधारण कार्य नहीं था। उस कठिन काल में आपका कदम कभी रुका नहीं, पीछे हटने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था? आपके द्वारा किए गए शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज सुधार, हरिजन उद्धार, महिला उत्थान, आदि अनेक कार्य हमारे सामने हैं। बीकानेर राज्य के अतीत का जब स्मरण करते हैं तो समाज सुधारकों और समाज सेवकों में आपका नाम सबसे पहले आता है।

बीकानेर शहर में सार्वजनिक स्थान "मोहता धर्मशाला" जैसा उपयोगी दूसरा नहीं है। बीकानेर राजधानी होने के कारण गरीब-अमीर सबको ही यहाँ आना पड़ता था। उस समय न सरकार की ओर से कोई व्यवस्था थी और न आज की भाँति होटल, ढाबे और सराय आदि ही थे। उस काल में यह धर्मशाला देवालय का काम करती थी। बीकानेर राज्य का कोई क्षेत्र अथवा गाँव ऐसा नहीं होगा जहाँ के रहने वालों ने इस धर्मशाला से लाभ न उठाया हो। इस धर्मशाला के साथ जन सेवा के लिए आयुर्वेदिक औषधालय और भक्तजनों के लिए भगवान के दर्शन हितार्थ बना "हरि मन्दिर" जन-जन की शुभकामनाएँ प्राप्त कर रहा है।

सामाजिक सुधारों में मृतक भोज (मुकता) घड़ा आदि कुप्रथाओं से जनता को मुक्ति दिलाने का साहस करने वालों में आप पहले समाज सेवी हैं। परदा प्रथा, जेवर आदि की फिजूल खर्ची दहेज आदि ऐसे अनेक सुधार हैं जिनका श्रीगणेश आपने किया है। आपकी सेवाएँ और विचार जनसाधारण के लिए सदैव कुनैन के समान रहे जिससे समाज का ताप हरा जाता रहा, किन्तु आपको भारी से भारी विरोध व अपमान आदि का सामना करना पड़ा।

विधवा विवाह जैसे कार्य को भी जो समाज के गले नहीं उतरता था, आपने साहस और दृढ़ता के साथ आगे बढ़ाया। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, आदि कार्य तो आपके जीवन के अंग रहे हैं। आज भी आप अपनी उसी लगन से अपने कार्यों में लगे हैं। हरिजनों के लिए आपने अपने जीवन का विशेष भाग अर्पित किया है, शिक्षा का प्रचार एवं व्यवस्था, छुआछूत का विनाश और आर्थिक सहायता द्वारा हरिजनों को सदैव ही आगे बढ़ाया है। मोहता जी का घर गरीबों के लिए हरि मन्दिर बना हुआ है। वहाँ से कोई निराश नहीं लौट सकता।

बीकानेर सदैव अकाल का घर रहा। उस कारण बड़ी परेशानी यहाँ के लोगों को सदैव रही। अकाल के दिनों में रोटी और रोजी राज के घर में नहीं मिलती थी, पर आपके घर में वे सदा सुलभ रहीं। गरीब चौबीस घण्टे आपका घर-घेरे रहते हैं। मोहता जी का जीवन समाज और गरीबों का बन गया। आपकी वाणी और शक्ति दरिद्र नारायण की पूँजी बनी हुई है।

मैंने आपको बहुत निकट से देखा है। आपका सादा और सेवा-भरा जीवन समाज में फैले अज्ञान, अन्धविश्वास और रूढ़िवाद से संघर्ष करता रहा है।

मैं इस पुण्यात्मा को सामाजिक सुधारकों में क्रान्ति उत्पन्न कर देने वाले के रूप में देखता हूँ, और जन सेवा के क्षेत्र में सच्चा दानवीर और समाज सेवक मानता हूँ।

बीकानेर राज्य में आज जितनी शिक्षा, स्वास्थ्य और जन सेवा करने वाली संस्थाएँ चलती हैं उनमें सबसे पुरानी संस्थाएँ आपके परिवार की हैं। आपकी प्रेरणा से अन्य अनेक संस्थाओं ने भी जन्म लिया।

आज के राजस्थान में राजनीति से दूर ऐसा जन सेवक और समाज सुधारक दूसरा विरला ही होगा। राजस्थान की जनता विशेषतः बीकानेर राज्य के लोग आपकी सेवाओं से सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

ऐसे जनसेवी के अभिनन्दन में सम्मिलित होना मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

कुंभाराम आर्य

(भूतपूर्व मंत्री राजस्थान सरकार, सेवा भावी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता और स्वामी केशवनन्द अभिनन्दन समिति के अध्यक्ष।)

•

५६

मोहता जी की आत्मीयता

आज से २५-३० वर्ष पूर्व मैं भाई श्री रामगोपाल जी मोहता के यहाँ स्वर्गीय जमनालाल जी के साथ गई थी। दूसरी बार पूज्य विनोबा जी और श्री कृष्णदास जी जाजू के साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। विनोबा जी के साथ अछूतोद्धार आन्दोलन में मैं भी थी। उन्होंने आत्मीयता दर्शाने और आतिथ्य सत्कार करने में कोई भी कसर न उठा रखी।

उनकी दौहित्री रतन जी ने जो उनकी पुत्री के ही समान हैं मुझे वहाँ का महिला मण्डल दिखलाया। उन्होंने सभा का भी आयोजन किया। जोधपुर का अनाथाश्रम भी देखा जो उनकी ही ओर से चलता है। बम्बई में रतन बाई के पति का आपरेशन हुआ था। उसी समय मेरा भी आपरेशन हुआ था। रतनबाई गाय के घी में तैयार खाद्य पदार्थ मुझे भी बड़े प्रेम से यह कह कर—लाकर देतीं कि "काकी जी यह अपने बीकानेर के गाय के घी की चीजें है।" उसी समय गंगापुर जाने का भी मौका मिला था। वहाँ एक संस्था हैं जहाँ मैंने जलाशयों की ओर बहनों का ध्यान आकर्षित किया। बहनों ने उन तालाबों के सुधारने के लिए सहयोग देने का आश्वासन दिया। रामगोपाल जी के यहाँ सत्संग हुआ करता था, मैं भी उसमें एक दिन सम्मिलित हुई। उन्होंने बहनों से मेरी बात सुनने का आग्रह किया। मैंने वहाँ कूपदान और जलाशयों के लिए अपील की। मैं उन दिनों कूपदान का ही कार्य कर रही थी। बीकानेर में पानी की समस्या बड़ी विकट है। सब ने मेरी अपील पर ध्यान दिया। वहाँ कुँए बनने कठिन हैं अतः कुण्ड जगह-जगह बनाये जायें यह तै हुआ। श्री मोहता जी ने कहा, "माता जी की बात आपने सुनी। जैसा ये कहती हैं वैसा करें।"

बीकानेर में हरिजन कान्फ्रेंस होने वाली थी जिसके लिए उनके मंत्री मुझे लेने के लिए दिल्ली आए थे। हरिजन बहनों की अलग कान्फ्रेंस बुलाई गई थी जिसमें मैंने सफाई रखने, नशे से दूर रहने व बच्चों को पढ़ाने के बारे में कहा। मोहता जी ने जब-जब भी भोजन पर बुलाया तब तब उनका आतिथ्य प्रेम व आत्मीयता देख कर तृप्ति और अपार प्रसन्नता हुई।

बड़ी हवेली, ऐश्वर्य एवं वैभव में रह कर भी उनकी सादगी और सज्जनता अलग ही झलकती है। रहन-सहन व स्वभाव से वह साधु ही हैं साथ ही उदार और दानवीर भी हैं। अनेक संस्थाएँ आज भी उनकी ओर से चल रही हैं। हरिजनों और महिलाओं के लिए उन्होंने जो कुछ अकेले किया है वह अनेक संस्थाएँ भी कर नहीं सकी। मुझे मालूम है कि बीकानेर राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से कितना पिछड़ा है। वैसे तो सारा राजस्थान ही पिछड़ा हुआ है। ऐसा मालूम होता है जैसे कि पिछली एक सदी में राजस्थान में जागृति के सूर्य का प्रकाश फैल ही नहीं सका और आज भी घोर अन्धकार चारों ओर छाया हुआ है। वहाँ की अधिकांश महिलाएँ आज भी परदे में कैद हैं। हरिजनों के साथ होने वाले अन्यायपूर्ण दुर्व्यवहार के जो समाचार प्रायः समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलते रहते हैं उन पर सचमुच ही आश्चर्य होता है। अस्पृश्यता का व्यवहार कानून से वर्जित व दण्डनीय ठहराया जाने पर भी उनके प्रति वैसा ही व्यवहार आज भी चालू है। अचरज यह देखकर होता है कि सरकारी अधिकारियों के कान भी इस बारे में बहरे बने हुए हैं और वे भी उस अन्याय व दुर्व्यवहार को प्रश्रय देते हैं। ऐसे प्रदेश में पचास वर्ष पहले शिक्षा प्रसार, हरिजन सेवा तथा मातृ जाति के उद्धार का काम शुरू करने से मोहता जी के साहस एवं दूरदर्शिता का पता चलता है। लाखों रुपया इन कामों में वे खर्च कर चुके हैं और अब भी खर्च करते रहते हैं। एक राजस्थानी होने के नाते मुझे सचमुच ही उनके लिए बड़ा गर्व अनुभव होता है। इस अवसर पर भी उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना कर्त्तव्य मानती हूँ।

जानकी देवी बजाज

(माता जानकी देवी जी को सुप्रसिद्ध देशभक्त स्वर्गीय सेठ जमनालाल जी बजाज की धर्मपत्नी के रूप में कौन नहीं जानता? गांधी जी के अनुयायी बनकर उन्होंने अपने राजसी वैभव के उपभोग करने से एकाएक हाथ खींच लिया था। उनके उस उत्सर्ग में माता जानकी देवी जी ने भी पूरा हाथ बंटाया और उनके निधन के बाद तो वे इस प्रकार सार्वजनिक सेवा के मैदान में निकल पड़ीं जैसे कि उन्होंने अपने स्वर्गीय पति के जन सेवा के प्रसिद्ध स्वप्न को पूरा करने का संकल्प कर लिया। वे अहोरात्र उसको पूरा करने में लगी रहती हैं। संत विनोबा के भूदान यज्ञ की पूर्ति के रूप में आपने कूपदान आन्दोलन का श्री गणेश किया है।)

●

५७

आधुनिक नरसी भगत

मैं करीब ३० वर्ष पहले माहेश्वरी महासभा का प्रचार करते हुए बीकानेर गई, तो पूज्य रामगोपाल जी मोहता के यहाँ ठहरी। मैंने उनका नाम पहले से ही सुन रखा था। आपने भी मेरा नाम सुना था। किन्तु साक्षात परिचय उससे पहले नहीं हुआ था। वे पिता समान होते हुए भी मैं उनको पहले ही दिन से "भाई जी" सम्बोधन करने लग गई। वे तो मुझे पुत्री ही समझते थे, क्योंकि वे मुझ से २१ साल तथा मोहता जी से १६ वर्ष अधिक बड़े हैं। वे हम दोनों को अपनी सन्तान समान ही स्नेह करते हैं। तब मैं वहाँ केवल ८-१० दिन ठहरी थी। भाई जी की दिनचर्या देखकर मैं चकित रह गई कि बीकानेर में माहेश्वरी समाज में करोड़पति ऐसे परोपकारी, गुणारथ, साधु-स्वभाव के हो सकते हैं। भाई जी जैसा व्यवहार लाखों में मिलना मुश्किल है।

उन्होंने स्त्री जाति की भलाई में तन-मन-धन लगाया है। स्त्री जाति की उन्नति का कोई ऐसा काम नहीं जो उन्होंने नहीं किया। स्त्री जाति के प्रति पुरुषवर्ग की हीन भावना को बदलने के लिए उन्होंने साहित्य का निर्माण किया। उनमें शिक्षा फैलाने के लिए अनेक संस्थाएँ कायम कीं, उनको स्वावलम्बी बनाने के लिए कुछ काम-काज सिखाने का सिलसिला प्रारम्भ किया और पुरुषों द्वारा मार्ग भ्रष्ट की गई बहनों के उद्धार के लिए स्थान-स्थान पर अनेक आश्रम स्थापित किए। विधवाओं के उद्धार के लिए पुनर्विवाह का मार्ग खोलने के कारण उन पर क्या लांछन नहीं लगाए गए परन्तु वे अपने मार्ग से जरा सा भी विचलित नहीं हुए। हरिजनों के लिए तो वे करुणा-निधान ही हैं। उनके कष्टों को वे अपना कष्ट मानते हैं और दिन-रात तन-मन-धन से उनके दुख-निवारण में लगे रहते हैं। जनता में आत्म-ज्ञान फैलाने के उद्देश्य से उन्होंने सत्संग का क्रम शुरू किया हुआ है। जब वे सन्तों की वाणियाँ सत्संग के समय गाते हैं तो भारत के पुराने ऋषि-मुनियों का स्मरण हो आता है। जब-जब बीकानेर जाने और वहाँ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ मुझे भाई जी का परोपकारी कार्य देखकर बड़ा हर्ष हुआ। मुझे इससे खुशी है कि पहले नरसी मेहता हुए थे और आज उनके जैसे मोहता जी हैं। परन्तु मोहता जी में वैसी अन्ध श्रद्धा अथवा अंध भक्ति नहीं है। मोहता समाज की होने के कारण मुझे भाई जी के लिए गर्व ही अनुभव होता है।

गंगादेवी मोहता

(श्रीमती गंगादेवी मोहता—धर्मपत्नी श्री बालकृष्ण जी मोहता उन महिलाओं में से हैं, जिन्होंने सब से पहले परदा प्रथा का त्याग करके समाज सेवा के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और समस्त सामाजिक रूढ़ियों तथा धार्मिक अंध विश्वासों को तिलांजलि दे दी। आप का सारा परिवार प्रगतिशील सुधारक विचारों का है। आप ने अपने पौत्र चिरंजीव वीरेन्द्र का शुभ विवाह अग्रवाल विधवा कन्या के साथ बड़ी सादगी से आडम्बर-रहित विधि से करके समाज के सम्मुख एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। दो वर्ष पहले अपनी पौत्री का विवाह भी इसी ढंग से किया था। आप मोहता जी के विचारों का पूरी तरह पालन करने वाली कट्टर समाज सुधारक महिला हैं।)

•

५८

मेरे नाना जी और उनकी शिक्षा

जब मैं तीन वर्ष की थी तभी मेरी माता जी का स्वर्गवास हो गया था। मेरा पालन पोषण मेरे पूज्य नाना जी श्री रामगोपाल जी मोहता के संरक्षण से हुआ। मेरी माता जी के स्वर्गवास होने के आठ महीने पश्चात् ही मेरी पूज्य नानी जी का पुत्री वियोग में स्वर्गवास हो गया। वे बीमार वर्षों से थीं पर यह शोक बर्दाश्त न कर सकीं। मेरा भाई जिसका नाम भैरव रत्न था मुझ से ३ वर्ष बड़ा था। मेरी पूज्य नानी जी के स्वर्गवास होने के आठ महीने पश्चात् ८ साल की उम्र में उसका देहान्त हो गया। मेरे पिता जी बहुत व्याकुल रहा करते थे। सवा साल में इन तीनों की मृत्यु हो जाने पर भी नाना जी के अन्तःकरण का सन्तुलन बना रहा। आप ने मेरे पिता जी को मेरी माता जी व मेरे भाई की यादगार में एक कन्या पाठशाला खोलने का परामर्श

दिया। उसके फलस्वरूप श्री भैंरवरत्न मातृ पाठशाला की स्थापना की गई। यह बीकानेर में जनता की तरफ से स्थापित की हुई प्रथम कन्या पाठशाला है। इसने बड़े भारी अभाव की पूर्ति की क्योंकि इससे पहले बीकानेर के लोगों में स्त्री शिक्षा का पूर्णतया अभाव था। यह पाठशाला आज भी मिडिल स्कूल के रूप में सफलता-पूर्वक चल रही है। हजारों बालिकाएँ इस स्कूल से शिक्षा व शिल्पकला में निपुणता प्राप्त कर चुकी हैं और सैकड़ों की संख्या में कर रही हैं।

इन सब की मृत्यु हो जाने से मेरा लालन-पालन मेरे पूज्य नाना जी की गोद में ही हुआ। हर समय वे मुझे शिक्षाप्रद बातें सुनाया करते थे। मेरी प्रत्येक उचित इच्छा पूरी की जाती थी, व अनुचित इच्छा में मार-पीट व धमकाने से काम न लेकर अच्छी तरह समझाया जाता था जिससे उससे मेरा मन हट जाता था। आप का हृदय मातृत्व से परिपूर्ण था जिससे मुझे कभी भी पूज्य नानी जी व माता जी का अभाव प्रतीत न हुआ।

आपकी दृष्टि में पुत्र व पुत्री एक समान हैं व उनके अधिकार भी समान हैं। इसी दृष्टिकोण को रखते हुए जब मैं छोटी थी तभी आपने मेरे नाम से एक ट्रस्ट कायम कर दिया था। मेरा विवाह सम्बन्ध करने में भी वर-पक्ष की धन सम्पत्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया अपितु मेरी प्रकृति के अनुकूल मेरे जोड़ी का वर तलाश करने पर विशेष ध्यान दिया गया। आप के विचार में विवाह सम्बन्ध करने में वर कन्या के दाम्पत्य जीवन के सुख पर ही ध्यान रखा जाना चाहिए। मेरा विवाह सम्बन्ध मेरी इच्छानुसार मुझ से अच्छी तरह पूछ कर किया गया। विवाह के पश्चात् मुझे आप से हर समय यही उपदेश मिलता था कि "ससुराल वाले प्रसन्न हों वही काम हमेशा करना चाहिए। यह मन में कभी नहीं सोचना चाहिए कि मेरे नाना जी बड़े आदमी हैं, उन्होंने मुझे लाखों रुपये दिये हैं फिर मैं किसी से दबकर क्यों रहूँ। मनुष्य कुछ देकर ही पा सकता है। उनको तुम अपना प्रेम व सेवा अर्पण करो वे खुद तुम्हारे अपने हो जावेंगे।" इन उपदेशों के प्रभाव से ही आज मेरे सुसुराल वाले पूर्णरूप से मुझ से प्रसन्न हैं और मेरी उन्नति में सब प्रकार से सहायक हैं।

स्त्रियों व अछूतों के प्रति आप की विशेष सहानुभूति रही। हमारे समाज में इनकी जो दशा है वह सर्वविदित है। इनकी इस पददलित दशा का मूल कारण आप ने शिक्षा का अभाव समझा। आपने अछूतों को वजीफे आदि अन्य सहूलियतें देकर पढ़वाना शुरू किया जिसके फलस्वरूप पन्नालाल, धर्मपाल जैसे हरिजन भाई सब के साथ उच्च स्थानों पर बैठने योग्य हो गए। स्त्री शिक्षा के लिए आप ने सन् १९४६ में महिला मंडल की स्थापना श्रीमती सरस्वती देवी मोहता, श्री गुलाब कुमारी जी सेंगावत व श्री गंगादेवी मोहता, धर्मपत्नी श्री बालकृष्ण जी मोहता, द्वारा करवाई। मैं भी आप लोगों के कार्य में सहयोग दिया करती थी। प्रारम्भ में आपके शहर वाले मकान में महिला मंडल के तत्वावधान में साप्ताहिक सभाएँ हुआ करती थीं जिनमें शिक्षा का महत्व समझाया जाता था। फलस्वरूप कुछ महिलाओं में पढ़ने की रुचि उत्पन्न हुई। १५ अगस्त सन् १९४७ में मंडल के कार्य के संचालन हेतु महिलाओं की एक कार्यकारिणी समिति बना दी गई। उस समय मैं मंडल की कोषाध्यक्ष चुनी गई थी। आपने बिना किराए अपना मकान व १०० रुपया मासिक देना शुरू कर दिया। मंडल में प्रथम कक्षा व पंजाब की हिन्दी रत्न की कक्षा प्रारम्भ कर दी गई। इस समय यह संस्था महिलाओं को शिक्षा देने तथा काम-काज सिखाकर उनको स्वावलम्बी बनाने वाली बीकानेर की एक प्रमुख संस्था है। इसका संचालन तथा व्यवस्था आदि सारा कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। महिला उत्थान के प्रति आप की लगन व उदारता की कुछ साक्षी इस संस्था से भी मिलती है।

समाज सुधार के कार्यों में आप हमेशा अग्रणी रहे। भारतवर्ष व खास कर हमारे राजस्थान में विवाह, शादी व मृत्यु के अवसरों पर धार्मिक अन्धविश्वासों के कारण और सामाजिक रीति रिवाजों के कारण जो फिजूल खर्च और आडम्बर किया जाता है उनके आप सर्वथा विरुद्ध हैं। उन खर्चों से सारा समाज परेशान है फिर भी

कुंवर मदन गोपालजी दम्माणी

सौभाग्यवती रतनबाई मदन गोपाल दम्माणी
(मोहताजी की विदुषी दोहित्री)

सौ० सुशीलादेवी लोईवाल
सुपुत्री श्री मदनगोपालजी दम्माणी

श्री कृष्णकुमार दम्माणी
सुपुत्र श्री मदनगोपालजी दम्माणी

कुमारी सरोज दम्माणी
सुपुत्री श्री मदनगोपाल जी दम्माणी

आगे बढ़कर सुधार करने की हिम्मत किसी की नहीं होती। आपके ही उपदेशों से प्रेरित होकर मेरी बड़ी लड़की के विवाह में जो कि सन् १९५० में हुआ था व लडके के विवाह में जो कि सन् १९५७ में हुआ किसी भी अदृष्ट देवता के प्रसन्न करने के लिए फिजूल खर्च नहीं किया गया और शादी के बाद देवताओं की जात वगैरह भी नही दी गई। जन्मपत्री व कुण्डली दिखाने में, झाड़-फूंक व मन्त्र जन्त्र में तथा मुहूर्त आदि दिखाने में मेरे परिवार में किसी को विश्वास नही है। हमारे घर मे धार्मिक अन्धविश्वासो पर किसी की श्रद्धा नहीं है।

विवाह के समय में होने वाले सामाजिक रीति रिवाज जो कि समाज को हानि पहुँचाने वाले हैं हमने अपनी लड़की व लड़के के विवाह में सर्वथा बन्द कर दिए; क्योंकि आपने प्रतिज्ञा की हुई थी कि जिस विवाह में निम्नलिखित हानिकारक प्रथाएँ की जाएँगी उसमें मैं सम्मिलित नहीं होऊँगा। आप के उपदेशों से हमारी भी इन घोर हानिकारक रिवाजों से घृणा हो चुकी थी।

(१) टीका (मुछा)—यह विवाह से पहले सगाई के अवसर पर हजारों रुपये का कन्या पक्ष वालों की तरफ से वर पक्ष वालों को दिया जाता है। यह रिवाज हमने अपनी लड़की व लड़के दोनों के विवाह में नही किया।

(२) मिलनी—यह कन्या पक्ष वालों की तरफ से वर पक्ष वालों को सगाई के बाद पहली बार मिलने पर विवाह के समय सारे परिवार वालों को रुपये के रूप में दी जाती है जिसे हमने न दिया और न ही लिया।

(३) टीका—यह सन्तान के माता पिता के ननिहालो की तरफ से पहली सन्तान के विवाह मे दिया जाता है। यह हमने हमारी लड़की के विवाह मे ही बन्द कर दिया था।

(४) वरी—वर पक्ष वाले कन्या के लिए गहने व कपड़े बड़े दिखावे के साथ लाते हैं। यह रिवाज एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए एक दूसरे से बढ़ कर किया जाता है जिससे विवाह के बाद में दोनों पक्ष वालों में आपस में झगड़े इन गहनों के पीछे होते हैं। यह रिवाज भी हमने लड़की के विवाह में बन्द कर दिया था।

(५) कन्यादान—माता पिता पुण्य उपार्जन की दृष्टि से पेट की सन्तान कन्या को दान स्वरूप, वर को पशु व निर्जीव पदार्थ की तरह दे देते हैं। यह दान न हमने लिया और न दिया।

(६) मोहेरा—वर व कन्या के ननिहाल वाले बड़े दिखावे के साथ अपनी लड़की के ससुराल वालों की मदद करने आते हैं चाहे मन में कष्ट ही पाते हों कारण कमाई सब की सीमित है। फिर दूर-दूर में रेल किराया वगैरह लगता है पर यह रिवाज पूरी जरूर करनी पड़ती है कारण समाज में नाक कटने का भय रहता है। ऐसी हानिकारक रिवाज को हमने अपने लड़के के विवाह में मेरे पिता जी की सहमति व रजामन्दी से बन्द कर दिया ताकि दूसरे भी कुछ इसका अनुकरण करें।

(७) दहेज— यह समाज की सब से बड़ी हानिकारक प्रथा है। हमारे समाज में यह प्रथा इतनी बढ़ गई है कि सारे समाज मे इसके दुष्परिणाम से त्राहि-त्राहि मची हुई है। इसके विरुद्ध आन्दोलन भी होते हैं जिसमें इस प्रथा की हद बांधते हैं, समूल नष्ट नही करते, जिससे यह फिर पनप उठती है। कितनी ही कन्याओं का इस प्रथा के कारण अच्छा सम्बन्ध नहीं हो सकता और उनका सारा जीवन बर्बाद हो जाता है। हमने अपनी लड़की के विवाह मे दहेज दिया नहीं और लड़के के विवाह में लिया भी नही।

(८) पगे पड़नी—यह कन्या की माता की तरफ से वर पक्ष की औरतों को दी जाती है। यह सब के पैर छूती है व रुपये देती है। इससे समानता की भावना नष्ट होती है इसलिए हमने अपनी लड़की व लड़के के विवाह मे इस प्रथा को बन्द कर दिया।

(९) मुकलड़ी—यह विवाह के बाद कन्या पक्ष वाले कन्या के ससुराल व नानी ससुराल वालों को मूंग अर्थात् घूस के रूप में देते हैं, न हमने मूंग दी और न ली।

(१०) घूंघट—यह हमारे यहाँ से सर्वथा हटा दी गई है। हमने अपनी लड़की का विवाह खुले मुंह किया। लड़के के ससुराल वाले रीति रिवाजों में बड़े कट्टर व धार्मिक-अन्धविश्वासी हैं। पर उनसे हमने सगाई के समय ही सारी बात कर ली थी जिससे यह विवाह भी पूर्ण सुधार सहित खुले मुंह किया गया।

यह सब रीति रिवाज एक दूसरे से बढ़ाचढ़ी करने व एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए किए जाते हैं। सहयोग व समता का भाव आपस में रहा ही नहीं।

समाज को सुखी बनाने व समता का भाव स्थापित करने के लिए हर व्यक्ति के लिए 'गीता' का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। बचपन में मेरा स्वभाव बहुत चंचल था। मैं एक जगह ज्यादा देर तक बैठ ही नहीं सकती थी। आप 'गीता' के अत्यन्त प्रेमी हैं और श्री भगवद्गीता ही एक ऐसा शास्त्र है जिसके अध्ययन से मनुष्य आधिभौतिक, आधिदैविक व आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। गीता के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए आप हमेशा सत्संग किया करते हैं जिससे काफी लोगों ने लाभ उठाया व उठा रहे हैं। मुझे आप अपने साथ सत्संग में ले जाते पर मेरा मन वहाँ २, ३ घंटे बड़ी कठिनाई से लगता था। पर फिर भी मेरे अन्तःकरण में दूसरे अदृष्ट देवताओं के प्रति श्रद्धा व कल्पित ईश्वर का डर नहीं था। हृदय सरल था इसलिए जल्दी ही आप के उपदेशों का प्रभाव पड़ने लगा। गीता के प्रति प्रेम व उसके सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा व विश्वास हो गया। मैंने 'गीता' का अर्थ सीखना शुरू कर दिया। गीता के अध्ययन से मुझे यह निश्चय हो गया कि आत्मा सर्वत्र एक समान सम रूप से व्यापक है, यह ध्यान में रखते हुए अपनी-अपनी स्वाभाविक योग्यतानुसार अपने कर्तव्य कर्म अच्छी तरह से पालन करते हुए संसार चक्र को सुचारु रूप में चलने में सहयोग देना ही वास्तव में सच्चा धर्म, यज्ञ व पाठ पूजा आदि है।

आज मेरा मन पूर्ण शान्त व आनन्दमय है।

श्रीमती रतनदेवी दम्माणी

(आप मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता की एक मात्र दोहिती हैं और सेठ चांदरतन जी डागा की पुत्री हैं। बीकानेर में महिलाओं में जागृति का संचार करने वाली संस्था "महिला मंडल" की आप संस्थापिका तथा संचालिका हैं। साहित्यरत्न तथा एफ० ए० तक आपने शिक्षा प्राप्त की है। "प्रवृत्तिनो दीप इव प्रदीपः" के अनुसार आप अपने नाना जी की समाज सेवा सम्बन्धी सभी सार्वजनिक प्रवृत्तियों में प्रमुख भाग लेती हैं। आपके पति श्री मदन गोपाल जी दम्माणी भी सेवाभावी व्यक्ति हैं और दोनों ही सार्वजनिक प्रवृत्तियों में प्रमुख भाग लेते हैं।)

५६

वंश के प्रकाश-स्तम्भ

हमारे पूज्य पितृव्य श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता का स्मरण होते ही एक ऐसे दूरदर्शी तत्त्वान्वेषी एवं सफल समाज सुधारक का व्यक्तित्व सामने आ जाता है जिसने अपने चिन्तन व मनन को कर्म निष्ठा में प्रतिष्ठित कर साकार किया, समाज के कठोर विरोध के उपरान्त भी रूढ़ियों, परम्पराओं व अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध मोर्चा लिया और समाज के विरोध व अपमान की सर्वथा उपेक्षा करते हुए अपने सिद्धान्तों व अपनी मान्यताओं को व्यावहारिक रूप देकर सबके समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। संसार में यश की कामना सबको होती है और उचित माने जाते हुए भी अनेक अच्छे कार्य केवल अपयश के भय से अकृत रह जाते हैं। पूज्य पितृव्य उन इने गिने व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने यश-अपयश से निर्लिप्त रह कर अपनी मान्यताओं को व्यावहारिक रूप दिया। आज से ४०-४५ वर्ष पूर्व जबकि किन्हीं सुधारों के विषय में सोचना भी सामाजिक अपराध माना जाता था तब समाज की अनेक कुरीतियों के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक मोर्चा लेना वस्तुतः आपके आन्तरिक अभय, अपूर्व साहस एवं दृढ़निश्चयात्मिका बुद्धि का परिचायक है, जो कि एक समत्वयोगी में ही पाई जा सकती है। आज भी बीकानेर में अनेक रूढ़िवादी आपके ब्राह्मण-हरिजन-अभेदभाव, विधवा विवाह-समर्थन, एवं अनाथ स्त्री-बालकों को संरक्षण आदि कार्यों की घोर निन्दा करते हैं; परन्तु आप इन सबकी अवहेलना करते हुए अपनी निष्ठा पर दृढ़ हैं। कोई भी बाह्य शक्ति उन्हें उचित माने हुए कार्य से रोक नहीं सकती।

बहुधा यह देखा जाता है कि उग्र बुद्धिवादी एवं विशुद्ध तार्किक व्यक्तियों का हृदय-पक्ष इतना शुष्क हो जाता है कि उसमें मानवीय सौहार्द, सहानुभूति या करुणा के लिए कोई स्थान नहीं रहता और मानव की स्वभावगत दुर्बलताओं के प्रति उदारतापूर्ण क्षमा की भावना तनिक भी नहीं रहती। दूसरी ओर मानवीय तत्व प्रधान हृदय में एक ऐसी भावुकता का आधिक्य होता है कि ऐसे व्यक्ति सभी बातों पर विश्वास करते-करते अन्धविश्वासों के भवंर में जा फँसते हैं। इसी कारण जीव कल्याण की भावना मूलक बहुत से विचार केवल अन्धविश्वास बन कर रह जाते हैं। उनसे कल्याण के स्थान पर अकल्याण की ही सृष्टि होती है। अतः बुद्धि की अति शुष्कता एवं हृदय की अति आर्द्रता के बीच की स्थिति ही सदा कल्याणकारी होती है। जिसका हृदय मानव मात्र के प्रति प्रेम व सहानुभूति से परिपूरित हो, किन्तु जो विवेक तथा बुद्धि द्वारा शासित हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा ही मानव जाति का कल्याण सम्भव हो सकता है।

पूज्य पितृव्य कट्टर बुद्धिवादी व विशुद्ध तार्किक हैं। जो तर्क से प्रमाणित नहीं होता और वास्तविकता की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता वह उन्हें स्वीकार नहीं। उस पर वे निर्ममता से प्रहार करते हैं, चाहे इससे दूसरे के विश्वासों, या यूं कहो कि अन्धविश्वासों को कितनी ही चोट क्यों न पहुंचे। किन्तु दीन, दुखी, दलित व उत्पीड़ितों के लिए आपके पास प्रेम, सहानुभूति, दया व सहायता की कभी कमी नहीं रहती। मानव की स्वभाव-गत दुर्बलताओं के प्रति आपका दृष्टिकोण अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण रहता है, किन्तु दम्भ, पाखंड व ढोंग से आपको घृणा है। झूठे पाखंडियों की पोल खोलने में आप कभी संकोच नहीं करते। अनाथ बालक, गरीब हरिजन व उत्पीड़ित स्त्री जाति आपकी सहानुभूति व सहायता के सदा पात्र रहे हैं। अनेक अनाथ बालकों व निराश्रय स्त्रियों को आप शरण व आश्रय देते हैं फिर उनके भरण पोषण का कोई स्थायी प्रबन्ध कर देते हैं।

बीकानेर राज्य में दुर्भिक्ष प्रायः ताण्डव-नृत्य करता रहता है। भूख व सर्दी के कारण अनेकों कामकाजी मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। कई बार तो पेड़ों के पत्तों को चबाकर प्राण रक्षा का प्रयत्न करने तक की नौबत

आ जाती हैं जबकि उन अभागे व्यक्तियों की सहायता का कोई अन्य स्रोत नहीं होता—सरकार की दृष्टि वहाँ तक पहुँचती ही नहीं और राज्य के अन्य धनी व्यक्ति केवल ब्राह्मणों को दान व भोजन देकर ही अपने पुण्योदय व पाप क्षय करने में व्यस्त रहते हैं। तब पूज्य पितृव्य का सहायतार्थ बढ़ा हुआ हाथ ही उन विपदग्रस्त ग्रामीणों का एक मात्र सहारा होता है। मैंने कुछ रूढ़िवादी लोगों के मुँह से स्वयं यह व्यंग सुना है कि रामगोपाल जी मोहता के मन में हर समय हरिजन ही बसे रहते हैं, अन्त समय भी उन्हीं में उनका मन रहेगा, सो अगले जन्म में वे निश्चय ही हरिजन होकर जन्म लेंगे।

इस प्रकार पूर्णतः अभाव ग्रस्तों के लिए तो आप अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करते ही हैं किन्तु उनमें कुछ स्वाभिमानी ऐसे भी होते हैं जिनके स्वाभिमान को दान ग्रहण करने से चोट पहुँचती है। उनके लिए आप यह नहीं कहते कि हम तो देने को तैयार हैं, यह नहीं लेते तो हम क्या करें, प्रत्युत उनके स्वाभिमान की प्रशंसा करते हैं और प्रयत्न करके ऐसी व्यवस्था करते हैं जिससे उन्हें सस्ते से सस्ते भाव में अन्न वस्त्र मिल सकें। जो भी प्रार्थी आपके पास आते हैं, उन सबके लिए आपका द्वार खुला रहता है। आप उनका दुख सुनते हैं, सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और उन्हें उचित परामर्श एवं आवश्यक सहायता प्रदान करते हैं।

जहाँ एक ओर आप दूसरों की सच्ची अभाव-जनित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर मन की सनक, या अन्धविश्वासों के कारण मान ली गई झूठी आवश्यकताओं को आपकी सहायता तो क्या सहानुभूति भी प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार के प्रार्थियों की माँगों को आप कभी आदर नहीं देते।

आप सादा रहनसहन के समर्थक हैं। तनिक भी अपव्यय आपको सुहाता नहीं। आपके रहनसहन की सादगी देखकर दंग रह जाना पड़ता है। मोटे वस्त्र व विशुद्ध सात्विक भोजन के अतिरिक्त अपने शरीर पर आपको कुछ भी व्यय करते देखा नहीं गया। पोस्टकार्ड से काम चले तो लिफाफा प्रयुक्त न करने के आप पक्षपाती हैं। हम लोगों को बहुधा उपदेश दिया करते हैं कि "देश में इतनी गरीबी होते हुए जहाँ लोगों की उदर-पूर्ति के लिए पर्याप्त अन्न भी नहीं मिलता, वहाँ हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को अधिक से अधिक घटा कर बचा हुआ धन गरीबों की सहायता के लिए अर्पण कर दें। इस समय अपव्यय एक अधर्म है। निजी आवश्यकताओं को काट कर अपने हाथ-खर्च में से बचा कर दिए हुए दान का ही सच्चा मूल्य होता है, क्योंकि उसमें त्याग की भावना का योग रहता है।" दूसरों की सहायतार्थ लाखों रुपये व्यय करने वाले व्यक्ति का इतना अधिक सादा रहनसहन सचमुच विस्मय एवं श्रद्धा उत्पन्न करता है। वैभव के मिथ्या प्रदर्शन से आपको चिढ़ है। इसी लिए ऐसे प्रार्थी जिन्हें कोई सच्चा अभाव तो नहीं, किन्तु जो समाज के भय से या रूढ़िगत अन्धविश्वासों के कारण जन्म, विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर केवल प्रतिष्ठा के प्रदर्शन हेतु व्यय करने के लिये सहायता की माँग करने आते हैं, उनको आप कभी सहायता नहीं देते, प्रत्युत मिथ्या प्रदर्शनों के मोह से मुक्ति पाने का उपदेश देते हैं।

आजकल अधिकतर लोग अति भौतिकवादी दृष्टिगोचर होते हैं। वे नीति-धर्म के सामान्य नियमों को ताक पर रख कर केवल भौतिक सुख ऐश्वर्य की प्राप्ति में अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं और उसी में संलग्न रहते हैं। जो थोड़े बहुत धर्मवादी हैं, वे इस भौतिक जगत को माया व भ्रान्तिमूलक मानकर इससे निवृत्त या आत्म-निरत रहते हैं कि मानव जीवन की समस्याओं का निराकरण सोचना तो दूर विचार करना भी नहीं चाहते। धर्मग्रंथ जब तक व्यवहार में साकार नहीं होता तब तक न तो उसका कोई मूल्य है न महत्व। सिद्धान्त तो उसी अंश तक सारवान हैं जिस अंश तक वे जीवन की कसौटी पर कसे जाएँ, अन्यथा उनका मूल्य तो क्या, सच्चा धर्म तक समझ में नहीं आता। पुस्तकों में पढ़ कर या दूसरों से सुन कर स्वर्ग की चोटी पर के

सुन्दर दृश्य का शाब्दिक वर्णन कोई भले ही कर दे, किन्तु उस दृश्य के वास्तविक सौन्दर्य व आनन्द को तो पर्वत की चोटी पर स्वयं चढ़ कर ही जाना जा सकता है। अनुभवहीन वर्णन तो शब्दाडंबर ही होगा।

"गीता का व्यवहार दर्शन" नामक अपने ग्रन्थ में पूज्य पितृव्य ने यही प्रतिपादन किया है कि गीतोक्त योग न तो अव्यावहारिक दर्शन है, न हठयोग है और न सन्यास, वरन् परम व्यावहारिक कर्म योग है। अति सीधी सरल भाषा में इसी बात को आपने सोदाहरण समझाया है, जिससे कि अपने आप शंका समाधान भी होता चला जाता है। समष्टि मात्र को आत्मरूप मानते हुए सबके सुख-दुख के भागी बन कर सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हुए जो उचित है उसे साहसपूर्वक करते चले जाना ही कल्याण का एकमात्र साधन आपने बताया है। आपने स्वयं अपने जीवन में इस व्यावहारिक कर्मयोग को साकार किया है, इसी से आपका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक एवं आपके उपदेश अमूल्य है। हमारे वंश के तो आप ही एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं जिनके स्नेह सहानुभूति और सहृदयता के प्रकाश में विषम परिस्थितियों मे भी चलते रहने का बल व उत्साह प्राप्त होता है। हम आपका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करते हुए आपके दीर्घ जीवन की मंगल कामना करते हैं।

कौशल्या देवी मोहता

(स्वर्गीय श्री गंगादास जी मोहता के सुपुत्र श्री शिवबक्श जी मोहता की आप धर्मपत्नी हैं। माहेश्वरी अथवा मारवाड़ी समाज में आपके समान सुशिक्षित और विचारशील महिलाएँ बहुत कम हैं। आप थियोसोफिकल विचारों की हैं और थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों का आपने अनुवाद किया है।)

●

६०

बाबा जी का जीवन दर्शन

आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व मेरे वैधव्य जीवन के आरम्भ काल में कुछ घरेलू, कुछ बाहरी प्रतिकूलताओं और कुछ आन्तरिक वेदनाओं के कारण मेरा चित्त उद्विग्न और अशान्त रहता था। दुःख के भार को कम करने के लिए सिवाय आँसू बहाने के और कोई चारा नहीं था। मेरे मन में विद्याध्ययन की उत्कट जिज्ञासा पैदा हुई। परन्तु घर वाले इसको नापसन्द करते थे। इसलिए बिना किसी बाहरी सहयोग के उस जिज्ञासा को पूरा करना मेरे लिए प्रायः असम्भव था। संयोगवश मुझे स्वर्गीय भाई भीखाराम जी का संसर्ग प्राप्त हुआ। उन्होंने मेरी इस विषय में बहुत सहायता की। वे मेरी हृदय से उन्नति चाहते थे। उन्होंने नीति और सुन्दर चरित्र-निर्माण सम्बन्धी अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाकर मुझे पढ़ाई और पूज्य बाबा जी के सत्संग में आने के लिए प्रेरणा दी। उन दिनों मेरे मन में पूज्य बाबा जी के प्रति इतनी श्रद्धा नहीं थी और न घर वाले ही यह चाहते थे कि मैं उनके सत्संग में जाऊँ। कारण यह था कि मेरे सम्बन्धियों के मन में यह भय था कि वहाँ जाने से मेरा पुनर्विवाह करवा देंगे।

भीखाराम जी के अत्यधिक आग्रह करने पर मैं आपके सत्संग में आई। आध्यात्मिकता के रस से अभिषिक्त आपके मधुर उपदेशों और सारगर्भित गानों को सुन कर मेरे हृदय की खिन्नता शनैः शनैः दूर हो गई और शान्ति का अनुभव होने लगा। उन्हीं दिनों सन् १९४६ में सत्संग में यह विचार उपस्थित हुआ कि

महिलाओं को सामयिक शिक्षा और अर्थोपार्जन के साधनों की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूज्य बाबा जी ने बीकानेर में श्री महिला मंडल की स्थापना कराई। प्रारम्भ में पढ़ने वाली महिलाओं की संख्या बहुत कम थी। बाद में पंजाब युनिवर्सिटी की "हिन्दी रत्न" की क्लास चालू की गई। इसमें मेरे सहित कुल सात बहिनों ने पढ़ना शुरू किया। पढ़ाई के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया गया। पाठ्य पुस्तकें, परीक्षा फीस, परीक्षा देने के लिए दिल्ली आने जाने का, वहाँ ठहरने का तथा भोजन और सवारी आदि के सब प्रबन्ध का खर्च बाबा जी ही की तरफ से वहन किया गया था। इससे दूसरी बहिनों को भी पढ़ने के लिए प्रेरणा मिली। तत्पश्चात् महिला मण्डल की उत्तरोत्तर प्रगति होती गई। आज इसका कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि यहाँ मैट्रिक कक्षा तक की महिलाओं को तैयारी करवाई जाती है और सिलाई, बुनाई व कताई आदि की शिक्षा दी जाती है तथा बच्चों के लिए शिशु सदन विभाग खोल दिया गया है, जिसमें मनोरंजन के साथ-साथ अक्षर ज्ञान कराया जाता है। यहाँ उद्योग विभाग में पापड़, बड़ी आदि कई चीजें बनाई जाती हैं जिससे कई गरीब बहिनों को मजदूरी मिलती है। वर्तमान में महिला मंडल का कार्य आपकी दोहित्री श्रीमती रत्न देवी जी के संरक्षण में होता है और महिलाओं की संख्या लगभग २०० है। इसी संस्था की सहायता से मैंने रत्न, प्रभाकर, प्रथमा व हिन्दी साहित्य रत्न आदि की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं।

ज्यों-ज्यों मेरा आपसे सम्पर्क बढ़ता गया और आपके विचार, वाणी तथा भावों में निहित लोकहित की भावना का मूर्त रूप मेरे सामने आने लगा, त्यों-त्यों मेरे मन में आपके प्रति श्रद्धा की कोपलें प्रस्फुटित होने लगीं।

आपका हृदय मातृत्व और भगिनीत्व के रस से सराबोर है। आपने अपने निश्छल प्रिय स्वजन की तरह मुझे पास बिठाकर, मेरे अन्तस्तल के भावों को जानने की कोशिश की और यथासम्भव मुझे उन्नति के पथ पर ले जाने का प्रयत्न किया।

स्त्रियों के दुःख दर्द की गाथाएँ सुन कर आप के हृदय में "जो घनीभूत पीड़ा छाई रहती है", वह "आँसू बन कर बरस पड़ती है।" नारी जाति की दुरावस्था की वेदना से आपका अन्तस्तल द्रवीभूत हो उठता है और उनके दुःख को दूर करने के लिए आप तन, मन और धन से उद्यत हो जाते हैं। जिन बहिनों को आपके वात्सल्यमय मातृ हृदय की छाया में अपने दुःखों को दूर करने का अवसर प्राप्त हुआ है, वे जानती हैं कि स्त्रियों के प्रति आपकी कितनी सहानुभूति है।

कितनी ही बहिनों को जो समाज के अत्याचारों से पीड़ित थीं, पथ-भ्रष्ट होने से बचाने के लिए आपने अपने घर में संरक्षण प्रदान किया था। उनकी कई भूलों और निन्दनीय कार्यों के बावजूद भी आपने उनके समस्त दोषों को हृदय-पट से सर्वथा धो दिया और पूर्ववत् उनके हित साधन में लगे रहे। आपका उक्त कार्य अब भी जारी है। इस कार्य को स्थायी रूप से सम्पादित करने के लिए आपके धन और प्रयत्न से संचालित जोधपुर का वनिता आश्रम सर्व विदित है। अब भी आश्रयहीन बहिनों को आप अपने घर पर आश्रय देते हैं।

वर्तमान में भी कई नारी-बहन आप पर अनर्गल दोषारोपण कर देती हैं और कभी-कभी अकारण ही एक दूसरे से लड़ाई झगड़े करके आपको उपालम्भ भी दिलवा देती हैं किन्तु आपके चित्त पर इसका प्रभाव जल-तल पर अंकित लकीर की तरह होता है। आपकी इस नारी दुःख कातरता को देख कर गुप्त जी की यह कविता हृदयाकाश में विद्युत्वत् चमक उठती है कि :—

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

आपकी स्मरण शक्ति बहुत ही विलक्षण है। ८० वर्ष की वृद्धावस्था में पहुँच जाने पर भी गीता के श्लोक, भजन व अन्यान्य कई अनुभव की बातें पूर्ववत याद हैं, जबकि मेरे जैसी अल्पायु नवयुवतियों और नवयुवकों को कल की याद की हुई बात अब भी स्मरण रहनी मुश्किल होती है।

आपकी प्रत्युत्पन्नमति को देख कर तो कभी-कभी आश्चर्य होता है। कठिन से कठिन उलझन भरा प्रश्न भी क्यों न उपस्थित हो जाय, शीघ्र ही अपनी जबान पर उसका उत्तर आविर्भूत हो जाता है। हम लोगों के सामने कभी ऐसा मौका नही आया, जबकि किसी प्रश्न के जवाब देने में क्षण भर के लिए भी आप हिचकिचाए हों।

आपकी सहिष्णुता भी प्रशंसनीय है। थोड़े ही समय पूर्व की एक घटना है कि एक दिन बिच्छू ने आपके हाथ पर डंक मार दिया था। हाथ पर काफी सूजन आ गई थी परन्तु आपके मुख से आर्तता का एक भी शब्द नही निकला। आप हमेशा की तरह शान्त चित्त लेटे रहे और ओम् का उच्चारण करते हुए पीड़ा निवारण करते रहे। आमातिसार और तेज ज्वर तो कई बार मेरे सामने हुए हैं, परन्तु कभी भी आपके चित्त पर व्याकुलता का भाव दिखाई नही दिया।

कई व्यक्तियों ने आपसे समय-समय पर अज्ञात सहातायें प्राप्त की हैं और कर रहे हैं। सिवाय प्राप्ति कर्त्ता और दाता के अन्य किसी को यहाँ तक कि अपने परिवार वालों को भी पता नहीं चलता। कभी-कभी स्वयं प्राप्तिकर्त्ता व्यक्ति के द्वारा ही कोई बात प्रकट होने से हम लोगों को मालूम होता है। स्वयं मैंने भी कई कठिन परिस्थितियों के समय आपसे विशेष सहायताऐं प्राप्त की हैं।

आपका जीवन बहुत ही संयमित और सादगी लिए हुए है। अन्य पूँजीपतियों की भाँति विलासिता और अकर्मण्यता आप से कोसों दूर है। आप गीता में वर्णित सात्विक आचरणों के प्रबल समर्थक हैं। इसलिए सुख, प्रीति और आरोग्यता-वर्द्धक सात्विक भोजन जैसे दलिया, दाल, कढ़ी, हरी सब्जी और फुलका तथा दूध आदि का ही आप नित्य प्रति सेवन करते हैं। वेषभूषा भी अत्यन्त सादी है जिससे प्राय. सभी परिचित हैं। कर्म योग का जैसा उदाहरण आपने प्रस्तुत किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इतनी वृद्धावस्था में भी आप कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं। दो ढाई घंटे से अधिक देर आराम नहीं करते हैं। आराम प्रिय जीवन व्यतीत करने के आप घोर विरोधी हैं।

हिन्दू समाज मे प्रचलित सामाजिक बुराइयों और धार्मिक अन्धविश्वासों के प्रति आपके दिल में बहुत बड़ी कसक है। उनको दूर करने के लिए आपने तन, मन, धन से अथक परिश्रम किया और कर रहे हैं। धार्मिक अन्धविश्वासों का खंडन, विधवाओं का पुनर्विवाह कराना, औसर प्रथा, कन्या विक्रय, दहेज प्रथा और पर्दा प्रथा आदि को समाप्त करने का प्रयत्न करना आपका प्रिय विषय रहा है। इन कार्यों के प्रयत्न में भयंकर विरोधों के आंधी-तूफान आपके सामने आये परन्तु आप अपने लक्ष्य पर हिमालय की तरह दृढ़ रहे। परिणामस्वरूप बहुत अंशों मे आपको सफलता मिली। उपर्युक्त समस्त बुराइयों का उन्मूलन गीता में वर्णित चौमुखी क्रान्ति द्वारा ही होना आप सम्भव समझते हैं।

आप अद्वैत वेदान्त के महापुजारी हैं। समस्त संसार को अपने में और अपने को समस्त संसार में देखने का आप नित्य प्रति उपदेश करते हैं। आपकी दृष्टि में अपने से भिन्न संसार का अस्तित्व नहीं है। संसार वास्तव में आप आत्मा की इच्छा का खेल है। इसी विचार में हमेशा निमग्न रहने की दृढ़ स्थिति बनाये रखने के लिए अपने सत्संग में गीता तथा अन्य वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन और इसी विषय से सम्बन्धित भजनों का गान आदि नियमित रूप से हमेशा किया जाता है।

परम पूज्य बाबा जी के चरण कमलों में अपनी हार्दिक श्रद्धा के पुष्प समर्पित करती हुई मैं कामना करती हूँ कि मानव समाज की सुव्यवस्था में योग देने के लिए आप दीर्घायु बनें।

गंगादेवी साहित्य रत्न

(सहायक अध्यापिका श्री महिला मण्डल बीकानेर।)

•

६१

कर्मयोगी

यह जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हो रही है कि मुनि श्री रामगोपाल जी मोहता का ८१ वां जन्म दिवस उनके श्रद्धालुओं, मित्रों और शिष्यों द्वारा मनाया जा रहा है।

अपने को उस महान् व्यक्ति का श्रद्धालु कहने में मैं गौरव समझता हूँ। पिछले बीस वर्षों से मैं उनको अच्छी तरह जानता हूँ। मैंने उनके द्वारा सम्पादित कार्यों को देखा है।

शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वे उनके महान् व्यक्तित्व और उनके उन महान् कार्यों का वर्णन कर सकें जो कि वे निर्धन, जरूरतमन्द लोगों और शारीरिक तथा मानसिक रोगियों के लिए कर रहे हैं।

जितना कि मैं जानता हूँ, वास्तव में वे एक पूर्ण कर्मयोगी बन चुके हैं।

एम० एन० सोमानी

(असिस्टेंट आफ स्पेशल ड्यूटी (एजूकेशन) राजस्थान सरकार, जयपुर।)

•

६२

महान् विचारक

"श्री रामगोपाल जी मोहता महान् विचारक हैं। उनकी छाप भविष्य पर निश्चित रूप से पड़ रही है। वे विभिन्न प्रकार की जानकारियों और विचारों का संग्रह करते हैं और उनको अपने जीवन में पूर्ण उतारते तथा क्रियान्वित करते हैं।"

टी० के० भाटेजा

(कराची कार्पोरेशन के भूतपूर्व सदस्य।)

•

६३

जनता का सेवक

वेदान्त रा परम विद्वान्, त्यागी स्वर्गीय श्री स्वामी उत्तमनाथ जी महाराज रा उपदेशां ऊपर, आछी तरह सूं ध्यान देकर, उणांरे अनुसार आपरो जीवन बणा कर प्राणी मात्र में समता की भावना को प्रचार करण वाला आज अगर स्वामी जी रा शिष्य-वर्ग मांय सूं खोज की जावे तो केवल श्री सेठ रामगोपाल जी मोहता हीज नजर आरया है।

धनवान घर में जन्म लेकर भोग विलास सूं विरक्त रहकर जीवन को सदुपयोग करता हुयां परमवरी साधना में रत रहणो आपरा जीवन सूं सीखियो जा सके है। बीकानेर नगर में उत्पन्न होणे के कारण केवल बीकानेर तक ही आपको कार्य क्षेत्र हुवे, आ बात नहीं है। माहेश्वरी जाति में जन्म लेकर ए केवल माहेश्वरी जाति रे हीज उपयोग मे आवण वाला न बणकर जनता-जनर्दन री सेवा में आपरो जीवन दियो है। आज आपरा कार्य एवं कार्य-क्षेत्रां पर कोई ध्यान देवे तो वे, केवल बीकानेर या राजस्थान तक हीज सीमित न रह कर इण सूं पारे भारतवर्ष में भी मिले है।

गीता ऊपर अनेक विद्वताएँ आप-आपरा विचार व्यक्त किया है। पण, सेठ रामगोपाल जी मोहता ए जो 'गीता व्यवहार दर्शन' ग्रन्थ लिखियो है जो अद्वितीय है। इण उपरान्त वेदान्त पर आपका विचारां सूं परि-पूर्ण अनेक पुस्तकां है।

स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, रोगी-सेवा, शिक्षा-प्रचार, इसो कोई क्षेत्र नहीं जिण में आपको हाथ नहीं रह्यो हुवे। आप चतुर्मुखी उन्नति रा इच्छुक अर परमार्थ सेवी है।

जनता री तरफ सूं आपकी सेवा वा री उचित कदर की जा रही है इण में मैं भी आपणा विचार भेज कर अपणो कर्त्तव्य पालन करणो म्हारो फर्ज समझूं हूं। प्रभु आपने दीर्घायु देवे।

हाकू जोशी

(आप स्वदेश भक्त, समाज सुधारक, सत्संग प्रिय तथा प्रगतिशील वृद्ध पुरुष हैं। बीकानेर शहर में एक पुस्तकालय और वाचनालय का संचालन करते हैं।)

●

६४

अपने ढंग के एक

जब मैं ग्यारह-बारह साल का था तो इलाहाबाद से प्रकाशित मासिक 'चांद' बड़े चाव से पढ़ा करता था। उसी पत्र के द्वारा मुझे सर्वप्रथम बीकानेर के सुधारवादी मोहता-परिवार तथा श्री रामगोपाल जी मोहता के नाम से परिचय हुआ। कुछ वर्षों बाद रामगोपाल जी की 'गीता का व्यवहार-दर्शन' पढ़ने को मिली। मैंने गांधी जी, तिलक, विनोबा तथा दो एक अन्य विद्वानों की गीता पर लिखी किताबें देख रखी थीं इसलिए

'व्यवहार-दर्शन' को भी उसी दिलचस्पी से देखा । दार्शनिक गहराई उसमें साधारण-सी मालूम दी लेकिन संसार के दैनिक जीवन में किस हद तक गीता के ज्ञान का उपयोग हो सकता है इसका उसमें बड़ा अच्छा और सुलझा हुआ चित्र पाया । मन पर उसकी कुछ छाप भी पड़ी । वणिक्-परिवार में उत्पन्न लेखक की सूझ पर भी कुछ विचार गया । लेखक का धार्मिक ग्रन्थ से व्यवहार और काम की बातें सोचना परम्परा के अनुकूल ही लगा । एक तरह से इतना ही परिचय मेरा मोहता जी के सम्बन्ध का रहा ।

उसके बाद कलकत्ता में उनके कुटुम्बी भ्राता श्री भागीरथ जी मोहता से उनके व्यावहारिक और श्री बालचन्द जी नाहटा से उनके बौद्धिक विचारों की जानकारी मिली । सब मिलाकर श्री रामगोपाल जी के बारे में मेरी यह धारणा बनी कि चाहे किसी का उन से कुछ बातों पर मतभेद हो वे अपने ही ढंग के हैं ।

मोहता जी ने अपनी व्यावसायिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ सार्वजनिक कामों का सिलसिला भी रखा और खास करके शिक्षा-प्रचार, हरिजन-उत्थान और समाज-सुधार के क्षेत्रों में उनकी अपनी कुछ देन है । उन्होंने कुछ बुनियादी काम किए हैं । मेरी धारणा है कि उन्होंने जो कुछ किया वह सार्वजनिक-सेवा कार्य था और उसका अपना महत्व है ।

मैंने उन्हें एक अध्ययनशील जिज्ञासु, विचारक और कर्मठ व्यक्ति के रूप में पाया । वे साधारण वेश-भूषा रखते हैं और साधारण ढंग से ही रहते हैं । अगर सभी धनी-मानी लोग इस तरीके पर रह सकें तो गरीबों और अमीरों की एक दूरी मिट जाय ।

उनके अभिनन्दन के मौके पर मैं भी अपनी शुभकामना प्रकट करता हूँ।

शंकरलाल पारीक

(लाडनूं के प्रगतिशील साहित्य सेवी और उदीयमान लेखक)

●

६५

मोहता जी का तपस्वी जीवन

मेरा सेठ रामगोपाल जी मोहता से १९५२ में परिचय हुआ । तब वे "प्रगति संघ" के स्थायी अध्यक्ष थे । उन दिनों मैं निरंतर दो वर्ष तक मेरा भी "प्रगति संघ" के साथ सम्पर्क रहा और मुझे उसका एक प्रमुख कार्यकर्ता होने का गौरव प्राप्त है । उसी नाते मोहता जी के साथ भी मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा । तब मैंने देखा कि वे किस प्रकार प्रगति संघ के काम में तत्पर और संलग्न रहते थे । यह उनके लिए जीवन का मिशन था । आपने कभी भी किसी भी काम को धन के अभाव के कारण रुकने नहीं दिया । मुझ पर मोहता जी के सादे सरल जीवन, वृद्धावस्था में भी काम करने की अथक लगन व धुन, विचारों की उच्चता व पवित्रता और गम्भीर अध्ययन व विद्वता का विशेष प्रभाव पड़ा ।

गोपालदास

(प्रगति संघ के पुराने एकनिष्ठ कार्यकर्ता)

●

६६

एक सच्चे देशभक्त

राजनीतिक स्वतंत्रता हमें अवश्य प्राप्त हो गई है और हम हर वर्ष इसकी खुशियाँ मनाते हैं । क्या हम को इसके लिए वास्तव में हर्ष व आनन्द मनाना चाहिए ? क्या भारतवासी सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी उसके लिए खुशियाँ मनाने को स्वतंत्र है ? ऐसे कुछ प्रश्न उन सबके सामने हैं, जो वर्तमान स्थिति पर कुछ थोड़ा गम्भीर विचार करते हैं ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के शुरु दिनों में यह स्वीकार किया जाता था कि धार्मिक और सामाजिक पुनर्निर्माण हमारे स्वतंत्रता के आन्दोलन का प्रधान अंग है । राष्ट्रीय नेता बड़े उत्साही समाज सुधारक होते थे, जो आपस के मतभेद को मिटाकर एकता पैदा करके समता-समानता, न्याय और बन्धुभाव के आधार पर सच्चे राष्ट्रीय जीवन का विकास करना चाहते थे । परन्तु पिछले दिनों में राष्ट्र निर्माण के इस महत्वपूर्ण पहलू की बुरी तरह उपेक्षा करदी गई, इस प्रकार जनता के वास्तविक हित की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई और यह झूठी आशा पैदा करदी गई कि राजनीतिक स्वतंत्रता से समाज सुधार का काम स्वतः हो जायगा ।

कुछ दूरदर्शी देशभक्त इस विषमता को समझ नहीं सके और वे जनता को सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भी स्वतंत्र करने में लगे रहे, उन्होंने यह अनुभव किया कि राष्ट्रीयता का निर्माण कच्ची नींव पर नहीं किया जा सकता । ऐसे विशिष्ट नेताओं की पंक्ति में सेठ रामगोपाल जी मोहता का प्रमुख स्थान है । जो कि बिना किसी संकोच के अविचल भाव से गीता के समत्व योग के आदर्श का अपने आचार और विचार में निरंतर प्रतिपादन करते रहे हैं । उनका आत्म-त्याग और सेवा भाव दूसरों को भी प्रेरणा, उत्साह और सामर्थ्य देने वाला है । वे ऐसी बनावटी एकता में विश्वास नहीं रखते जिसका कि आजकल दावा किया जाता है । परन्तु वे इस देश की जनता को सामाजिक दृष्टि से इस प्रकार एक हुआ देखना चाहते हैं, जिससे कि राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त बन सकता है । वे उस कुशल डाक्टर के समान हैं, जो कैंसर की बीमारी को छिपाना नहीं चाहता । यदि कहीं हमने अपने में आमूल चूल परिवर्तन करके अपना इलाज न किया तो हमने अपनी महानता और स्वतंत्रता को जैसे पिछले दिनों में खो दिया था वैसे ही कहीं निकट भविष्य में भी खो न बैठें ।

हरभगवान

(लाहौर के जात पात तोड़क मंडल के भूतपूर्व संगठन मंत्री, कट्टर समाज सुधारक और भारत सेवक समाज के उत्साही कार्यकर्ता ।)

६७

परोपकार-भाव की पराकाष्ठा

मुझे पहले पहल सेठ रामगोपाल जी मोहता का परिचय स्वर्गीय बाबू मुक्ताराम जी वकील से तब मिला जब मैं उनसे कानून पढ़ने जाया करता था। तब मैं मित्र मंडल का भी सदस्य था। वकील साहब सेठ जी की बड़ी तारीफ किया करते थे और उनके विधवा आश्रम के भी वे बड़े प्रशंसक थे। बीकानेर में रहते हुए मैं जब भी कभी सेठ साहब के बंगले के आगे से गुजरता था तब वहाँ गरीबों की भीड़ लगी रहती थी। उनको वे कपड़े, अन्न व नगदी आदि से सहायता किया करते थे। गाँवों में किए जाने वाले उनके सेवा कार्य की भी मुझे कुछ जानकारी थी, परन्तु तब तक भी सेठ साहब से मेरा प्रत्यक्ष परिचय नहीं हुआ था।

१९३४ में मैं बीकानेर तहसीलदार बन कर आया और मुझे कोलायत जी के मेले के इन्तज़ाम पर भेजा गया। तब कोलायत मेला कमेटी के डा० शार्दूलसिंह जी, जो कि बीकानेर राज्य के दीवान भी थे प्रधान थे और सेठ साहब उसके मंत्री थे। वहाँ सेठ साहब से मेरा पहला प्रत्यक्ष परिचय हुआ और यह परिचय उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। श्री रामदेव जी के मन्दिर में जो कि आपका ही बनवाया हुआ है वहाँ साथियों के साथ बैठकर भजन, कीर्तन और सत्संग किया करते थे। बिना किसी भेदभाव के हरिजन और सवर्ण सब उसमें सम्मिलित होते थे। सेठ साहब किसी भी प्रकार के भेदभाव को नहीं मानते थे। मैं इससे बड़ा प्रभावित हुआ।

संवत् ९० में मगरा तहसील के गाँवों में बाढ़ आ गई। लोगों के मकान गिर गए। चारों ओर पानी ही पानी फैल गया। आपको जब इसका पता चला तब आपने अपने आदमी भेजकर लोगों को गिरदियों, कपड़ों, अनाज व नगदी आदि से बड़ी सहायता पहुँचाई और उनका कष्ट दूर किया।

१९५१ में मेरे पैर में बिवाई फटने से जो बीमारी शुरू हुई उसने धीरे-धीरे बहुत भयानक रूप धारण कर लिया। यहाँ तक कि सेप्टिक हो जाने से पैर कटवाने की स्थिति पैदा हो गई। मैंने सिविल सर्जन का कहना न मानकर अपना इलाज शुरू कर दिया और दिल्ली से दवा मंगाकर उपचार करता रहा; परन्तु हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई। सरकारी नौकरी मैं छोड़ चुका था। बच्चे छोटे-छोटे थे। अपना कोई मकान न था। किराये के मकान का किराया चुकाना भी दूभर हो गया। भैंसावाड़ा में मैंने मकान के लिए एक ज़मीन खरीदी हुई थी वहीं अपना मकान बनाने का विचार किया और गिरदियाँ डालकर वहीं रहना शुरू कर दिया। अपने पुराने मित्रों और साथियों से मैंने कुछ उधार लेने की कोशिश की; परन्तु उस बीमारी में किसी ने भी मेरी सहायता नहीं की। सबने यही समझा कि पैर की बीमारी के कारण मैं मर गया तो उनका पैसा डूब जायगा। मुझे मालूम था कि सेठ साहब के यहाँ से कोई निराश नहीं लौट सकता और मैं वहाँ जाऊँ तो मुझे भी निराश नहीं होना पड़ेगा। परन्तु सवाल यह था कि मैं कैसे उनके पास जाऊँ। मेरा उनसे कोई घनिष्ठ परिचय न था। एक दिन बहुत दुखी और निराश होकर मैंने अपनी पत्नी के साथ परामर्श किया और अंत में अपने लड़के को भेज कर सेठ साहब के विश्वसनीय मुनीम श्री फूलचन्द जी को बुलाया और उनको सारी कहानी कह दी। उन्होंने मेरी हालत देखी और बिना कुछ कहे सुने चुपचाप उठ कर चले गये।

मुझे आज तक भी नहीं मालूम कि उन्होंने सेठ साहब से जाकर क्या कहा; परन्तु दूसरे दिन क्या देखता हूँ कि ईंटों से भरी लोरियाँ मेरे स्थान पर आ खड़ी हुईं और मुनीम जी कजुवा (राज मिस्त्री) को साथ लेकर आ पहुँचे। वे मुझ से बोले कि सेठ साहब ने मकान बनवाने का आदेश दिया है। मैं आश्चर्य में पड़ गया। मैंने यह सोचा था कि सेठ साहब अपने पैसे से जो सहायता करेंगे, वह मैं बाद में लौटा दूंगा। परन्तु इस प्रकार

बनाए गए मकान का क्या हिसाब रखा जाता और किस रूप में उसको लौटाया जा सकता । मैंने ऐसा ही मुनीम जी से कह दिया। मुनीम जी ने लौट कर सेठ साहब से मेरी ओर से निवेदन किया, तो उन्होंने मेरी इच्छानुसार रुपये भिजवा दिए और उनके लिए कोई लिखा पढी नहीं की। मैं और मेरी पत्नी दोनों यह देखकर चकित रह गये । जिन लोगों के मैं सरकारी नौकरी के दिनों मे कुछ काम आया था, उन्होंने मुझे बड़े लम्बे चौड़े भरोसे दिलाये थे; परन्तु इस समय उनमे से कोई भी सीधे मुंह बात करने को तैयार न था। मैं सबके यहाँ गया और निराश होकर लौट आया। सेठ साहब की तो मैंने कुछ भी सेवा न की थी और उनसे मुझे मुंह मांगी सहायता मिल गयी।

आपके इस उपकार को मैं कभी भी भूल नही सकता। आपके इस उपकार-भाव से जो स्नेह सम्बन्ध आपके साथ कायम हुआ वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

इसी बीच एक दुर्घटना और घट गई। जोरों की वर्षा हुई। मेरे झोंपड़े के चारों ओर पानी ही पानी जमा हो गया। झोंपड़े में आराम से बैठना भी मुश्किल हो गया। कर्नल महाराज भैरोंसिंह जी मोटर पर आए और सड़क से ही मेरी दुर्दशा पर हँसकर चल दिए। इसी प्रकार की सहानुभूति दिखाने वालों की कुछ कमी न थी। परन्तु मुनीम पूनमचन्द जी फिर सेठ साहब की ओर से चारपाइयाँ और सिरकियाँ लेकर उपस्थित हुए। सेठ साहब की दयालुता की यह चरम सीमा थी। सच है आपत्ति में सगे सम्बन्धी और मित्र भी पराये बन जाते हैं।सेठ साहब सरीखा दयालु तो कोई विरला ही मिलता है। उनके प्रति मेरे हृदय मे जो आदर भाव पैदा हुआ उसका वर्णन शब्दों नहीं किया जा सकता।

मेरे भाग्य ने पलटा खाया। बीमारी ठीक हुई और स्थिति भी कुछ संभल गई। मैं सेठ साहब की रकम उनको लौटाने गया । उन्होने लेने से इनकार कर दिया। मेरे बहुत विनय करने पर वे रुपये वापस लेने को सहमत हुए और मुझे उन्होंने समझाया कि आप समझते नहीं। मैंने आपके साथ कोई उपकार नहीं किया। आपके और मेरे पूर्व संस्कार ही ऐसे थे जिन्होंने यह सब करवाया। मुझ पर उनके विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने जिस किसी को भी सेठ साहब की दयालुता और उदारता की यह आपबीती सुनाई तो सभी ने बड़ा आश्चर्य प्रगट किया और कुछ ने तो उस पर विश्वास भी नहीं किया।

आज मैं प्रायः पूरी तरह स्वस्थ हूं। जिन्होंने मुझे पैर कटवाने की सलाह दी थी वे मुझे उस पैर से चलता फिरता देख आश्चर्य करते हैं। सेठ साहब की कृपा से मकान भी बन गया। अपने को मैं बड़ा भाग्य-शाली मानता हूं। मैं अपनी नौकरी के दिनों मे बीकानेर राज्य के अनेक शहरों में रहा और बड़े बड़े सेठ साहूकारों से मेरा सम्पर्क हुआ। परन्तु दुख में गरीबों का साथ देने वाला आप सरीखा सेठ मैंने नहीं देखा । मैंने आपके उपकार का बदला इस रूप में चुकाने का निश्चय कर लिया कि अच्छा होने पर अपने को गरीबों की सेवा मे लगा दूंगा और आज मैं भी हरिजनों की सेवा करके अपने को धन्य मान रहा हूँ। यह तो हमारे अपने ही पापों का प्रायश्चित है।

इस प्रकार सेठ साहब की कृपा से मेरे जीवन का भी सुधार हुआ। न मालूम उन्होंने कितनों के जीवन का सुधार किया होगा। भगवान उनको चिरायु करे और वे मुझ सरीखों के जीवन का सुधार करते रहें।

चन्द्रसिंह

(आप बीकानेर राजघराने से सम्बन्धित राजश्री सरदारों में से हैं। आपने अपने को कष्ट में डालकर भी सत्यमार्ग का कभी त्याग नहीं किया। राज्य में आपने पुलिस में वर्षों तहसीलदार रहकर काम किया और धर्मादा विभाग में उत्तरदायी पद पर रहे। आप सरीखे सत्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी कम ही देखे पड़ते हैं।)

से बाहर नहीं और केवल अध्यात्म अधिभूत के बिना असफल है। इस तत्व को समझकर जब समाज आचरण करता है, तब वह ईर्ष्या द्वेष, कलह, संघर्ष, परपीड़ा आदि पापो से बचा रहता है और अभ्युदय तथा आनन्द के मार्ग को प्रशस्त करता है।

द्वापर के अन्त में भगवान् कृष्ण के द्वारा गीता के रूप में उन भावनाओं का प्रवचन होने पर भी कालान्तर में उस परम्परा के पुन: उच्छिन्न होने से गीता के व्याख्याकारों ने गीता को केवल अध्यात्म की प्रतिपादक समझकर उसके वास्तविक लक्ष्य व्यवहार दर्शन को दृष्टि से ओझल कर दिया, और समझ लिया गया कि गीता जीवन व्यवहार को छुड़ाकर जंगल में चले जाने का उपदेश करती है। पर वस्तुतः देखा जाय, तो गीता सम्बन्धी इन विचारों का प्रत्याख्यान स्वयं गीता के द्वारा ही हो जाता है। अर्जुन अपने कर्त्तव्य को भुलाकर और छोड़कर जंगल को भागना चाहता है, इसके विपरीत गीता का प्रवचन उसे अपने कर्त्तव्य में तत्पर कराता है। आगे समस्त जीवन वह अपने कर्त्तव्यों को इसी व्यवस्था के अनुसार सम्पन्न करता है। भगवान् कृष्ण के जन्म से बहुत पूर्व प्राचीन काल में अनेक जनक आदि राजर्षियों ने अपनी समस्त जीवन-व्यवस्थाओं को इन्ही आदर्शो पर आरूढ़ रक्खा, यह इतिहास से स्पष्ट जाना जाता है। गीता [३–२०] में स्वयं इस प्रकार उल्लेख किया गया है। गीता के उस व्यवहार दर्शन को मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता ने अपनी व्याख्या मे अद्भुत रूप में प्रकट किया है। वस्तुतः पूर्ववर्त्ती व्याख्याकार एक निराधार रूढ़िवाद के नीचे दबे रहे हैं, जिसका परित्याग न करने के कारण गीता के इस उज्जवल रूप को वे प्रत्यक्ष न कर पाये।

व्यवहार दर्शन का यही वास्तविक आधार है। जिस प्रकार आदिकाल में गीता की भावनाओं का प्रवचन विवस्वान ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को किया, अनन्तर अनेकानेक राजर्षियों तपस्वियों समत्वयोगी भक्तों के द्वारा आचरण किया जाता हुआ गीता धर्म धीरे-धीरे प्रमाद आलस्य आदि के कारण नष्ट हो गया। विषय-लम्पट लोग उसकी ओर से विमुख हो गये। गीता-धर्म के लोप के कारण लोगों मे परस्पर वैमनस्य, संघर्ष, लड़ाई-झगड़े होकर दुःख और कलह का साम्राज्य छा गया, जनता अपने कर्त्तव्य को छोड़ बैठी, ऐसे समय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लक्ष्य कर मानव मात्र के लिये गीता धर्म का पुन: प्रवचन किया। वह धर्म-सरिता कालान्तर में व्याख्याकारों की रूढ़िवादिता के कारण आविल होकर जनता के लिये सन्मार्ग बताने के स्थान पर उन्मार्ग की व्यञ्जक बनकर तारने के बजाय डुबाने का साधन बनने लगी। तब गीता के श्री मोहता जी द्वारा किए गए प्रस्तुत व्याख्यान ने व्यवहार दर्शन की वास्तविकता को प्रकट कर गीताधर्म के वस्तु-स्वरूप का उद्‌घाटन किया है। इस रूप मे पाठक व्याख्यान की आत्मा को समझने और आचरण करने का प्रयत्न करें, तो लोक-संग्रह के साथ कल्याण के भागी बन सकते हैं और मोहता जी का जीवन प्रयत्न सार्थक हो सकता है। इस प्रयत्न के लिए संकल्प करना ही मोहता जी का वास्तविक अभिनन्दन हो सकता है।

उदयवीर शास्त्री

(शास्त्री जी बीकानेर की प्रमुख शिक्षा संस्था श्री शार्दूल ब्रह्मचर्याश्रम के लोकप्रिय आचार्य हैं। प्रगतिशील विचारों के, सरस व सहृदय स्वभाव के सेवा भावी व्यक्ति हैं। संस्कृत और वैदिक साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी होने से आपने शिक्षा-प्रसार को अपना जीवन-व्रत बना लिया है। प्राचीन शास्त्रों का आपने उदार और प्रगतिशील दृष्टि से अध्ययन किया है। श्री शार्दूल ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा के प्राचीन आदर्शों के साथ वर्त्तमान प्रणाली का समन्वय किया गया है। शास्त्री जी के व्यक्तिगत जीवन में भी उस समन्वय का एक सुन्दर उदाहरण पाया जाता है।)

●

६६

मोहता जी का चरित्र और स्वभाव

: १ :

सम्भवतः १९२२-२३ की बात है मैं नागपुर से निकलने वाले साप्ताहिक "मारवाड़ी" का सम्पादन करता था। ब्यावर के देशभक्त सेठ दामोदर दास जी राठी के साथी स्वर्गीय श्री रामनारायण जी राठी उन दिनों के इने गिने समाज सुधारकों में अग्रणी स्थान रखते थे। इसी भावना से उन्होंने इस पत्र को प्रारम्भ किया था। मनस्वी श्री मोहता जी की लिखी हुई "सात्विक जीवन" पुस्तक की एक प्रति पत्र के कार्यालय में समालोचना के लिए प्राप्त हुई। मैं उसको आदि से अंत तक पढ़ गया और मैंने एक पेन्सिल लेकर उसमें कितने ही स्थानों पर कुछ नोट लिख डाले। बाद में उन नोटों के आधार पर एक लम्बा पत्र मोहता जी को लिख दिया। मोहता जी से उत्तर में अत्यन्त सहृदयतापूर्ण पत्र प्राप्त हुआ। यह मेरा मोहता जी के साथ पहला अप्रत्यक्ष परिचय था।

"मारवाड़ी" पत्र के सम्पादक के अलावा भी मेरा मारवाड़ी समाज के साथ अग्रवाल महासभा और माहेश्वरी महासभा के कारण कुछ विशेष सम्पर्क हो गया था। मैं उनके कई अधिवेशनों में सम्मिलित हुआ था। उनमें अनेक प्रगतिशील लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मुझे मिला था। परन्तु "सात्विक जीवन" के लेखक के नाते मोहता जी में जिस आध्यात्म दृष्टि का परिचय मिला वह मारवाड़ी समाज में मेरे लिए सर्वथा नवीन था। साधारण रूप से मारवाड़ी समाज के सम्बन्ध में यह भावना पैदा हो गई है कि वह सेठ साहूकारों व पूँजीपतियों का समाज है और ऐसे लोगों का आध्यात्मिकता के साथ कोई सम्बन्ध हो नहीं सकता। मोहता जी इस भावना अथवा धारणा के मुझे अपवाद प्रतीत हुए।

: २ :

मोहता जी के दर्शन करने का पहला अवसर १९२९ में पंढरपुर में मिला। वहाँ आप अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष होकर आये थे। माहेश्वरी समाज में बोलवार आन्दोलन का जो तूफान खड़ा हुआ था उसके कारण इस अधिवेशन को विशेष महत्व प्राप्त हो गया था। मैंने पहले भी दो एक बार मोहता जी को महासभा के अध्यक्ष चुनने की चर्चा वार्ता चली थी; परन्तु आप ऐसे सुधारक समझे गये, जिसको तब समाज पचा न सकता था, केवल इसी कारण तब आप अध्यक्ष पद के योग्य न समझे गए। बोलवार आन्दोलन का यह प्रत्यक्ष परिणाम था कि मोहता जी के कुछ अधिक उग्र सुधारक हो जाने पर भी आपको पंढरपुर में अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिए बाध्य किया गया। वहाँ आपकी गम्भीरता, नम्रता, सहृदयता और सुधारक भावना का जो प्रत्यक्ष परिचय मिला उससे मैं सहज ही में आपकी ओर आकर्षित हो गया।

: ३ :

माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष पद के दायित्व को निभाने के साथ साथ आपने पंढरपुर और पूना की समाज सुधारक संस्थाओं के काम में जो दिलचस्पी ली वह मेरे लिए कुछ अधिक कौतूहलपूर्ण थी। पंढरपुर का प्रभाव

बालक आश्रम और विधवा आश्रम समस्त भारत में अपने ढंग की पहली संस्था है। अन्य हिन्दू तीर्थों के समान पंढरपुर में भी हिन्दू समाज के पाप की शिकार अनेक विधवाएँ और कुमारी कन्याएँ भी अपनी लाज बचाने के लिए वहाँ पहुँच जाती हैं और उनको तथा उनकी सन्तान को जो सुरक्षा इस संस्था द्वारा प्रदान की जाती है वह हिन्दू समाज की सबसे बड़ी सेवा है। इसी प्रकार महर्षि कर्वे ने विधवाओं की सेवा को अपना जीवन व्रत बनाकर महिला विश्वविद्यालय के रूप में पूना के समीप हिंगणे में जिस महान् यज्ञ का अनुष्ठान किया है वह भी साधनामयी सेवा का अन्यतम उदाहरण है। मोहता जी जब इन संस्थाओं को देखने के लिए गए तब मैं भी उनके साथ था। पूना में आप आचार्य कर्वे के महिला विश्वविद्यालय को देखने के लिए ही विशेष रूप से ठहरे थे। आपके साथ स्वर्गीय, स्वनामधन्य सेठ रामकिशन जी मोहता भी थे। वे भी आप सरीखे ही कट्टर समाज सुधारक, उदार, सहृदय और समाज सेवी भावना के अत्यन्त प्रगतिशील स्वभाव के देवता स्वरूप व्यक्ति थे। जीवन के अंतिम दिनों में उनको जिन विषम परिस्थितियों का सामना करना पडा उनके कारण उनका यथेष्ट उत्कर्ष और विकास नहीं हो सका, अन्यथा वे भी अपने जीवन काल में एक इतिहास का निर्माण कर गए होते। आप दोनों ने उन संस्थाओं के कार्य मे केवल कोरी सहानुभूति ही नही दिखाई, अपितु उनको उदार सहायता भी प्रदान की। मैंने दोनों ही भाइयो में उन दिनों मे जिस प्रगतिशील व्यक्तित्व के दर्शन किए थे उसकी छाप आज भी मेरे हृदय पर वैसी ही बनी हुई है।

: ४ :

१६२८ में स्वर्गीय सेठ रामकिशन जी मोहता के ही आग्रह पर मैं कलकत्ता गया था और उनके सहयोग से सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्य से "नवयुग" नाम से एक मासिक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया था। उसके लिए मोहता जी की भी जो सहानुभूति और सहायता मुझे प्राप्त हुई वह सहज और स्वाभाविक थी। नमक सत्याग्रह के सिलसिले में मैं जेल चला गया और "नवयुग" बन्द हो गया। "नवयुग" की विचारधारा इतनी उग्र थी कि कुछ आर्य समाजी भी उस पर आपत्ति करते देखे गए। परन्तु मोहता जी का सहयोग और समर्थन उग्र सामाजिक क्रांतिकारी विचारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता था।

: ५ :

उसके बाद १६३४ में विहार भूकम्प के राहत कार्य के सिलसिले में मुझे एकबार फिर मोहता जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। बिहार जाने पर यह देखकर मैं चकित रह गया कि वहाँ परदा प्रथा की कठोरता और हृदयहीनता के कारण महिला समाज की स्थिति मारवाड़ी महिलाओं की स्थिति से भी कहीं अधिक दीन हीन और पराधीन थी। सारे विहार में राहत कार्य करने वाली एक भी महिला नहीं थी और जो बाहर से गयीं, उनको प्रायः पटना से ही वापस लौटा दिया गया। हम कुछ साथियों ने, जिनमें वर्तमान केन्द्रीय श्रम उप-मंत्री भाई आबिद अली मुख्य थे विहारियों की महिलाओं के प्रति मनोवृत्ति के विरुद्ध चुपचाप एक षड्यन्त्र रच लिया और यह निश्चय किया कि एक केन्द्र ऐसा कायम किया ही जाना चाहिए जिसकी संचालिका कोई महिला हो। प्रगट रूप में ऐसा करना प्रायः असम्भव था। इसलिए चुपचाप यह सारी कार्रवाई की गई। मेरी पत्नी श्रीमती सुभद्रा देवी को भाई आबिद अली ने तार देकर बुला लिया और मुजफ्फरपुर से १२-१३ मील की दूरी पर रामपुरहरि में ४०-४५ गांवों का एक केन्द्र कायम करके उनको वहाँ बिठा दिया गया। यह भी सब कर

लिया गया था कि यदि बिहार रिलीफ कमेटी की ओर से उस केन्द्र के लिए पैसा न मिल सका, तो इधर-उधर से पैसा बटोर कर उसको चलाया जायगा। यह सन्देह इसलिए था कि उस केन्द्र की स्थापना बिहार रिलीफ कमेटी की स्वीकृति के बिना की जा रही थी। इसी के समीप बैठौन में एक दूसरे केन्द्र से मैं काम कर रहा था। उस केन्द्र का संचालन शुरू में कलकत्ता में कायम की गई एक रिलीफ कमेटी करती थी। इसलिए जब मैं कलकत्ता गया तब रामपुरहरि केन्द्र के लिए कुछ सहायता इकट्ठी कर लाया। उसके लिए मैं मोहता जी से भी मिला तो आपने बिहार में महिलाओं की स्थिति सुनते ही बड़ी सहानुभूति प्रगट की और मुझे एकाएक पाँच सौ रुपये दे दिए। वैसे आप एक बड़ी रकम पहले ही पटना भेज चुके थे। महिलाओं के प्रति आपकी उदार भावना का मेरे लिए पहला प्रत्यक्ष परिचय था। परन्तु उससे पहले इलाहाबाद के मासिक पत्र "चाँद" और "अबलाओं का इन्साफ" पुस्तक को लेकर कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में आपके विरुद्ध जो आन्दोलन हुआ था उससे मैं कलकत्ता में ही रहने के कारण भली प्रकार परिचित था और मैं यह भी जान गया था कि महिलाओं की सेवा व उद्धार के लिए मोहता जी लोकापवाद की कितनी बड़ी जोखिम सहज में सरल भाव से भेल सकते हैं।

: ६ :

१९३९ में मैं दैनिक "हिन्दुस्तान" का सम्पादक होकर दिल्ली चला आया और दिल्ली आने के बाद मुझे मोहता जी के अत्यन्त निकट आने का अवसर मिल गया। आपके और मेरे सामाजिक विचार पूरी तरह मेल खाते थे और आपके गीता सम्बन्धी व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी मेरे विचारों का सामञ्जस्य था। अनेक बार बीकानेर और एक बार कराची जाकर कई दिन आपके साथ रहने का भी प्रसंग उपस्थित हुआ। बीकानेर में जब भी कभी मैं गया तो मैंने वहाँ आपको सदा ही हरिजनों और अकाल पीड़ितों की सेवा में संलग्न पाया। बीकानेर के आसपास के तालाबों की खुदाई और कोलायत जी में भी तालाब की खुदाई का काम सरकारी ठेके के काम से कहीं अधिक व्यवस्थित, नियमित और संतोषजनक रूप में होता देख कर आपकी सेवा तत्परता का सहज ही में स्पष्ट परिचय मिल जाता था। मिट्टी खोदने वाले अकाल पीड़ित आपके ही कारण बड़ी लगन और तत्परता के साथ उस काम को अपने ही घर का काम समझ कर करते देखे गए। किसी के भी चेहरे पर उदासी, निराशा अथवा दुःख की कोई रेखा दीख न पड़ती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि बीकानेर आकर और मोहता जी को पाकर सहज ही में वे अपने सारे ही दुःख दारिद्र्य को भूल गये थे। सरकार की ओर से चलने वाले राहत कार्य भी मैंने अनेक स्थानों पर देखे; परन्तु आत्मीयता का जो वातावरण बीकानेर के राहत कार्य में दीख पड़ा वह कहीं भी दीखने में नहीं आया। वहाँ सब ओर मोहता जी की आत्मीयता, सहृदयता और सहानुभूति छायी दीख पड़ती थी। सत्संग का कार्यक्रम तो प्रतिदिन दुपहर को नियमित रूप से चलता ही था।

: ७ :

कराची मैं एक विशेष उद्देश्य से बुलाया गया था। मोहता जी का देर से विचार था कि उचित विचारों का एक सामयिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखने वाला मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय। कराची में उसके लिए योजना तैयार की गई और "कर्म" नाम से एक मासिक पत्र निकालने का निश्चय किया गया। मैं कराची से लौटकर अभी जोधपुर ही पहुँचा था कि १९३९ के सितम्बर मास में योरुप में दूसरे विश्वव्यापी महायुद्ध की घोषणा हो गई और दिल्ली पहुँचते न पहुँचते देश की राजनीतिक परिस्थिति में बहुत तेजी से बदल

खाना शुरू कर दिया। एक बड़ा काम शुरू होते-होते रह गया। उन दिनों के सरकारी प्रतिबन्धों के कारण कोई नया पत्र पत्रिका शुरू करना अत्यन्त कठिन हो गया था। मैं लगभग १५ दिन कराची मे क्लिफटन पर बने हुए "मोहता पैलेस" में ठहरा था। परन्तु मोहता जी शहर में अपने कपड़े के मार्केट में ही एक कोने के कमरे में वानप्रस्थियों की तरह अनासक्त भाव से कुछ अलिप्त सी स्थिति में रहते थे। वैसे आप अपने काम काज की देख रेख अवश्य करते थे; किन्तु आपका जीवन और रहन सहन भोगैश्वर्य से सर्वथा अलिप्त था। बीकानेर में भी आपकी सरलता और सादगी का मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा था। परन्तु कराची में तो मैंने यह अनुभव किया कि सरलता और सादगी आप के स्वभाव सिद्ध गुण बन गए है। आप के कराची के वैभव की चर्चा करने की आवश्यकता नही है। वहाँ आप "आयरन किंग" के नाम से प्रसिद्ध थे और वर्तमान कराची के निर्माता, उद्योग पतियों तथा व्यवसाइयों में आप का पहला स्थान था। केवल मकानों व दुकानो के किराये की मासिक आमदनी का अनुमान एक लाख रुपया लोग लगाया करते थे। ऐसे वैभव में भी "पद्मपत्र मिवाम्भसा" की गीता की उक्ति का आप के जीवन और रहन सहन पर चरितार्थ होना मेरे लिए कम विस्मय की बात नहीं थी।

: ८ :

दो एक और घटनाऐं भी देनी आवश्यक हैं। उन से जहाँ मेरे प्रति मोहता जी के विश्वास का पता चलता है वहाँ आपके चरित्र और स्वभाव पर भी उनसे अच्छा प्रकाश पड़ता है। "गीता का व्यवहार दर्शन" प्रकाशित होने पर एक बड़ा पार्सल कराची से मुझे भेज दिया गया—इस उद्देश्य से कि पुस्तकों को लागत मूल्य पर गीता के प्रति अनुराग रखने वालों को दे दिया जाय। सारी पुस्तकें हाथों हाथ निकल गईं। "गीता विज्ञान" के १०-१० हजार के दो संस्करण और "गीता का व्यवहार दर्शन" का १० हजार का तीसरा संस्करण दिल्ली से मेरी देख-रेख मे मुद्रित करवाया गया और बिक्री के लिए "गीता विज्ञान कार्यालय" के नाम से एक केन्द्र भी दिल्ली में कायम कर दिया गया। कुछ समय बाद यह कार्यालय बीकानेर चला गया। परन्तु आज तक भी पुस्तकों के लिए पत्र प्राय: प्रतिदिन आते रहते हैं। बिना विज्ञापन और आन्दोलन के पुस्तकों की यह बिक्री उनकी उपयोगिता और लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण है। इसमे कुछ भी सन्देह नहीं कि मोहता जी की पुस्तकें स्वत: में अपना विज्ञापन हैं। जो कोई भी पढ़ा लिखा उनको दूसरों के हाथों में देखता है उसमें उनको प्राप्त करने की इच्छा स्वत: ही पैदा हो जाती है। दक्षिण के अहिन्दी क्षेत्रों मे इनका बहुत अच्छा प्रसार होना साधारण बात नही है।

: ९ :

श्री रामरखसिंह सहगल के स्वर्गवास के बाद "चाँद" कार्यालय का काम बिगड़ गया और सरकारी रिसीवर नियुक्त होकर सारे सामान के नीलाम होने की स्थिति पैदा हो गई। कुछ लोगों ने मोहता जी को यह सब सामान लेकर साझे में काम करने के लिए तैयार कर लिया। कराची से मुझ को पत्र मिला कि मुझे इलाहाबाद जाकर आप के प्रतिनिधि को मशीनों आदि के सम्बन्ध में वस्तुस्थिति की जानकारी देनी चाहिए। वहाँ जाने पर मुझे नयी साझेदारी का पता चला और यह भी मालूम हुआ कि साझे का काम निभेगा नहीं और उसमें घाटा रहेगा। मैंने आप के प्रतिनिधि से बातचीत करके एक लम्बा तार आप को उस साझेदारी के विरोध में दे दिया। दूसरे दिन मुझे उत्तर मिला कि हमें अपने वचन का पालन करना ही चाहिए। साझे में

शुरू किया गया काम दो तीन महीने भी निभ नहीं सका। मुझे फिर बीकानेर बुलाया गया। वहाँ पहुँचते ही आप ने यह शब्द कहे कि आप की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। पोद्दार जी को, यदि मैं भूलता नहीं, २० हजार की और हानि उठानी पड़ी होगी। परन्तु मैंने आप में उनके लिए कोई क्षोभ, दुःख अथवा चिन्ता नहीं देखी। "सुख दुःखे समेकृत्वा लाभा लाभौ जया जयौ" का प्रत्यक्ष अनुभव मुझे आप से मिल गया। ऐसे अनेक प्रसंगों पर आप की समवृत्ति देखकर मैं विस्मित रह गया।

: १० :

अन्त में जिस घटना का उल्लेख करना मुझे आवश्यक प्रतीत होता है, वह है मारवाड़ी सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन की। उसके अध्यक्ष पद के लिए आपको सहमत करने का काम मुझको सौंपा गया और आप के बार-बार इनकार करने पर मुझे उसके लिए बीकानेर भेजा गया। मारवाड़ी सम्मेलन की नियमावली में सामाजिक विषयों पर चर्चा न होने का उल्लेख था और जिस संस्था में सामाजिक विषयों की चर्चा न हो उसमें स्वभावतः ही आप के लिए कोई आकर्षण नहीं हो सकता था। मेरा दृष्टिकोण यह था कि "मारवाड़ी" शब्द प्रदेश का सूचक है जाति विशेष का नहीं। इसलिए उसमें वैश्य, ब्राह्मण, राजपूत, जाट और हरिजन आदि सब सम्मिलित हो सकते हैं। यदि सब को एक मंच पर लाया जा सके, तो समाज सुधार की दृष्टि से यह भी कुछ कम नहीं है। पोद्दार जी इस पर सहमत हो गए। जो प्रतिनिधि मंडल आपके साथ बीकानेर से आया, उसमें ब्राह्मण, वैश्य, राजपूत और हरिजन आदि सभी सम्मिलित थे। वे सब सम्मेलन में मंच पर बैठते थे। उनके भाषण भी हुए और भोजन-शाला में भी वे सब के साथ बिना किसी भेदभाव के सम्मिलित होते थे। सम्मेलन में ऐसा पहली ही बार हुआ था। अपने भाषण में जिन क्रांतिकारी और साम्यवादी विचारों का आप ने प्रतिपादन किया था, वह भी सम्मेलन में पहली ही बार किया गया था। कुछ प्रस्ताव भी बीकानेर के प्रतिनिधि मंडल की ओर से ऐसे प्रस्तुत किए गए थे जिनसे सम्मेलन के संचालक सहमत नहीं थे। यही कारण था कि उनमें से कइयों ने मुझ से यह कहा कि दिल्ली वालों ने पोद्दार जी को अध्यक्ष चुनकर उनको धोखा दिया और वे यदि पोद्दार जी के विचारों से परिचित होते तो उनको अध्यक्ष बनाने के लिए सहमत नहीं होते। उनके ऐसे विचारों के कारण पोद्दार जी कुछ महीने भी उनके साथ निभा न सके। आपको त्यागपत्र देकर सम्मेलन से अलग हो जाना पड़ा। अपने विचार और सिद्धान्त के साथ किसी प्रकार का समझौता करना आपने नहीं सीखा। दिल्ली में कई बार गीता पर आप के प्रवचन करवाये गये। ऐसा प्रसंग भी आया, जब कि पंडिताभिमानी ब्राह्मण यह कहकर उसमें सम्मिलित नहीं हुए कि व्यासपीठ से एक वैश्य के मुख से गीता की कथा वे नहीं सुन सकते। ऐसा विरोध तो पोद्दार जी के लिए बहुत ही सामान्य और हलका सा था। आप ने अपने विचारों के लिए बीकानेर की अधिकारी जनता और शासकों का जो विरोध, निन्दा और अत्याचार वर्षों तक निरंतर सहन किया है उसमें कोई दूसरा टिक नहीं सकता था। परन्तु आप तो चट्टान की तरह इस नीति वाक्य पर सदा ही अविचल बने रहे हैं कि—

"निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समा विशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथ,
प्रविचलन्ति न धीरः ॥"

इसी भाँति वास्तव में आप के चरित्र और स्वभाव का चित्र अंकित किया जा सकता है, जिसको बहुत समीप से देखने और अध्ययन करने का मुझे प्रायः अवसर मिलता रहा है। मैं उनका इतना अधिक कृतज्ञ रहूँ

हूँ कि आज आप के अभिनन्दन के निमित्त इस ग्रन्थ का सम्पादन करने का सुअवसर प्राप्त होने पर मैं अपने को ही धन्य मानता हूँ; क्योंकि मुझ को आप के प्रति वर्षों की भावना को मूर्तरूप देने का अलभ्य अवसर अनायास ही प्राप्त होगया।

सत्यदेव विद्यालंकार

(हिन्दी पत्रकार)

•

७०

सेवा परायण संत

श्री रामगोपाल जी के सार्वजनिक अभिनन्दन का समाचार जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। व्यापारी वर्ग में ऐसे सेवा परायण संत बहुत कम हैं। ऐसे सही अभिनन्दन से जनता-जनार्दन को लाभ और अनुकरणीय मार्ग का प्रदर्शन होगा। इस अवसर पर अपनी भावना व्यक्त करने में मैं गौरव अनुभव करता हूँ। मोहता जी चिरायु हों।

सोहनलाल दूगड़

(देशभक्त, उदार, दानवीर और सेवाभावी।)

•

७१

पितृ-स्नेह

श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्बन्ध में कुछ लिखने में काफी संकोच होता है। उनके सान्निध्य में जीवन के कुछ कीमती वर्ष बिताये हैं। उनका स्मरण हमेशा मन को आनन्द विभोर कर देता है और पिछले बीस वर्षों से उस मूर्त सान्निध्य से वंचित रहते हुए भी कभी मैंने यह महसूस नहीं किया कि उनके साथ आत्मीयता की ओर गुरुजन की जो भावना बंध चुकी है वह शिथिल हुई है। उसी नजदीकी के भाव से अभिभूत होने से लिखने में बहुत संकोच अनुभव करता हूँ।

जीवन में हम कितने दिवास्वप्न देखते हैं और कदाचित ही उनका मूर्तरूप हमें देखने को मिलता है। परन्तु मोहता जी के साथ मेरा सान्निध्य होना अजीब संयोग की बात है। सन् १९३०-३१ में जयपुर में अध्ययन काल में "चाँद" मासिक में मोहता जी के समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों की बातें पढ़ीं। सामाजिक क्रांति में तभी से अपने मन में एक गहरी प्रवृत्ति होने से, ऐसी कल्पना किया करता था कि काश मोहता जी का सेक्रेटरी

सहायता के लिए मैंने आपको सदा ही तत्पर पाया । बीकानेर और कराची में भी आपने उनकी सेवा के लिए जो ठोस कार्य किया है वह कई संस्थाएँ मिलकर भी नहीं कर सकतीं । मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं है जबकि किसी हरिजन भाई अथवा विधवा बहन को निराश होकर आपके यहाँ से लौटना पड़ा हो ।

बीस वर्ष बाद पिछले दिनों फिर कुछ दिन हरिद्वार में आप के पास रहने का अवसर मिला । एक बार फिर पिछले सहवास की सारी स्मृतियाँ मेरी आँखों के सामने नाच गईं । पिता अथवा गुरु का वही स्नेह, वात्सल्य, व्यवहार और विचार । आचार्य विनोबा के "स्थित प्रज्ञ दर्शन" ग्रन्थ के वाचन के बाद तिलक विचार-धारा और गांधी विचारधारा के आधार पर ठीक वैसी ही चर्चा हुई जैसी कि अनेक बार कराची और बीकानेर में हुआ करती थी । मुझे दुःख रहा कि मैं अधिक दिन आप के पास नहीं रह सका । परन्तु आप का आग्रह निरन्तर बना रहा ।

यह कुछ पंक्तियाँ लिखकर मैं भी आप के अभिनन्दन के इस मंगलमय प्रसंग में अपने को शामिल कर अपने को भाग्यशाली समझता हूँ और यह कामना करता हूँ कि आप का वरद् हस्त सदा ही हमारे सिर पर बना रहे ।

विद्याभूषण चिन्तामणी

(जैन दर्शन शास्त्री, न्यायतीर्थ ।)

●

७२

समाज सुधारक मोहता जी

मोहता जी के बहुत घनिष्ठ परिचय में आने का अवसर न मिलने पर भी मैं यह जानता हूँ कि वे बहुत पुराने समाज सुधारक हैं । वैसे तो समाज सुधारक बनना एक फैशन सा बन गया था; परन्तु ऐसे समाज सुधारक कुछ अधिक नहीं थे जो कहने के अनुसार कुछ करते और कुछ करने के लिए कोई कष्ट उठा सकते । मोहता जी इसके अपवाद हैं । उन्होंने अपने समाज सुधार सम्बन्धी विचारों को मूर्त रूप देने का सदा प्रयत्न किया है, उनके लिए लाखों खर्च किया है और बड़े से बड़े लोकापवाद तथा तिरस्कार को भी सहर्ष सहन किया है । कोई भी विघ्न बाधा अथवा कठिनाई उनको अपने निश्चित मार्ग से विचलित नहीं कर सकी । उनकी दृढ़ता का कुछ परिचय मुझे दिल्ली के मारवाड़ी सम्मेलन के अवसर पर मिला ।

तब मारवाड़ी सम्मेलन के कार्यक्षेत्र में समाज सुधार का विषय सम्मिलित नहीं था । इस कारण बहुत कठिनाई से उन्होंने उसका अध्यक्ष पद स्वीकार किया था । परन्तु अपने भाषण में अपने विचारों को प्रगट करने में और "मारवाड़ी" कहे जाने वाले हरिजन भाइयों को भी अपने साथ सम्मेलन में लाने में वे पीछे न रहे । उस समय उनके ये विचार और उनका यह कार्य सम्भव है हम में से किसी को पसन्द न आया हो; परन्तु उनकी दृढ़ता का पता हम सब को अवश्य मिल गया ।

फिर कुछ दिन बाद समाज सुधार के ही एक प्रश्न पर उन्होंने सम्मेलन के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया और बहुत आग्रह करने पर भी वे अपना त्यागपत्र वापस लेने को सहमत नहीं हुए । अपने निश्चय पर वे

दृढ़ रहे। उनकी यह दृढ़ता अनेकों के लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध हुई है। प्रभु उनको चिरायु करें और वे इसी प्रकार समाज का पथ प्रदर्शन करते रहें।

ईश्वरदास जालान

*

(पश्चिमी बंगाल के स्वायत्त मंत्री श्री जालान जी मारवाड़ी समाज के प्रमुख नेता हैं। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन आप की ही कल्पना और प्रयत्न का परिणाम है। कलकत्ता की मारवाड़ी समाज की सार्वजनिक प्रवृत्तियों में आप प्रमुख भाग लेते हैं। आप कलकत्ते के एटर्नी एट-ला और प्रथम श्रेणी के सुशिक्षित एवं प्रगतिशील मारवाड़ियों में से हैं।)

•

७३

मोहता जी की दृढ़ता

अपने समवयस्क (वस्तुतः आयु में एक-डेढ़ वर्ष कम) वयोवृद्ध साहित्यानुरागी श्रीमान् सेठ रामगोपाल जी मोहता के सार्वजनिक अभिनन्दन का समाचार जानकर मुझको हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं मोहता जी के साहित्य से इतना अधिक परिचित नहीं हूँ। मुझे उनके व्यापार-व्यवसाय में साझीदार होने का गौरव प्राप्त है। उत्तर-भारत में उनका कपड़े का बहुत बड़ा काम था। दिल्ली भी कपड़े की बहुत बड़ी मण्डी थी। अमृतसर और कानपुर के बीच दिल्ली मण्डी का महत्व हरियाणा, राजपूताना, मध्यभारत और उत्तर प्रदेश में कुछ दिनों के कारण बहुत अधिक था। इसीलिए मोहता जी का काम दिल्ली मण्डी में भी खूब चलता था। मैं उनका साझीदार ही नहीं किन्तु मुख्य सलाहकार भी था और वे मेरी सलाह को हमेशा ही अपनी सम्मति से भी अधिक महत्व दिया करते थे। दिल्ली की एक कपड़ा मिल खरीदने का सौदा पाँच-साढ़े पाँच लाख में प्रायः पक्का हो गया। केवल मेरी सलाह न होने से वह सौदा छोड़ दिया गया। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि मैंने ऐसा करने की सलाह क्यों दी, परन्तु इतना याद है कि मेरे ही कारण वह पूरा न किया जा सका। अपनी सम्मति से अपने साझीदार की सम्मति को अधिक महत्व देना साधारण बात नहीं है।

समाज-सुधार के मामलों में मेरी मोहता जी के साथ खूब पटती थी। जब हम लोगों के विवाह हुए तो आम तौर पर १०-११ वर्ष की आयु में कन्या का विवाह हो जाता था। बीकानेर में कन्या की ६ वर्ष की ही आयु बहुत अधिक मानी जाती थी। बीकानेर वाले बीकानेर से बाहर विवाह करने को राजी नहीं होते थे। मोहता जी के छोटे भाई राय बहादुर श्री शिवरतन जी मोहता के विवाह पर ये सब पुरानी मर्यादाएँ और रूढ़ियाँ तोड़ दी गईं। कन्या की आयु १४ वर्ष की थी और उसके पिता सुप्रसिद्ध सुधारक श्री श्यामसुन्दर जी भरतिया ग्वालियर के दीवान थे। उनके घर से पर्दा प्रथा का अन्त हो चुका था। इन और ऐसे कुछ कारणों से इस विवाह के लिए बीकानेरी समाज में कुछ भी अनुकूलता नहीं थी और मोहता जी के घर के भी कुछ लोग राजी नहीं थे। उस समय मुझे भी अनुकूलता पैदा करने के लिये कुछ प्रयत्न करना पड़ा। मोहता जी की दृढ़ता का मुझे उस समय कुछ परिचय मिला। अपने घर में उन्हीं के साहस से यह विवाह सम्पन्न हो सका। बीकानेर में बिना पर्दा प्रथा का और कन्या की इतनी बड़ी आयु का शायद वह पहला ही विवाह था।

समाज के दलित व शोषित वर्ग, हरिजनों और महिलाओं की निरन्तर जो सेवा मोहता जी ने की है, और उसके लिये जो निन्दा, अपमान तथा तिरस्कार उन्होंने सहन किया है, वह अब किसी से छिपा नहीं है। अपने पिताजी के स्वर्गवास के बाद दिल्ली में बहुत बड़े पैमाने पर ब्रह्मभोज और जाति भोज की व्यवस्था उनकी ओर से की गई थी। परन्तु उसके तुरन्त बाद उन्होंने बड़ी हिम्मत से यह घोषणा की थी कि भविष्य में उनकी ओर से इस प्रकार के भोज नही करवाए जाएंगे। बीकानेर समाज में ऐसे भोजों पर लाखों रुपया खर्च किया जाता है। बीकानेर में इस कुप्रथा का अन्त करने का श्रेय मोहता जी को ही प्राप्त है।

दिल्ली में मोहता जी मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते जब पधारे थे तब उनके सम्मान में एक विशाल जलूस निकाला गया था। स्वागताध्यक्ष स्वर्गीय सेठ जमनादास जी पोद्दार ने स्वयं उनके साथ रथ पर बैठकर मुझे उनके साथ बैठने को बाध्य किया। तब मैंने देखा था कि वे किस कठिनाई से जलूस के लिए सहमत हुए थे और रथ पर तो उन को ज़बरदस्ती ही बिठाया गया था। वे उसको व्यक्ति पूजा मानते थे और व्यक्ति पूजा के वे कट्टर विरोधी हैं।

मारवाड़ी सम्मेलन को दिल्ली में उनके ही कारण नई दिशा प्राप्त हुई थी। एक तो उसमे मारवाड़ी के नाते सभी समाजो के लोगो ने बिना किसी भेदभाव से सम्मिलित होना शुरू किया और दूसरा यह कि सम्मेलन ने समाज सुधार के मामलों में भी दिलचस्पी लेनी शुरू की।

अनेक मामलों में उन्होंने सारे ही समाज का पथ प्रदर्शन किया है और उनके उस ऋण से मारवाड़ी समाज उऋण नही हो सकता।

एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। मुझे इतनी बड़ी आयु प्राकृतिक चिकित्सा के ही कारण प्राप्त हुई है। मोहता जी प्राकृतिक चिकित्सा के वैसे समर्थक न होने पर भी मैं जानता हूँ कि वे कैसा सरल प्राकृतिक जीवन बिताते हैं और उनको भी यह दीर्घायु प्रकृति की सेवा से ही प्राप्त हुई है। प्राकृतिक जीवन बिताने की शिक्षा उनके दीर्घ जीवन से हम सबको अवश्य ही ग्रहण करनी चाहिए।

लक्ष्मीनारायण गाडोदिया

(वयोवृद्ध सेठ लक्ष्मीनारायण जी गाडोदिया मोहता जी के ही समान अस्सी को पार कर तिरासिवें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। वर्तमान दिल्ली के सामाजिक, सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन के निर्माण में गाडोदिया जी का बहुत बड़ा हिस्सा है। लोकोपकारी कार्यों में उदार सहयोग देना आपका स्वभाव रहा है। गांधी जी की विचारधारा के आप अनुयायी हैं और स्वदेशी तथा प्राकृतिक चिकित्सा के अन्यतम समर्थक हैं। दिल्ली में गांधी जी तथा अन्य राष्ट्र नेताओं के शुरू दिनों में मेजबान होने का गौरव आपको प्राप्त है।)

●

७४

मेरा परिचय और दर्शन

पूज्य श्री सेठ जी से मेरा परिचय सन् १९१४ जरमनी के प्रथम युद्ध के प्रथम मई मास में आरम्भ होता है। दर्शन उसी वर्ष नवम्बर मे हुआ। सुनती थी कि सेठ जी बहुत ही बड़े व्यक्ति है, जैसे उस समय के होते थे।

प्राय: बीकानेर के लोग, भाई जी यहाँ के सेठ जी और मैं जेठ जी और सुगनी बाई की माँ (आप की धर्मपत्नी) को मैं जेठानी जी कहा करती थी। उन्हें प्रथम पैरों पड़ाई में मैंने गिन्नी दी थी और उन्होंने जैसे जेठानी देरानी को देती है आशीर्वाद दिया था कि "बीदनी ऊँचा होवो"। मेरे को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई थी और आपके (सेठ जी के) आने पर सम्बोधन करके कहा था कि "जब कि आप तरबूज हाथ में लेकर खड़े-खड़े खा रहे थे कि मुनीम जी की बीदनी तो फुटरी है, (मुनीम जी वहाँ उच्च पदाधिकारी को ही कहते हैं। फुटरी सुन्दर का प्राय: वार्ता शब्द है।) तो आप हँस दिये थे। आप के साथ गाने बजाने वाले प्राय: रहा करते थे। आप ने अपने बेटे के शुभ विवाह पर भी उच्चकोटि के गवैये बुलाये थे। उनका खुला सुन्दर प्रदर्शन करवाया था।

आपका लेखकों द्वारा लिखा गया ऋषिवर नाम मैंने पढा था। मैं भी ऋषिवर के नाम से ही सम्बोधन करने लगी थी। आपने दवाखाने और स्कूल कालेज खुलवाये। पब्लिक के अनेकों कार्य किए। स्त्रियों के सुख के कार्य भी अनेकों किए। मेरा भी एक कार्य मेरे मनचाहा किया जिसे मैं अपने जीवन में नही भूल सकती। वह यह है—सन् १९३० का वाकया है कि श्री गाडोदिया जी दो वर्ष तक बीमार रहे। उस समय इनका एक ट्रस्ट बनाने का विचार था अपनी सम्पत्ति का। मेरा विचार उससे भिन्न था। मैं यह जानती थी कि सेठ जी का कहा ये टालेंगे नही। तब मैंने गुप्तचर द्वारा श्री पूज्य भाई जी को संदेश भेजा था और तब आप बोले थे कि मुनीम जी को मेरे पास भेजो। ये गए। तब बोले कि भई तुम अपनी स्त्री बच्चों को अयोग्य करार देकर ट्रस्ट क्यों बना रहे हो। इन दोनों के हाथ बँध जायेंगे। ऐसा मत करो। इनकी समझ में बात आ गई और ट्रस्ट नही बना। मैं इसके लिए आप की जीवन पर्यन्त आभारी रहूँगी।

आप के भाई सेठ शिवरतन जी को मैं धर्मराज जी कहा करती हूँ। बोलती किसी से आज तक भी नही हूँ; किन्तु मैं अपनी भावना के अनुसार उपाधि दे दिया करती हूँ। यह मेरा अभ्यास ही समझो।

सुगनी बाई की माँ तो जब भी, जितने दिन भी दिल्ली रहती थी मैं उनके पास नित्यप्रति जाती थी। साथ में बाहर घूमने भी जाती। यदि किसी कारणवश एक दिन भी नागा हो जाता था तो बुलाया देतीं। जाते ही उलाहना देती। हर बात में सम्मति माँगती। यद्यपि मैं उन दिनों किस लायक थी, फिर भी पता नहीं क्यों मैं उन्हें बहुत ही अच्छी लगती थी। एक बार छापर रेशमी ओढ़ना भी लाकर दिया और कहने लगीं "बींदनी ये परिजो था पर ओपसी। (सुन्दर लगेगा)।

सेठजी से व्यापारिक सम्बन्ध तो लगभग चालीस वर्षों से अलग हो गया है; किन्तु अभी तक मन का सम्बन्ध वैसे का तैसा ही बना हुआ है। आप सन् २२ में काश्मीर गए थे। बंगले में ठहरे थे। साथ में रतनबाई, उसकी सहेली और छोटे भाई स्वर्गीय मूलचन्द जी की स्त्री भी थी। हम लोग शिकारे में बैठकर दो बार आपके घर गए थे। आप भी हमारे हौसबोट पर पधारे थे। आप एक बार हरिद्वार बिड़ला हौस में थे। मैं भी बालकों को लेकर मसूरी से आकर हरिद्वार ठहरी थी। मैंने तार तो बिड़ला हौस के सेक्रेटरी के नाम दिया था, पता नहीं सेक्रेटरी ने क्या किया। आने पर पता चला कि स्थान तो सेठ मोहता जी से भरा है। तब मेरे को लगा कि जैसे अपने घरवालों से बहुऐं कहलाती हैं, लड़के से कहा कि ताऊजी के पास जाकर [illegible] दे कि ताऊजी माँ ने कहा है है कि हम लोग आए हैं। स्थान दीजिए। मेरे को जैसे अपने बड़ों पर [illegible] को अभिमान होता है वैसे ही आदरणीय श्री सेठ जी पर है। मैं छोटे [illegible] बात कैसे कहूँ। आप [illegible] सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य है।

(धर्मपत्नी श्रीमान सेठ लक्ष्मी

७५

उन्मुक्त मानवता

मैं उस ज्ञान की खोज के लिए, जिसके लिए भारत प्रसिद्ध है ग्रास्ट्रेलिया से पर्यटक के रूप में भारत ग्राया। श्री रामगोपाल जी मोहता से मुलाकात होना मैं ग्रपना परम सौभाग्य मानता हूँ। बीकानेर में मैंने कुछ स्मरणीय दिन विताये ग्रौर उनके साथ हुई लम्बी चर्चा में मुझे उनके महान ज्ञान ग्रौर उन्मुक्त मानवता का सराहनीय परिचय मिला। जिस संसार में हम रहते हैं उसको दुखी व संकटापूर्ण मानकर मैं बड़ी दुविधा ग्रौर ग्रसमंजस में पड़ गया था। उन्होंने इस संसार के प्रति मेरे रुख ग्रौर दृष्टि को बहुत बदल दिया। उन्होंने मुझे यह सिखाया कि हम सब जिस मुक्ति की कामना करते हैं उसके लिए संसार का त्याग करने की ग्रावश्यकता नहीं परन्तु साथियों की एकता ग्रौर मानवीयता की भावना से ग्रपने साथियों की सच्ची सेवा करते हुए उसको प्राप्त कर सकते है।

मैं यह देखकर बहुत प्रभावित हुग्रा कि शोषितो ग्रौर पीड़ितों की सेवा के महान कार्य के सम्पादन करने में ग्रपना समस्त जीवन लगा देने पर भी वे कैसे सादे, सरल ग्रौर नम्र हैं। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि ग्रपने भारत प्रवास में मैं केवल श्री रामगोपाल जी मोहता की ही संगति में ग्राया होता तो यह वास्तव मे ही मेरे लिए श्रेयस्कर हुग्रा होता।

सी० एल० सेन्टिनेला

(ग्रापने जर्मनी, ग्रमरीका, इंगलैंड, भारत, यूरप ग्रौर रूस का विस्तृत भ्रमण किया है। भारत में ग्राप मुक्ति की खोज में ग्रनेक स्थानों पर गए हैं; परन्तु सच्ची ग्रात्मिक शान्ति की प्राप्ति ग्रापको कहीं न हो सकी। बीकानेर भी इसी उद्देश्य से गए। कृषि ग्रौर गोपालन ग्रापका धंधा है।)

●

अंगरेज़ी में

अंगरेजी में प्राप्त संस्मरणों को यहां उनके मूलरूप मे भी दिया जा रहा है। इनके हिन्दी अनुवाद पीछे यथास्थान दिये जा चुके हैं :-

True Significance of King Janak

I first came in contact with Shri Ram Gopal Ji Mohta some 25 years ago through my late lamented friend and colleague Krishna Kant Malviya. He asked me to write *a forward to the well known book of Mohta Ji "Vyavahar-Darshan and Gita". Later* on I read his other books on Gita and articles on philosophical topics also. His writings impressed me as the result of deep thinking and earnest study of the teachings of *Bhagwat-Gita by him, essentially from the practical point of view of a man who wants* to live in the world and play his part with full faith in the Divine purpose underlying the Cosmic manifestation of the God and in the consciousness of the true mission of *one's own life. In the life of Mohtaji one can fully understand the true significance of* what Gita says of King Janak—"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:" Mohta Ji is a faithful pilgrim for that path of righteousness and action which leads to the attainment of the *सिद्धि (Self-realisation).*

M. S. Aney.

•

Life of Devotion

I am delighted to know that Shri Ram Gopal Mohta will celebrate his 81st birthday soon It is good to know that even business people take interest in our culture and try to mould their lives on its fundamentals. Shri Ram Gopalji has had a full life of devotion and service and his works are read with great interest.

S. Radhakrishnan
Vice President

•

A Useful Guide

I am glad to learn that it is proposed to present an Abhinandan Granth to Shri Ram Gopal Ji Mohatta on the occasion of his 81st birthday. This commemoration volume will aim at outlining the achievements of Shri Mohatta in the field of social reform, religion, philanthrophy and literature and will present before the public, in interesting detail, the various facets of Shri Mohatta's life. I have every hope that this compilation will serve a good cause in that it would be taken as a useful guide by others who are keen to learn from other people's experiences in life.

I take this opportunity of wishing Shri Ram Gopal Ji Mohatta many happy returns of the day.

Swaran Singh
Minister for Steel
Mines and Fuel

●

A Great Student of Ancient Philosophy

It is kind of you to have asked me to send you my impressions on the life of Shri Ramgopalji Mohta. Although my relations with Mohta family were very close, as it happened, by the time I got into the public life at Karachi, Shri Ram Gopal Ji had ceased living in Karachi and had transferred his headquarters to Bikaner. Except therefore for getting occasional glimpses of him, I have had no real opportunity to come in close contact with him. It would therefore be a little impertinent on my part to record what would amount to personal memories. We all, however, knew him to be a great Philanthropist and a keen social reformer. He was known to be very courageous and often faced the music of his own community in advocating social reforms. Even then he was known to be a great student of ancient literature both in the fields of philosophy and religion.

Lalji Mehrotra
Indian Ambasador
Embassy of India,
Rangoon.

●

A Perfect Karam-yogi

It gives me special pleasure that the 81st Birthday of Muniji Shri Ramgopal Mohta is being celebrated by his friends, admirers and disciples. I count it as a privilege to call myself an admirer of this great man. I have known him for the last 20 years in Bikaner and I have seen good many of his activities social and spiritual. No words can adequately describe his great personality and the great and silent work he has been doing for the poor and needy and the sick in body and in mind. In fact he is the nearest approach to a perfect Karam-yogi I have ever known.

M. N. Tolani
Officer on Special Duty (Education)
Govt. of Rajasthan
JAIPUR

•

Late M. N. Roy and Mohtaji

Early in the summer of 1943, we had an unusual visitor in our home at Dehradun. The visit was unusual for more than one reason. Few strangers used to come to us unannounced, because whenever we were not travelling for our work, we used to live very quietly in this remote retreat of ours. And even our friends never came during the day when M. N. Roy was at work. I had made it a habit to do my work on the front veranda to "intercept" visitors and avoid any disturbance. But that visitor in the early summer of 1943 was unusual for yet another reason. He was an elderly gentleman in orthodox style and traditional garb, very different from the young men who were members of our Radical Democratic Party, or even from the local Congressmen who used to call occasionally in spite of their political differences, out of personal regard.

That unusual visitor was Seth Ramgopal Mohatta. He was spending the summer at Hardwar, and had come up to Dehradun for a few days for some medical consultation. It seemed surprising that he should want to meet M. N. Roy. We thought he might be one of those who used to come in those days and ask in a pained voice : Why do you support the war, when all the leaders are in jail ? And why do you criticise Mahatma Gandhi ? Or such other questions to which there could be no reply except by going all over the field of contemporary history and philosophy, for which there

usually was no common ground to reach any understanding, and which anyhow could not be satisfactorily done in course of a casual social call.

But what a happy surprise it was when the orthodox looking Sethji turned out to be not only well acuqainted with Roy's ideas and activities, but even agreed with them to a very large extent and expressed his appreciation and a profound understanding. And not only did we find him an interesting and original thinker, but also an extremely lovable person. After their first exchange of opinions and discussion, Sethji remarked that ours was a very nice place. We walked together round the garden, and I collected for him some rare flowers. I appreciated it very much then that he did not throw them away or leave them behind, as many people do who are careless about those delicate beautiful things, but carried them carefully away with him.

After he had left, Roy told me how deeply impressed he was with Sethji's learning and profound knowledge of Indian philosophy and scriptures, more extraordinary for a man of his class and environments. He said, only a man with a very bold character and original critical thinking could thus rise above the mental and social conventions.

During the next seven or eight years, a relation of friendship developed between the two men, who were in some ways so different ; and if there remained some points of philosophy on which they could not entirely agree, that did not diminish their mutual respect and liking. It also did not prevent Sethji from extending to us throughout those years the most generous help, always offered with rare kindness and grace. Sethji could do that because he was not only a scholar, but also a very successful businessman. Frequently he gave us good advice about our own concerns of publishing books and papers. But unfortunately, in spite of his good advice, we could never transform those concerns of a socio-political movement into a profit-making business. All that we could do, thanks to the devotion of members of the movement, was to keep them going and carry on without making debts. But all resources and even personal donations went into the financing of our work.

That remids me again of that first visit of Sethji to Dehradun. When he had left, we found on our table a closed envelop containing a generous gift in big banknotes, without as much as a word. Deeply moved, in his first letter of thanks to Sethji, M. N. Roy wrote :

"It was really very kind of you to have given this help just when it was needed. It was on the very eve of a study camp held here for young women anxious to take part in public work. Nearly forty of them came from different provinces, and went back very satisfied, feeling themselves qualified to do something useful for the country. In these days of high cost of living, such a camp is a great burden on our modest

means. Therefore your help was almost a God-sent. You know that I do not believe in God ; but goodness is perhaps even greater than godness. And I do know how to appreciate and Worship goodness !"

These last sentences characterise both M. N. Roy and Seth Ramgopal Mohatta.

ELLEN ROY

IMPORTANT CORRESPONDENCE

Some important correspondence exchanged between late M. N. Roy and Mohta Ji.

Letter from M. N. Roy

Dehradun, July 13th, 1943

My dear Sethji,

This delay in my thanking you for the generosity is due to the fact that I did not know your address at Hardwar, where you were to spend yet another month. It was really very kind of you to have given the help just when it was needed. It was on the very eve of a study camp held here for young women anxious to take part in public work. Nearly forty of them came from different provinces, and went back very satisfied, feeling themselves qualified to do something useful for the country. In these days of high cost of living, such a camp is a great burden on our modest means. Therefore, your help was almost a God-sent. You know that I do not believe in God ; but goodness is perhaps even greater than godness. And I do know how to appreciate and worship goodness.

I hope you did not feel that your visit here was entirely useless, and you will take the trouble of keeping touch with me.

Yours Sincerely.
M. N. Roy.

Mohta ji's reply

Bikaner, July 20, 1943

My dear Mr. Roy,

I am very glad to have your letter of 13th instant. I do not think I have given any help to you. It was merely a token of the heartfelt sympathy which I entertain towards the cause of serving the country, for which you are working heart and soul.

I fully agree with the principles of equality and co-operation advocated by you and am trying in my own way to propagate and advance the same. I shall be really pleased to hear from you occasionally about the progress of your mission.

Your Sincerely.
Ramgopal Mohatta.

•

M. N. Roy's Letter

January 30, 1944

Dear Sir,

Thanks for your letter dated the 25th, which was forwarded to me here. I am glad to know that you hold such critical views about this wasteful affair in Delhi. I wonder if you allow your views to be published. If you do, please send a word to that effect to the Vanguard Office (30, Faiz Bazar) .

It is really a matter of gratification to me that you take so much interest in our activities and wish us success. Owing to the press boycott, very little of our activity is publicly known. We are making headway much faster than we ourselves expected. Now, thanks to the 'Vanguard', our activities can be known at least to our friends and sympathisers. That being our only organ of publicity, we are anxious to build it up as a first class newspaper. In spite of unimaginable difficulties, we have carried it on for nearly two years. But we are greatly handicapped by the inability to have a press of our own. That not only adds to our financial burden, but often the paper does not come out it time. That baffles our efforts to build up a large circulation. Therefore, we are anxious to make some more satisfactory printing arrangements. We are simply not in a position to have a press of our own. Perhapse you may not know that we started the paper literally with a few hundred rupees. It has been built up entirely on voluntary labour, and is to-day a self-supporting concern.

I wonder if you can think of any way of helping us in this respect. We don't want any money to be given to us. You may know of some party who will be prepared to set up a Press in Delhi, and give preference to printing our paper; in addition to that we shall give him our whole printing work which is quite considerable. Briefly, a press with our printing will be profitable business. For investment, not more than Rs. 50,000 may be needed immediately. If you can think of doing something in this respect, particulars may be had from the General Secretary of our party, Mr. V. B. Karnik, Advocate, 30, Faiz Bazar, Delhi. I do hope you will write a few lines from time to time.

Yours Sincerely.
M. N. Roy

•

Mohta ji's reply

Bikaner, 18th February, 1944

Dear Sir,

I am in receipt of your kind letter of 30th ultimo. My friend Mr. Balkrishna Mohta has returned from Delhi. He was greatly assisted by the 'Vanguard' in his agitation against the wasteful *Mahayajna* and *my views were represented by him.* Thanks for your help in this connection. I note the difficulties experienced in publishing literature and the 'Vanguard' owing to the absence of your own press. I suggest that a public limited company be floated for establishing a Press for the 'Vanguard' and allied literature with a capital of a lac of rupees, half of which may be paid up in advance. I think the shares would be readily taken up. I am prepared to subscribe ten thousand rupees worth of shares. Please consider this matter and let me know whether you like the suggestion.

Yours Sincerely.
Ramgopal Mohatta.

•

M. N. Roy's Letter

Dehradun, February 22, 1944

Dear Sir,

I am very glad to receive your reply to my letter. It is gratifying to know that you take so much interest in our affairs. As regards your proposal, it may be the way out of our difficulties. But we are no businessmen. And the floating of a limited company, particularly raising the capital, cannot be done by novices. Therefore, I feel that your proposal may be put into practice only if you will take the trouble of floating this company as yours. If you were occupied with other things, you may appoint some of your men to do the thing under your guidance. I hope you will give the matter your due consideration, and let me have en encouraging reply, at your convenience.

Yours Sincerely.

M. N. Roy

•

Mohta ji's reply

Bikaner, 28th March, 1944

My dear Comrade Roy,

I duly received your letter of 14th instant. I have seen the 'People's Plan of Economic Development' in the 'Vanguard' and in the 'Independent India', and found it very interesting and thought-provoking.

I agree with you that it would be advisable to wait until after the war for setting up a Press. I learn that the 'National Herald' Press of Lucknow is on sale or in the alternative it could be leased out. It would be worth while to negotiate for it if it could be obtained on lease on reasonable terms, as I am informed that the Press is uptodate and complete. This is only a suggestion for your consideration.

We had Pandit Laxman Shastri Joshi among us while on his way to Jodhpur and it really gave us a great pleasure of meeting him. I was greatly impressed by his thorough knowledge of the Shastras mixed with modern thoughts of using it for progressive purposes. We want such Pandits for our emancipation. He seems to be the right type of man for taking advantage of ancient history for the cause advocated by your good self.

I beg to enclose herewith 10 halves of currency notes of Rs. 100/- each. The other halves will be sent after I get acknowledgment of this letter. Please use these one thousand rupees as you think proper for the furtherance of your work. With kindest regards.

Yours Sincerely,
Ramgopal Mohatta.

•

M. N. Roy's Letter

Dehradun, April 2nd, 1944

My dear Sethji,

Thanks very much for your letter. I am glad to know that you liked my friend Pandit Laxman Shastri Joshi. I am writing to Lucknow to enquire about the position of the National Herald Press. It is a Rotary machine, and I am afraid it will be expensive. It will be rather costly even to rent it. However, I shall let you know as soon as concrete information will be available.

I thank you very much for the contribution. Will you kindly send the second halves to my Delhi address. I need hardly tell you that it will be a great help, particularly for the new campaign for the popularisation of our Plan of Economic Development. I am glad to know that you approve of it.

Yours Sincerely,
M. N. Roy

•

M. N. Roy's Letter

13, Mohini Road,
DEHRA DUN.
Oct. 2, 1950.

Respected Sethji,

I am writing to acknowledge the receipt of your new book; and thank you for sending it to me. It gives me the feeling that you have not forgotton me, and I am very glad for it.

Some friends at Jodhpur and Bikaner have been pressing me to visit Rajasthan. Most probably, I shall go this year about the middle of December. I wonder if you will be at Bikaner about that time ; because in that case, I shall be very happy to call on you to pay my respects.

With best wishes and kindest regards.

Yours Sincerely
M. N. Roy.

●

Mohtaji's reply

Seth Ram Gopal Mohatta
New Delhi.

My dear Comrade Roy,

Your kind letter of 2nd instant duly reached me for which I thank you. It gives me great pleasure to learn that you will be coming here about middle of December and I shall indeed be very happy to meet you after such a long time. I trust you are doing quite well. With kindest regards.

Your Sincerely,
Ram Gopal Mohatta.

●

M. N. Roy's Letter

13, Mohini Road,
Dehradun.
Oct., 28

My dear Sethji,

Thanks for your kind letter. I was very glad to receive it. For sometime we have been out of touch and I very much regretted the fact.

I shall be seeing you at Bikaner most probably by the middle of December. Meanwhile, I may just as well acquaint you with the purpose of my visit.

I presume that you are informed of the activities of this Institute. Unfortunately, we have not been able to make much progress owing to the want of sufficient fund. Except for your generous contribution, no substantial help has come. But I

can't believe that it can't be obtained if efforts are made in the proper quarter. That is the object of my visit to Rajasthan. I hope that you will kindly help me in this respect.

With best wishes and kindest regards.

Your Sincerely,
M. N. Roy.

●

M. N. Roy's Letter

13, Mohini Road,
Dehradun,
Dec. 10, 1950.

Respected Sethji,

Because of illness, I have cancelled the projected visit to Jodhpur and Bikaner in winter. Moreover, I came to know that friend Chhaganlal is at Delhi and cannot go to Bikaner for some time. He accordingly also advised that my visit should be postponed until the end of February or early in March. I have agreed.

I came to know from my friend Ramsingh, formerly editor of the 'Vanguard' now of 'Thought', that you are expected at Delhi. As I shall not see you immediately, I have requested him to do so on my behalf in order to make certain propositions for your consideration. So that you may have made your judgment by the end of February when I hope to see you at Bikaner.

You may know that I have completely retired from politics for reasons publicly known. Experience has confirmed the opinion I held for many years, that for a long time in India work in the cultural and intellectual field is much more important than political activity or economic reconstruction. The foundation of a truly free and democratic society has still to be laid. I desire to devote the rest of my life to this work.

With the help of some friends, I made [illegible] beginning already several years ago. *The first object is to train* a band [illegible] scholars who will carry the message of cultural and in[illegible] to [illegible] in other words, to educate the educators of the peopl[illegible]

Unfortunately, from the very beginning I have been greatly handicapped by the want of the most minimum funds. Now the stage is reached when I shall be compelled ao give up the work unless it enlists the patronage of some liberal-minded enlightened rich people. Therefore I wish to make a desperate attempt, and with that object intend to visit Rajasthan.

I have not the slightest doubt that you sympathise with my ideas, although there might have been points of difference. In any case, I dare count upon you to see that the last years of my life are not wasted and embittered by frustration. On my part, I fully agree with your view that the inspiration for a cultural and intellectual renaissance must be and can be found in the past history of India. You may have noticed that to carry on research in Indian history is an important part of the programme of the Indian Renaissance Institute. Personally, I am engaged in writing a cultural history of India and a history of Indian Philosophy. But you may not know that I cannot make much progress because I must work for several days a week to earn the means for a bare living by writing articles for newspapers.

For these reasons, I have no other alternative than to appeal to your generous patronage. I am sure that, if you took active interest in the work of this Institute, many wealthy men of Rajasthan, who usually patronise good ventures, will help us also. With that belief, I shall come to Bikaner in the last days ot February.

With very best wishes and kindest regards.

Your Sincerely,
M. N. Roy.

•

Mohataji's Reply

Bikaner, 18th December, 1950.

My dear Mr. Roy,

I duly received your letters of 20-10-50 and 10-12-50, the latter addressed to me at Delhi. I am sorry to learn that on account of illness you have postponed your proposed visit to Rajasthan until the end of February or early in March. Although I would have been very pleased to meet you here, I feel it necessary to advise you that

it would be mere waste of your valuable time and energy and also of money if you visit this area, as I think the object for which you are coming here, would not be achieved, because I do not find many people on this side who *can understand and appreciate the* lofty ideals and subtle and deep philosophy propogated by your goodself especially the rich people of Rajasthan, are mostly uneducated and exceedingly selfish. They would not even think of meeting you. They are caste ridden, intoxicated by wealth, bigotory, orthodoxy and blind faith. As for myself, I have an intention, if health permits, to come over to Dehradun and meet *you there some time during the spring or summer and* have a talk with you and then to decide as to what I can contribute towards the noble cause for which you are working.

I have only a meagre knowledge of English language and therefore cannot fully understand your high scholarly writings with many technical words and terms. But I have *gathered from the literature of your Indian Renaissance Institute which you* have very kindly sent me that you are coming nearer to the ancient philosophy of practical Vedanta as every accomplished and great free thinkers like yourself, must ultimately do. I am also sure that as your research work advances you will come more and more nearer to it and you will find that the cultural and intellectual and above all spiritual freedoms of the people which you *are aiming at, can be found abundantly in* the Upnishads and Bhagvad Gita if they are studied in the light of my interpretations and exposition. I have expounded these ideas very clearly in my books, "Gita ka Vyavahar Darshan" *i.e.* Practical Philosophy of the Gita and laterly in "Samaj ki Mang" both published in Hindi It is a pity that you are not conversant with Hindi language otherwise you would be convinced of what I have written, by reading my books. Unfortunately almost all the interpretations written by learned scholars and Pandits and Political leaders are based on ideas of *theological and mystical, bigotory, ceremonial* orthodoxy and superstitions and dogmas which are derogatory to humanself and have robbed the people of this country, both educated and uneducated, of the faculty of free thinking.

As you know the vast majority of Hindu masses and also of classes are blind worshippers of *Gita, without knowing the true implications of its teachings,* and they have great reverence for the name of Upnishads. In fact all the religious sectarian leaders had to take authority of Gita and Upnishads, for making their sectarian gospels popular among the people. I would therefore suggest that the educators and trainers whom you want to educate the people, should themselves grasp deeply the real and *subtle inner teachings* of these monumental scriptures of ancient practical philosophy, putting aside the heavily adulterated and spurious matters and tendentious interpreta-

tions, so that they can teach the people the lesson of cultural and intellectual and also of spiritual freedom of your idealogy on the authority of their own worshippers and revered books in their own mother tongues and thus enlighten them and remove their darkness by their own torches of light. I think in this manner, you will be able to achieve success more easily. As I have stated above, the people of this country have lost the power of free thinking and have become slaves of blind faith and one would be well advised to utilize their very blind faith for the cause of liberating them from the bondage of the same. I venture to say that this course would be a speedy and certain cure for paralizing malady.

I sincerely trust you have recovered from the illness mentioned in your letter.

With best wishes,

Yours Sincerely.
Ramgopal Mohatta

•

M. N. Roy's Letter

Calcutta, January 25th, 1951.

Respected Sethji,

Your letter in reply to mine reached me in Bombay about the middle of December. Since then I have been travelling from place to place. You will kindly excuse the unavoidable delay in my writing to you with reference to your observations and suggestions. They have of course received my most careful consideration, and I am indeed thankful for them. Your English is faultless, and you will kindly excuse my inability to correspond with you in Hindi. But I know this language well enough to read your works and also others worth reading. If I prefer to write in English, that is because of the fact that books written in that language reach the relatively small, fraction of the educated and progressive people of India, to whom our appeal must be addressed in the first place. Hindi may be the universal language of India in a distant future. Meanwhile, I must reach readers also in the whole of the South and Bengal. And that can be done only if I express my ideas in English. Moreover, all those who in the Hindi speaking parts are likely to be interested and appreciate these ideas can read English, in many cases more easily than Hindi.

I fully agree that, to reach the people at large, one must speak in their language. But the people of India do not speak one language and none can possibly

speak and write in all the Indian languages. The way out of the difficulty is to prefer the language which is under-stood by the educated and progressive people, throughout the country. Once the latter are moved, they will speak to the people at large in their respective mother-tongues.

None can possibly write in all the Indian languages; but I should be very happy if my books were translated and published in all the Indian languages. That is a question of material means, which I do not possess I venture to think that you could help at least as far as Hindi is concerned. Given some more capital, the Renaissance Publishers Ltd., could publish Hindi editions of my books, and other Hindi literature, such as your valuable works.

As regards the importance of laying emphasis on the rationalist thought in ancient India, I should draw your attention to the aims and objects of the Renaissance Institute. They are: to carry on research in Indian history, to discover sources of inspiration for attempts to reform and reconstruct the present state of affairs. We have been doing that in a modest manner, and can do much more if the requisite material means were available. I ventured to hope that with your help it should be possible to enlist the patronage of some wealty people who usually patronise constructive endeavours. I have been informed that Seth Sohanlal of Jaipur, for instance, could be approached, and hoped to do so through you. There may be other such cases.

Therefore I should not abandon the plan of visiting Rajasthan at the end of February altogether, and count on your good offices in raising some fund for the Indian Renaissance Institute. Our immediate requirement is Rs. 2,00,000. It will enable us to enlarge the Institute so as to provide for a minimum number of resident-scholars and teachers.

I am very glad to learn that you intend to visit Dehradun next summer. But we may meet earlier in Bikaner as I so very earnestly wish to. On that occasion, I shall submit for your consideration a plan of publishing Hindi books. The Renaissance Publishers is a private Limited company. For the moment, I hold the majority of its shares issued against my unpaid royalties. The initial capital was subscribed by a few friends. The company has no liabilities, and there is an unlimited scope for expansion of business. For that purpose, it requires some liquid capital. If you so desire, you may acquire a controlling interest in the company by taking up its unissued shares. The authorised capital is one lakh, shares worth Rs. 40,000 have been subscribed, Rs. 30,000 on account of my unpaid royalties. The prospectus and balance sheet are being sent to you under separate cover. I do hope that you will kindly consider the proposition before I come to Bikaner.
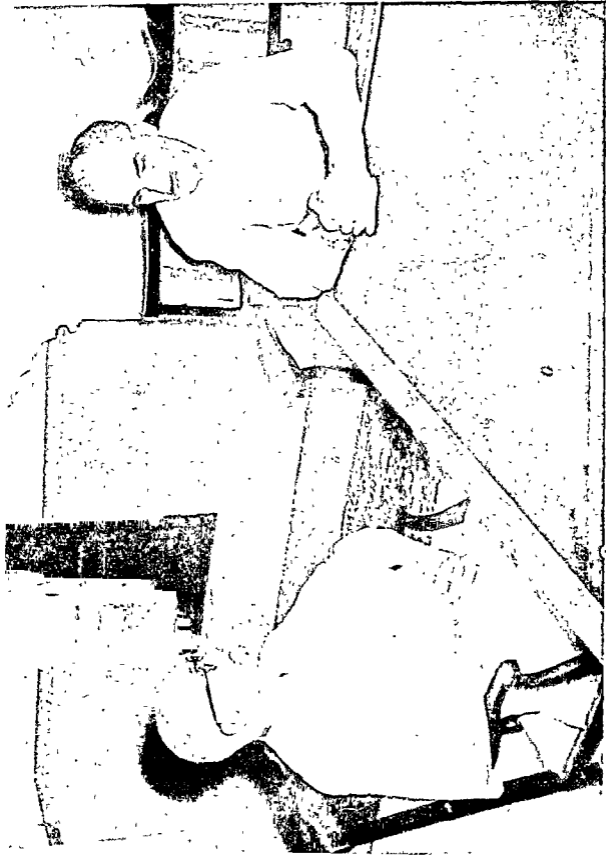
श्री मेन्डीनली बीकानेर में—मोहता जी के साथ विचार-विनिमय कर रहे हैं

श्री सेन्टिनेली बीकानेर में मोहताजी के साथ विचार विनिमय करते हुए। (चित्र में आप दोनों के साथ रा० ब० शिवरतनजी मोहता और डा० छगनलालजी

With very best wishes and kindest regards,

Yours Sincerely
M. N. Roy

Profound Humanity

As a visitor to India from Australia seeking that wisdom for which India is famous. It has been my good fortune and privilege to have met Ram Gopal Mohatta. During a memorable few days spent at Bikaner and in the course of several long discussions with him I was able to appreciate his great wisdom and profound humanity. Confused and perplexed as I was by the troubled world in which we live, he has contributed substantially to change my attitude to the world. He has taught me that one does not necessarily have to abandon the world to achieve that liberation which we all wish for, but we can achieve this best perhaps, by devotion and service to our fellowman, activated by a spirit of unity with humanity.

I was greatly impressed by the fact that in spite of a life-time of achievement in the cause of the oppressed and unfortunate he still remains simple, modest and unassuming. With conviction I can say that if my stay in India had only resulted in my association with Ram Gopal Mohatta it would have been truly worth while.

C. L. Sentinella

(Farmer by profession. Widely travelled and lived in Germany, America and England and travelled extensively in India Europe and Russia)

मोहता जी के सम्वन्ध में केला जी की भावना

आजकल प्रत्येक क्षेत्र—सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक आदि—में सुधारकों की बाढ़ आयी हुई है, तो भी यथेष्ट सफलता नहीं मिल रही है। वरन् कहा जा सकता है कि मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की वाला हाल है। इसका कारण क्या ? बात यह है कि सुधारक दुनिया के सुधार का तो बीड़ा उठाते हैं, पर अपने काम की शुरूआत अपने आप से न करके दूसरों से करते हैं। साहित्यकार, लेखक, सम्पादक आदि अपने हजारों और लाखों पाठकों को जो उपदेश देते हैं, उस पर वे स्वयं कहां तक आचरण करते हैं ? समाज-सुधारक दूसरों को जाति-भेद न मानने, अस्पृश्यता दूर करने, रीति व्यवहार में कम खर्च करने की बात कहते नहीं थकते, पर स्वयं अपने बालकों का विवाह अपनी जाति में ही नहीं, उपजाति में करते हैं, किसी हरिजन को अपने घर में रखने को तैयार नहीं होते, और विवाह शादी आदि धूमधाम से करने में किसी किफायतशारी का परिचय नहीं देते। राजनैतिक नेता और सूत्रधार देश के निर्माण की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते हैं और उनके लिए धन जुटाने के वास्ते जनता को खूब

त्याग करने और कष्ट सहने की अपील करते रहते हैं, पर वे स्वयं अपने वेतन, भत्तों और अन्य सुविधाओं में कुछ कमी नहीं करते और यदि कभी विशेष दवाव पड़ने पर एक मद में कुछ कमी करनी पड़ती है तो उसकी पूर्ति करने के दूसरे रास्ते निकाल लेने की फिक्र में रहते हैं। ऐसे व्यवहार से अभीष्ट सुधार की क्या आशा हो सकती है।

उदाहरण के लिए एक युवक का दृष्टान्त है। वह बहुत निराशा और चिन्ता के कारण अस्वस्थ होगया था। इस पर वह एक चिकित्सक के पास गया। चिकित्सक ने देखा कि युवक को कोई खास शारीरिक बीमारी नही है, उसका रोग मानसिक है। इसलिए उसने युवक के साथ बहुत सहानुभूति दर्शाते हुए कहा तुम्हें अमुक नाम वाले लेखक की अमुक-अमुक कृतियाँ पढ़नी चाहिएँ, इससे तुम्हें मानसिक शान्ति मिलेगी और उसका तुम्हारे स्वास्थ्य पर निश्चय ही बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। यह सुन कर युवक चकित हो गया, कुछ देर उससे बोलते न बना। आखिर, उसने कहा 'महाशय ! वह अभागा लेखक मैं ही हूँ, जिसकी पुस्तकें पढ़ने का आप मुझे परामर्श दे रहे हैं।'

इस प्रसग में हमें मुहम्मद साहब के जीवन की एक घटना याद आती है। कहा जाता है कि एक महिला का पुत्र गुड़ बहुत खाया करता था। उसे बहुत समझाया गया पर उस लड़के में कुछ सुधार न हुआ। उसकी माँ ने मुहम्मद साहब की बहुत तारीफ सुनी थी। उसे यह निश्चय हो गया कि अगर वे इस लड़के को समझावें तो अवश्य सफलता मिले। इस पर वह अपने लड़के को उनके पास ले गयी, और उनसे आवश्यक निवेदन किया। मुहम्मद साहब थोड़ी देर चुप रहे, पीछे बोले—इस लड़के को एक सप्ताह के बाद मेरे पास लाना। इस पर महिला अपने घर लौट आयी और एक सप्ताह के बाद फिर उस लड़के को लेकर मुहम्मद साहब की सेवा में हाजिर हुई। अब मुहम्मद साहब ने प्यार से उस लड़के को समझाया तो लड़के ने यह आश्वासन दिया कि मैं एक सप्ताह में अपनी आदत सुधार लूँगा। मुहम्मद साहब ने उस महिला से कहा यह लड़का बहुत अच्छा है, यह मेरी बात जरूर मानेगा, तुम अगले सप्ताह मुझे इसका समाचार देना। निर्धारित समय के बाद महिला मुहम्मद साहब के पास आयी और कहा कि लड़के की आदत सुधर गयी है। मैं आपका बड़ा अहसान मानती हूँ, लेकिन यह तो बताओ कि आपने लड़के को जो बात कहने के लिए दुबारा बुलाया, वह मेरे पहली बार ही आने के समय क्यों नही कह दी; मुझे दुबारा आने का कष्ट न उठाना पड़ता और एक सप्ताह का समय बच जाता। इस पर मुहम्मद साहब मुस्कराये और उन्होंने कहा—"मैं पहली बार ही आने पर लड़के को गुड़ छोड़ने का उपदेश कैसे दे सकता था, उस समय तो मैं भी गुड़ बहुत खाता था। तुम से भेंट होने के बाद मैंने पहले अपना सुधार करने का निश्चय किया, और उसमें सफल हो जाने पर ही मैं इस बालक को आवश्यक आदेश देने का साहस कर सका। जो आदमी अपना सुधार करने की ओर ध्यान न देकर दूसरों के सुधार का बीड़ा उठाता है, उसको सफलता की आशा न करनी चाहिए। वे अपने आपको धोखा देते है और संसार को धोखा देने वाले हैं।

श्री रामगोपाल जी मोहता से मेरा बहुत पुराना परिचय है। अपने समाज के "माहेश्वरी" पत्र को लगभग ४०-४५ वर्ष पहले जब मैंने देखना शुरू किया था तभी से मैं उनके विचारों से परिचित हूँ। मैं यह कह सकता हूँ कि वे ऐसे सुधारक हैं जिन्होने स्वयं पहले अपना सुधार किया। आधुनिक सुधारक उनका अनुकरण करते हुए मेरी बात पर ध्यान देने की कृपा करें।

भगवानदास केला

(स्वर्गीय श्री केला जी ने अपने स्वर्गवास से कुछ ही समय पहले हमारे अनुरोध पर ये पंक्तियां लिख भेजने की कृपा की थी। संभवतः अपने जीवन की उनकी ये अंतिम ही पंक्तियां हैं। साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने जितना निर्माण किया उतना बड़ी-बड़ी संस्थाएं भी नहीं कर सकीं। वे मन, वचन, कर्म, से सर्वतोभावेन सर्वोदयी थे और सर्वोदय में संलग्न अवस्था में ही उनका स्वर्गवास हुआ।)

खंड ४

इस प्रकरण में गीता के व्यावहारिक दर्शन और विचार क्रान्ति के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी लेख दिये जा रहे हैं। गीता के व्यावहारिक दर्शन पर प्रकाश डालने वाले प्राप्त अनेक लेखों को इस प्रकरण में नहीं दिया जा सका है। ऐसे सब महानुभावों से विनीत भाव से हम क्षमा प्रार्थी हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ विचार क्रान्ति सम्बन्धी लेख भी नहीं दिये जा सके।

इस प्रकरण में जो उपयोगी लेख दिये जा रहे हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

१. गीता पर आधुनिक दृष्टिकोण
२. गीता के अर्थ का अनर्थ
३. गीता का समत्व योग
४. गीता का धर्म और नीति
५. सर्व धर्म परित्याग
६. गीता दर्शन का व्यावहारिक रूप (अंगरेजी में)
७. विचार क्रांति का रूप
८. संत सुधारकों की कृति का मूल्य
९. भगवान बुद्ध और महायोगेश्वर श्रीकृष्ण

गीता पर आधुनिक दृष्टिकोण

श्री तिलक, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी और मनस्वी मोहता जी की व्याख्या का तुलनात्मक विवेचन

[लेखक—श्री दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार, सम्पादक—"भारत सेवक", भूतपूर्व सम्पादक—"दैनिक विश्व मित्र", "दैनिक वीर अर्जुन", "दैनिक जनसत्ता", और "सफल जीवन" मासिक।]

१

लोकमान्य का कर्मयोग

गीता के अर्वाचीन भाष्यों में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का 'गीता रहस्य" प्रमुख है। गीता-भाष्य की प्राचीन प्रणाली की सीमा का सबसे पहले इस में उल्लंघन किया गया है। प्राचीन भाष्य-पद्धति एक विशिष्ट दृष्टिकोण युक्त है जिसका सूत्रपात आदि शंकराचार्य ने किया। शंकर ने सबसे पहले उपनिषद्, वेदान्त और गीता को "प्रस्थान त्रयी" का नाम दे कर इन तीनों को अद्वैतपरक और जगत्-माया-मिथ्यात्व युक्त निवृत्ति मार्ग पोषक सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कर्म की अपेक्षा ज्ञान को, प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति को और गृहस्थ की अपेक्षा सन्यास को श्रेयस्कर सिद्ध करते हुए गीता द्वारा इनकी पुष्टि की है। उनके बाद के आचार्यों ने इसी मार्ग का अवलम्बन करते हुए गीता सहित "प्रस्थान त्रयी" के भाष्य किये हैं। शंकर के बाद रामानुजाचार्य ने अपने गीता भाष्य द्वारा विशिष्टाद्वैत की पुष्टि की है, अर्थात् जीव (चित्) और जगत् (अचित्) दोनों एक ही ईश्वर के शरीर हैं। इसलिए चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर एक ही है। तीसरा गीता भाष्य माध्वाचार्य ने किया जिसमें द्वैत मत का समर्थन किया गया है। ब्रह्म जीव की पृथक्ता बताते हुए भक्ति मार्ग की पुष्टि की गई है। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से किया गया चौथा भाष्य वल्लभाचार्य का है। माया रहित शुद्ध जीव और ब्रह्म को एक ही वस्तु मानते हुए परमेश्वर के अनुग्रह अर्थात् "पुष्टि" और "पोषण" की कामना ही जीवन का लक्ष्य मानी गई है। इस सम्प्रदाय का नाम इसलिए "पुष्टि मार्ग" भी है। गीता का पाँचवा भाष्य निम्बार्क का है जिसमें जीव, जगत् और ईश्वर तीनों को भिन्न-भिन्न बताते हुए जीव को केवलमात्र ईश्वर की इच्छा का साधन और राधा-कृष्ण की भक्ति को सर्वाधिक प्रधान माना गया है। छठा भाष्य ज्ञानेश्वर का है। इसमें ज्ञान और भक्ति की विशिष्टता बताते हुए पातञ्जल के योगमार्ग की पुष्टि की गई है।

लोकमान्य ने अपने भाष्य में इन सब रूढ़ियों को तोड़ कर गीता को कर्मयोग प्रधान शास्त्र बताया। प्राचीन आचार्यों के भाष्यों को आपने साम्प्रदायिक और एकांगी कहा है; जैसे एक मिठाई को देखकर चार व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से उस के स्वरूप का वर्णन करते हैं। एक कहता है, इसमें खाँड मुख्य है, दूसरा कहता है, घी प्रधान है, तीसरा कहता है, घी का पहला स्थान है और चौथा चीनी को मुख्य स्थान देता है। वैसे पूर्व आचार्यों ने अपने-अपने मत को पुष्ट करने के लिए गीता के अर्थों से मनचाहा खींचतान की है। समुद्र-मन्थन के समय किसी को अमृत, किसी को विष, किसी को लक्ष्मी, किसी को ऐरावत, कौस्तुभ, पारिजात आदि भिन्न-भिन्न पदार्थ मिले। परन्तु, यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें समुद्र का वास्तविक स्वरूप एक ही था, उसका

गहराई पता लग गई। गीता-सागर का मन्थन करने वाले इन टीकाकारों और भाष्यकारों की ऐसी ही अवस्था है। गीता तो एक ही है और उसके श्लोक भी एक ही हैं पर इन साम्प्रदायिक भाष्यकारों ने इतनी रस्साकशी की है कि वह एक जंजाल बन गया है। इस सदोष और साम्प्रदायिक पक्षपात को दृष्टि छोड़कर हमें स्पष्ट, सीधे और स्वाभाविक ढंग से गीता के तात्पर्य को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी ग्रन्थ को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह देखना चाहिए कि वक्ता या लेखक का अभिप्राय क्या है, किस प्रकार के वाक्यों से और कैसे प्रकरणों से अपने विचारों की पुष्टि की गई है, उसमें क्या उदाहरण हैं और अन्त मे क्या सिद्धान्त निकाला गया है। मीमांसा शास्त्र में इस कसौटी को निम्न श्लोक में बहुत अच्छे ढंग से स्पष्ट किया गया है—

उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये॥

किसी ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्णय करने में सात बातें साधन स्वरूप हैं, पहले ग्रन्थ का आरम्भ किस उद्देश्य से हुआ और उसकी समाप्ति किस प्रकार हुई। प्रारम्भ और अन्त का आपस में समन्वय होना चाहिए। इसे ही उपक्रम और उपसंहार कहा गया है। तीसरा साधन अभ्यास है, अर्थात् बार-बार कह कर किस बात पर अधिक बल दिया गया है। चौथा, अपूर्वता अर्थात् अपने पक्ष की सिद्धि मे क्या नवीन सिद्धान्त, युक्ति अथवा विशेष अद्भुत बात कही गई; पांचवां 'फल' अर्थात् परिणाम, लेखक जिस तत्वार्थ को पाठक के सामने निचोड़ के रूप में रखना चाहता है, छठा अर्थवाद अर्थात् अपने पक्ष की पुष्टि के लिए उदाहरण देना, दृष्टान्त देना अथवा अलंकार व व्यंग्य रूप से कोई बात कहना; सातवां उपपत्ति, अर्थात् तर्कशास्त्र के अनुसार बाधक युक्तियों का खंडन और साधक प्रमाणों द्वारा अपना पक्ष-समर्थन, इस प्रकार ग्रन्थ के आदि और अन्त के किनारों को मिला देना। मीमांसको द्वारा प्रस्तुत ये सातों सिद्धान्त न केवल भारत मे अपितु सर्वत्र माने गये हैं और इन में ऐसी कोई बात नहीं है जिसका विरोध किया जाए।

लोकमान्य तिलक ने इसी कसौटी पर गीता की परीक्षा की है। गीता का आरम्भ अर्जुन के विषाद, मोह और द्वन्द्वात्मक स्थिति से होता है। क्षात्र धर्म उसे युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा था जब कि अपने सामने युयुत्सु रूप में खड़े गुरुजन और आत्मीय जनों का मोह उसे कर्तव्य पथ से विरत कर रहा था। एक ओर कुआं, दूसरी ओर खाई—ऐसी अर्जुन की मानसिक स्थिति थी। इस मोह मे ग्रसित होकर वह घर से भाग भिक्षा-वृत्ति को स्वीकार करने के लिए उद्यत हो गया। अब इस प्रकार उद्वेलित मानस के युवक को सीधे मार्ग पर लाना, उसके विषाद और मोह का निराकरण करते हुए उसे क्षात्र धर्मानुकूल युद्ध के लिए प्रेरित करना, यही कार्य श्री कृष्ण ने किया। अपने पक्ष-पोषण के लिए भगवान् कृष्ण ने शरीर-जीवात्मा का सम्बन्ध बताते हुए और आत्मा की अमरता पर बल देते हुए अर्जुन को पहले मृत्यु के भय से मुक्त किया। फिर कर्मयोग की बड़े प्रभावपूर्ण शब्दों में व्याख्या की। अर्जुन को बार-बार इन शब्दों से प्रेरित किया—"तस्माद् युध्यस्व भारत" इसलिए हे अर्जुन ! तू युद्ध कर (गीता २।२८) "तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः"—इसलिए हे कुन्तिपुत्र अर्जुन ! तू युद्ध का निश्चय कर उठ खड़ा हो (गीता २।३७) "तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर"—इसलिए तू मोह छोड़ कर अपना कर्तव्य कर्म कर (गीता ३।३६) "कुरु कर्मैव तस्मात् त्वम्" इसलिए तू कर्म ही कर (गीता ४।१५)—"मामनुस्मर युध्य च"—इसलिए मेरा स्मरण कर और लड़। अध्याय ११, श्लोक ३३ कितना स्पष्ट और सार्थक है—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व।
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्॥
मयैवैते निहताः पूर्वमेव।
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥

हे अर्जुन ! तू उठ, यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीत कर ऐश्वर्ययुक्त राज्य का भोग कर। सामने खड़े शत्रु मुझ द्वारा पहले ही मारे जा चुके है, इसलिए हे सव्यसाची अर्जुन ! तू केवल निमित्त बन कर ही आगे आ। गीता का अध्याय १६, श्लोक २४ इस प्रकार है :—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है। इसका निर्णय करने के लिए तुझे शास्त्रों को प्रमाण मानना चाहिए। शास्त्रों मे जो कुछ कहा गया है उसे समझ कर उसी के अनुसार इस लोक मे कर्म करना तुझे उचित है।

गीता के अन्तिम अध्याय १८ में भगवान् ने अपने सारे उपदेश का उपसंहार किया हैं। छठे श्लोक में भगवान् अपना निश्चित सिद्धान्त इन शब्दों में प्रकट करते हैं :—

एतान्यपि तु कर्माणि संगंत्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

इन ऊपर कहे गये यज्ञ, दान, तप आदि कर्म विना फल की आशा रखे तुझे करते रहना चाहिए, हे अर्जुन ! यह मेरा उत्तम मत है।

इस अध्याय के साथ गीता के उपदेश को समाप्त करते हुए भगवान् कृष्ण अर्जुन से ७२वें श्लोक में पूछते है :—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थत्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञान संमोहः प्रणष्टस्ते धनंजय ॥

हे अर्जुन ! तुम ने एकाग्र मन से मेरा यह सारा उपदेश सुन तो लिया पर तुम्हारा मोहरूपी अज्ञान अभी तक पूरी तरह नष्ट हुआ हैं कि नही।

अर्जुन ने इसका जो उत्तर दिया, इसी अध्याय का ७३ श्लोक, वह कितने मार्के का है :—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

हे अच्युत ! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे अपने कर्त्तव्यधर्म की स्मृति हो गई है। मैं अब सन्देह रहित हो गया हूँ और आप के वचन का पालन करूंगा।

गीता के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर उसके विषय को दृष्टि में रखते हुए नाम संकेत किया गया है। १८वें अध्याय की समाप्ति पर ये शब्द दिये गये हैं—इति श्रीमद्भगवत गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे मोक्ष संन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः।" इस वाक्य में से "इति श्रीमद्भगवत गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे…" यह शब्द प्रत्येक अध्याय के अंत में एक समान आते हैं। इसके बाद अध्याय का विषय और अध्याय की संख्या दी गयी है जैसा उपर १८वें अध्याय के अन्त के शब्द उद्धृत किये गये हैं। इसका अर्थ है इस प्रकार श्री भगवद्गीता मे उपनिषदों में ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत योग शास्त्र मे श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद मे मोक्ष संन्यास योग नाम का अठारहवां अध्याय समाप्त हुआ। इसमें "मोक्ष संन्यास" शब्द को लेकर निवृत्ति मार्ग पोषक यह युक्ति देते है कि यह अध्याय संन्यास मार्ग प्रेरक है, पर इस सारे अध्याय मे कर्मयोग का ही उपदेश है। पांचवें श्लोक में भगवान् स्पष्ट कहते हैं :—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

यज्ञ, दान, तप आदि कर्म का कभी त्याग न करके इन्हें करना ही चाहिए। यज्ञ, दान और तप बुद्धि-

मानों को भी पवित्र करने वाले हैं। इस अध्याय में ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, धृति, बुद्धि, सुख—इन सब के सत्, रज, तम्— इस दृष्टि से तीन-तीन भेद बताते हुए चारों वर्णों के कर्मों का निर्देश किया गया है और धर्मपालन के लिए आग्रह करते हुए अर्जुन को कहा गया है कि :—

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यं सिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४६ ॥

किसी भी काम में आसक्ति न रख, स्पृहा रहित आत्मा (मन) को वश में करके निष्काम भाव से कार्य करने पर कर्म फल के सन्यास द्वारा सिद्धि को प्राप्त होता है।

अध्याय के अन्त में अहंकार को छोड़ ईश्वर के अर्पण अपने को कर, किसी प्रकार की चिन्ता न करते हुए श्रीकृष्ण के उपदेश के अनुसार कार्य करने का आदेश अर्जुन को दिया गया है और फिर यह प्रश्न पूछा गया है कि तुमने क्या समझा और तुम्हारा मोह दूर हुआ है या नहीं। इसका जो उत्तर अर्जुन ने दिया वह पहले कहा जा चुका है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस अध्याय के "मोक्ष संन्यास योग" नाम का एक मात्र अर्थ यही है कि "काम्य कर्मों का सन्यास" न कि सन्यास आश्रम का ग्रहण करना, जैसा कि निवृत्तिमार्गी कहते हैं।

वे कहते हैं कि गीता का मुख्य विषय तो कर्म-संन्यास ही है, बीच-बीच में कर्मयोग की प्रशंसा आनुषंगिक और अर्थवाद रूप में ही की गयी है। पर यह युक्ति बड़ी सार हीन है। यदि कर्म सन्यास ही श्रीकृष्ण के उपदेश का मुख्य लक्ष्य था तो अर्जुन तो इसके लिए पहले से ही उद्यत था। वह भयंकर कुल क्षय और जाति क्षय को देख कर युद्ध से विमुख हो गाडीव को फैंक चुका था। फिर इतना विस्तृत उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी। अर्जुन की कुल परम्परा वर्ण संकर और जातिधर्म नष्ट होने की शंका तो वैसी की वैसी बनी रहती। निश्चय ही श्रीकृष्ण इस प्रकार के पलायन वाद का उपदेश अर्जुन को नहीं देना चाहते थे। अर्जुन की शंकाओं का निवारण उन्होंने एक ही प्रभावशाली युक्ति से किया कि "निष्काम वृत्ति से कर्म करो और यह युद्ध भी निष्काम बुद्धि से करो।" गीता का सार इसी निष्काम कर्म में है। लोकमान्य ने गीता के निम्न श्लोक को कर्म योग का सारभूत बताया है :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ २ ॥ ४७

कर्म करने मात्र का तेरा अधिकार है, फल की प्रतिक्रिया पर तेरा अधिकार नहीं है। किसी कर्मफल की प्रेरणा से तू कर्म करने वाला मत हो और कर्म न करने की ओर भी तेरी प्रवृत्ति न हो।

लोकमान्य के शब्दों में यह कर्मयोग की चतुःसूत्री है और इसमें कर्मयोग का सारा रहस्य थोड़े में उत्तम रीति से बतला दिया गया है" (गीता रहस्य पृष्ठ ३१६)

यह कहना ठीक नहीं कि गीता में वेदान्त, भक्ति और पातंजल योग का कोई वर्णन नहीं है परन्तु, लोकमान्य के कथनानुसार, इन तीनों का समन्वय गीता में बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है। प्रवृत्ति धर्म और निवृत्तिधर्म दोनों में अविरोध गीता द्वारा प्रतिपादित किया गया है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों प्रकार के मार्गों की कसौटी लोकसंग्रह को भगवान् कृष्ण ने माना है। व्यावहारिक रूप में गीता का स्वरूप यह है कि किसी कर्म के उचित व अनुचित होने का निर्णय बाहर के परिणाम से नहीं किन्तु कर्ता की बुद्धि से किया जाना चाहिए। "बुद्धौशरण मन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः"—गीता का यह वाक्य बड़ा ही सार्थक है।

लोकमान्य तिलक की दृष्टि में गीता का तत्त्व क्या है, यह उनके निम्न शब्दों से बहुत स्पष्ट हो जाता है—

"किसी भी दृष्टि से विचार कीजिए, अन्त में गीता सचतो याच कीह त्पयं हमलूमागाकि " ज्ञान भक्तियुक्त कर्मयोग" ही गीता का सार है। अर्थात्, साम्प्रदायिक टीकाकारो ने कर्मयोग को गौण ठहरा कर गीता के जो अनेक प्रकार के तात्पर्य बतलाये हैं, वे यथार्थ नही है।..... भगवान् ने ऐसे ज्ञान मूलक, भक्ति प्रधान और निष्कामकर्म विषयक धर्म का उपदेश गीता में किया है कि जिसका पालन आमरण किया जाए, जिससे बुद्धि (ज्ञान), प्रेम (भक्ति) और कर्त्तव्य का ठीक-ठीक मेल हो जाए, मोक्ष की प्राप्ति में कुछ अन्तर न पड़ने पाये और लोक-व्यवहार भी सरलता से होता रहे। इसी मे कर्म-अकर्म के शास्त्र का सार भरा हुआ है। अधिक क्या कहें, गीता के उपक्रम, उपसंहार से यह बात स्पष्टतया विदित हो जाती है कि अर्जुन को इस धर्म का उपदेश करने में कर्म अकर्म का विवेचन ही, मूल कारण है।" (गीता रहस्य पृ० ४६३)

लोकमान्य ने अपनी पुस्तक का नाम "गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" रखा है। इनका आशय इसीसे स्पष्ट हो जाता है। गीता के प्रत्येक श्लोक की टीका और व्याख्या प्रारम्भ करने से पूर्व उन्होने ६२२ पृष्ठों मे १५ प्रकरण और एक परिशिष्ट प्रकरण "गीता की बहिरंग परीक्षा" के नाम से लिखे हैं। इन १६ प्रकरणों मे लोकमान्य ने इतना गम्भीर, सर्वांगपूर्ण और कई जगह मौलिक चित्रण किया है कि सामान्य बुद्धि के व्यक्ति के लिए वह सहजगम्य प्रतीत नही होता। पृष्ठ ६३५ से ९०३ तक अर्थात् २६८ पृष्ठो में लोकमान्य ने गीता के प्रत्येक अध्याय के श्लोको की टीका और आवश्यकता अनुसार व्याख्या की है। इस प्रकार यह बृहत् ग्रन्थ गागर मे सागर के समान है। इस में जितना गहरा उतरें उतने ही रत्न प्राप्त होते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ और अन्त में कई प्रकार की सूचियाँ भी दी गयी है।

पुस्तक के प्रारम्भ में श्री अरविन्द और महात्मा गांधी की सम्मतियाँ दी गयी हैं। श्री अरविन्द के शब्दों में "गीता रहस्य का विषय तो गीता ग्रन्थ है यह भारतीय आध्यात्मिकता का परिपक्व सुमधुर फल है।" महात्मा गांधी के शब्दों मे "वर्तमान अवस्था में तो गीता मेरा बाइबिल या कुरान नो नही बल्कि प्रत्यक्ष माता ही है। अपनी लौकिक माता से तो कई दिनों से मैं बिछुड़ा हूँ किन्तु तभी से गीता मैया ने मेरे जीवन मे उनका स्थान ग्रहण कर लिया है और उसकी क्षति नही के बराबर कर दी। आपत्काल में यही मेरा सहारा हैं।"

•

२

योगीराज अरविन्द की अध्यात्म दृष्टि

श्री अरविन्द ने १९१३ से १९२० तक अपनी मासिक पत्रिका "आर्य" में गीता पर एक लेख माला लिखी थी जो बाद में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुई है। १९५४ में उसका तीसरा संस्करण "गीता-प्रबन्ध" के नाम से निकाला गया।

"गीता के नवीन भाष्यकारों" में श्री अरविन्द का उच्चतम स्थान है। लोकमान्य तिलक के भाष्य से इसमें एक बड़ा भेद है। लोकमान्य का 'गीता रहस्य' एक प्रकार से सर्वसंग्राहक ग्रन्थ है, वह केवल गीता की व्याख्या नहीं है किन्तु उपनिषद, रामायण, महाभारत और षड्दर्शनों तथा स्मृतिग्रन्थों का निचोड़ है। वह एक विशाल ग्रन्थ है जिसमें अनेक अनमोल रत्न भरे हुए हैं और जो जितना गहरा गोता लगा सके, उसे उतने ही

प्रधिक तत्त्वार्थ की प्राप्ति हो सकेगी। लोकमान्य ने गीता की कर्मयोगपरक व्याख्या करते हुए उसे आध्यात्मिक और आचार शास्त्र के साथ-साथ प्रवृत्ति मार्ग का नीतिग्रन्थ माना है।

इसके विपरीत श्री अरविन्द गीता को विशुद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं। अपनी पुस्तक "गीता प्रबन्ध" के प्रारम्भ में ही आप कहते हैं—"गीता नीतिशास्त्र या आचार शास्त्र का ग्रन्थ नहीं है, बल्कि आध्यात्मिकता का ग्रन्थ है। वास्तव में यह ग्रन्थ मूलतः एक योगशास्त्र है और जिस योग का यह उपदेश करता है उसकी इसमें व्यावहारिक पद्धति बतायी गयी है, और जो तात्त्विक विचार इस में आये हैं वे इसके योग की व्यावहारिक व्याख्या करने के लिए ही लिये गये हैं। ···· इसमें ज्ञान और भक्ति के भवन को कर्म की नींव पर खड़ा किया गया है और कर्म को भी कर्म की जो परिसमाप्ति है, उस ज्ञान में ऊपर उठाकर रखा गया है तथा कर्म का पोषण उस भक्ति द्वारा किया गया है जो कर्म की प्राण है और जहाँ से कर्म उद्भूत होते हैं।"

स्पष्ट है, श्री अरविन्द गीता को मुख्यतः, आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं और भक्ति को ही कर्म का प्राण मानते हैं। इस दृष्टिकोण का कारण यह है कि श्री अरविन्द स्वयं एक योगी थे और योग-सिद्धि द्वारा ही उन्होंने गीता का मर्म जाना था।

मनुष्य की चिरंतन खोज परम सत्य के लिए है। यह सनातन सत्य सर्वांश या सर्वांग में किसी एक दर्शन शास्त्र या किसी एक सद्ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता। यह समय, इस काल के द्वारा और मानव की मनबुद्धि के द्वारा ही अपने को प्रकट करता है। सत्य का प्रतिपादन करने वाले सद्ग्रन्थों में दो तरह की बातें हुआ करती हैं। एक अचिर नश्वर देश विशेष और काल विशेष से सम्बन्ध रखने वाली और दूसरी शाश्वत, अनश्वर सब कालों और देशों के लिए समान रूप से उपयोगी और व्यवहार्य। पहली बातें जहाँ गौण है वहाँ दूसरी मुख्य। इस प्रकार के सद्ग्रन्थ में सम्पूर्ण रूप से चिरन्तन महत्व का विषय वही होता है जो सर्वदेशीय होने के अतिरिक्त स्वानुभूत हो और बुद्धि की अपेक्षा परादृष्टि के द्वारा जिसको देखा गया हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर श्री अरविन्द गीता में से प्रकृत जीते-जागते तथ्य ढूँढना चाहते हैं और इसी के द्वारा पारमार्थिक लक्ष्य सिद्धि प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। उदाहरण के लिए, गीता में आये "यज्ञ" शब्द को श्री अरविन्द आलंकारिक, सांकेतिक और सूक्ष्म तत्व का परिचायक मानते हुए मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव आदि प्राणियों में परस्पर होने वाले आदान-प्रदान, एक दूसरे के हितार्थ बलिदान और प्राणदान का प्रतीक मानते हैं। इसी प्रकार श्री अरविन्द कर्म को भी एक आध्यात्मिक तथ्य के रूप में ही अंगीकार करते हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति अपने स्वभावके अनुसार सब कर्म सम्यक् रूप से सम्पादित करे और वह अपनी प्रकृति के स्वभाव के अनुरूप इन सहज गुणों को प्रकट करे और इन्हीं गुणों के व्यापार के अनुसार व्यक्ति के जीवन की धारा चले और क्षेत्र का निर्धारण करे। गीता में प्रयुक्त "सांख्य" और "योग" शब्दों के बारे में भी श्री अरविन्द का कहना है कि वेदान्त द्वारा प्रतिपादित मार्ग की ओर से जाने वाले ये दो परस्पर सहकारी मार्ग हैं। इनमें एक दार्शनिक, बौद्धिक और विश्लेषणात्मक है और इसका अन्तर स्फुटित, व्यावहारिक, नैतिक और समन्वयात्मक है और अनुभूति द्वारा ज्ञान तक पहुँचाता है। गीता की दृष्टि में इन दोनों में कोई भेद नहीं है। श्री अरविन्द की दृष्टि में गीता केवल दार्शनिक बुद्धि की कल्पनात्मक चमक अथवा आश्चर्य में डाल देने वाली युक्ति नहीं है बल्कि आध्यात्मिक अनुभव का चिरस्थायी सत्य है। गीता का सिद्धान्त केवल अद्वैतवाद नहीं है, मायावाद, विशिष्टाद्वैत, माना गया है और यही आध्यात्मिक चेतना भी है। गीता में परब्रह्म में जीवन का लोप नहीं पर निवास, सांख्य और वैष्णवों का ईश्वरवाद परास्थिति है। उपनिषदों के समान गीता में समन्वय किया गया है और यह आध्यात्मिक होने के साथ-साथ बौद्धिक भी है, इसलिए इसमें ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं जिससे इसकी सार्वलौकिक व्यापकता में बाधा पैदा हो। गीता तर्क की लड़ाई का हथियार नहीं है। यह ऐसा महाद्वार है जिसमें

से समस्त आध्यात्मिक सत्य और अनुभूति के जगत की झाँकी प्राप्त होती है। इस झाँकी में उस परमदिव्य धाम के सभी स्थान अपनी ठीक जगह दिखाई पड़ते हैं। गीता में इन स्थानों का विभाग या वर्गीकरण तो है पर कहीं भी एक स्थान दूसरे स्थान से विच्छिन्न नहीं है और न ही किसी ऐसी चहार दीवारी से घिरा हुआ है कि हमारी दृष्टि आर-पार कुछ न देख सके। उपनिषदों और वेदान्त के समन्वय के आधार पर गीता में भी प्रेम, ज्ञान और कर्म इन तीन महान् साधनों और शक्तियों का समन्वय किया गया है।

श्रीकृष्ण, अर्जुन और गीता का उपदेश—इन तीनों के बारे में श्री अरविन्द का कहना है कि श्रीकृष्ण गुरु रूप में स्वयं भगवान् हैं जो मानव रूप में अवतरित हुए हैं। अर्जुन शिष्य है और अपने काल का श्रेष्ठ व्यक्ति है, इसे हम मानव मात्र का प्रतिनिधि भी कह सकते हैं और गीता का प्रसंग वह स्थिति है जो पांडव-कौरवों के मध्य युद्ध के समय विकट रूप मे भीषण है और जिसका आतंक, प्रचंड प्रभाव और जिसका संकटजनक अवस्था से मानवता का प्रतिनिधि अर्जुन एक दम हतबुद्धि, किंकर्त्तव्यविमूढ और प्रकम्पित हो यह सोचने को बाध्य होता है कि इसका आखिर क्या अभिप्राय है, जगदीश इसके द्वारा क्या चाहता है और मानव जीवन तथा कर्म का क्या मतलब है ? गीता का तत्व समझने के लिए श्री अरविन्द कृष्ण की ऐतिहासिक सत्ता मानते हुए भी उसके आध्यामिक मर्म के साथ ही सम्बन्ध रखना चाहते हैं, उसे अवतार भी मानते हैं और कहते हैं कि मानव रूप मे श्री भगवान् के बार-बार अवतार लेने के सिद्धान्त को गीता मानती है। इसके साथ ही गीता मे भगवान् के जिस रूप पर जोर दिया गया वह यह नही है किन्तु परात्मक विराट् और आतरिक है, समस्त वस्तुओं का उद्गम है, सबका स्वामी है और मनुष्य के हृदय मे वास करता है।

गीता का लक्ष्य मानव को भागवत स्थिति तक पहुंचाना है। इस स्थिति का अभिप्राय है कि आत्मा को मन-बुद्धि, प्राण और शरीर के जीवन से निकाल कर परा शक्ति में ले जाना। इस संसार में आकर आत्मा को कर्म तो करना ही होगा, जगत को अपने काल चक्र पूरे करने ही होंगे पर मानव शरीर में आये आत्मा का यह काम नहीं है कि वह जिस कार्य को करने के लिये यहाँ आया है, उसे अपने नियत कर्म की ओर से अज्ञान वश अपनी पीठ फिरा दे। गीता की शिक्षा का सम्पूर्ण क्रम इन्हीं तीन बातों में है।

गीता के "उपदेश का सार मर्म" बताते हुए श्री अरविन्द कहते हैं कि गीता मे आये सन्यास शब्द के प्रयोग से ही यह समझ लेना कि "सन्यास मार्ग" को श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है यह भारी भूल है। मगर पक्षपात रहित होकर देखा जाए तो गीता में बार-बार यही बात कही गई है कि अकर्म भी अपेक्षा कर्म ही श्रेष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा समाज की प्राप्ति होती है और आन्तरिक त्याग द्वारा इस कर्म को परमपुरुष को अर्पण करना होता है। गीता मे भक्ति तत्व नि:सन्देह है और पुरुषोत्तम सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया गया है पर इसके साथ तीन बातें और कही गयी हैं जो बड़ी मार्के की हैं—(१) ईश्वर वह आभित्व है जिसमें सम्पूर्ण ज्ञान परिसमाप्त होता है (२) वही इसका प्रभु है जिसके समीप सब कर्म हमको ले जाते हैं और (३) वह ईश्वर ही प्रेमरूप स्वामी हैं जिसमे भक्त हृदय प्रवेश करता है। गीता में कहीं ज्ञान पर जोर है, कहीं कर्म पर और कहीं भक्ति पर परन्तु यह तात्कालिक विचार प्रसंग से है। इसका यह मतलब नहीं कि कोई किसी से श्रेष्ठ व हीन है। जिस भगवान् मे ये तीनों मिलकर एक हो जाते हैं वह परमपुरुष है, वही पुरुषोत्तम है। वह सम्पूर्ण सचेतन शरणागत है जिसमे भक्त कर्मी अपने आपको पहले भगवान् के हाथों सौंप देता है और बाद मे भगवान् सत्ता में प्रवेश करता है।

गीता जिस धर्म का प्रतिपादन करती है वह मानव धर्म नहीं किन्तु दिव्य धर्म है, सामाजिक कर्तव्यों का पालन नहीं किन्तु कर्त्तव्य और आचरण के अन्य सब पैमानों का त्याग कर अपने स्वभाव के द्वारा कार्य करने

वाले भागवत संकल्प का अहंकार और ममता छोड़कर आचरण करना है। इस प्रकार गीता नीतिशास्त्र या आचारशास्त्र का ग्रन्थ नहीं है किन्तु आध्यात्मिक जीवन का ग्रन्थ है।

आध्यात्मिक जीवन का क्या मतलब ? संसार में, वस्तुतः, दो प्रकार के आचार-धर्म है, दोनों ही अपने अपने स्थान में आवश्यक और समुचित हैं। एक वह आचार-धर्म है जो मुख्यतः बाह्य अवस्था पर निर्भर करता है और दूसरा वह है जो अपने ही सदसद् विवेक और विचार पर निर्भर करता है। गीता की शिक्षा यह नहीं है कि श्रेष्ठ भूमिका के आचार-धर्म को धनिष्ठ भूमिका के आचार-धर्म के आधीन कर दो, गीता यह नहीं चाहती कि अपनी जाग्रत नैतिक चेतना को मार कर उसे सामाजिक पद मर्यादा पर निर्भर करने वाले धर्म की वेदी पर बलि चढ़ा दो। गीता हमें ऊपर उठने के लिए कहती है, नीचे गिरने के लिए नहीं। दो क्षेत्रों के संघर्ष में, गीता हमें ऊपर चढ़ने का, उस परिस्थिति को प्राप्त करने का, आदेश देती है जो केवल व्यावहारिक, केवल नैतिक चैतन्य से ऊपर है। इसी का नाम ब्राह्मी स्थिति है। समाज-धर्म के स्थान में गीता यहाँ भगवान् के प्रति अपने कर्त्तव्य की भावना को प्रतिबिम्बित करती है। यही ब्राह्मी चेतना कर्म से पुरुष की मुक्ति और अन्तः स्थित तथा ऊर्ध्वस्थित परमेश्वर के द्वारा स्वभाव से कर्म की निष्पत्ति—यही कर्म के विषय में गीता की शिक्षा का मर्म है।

बुद्धि की समता और फल का त्याग ये केवल साधन हैं, मन, हृदय और बुद्धि के साथ भागवत्-चैतन्य में प्रवेश करने और रहने के। गीता ने इस बात को स्पष्ट रूप से कहा है कि इन से तब तक साधन का काम लेना होगा जब तक साधक इस योग्य नहीं हो जाता कि वह इस भगवत्-चैतन्य में रह सके या कम से कम अभ्यास के द्वारा इस उच्चतर अवस्था का वह अपने में क्रमविकास न कर ले। गीता में श्रीकृष्ण अपने को भगवान् कहते हैं। ये भगवान् कौन हैं ? यही पुरुषोत्तम हैं जो अकर्त्ता पुरुष के परे हैं, जो कर्मी प्रकृति के परे हैं, एक के ये आधार हैं, और दूसरी के स्वामी हैं, वे प्रभु हैं जिनका प्रकाश इस सारे जगत् में है और जो हमारी इस माया की वशता की अवस्था में भी जीवों के हृदय में विराजमान है और प्रकृति के कर्मों के नियामक है। साधक को अपने कर्म प्रकृति को समर्पित नहीं करने होंगे, उसे अपने कर्म समर्पित करने होंगे उस पर परमपुरुष की सत्ता में।

गीता का प्रतिपादन तीन सोपानों में बँटा हुआ है। (जिनपर चढ़कर कर्म मानव-स्तर से ऊपर चढ़कर दिव्य-स्तर में पहुँच जाता है। पहला सोपान है—कामना का त्याग करना और पूर्ण समता के साथ कर्म करना, अपने को कर्त्ता समझते हुए यज्ञ रूप में। दूसरा सोपान है, केवल फल की इच्छा का ही त्याग नहीं किन्तु कर्तृत्व के अभिमान की भी परिसमाप्ति। इस उपलब्धि में आत्मा सम, अकर्त्ता और अक्षर तत्त्व हो जाता है। तीसरा सोपान है, परम आत्मा को वह परम पुरुष जान लेना जो प्रकृति के नियामक हैं और प्रकृतिगत जो जीव इस संसार में हैं, उन्हें उसी परमपुरुष की आंशिक अभिव्यक्ति मानना और वे ही अपनी पूर्णपरात् पर स्थिति में रहते हुए भी प्रकृति के द्वारा सारे कर्म कराते हैं। प्रेम, भजन, पूजन, यदि सब उसी परमपुरुष को अर्पित करने होंगे, अपनी सारी सत्ता उन्ही को समर्पित करनी होगी और अपनी सारी चेतना को ऊपर उठाकर इस भागवत चैतन्य मे समन्वित करनी होगी जिससे मानव जीव भगवान् का, प्रकृति और कर्मों से परे जो दिव्य-शक्ति है उसमें भागी हो सके और पूर्ण आध्यात्मिक मुक्ति की अवस्था में रहते हुए कर्म कर सके।

ये जो तीन सोपान बताये गये हैं उनमें प्रथम सोपान है, कर्मयोग, भागवत् प्रीत्यर्थ निष्काम कर्मों का यज्ञ। यहाँ गीता का जोर कर्म पर है। द्वितीय सोपान है ज्ञान योग, आत्म-उपलब्धि, आत्मा और जगत् के सत् स्वरूप का ज्ञान। यहा पर गीता के अनुसार ज्ञान के साथ-साथ निष्काम कर्म भी चलता रहता है, कर्म मार्ग ज्ञानमार्ग के साथ एक तो हो जाता है पर उसमें घुलमिल कर अपना अस्तित्व नहीं खोता। तीसरा सोपान है भक्तियोग का, परमात्मा की भगवान् के रूप में उपासना और खोज। यहाँ भक्ति पर जोर है पर ज्ञान का गौण

स्थान नहीं है, यहाँ केवल ज्ञान उन्नत होता है। कर्म और ज्ञान का विविध मार्ग यहाँ कर्म, ज्ञान और भक्ति का विविध मार्ग हो जाता है।

इस प्रकार श्री अरविन्द ने गीता को आध्यात्मिक तत्व प्रधान ग्रन्थ माना है। वह स्वयं योगी थे और योगसिद्धि के द्वारा ही उन्होंने उन गम्भीर तत्वों का दर्शन किया जो सामान्य भाष्यकार की पहुंच से बाहर हैं। श्री अरविन्द के गीता सम्बन्धी विचार स्वानुभूति जन्य हैं। श्री अरविन्द ने, अन्य भाष्यकारों और टीकाकारों के समान गीता के प्रत्येक श्लोक की व्याख्या और टीका नहीं की है। लोकमान्य के "गीता रहस्य" के प्रारम्भ में ही श्री अरविन्द की सम्मति उद्धृत की गयी है। इसमें भी आपने गीता को "भारतीय आध्यात्मिकता का परिपक्व सुमधुर फल" बताते हुए कहा है—"मानवी श्रम, जीवन और कर्म की महिमा का उपदेश अपने अधिकार या कर्मों से देकर सच्चे अध्यात्म का सनातन सन्देश गीता दे रही है जो कि आधुनिक काल के ध्येयवाद के लिए आवश्यक है।"

●

३

महात्मा गांधी का अनासक्ति योग

महात्मा गांधी ने सन् १९२९ में "अनासक्ति योग" के नाम से गीता की टीका प्रकाशित की थी। १९४९ में उसका छठा संस्करण प्रकाशित हुआ। गांधी जी की यह पुस्तक लोकमान्य तिलक के "गीता रहस्य" और श्री अरविन्द के "गीता प्रबन्ध" के बाद निकली है। उसमें उन्होंने कुछ विशेष स्थापनाएं की हैं। जैसे—

(१) गीता का सम्बन्ध इतिहास के साथ नहीं है। इसके प्रारम्भ में युद्ध का वर्णन आलंकारिक है। गांधी जी के अपने शब्दों में "इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरन्तर होते रहने वाले द्वन्द्व युद्ध का ही वर्णन है। मानुषी योद्धाओं की रचना हृदयगत युद्ध को रोचक बनाने के लिए गढ़ी हुई कल्पना है। ———महाभारत को पढ़ने के बाद यह विचार और भी दृढ़ हो गया। महाभारत ग्रन्थ को मैं आधुनिक अर्थ में इतिहास नहीं मानता।"

(२) "महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नहीं, (किन्तु) उसकी निरर्थकता सिद्ध की है। विजेता से रुदन कराया है, पश्चात्ताप कराया है और दुःख के सिवा और कुछ नहीं रहने दिया।"

(३) "इस महाग्रन्थ में गीता शिरोमणि रूप से विराजती है। उसका दूसरा अध्याय युद्ध व्यवहार सिखाने के बदले स्थितप्रज्ञ के लक्षण सिखाता है। स्थितप्रज्ञ का ऐहिक युद्ध के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता, यह बात उसके लक्षणों में से ही मुझे प्रतीत हुई है। साधारण पारिवारिक झगड़ों के औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करने के लिए गीता जैसी पुस्तक की रचना संभव नहीं है।"

(४) "गीता के कृष्ण मूर्तिमान् शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान हैं, परन्तु काल्पनिक हैं। यहाँ कृष्ण नाम के अवतारी पुरुष का निषेध नहीं है। केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं, सम्पूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है।"

गांधी जी की ये चारों मान्यताएं पूर्ववर्ती भाष्यकारों—विशेषतः लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द—की स्थापनाओं से एकदम विपरीत हैं। श्री शंकर और मध्ययुग के अन्य आचार्यों के भाष्यों को छोड़िए। इस नवीन युग में भी जिन्होंने गीता की व्याख्याएँ और टिप्पणियाँ लिखी हैं, उनके विचार सरणी से भी गांधी जी के

विचार सर्वथा भिन्न हैं। गीता को और उसके साथ सम्बद्ध महाभारत की ऐतिहासिकता को ही लें। गांधी जी का यह विचार पश्चिम से प्रभावित प्रतीत होता है। भारत के इतिहास का बड़ा अंश, उसकी परम्पराएँ, उसका लोक जीवन, नगरों और तीर्थों के नाम, उनके साथ सम्बद्ध कथाएँ तथा जनता की युगों से चली आ रही भावनाएँ सब पर पानी फिर जाएगा अगर गांधी जी की यह बात मान ली जाए। पर हम यहाँ इस पर अधिक विचार नहीं करना चाहते। गांधी जी गीता को आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं। आप कहते हैं "गीता हमारे लिए आध्यात्मिक निदान ग्रन्थ है। उसके अनुसार आचरण में निष्फलता रोज आती है पर यह निष्फलता हमारा प्रयत्न रहते हुए है। इस निष्फलता में सफलता की फूटती हुई किरणों की झलक दिखाई देती है।" श्री अरविन्द भी गीता को आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं जबकि लोकमान्य की दृष्टि में वह कर्मयोग शास्त्र है। पर श्री अरविन्द महाभारत के युद्ध को यथार्थ ही नहीं मानते किन्तु युद्ध की आवश्यकता को भी स्वीकार करते हैं। गांधी जी की मान्यता है कि महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नहीं किन्तु निरर्थकता सिद्ध की है और विजेता से रुदन, पश्चाताप तथा दुःख प्रकट कराया है। महाभारत में लिखित घटनाओं से इस स्थापना की पुष्टि नहीं होती।

गीता में "युद्ध" शब्द कई बार आया है और जितनी बार भी आया है उसमें यह कहा गया है कि "हे अर्जुन ! तू युद्ध कर" पर यह गीता में कहीं भी नहीं कहा गया कि "तू युद्ध मत कर।" गीता में "युद्ध" शब्द निम्न स्थलों पर आया है और गांधी जी ने "अनासक्ति योग" में जो उसके जो अर्थ किये हैं, वे भी हम प्रत्येक श्लोक व वाक्य के साथ नीचे उद्धृत करते हैं—

अन्ये च बहवः शूराः मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ १।९

अर्थ—दूसरे भी बहुतेरे नाना प्रकार के शस्त्रों से युद्ध करने वाले शूरवीर हैं जो मेरे लिए प्राण देने वाले हैं। ये सब युद्ध में कुशल हैं।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे॥ १।२२

अर्थ—जिससे युद्ध की कामना से खड़े हुए लोगों को मैं देखूँ और जानूँ कि इस रण संग्राम में मुझे किसके साथ लड़ना है।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥ १।२३

अर्थ—दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में प्रिय करने की इच्छा वाले जो योद्धा इकट्ठे हुए हैं, उन्हें मैं देखूँ तो सही।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥

अर्थ—हे राजन् ! गुडाकेश अर्जुन हृषीकेश गोविंद से ऐसा कहकर "नहीं लडूंगा" कहते हुए चुप हो गये।

तस्मात् युद्धस्व भारत। २।१८

अर्थ—इससे हे भारत तू युद्ध कर।

धर्म्याद्धि युद्धात् श्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥ २।३१

अर्थ—धर्म युद्ध की अपेक्षा क्षत्रिय के लिए और कुछ अधिक श्रेयस्कर नहीं हो सकता।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २।३२

अर्थ—ऐसा युद्ध तो भाग्यशाली क्षत्रियों को ही मिलता है।

अथ चेत्त्विममं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ २।३३

अर्थ—यदि तू यह धर्म प्राप्त युद्ध नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खो कर पाप को प्राप्त होगा।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय: युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ २।३७

अर्थ—अतः हे कौन्तेय ! लड़ने का निश्चय कर तू खड़ा हो।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ २।३८

अर्थ—इस प्रकार तू युद्ध के लिए तैयार हो, ऐसा करने से तुझे पाप नहीं लगेगा।

युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३।३०

अर्थ—राग रहित होकर तू युद्ध कर।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥ ८।७

अर्थ—इसलिए सदा मुझे स्मरण कर और जूझता रह।

तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्व,
जित्वा शत्रुन्भुङ्क्ष्वराज्यं समृद्धम्।
मयैवेते निहिताः पूर्वमेव,
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ११।३३

अर्थ—इसलिए तू उठ खड़ा हो, कीर्ति प्राप्त कर, शत्रु को जीता कर धनधान्य से भरा हुआ राज्य भोग। इन्हें मैंने पहले से ही मार रखा है। सत्यसाचिनसाची ! तू केवल रूप बन।

मया हतांस्त्वं जहि माव्यथिष्ठा।
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ११।३४

अर्थ—उन्हें तू मार, डर मत, लड़। शत्रु को तू रण में जीतने को है।

ऊपर हमने समस्त गीता में से ऐसे १४ श्लोक व श्लोकांश और साथ में गांधी जी के अर्थ उनकी पुस्तक "अनासक्ति" में से उद्धृत किये हैं जिनमें स्पष्ट रूप से युद्ध करने का आदेश है। गांधी जी ने इन सब श्लोकों में आये हुए "युद्ध" शब्द का अर्थ—युद्ध अर्थात् लड़ाई ही किया है। यदि गांधी जी यह समझते थे कि गीता में कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में प्रेरित करने की अपेक्षा उससे विरत करने का उपदेश दिया है तब उन्हें चाहिए था कि इन सब श्लोकों की ठीक संगति लगाते और "युद्ध" शब्द की स्पष्ट व्याख्या करते। केवल यह कह देने से कि गीता में भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरंतर होते रहने वाले द्वन्द्व युद्ध का ही वर्णन है, मनुषी योद्धाओं की रचना हृदयगत युद्ध को रोचक बनाने के लिए गढ़ी हुई कल्पना है"—(अनासक्ति योग ६.६)—पूरा संतोष नहीं हो सकता। समग्र गीता का पाठ करने के बाद एक सामान्य पाठक के हृदय में यह शंका पैदा होती है कि जब अर्जुन ने दोनों सेनाओं के बीच अपना रथ खड़ा कर और दोनों ओर शस्त्र सज्जित सेनाओं को देखकर मोह ग्रस्त हो युद्ध करने से इन्कार कर दिया था और अपने हाथ से गांडीव धनुष को नीचे रख दिया था तब भगवान कृष्ण ने उसे उपदेश दिया। इतना विस्तृत, गंभीर और जीवन में क्रान्ति ला देने वाले उपदेश के बाद भी कृष्ण पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ १८।७२

गांधी के शब्दों मे इसका अर्थ है —हे पार्थ यह तूने एकाग्र चित्त से सुना ? हे धनंजय ! इस अज्ञान के कारण जो मोह तुझे हुआ था वह क्या नष्ट हो गया।

श्री कृष्ण के इस प्रश्न का उत्तर अर्जुन इस प्रकार देता है—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत संदेह : करिष्ये वचनंतव ।। १८।७३

गांधी जी का अर्थ—हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नाश हो गया है। मुझे समझ आ गयी है। शंका का समाधान हो जाने से मैं स्वस्थ हो गया हूँ। आपका कहा करूँगा।

अर्जुन को क्या बात समझ मे आ गयी ? दूसरे अध्याय के सातवें श्लोक में अर्जुन कहता है कि "धर्म संमूढ़ चेता" अपना धर्म अथवा कर्तव्य समझने मे मेरा मन असमर्थ हो गया है। अन्त में कहता है— मैं आपके वचन के अनुसार करूँगा—स्पष्ट है मोह दूर हो गया, अब युद्ध करूँगा।

श्री अरविन्द अपने "गीता-प्रबन्ध" के पृष्ठ ५३-५७ पर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन को प्राप्त होने वाली स्थिति को "भागवत स्थिति" नाम देते हुए कहते हैं—

"गीता मे भगवान गुरु अपने ऐसे शिष्य को अपनी भागवत शिक्षा प्रदान कर रहे हैं·········कारण कर्म तो करना ही होगा, जगत को अपने काल चक्र पूरे करने ही होंगे और मानवशरीर आत्मा का यह काम नही कि वह जिस कर्म को करने के लिए यहाँ आया है, उसे अपने नियत कर्म की ओर अज्ञानवश अपनी पीठ फेर दे। गीता की शिक्षा का संपूर्ण क्रम उसकी व्यापक से व्यापक परिक्रमा में भी इन्ही तीन उद्देश्यों के लक्ष्य से ही बँधा और उसी लक्ष्य की ओर ले जाने वाला है।"

गांधी जी के 'अनासक्ति योग' को पढ़कर कई शंकाएँ होती हैं जिनका समाधान उनकी पुस्तक से नही होता। उनके प्रति श्रद्धा रखते हुए भी हमें यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि अपने अहिंसा के सिद्धान्त को गीता मे से निश्चित करने के लिए कई जगह अनावश्यक खेंचतान की गई है और साम्प्रदायिक टीका कारों की शैली से काम लिया गया है। "अनासक्ति योग" के पृष्ठ १४ पर लिखे निम्नलिखित वाक्य हमारे इस आशय को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं—

परन्तु यदि गीताकार को अहिंसा मान्य थी अथवा अनासक्ति में अहिंसा अपने आप आ ही जाती है तो गीताकार ने भौतिक युद्ध को उदाहरण रूप मे ही क्यो लिया ? गीता युग में अहिंसा धर्म मानी जाने पर भी भौतिक युद्ध सर्व मान्य वस्तु होने के कारण गीताकार को ऐसे युद्ध का उदाहरण लेने में संकोच नही हुआ और न होना चाहिए था। गीता के प्रथम अध्याय में प्रथम श्लोक का प्रथम शब्द "धर्म" है और अंतिम १८वें अध्याय के अंतिम श्लोक का अन्तिम शब्द "नीति"। इस प्रकार गीता की सारी शिक्षा "धर्म और नीति" इन दो शब्दो में आबद्ध हैं। यह ठीक है कि शब्दो का अर्थ काल और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है पर गीता का अध्ययन करने से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि "धर्म" शब्द का अर्थ कर्तव्य पालन है। अर्जुन का धर्म अर्थात् कर्तव्य क्या था ? वह क्षत्रिय था और क्षत्रिय का धर्म गीता के १८वें अध्याय के श्लोक ४३ में इस प्रकार कहा गया है।

शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रंकर्म स्वभावजम्।।

गांधी जी ने इसका अर्थ यूँ किया है—शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्ध मे पीठ न दिखाना, दान, शासन—क्षत्रिय के स्वभाव जन्य कर्म हैं।

धर्म और नीति के अंतर्गत गीता में प्रतिपादित क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म युद्ध को दृष्टि में रखते हुए

गांधी जी की उपर्युक्त स्थापना के साथ उसकी कहाँ तक संगति बैठ सकती है—यह स्पष्ट नहीं होता। इसीलिए हमें गांधी जी के कथन में खींचतान दीख पड़ती है।

इतने अंश में असहमति होने पर भी हमें गांधी जी के "अनासक्ति योग" में कुछ तत्व बड़े अद्भुत और चमत्कारिक मिलते हैं। उनसे पहले भाष्यकर्ताओं ने उनकी उपेक्षा ही की है। मध्य युग के आचार्यों ने जो भाष्य किये हैं उनमें पारलौकिक सिद्धान्तों का ऐसा जगद्‌जाल रचा गया है कि पढ़कर बुद्धि तो चकरा जाती है पर परिणाम यही निकलता है कि गीता में ज्ञान का अगाध भंडार तो है पर वह सामान्यजन के व्यवहार की वस्तु नहीं है। लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द के भाष्य एक नयी शैली के अवश्य हैं और उनमें तर्क तथा युक्ति की अटकलबाजी से निकाल कर गीता को कर्मयोग प्रेरक सिद्ध किया गया है पर उन के ग्रन्थ इतने वृहतकाय है कि सामान्य पाठक के लिए सारे पृष्ठों को धैर्य पूर्वक पढ़ना और फिर ठीक निष्कर्ष निकालना दुःसाध्य हो जाता है। गांधी जी की गीता व्याख्या इसके सर्वथा विपरीत है। उन्होंने गीता को सर्वथा व्यवहार योग्य माना है अर्थात् सामान्य जन भी इस प्रकार आचरण कर सकता है। "अनासक्ति योग" के पृष्ठ १४ पर आप लिखते हैं—

"फलासक्ति के ऐसे कटु परिणामों से गीताकार ने अनासक्ति का अर्थात् कर्म फल त्याग का सिद्धान्त निकाला और संसार के सामने अत्यन्त आकर्षक भाषा में रखा। साधारणतः तो यह माना जाता है कि धर्म और अर्थ विरोधी वस्तु हैं।·········गीताकार ने इस भ्रम को दूर किया है। उसने मोक्ष और व्यवहार के बीच ऐसा भेद नहीं रखा है वरन व्यवहार में धर्म को उतारा है। जो धर्म व्यवहार में न लाया जा सके वह धर्म नहीं है, मेरी समझ में यह बात गीता में है। मतलब गीता के अनुसार जो कर्म ऐसे हैं कि आसक्ति के बिना न हो सकें वे सभी त्याज्य हैं। ऐसा सुवर्ण नियम मनुष्य को अनेक धर्म संकटों से बचाता है। इस मत के अनुसार खून झूठ, व्यभिचार इत्यादि कर्म अपने आप त्याज्य हो जाते हैं। मानव जीवन सरल बन जाता है और सरलता से शान्ति उत्पन्न होती है।

इस विचार श्रेणी के अनुसार मुझे ऐसा जान पड़ता है कि गीता की शिक्षा को व्यवहार में लाने वाले को अपने आप सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है।"

गांधी जी गीता को कर्म योग प्रेरक मानते हुए आत्म दर्शन को गीता का लक्ष्य बताते हैं और कर्म फल त्याग को इसका एकमात्र उपाय बताते हैं। इस विषय में लोकमान्य तिलक के साथ आपके विचारों की समता है। "अनासक्ति योग" के पृष्ठ १३ पर आप कहते हैं :—

"परन्तु एक ओर से कर्म मात्र बाध्य रूप है, यह निर्विवाद है। दूसरी ओर से देह इच्छा-अनिच्छा से भी कर्म करता रहता है। शारीरिक या मानसिक सभी चेष्टाएँ कर्म हैं। तब कर्म करते हुए भी मनुष्य बंधनमुक्त कैसे रहे? जहाँ तक मुझे मालूम है, इस समस्या को गीता ने जिस तरह हल किया है वैसे दूसरे किसी भी धर्म ग्रन्थ ने नहीं किया है। गीता का कहना है "फलासक्ति छोड़ो और कर्म करो।" "आशा रहित होकर कर्म करो।" यह गीता की ध्वनि है जो भुलाई नहीं जा सकती। जो कर्म छोड़ता है वह गिरता है। कर्म करते हुए जो उसका फल छोड़ता है वह चढ़ता है। फल त्याग का यह अर्थ नहीं है कि परिणाम के सम्बन्ध में लापरवाही रहे। परिणाम और साधारण विचार और उसका ज्ञान अत्यावश्यक है। इतना होने के बाद जो मनुष्य परिणाम की इच्छा किये बिना साधना में तन्मय रहता है वह फल त्यागी है।···फल त्याग से मतलब है फल के सम्बन्ध में आसक्ति का अभाव।"

गांधी जी ने इस निष्काम कर्म के साथ ज्ञान और भक्ति का भी अच्छा समन्वय किया है। पृष्ठ ११ पर आप लिखते हैं—

"पर निष्कामता, कर्म फल त्याग करने भर से नहीं हो जाती। यह केवल बुद्धि का प्रयोग नहीं है।

यह हृदय मंथन से ही उत्पन्न होता है। यह त्याग शक्ति पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए। एक प्रकार का ज्ञान तो बहुतेरे पंडित पाते हैं। वेदादि उन्हें कंठ होते हैं। परन्तु उनमें से अधिकांश भोगादि में लगे-लिपटे रहते हैं। ज्ञान का अतिरेक शुष्क पांडित्य के रूप में न हो जाए, इस ख्याल से गीताकार ने ज्ञान के साथ भक्ति को मिलाया और उसे प्रथम स्थान दिया। बिना भक्ति का ज्ञान हानिकर है। इसलिए कहा गया है—"भक्ति करो तो ज्ञान मिल ही जाएगा। पर भक्ति तो "सिर का सौदा" है। इसलिए गीताकार ने भक्त के लक्षण स्थित प्रज्ञ के से बतलाये हैं। तात्पर्य, गीता की भक्ति बाह्य चारिता नहीं, अंधश्रद्धा नहीं है।···इसमें से हम देखते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना, भक्त होना ही आत्म दर्शन है। आत्म-दर्शन उससे भिन्न वस्तु नहीं है।"

गांधी जी के "अनासक्ति योग" की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गांधी जी ने इसमें गीता के सम्बन्ध में जो लिखा है वह गांधी जी के अपने शब्दों में "गीता की शिक्षा को पूर्ण रूप से अमल में लाने का ४० वर्ष तक सतत प्रयत्न करने के बाद" लिखा गया है। इसलिए जब आप कहते हैं कि—

"गीता सूत्र ग्रन्थ नहीं है। गीता एक महान धर्म काव्य है। उसमें जितना गहरा उतरिए उतने ही उसमें से नये और सुन्दर अर्थ लीजिए। गीता जन समाज के लिए है, उसमें एक ही बात को अनेक प्रकार से कहा गया है।"

"गीता में ज्ञान की महिमा सुरक्षित है, तथापि गीता बुद्धिगम्य नहीं, वह हृदयगम्य है।" (पृ० १६) सचमुच गांधी जी के ये शब्द ४० वर्ष की अनुभूति और गहरे आत्म निरीक्षण के आधार पर है। "अनासक्ति योग" की यह अनुभूति और अनिर्वचनीय विशेषता योगीराज श्री अरविन्द की अनुभूति के समान है।

•

४

मोहता जी का व्यावहारिक दर्शन

पुराणों में एक कथा है। पतित पावनी गंगा पहले स्वर्ग में थी। वहां से गिर कर वह शंकर की जटाओं में समा गई। बहुत दिन तक वहीं पड़ी रही। वहां से हिमालय के वनों में फंसी रही। राजा भगीरथ हिमालय से उसे भूतल पर लाये जिससे असंख्य प्राणियों का कल्याण हुआ। गीता की भी दशा गंगा के समान ही है। बड़े-बड़े आचार्यों, पण्डितों, भाष्यकारों और टीकाकारों के चक्रव्यूह में फंसी गीता की ज्ञान गंगा सामान्य जनों के लिए दुर्लभ थी। हिमालय स्थित शंकर भगवान् की जटाओं में उलझी गंगा सदृश गीता की मधुर हारिणी अमृत धारा अल्पज्ञानियों के लिए बड़ी दुरूह थी। वे उसको पूजा के योग्य अवश्य मानते थे; पर उनके लिए वह दैनिक व्यवहार का दर्शन नहीं बन सकी थी। शंकर के जटा जूट में से पृथ्वी पर गंगा को लाने का श्रेय जिस प्रकार राजा भगीरथ को है उसी प्रकार गीता को आम लोगों तक पहुंचाने और उसे दैनिक व्यवहार के लिए दर्पण बनाने का श्रेय जिन मूर्धन्य व्यक्तियों को दिया जा सकता है उनमें लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी के अतिरिक्त मनस्वी रामगोपाल जी मोहता का विशेष स्थान है। आपने कई वर्षों तक गीता का गम्भीर अनुशीलन करके सरल और सीधी भाषा में बड़ा उपयोगी, सुगम और व्यवहार योग्य साहित्य दिया है। आपकी चिन्तन शैली एक दम नवीन दिशा की सूचक और अद्भुत सूझबूझ वाली है। आपका दृष्टिकोण सर्वथा भगवान् कृष्ण के सिद्धान्त के अनुकूल है। भगवान् कहते हैं—

मांहि ध्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥ ६।३२

मोहता जी ने अपनी पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" के २४० पृष्ठ पर इस श्लोक का जो अर्थ किया है वह सब प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ते हुए सर्वथा सहजगम्य है। आप लिखते हैं, "हे पार्थ ! जो पापयोनि हैं अर्थात् जो पूर्व के पापों के कारण तामस स्वभाव वाली (चोर, ठग, डाकू आदि जरायम पेशा) जातियों में जन्म लेने वाले लोग हैं, वे, और स्त्रियां, वैश्य तथा शूद्र, अर्थात् जिनमें रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता होती है वे मेरा आश्रय करके, अर्थात् उपरोक्त अनन्य भाव से मेरी उपासना करने से परम गति को पाते हैं।" पर टीकाकारों ने भगवान् कृष्ण के इस आदेश का सर्वथा उल्लंघन करते हुए गीता को ऐसे परिधान में परिवेष्टित कर दिया कि स्त्री, वैश्य, शूद्र, पापयोनि तो क्या बेचारे बड़े उत्कृष्ट विद्वान् भी उसे समझने में असमर्थ हो गये थे। मोहता जी ने इन परम्पराओं के विरुद्ध आधुनिक दृष्टि से गीता को देखा। अपनी पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" के पृष्ठ २४ का निम्नलिखित संदर्भ मोहता जी की विचार सरणी का पूरी तरह परिचायक है—

"श्रीमद्भागवत् गीता को उपनिषदों का सार माना जाता है। वह उपनिषदों का सार ही नहीं है किन्तु उसके गहन और सूक्ष्म सिद्धान्तों का जीवन के व्यवहारों मे उपयोग करने का विधान भी है। ज्ञान और व्यवहार के मेल का खुलासा सर्वत्र सरल और सुगम रीति से गीता में किया गया है।...गीता की यह विशेषता है कि आत्म ज्ञान की सात्त्विकी बुद्धि से कर्त्तव्य का निर्णय करके, जगत् के व्यवहार किस तरह करने चाहिए कि जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों, अर्थात् शान्ति, पुष्टि और तुष्टि की निश्चयपूर्वक प्राप्ति हो सके, इस ज्ञान-कर्म समुच्चय का निरूपण इसमें बहुत ही स्पष्ट रूप से किया गया है, सो भी केवल सात सौ श्लोकों में और बहुत ही सरलतापूर्वक। यदि गीता मे केवल एकात्म ज्ञान के सिद्धान्त (थ्यूरी) मात्र ही का उपदेश होता तो उसकी कोई विशेषता नहीं होती, और न उसकी सार्वजनिकता और सर्वोपयोगिता ही होती। आत्मज्ञान के तो बहुत से ग्रन्थ हैं परन्तु जिस ज्ञान के अनुकूल व्यवहार न हो सके, अथवा जिसका व्यवहार में कुछ भी उपयोग न हो सके, वह साधारण लोगोंके किस काम का ! वह शुष्क ज्ञान तो लौकिक व्यवहार से विरक्त सन्यासियों ही के उपयोग में आ सकता है परन्तु गीता मे शुष्क ज्ञान नहीं है। गीता तो व्यावहारिक वेदान्त का एक अनुपम ग्रन्थ है जिसकी उपयोगिता किसी व्यक्ति विशेष तक परिमित नहीं है। वह सार्वभौम और सार्वजनिक है। उसका उपयोग छोटे से छोटे और बड़े से बड़े लोग—जाति, वर्ण, आश्रम, धर्म, समुदाय, देश और काल के भेद बिना—सदा सर्वदा कर सकते हैं।"

गीता एक वेदान्त ग्रन्थ है परन्तु वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त धारणाएँ फैली हुई हैं। यह समझ लिया गया है कि "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" ही वेदान्त है और वह मनुष्य को हाथ पर हाथ रखकर बैठने की शिक्षा देता है। इसलिए गीता भी संसार छोड़ कर सन्यासी होने का उपदेश देती है। यह सर्वथा मिथ्या धारणा है। "वेदान्त" शब्द पर जरा गम्भीर विचार करने से यह गुत्थी सुलझ जाती है। "वेदान्त" में दो शब्द हैं, वेद और अन्त। 'वेद' शब्द कई धातुओं से बनता है, अर्थात् विद् ज्ञाने, विद्-सत्तायाम्, विद्लृ-लाभे। जिससे ज्ञान की प्राप्ति हो, जिससे किसी का अस्तित्व बना रहे और जिससे सुख, आनन्द, उन्नति का लाभ हो, वही वेद है। इस प्रकार के भाव का जहां अन्त हो, अर्थात् सीमा हो, उच्चतम स्थिति हो, उसे ही वेदान्त कहा जाता है। इसमें आलस्य और जगत् से भाग जाने की भला गुंजायश कहां ? श्री मोहता जी ने 'वेदान्त' शब्द की बड़ी मौलिक और व्यावहारिक व्याख्या की है। "गीता का व्यवहार दर्शन" पुस्तक के पृष्ठ १० पर आप कहते हैं :—

'वेदान्त' शब्द का अर्थ है—जानने का अन्त अथवा ज्ञान की पराकाष्ठा, जानने का अन्त अथवा ज्ञान की पराकाष्ठा प्रत्येक व्यक्ति के अपने आप में होती है। जब तक अपने से भिन्न कोई दूसरी वस्तु रहती है तब तक

जानने का अन्त नहीं होता क्योंकि जब तक जानने वाला (ज्ञाता) और जानने की वस्तु (ज्ञेय) का अलग-अलग अस्तित्व रहता है तब तक एक दूसरे का जानना अथवा ज्ञान बना रहता है। परन्तु जब जानने वाले (ज्ञाता) और जानने की वस्तु (ज्ञेय) की पृथक्ता मिटकर एकता हो जाती है, अर्थात ज्ञाता और ज्ञेय का, सबकी एकता रूप अपने आप (सेल्फ) में लय हो जाता है, तब जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता, केवल "अपना आप" ही शेष रहता है, जो जानने (ज्ञान) का विषय नहीं है, क्योंकि जब अपने से भिन्न कोई दूसरा हो तभी जानने की क्रिया हो सकती है। अतः जानने का अन्त 'अपने आप" (सेल्फ) में होता है।"

तो क्या "अपने आप" (सेल्फ) को जान लेने से जगत मिथ्या हो जाता है ? जब 'अपने आप" को जान लिया तो फिर क्या संसार से भाग जाएँ और हाथ पर हाथ धर कर भाग्यवादी हो जाएँ ? इसका उत्तर श्री मोहता जी ने अपनी इसी पुस्तक के पृष्ठ ६० पर बहुत युक्तियुक्त ढंग से दिया है। आप कहते हैं :—

"वास्तव में न तो वेदान्त जगत् के अस्तित्व को मिथ्या कहता है और न उसके व्यवहार त्यागने ही का प्रतिपादन करता है। इसके विपरीत वेदान्त तो यह कहता है कि जगत् का अस्तित्व बिलकुल सच्चा है क्योंकि असत् वस्तु का तो भाव ही नहीं होता (गीता अ० २ श्लोक १६) परन्तु जगत् का अस्तित्व तो सबको प्रत्यक्ष प्रतीत होता है ; एवं यह सबको अच्छा और प्यारा भी लगता है, इसलिए अस्ति,—भाति प्रियरूप से अर्थात् एकत्व भाव से यह निस्सन्देह सत्य है। वास्तव में वेदान्त इस प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले और प्यारे लगने वाले जगत् के अस्तित्व को सच्चा मानकर ही सन्तोष नहीं करता किन्तु वह इसको अस्ति-भाति प्रिय-स्वरूप, एक, अविनाशी, नित्य और सत्य आत्मा (सबके अपने आप) से अभिन्न मानता है; और साथ ही साथ इसमें जो नाना भाँति के अनन्त भेद और विचित्रताएँ दृष्टि-गोचर होती रहती हैं उनको यह उसी एक, सत्-चित् आनन्द रूप आत्मा के अनेक परिवर्तनशील नाम और रूपों का कल्पित बनाव सिद्ध करता है। वेदान्त के अनुसार "जगन्मिथ्या" का तात्पर्य इतना ही है कि सबके अपने आप, सबके आत्मा परमात्मा से भिन्न जगत् का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। दूसरे शब्दों में जगत्-आत्मा अथवा परमात्मा ही का विकृत भाव है, अतः वस्तुतः यह परमात्मा स्वरूप ही है। यह जैसा हमारी स्थूल इन्द्रियों को भिन्न-भिन्न प्रकार का—अनन्त उपाधियों एवं द्वन्द्वों युक्त—प्रतीत होता है, वास्तव में वैसा नहीं है।"

वेदान्त की यह कितनी व्यवहार युक्त, तर्क पूर्ण और वर्तमान स्थिति के अनुकूल व्याख्या है। इस वेदान्त के सिद्धान्त को शुद्ध रूप में न समझने के कारण मध्ययुग के विचारकों ने मस्तिष्क की कितनी कलाबाजियाँ की हैं। मोहता जी की व्यावहारिक दृष्टि से गीता को पढ़ने पर मानव की कर्म शक्ति कितनी बढ़ जाएगी, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्त में विश्व के लिए कितना उपयोगी वह बन जाएगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

गीता में "त्रिगुणातीत" शब्द का प्रयोग हुआ है और सत्त्व, रज और तम का तो कई बार प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का ठीक अर्थ न समझने से गीता का तत्त्व अथवा मर्म कभी स्पष्ट नहीं हो सकता। मोहता जी ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३६ पर इन तीनों शब्दों की बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक व्याख्या की है। आप कहते हैं—

"सत्त्वगुण की प्रधानता से (यथार्थ) ज्ञान होता है (गीता १४।११) रजोगुण की प्रधानता से विविध प्रकार के व्यवहार होते हैं (गीता १४।१२) और तमोगुण की प्रधानता से अयथार्थ ज्ञान अर्थात् अज्ञान होता है (गीता १४।१३)। अतः तमोगुण अविद्यारूप है और जिन जगत् तथा जिस शरीर में स्थित होकर ज्ञान—अज्ञान का विचार करते हैं यह इन तीनों गुणों से तारतम्य का बनाव है, अतः शरीर के और जगत् के रहते इन तीनों गुणों का तारतम्य बना रहना अनिवार्य है (गीता १८।४०) कभी सतोगुण की कभी रजोगुण की और कभी तमोगुण की प्रधानता होती रहती है, (गीता १४।१०)। किसी एक का भी सर्वथा अभाव कभी हो नहीं सकता।

इससे स्पष्ट है कि इनका आपस में विरोध नही है किन्तु वे एक दूसरे के सहायक है। आत्मज्ञानी के शरीर में यद्यपि तीनों गुण रहते हैं परन्तु सत्वगुण की प्रधानता रहती है। अतः वह तीनों गुणों का नियन्ता अर्थात् स्वामी होता है। वह यथार्थ ज्ञान द्वारा सर्वभूतात्मैक्य भाव से जगत् के व्यवहार करता है और स्वतंत्रता पूर्वक तीनों गुणों का यथा योग्य उपयोग करता हुआ भी उसमे आसक्ति नही रखता। रजोगुण-तमोगुण उसको कुछ भी बाधा नही देते और न वह उनको त्याग देने की इच्छा करता है। (गीता १४।२२-२३)।"

प्रायः भाष्यकारों ने "त्रिगुणातीत" का अर्थ यह किया है कि जो सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों को लाघ जाए। यह स्थिति कहने मे भले की अच्छी लगे किन्तु यह सर्वथा अव्यवहार्य है। मोहता जी ने इस सम्बन्ध में सर्वथा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है, अर्थात् इस शरीर में जीवात्मा के रहते इन तीनों गुणों से एकान्त छुटकारा पा जाना असम्भव है। इनमें समन्वय रखना और रज तथा तम को सत के आधीन रखना, प्रधानता सतोगुण की और शेष दो की अल्प मात्रा रखना और उन मे आसक्ति न रखना—यही त्रिगुणातीत का स्वरूप है। क्रमशः प्रयत्न और अभ्यास करने से यह स्थिति लानी सम्भव है जिसका संकेत सार्थक ढंग से मोहताजी ने किया है। इस प्रकार गीता के एक इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने से वह कितना सहजगम्य हो जाता है।

गीता में श्रीकृष्ण ने आत्मौपम्य भाव अथवा सर्वभूतात्मैक्य भाव का वर्णन किया है। गीता के दूसरे अध्याय के अन्त मे "स्थित प्रज्ञ", बारहवें अध्याय मे "भक्त" चौदहवें अध्याय में "गुणातीत" और सोलहवें अध्याय मे "दैवी-सम्पत्ति"—यह सब आत्मौपम्य के पोषक शब्द ही हैं। गीता की इस भावना का स्रोत वेद और उपनिषदो में है। ऋग्वेद का मन्त्र है—

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि मा समीक्षन्ताम्"

मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियो को देखूं और सब प्राणी मित्र की दृष्टि से मुझे देखने वाले हों।

यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में—जिसे ईश उपनिषद् भी कहा जाता है—निम्नलिखित दो मन्त्र ६ और ७ इस सर्वभूतात्मैक्य भाव के बहुत सुन्दर द्योतक हैं :—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

जो सब भूतों को अपनी आत्मा में ही देखता है और सब भूतों में अपनी आत्मा को, वह किसी से घृणा नही करता।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकात्वमनुपश्यतः॥

अर्थ—जिस स्थिति में आत्मज्ञानी को समस्त भूत प्राणी अर्थात् सारा जगत अपना आप ही होगया, उस स्थिति मे एकता देखने वाले आत्मज्ञानी के लिए मोह और शोक कहां रहता है? गीता के अध्याय ६ श्लोक २६ से ३२ और अध्याय १३ श्लोक २२ तथा २७ से ३४ तक इसी आत्मौपम्य भाव को पुष्ट किया गया है।

पर व्यवहार में यह आत्मौपम्य की भावना कैसे आये? सत्व, रज और तम का यह गुणत्रय मानव अपने दैनिक कार्यों मे किस प्रकार पुण्यात्मा और पापी दोनो को एक दृष्टि से देखे? श्री मोहता जी ने अपनी पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" के पृष्ठ ८२-८३ पर इस सिद्धान्त की भी बड़ी व्यावहारिक व्याख्या की है। आप कहते है :—

"साधारणतया दूसरों से पृथक् व्यक्तित्व के भावों के कारण ही आसुरी सम्पत्ति के अथवा राजस-

तामस आचरण बनते हैं और एकता के साम्य भाव से दैवी सम्पत्ति के अथवा सात्विक आचरण बनते हैं। अतः जितने ही अधिक पृथकता के भाव बढ़े हुए होते हैं उतने ही अधिक आसुरी अथवा राजस-तामस व्यवहार होते हैं, और जितना ही अधिक एकता या साम्य भाव बढ़ा हुआ होता है, उतने ही अधिक सात्विक व्यवहार होते हैं। इसलिए यह बात ध्यान में रखने की है कि व्यवहार अथवा कर्म तो जड़ होने के कारण उनमें स्वयं अच्छापन या बुरापन'''कुछ भी नहीं होता किन्तु कर्मों में अच्छापन या बुरापन कर्ता के भाव से उत्पन्न होता है। यदि दैवी सम्पत्ति के सात्विक आचरणों में पृथक् व्यक्तित्व के अहंकार और दूसरों से पृथक् व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के भाव आ जाएँ, तो उनका दुरुपयोग होकर वे ही राजस-तामस आसुरी सम्पत्ति में परिणत हो जाते हैं। दूसरी तरफ यदि आसुरी सम्पत्ति के राजस-तामस आचरण, समष्टिभाव और सब के हित के उद्देश्य से किये जाएं तो उनका सदुपयोग होकर वे ही दैवी सम्पत्ति के सात्विक आचरणों में परिणत हो जाते हैं। अनेक अवसर ऐसे आते हैं, जब कि लोक संग्रह के लिए काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, मान आदि आसुरी भावों के आचरण आवश्यक एवं लोकहितकर होते है, उस परिस्थिति में वे काम-क्रोध आदि के आचरण आसुरी भाव नहीं रहते। इसी तरह अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब कि सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा आदि दैवी सम्पत्ति के आचरण, लोक संग्रह के विरुद्ध, अर्थात्, लोक पीड़ा के हेतु हो जाते हैं, ऐसी दशा में ये दैवी सम्पत्ति के आचरण नहीं रहते किन्तु आसुरी सम्पत्ति में परिणत हो जाते हैं-'''दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति सापेक्ष है, एक के होने के लिए दूसरी का होना अनिवार्य है। इसलिए सर्वभूतात्मैक्य-समत्व बुद्धि से—निर्णय करके ही इनका यथा योग्य आचरण करने का विधान है। कर्मों की अपेक्षा बुद्धि की श्रेष्ठता गीता में इसलिए विशेष रूप से कही गयी है।"

सर्वभूतात्मैक्य भाव के सम्बन्ध में मोहता जी का उपर्युक्त दृष्टिकोण बड़ा ही व्यावहारिक है और सामान्य जन के लिए सुलभ है। हम समझते हैं कि मोहता जी का यह दृष्टिकोण, कई अंशों में, लोक मान्य तिलक के दृष्टिकोण से भी आगे बढ़ गया है।

गीता में भगवान् ने, प्रायः उत्तम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग किया है, जैसे "अहं, माम्, मया, मे, मत्, मम, मयि" इत्यादि। यह भी कहा है—

सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८।६६।

हे अर्जुन ! तू सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आ। मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूंगा, चिन्ता मत कर।

गीता के अन्तिम अध्याय के इस अंतिम श्लोकों में सबमें "माम्" और "अहं" पर ही जोर दिया गया है। इससे क्या कृष्ण जी की अहम्मन्यता प्रकट होती है ? नहीं। मोहता जी ने इसकी भी बड़ी सुन्दर व्यावहारिक व्याख्या की है। आप के शब्दों में इन सर्वनामों का प्रयोग "श्रीकृष्ण महाराज के विशेष व्यक्तित्व (व्यष्टिभाव) के लिए ही नहीं समझना चाहिए किन्तु ये सर्वनाम उनके व्यष्टि-समष्टि संयुक्तभाव, अर्थात्, सबके "अपने वास्तविक रूप (सेल्फ)" के लिए प्रयुक्त हुए समझना चाहिए। इसी तरह अर्जुन के लिए भिन्न-भिन्न नामों एवं विशेषणों युक्त जो सम्बोधन है उन्हें प्रत्येक व्यक्ति के व्यष्टि-भाव के लिए समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, गीता का उपदेश प्रत्येक मनुष्य (स्त्री पुरुष) मात्र के लिए, समष्टि आत्मा-परमात्मा का दिया हुआ समझना चाहिए।" (गीता का व्यवहार दर्शन पृष्ठ ७२)

इसका यह मतलब नहीं कि मोहता जी गांधी जी की तरह [illegible] अर्जुन को अथवा महाभारत को ऐतिहासिक नहीं मानते। अपनी [illegible] ८५ पर आप कह[illegible] ... युद्ध के [illegible] श्रीकृष्ण

ग्रौर ग्रर्जुन के होने का प्रमाण तो स्वयं गीता ही है'''बहुत से ग्रौर प्राचीन ग्रन्थों में भी इस विषय के प्रचुर प्रमाण भरे पड़े हैं तथा महाराज युधिष्ठिर का संवत् ग्रब तक प्रचलित हैं।"

गीता में "यज्ञ" "ग्रासक्ति" "निष्काम कर्म" "कर्मफल त्याग" ग्रादि शब्द बारबार ग्राते हैं। ग्रन्य भाष्यकारों के प्रचलित ग्रर्थों के विरुद्ध मोहता जी ने इनके भी सारगर्भित ग्रौर व्यवहारोपयोगी ग्रर्थ किये हैं। "यज्ञ" का ग्रर्थ, ग्रापके शब्दों में; इस प्रकार है:—

यज्ञ—संसारचक्र को ग्रर्थात् जगत के व्यवहार को यथावत् चलाने के लोक संग्रह के लिए ग्रपने-ग्रपने स्वाभाविक गुणों के ग्रनुसार चातुर्वर्ण्य विहित कर्म करने के विधान को गीता में "यज्ञ" कहा गया है। इस व्यापक "यज्ञ" में प्रत्येक व्यक्ति के (व्यष्टि) कर्मों को सबके (समष्टि) कर्मों में सम्मिलित करने, ग्रर्थात् सबके साथ सहयोग करने द्वारा, ग्रपनी-ग्रपनी व्यष्टि व्यावहारिक शक्तियों का—देवता-रूप से कथित-जगत् को धारण करने वाली समष्टि शक्तियों में योग देने की ग्राहुति देकर, संसारचक्र चलाने में सहायक होने का विधान किया गया। प्रत्येक व्यक्ति की व्यष्टि शक्तियों का सब की समष्टि शक्तियों में योग देना ही उन देवताग्रों का यजन ग्रर्थात् "यज्ञ" है। (पृष्ठ ७७)

ग्रनासक्ति—ममत्व की ग्रासक्ति का त्याग, ग्रथवा, ग्रनासक्ति का तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति-विशेष ग्रथवा पदार्थ-विशेष ही को ग्रपना मानकर उसके पृथक्ता के भाव में ममत्व की ग्रासक्ति रखना साम्य-भाव का बाधक है क्योंकि संसार के सभी पदार्थ एक ही ग्रात्मा के ग्रनेक रूप हैं, इसलिए किसी विशेष व्यक्ति ग्रथवा विशेष पदार्थ ही में ममत्व रखने के बदले सबके साथ ग्रनन्य भाव का प्रेम रखना चाहिए।" (पृष्ठ ७९)

निष्काम कर्म—इसका तात्पर्य यह है कि ग्रखिल विश्व में एकता सच्ची होने के कारण सबके स्वार्थ ग्रापस में मिले हुए हैं, ग्रत कोई भी व्यक्ति दूसरों के स्वार्थों की सर्वथा ग्रवहेलना ग्रथवा हानि करके ग्रपने पृथक् व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि नहीं कर सकता। दूसरों से पृथक् ग्रपनी व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि की कामना से कर्म करना मिथ्या व्यवहार है, ग्रतः ग्रपना स्वार्थ सबके स्वार्थों के ग्रन्तर्गत समझकर सबके हित के साथ ग्रपना भी हित-साधन करने के उद्देश्य से कर्म करना चाहिए। (पृष्ठ ७९)

कर्मफल त्याग—का भी यही तात्पर्य है कि जगत की एकता सच्ची होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव एक दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता, इसलिए कोई भी व्यक्ति ग्रपने कर्मों के फल के लाभ से दूसरों को सर्वथा वंचित रख कर केवल ग्रकेला ही उससे लाभ न उठाये, किन्तु दूसरों को लाभ पहुँचाने के साथ-साथ स्वयं भी ग्रपनी ग्रावश्यकताएँ पूरी करे। (पृष्ठ ७९)

निरहंकार—गीता के निरहंकार का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि संसार के व्यवहार करने में मनुष्य ग्रपने ग्रापके ग्रस्तित्व तथा ग्रात्माभिमान एवं ग्रपने दायित्व को सर्वथा भुलाकर, दूसरे किसी प्रत्यक्ष वा ग्रप्रत्यक्ष व्यक्ति ग्रथवा शक्ति पर निर्भर होकर स्वावलम्बन के बदले परावलम्बी बन जाए। (पृष्ठ ८०)

ग्रनासक्ति का भी यह तात्पर्य नहीं है कि किसी भी काम के करने में मन न लगाया जाए तथा उसका ग्रच्छी तरह सम्पादन करने एवं उसमें उन्नति करने के लिए विचार शक्ति का उपयोग न करके केवल मशीन की तरह, जड़ भाव से एवं ग्रसावधानी से काम किये जाएँ तथा उनके सुधारने-बिगाड़ने की कुछ भी परवाह न की जाए।" (पृष्ठ ८०)

निष्काम कर्म ग्रौर कर्मफल-त्याग का भी यह तात्पर्य नहीं है कि किसी उद्देश्य के बिना पागलों की तरह निष्प्रयोजन चेष्टाएँ की जाएँ ग्रथवा ग्रपनी इच्छा के बिना दूसरों की प्रेरणा से जबरदस्ती कर्म किये जाएँ, तथा इस विचार से कर्म किये जाएँ कि उनका फल कुछ भी न हो, ग्रथवा कर्मों का फल यदि उत्पन्न हो तो वह

ग्रहण न किया जाए। जिस तरह खेती करे तो अनिच्छा से करे, अन्न उत्पन्न करने के उद्देश्य से न करे सदा इस भाव से करे कि इससे कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा—केवल जमीन पर हल चलाना और बीज फेंकना मात्र ही कर्त्तव्य है और यदि उससे अन्न उत्पन्न हो जाए तो वह किसी के उपयोग में न आये और न स्वयं उसे खाकर भूख शान्त करे। ·····यदि कर्मों का फल ही न हो तो कर्म-विपाक का सिद्धान्त नष्ट हो जाए और कर्म करने में किसी की प्रवृत्ति ही न रहे। गीता में तो यज्ञ अर्थात् लोक संग्रह के उद्देश्य से कर्म करने का स्पष्ट आदेश है··· लोक संग्रह के उद्देश्य से किये हुए कर्मों के फल में किसी व्यक्ति विशेष की स्वार्थ-सिद्धि का मिथ्या भाव नहीं रहता किन्तु उनसे अपने-अपने कार्यक्षेत्र की सीमा में आने वाले सब व्यक्तियों के हित होने का सद्भाव रहता है, जिनमें स्वयं कर्त्ता भी सम्मिलित है। यही निष्काम कर्म तथा कर्मफल त्याग का रहस्य है। (पृष्ठ ८१)

त्याग, वैराग्य अथवा सन्यास का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि जगत् को वस्तुतः मिथ्या जानकर उससे घृणा करके अलग होने का प्रयत्न किया जाए तथा सब उद्यम छोड़-छाड़ कर निठल्ले हो बैठें। इस तरह के त्याग, वैराग्य एवं सन्यास को भगवान् ने अप्राकृतिक एवं अव्यावहारिक कहा है। ·····इसलिए भगवान् उक्त मिथ्या भाव ही को छुड़ाकर एकता का सच्चा भाव ग्रहण करने को कहते है। यही सच्चा त्याग, वैराग्य अथवा संन्यास है।

त्याग और ग्रहण दोनो सापेक्ष हैं। त्याग के लिए ग्रहण का भी साथ-साथ होना आवश्यक है। इसलिए गीता व्यष्टि-भाव का त्याग समष्टि भाव में कराती है, अर्थात् व्यष्टि-समष्टि का भेद मिट जाता है तब त्याग और ग्रहण के लिए कुछ शेष नहीं रहता। अतः जो कुछ करना है वह यही है कि व्यष्टि-भाव का झूठा अभिमान मिटाना है। फिर न व्यष्टि है, न समष्टि, जो कुछ है वह सब अपना आप ही है—जो न ग्रहण का विषय है, न त्याग का। (पृष्ठ ८२)

इस प्रकार मोहता जी ने गीता मे आये इन सब मूलभूत शब्दों के सम्बन्ध में एक बड़ी क्रान्तिकारी व्याख्या की है। इन शब्दों और व्याख्याओं के प्रकाश में गीता का जो स्वरूप सामने आता है वह बड़ा व्यावहारिक और ऐसा है कि जिस पर सामान्य जन भी चल सकता है। आप की "निष्काम कर्म," "कर्मफल त्याग" और "अनासक्ति" सम्बन्धी व्याख्याएँ बड़े मार्के की हैं और एकदम प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर सर्वथा नवीन और परिस्थितियों के अनुकूल मार्ग बताने वाली हैं। "गीता का व्यवहार दर्शन" पुस्तक में मोहताजी की भूमिका बड़ी सारपूर्ण, सार्थक और गीता की कई गुत्थियों को नये ढंग से सुलझाने वाली है। मोहता जी के इस प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी ही थोड़ी है। मोहता जी की इस पुस्तक में निम्नलिखित शब्द, सचमुच, गागर में सागर भर देते हैं।

"इस मे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि श्रीमद्भगवद् गीता में "व्यावहारिक वेदान्त" (प्रैक्टिकल फिलासफी) का ही प्रतिपादन है, न कि कोरे कल्पित सिद्धान्त (थ्योरी) अथवा अव्यावहारिक आदर्शवाद (इम्प्रैक्टिकल आइडियलिज्म) का, जैसा कि कई लोग अनुमान करते हैं।"

हम मोहता जी के शब्दों से पूर्ण सहमत है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि मोहता जी ने अपने इन संतुलित विचारों और गम्भीर चिन्तन तथा हृदयग्राही विचार सरणी से न केवल भारतीयों के किन्तु समूचे मानव समाज के सम्मुख एक ऐसा मार्ग निर्दिष्ट किया है जो व्यावहारिक रूप में अभ्युदय, उन्नति और चौमुखे विकास की ओर ले जाने वाला है। कई सदियों से गीता के तथा-कथित निवृत्ति मार्ग में पड़े रहकर जो भूली हुई और इसी कारण राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद भी दिमागी गुलामी के शिकार भारतीयों के लिए मोहता जी की यह व्याख्या संजीवनी बूटी है। पुरानी लकीरों की लकीर पीटने वालों के लिए मोहता जी का "गीता का व्यवहार दर्शन" एक प्रबल आह्वान है और दिमाग मे जोरदार तूफान पैदा करने वाला है। धार्मिक विकास के लिए भी इसमें भरपूर सामग्री है।

हमारा अभिमत

गीता की इन आधुनिक व्याख्याओं के इस विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक साधारण व्यक्ति के लिए मोहता जी की व्याख्या और दृष्टिकोण कुछ अधिक सरल, ग्राह्य और उपयोगी है। इससे भी अधिक बड़ी बात यह है कि मोहता जी ने किसी दृष्टि विशेष अथवा हेतु विशेष को सामने रखकर गीता का अध्ययन नहीं किया किन्तु उसको उन्होंने अपनी आन्तरिक प्रेरणा से उत्साहित होकर पढ़ना शुरू किया और जैसे-जैसे वे उसे पढ़ते गये वैसे-वैसे उसकी ग्रन्थियाँ उनके लिये लिए खुलती गयीं। इस प्रकार गीता को उसके स्वाभाविक रूप में देखने, समझने और उसकी व्याख्या करने का मोहता जी को सुअवसर प्राप्त हुआ। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि मोहता जी ने जब गीता का अध्ययन शुरू किया तब वे मुख्यतः व्यापार-व्यवसाय में लगे हुए एक प्रमुख कारोबारी व्यक्ति थे। उन्होंने दुनिया की वस्तुओं का मूल्यांकन उनके स्वाभाविक रूप में करने का निरन्तर धन्धा किया। व्यापारी अपनी तीखी दृष्टि और पैनी बुद्धि से वस्तुओं का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने का आदी हो जाता है। आश्चर्य नहीं कि मोहता जी अपनी इस दृष्टि, बुद्धि अथवा स्वभाव के कारण गीता का भी ठीक-ठीक मूल्यांकन करने में सफल हुए हैं और सर्वसाधारण के सम्मुख उन्होंने गीता के स्वाभाविक रूप को उपस्थित करने का भी श्रेय प्राप्त किया है। अन्य आधुनिक व्याख्याताओं का व्यक्तित्व मोहता जी के व्यक्तित्व से कहीं अधिक महान है। अपने प्रखर राजनीतिक जीवन के कारण उन्होंने मोहता जी की अपेक्षा कहीं अधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता भी प्राप्त की। परन्तु वे सब गीता का अध्ययन शुरू करने से पहले अपना एक निश्चित दृष्टिकोण बना चुके थे और एक विशेष राजनीतिक हेतु को सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक निश्चित मार्ग भी अपना लिया था। इसीलिए उनकी व्याख्या उनके दृष्टिकोण और उनके अपनाये हुए मार्ग के रंग में रंगी हुई है। योगीराज अरविन्द पांडेचेरी में अपने आश्रम के अध्यात्म जीवन में लीन हो चुके थे। इसलिए उन्होंने अपनी व्याख्या को आध्यात्मिक रंग दे दिया। लोकमान्य तिलक सारे देश को कर्मयोगी बनाने में लगे हुए थे। इसीलिए उन्होंने गीता को भी कर्मयोग का रूप दे दिया। महात्मा गांधी का जीवन, अनासक्ति की साधना का मूर्तरूप था और जनता को इस अनासक्त साधना में लगाये बिना वे देश के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सके। इसलिए उन्होंने गीता को भी अनासक्ति योग का नाम दे दिया।

मोहता जी की ऐसी कोई पूर्व निश्चित-धारणा नहीं है जिससे उन्होंने गीता का अध्ययन किया। यह भी भूलना नहीं चाहिए कि इन सब महापुरुषों की व्याख्याएँ गीता के संपूर्ण रूप को व्यक्त न करके उसके एक विशेष अंग अथवा पहलू पर प्रकाश डालती हैं। कर्मयोग और अनासक्ति, अध्यात्म, साधनायोग गीता के व्यापक रूप के केवल अंग विशेष हैं, वे सर्वांग या सम्पूर्ण नहीं हैं। मोहता जी की व्याख्या गीता के सम्पूर्ण रूप को पाठक के सम्मुख उपस्थित करती है और वह ऐसा रूप है जिस को हर व्यक्ति अपने जीवन में सहज में पूरा उतार सकता है, और उसके अनुरूप अपने जीवन को बनाने में सफल हो सकता है। विद्वता, दार्शनिकता अथवा तार्किकता की दृष्टि से दूसरे व्याख्याताओं तथा उनकी व्याख्याओं का स्थान भले ही ऊँचा हो; परन्तु व्यावहारिक जीवन के तराजू पर वे व्याख्याएं पूरी नहीं उतरतीं। श्री शंकर, श्री रामानुज और श्री ज्ञानदेव सरीखे आचार्यों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है जो हमने अपने राजनीतिक नेताओं के सम्बन्ध में ऊपर कहा है। उनकी व्याख्याएँ, मुख्यतः, सम्प्रदाय विशेष के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं और उसी दृष्टिकोण से उनको पढ़ा व ग्रहण किया जाता है। मोहता जी के "गीता का व्यवहार दर्शन" "गीता विज्ञान" "सात्विक जीवन" तथा "दैवी सम्पद" और "ईशावास्योपनिषद्" की व्यावहारिक व्याख्या का स्वतन्त्र दृष्टि से अध्ययन करने वाले हमारे अभिमत से सहमत हुए बिना नहीं रहेंगे।

गीता के अर्थ का अनर्थ

[लेखक श्री संजय]

वैदिक ग्रंथों के भाष्यकारों अथवा टीकाकारों ने उनके साथ एक बड़ा अन्याय किया है। वैदिक साहित्य के शब्दों के गूढ़ यौगिक अर्थों को न लेकर वे रूढ़ अर्थों के भ्रमजाल में उलझ गए। उन्होंने इस प्रकार अर्थ का अनर्थ कर दिया। योगिराज श्री अरविन्द ने संस्कृत शब्दों के सम्बन्ध में अपने विचार स्वामी दयानन्द के 'वेदभाष्य' की चर्चा करते हुए प्रकट किये हैं। स्वामीजी के वेदभाष्य की चर्चा करना इस लेख का मुख्य विषय नहीं है। वर्तमान काल में संस्कृत शब्दों के रूढ़िगत अर्थों के विरुद्ध यौगिक अर्थों के लिए आग्रह करके स्वामी दयानन्द ने वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में एक अद्भुत क्रान्तिकारी शैली का प्रतिपादन किया। उन्होंने यास्क मुनि के "निरुक्त" से प्रेरणा प्राप्त की। संस्कृत के शब्दों का अर्थ समझने के लिए उनकी मूलभूत धातु को जानना आवश्यक है। उस धातु के अनेक अर्थों को सामने रखते हुए प्रसंग, अवसर तथा स्थिति के अनुसार उनका अर्थ और सारे संदर्भ को ठीक रूप में समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। स्वामी दयानन्द की इस शैली की प्रशंसा करते हुए योगिराज अरविंद ने 'बंकिम-तिलक, दयानन्द' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "स्वामी दयानन्द के इस विचार में कोई दुराग्रह नहीं है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है जिसमें विज्ञान और धर्म दोनों सम्मिलित हैं। मैं अपने विश्वास के अनुसार यह कहना चाहता हूँ कि वेद में विज्ञान की वे सचाइयाँ भी विद्यमान हैं जिनको आज का संसार नहीं जानता और इस सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द ने जो कहा है उसमें वैदिक ज्ञान की गहराई तथा व्यापकता के सम्बन्ध में न्यूनोक्ति से काम लिया गया है; अतिशयोक्ति से नहीं। शब्द उत्पत्ति विज्ञान (तात्पर्य) और भाषा विज्ञान का सहारा लेकर वे जिस शैली से इस परिणाम पर पहुँचे हैं उस पर भी आपत्ति की गई है। उनके ईश्वर परक शब्दों के अर्थों पर विशेष रूप से आपत्ति की गई, मैं यह समझता हूँ कि ऐसी आपत्ति करना बहुत बड़ी भूल है और उसका कारण है प्राचीन भाषा के सम्बन्ध में हमारा अध्ययन। हम वर्तमान काल के लोग शब्दों का प्रयोग परस्पर विरोधी अथवा समानार्थक रूप में करते हैं, उनकी मूलभूत भावना की सराहना हम नहीं कर सकते। हम जब बोलते हैं तब हमारा ध्यान केवल उनके रूप पर रहता है परन्तु उनके भावात्मक अर्थ पर नहीं जाता जो कि प्रयोग में न आने के कारण हमारे लिए मृत बन चुके हैं। वे हमारे लिए शब्दों की टकसाल का केवल प्रचलित सिक्का रह गये हैं। उनकी अपनी कोई कीमत नहीं रही है। भाषा के प्रारम्भिक काल में शब्द इस समय से सर्वथा विपरीत जीवित अर्थ के सूचक होते थे। उनमें भावों को प्रकट करने की मौलिक शक्ति रहती थी। उनके धातुगत अर्थ प्रयोग में लाये जाने के कारण भुलाए नहीं गये थे। वक्ता के मन में उनमें निहित शक्ति की अनुभूति बराबर बनी रहती थी। हम आज यदि 'वृक' (भेड़िया) शब्द का प्रयोग करते हैं तो हम उसका अर्थ केवल पशु विशेष करते हैं। उसके लिए किसी अन्य कल्पित शब्द का प्रयोग करने से भी हमारा काम चल सकता है, परन्तु पुराने लोग "वृक" धातु सामने रखकर उसका अर्थ फाड़ने वाला करते थे और उसका वह विशेष अर्थ उनके सामने बना रहता था। हम "अग्नि" शब्द का प्रयोग करके उसका अर्थ आग कर लेते हैं हमारे लिए इस शब्द का कोई दूसरा अर्थ नहीं है। पुराने लोगों के लिए "अग्नि" शब्द का अर्थ कुछ और भी होता था; क्योंकि वे उसकी मूल उत्पत्ति पर पहुँचकर उसके अनेक तात्पर्य करते थे। बड़े ध्यान से शब्दों का प्रयोग करने पर भी हमारे लिए उनका प्रयोजन दो-एक अर्थों तक सीमित रह गया है। उनके लिए वे अनेक अर्थों के सूचक होते थे और वे अर्थ उनके लिए बहुत ही आसान होते थे। वे यदि अग्नि,

वरुण और वायु आदि शब्दों का प्रयोग करते थे तो वे उनके साथ जुड़े हुए अनेक गूढ़ एवं रहस्यमय विचारों के द्योतक होते थे। वे शब्द उनके लिए (गूढ़ अर्थों का रहस्य खोलने के लिए) कुंजी का काम देते थे। इसमें संदेह नहीं है कि वैदिक ऋषि अपनी भाषा की इस महान क्षमता से लाभ उठाते थे। "गो" और "चन्द्र" आदि शब्दों का जो उन्होंने प्रयोग किया है उस पर थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है। निरुक्त इस क्षमता का साक्षी है। ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों में हमको इन शब्दों के स्वतंत्र एवं सांकेतिक प्रयोग और व्यवहार अब भी मिलते हैं।

अपने इसी आशय को श्री अरविन्द ने "वेद रहस्य" नामक ग्रन्थ में जिन शब्दों में प्रकट किया है वे भी महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने लिखा है कि "तीसरी भारतीय सहायता तिथि अपेक्षया कुछ पुरानी है, परन्तु मेरे वर्तमान प्रयोजन के अधिक नजदीक है। यह है वेद को फिर से एक सजीव धर्म पुस्तक के रूप में स्थापित करने के लिए आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के द्वारा किया गया अपूर्व प्रयत्न। दयानन्द ने पुरातन भारतीय भाषा-विज्ञान के स्वतन्त्र प्रयोग को अपना आधार बनाया, जिसे कि उसने निरुक्त में पाया था। स्वयं संस्कृत का एक महा विद्वान होते हुए, उसने उसके पास जो सामग्री थी, उस पर अद्भुत शक्ति और स्वाधीनता के साथ विचार किया। विशेषकर प्राचीन संस्कृत भाषा के अपने उस विशिष्ट तत्व का उसने रचनात्मक प्रयोग किया, जो कि सायण के "धातुओं की अनेकार्थता" इस एक वाक्यांश से बहुत अच्छी तरह से प्रगट हो जाता है। इस तत्व का, इस मूलसूत्र का ठीक-ठीक अनुसरण वैदिक ऋषियों की निराली प्रणाली समझने के लिए बहुत अधिक महत्व रखता है। दयानन्द की मन्त्रों की व्याख्या इस विचार से नियंत्रित है कि वेद धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक सत्य का एक पूर्ण ईश्वर प्रेरित ज्ञान हैं। वेद की धार्मिक शिक्षा एक देवतावाद की है और वैदिक देवता एक ही देव के भिन्न-भिन्न वर्णनात्मक नाम है, साथ ही वे देवता उसकी उन शक्तियों के सूचक भी हैं जिन्हें कि हम प्रकृति में कार्य करता हुआ देखते हैं और वेदों के आशय को सच्चे रूप में समझ कर हम उन सभी वैज्ञानिक सचाइयों पर पहुँच सकते हैं जिनका कि आधुनिक अन्वेषण द्वारा आविष्कार हुआ है।"

शब्दों का अर्थ करने की निरुक्त प्रतिपादित धात्वर्थ की प्रणाली को छोड़कर उनके रूढ़िगत अर्थों को अपनाने का जो दुष्परिणाम हुआ वह महीधर, सायण तथा ऊवट सरीखे आचार्यों के वेदभाष्यों में देखा जा सकता है। उन सरीखे अर्थ के तत्व को न जानने वाले टीकाकारों ने वेदमंत्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दृष्टि से किये जाने वाले विविध अर्थों की सर्वथा उपेक्षा कर दी और ऐसे वीभत्स, अश्लील एवं लज्जास्पद अर्थ किये कि वेदों के प्रति घृणा पैदा होकर किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति का माथा लज्जा से झुके बिना नहीं रह सकता। जगन्नाथपुरी के मंदिर की दीवारों पर जैसे लज्जास्पद एवं घृणास्पद अश्लील चित्र अंकित हैं वैसे ही विधान वेद मंत्रों में निश्चित बताए गए। उन्होंने राजमहिषि तथा पटरानी का मृत अश्व के साथ सम्भोग करने तक की कल्पना कर ली। अश्वमेध यज्ञ के जिस प्रकरण में राजा की धार्मिकता का प्रतिपादन करना मुख्य विषय है उसमें कामवासना के आधार पर मृत घोड़े के साथ रानी के सम्भोग की कल्पना करना कितना वीभत्स है? इसी प्रकार देश को सुख, समृद्धि से भरपूर करने वाले गोमेध आदि यज्ञों की जो दुर्गति की गई वह सर्वविदित है। धार्मिक बताये गये यज्ञों में गाय तथा अश्व आदि की बलि देना उनके यथार्थमित पवित्र स्वरूप के सर्वथा विपरीत है। इस ढंग से किये गए वेद भाष्यों के अर्थ अश्लील सम्भोगादि परक तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों को उत्तेजना देने वाले हैं जो कि धर्म की मूलभूत भावना के सर्वथा विपरीत हैं। स्वामी दयानन्द की यौगिक अर्थ प्रणाली का विरोध करने वाले सनातनधर्म के बड़े-बड़े पंडित और आचार्य भी अब अपने दुराग्रह को छोड़कर उनके ही मार्ग को अपनाने लग गये हैं। परन्तु रूढ़िगत अर्थों का जो दुष्परिणाम होना था वह हो चुका। भारतीय जनता का नैतिक अधः पतन उसी का दुष्परिणाम है। विदेशों में भी उससे वैदिक साहित्य का उपहास किया गया।

इस कारण ४५वें श्लोक में निश्चयात्मक रूप से असंदिग्ध शब्दों में वेदों के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि :—

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान ॥

अर्थात् "हे अर्जुन ! वेद मनुष्य को तीन गुणों में फँसाने वाले हैं; तू तीन गुणों से सर्वथा मुक्त होकर द्वन्द्वों से परे नित्य सत्व में स्थित और योग क्षेम की व्यक्तिगत कामना से रहित होकर अपने वास्तविक आत्म-रूप को पहचान।

वैदिक कर्मकांड यज्ञादि को भी गीता में सर्वथा निरर्थक बताया गया है। और यज्ञ का जो अर्थ किया गया है वह इन कर्मकांडों का समर्थक नहीं है। यज्ञ का अर्थ गीता में संसार को धारण करने वाले कर्म किया गया है। और उनमें सहयोग देने को ही उनका अनुष्ठान बताया गया है। तीसरे अध्याय के प्रारम्भ का सारा यज्ञ प्रकरण इसी का सूचक है। इस अध्याय के अन्त में तो इतनी ऊँची बात कह दी गई है कि उसके सामने किसी भी प्रकार का शास्त्राचार तथा लोकाचार टिक नहीं सकता। श्लोक ४२, ४३ में कहा गया है कि :—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः ॥
एवं बुद्धेः परम बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मनमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम ॥

अर्थात् "स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ परे या ऊपर कही जाती हैं, इन्द्रियों से परे मन और उससे भी परे बुद्धि है परन्तु बुद्धि से भी परे कुछ जानने योग्य है और वह है आत्मा। हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से परे उस आत्मा को जानकर अपने वास्तविक आप-आत्मा में स्थित होकर, काम रूपी दुर्जय शत्रु को मार।

इस आत्म-स्थिति का प्राप्त करना गीता की दृष्टि में सबसे बड़ा धर्म कर्म है, क्योंकि इस स्थिति में ही गीता के अनुसार सब की एकता की अनुभूति प्राप्त होती है। फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो गीता के आधार पर सभी साम्प्रदायिक शास्त्राचार और लोकाचार का समर्थन करने में संकोच नहीं करते। गीता के प्रति इससे बड़ा दूसरा अन्याय नहीं हो सकता।

आश्चर्य यह है कि गीता में जिन शब्दों के अर्थ का स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया गया है उनको भी ठीक-ठीक रूप से नहीं समझा गया। उनकी उपेक्षा करके मनमाने अर्थ कर दिये गए हैं। धातुमूलक अर्थों तक पहुँचने की यौगिक प्रणाली की प्रायः उपेक्षा कर दी गई है। शब्दों के रूढ़िगत अर्थ यथार्थ भाव के सूचक नहीं हो सकते। ईश्वर, धर्म, मोक्ष, यज्ञ, कर्म तथा ऐसे ही अन्य शब्दों के सम्बन्ध में इसी कारण अनेक भ्रममूलक धारणाएँ पैदा कर दी गई हैं। ब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, परपुरुष, परब्रह्म, आदि शब्दों का अर्थ व्यक्ति विशेष ईश्वर कर लिया गया है। गीता का अभिप्राय इन शब्दों से अखिल विश्व में व्यापक सत्ता अथवा आत्मा के लिए किया गया है। आत्म रूप में सबमें विद्यमान, परमात्म-तत्त्व के सम्बन्ध से सबके प्रति सद्बुद्धि पैदा करना ही गीता का मुख्य विषय है। सातवें अध्याय के चौबीसवें श्लोक में और ९वें अध्याय के ग्यारह बारह श्लोक में व्यक्ति ईश्वर मानने वालों की अबुद्धि, मूढ़ और राक्षसी-आसुरी तथा तामस प्रकृति का कहा गया है। फिर भी अनेक टीकाकार इस तामस प्रकृति के शिकार बन गये।

३—व्यक्ति विशेष के रूप में ईश्वर की कल्पना कर लेने के बाद भक्ति व उपासना के अर्थ का अनर्थ करना प्रायः अनिवार्य हो गया। ऐसा करने वालों ने जप, पूजा, पाठ, कर्मकाण्ड तथा संकीर्तन आदि को ही भक्ति व उपासना मान लिया। गीता में लोक संग्रह के लिए अपने-अपने कर्म करने की समाज सेवा को ही भक्ति-

उपासना तथा यज्ञ आदि कहा गया है। अठारहवें अध्याय के ४६वें श्लोक में विशेष स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि :—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

अर्थात् "जिस सर्वव्यापक सत्ता से इस सारे जगत की प्रवृत्ति है और जो सारे विश्व में व्याप्त है, उसका अपने कर्मों द्वारा पूजन करने से ही मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होती है। गीता के इस स्पष्ट मत का विपर्यास करके प्रचलित कर्मकांडों का समर्थन करना कितना बड़ा अर्थ का अनर्थ है ?

४—ऐसे लोग धर्म शब्द का अर्थ भी साम्प्रदायिक मत मतान्तर, पंथ और मजहब करते हैं; परन्तु गीता में अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्म को ही धर्म कहा गया है कि :—अठारहवें अध्याय के ४७ वें श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि :—

श्रेयान स्वधर्मोविगुणाः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वमाप्नोति किल्विषम् ॥

अर्थात् "दूसरों के अच्छे प्रतीत होने वाले धर्मों से अपने विगुण (कर्म श्रेष्ठ) धर्म भी श्रेष्ठ हैं। अपने स्वभाव के अनुसार नियत किये हुए कर्म करते रहने से कोई पाप नहीं होता।"

अठारहवें अध्याय के ६६वें श्लोक में सब साम्प्रदायिक धर्मों तथा उनके मायाजाल को सर्वथा छोड़ देने के लिए कहा गया है :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजः ।

अर्थात् "सब धर्मों को सर्वथा त्याग कर सब की एकता स्वरूप मेरी शरण में आ, आश्चर्य यह है कि "सर्वधर्म परित्याग" का स्पष्ट प्रतिपादन करने पर भी "स्वधर्मेनिधनं श्रेय परधर्मो भयावहः" का अर्थ अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णता को चिपटे रहना किया जाता है और उदार बनाने वाले धर्म के नाम से ही अनुदारता, असहिष्णुता तथा राग द्वेष आदि दुर्गुण पैदा किए जाते हैं। यहाँ धर्म का वास्तविक अर्थ यह है कि अपने गुण, स्वभाव एवं योग्यता के अनुसार अपने कर्त्तव्य कर्म को न करते हुए दूसरे के ऐसे कर्म को अपनायेगा जो उसके गुण, स्वभाव एवं योग्यता के अनुकूल होगा। तो उससे स्थिति उसके लिए भयावह बने बिना नहीं रहेगी और उससे सारे समाज की व्यवस्था विश्रंखल हो जाने से एक महान संकट पैदा हो जायगा।

५—यज्ञ शब्द का और भी अधिक अनर्थ किया गया है। यज्ञ शब्द का अर्थ हवन आदि साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड करना गीता के आशय के सर्वथा विपरीत है। यह उसकी भावना के ही नहीं किन्तु शब्दों के भी प्रतिकूल है। गीता में अपनी स्वभावसिद्ध योग्यता के अनुसार कर्त्तव्य कर्म का सम्पादन करके समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में योग देना ही यज्ञ कहा गया है अर्थात् व्यक्तिगत फल की इच्छा व आकांक्षा का परित्याग करके समष्टि भावना से अपना कर्त्तव्य कर्म करना यज्ञ है। हवन आदि कर्मकांडों को दूसरे अध्याय के ४२ से ४४ श्लोकों में भोगैश्वर्य आदि का निमित्त बताकर त्याज्य बताया गया है और तीसरे अध्याय के १४वें श्लोक में "यज्ञ कर्म समुद्भवः" कहकर यज्ञ का स्वरूप स्पष्ट कर दिया गया है।

६—यज्ञ प्रकरण में "पर्जन्य" शब्द का रूढ़िगत अर्थ वर्षा करके उसके सारे सौंदर्य को नष्ट कर दिया गया है। पूर्वापर संगति के अनुसार पर्जन्य शब्द का अर्थ है "समष्टि उत्पादन शक्ति", जिसको आधुनिक भाषा में सामुदायिक विधान, राष्ट्रीय विस्तार अथवा सहकारी कार्य पद्धति आदि कहा जा सकता है। परन्तु ये शब्द भी गीता के पर्जन्य शब्द के भाव को पूरी तरह व्यक्त नहीं करते। गीता की यह पर्जन्य शक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य कर्मरूपी यज्ञ से पैदा होती है। "यज्ञात् भवति पर्जन्यः" का यही भाव है। जहाँ वर्षा नहीं होती वहाँ भी

उद्योगी लोग अपने सामूहिक परिश्रम से, बांध, नहरें व तालाब आदि बनाकर सिंचाई करके अन्न आदि पदार्थ पैदा कर लेते हैं और जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर ली जाती है। जो लोग हवन आदि का नाम भी नहीं जानते उनके देश में वर्षा निरंतर होती रहती है। उद्यमहीन लोगों के यहां वर्षा होने पर भी अन्न पैदा नहीं हो सकता। अपने-अपने पेशे तथा व्यवसाय राष्ट्रीय बुद्धि से करना ही वास्तविक यज्ञ है और उनसे उत्पन्न होने वाली सामूहिक शक्ति का नाम है पर्जन्य। किसान का खेती व पशु पालन, जुलाहे का कपड़ा बुनना, सुथार का लकड़ी का काम, लोहार का लोहे का काम, चमार का चमड़े का काम, कुम्हार का मिट्टी का काम और मेहतर का झाड़ू लगाने व मैला साफ करने का काम भी यज्ञ ही है और उनका समष्टिगत राष्ट्रीय स्वरूप "पर्जन्य" है।

७—देव शब्द का भी ऐसा ही अनर्थ किया गया है। वेद मंत्रों का अर्थ करते हुए इस शब्द का जो अर्थ किया गया है उसमें भूलोक से ऊपर किसी स्वर्ग, मोक्ष स्थान, अथवा देवलोक आदि की कल्पना की गई और उनमें रहने वाले व्यक्ति विशेषों को देव अथवा देवता मान लिया गया। गीता में इस शब्द का तात्पर्य है समाज को धारण करने वाली समष्टि शक्ति। उपनिषदों तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में इसी शक्तिको देवत्व और उस शक्ति से सम्पन्न लोगों को देवता कहा गया है। इससे भिन्न कल्पित व्यक्ति देवताओं की उपासना की सातवें अध्याय के बीसवें श्लोक में निन्दा की गई है। देव शब्द के समान अग्नि, वरुण, आदित्य आदि अन्य अनेक शब्दों का भी अनर्थ करके सैंकड़ों व हजारों देवी देवताओं की कल्पना कर ली गई। फिर, उनके मंदिर व मूर्ति आदि बनाकर और भी अधिक प्रपंच फैला दिया गया। हिन्दू समाज में इसी कारण देवी देवताओं की कल्पना का कोई अन्त नहीं रहा।

८—योग शब्द का प्रचलित अर्थ आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि हठयोग तथा राज-योग की क्रियाएँ किया जाता है। गीता में दूसरे अध्याय के ४८वें श्लोक में "समत्वं योग उच्यते" कह कर समता के भाव को योग बताया गया है और सब तरह इसी भाव की पुष्टि की गई है। "योगः कर्मसु कौशलम्" कहकर अपने-अपने कर्तव्य कर्म का कौशल यानी चतुराई के साथ सम्पादन करना ही योग कहा गया है। कौशल अथवा चतुराई का अर्थ है सुख-दुःख, हानि-लाभ, तथा जय-पराजय और सफलता-असफलता में भी समता सन्तुलन बनाए रखकर कर्तव्य कर्म में लगे रहना। इस भावना की सर्वथा उपेक्षा करके योग शब्द का जो प्रच-लित अर्थ किया जाता है वह गीता के अनुकूल नहीं है।

९—सन्यास, त्याग, वैराग्य आदि शब्दों का अर्थ संसार के सब व्यवहार छोड़ बैठना किया जाता है गीता की मान्यता ऐसी नहीं है। इसमें व्यक्तिगत स्वार्थों की आसक्ति को छोड़ने का प्रतिपादन किया गया है। गीता के छठे अध्याय के पहले श्लोक में सन्यासी अथवा योगी की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में निम्नलिखित की गई है:—

निठल्ले आदमी अनुत्पादक बनकर समाज के सिर पर भार बने हुए हैं। कोई भी सभ्य, सुसंस्कृत और प्रगतिशील राष्ट्र इतनी बड़ी संख्या मे अपने देशवासियों का इस प्रकार निठल्ले बने रहना सहन नहीं कर सकता। हमारे देश में ऐसे निठल्ले लोगों की संख्या ७० लाख है। अपने को साधू व सन्यासी कहकर वे समाज व देश पर बड़ा भार बने हुए हैं और उनके कारण कितना अनाचार चारों ओर फैला हुआ है।

१०—तप शब्द का अर्थ भी इसी प्रकार तपना अर्थात् शरीर को क्लेश देने वाली क्रियाएँ किया जाता है। परन्तु गीता के सत्रहवें अध्याय के १४ से १६ श्लोकों तक शरीर, वाणी और मन के शिष्टाचार को तप बताया गया है। इसी अध्याय के ५,६ और १६ श्लोकों में आसुरी श्रद्धा और तामस तप का अर्थ शरीर को कष्ट देने वाली क्रियाएँ किया गया है। तामस तप की परिभाषा १६वें श्लोक में यह की गयी हैं कि :—

मूढ़ग्राहेणात्मनो यत्पीड़या क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

अर्थात् "मूर्खतापूर्ण दुराग्रह से शरीर और मन को पीड़ा देकर, अथवा दूसरों को बुरा करने के लिए जो तप किया जाता है, उसको तामस कहते हैं। तात्पर्य यह है कि व्रत उपवास आदि करके भूखे प्यासे रहने द्वारा, अथवा सर्दी गर्मी में नंगे पड़े रहने द्वारा शरीर को क्लेश देने वाला जो तप हठ अथवा दुराग्रह से किया जाता है, अथवा जो दूसरो के मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि के खोटे उद्देश्य से किया जाता है— यह तप तामस है।

११—जप शब्द का अर्थ व्यक्ति ईश्वर के कल्पित नामो का जाप करना। माला फेरना, आटे की गोलियाँ बनाना तथा संकीर्तन आदि किया जाता है। परन्तु गीता में दिए गए विधान का अर्थ है "ओम्कार" का उच्चारण करते हुए सब की एकता का चिन्तन करना। आत्म-रूप में सब में विद्यमान परमात्मा में ही सब की एकता निहित है।

१२—जन्म मरण, लोक परलोक, मोक्ष अथवा ब्रह्म निर्वाण स्थिति आदि के सम्बन्ध में भी अनेक रूढ़िगत भ्रान्त धारणाएँ समाज में जड़ पकड़े हुए हैं और उनका समर्थन भी अन्य ग्रन्थों की तरह गीता के भी नाम से किया जाता है। वास्तव मे ये सब प्रचलित धारणाएँ गीता की दृष्टि से भ्रान्तिमूलक, निराधार और मिथ्या हैं। धर्म के नाम से विविध सम्प्रदायों का जो मायाजाल जनता को भरमाने और उसको उसमे उलझा कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए धर्मजीवी लोगों ने फैला रखा है उसी के लिए जन्म मरण के सम्बन्ध में नाना तरह की कपोल कल्पनाएँ करके लोक परलोक तथा मोक्ष एवं निर्वाण के भी अनेक प्रकार के सुनहरे चित्र गढ़ लिए गए हैं। कोई भी सम्प्रदाय ऐसा नही है जिसमें सुरलोक की सी कल्पना करके वहाँ के जीवन को अत्यन्त भोगमय नही बताया गया है। यदि इस लोक की भोगवासनाएँ मनुष्य के लिए त्याज्य हैं तो सुरलोक अथवा स्वर्गलोक की भोग-वासना ग्राह्य कैसे हो सकती हैं? परन्तु मनुष्य को लुभाकर अपने सम्प्रदाय की ओर आकर्षित करने के लिए इस सारे प्रपंच का विस्तार किया गया है। साधारणतया मृत्यु का भय आस्तिक और नास्तिक प्रत्येक व्यक्ति को बना रहता है और उससे छुटकारा पाने के लिए ही सब उत्सुक रहते हैं। इसी लिए गीता में मरने के बाद की गति का उल्लेख किया गया है मरने के बाद की अवस्था का युक्ति-युक्त वर्णन करके इस व्याकुलता का समाधान किया गया है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही हो जाता है। गीता में भी उपनिषद् के इस विचार की ही सुविस्तृत व्याख्या की गई है कि "यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति यद् वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।" अर्थात् "मनुष्य मन मन मे जैसा सोचता विचारता है वैसा ही बोलता है। जैसा बोलता है वैसे ही वह कर्म करने लग जाता है और जैसे कर्म करता है वैसे ही फल प्राप्त करता है।" गीता में कहा गया है कि मनुष्य जीवन काल में जैसे विचार व

उद्योगी लोग अपने सामूहिक परिश्रम से, बांध, नहरें व तालाब आदि बनाकर सिंचाई करके अन्न आदि पदार्थ पैदा कर लेते हैं और जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर ली जाती है। जो लोग हवन आदि का नाम भी नहीं जानते उनके देश में वर्षा निरंतर होती रहती है। उद्यमहीन लोगों के यहाँ वर्षा होने पर भी अन्न पैदा नहीं हो सकता। अपने-अपने पेशे तथा व्यवसाय राष्ट्रीय बुद्धि से करना ही वास्तविक यज्ञ है और उससे उत्पन्न होने वाली सामूहिक शक्ति का नाम है पर्जन्य। किसान का खेती व पशु पालन, जुलाहे का कपड़ा बुनना, सुथार का लकड़ी का काम, लोहार का लोहे का काम, चमार का चमड़े का काम, कुम्हार का मिट्टी का काम और मेहतर का झाड़ू लगाने व मैला साफ करने का काम भी यज्ञ ही है और उनका समष्टिगत राष्ट्रीय स्वरूप "पर्जन्य" है।

७—देव शब्द का भी ऐसा ही अनर्थ किया गया है। वेद मंत्रों का अर्थ करते हुए इस शब्द का जो अर्थ किया गया है उसने भूलोक से ऊपर किसी स्वर्ग, मोक्ष स्थान, अथवा देवलोक आदि की कल्पना की गई और उनमें रहने वाले व्यक्ति विशेषों को देव अथवा देवता मान लिया गया। गीता में इस शब्द का तात्पर्य है समाज को धारण करने वाली समष्टि शक्ति। उपनिषदों तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में इसी शक्तिको देवत्व और उस शक्ति से सम्पन्न लोगों को देवता कहा गया है। उनसे भिन्न कल्पित व्यक्ति देवताओं की उपासना की सातवें अध्याय के बीसवें श्लोक में निन्दा की गई है। देव शब्द के समान अग्नि, वरुण, आदित्य आदि अन्य अनेक शब्दों का भी अनर्थ करके सैकड़ों व हजारों देवी देवताओं की कल्पना कर ली गई। फिर, उनके मंदिर व मूर्ति आदि बनाकर और भी अधिक प्रपंच फैला दिया गया। हिन्दू समाज में इसी कारण देवी देवताओं की कल्पना का कोई अन्त नहीं रहा।

८—योग शब्द का रूढ़िगत अर्थ आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि हठयोग तथा राजयोग की क्रियाएँ किया जाता है। गीता में दूसरे अध्याय के ४८वें श्लोक में "समत्वं योग उच्यते" कह कर समता के भाव को योग बताया गया है और यत्र तत्र इसी भाव की पुष्टि की गई है। "योगः कर्मसु कौशलम्" कहकर अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म का कौशल यानी चतुराई के साथ सम्पादन करना ही योग कहा गया है। कौशल अथवा चतुराई का अर्थ है सुख-दुःख, हानि-लाभ, तथा जय-पराजय और सफलता-असफलता में भी अपना सन्तुलन बनाए रखकर कर्त्तव्य कर्म में लगे रहना। इस भावना की सर्वथा उपेक्षा करके योग शब्द का जो रूढ़िगत अर्थ किया जाता है वह गीता के अनुकूल नहीं है।

९—सन्यास, त्याग, वैराग्य आदि शब्दों का अर्थ संसार के सब व्यवहार छोड़ बैठना किया जाता है गीता की मान्यता ऐसी नहीं है। उसमें व्यक्तिगत स्वार्थों की आसक्ति को छोड़ने का प्रतिपादन किया गया है। गीता के छठे अध्याय के पहले श्लोक में सन्यासी अथवा योगी की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में निम्नलिखित की गई है :—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

अर्थात् "कर्मफल के आश्रय बिना, कर्म के फल में किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि की आसक्ति न रखकर, जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्म करता है वही सन्यासी है और वही योगी अर्थात् समत्वदर्शी है; निरग्नि अर्थात् गृहस्थाश्रम को त्यागने वाला, और अक्रिय अर्थात् कर्मों से रहित होकर निठल्ला बैठा रहने वाला सन्यासी नहीं है। व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि की आसक्ति बिना अपने कर्त्तव्य कर्म करने वाला समत्व योगी ही सच्चा सन्यासी होता है। गीता की इस भावना को भुलाकर केवल गेरुए वस्त्र धारण कर लेने अथवा सर्वथा नग्न होकर भस्म धूनी रमा लेने से अपने को सन्यासी या योगी मान लेने का दुष्परिणाम यह है कि लाखों

निठल्ले आदमी अनुत्पादक बनकर समाज के सिर पर भार बने हुए हैं। कोई भी सभ्य, सुसंस्कृत और प्रगतिशील राष्ट्र इतनी बड़ी संख्या में अपने देशवासियों का इस प्रकार निठल्ले बने रहना सहन नहीं कर सकता। हमारे देश में ऐसे निठल्ले लोगों की संख्या ७० लाख है। अपने को साधू व सन्यासी कहकर वे समाज व देश पर बड़ा भार बने हुए हैं और उनके कारण कितना अनाचार चारों ओर फैला हुआ है।

१०—तप शब्द का अर्थ भी इसी प्रकार तपना अर्थात् शरीर को क्लेश देने वाली क्रियाएँ किया जाता है। परन्तु गीता के सत्रहवें अध्याय के १४ से १६ श्लोकों तक शरीर, वाणी और मन के शिष्टाचार को तप बताया गया है। इसी अध्याय के ५,६ और १६ श्लोको में आसुरी श्रद्धा और तामस तप का अर्थ शरीर को कष्ट देने वाली क्रियाएँ किया गया है। तामस तप की परिभाषा १६वें श्लोक में यह की गयी है कि :—

मूढ़ग्राहेणात्मनो यत्पीड़या क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥

अर्थात् "मूर्खतापूर्ण दुराग्रह से शरीर और मन को पीड़ा देकर, अथवा दूसरों को बुरा करने के लिए जो तप किया जाता है, उसको तामस कहते हैं। तात्पर्य यह है कि व्रत उपवास आदि करके भूखे प्यासे रहने द्वारा, अथवा सर्दी गर्मी में नंगे पड़े रहने द्वारा शरीर को क्लेश देने वाला जो तप हठ अथवा दुराग्रह से किया जाता है, अथवा जो दूसरो के मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि के खोटे उद्देश्य से किया जाता है—वह तप तामस है।

११—जप शब्द का अर्थ व्यक्ति ईश्वर के कल्पित नामों का जाप करना। माला फेरना, आटे की गोलियाँ बनाना तथा संकीर्तन आदि किया जाता है। परन्तु गीता में दिए गए विधान का अर्थ है "ओमकार" का उच्चारण करते हुए सब की एकता का चिन्तन करना। आत्म-रूप में सब में विद्यमान परमात्मा में ही सब की एकता निहित है।

१२—जन्म मरण, लोक परलोक, मोक्ष अथवा ब्रह्म निर्वाण स्थिति आदि के सम्बन्ध में भी अनेक रूढ़िगत भ्रान्त धारणाएँ समाज में जड़ पकड़े हुए हैं और उनका समर्थन भी अन्य ग्रन्थों की तरह गीता के भी नाम से किया जाता है। वास्तव में ये सब प्रचलित धारणाएँ गीता की दृष्टि से भ्रान्तिमूलक, निराधार और मिथ्या हैं। धर्म के नाम से विविध सम्प्रदायों का जो मायाजाल जनता को भरमाने और उसको उसमें उलझा कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए धर्मजीवी लोगों ने फैला रखा है उसी के लिए जन्म मरण के सम्बन्ध में नाना तरह की कपोल कल्पनाएँ करके लोक परलोक तथा मोक्ष एवं निर्वाण के भी अनेक प्रकार के सुनहरे चित्र गढ़ लिए गए हैं। कोई भी सम्प्रदाय ऐसा नहीं है जिसमें सुरलोक की सी कल्पना करके वहाँ के जीवन को अत्यन्त भोगमय नही बताया गया है। यदि इस लोक की भोगवासनाएँ मनुष्य के लिए त्याज्य हैं तो सुरलोक अथवा स्वर्गलोक की भोग-वासना ग्राह्य कैसे हो सकती हैं? परन्तु मनुष्य को लुभाकर अपने सम्प्रदाय की ओर आकर्षित करने के लिए इस सारे प्रपंच का विस्तार किया गया है। साधारणतया मृत्यु का भय आस्तिक और नास्तिक प्रत्येक व्यक्ति को बना रहता है और उससे छुटकारा पाने के लिए ही सब उत्सुक रहते हैं। इसी लिए गीता में मरने के बाद की गति का उल्लेख किया गया है मरने के बाद की अवस्था का युक्ति-युक्त वर्णन करके इस व्याकुलता का समाधान किया गया है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही हो जाता है। गीता में भी उपनिषद् के इस विचार की ही सुविस्तृत व्याख्या की गई है कि "यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति यद् वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।" अर्थात् "मनुष्य मन मन में जैसा सोचता विचारता है वैसा ही बोलता है। जैसा बोलता है वैसे ही वह कर्म करने लग जाता है और जैसे कर्म करता है वैसे ही फल प्राप्त करता है।" गीता मे कहा गया है कि मनुष्य जीवन काल में जैसे विचार व

कर्म करता है, वैसे ही उसकी वासनाएँ तथा संस्कार बन जाते हैं और उनके अनुसार मृत्यु के बाद उसके परलोक का निर्माण होता है।

संसार मे किसी भी पदार्थ का सर्वथा नाश अथवा अभाव कभी नहीं होता। केवल उसके रूपों का परिवर्तन होता है। इसलिए मृत्यु के बाद भी मनुष्य के अस्तित्व का सर्वथा अन्त या लोप नहीं होता। उसका भी केवल रूप बदलता है। अपनी-अपनी वासना के अनुसार किसी न किसी रूप में वह अवश्य रहता है। इस देह को विनाशी और उसमें स्थित आत्मा को नित्य, स्थायी एवं अविनाशी कहा गया है। पुराने कपड़ों का परित्याग करके जैसे मनुष्य नये धारण कर लेता है ठीक वैसी ही स्थिति इस देह की है। जिसमें देहरूपी वस्त्र को मृत्यु के रूप में केवल बदल दिया जाता है। दूसरे अध्याय का २२वाँ श्लोक इस भाव का सूचक है उसमें कहा गया है कि:—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

आत्मा की नित्यता और अविनाशी रूप को २३ और २४ श्लोक में कितने स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया गया है। उनमें कहा गया है कि :—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम् क्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

अर्थात् "इस (शरीर धारण करने वाले जीवात्मा) को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती। यह न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न गलाया जा सकता है और न सुखाया जा सकता है; यह नित्य, सब में व्यापक, सदा स्थित, नाश रहित और अनादि है।"

देह के साथ इस जीवात्मा को भी मरा हुआ कैसे माना जा सकता है? इसी लिए गीता मनुष्य का विनाश या अंत होना स्वीकार नहीं करती और उसके अनुसार इस लोक से परलोक में जाने का अर्थ केवल नवीन जन्म धारण करना है। जन्म जन्मान्तर की शृंखला के रूप में मनुष्य का अस्तित्व सदा बना रहता है। जन्म और मृत्यु दोनों वे दो किनारे हैं जिनमें सृष्टि का यह प्रवाह निरंतर चला रहता है। उसमें हर्ष व शोक मानना गीता के सर्वथा विपरीत है।

गीता पुनर्जन्म के लिए कर्मवाद के सिद्धान्त को आधार मानती है। मनुष्य वर्तमान जन्म में जैसे कर्म करता है वैसे ही फल वर्तमान जीवन में अथवा भविष्य जीवन में उसको अवश्य भोगने पड़ते हैं। मनुष्यों के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वभाव, योग्यता और सुख-दुःख आदि के कारण का इस कर्मवाद के सिवाय दूसरा कोई युक्तियुक्त समाधान नहीं है। इन विविध प्रकार की विचित्रताओं को आकस्मिक घटनाएँ कह देने से यथार्थ समाधान नहीं हो सकता। इसी कारण कर्म करने में मनुष्य को स्वतन्त्र मानते हुए भी उसके फल भोगने में उसको स्वतंत्र नहीं माना गया। गीता के शब्दों में उसका कर्म पर तो अधिकार सम्भव है; परन्तु फल पर उसका कोई अधिकार नहीं है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्" का यही अभिप्राय है।

मृत्यु के भय अथवा परलोक की चिन्ता से गीता के अनुसार वह मनुष्य ही मुक्त हो सकता है, जो

अपने शरीर के स्वाभाविक योग्यता के कर्त्तव्य कर्म व्यक्तिगत स्वार्थ की ममता और अहंकार से रहित होकर करता रहता है। दूसरे अध्याय के ७१-७२ श्लोक में इस भाव को इन शब्दों में कहा गया है कि :—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थः नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

अर्थात् "जो व्यक्ति स्वार्थ की सब कामनाओं को छोड़कर तृष्णा, ममता और अहंकार से रहित हुआ अपने कर्त्तव्य कर्मों का आचरण करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! यही ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त करके मनुष्य मोह को प्राप्त नही होता। अन्तकाल मे भी इसमें स्थित रहता हुआ ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करता है अर्थात् पूर्ण मुक्त रहता है।"

इस प्रकार जन्म, मरण लोक-परलोक तथा मोक्ष एवं ब्रह्म निर्वाण की स्थिति को गीता ने किसी चमत्कारपूर्ण कल्पना मे नही उलझाया है; अपितु वर्तमान जन्म और भविष्य में भी इसी प्रकार के जन्मान्तर रूपी परलोक में उस सब को सुलभ बताकर जन्म मरण की जिस शृंखला का प्रतिपादन किया गया है वह सब भ्रान्त धारणाओं, कपोल कल्पनाओं और लुभावने सुनहरे चित्रों के सर्वथा विपरीत है। अचरज होता है यह देख कर कि गीता सरीखे इतने सरल, सुबोध और स्पष्ट ग्रन्थ के आधार पर भी कैसी विचित्र भ्रान्तियाँ, धारणाएं और कल्पनाएँ कर ली गई हैं। इसलिए आवश्यकता है कि गीता का अध्ययन गीता की ही दृष्टि से किया जाय और शब्दों के रूढ़िगत अर्थ तक सीमित न रखकर उनके यौगिक अर्थों को समझने का प्रयत्न किया जाय। विद्वानों का कर्त्तव्य उसके स्वरूप को रहस्यमय न बनाकर स्पष्ट शब्दों मे प्रकट करना होना चाहिए। कठिनाई यह है कि धर्मजीवी लोगों का प्रपंच साधारण सी बात को भी रहस्यमय बनाए बिना चल नहीं सकता। इसी कारण अर्थ का अनर्थ करके हर वस्तु को रहस्यवाद के रंग में रंग कर अत्यन्त गूढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाता है और साधारण जनता इस प्रकार भ्रमजाल मे फँस जाती है। पिछले वर्षों मे वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे काफी अनुशीलन किया गया है और रूढ़िगत परम्परावाद को तिलांजलि देकर उसके वास्तविक अभिप्राय तक पहुंचने का प्रयत्न किया गया है। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ऊपर उठने के भी प्रयत्न किए गए हैं। गीता के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने स्वतन्त्र दृष्टि से विचार किया है। निश्चय ही इस प्रवृत्ति को और आगे बढ़ाया जाना चाहिए और तथ्य तक पहुंचने का प्रयत्न निरंतर जारी रहना चाहिए।

गीता का समत्वयोग और आधुनिक समाजवाद

[लेखक श्री देव]

साधारणतया गीता को पारलौकिक कल्याण तथा परमार्थ साधन की राह दिखाने वाला कोरा धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। समय-समय पर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से उसकी जो व्याख्याएँ की गईं उनसे इस धारणा की ओर भी अधिक पुष्टि हुई। शंकर, रामानुज, माध्वाचार्य तथा ज्ञानदेव सरीखे आचार्यों ने उसको अपने सम्प्रदाय के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया और उसके विशाल स्वरूप को अपने सम्प्रदाय के समान संकीर्ण एवं संकुचित बना डाला। यह बहुत बड़ी भूल है। वास्तव में गीता समाज-विज्ञान का उच्चकोटि का सार्वजनिक शास्त्र है। उसके अनुसार मानव समाज अपनी सर्वांगीण उन्नति करता हुआ वर्तमान और भविष्य में भी पूर्ण सुख व शान्ति प्राप्त कर सकता है। इसी कारण उसकी उपयोगिता और उपादेयता पांच हजार वर्ष के बाद भी वैसी ही बनी हुई है और सभी देशों तथा सभी कालों में उसको समान रूप से ग्रहण किया गया है। वर्तमान काल के प्राय: सभी विचारों के नेताओं ने उसके महत्व को स्वीकार किया है। भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय, डा० एनी बीसेंट, डा० भगवान दास, श्री राजगोपालाचार्य, योगिराज अरविन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और संत विनोबा आदि सभी ने मध्यकालीन आचार्यों की तरह गीता की अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्या की है और उसमें से अनमोल रत्न निकाल कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। श्री जवाहरलाल नेहरू भी यह स्वीकार करते हैं कि उनके जीवन निर्माण में गीता का विशेष स्थान है। बाइबिल के बाद विश्व के साहित्य में गीता का सबसे अधिक प्रसार और संसार की सबसे अधिक भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ है। बाइबिल के पीछे ईसाई पादरियों की अंध भावना और ईसाई राष्ट्रों की अंध श्रद्धा विद्यमान है जिनके बल पर उसका इतना प्रचार हो सका है। परन्तु गीता के पीछे ऐसी कोई अंध भावना अथवा अंध श्रद्धा की प्रेरक शक्ति नहीं है। वह विशिष्ट व्यक्तियों के बुद्धि एवं विवेक का सहारा पाकर फली फूली है और चारों ओर फैली है। यह अवश्य है कि इन विशिष्ट महापुरुषों की गीता के प्रति दृष्टि पर "जाकी रही भावना जैसी" की कहावत चरितार्थ होती है। फिर भी गीता के सार्वजनिक व सामाजिक स्वरूप, उसकी सुख-शान्ति स्थापित करने और मानव कल्याण करने की सामर्थ्य पर कोई आशंका नहीं की जा सकती। उसके इस स्वरूप और सामर्थ्य को सभी ने स्वीकार किया है। खुदीराम बोस सरीखे क्रान्तिकारी युवक उसको छाती से लगाकर हँसते-हँसते फांसी पर झूल गए। श्री शचीन्द्र सान्याल तथा श्री चन्द्रशेखर आजाद सरीखे युवकों की गीता की शक्ति पर अटूट भक्ति थी।

समाजवाद और साम्यवाद भी मानव समाज को पूर्णतया सुखी बनाने का दावा करते हैं परन्तु वे गीता के समत्व योग की तुलना में अधूरे हैं। आधुनिक समाजवाद अथवा साम्यवाद का आधार भौतिकवाद है। यह आधिभौतिकता पर अवलम्बित है। वह सब मनुष्यों के भौतिक अधिकार समान करके सबके लिए सांसारिक सुखों के साधन समान रूप से उपलब्ध करने के लिए भोग्य पदार्थों का एक समान बँटवारा करना चाहता है। मनुष्यों के स्वभाव तथा गुणों की योग्यता के अन्तर को वह महत्व नहीं देता और स्थूल भौतिक विचारों से परे सूक्ष्म आधिदैविक तथा आध्यात्मिक विचारों तक जाने की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करता। सबकी आत्मरूप मौलिक एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त को वह नहीं मानता। समाज का भौतिक आधार स्थायी नहीं है; क्योंकि भौतिक भिन्नता के बनाव निरन्तर बदलते रहते हैं इसी कारण वे स्थायी नहीं हैं। भिन्न-भिन्न स्वार्थों के निरन्तर संघर्ष के कारण समाज में सदा द्वन्द व अशान्ति बनी रहती है। भौतिक आवश्यकताएँ उस संघर्ष का मूल कारण हैं

और वे भी स्थायी नही हैं। उनकी पूर्ति के लिए किया जाने वाला भौतिक साधनों एवं पदार्थों के एक समान बँटवारे का सन्तुलन बिगड़े बिना नही रह सकता। उसको कायम रखने के लिए अत्यन्त कठोर-एकतंत्रीय शासन के उस नियंत्रण की आवश्यकताहै जो कि हिटलर और लेनिन सरीखे शासको के बिना चल नही सकता। प्रजातन्त्र उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है और वह असफल सिद्ध हुआ है।

गीता का समत्वयोग सबकी मौलिक एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त पर अवलम्बित है। अर्थात् भिन्नता के अलग-अलग बनावों के मूल में एकता के निश्चयपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करने के सच्चे समाज विज्ञान का गीता में प्रतिपादन किया गया है। इस एकता के निश्चयात्मक आधार पर ही सच्ची समता स्थायी रह सकती है और पृथकता के आधार पर समता स्थायी नही रह सकती। अलग-अलग व्यक्तिगत स्वार्थों की खींचतान से विषमता उत्पन्न होती है, इसलिए गीता में सबकी एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त को समाज-विज्ञान का मूल माना गया है और लोक संग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए अपनी-अपनी योग्यता के काम व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि की कामना छोड़कर करते रहने की व्यवस्था की गई है। दूसरे अध्याय के पैंतालीसवें श्लोक मे सबकी एकता के आत्मज्ञान का यह उपदेश दिया गया है कि :—

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

अर्थात् "हे अर्जुन ! कर्मकांड का प्रतिपादन करने वाले वेद तीन गुणों से ही विशेष सम्बन्ध रखते हैं; तू इन तीनों गुणों से अलिप्त हो और द्वन्द्वों से परे, नित्य सत्व में स्थित और योग क्षेम से रहित होकर (अपने वास्तविक स्वरूप) आत्मा का अनुभव कर। तात्पर्य यह कि भेद प्रतिपादित कर्मकाण्डात्मक वेदादि शास्त्र त्रिगुणात्मक प्रकृति के नाना नामों और रूपों के बनावों में ही उलझाये रखने वाले वर्णनों से भरे पड़े हैं। तू अपने को उन त्रिगुणात्मक प्रकृति के बनावों से ऊपर, प्रकृति का स्वामी अनुभव कर और सुख-दुख आदि नाना प्रकार के द्वन्द्वों से परे, नित्य सत्व रूप सबके एकत्व भाव मे स्थित होकर, तथा अपने से पृथक् किसी भी पदार्थ की प्राप्ति और स्थिति की चिन्ता से रहित होकर सर्वत्र अपने आप अर्थात् आत्मा ही को परिपूर्ण अनुभव कर।" गीता के समत्वयोग की यह पहली शर्त है। इस आत्मनिष्ठा मे व्यक्तिगत आकांक्षा का कोई स्थान नही है; अपितु सब प्राणियों में आत्मानुभूति पैदा करने का यह उपक्रम है।

इसके बाद सैंतालीसवें श्लोक में कहा गया है कि :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥

अर्थात् "काम करने में तेरा अधिकार है। उससे उत्पन्न होने वाले फल पर कदापि नही। तेरा काम स्वार्थ सिद्धि के फल के लिए नहीं होना चाहिए और काम न करने में अर्थात् निठल्ले बैठे रहने में भी तेरी आसक्ति नही होनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपने-अपने स्वाभाविक गुणों की योग्यतानुसार काम करते रहना चाहिए। उस काम से उत्पन्न होने वाले पदार्थों पर अपने व्यक्तिगत अधिकार जमाने का भाव नहीं रखना चाहिए; क्योंकि कोई भी काम किसी अकेले के किये नहीं हो सकता किन्तु उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य लोगों तथा समष्टि शक्ति के सहयोग से होता है। इसी कारण किसी व्यक्ति को अपने किसी काम से उत्पन्न होने वाले पदार्थों पर दावा अथवा एकाधिकार करने का कोई कारण नहीं है। ये सब पदार्थ सार्वजनिक सम्पत्ति होते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के भाव न रखने के कारण किसी को अपना काम छोड़कर निठल्ला नहीं रहना चाहिए।

फिर अड़तालीसवें श्लोक में समत्व भावना अथवा समत्वयोग का कैसा सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। उसमें कहा गया है कि :—

योगस्थः कुरु कर्माणि संङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

अर्थात् "सबकी एकता के साम्यभाव मन में स्थिर करके व्यक्तिगत स्वार्थ की आसक्ति से रहित होकर स्वार्थ की सिद्धि अथवा असिद्धि में नीर्विकार रहता हुआ काम कर। सबकी एकता का साम्यभाव ही योग है।

इसके वाद के ४६ और ५० श्लोक ऊपर के श्लोकों के भाव को और भी अधिक स्पष्ट कर देते हैं। उनमें "कृपण" शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया है जो स्वार्थ से प्रेरित होकर काम करता है। ४६वें श्लोक में कहा गया है कि :—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥

अर्थात् "सबकी एकता के आत्मज्ञान के बुद्धियोग के बिना जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए काम करते हैं, वे कृपण हैं।

५०वें श्लोक में कर्मयोग का रूप बतलाते हुए कहा गया है कि :—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

अर्थात् "आत्मज्ञान की समत्व बुद्धि से व्यक्तिगत स्वार्थ की भावनाओं को छोड़कर साम्यवाद से काम करने को ही "कर्म कौशल" अर्थात् काम करने की कुशलता अथवा योग कहा गया है।" यही सच्ची व वास्तविक योग समाधि है। अपने सुपुर्द किए गए कर्त्तव्य कर्म को सार्वजनिक व सामाजिक भावना से पूरा करने में तल्लीन होना ही गीता के अनुसार योग व समाधि है।

अगले अध्यायों में इन श्लोकों में सूत्र रूप मे कहे गए विचारों की सुविस्तृत व्याख्या की गई है। गीता के अनेक भाष्यकार उक्त कुछ श्लोकों को ही गीता का मुख्य विषय मानते है। उनके मत के अनुसार गीता द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग का मूलभूत आधार यही श्लोक हैं।

गीता के अनुसार सभ्य समाज की सुव्यवस्था के लिए चार प्रकार के कार्य विभाग की आवश्यकता है। वे हैं शिक्षा, सुरक्षा, वाणिज्य और शारीरिक सेवा अथवा व्यक्तियों के स्वाभाविक गुणों के अनुसार चार प्रकार के कार्यों का विभाजन। सत्वगुण की प्रधानता के कारण विशेष बौद्धिक विकास वाले संयमी व्यक्तियों के लिए ज्ञान-विज्ञान के अनुसंधान और विवेचन-पूर्वक शिक्षा, रजोगुण की प्रधानता वाले बलवान लोगों के लिए रक्षा और तमोगुण की प्रधानता वाले लोगों के लिए खेती, वाणिज्य तथा पशुपालन और शारीरिक श्रम के कार्य नियत किए गए हैं। क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संज्ञा दी गई। यह संज्ञा केवल उनके गुणों के अनुसार किए जाने वाले कार्यों के लिए दी गई थी। उसको वर्ण व्यवस्था कहते थे। यह केवल कार्य विभाग था न कि मनुष्यों को जन्म, जाति अथवा किसी ऐसे ही अन्य आधार पर चार हिस्सों में बाँटा गया था। जन्म व जाति की ऐसी कोई रूढ़िगत व्यवस्था नहीं थी। इस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का विवरण अट्ठारहवें अध्याय के ४१ से ४४ श्लोक में दिया गया है। ४७वें श्लोक में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इस वर्ण व्यवस्था के अनुसार किये जाने वाले सभी वर्णों के चारों कर्म श्रेष्ठ हैं। उनमे ऊँच-नीच की ऐसी कोई भावना नहीं है। न तो ब्राह्मणों का कार्य श्रेष्ठ है और न मेहतर का निकृष्ट। लोक संग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए सबको अपने-अपने स्वाभाविक गुणों की योग्यतानुसार काम करते रहना चाहिए। अपनी-अपनी योग्यता के काम करने से ही वर्तमान

तथा भविष्य मे सबको एक समान श्रेय प्राप्त होना सम्भव है। सब को समाज में एक समान स्थिति प्राप्त है। पाचवें अध्याय के १८-१९ श्लोकों में सब श्रेणियो के लोगों को ही नही, किन्तु प्राणिमात्र को एक समान समझने को कहा गया है। वे श्लोक ये है कि :—

> विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
> शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
> इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
> निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

अर्थात् "विद्या, और विनय (नम्रता) सम्पन्न ब्राह्मण में, गौ में, हाथी मे और इसी तरह कुत्ते तथा चाण्डाल में (आत्मज्ञानी) विद्वान् पुरुष समदर्शी होते हैं। जिनका मन (उक्त) समता के एकत्व भाव मे स्थित हो जाता है, वे संसार को यही (इसी शरीर मे) जीत लेते हैं, (और) क्योंकि ब्रह्म ही निर्दोष एवं सम है इसलिए वे ब्रह्म में स्थित रहते हैं। तात्पर्य यह है कि द्वैतभाव से उत्पन्न राग, द्वेष आदि सब दोषों से रहित साम्यभाव ही ब्रह्म है, इसलिए जिनका मन उक्त साम्यभाव में स्थित हो जाता है, उन्हें मुक्त होने के लिए कोई दूसरा शरीर धारण करके किसी दूसरे लोक विशेष में जाने की अपेक्षा नहीं रहती, किन्तु वे यहां (इस शरीर में) ही साक्षात् ब्रह्मरूप हो जाते हैं और वे जीवन मुक्त महापुरुष विश्व विजेता अर्थात् सारे जगत के स्वामी होते हैं।

तीसरे अध्याय के ८ से १६ श्लोकों मे चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की कुछ अधिक व्याख्या की गई है। उसमें बताया गया है कि समाज की सुव्यवस्था के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना के बिना अपनी योग्यता के काम करने में हर व्यक्ति को लगे रहना चाहिए। इसी को यज्ञ कहा गया है और इसी यज्ञ पर सम्पूर्ण समाज अथवा संसार की स्थिति निर्भर कही गई है। इसी से समाज की उन्नति और वृद्धि सम्भव बताई गई है। समष्टि समाज को देव संज्ञा देकर प्रत्येक व्यक्ति के लिए सारे समाज के साथ योग देकर समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में भाग लेने और भूरित समाज से प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी होने के यज्ञ चक्र का विधान किया गया है। अर्थात् व्यष्टि समष्टि के लिए और समष्टि व्यष्टि के लिए काम करने के यज्ञ चक्र मे सब को अपना-अपना भाग अदा करना आवश्यक है। जो इस यज्ञ चक्र में अपना योग नही देता किन्तु निठल्ला रहकर दूसरों पर निर्भर रहता है उसे चोर और पाप भोगने वाला कहा गया है। प्राणिमात्र का अस्तित्व सबके अपने-अपने काम करने रूपी यज्ञ पर निर्भर है इस यज्ञ से वह शक्ति (पर्जन्य सामुदायिक अथवा समष्टिगत शक्ति) प्रकट होती है जिसमे तरह-तरह के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जो इस यज्ञ चक्र के अनुसार आचरण नहीं करता, उसमे अपना योगदान नहीं देता और अपने हिस्से का काम नहीं करता उसको संसार मे जीने का कोई अधिकार नही है। यही गीता का समाज-विज्ञान अथवा समाजवाद है। इसी के आधार पर सुव्यवस्थित समाज रचना की जा सकती है, जो कि समाजवाद का सर्वोत्कृष्ट व्यावहारिक रूप है। गीता इसी को समत्व योग कहती है। इसके जोड़ का समाजवाद दूसरा क्या हो सकता है?

गीता के इस समाजवाद में पूंजीवाद के लिए कोई स्थान नही है। पूंजीपतियों की गणना गीता के दसवें अध्याय के विभूति वर्णन में 'वित्तेशो यक्षः रक्षसाम्' कह कर यक्ष व राक्षस आदि मे की गई है। ग्यारहवें अध्याय में विस्तार पूर्वक विवेचन करते हुए उनको असुर कहा गया है। सबकी एकता व समता पर पूरा जोर देते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रकार के काम अपने-अपने गुणो व योग्यता के अनुसार करने की व्यवस्था की गई है और अपने-अपने गुणों व योग्यता में उन्नति करने का सबके लिए समान अधिकार और अवसर रखा गया है। लौकिक भोगों और सुखों में संयम रखना सबके लिए समान रूप से आवश्यक ठहराया गया है। आज जो शूद्र के काम पर नियुक्त है, यह आवश्यक नही कि वह जन्म भर उसी मे लगा रहे और उसके पुत्र व पौत्रादि भी उसके समान

कोई दूसरा काम न कर सकें। शूद्र अपने में रजोगुण एवं सतोगुण की वृद्धि करता हुआ वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण का भी काम कर सकता है और उसकी सन्तान भी किसी भी वर्ण का काम कर सकती है। ब्राह्मण का दर्जा ऊँचा बताने वाले यह भूल जाते हैं कि उसके लिए मान-सम्मान विष के समान और अपमान अमृत के समान बताया गया है। क्षत्रिय राज्य का संचालन एवं सुरक्षा करते हुए भी उसका व्यक्तिगत उपभोग नहीं कर सकता। वैश्य भी इसी प्रकार धन, सम्पत्ति एवं समृद्धि की वृद्धि करते हुए उसको केवल अपने उपभोग में नहीं ला सकता। यदि कोई अपने सुपुर्द किये गये काम को यथावत् नहीं करता और अपने में विद्यमान सतोगुण तथा तमोगुण और रजोगुण के संतुलन को अस्त-व्यस्त कर देता है तो वह अपने वर्तमान वर्ण में नहीं रह सकता। इस प्रकार कर्त्तव्य कर्म के लिए आवश्यक गुणों एवं योग्यता को महत्त्व देकर समाज की जो व्यवस्था की गई है उसको आदर्श समाज-व्यवस्था कहा जा सकता है। यह वर्ण व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति के सत, रज तथा तम पर आधारित गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार किया गया विभाजन है जो कि किसी न किसी रूप में सर्वत्र पाया जाता है। उसको जन्म जाति अथवा सम्प्रदाय के साथ बांधना समाज के जीवन को विकसित होने से रोकना है, क्योंकि समाज की सारी व्यवस्था के जड़ बन जाने से वह प्राणहीन व चेतनाहीन बन जायेगी और उसके प्रगतिशील सब तत्त्व नष्ट हो जायेंगे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गीता के समत्व योग, समाज व्यवस्था एवं समाजवाद का उद्देश्य "सर्वभूतहिते रताः" अर्थात् सारे समाज के हित सम्पादन में प्रत्येक व्यक्ति का रत रहना अथवा लगे रहना है।

आयुर्वेद में जैसे व्यक्ति के स्वास्थ्य को वात, पित्त, कफ की समान स्थिति पर निर्भर बताया गया है, वैसे ही गीता में समाज की सुव्यवस्था का आधार व्यक्ति में सत, रज और तम के विकास को माना गया है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए जो महत्त्व वात, पित्त, कफ का है वही महत्त्व समाज के स्वास्थ्य के लिए सत, रज व तम का है। उनका यथावत् सन्तुलन बनाये रखना आदर्श समाज व्यवस्था के लिए आवश्यक है। सृष्टि विज्ञान में भी इन तीनों गुणों को उसकी रचना का मूल कारण और उसके संरक्षण के लिए भी आवश्यक बताया गया है।

गीता के समत्वयोग अथवा उसके समाजवाद के मूलभूत तत्त्व निम्नप्रकार कहे जा सकते हैं :—

(१) प्राणिमात्र में आत्म-तत्त्व के नाते वर्तमान एकता व समता सारी समाज रचना का आधार, (२) *व्यक्ति और समष्टि में पूर्ण समन्वय*, (३) *व्यक्ति का कर्त्तव्य कर्म उस कर्म के लिए किया जाने वाला प्रयत्न* और उस प्रयत्न का सम्पूर्ण परिणाम समष्टि के लिए है व्यक्ति के लिए नहीं, (४) व्यक्तिगत फलाकांक्षा का पूर्ण परित्याग, (५) कर्त्तव्य कर्म का निरंतर पालन और निठल्लेपन का पूर्ण अभाव, (६) कर्त्तव्य कर्म की दृष्टि से ऊँच-नीच के भेदभाव का सर्वथा अंत, (७) व्यक्तिगत संग्रह की कृपणता के पाप से मुक्ति अर्थात् पूँजीवाद की भावना की परिसमाप्ति। इन तत्त्वों के आधार पर संगठित समाज का जो रूप होगा वह कितना सुन्दर, स्वस्थ और उन्नतिशील होगा—इसकी कल्पना करना कठिन नहीं होना चाहिए। वर्तमान राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सब समस्याओं को इस समाज व्यवस्था द्वारा सहज में हल किया जा सकता है *और सब कृत्रिमताओं एवं विषमताओं का अंत* करके समाज में स्वाभाविक स्थिति पैदा की जा सकती है। तब बड़े गर्व के साथ यह कहा जा सकेगा कि :—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

गीता के इस समत्वयोग अथवा समाज-व्यवस्था या समाजवाद के साथ यदि पश्चिम के वर्तमान समाजवाद की तुलना की जाय तो यह बिलकुल स्पष्ट है कि आधुनिक समाजवाद की अपेक्षा गीता का समत्वयोग कहीं अधिक उच्चकोटि का एवं निर्दोष है। वह आदर्श *समाज-व्यवस्था का सूचक है, जिसमें व्यष्टि और समष्टि अथवा* व्यक्ति और समाज की पूर्ण प्रगति, उन्नति, विकास एवं अभ्युदय सुनिश्चित है। पश्चिमी राष्ट्र चाहे वे पूँजीवादी

हैं या साम्यवादी, —सभी अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार भौतिक समाजवाद के आधार पर ही समाज की व्यवस्था करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह एकांगी दृष्टि है। उस से व्यक्ति अथवा समाज का सर्वाङ्गीण विकास हो नहीं सकता। इस कारण उनके इस समाजवाद का जो रूप है वह सबके सामने है। सब राष्ट्रों में पूंजीपतियों और श्रमिकों के संघर्ष आदि के अन्तर्विग्रह और अन्तर्राष्ट्रीय कलह व संघर्ष ने भयानक रूप धारण किया हुआ है। सब एक दूसरे से भयभीत हैं और उस भय के निवारण का जो उपाय करने में वे लगे हुए हैं उसी का दुष्परिणाम अणु बम तथा उद्जन बम आदि घातक शस्त्रास्त्रों का आविष्कार है। एक से एक भयानक परीक्षणात्मक विस्फोट करके वे अपना आतंक दूसरे पर जमाना चाहते हैं और निर्दोष राष्ट्रों की गरीब जनता पर संहारक रेडियोधर्मी कण बरसा रहे हैं। उनके दुष्परिणामों पर निष्पक्ष वैज्ञानिकों ने जो प्रकाश डाला है वह कितना भयानक चित्र उपस्थित करता है? इस राग-द्वेष की अग्नि से, जिसको आजकल की राजनीतिक परिभाषा में 'शीतयुद्ध' कहा जाता है कोई भी बचा नहीं है। उसकी आँच उन देशों पर भी पहुँच जाती है जो इस राग-द्वेष से सर्वथा दूर या अलिप्त रहने के लिए प्रयत्नशील हैं। किसी का किसी पर विश्वास नहीं है। पारस्परिक सन्देह और अविश्वास इस चरम सीमा पर पहुँच गया है कि एक टेबल पर बैठ कर विश्वशांति के लिए चर्चा करने वाले भी घात-प्रतिघात में निरंतर लगे रहते हैं और सब एक दूसरे के लिए विनाश की खाई खोदने में संलग्न हैं। विनाश की इस लीला में लगे हुए लोगों को शांति कैसे नसीब हो सकती है? इन सब विपत्तियों से छुटकारा पाने का प्रभावशाली उपाय गीता के समत्व-योग के सिवाय दूसरा नहीं है। व्यक्तिगत दृष्टि अथवा फल की आशा के त्यागने पर संग्रह की प्रवृत्ति स्वतः नष्ट हो जायगी और अपरिग्रह की भावना के व्याप्त हो जाने पर घात-प्रतिघात की भावना एवं प्रवृत्ति का स्वयमेव अंत हो जायगा। तब स्थायी सुख व शान्ति स्थापित हो सकेगी।

हमारे देशवासियों को गीता के समत्वयोग के प्रकाश में सारी स्थिति पर कुछ गम्भीर विचार अवश्य करना चाहिए और देखना चाहिए कि अपने देश में गीता के समत्वयोग के आदर्श के अनुसार सामाजिक व्यवस्था कैसे कायम की जा सकती है? कहीं ऐसा न हो कि पश्चिम के भौतिकवादी समाजवाद की नकल करते हुए हमारी स्थिति अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धे की सी न हो जाय। हमारे देश की साधारण जनता की बुद्धि का विकास इतना अधिक नहीं हुआ है कि वह समत्वयोग के आदर्श को अंगीकार कर अपनी समाज व्यवस्था का निर्माण कर सके। व्यक्तिगत स्वार्थों की आसक्ति के कारण उसमें जो "कृपणता" व्याप गई है उससे उसका नैतिक स्तर भी बहुत गिर गया है और उसका मानसिक एवं बौद्धिक विकास आवश्यक मात्रा में होना रुक गया है। परन्तु देश के जिन नेताओं की बुद्धि सबकी एकता के साम्यभाव में पूरी तरह स्थित प्रज्ञ है, उन लोगों का यह कर्त्तव्य है कि वे समत्व योग के सिद्धान्त के आधार पर समाज की व्यवस्था बनावें और स्वयं उसके अनुसार आचरण करने का आदर्श उपस्थित करके साधारण जनता को उसको अपनाने के लिए प्रेरित व बाधित करें। गीता में ठीक ही कहा है कि "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः" श्रेष्ठ लोग अर्थात् बुद्धिमान नेता अथवा स्थितप्रज्ञ जैसा आचरण करते हैं वैसा ही साधारण जन भी करने लग जाते हैं।

इन स्थितप्रज्ञ पुरुषों अथवा नेताओं के लक्षण गीता के दूसरे अध्याय के ५५से ५७ श्लोकों में निम्न प्रकार कहे हैं.—

> प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
> आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥
> दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
> वीतराग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

अर्थात् "मन में उत्पन्न होनेवाली व्यक्तिगत स्वार्थों की सब कामनाओं को जो त्याग देता है और अपने में सन्तुष्ट रहने के कारण आत्म-विश्वासी एवं आत्म निर्भर होता है वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

दुःखों में जिसका मन उद्विग्न नही होता और सुखों के लिए जो लालायित नहीं होता तथा राग, भय और क्रोध से जो मुक्त है वह स्थित प्रज्ञ कहलाता है।

जो अनुकूलता से प्रफुल्लित नही होता और प्रतिकूलता से द्वेष नहीं करता; सदा-सर्वदा आसक्ति से रहित है, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है।

ऐसे स्थितप्रज्ञ महापुरुष अथवा नेता ही समाज में समत्वयोग की स्थापना करके अपने राष्ट्र का सुख, शान्ति तथा अभ्युदय की ओर अग्रसर कर सकते हैं। उनके व्यक्तिगत जीवन से अनुप्राणित हुई जनता समत्वयोग के आदर्श को स्वीकार करने में कभी पीछे नही रह सकती।

●

गीता का धर्म और नीति

[लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार]

हिन्दू समाज और उसके धर्म शास्त्रों में धर्म को इतना व्यापक बना दिया गया है कि उसकी कोई परिभाषा करनी कठिन हो गई है। आचार-व्यवहार में उसको और भी अधिक व्यापक रूप दे दिया गया है। मानव जीवन में सभी लोकाचार और शास्त्राचार धर्म के अन्तर्गत मान लिए गये हैं। जन्म से भी पहले से ये धर्माचार शुरू हो जाते हैं और मृत्यु के बाद भी जारी रहते हैं। जीवन का कोई भी व्यवहार अथवा क्रम धर्म से रहित नही रहने दिया गया। धर्म को इस प्रकार मानव जीवन में श्वास-उच्छ्वास से भी अधिक महत्व दे दिया गया है और उसको प्राणों से भी अधिक कीमती मान लिया गया है। यह आम धारणा बन गई है कि प्राण भले ही चले जायें, परन्तु धर्म नहीं जाना चाहिए। जिन्होंने जनेऊ, चोटी, कंठी, माला, गंडा, तावीज, तिलक, छाप तथा कड़ा-कच्छ-कृपाण-केश व कंघा आदि को धर्म के चिन्ह मान लिया वे उनके लिए ऐसी खून खराबी करने को तैयार हो जाते हैं, जिसका प्रतिपादन कदाचित् ही किसी धर्म में किया गया हो। पीपल व वट आदि के पेड़ों और ईंट, मिट्टी व चूने आदि से बनाए गए धर्म स्थानों को मानव जीवन से कहीं अधिक महत्व दे दिया गया है। धर्म के नाम पर किये जाने वाले हिन्दु-मुस्लिम दंगों को उपहास में दाढ़ी-चोटी संघर्ष कहा जाने लगा। धर्म को सम्प्रदाय का रूप देने वालों अथवा सब सम्प्रदायों को धर्म की श्रेणी में शामिल कर देने वालों ने धर्म की जो दुर्गति की है उसकी चर्चा क्या की जाए?

देवी देवता और सब से ऊपर ईश्वर को माने बिना सम्प्रदाय रूपी धर्मों का काम चल नहीं सकता। इन सम्प्रदायों के देवी-देवताओं और ईश्वर की कल्पना के कारण शायद ही संसार की कोई चीज ऐसी बची होगी जिसको उनकी जगह बिठाकर ईश्वर की तरह पूजा न गया हो। किसी भी पत्थर को सिन्दूर मल दीजिये; बस, यह देवता बन जाता है और उसकी पूजा शुरू होकर उस पर भेंट व चढ़ावा चढ़ने लग जाता है। और तो और, साँप, मगर-मच्छ, बन्दर, गाय और कहीं-कहीं तो गधे तक की भी पूजा की जाने लगी। कुम्हार के चाक,

कुंएँ, नदी तथा पेड़ों और चौराहों को भी पूजा जाने लगा। धर्म को अजीब गोरख-धन्धा बना दिया गया। यदि पूजा किये जाने वाले सब पदार्थों को पूजा की विधि सहित और धर्म की भावना से स्वीकृत चिह्न धारियों को एक स्थान पर एकत्र किया जा सके, तो अत्यन्त मनोरंजक प्रदर्शनी बन सकती है। स्थिति यह है कि जिज्ञासु अथवा मुमुक्षु के लिए धर्म का असली रूप समझना प्रायः असम्भव हो गया है। उसकी हालत उस राही की सी हो गई है जो घने जंगल में रास्ता भटक जाता है और जिसको ढूंढने पर भी राह मिलती नहीं। सचमुच ही धर्म का जंजाल जंगल की तरह ऐसा घना हो गया है कि साधारण जन के लिए वह दुर्गम बन गया है। वह आँखें मूंद कर दूसरों का पल्ला पकड़े उनके पीछे चलने में ही अपना कल्याण मान बैठा है। मनुष्य में भी पशुओं की सी गतानुगतिकता पैदा हो गई है। उसने यह सिद्धान्त बना लिया है कि "महाजनो येन गतः स पन्थः।" महाजनों के नाम से अब तो हर किसी के भी पीछे लोग लग जाते हैं और उसको धर्म गुरु मानकर पूजना शुरू कर देते हैं। साधारण बोलचाल में इसी को भेड़िया धसान कहा गया है। यह कैसा विस्मय है कि जिस को विवेक-बुद्धि के कारण सब प्राणियों में सर्वोपरि माना गया, वह उससे काम न लेकर सिर नीचा किये भेड़ों की तरह दूसरों के पीछे चलने का आदी बन गया है। ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया है :

"धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।"

अर्थात खाना-पीना, सोना, दूसरों से डरना और अन्य व्यसन भी मनुष्यों में पशुओं जैसे ही हैं। केवल उनमें धर्म विशेष है और उस धर्म के बिना वे पशुओं के समान हैं। यहाँ धर्म से अभिप्राय धार्मिक कर्मकाण्ड आदि नहीं है; अपितु बुद्धि विवेक है। यही मनुष्य में पशु की अपेक्षा विशेषता है। शास्त्राचार व लोकाचार का सारा धर्म-कर्म करते हुए भी मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं रह गया है। रूढ़ि, परम्परा, मर्यादा अथवा लोकाचार और शास्त्राचार के नाम से जिस धर्म का अवलम्बन किया जाता है, वह गतानुगतिकता अथवा भेड़िया-धसान से अधिक कुछ नहीं है। उसमें वास्तविक धर्म की छाया तक शेष नहीं रह गई है। वट-वृक्ष की तरह नाना सम्प्रदायों अथवा साम्प्रदायिक कर्म-काण्डों की शाखा-प्रशाखाएँ उसमें फूट निकली हैं। उसका मूल सर्वथा नष्ट हो चुका है। धर्म शास्त्रों का भी यही हाल है। इस कारण यह कहा गया है कि श्रुतियाँ और स्मृतियाँ अर्थात् धर्मशास्त्र एक दूसरे से भिन्न हैं और कोई धर्माचार्य भी ऐसा नहीं जिसकी बात को प्रमाण माना जा सके; क्योंकि सभी एक दूसरे की बात काट देते हैं। साधारण जन के लिए धर्म का तत्व, भेद अथवा रहस्य जानना अत्यन्त कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव हो गया है। उसके प्रकाश में जीवन की किसी भी समस्या का हल कर सकना सम्भव नहीं रहा।

गीता का आरम्भ धर्म शब्द से हुआ है। धृतराष्ट्र ने संजय से जो प्रश्न पूछा है, उसमें महाभारत की लड़ाई के युद्ध क्षेत्र कुरुक्षेत्र को धर्म क्षेत्र कहा गया है और इसी से गीता आरम्भ होती है।

गीता का अन्त जिस श्लोक के साथ हुआ है उसका अन्तिम चरण है "ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।" इस में नीति शब्द मुख्य है। इसलिए यह माना जा सकता है कि गीता का अन्त नीति शब्द के साथ हुआ है।

वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करने वालों का यह मत है कि किसी भी ग्रन्थ का ठीक-ठीक अभिप्राय समझने के लिए उसके उपक्रम और उपसंहार पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। आदि और अन्त की संगति बिठाए बिना उसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता। गीता के आदि और अन्त को सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो "धर्म" और "नीति" में उनके प्रचलित रूप के अनुसार कोई मेल या संगति नहीं बैठती, क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी मान लिए गए हैं। धर्म ऐसे लोकाचार व शास्त्राचार का प्रतिपादन करता है, जिनके बारे में यह कहा जाने लगा है कि मृत्यु उपस्थित होने पर भी उनको छोड़ना नहीं चाहिए। नीति का सम्बन्ध

छल-कपट, बेईमानी तथा कूट चालों के साथ जोड़ा जाता है और उनका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध समझा नहीं जाता। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के विपरीत बन गए हैं। परन्तु गीता के धर्म और नीति में ऐसा कोई अन्तर नहीं है। उनके वास्तविक रूप को समझने के लिए गीता पर एक सरसरी दृष्टि डालनी आवश्यक है। गीता के पहले ही अध्याय में यह बताया गया है कि शूरवीर योद्धा होते हुए भी अर्जुन युद्ध से विमुख क्यों हो गया? अपने सामने अपने घरवालों, अपने सगे-सम्बन्धियों और अपने गुरुजनों को खड़ा देख उसके हृदय में धर्म तथा अधर्म और पाप तथा पुण्य की शंकाएँ-कुशंकएं पैदा हो गई हैं। वर्णसंकर होने और पिण्डोदक क्रियाओं के लुप्त होने से सब के नरकगामी बनने का भय उसके दिल पर छा जाता है। जाति-धर्म और कुल-धर्म के विनाश की सम्भावना उसको भयभीत कर डालती है, पाप की कल्पना से वह घबरा जाता है। सारी गीता में इसी धर्म-अधर्म अथवा पाप-पुण्य का विविध दृष्टियों से गम्भीर विवेचन किया गया है।

अपने को धर्म-अधर्म का युग-युग में सम्पूर्ण व्यवस्था करने वाला बता कर श्रीकृष्ण ने पहले शरीर और आत्मा के गुण धर्म को स्पष्ट करते हुए शरीर को विनाशी और आत्मा को अविनाशी बताया। शरीर को जीर्ण-शीर्ण कपड़ों से उपमा देते हुए आत्मा को किसी भी प्रकार नष्ट न होने वाला और किसी भी संसारी पदार्थ से प्रभावित न होने वाला बताया गया है। श्रीकृष्ण का यह विवेचन कैसा प्रेरक, स्फूर्तिप्रद और प्रभावोत्पादक है। निराश हृदय में भी वह आशा का संचार कर देता है। आत्मा के रूप में परमात्मा को सबमें व्यापक और अविनाशी बता कर दुनियां के इस सारे खेल को मृत्यु और जीवन के दो किनारों के बीच प्रवाहित होने वाली नदी के समान बताया गया है। देह का धर्म विनाश और आत्मा का अमरत्व समझाते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह बताया कि कौन किसको मारता है? न कोई मरता है और न कोई मारता है, "न चायं हन्ति न हन्यते।" इस प्रकार मरने या मारने की पाप बुद्धि को दूर करने का प्रयत्न करने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने क्षात्र धर्म का ध्यान दिलाया और उससे विमुख होने पर लोकापवाद का भय दिखाया। यह कहा कि तुझे फल अर्थात् परिणाम पर ध्यान देने की जरूरत नहीं। तेरा धर्म तो कर्म करना है और वह तुझे करते ही रहना चाहिए। स्थितप्रज्ञ की परिभाषा करते हुए उसको अपने कर्तव्य कर्म रूपी धर्म में स्थिर बुद्धि होकर लगे रहने के लिए प्रेरित किया। उसके बाद दार्शनिक दृष्टि से धर्म-अधर्म अथवा पाप-पुण्य की व्याख्या की गई। सांख्य व योग आदि की दृष्टि समझाई गई। प्रायः सभी तरीकों से धर्म की सुविस्तृत व्याख्या करने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन पर छा जाने का प्रयत्न किया। उसको मैस्मराइज करने अथवा पूरी तरह अपने वश में करने के लिए विराट रूप के दर्शन कराए। इसमें किसी भी चीज को छोड़ा नहीं गया, जिसको अपने में निहित नहीं बताया गया। पशु, पक्षी, वृक्ष व वनस्पति तथा नर-नारायण व देवी देवता और द्यूत कर्म तक को अपना ही रूप बताया गया है। तात्पर्य यह है कि दुनिया में स्वतः कोई भी चीज न तो केवल अच्छी है और न बुरी। उसकी अच्छाई या बुराई उस भावना में है, जिससे उसको ग्रहण या उसका उपभोग किया जाता है। प्रत्येक वस्तु में उसका अपना स्वभावसिद्ध धर्म विद्यमान होता है और उसका प्रयोग आवश्यकतानुसार करने का नाम है नीति।

इस प्रकार धर्म और उसके व्यवहार की सभी दृष्टियों से व्याख्या करने और उनका वास्तविक रूप समझाने के बाद भी जब अर्जुन की धर्म एवं पाप के सम्बन्ध में मूढ़ भावना दूर होकर उसके व्यामोह का अन्त नहीं हुआ तब श्रीकृष्ण ने १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक में, जहाँ कि गीता की समाप्ति होती है यह कहा कि:—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् हे अर्जुन! सब धर्म कर्म के जंजाल को छोड़ कर तू मेरी शरण में आ जा। तू किसी भी प्रकार की चिन्ता या सोच विचार मत कर। मैं तुझको सब प्रकार के पापों से मुक्त कर दूँगा।"

गीता की यहाँ प्रायः समाप्ति हो जाती है। इसके बाद श्रीकृष्ण अर्जुन से पूछते हैं कि अब भी अज्ञान से पैदा हुआ तेरा मोह दूर हुआ कि नहीं ? अर्जुन उत्तर में कहता है कि :—

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ।"

"हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे स्मृति प्राप्त हुई, इसलिए मैं संशय रहित होकर दृढ़ता के साथ आपके वचन के अनुसार काम करूँगा।" धर्म के सुविस्तृत व्याख्यान का अर्जुन पर वैसा प्रभाव नहीं पड़ सका जैसा कि नीति के एक ही उपदेश का असर उस पर हो गया। धर्म, जिन सिद्धान्तों अथवा आदर्शों का प्रतिपादन करता है, नीति उसको व्यवहार में लाने का मार्ग बताती है। भले ही धर्म उन सिद्धान्तों एवं आदर्शों को अनिवार्य एवं अपरिहार्य क्यों न बताता हो; किन्तु नीति उनको व्यवहार की कसौटी पर कस कर यह बताती है कि किस प्रसंग, स्थिति अथवा अवसर पर उनका किस रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए। अथवा किस प्रकार उन पर आचरण किया जाना चाहिए। वैसे तो जो जिसका स्वभाव सिद्ध धर्म है उसको उससे कभी भी अलग नहीं किया जा सकता; परन्तु अर्जुन जिस जाति धर्म व कुल धर्म के क्षय अथवा विनाश के भय से पाप-पुण्य की मिथ्या भावना में उलझ कर व्यामोह में फँस गया था वह उसका स्वभाव सिद्ध शाश्वत धर्म नहीं था। कुल धर्म अथवा जाति धर्म साम्प्रदायिक धर्मों के समान परिवर्तनशील हैं। उनको स्थायी नित्य अथवा शाश्वत मानना बहुत बड़ी भूल है। अर्जुन इसी भूल का शिकार बन गया था। नीति इसका परिमार्जन करती है और श्रीकृष्ण ने सर्व धर्म परित्याग की बात कह कर इसी नीति का प्रतिपादन किया है। धर्म की दार्शनिक व्याख्या की अपेक्षा उसकी व्यावहारिक व्याख्या अधिक सरल और सुबोध होती है। श्रीकृष्ण ने गीता के अन्तिम भाग के कुछ श्लोकों में धर्म के नीतिपरक व्यावहारिक रूप को स्पष्ट किया है और उन श्लोकों के अलावा शेष सारी गीता में उसके दार्शनिक किंवा सैद्धान्तिक रूप का प्रतिपादन किया है। नीति नियम सबके स्वभाविक अथवा स्वभाव सिद्ध शाश्वत धर्म नहीं होते। उनका सम्बन्ध व्यवहार के साथ होता है, जो स्थिति, अवसर, प्रसंग अथवा व्यक्ति के अनुसार बदलते रहते हैं। वे परिवर्तनशील होने के कारण एक दूसरे के अपवाद अथवा कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी भी प्रतीत हो सकते हैं। बोलचाल की भाषा में इनको भी धर्म इसलिए कह दिया जाता है कि वे व्यवहार में धारण किये जाते है अथवा उनको आचरण में स्वीकार किया जाता है। गीता में स्थान-स्थान पर नीति नियमों का उल्लेख इसी कारण धर्म के नाम से किया गया है और वैसा करना धर्म और नीति के पारस्परिक विरोध की अपेक्षा अनुकूलता का सूचक है। धर्म के बिना नीति और नीति के बिना धर्म चल नहीं सकते। दोनों एक ही सिक्के के दो बाजू अथवा एक नदी के दो किनारे हैं। अहिंसा को परम-धर्म मानते हुए भी दुष्टों के दमन के लिए हिंसा का अवलम्बन करना नीति है, जो कि गीता का मुख्य विषय कहा जा सकता है। उन पर दया करना हृदय की दुर्बलता है। सत्य को भी परम धर्म माना गया है। परन्तु अप्रिय सत्य बोलना और प्रिय झूठ बोलना निषिद्ध ठहराया गया है। यही सत्य का नीतिपरक रूप है। गीता के शब्दों में सत्य उद्वेगरहित, प्रिय एवं हितकारी होना चाहिए। अर्थात् अकल्याणकारी अथवा अहितकर सत्य नहीं बोलना चाहिए। काम व क्रोध धार्मिक दृष्टि से निषिद्ध हैं परन्तु "मन्युरसि मन्युं मयि धेहि" और "वीर्यं असि वीर्यं मयि धेहि" कह कर ईश्वर को मन्यु (क्रोध) रूप और वीर्य रूप मान कर उनसे मन्यु और वीर्य प्राप्ति की कामना की गई है। समाज धारण के लिए काम व मन्यु दोनों को भगवान की विभूति माना गया है। सारांश यह है कि नीति नियमों का परिस्थिति, प्रसंग, अवसर तथा सामने वाले व्यक्ति के अनुसार यथावत प्रयोग करना धर्म के विरुद्ध नहीं उसके अनुकूल है। उनका यथावत् प्रयोग न करना ही अधर्म अथवा पाप है।

श्रीकृष्ण के जीवन में नीति नियमों के पालन के अनन्त अद्भुत उदाहरण मिलते हैं। उनके जीवन

का राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो वे एक अत्यन्त चतुर एवं कुशल कूटनीतिज्ञ कहे जा सकते हैं। कूटनीतिज्ञ राजदूत के कर्तव्य कर्म को निभाने में वे अत्यन्त निपुण थे। पांडवों ने जहां भी कहीं नीति को भुला कर मूर्खता से काम लिया वहां सदा ही श्रीकृष्ण ने नीतिपूर्ण चतुराई से काम लेकर उनकी लाज बचाई और उनकी रक्षा की। उनकी इस चतुराई को यदि अधर्म माना जाय तो श्रीकृष्ण का धर्म संस्थापन के लिए बार-बार जन्म लेने का दावा सत्य की कसौटी पर पूरा नहीं उतर सकता। श्रीकृष्ण के जीवन का लक्ष्य माण्डलिक राजाओं का अन्त करके देश में शक्तिशाली केन्द्रीय शासन अथवा पाण्डवों का राजसूय यज्ञ रच कर उनके हाथों में शासन की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सार्वभौम सत्ता सौंपना था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जिस कूटनीति से काम लिया उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। नीति के व्यवहार में वे कूटनीतिज्ञ चाणक्य से भी आगे हैं। उस पर भी उनको "धर्मावतार" मानने का यही अर्थ है कि उनका कूटनीति का यह व्यवहार धर्म के प्रतिकूल नहीं था। गीता का अन्तिम श्लोक संजय के मुख से कहलाया गया है और उसको सारी गीता का निचोड़ कहा जा सकता है। वह यह है कि :—

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।"

इसका सीधा और साफ अर्थ यह है कि जहां श्रीकृष्ण सरीखे धर्म के प्रवक्ता अथवा व्याख्याता हैं और अपने धनुष रूपी नीति से यथावत् काम लेने वाले अर्जुन सरीखे नीतिवान हैं, वहां श्री, विजय, विभूति और अचल नीति निश्चित रूप से रहती हैं, ऐसा मेरा मत है।

इसी भाव को उपनिषद में इन शब्दों में कहा गया है :—

अग्रतश्च चत्वारिवेदः पृष्ठतः सशरं धनुः
इदं क्षत्रम् इदं क्षात्रम् शापादपि शरादपि।

प्राचीन आप्त वचनों की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण करने में जो खींचतान अथवा वितंडावाद किया जाता है उसमें हम नहीं पड़ना चाहते। गीता मे जिस प्रकार योगेश्वर शब्द से धर्म अथवा धार्मिक भावना और धनुर्धर शब्द से नीति अथवा व्यवहार अपेक्षित है, ठीक उसी प्रकार इस उद्धरण में 'चारों वेद' धर्म के और 'सशरं धनु' नीति के प्रतीक हैं। यह कहा गया है कि अपने सम्मुख चारों वेद, अर्थात धर्म और पीठ पर तीर कमान अर्थात् नीति रखनी चाहिए। चारों वेद अर्थात् धर्म ब्राह्मण का और तीर कमान अर्थात् नीति क्षत्रिय का कर्म है, परन्तु मनुष्य को शाप और शर अर्थात् धर्म और नीति दोनों से ही काम लेना चाहिए। इस प्रकार दोनों से काम लेने का मनुष्य को आदेश दिया गया है। गीता के उपदेश का भी यही सार अथवा निचोड़ है।

गीता के सम्बन्ध मे एक और प्रश्न विचारणीय है। सारी गीता में श्रीकृष्ण ने अपने लिए अहं, मैं, मया, आत्मानं आदि शब्दों का जो प्रयोग किया है उससे मूढ़-भावना के कारण उनको ईश्वर का अवतार मानकर सर्व साधारण की पहुँच से परे बता दिया जाता है। गीता के अनुसार यह सर्वथा निराधार और कपोल-कल्पना है। गीता का उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गुरुभाव अथवा पितृभाव से दिया है। उसमें अपने लिए इन शब्दों का प्रयोग करना स्वाभाविक है। अर्जुन मे आत्म-विश्वास जागृत किये बिना श्रीकृष्ण के लिए उस व्यामोह को दूर कर सकना सम्भव नहीं था। पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य के सामने अपने लिए ऐसी ही भाषा का प्रयोग करता है और इसी से वह उस पर छा जाता है। जिस प्रकार अर्जुन का सारा सन्देह, अज्ञान और मोह नष्ट हो गया उसी प्रकार गीता के हर मुमुक्षु पाठक का हो सकता है। यह गीता की एक विशेषता है। इसी कारण ५ हजार वर्षों के बाद आज भी उसका सौन्दर्य, आकर्षण, महत्व और उपयोगिता वैसी ही बनी हुई है। हर स्थिति, प्रसंग तथा अवसर पर पथ प्रदर्शन करने की क्षमता उसमें विद्यमान है।

गीता की दृष्टि बहुत व्यापक है। वह व्यक्ति और समष्टि दोनों के प्रति समन्वयात्मक है। आत्मा के रूप में परमात्मा को सर्व व्यापक मानकर मनुष्य मात्र के प्रति समान दृष्टि को जागृत करके गीता मे समष्टि धर्म का प्रतिपादन किया गया है और श्रीकृष्ण अपने को उस समष्टि धर्म के प्रतीक के रूप में उपस्थित करके विश्वात्म स्वरूप को प्रगट करते हैं। इसलिए वे अर्जुन को व्यक्तिवाद से ऊपर उठाकर उसके सम्मुख समष्टि धर्म को स्पष्ट करना चाहते हैं और उसके लिए ही उन्होंने अपने लिए "अहं" आदि शब्दों का और अर्जुन के लिये "त्वा" आदि का प्रयोग किया। "मामेकं शरणं व्रज" का अभिप्राय यही है कि हे अर्जुन ! तू व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर मानव के विश्वात्म रूप को समझ कर उसमें अपने को समा दे। गीता की यह भावना समाजवाद अथवा साम्यवाद का एक सुन्दर एवं उत्कृष्ट रूप उपस्थित करती है, जिसमें व्यक्ति समष्टि के अभ्युदय के लिए उस पर अपने को न्योछावर कर देता है। धर्म और नीति के सदुपयोग का यही प्रयोजन है।

गीता मे प्रतिपादित श्रीकृष्ण का उपदेष्टा का बड़प्पन यदि उनके उत्कृष्ट धार्मिक रूप को सर्व-साधारण के सम्मुख उपस्थित करता है तो उनका कर्तव्यनिष्ठ जीवन एक नीति कुशल नेता का उज्ज्वल रूप प्रकट करता है। नृशंस दैत्यों व असुरों, कंस व जरासन्ध सरीखे अन्यायी माण्डलिक राजाओं और महाभारत की लड़ाई में द्रोण, कर्ण, दुःशासन तथा शिशुपाल सरीखे विपक्षियों का अन्त करने में श्रीकृष्ण ने जिस छल कपट से काम लिया, उससे साधारण जन की दृष्टि में उनका सारा धार्मिक स्वरूप लुप्त हो जाना चाहिए। द्रोण की हत्या के लिए "अश्वत्थामा हतःनरो वा कुंजरो वा" की नीति वाक्य के प्रयोग के लिए धर्मराज युधिष्ठिर को भी सहमत कर लिया गया है और यह नीति वाक्य एक कहावत बन गया है। विपक्ष की कोई भी हत्या ऐसी नहीं है जिसमें नीति अथवा चतुराई से काम नहीं लिया गया। गीता की दृष्टि में चतुराई और विवेक बुद्धि से स्थिति, प्रसंग या अवसर के अनुसार काम करना और अपने प्रयोजन व उद्देश्यों को पूरा करना ही नीति है। अन्यथा श्रीकृष्ण को कौरवों के दरबार में द्रौपदी का चीर बढ़ाने, पाण्डवों की रक्षा के लिये लाक्षागृह और कौरवों के भरमाने के लिये माया भवन बनवाने, पाण्डवो के लिए पाँच गाँव की माँग उपस्थित करने, महाभारत की सारी लड़ाई मे केवल सारथी बने रहने और धृतराष्ट्र के सम्मुख भीम की लोहे की मूर्ति प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण के उपदेश तथा जीवन के व्यवहार में सर्वत्र धर्म और नीति का जो सुन्दर समन्वय पाया जाता है, वह हम सब के लिए ग्राह्य और अनुकरणीय है। किसी भी बात को बाबा वाक्य अथवा पत्थर की लकीर मान कर अपने विवेक तथा बुद्धि पर ताला लगा देना गीता के सर्वथा प्रतिकूल है। गीता में बुद्धियोग अर्थात् विवेक व बुद्धि से काम लेने पर विशेष जोर दिया गया है। जो इससे काम नहीं लेता तथा समत्व भावना को त्यागकर व्यक्तिगत फल की आकांक्षा में लीन रहता है उसको कृपण कहा गया है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

अर्थात् समत्व बुद्धियुक्त पुरुष ही सुकृत और दुष्कृत व पाप और पुण्य से ऊपर उठ सकता है। उसी के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए; क्योंकि इस समत्व बुद्धि योग को ही कर्मों में चतुरता माना गया है सारांश यह है कि बुद्धि एवं विवेक अथवा बुद्धियोग के बिना समत्व योग की भी साधना नहीं की जा सकती। धर्म सिद्धान्तों एवं आदर्शों का प्रतिपादन करता है और नीति उनके अनुसार किये जाने वाले व्यवहार को निश्चित करती है। दोनों को मिलाने वाली है बुद्धि। बुद्धि व विवेक से यह निश्चित किया जाता है कि किस विशेष अवसर, विशेष प्रसंग, विशेष व्यक्ति अथवा विशेष पक्ष के साथ किसी सिद्धान्त या आदर्श का किस रूप में प्रयोग किया जाना चाहिये। इसीलिए समत्व योग की साधना धर्म और नीति के बिना नहीं की जा सकती।

गीता के इस धर्म और नीति से काम लेने वाला व्यक्ति ही जीवन रूपी कुरुक्षेत्र में विजय श्री और विभूति दोनों का निश्चित रूप से संपादन करना है। अभ्युदय की प्राप्ति का यह सुनिश्चित मार्ग है।

अन्त में दो और बातों का उल्लेख करना आवश्यक है। एक यह कि श्रीकृष्ण को जो लोग "अवतारी" महापुरुष मानते हैं, वे उनके मानव जीवन को भी लोकोत्तर मानकर उनकी हर बात को अंध श्रद्धा से देखते हैं। यहाँ अवतारवाद के सत्य अथवा मिथ्या होने की चर्चा हम नहीं करना चाहते किन्तु इतना ही कहना चाहते हैं कि अवतार लेने के बाद भी यदि कोई महापुरुष लोकोत्तर बना रहता है तो उसका मानव जीवन धारण करना निरर्थक हो जाता है; क्योंकि फिर वह सर्वसाधारण के लिये अनुकरणीय अथवा आदर्श नहीं बन सकता। उसमें मानव जीवन की भावनाओं, निर्बलताओं, कमियों और कमजोरियों का होना आवश्यक इस लिए हो जाता है कि वह उनके द्वारा ही सर्वसाधारण के लिये आकर्षक बनकर उनके सम्मुख अपने जीवन की घटनाओं द्वारा ऐसे उदाहरण उपस्थित करता है जिनका अनुकरण सहज में किया जा सकता है। उनको उनकी कमियाँ, कमजोरियाँ अथवा निर्बलतायें मानकर उनका उपहास नहीं किया जाना चाहिए, अपितु उनके परिणामों पर गम्भीरता से विचार करते हुए उनसे समुचित शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि अग्नि परीक्षा के बाद भी राम ने अपने अंतर्द्वन्द्व के कारण सीता का परित्याग कर दिया अथवा किसी के बहकावे में आकर मुनि शृंग का गला केवल इसलिए काट दिया कि शूद्र होने के कारण उसको तपस्या करने का अधिकार नही था तो उनके ऐसे कृत्य अनुकरणीय नहीं हो सकते। यदि देश के विभाजन के बाद हिन्दुओं ने साधारण से संदेह पर राम की तरह अपनी पत्नियों, माताओं, बहनों अथवा कन्याओं का परित्याग कर दिया होता तो कैसी भीषण परिस्थिति पैदा हो गई होती? यदि शृंग की तरह समस्त हरिजनों को अपनी प्रगति, उन्नति एवं विकास करने से रोक दिया जाय तो हिन्दू समाज का पतन होने में कुछ भी समय न लगे? राम और श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष अपने मानव जीवन मे उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि हम उत्कृष्ट उदाहरणों से स्वीकारात्मक और निकृष्ट उदाहरणों से निषेधात्मक आचरण करना सीखें। यही तो उनके अवतारी मानव जीवन का प्रयोजन है। परिणामों पर विचार किये बिना किसी का भी अंधानुकरण करना गीता की भावना के सर्वथा विपरीत है। गीता में तो वेदों तक को "त्रैगुण्य विषयाः" तथा वैदिक कर्मकांडों को 'भोगैश्वर्य' प्रधान बताकर उनको भी त्याज्य कहा गया है। गीता किसी भी प्रकार की रूढ़िगत अथवा परम्परागत संकीर्णता के सर्वथा विपरीत है। धर्म और नीति दोनों ही के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और व्यापक है।

दूसरी बात गीता की एक और विशेषता है जो कि सबसे अधिक उत्कृष्ट है। सारा उपदेश करने के बाद श्री कृष्ण अर्जुन को अट्ठारहवें अध्याय के ६३वें श्लोक में यह कहते हैं कि—"यह गूढ़ से भी अति गूढ़ ज्ञान मैंने तुझको कहा है।" इस रहस्ययुक्त ज्ञान पर सम्पूर्ण तथा अच्छी प्रकार से विचार करने के बाद जैसी तेरी इच्छा हो वैसा तू कर?" क्या कोई भी धर्माभिमानी पुरुष अथवा महापुरुष अपने श्रोताओं को उसके उपदेश को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने की ऐसी स्वतंत्रता दे सकता है? देखने में यह आता है कि धर्म के सम्बन्ध मे भी साम, दाम, दण्ड भेद से काम लिया जाता है। अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ और दूसरे धर्मों को त्याज्य बताकर भेदभाव से काम लिया जाता है, लेकिन गीता मे ऐसा नहीं किया गया है। गीता विचार स्वातंत्र्य का कैसा सुन्दर उत्कृष्ट उदाहरण है? गीता में जिस धर्म का उपदेश दिया गया है, उस पर आचरण करना या न करना श्रोता अथवा पाठक की इच्छा पर छोड दिया गया है। यह उदार और व्यापक दृष्टि गीता की अपनी ही विशेषता है। इसी कारण उसका जीवन दर्शन सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वाधिक व्यावहारिक है।

समभाव साधना

[लेखक श्रीयुत अगर चन्द जी नाहटा]

भारतीय जीवन, दर्शन और संस्कृति में समभाव साधना को प्रमुख स्थान प्राप्त है। आध्यात्म दृष्टि से उसका महत्व और भी अधिक है। ब्राह्मण और श्रमण भारतीय संस्कृति की दो मुख्य शाखाएँ हैं और दोनों में साम्यभाव साधना को एक सरीखा महत्व प्राप्त है। मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य परमात्म-दर्शन अथवा कैवल्य की प्राप्ति कहा गया है। उसके लिए राग द्वेष आदि द्वन्द्वों पर विजय पाकर समभाव साधना को आवश्यक ठहराया गया है। समत्व योग गीता का सार है। उसमें स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि विद्या विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाडाल में पंडित अर्थात् आत्मज्ञानी समदर्शी होते हैं। श्रमण संस्कृति में अहिंसा की दृष्टि से हाथी और चींटी तथा प्राणिमात्र को समान माना गया है और किसी भी जीव के प्रति हिंसा की भावना क्षम्य नहीं है।

संयोग और वियोग को समभाव की साधना में सबसे अधिक बाधक बताया गया है; क्योंकि संयोग से अनुकूल और वियोग से प्रतिकूल अनुभूति होने के कारण मनुष्य सहसा ही अपना संतुलन खो बैठता है और संतुलन खोने का अर्थ है समभाव साधना से विचलित होना।

गीता के चौदहवें अध्याय के २४ और २५ श्लोक में ठीक ही कहा गया है कि—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः॥२४॥
मानापमानयो स्तुल्यस्तुल्यो मित्रा रिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

इसी प्रकार जैन योगीराट् आनन्दघन ने कहा है कि—

"मान अपमाने चित्त सम गणे, सम गणे कनक पाषाण रे।
वन्दक निन्दक सममणे, इस्योहोय तुं जाणरे ॥६॥
सर्वजग जन्तुने समगणे, गणे तृण मणिभाव रे।
मुक्ति संसार बेहुसमगणे, मुणेभव जलनिधि नाव रे ॥१०॥

योग वाशिष्ट आदि में भी अनेक उदाहरण देकर समभाव के महत्व को प्रगट किया गया है। चार्वाक और वाममार्ग के सिवाय सब धर्मों में समभाव का महत्व स्वीकार किया गया है। जैन धर्म सबसे अधिक निवृत्ति-परक है। जैन धर्म की निवृत्ति और योगदर्शन की एकाग्रता में कोई अन्तर नहीं है। दोनों व्यक्ति को समभावी होने के लिए प्रेरित करते हैं। दोनों का अभिप्राय यह है कि संयोग और वियोग तथा अनुकूलता एवं प्रतिकूलता में मानव को सदा ही समबुद्धि रहना चाहिए। इसी प्रकार जीवन मरण के प्रति भी समदृष्टि रखनी आवश्यक है। आत्मा को नित्य और शरीर को मरण धर्मा होने से अनित्य मानने वाला जन्म मरण के प्रति समभाव रख सकता है। सृष्टि के प्रवाह के लिए जन्म मरण नदी के प्रवाह के दो किनारों के समान हैं।

ममत्व और भेद की भावना समभाव की साधना में बहुत बड़ी बाधा है। उनको दूर करने के दो उपाय हैं। एक यह कि "मैं" और "मेरा" की संकीर्णता से ऊपर उठा जाय और दूसरा यह कि ममत्व के दायरे को इतना फैलाया जाय कि वह समत्व या समभाव में विलीन हो जाय। जन्म मरण के समान द्वन्द्व विशेषः

द्वन्द्वों में भी संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। यह द्वन्द्व लाभालाभ, मान-अपमान, सुख-दुख, शत्रु-मित्र, जय-पराजय आदि अनेक रूपों में प्राय: प्रतिदिन के व्यवहार में प्रगट होते रहते हैं। विभिन्न व्यक्तियों, प्राणियों अथवा जीव मात्र के प्रति समभाव बनाये रखने के लिए मैत्री, करुणा, प्रमोद तथा मध्यस्थ भावना आदि की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि व्यक्ति उन द्वारा ही समभाव की साधना का पहला पाठ सीखता है।

जैन धर्म में अन्य सब धर्मों की अपेक्षा समभाव पर सबसे अधिक जोर दिया गया है। श्रावक और जैन मुनि दोनों के नित्य कर्म में कुछ पाठ भेद से सामायिक का विधान किया गया है। यति व मुनि महा व्रतों के पालन के लिए और श्रावक अणुव्रतों के पालन के लिये सामायिक द्वारा प्रतिदिन समभावी होने के संकल्प को दुहराता है। उसमें कहा गया है कि, "मैं सामायिक करता हूँ, पाप के कार्यों का त्याग करता हूँ, जावज्जीवं के लिए मन वचन काया से सावद्ययोग न करूँगा, न कराऊँगा, ना करते हुए को अच्छा समझूँगा।" सूत्र इस प्रकार है :—

"करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि।
जावज्जीवं पज्जुवासामि, तिविहं तिविहेणं,
मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि,
करंतपि न अन्नं न समणु जाणामि तस्स भंते पडिक्कमामि,
निंदा गर्हामि अप्पाणं वोसिरामि।"

यह संकल्प साधु के लिए है, जिसको वह प्रतिक्रमण में कई बार दोहराता है। जैन श्रावक अथवा गृहस्थ के लिए भी छः आवश्यक कर्मों में सामायिक पहला कर्तव्य है। प्रतिदिन इसकी साधना की जाती है। ४६ मिनट उसकी साधना करने का विधान है। कुछ पाठ भेद अवश्य है। "जावज्जीवं" के स्थान पर "जाव *नियमं" और "तिविहं तिविहेणं" के स्थान पर "दुविहं तिविहेणं" पाठ किया जाता है। एवं करंतपि अन्न नस-मणुजणामि पाठ नही है।*

जैन धर्म जीवन के व्यवहार का धर्म है और व्यवहार में समभाव की साधना को साधु व श्रावक दोनों के लिए समान महत्व है। स्वयं महावीर आदि तीर्थंकरों ने महाव्रतों की साधना प्रारम्भ करने से पहले इस सामायिक सूत्र का उच्चारण किया था। सामायिक सूत्र का अर्थ है समभाव को धारण करने का सुदृढ़ संकल्प। इस सूत्र की व्याख्या पूर्वाचार्यों ने निम्न प्रकार की है :—

"निंदाप संसासु समो, समोय माणव माण कारी सु।
समसयण परियण मणो, समाइयं पसंगओ जोवो।
जो समो सव्व-भूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होई, इमं केवलि भासियं।"

अर्थात् सामायिक करने वाला जीव निन्दा, प्रशंसा मानापमान, स्वजन परिजन में समभाव रखे, जो जंगम और स्थावर समस्त प्राणियों पर सम परिणाम धारण करता है, उसे केवली ने सामायिक कहा है। सामायिक शब्द के अर्थानुसन्धान में भी 'सम+आय' अर्थात् राग द्वेष रहित समभाव की आय—लाभ जिससे हो वही सामायिक कहा जा सकता है।

भगवान महावीर आदि ने महान् उपद्रव करने वाले, मरणान्त कष्ट देने वाले एवं इन्द्रादि सेवा स्तुति भक्ति करने वाले, दोनों प्रकार के व्यक्तियों के प्रति सब परिस्थितियों में राग द्वेष न लाकर समभाव के सामायिक सूत्र का चरम आदर्श उपस्थित किया है। उन्हीं के अनुकरण में सामायिक पाठ की परिपाटी जैन समाज में आज तक भी प्रचलित है। परन्तु उस साधना के पालन का लक्ष्य शिथिल हो चुका है। उसको फिर से जगाने और जीवन मे प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है।

सर्व धर्म परित्याग

[लेखक प्रो० हबीबुर रहमान शास्त्री, भू०पू० प्राध्यापक—संस्कृत, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़]

[इस लेख के विद्वान लेखक उत्तर प्रदेश के निवासी शास्त्रीजी का जन्म लखीमपुर खीरी के एक अठकोहना में १६६० में हुआ। कानपुर, अलीगढ़ और लाहौर के ओरियेन्टल कॉलेज में आपकी शिक्षा हुई, जिससे आपने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया। १६२२ से १६४८ तक आप अलीगढ़ विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर रहे। संस्कृत और वेदान्त में आपकी विशेष अभिरुचि है। ईशोपनिषद पर आपने "तत्वार्थ बोध" नाम से एक सुन्दर टीका लिखी है।]

श्री गीता के अध्याय १८ श्लोक ६६ में कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा है कि "तू सब धर्मों को छोड़ कर मुझ एक की शरण में आ जा, मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा, सोच मत कर" इस श्लोक का भाव सामान्य जनों को अत्यन्त आश्चर्य में डाल देता है, कारण कि उनके हृदय में यह विश्वास दृढ़ रूप से अंकित हो रहा है कि मोक्ष धर्म ही से होता है तथा शास्त्रों में भी धर्म की बहुत प्रशंसा की गई है अतः उक्त जनों को इससे आश्चर्य होना ही चाहिये परंतु विचार दृष्टि से देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः श्रीकृष्ण जी का सर्व धर्म परित्याग रूपी वचन नितान्त सत्य है। इस सारगर्भित वाक्य को समझने के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

१. बन्धन क्या है ?

२. मोक्ष किसे कहते हैं ?

३. धर्म का क्या प्रयोजन है तथा उसकी सिद्धि किसी व्यापक धर्म द्वारा होती है या साम्प्रदायिक धर्मों से ?

४. सर्व धर्म परित्याग पूर्वक कृष्ण रूपधारी विश्वात्मा की शरण लेने से मोक्ष क्यों हो जाता है ?

संख्या एक (बन्धन क्या है) के सम्बन्ध में मुझे यह प्रदर्शित करना है कि वेदान्त आदि शास्त्रों में इस बात का पूर्ण विवेचन किया गया है कि अखण्ड आनन्द स्वरूप, अपरिमित परमात्मा अपनी माया से काल्पनिक जीव बनकर समस्त सांसारिक शरीरों में कल्पित तादात्म्य (ध्यानस्थ अभेद भाव) के द्वारा 'प्रविष्ट हो गया है अर्थात् परमात्मा का शरीर मे प्रवेश ऐसा नहीं है जैसे कि कोई भौतिक पदार्थ दूसरे भौतिक पदार्थ में प्रवेश कर जाता है। सारांश यह है कि यह प्रवेश योग शक्ति या तप पर निर्भर है और इसीलिये तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है" —'परमात्मा ने तप (योगमाया) किया" उसने तप करके यह जो कुछ है सब पैदा कर दिया". उसको पैदा करके उसी (नाम रूपों) में प्रविष्ट हो गया। इस सम्बन्ध में लौकिक दृष्टान्त यह है कि जैसे रस्सी को सर्प समझने वाले व्यक्ति की चित्त शक्ति भ्रम रूपी सर्प के शरीर का जामा ओढ़ कर उसमें इस प्रकार से प्रविष्ट हो जाती है कि जब तक भ्रम दूर न हो जाय वह इस असत् ज्ञान से बाहर नहीं निकल सकता, उसी तरह परमात्मा अपने ईश्वरीय संकल्प और प्रबल कल्पना (ध्यानात्मक तप) से समस्त नाम रूपों में प्रवेश कर गया है, भेद केवल इतना है कि उक्त व्यक्ति रस्सी को भ्रम से परवश होकर साँप समझता है, इस कारण भ्रम की उसकी शक्ति नहीं यह

१—तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् (तैत्तिरीय उपनिषद्)

२—स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत (तैत्तिरीय-उपनिषद्)

सकते परंतु ईश्वर जान बूझ कर (स्वतन्त्रता पूर्वक) अपने संकल्प से माया द्वारा सृष्टि रूपी लीला करता है, इसलिये माया उसकी शक्ति कहलाती है। इस स्थान पर तार्किक लोगों के हृदय में यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि वेदान्त के उक्त सिद्धान्तानुसार आत्मा जीवरूप होकर शरीर में क्यों फँसा और कैसे फँसा? क्यों का उत्तर यह है कि आत्मा ने माया कल्पित इस संसार रूपी नाटक की रचना केवल इसलिये की है कि उसका कृत्रिम अंश (जीव) शरीर द्वारा विशुद्ध कर्म करके देवताओं से भी अधिक ऊँचा उठ कर अपने विस्मृत आत्मस्वरूप को पुनः प्राप्त कर ले क्योंकि प्रकाश की अवस्था मे अन्धकार में आकर ग्रस्त हो जाने के पश्चात् पुनः प्रकाशात्मक हो जाने में कुछ और ही आनन्द मिलता है जो केवल प्रकाश ही प्रकाश में रहने से कभी भी नहीं मिल सकता—देखिये किसी भी शक्ति (पावर) के बल्ब को यदि दिन में जलाया जाय तो उसमे वह आनन्द और चमत्कार नहीं प्राप्त हो सकता जो रात्रि(अंधेरे)में जलाने पर अनुभव किया जाता है, इसी तरह आत्म तत्त्व के माया (अन्धकार) क्षेत्र मे आकर संसारी हो जाने के पश्चात् पुनः अपने चमत्कृत स्वरूप की प्राप्ति में अत्यन्त आनन्द मिलता है। इसी आनन्द अथवा लीलात्मक रमण के कारण अपरिच्छिन्न सत्ता अर्थात् परमात्मा परिच्छिन्न (जीवात्मा) हो कर शरीर से संसक्त हो गया है जैसा कि ब्रह्मसूत्र के सूत्र "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्"—में जगत् रचना को लीला ही कहा गया है, तथा सूफी संतो का भी सृष्टि के बारे में यही सिद्धान्त है कि यह तमाशा अर्थात् लीला रूप ही है, जैसा कि कहा गया है[1] "मेरा यार पूर्ण मायिकता के साथ खुद ही तमाशा है और खुद ही तमाशाई (तमाशा देखने वाला)" शाह अब्दुलक़ुद्दूस गंगोही का कथन है[2] मायावी की तरह अंग रक्षा की आस्तीन मुंह पर डालकर अपने अहंभाव के साथ हाट (बाजार) की ओर तमाशे में आया। पुनः वसन्त ऋतुओं में विकसित पुष्प और समतल मैदानों में वाटिका के रूप मे प्रकट हुआ, फिर बुलबुलों का जामा ओढ़ फूलों के वियोग में चहचहाता हुआ (करुणनाद करता हुआ) प्रादुर्भूत हुआ। मंसूर के अनल्हक़ रूपी नाद और उसकी फाँसी का मौलिक आधार क्या था? तू ने ही खुद अनल्हक़[3] कहा और तू ही फाँसी पर चढ़ा। कोई मस्त महानुभाव और भी खुले रूप में कहते हैं—"मैं अनल्हक़ नहीं कह रहा हूँ, यार कहता है कि कह दें। दूसरे सन्त ने कहा है[4] जबकि दर्शन (जीव बनकर अपने को देखने) की स्वाभाविक प्रीति ने दामन (वस्त्र का छोर) पकड़ लिया तो अपरिमित तत्त्व परिच्छिन्नता (शरीरादि) की कैद (बन्धन) मे फंस गया। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि चाहे भ्रम से किसी वस्तु को कुछ का कुछ समझ लिया जावे या वेदान्त के अनुसार सामायिक कल्पना द्वारा किसी को अपना स्वरूप निश्चित कर लिया जाये, दोनों अवस्थाओं में जिससे नाता जुड़ जायेगा, उसके प्रभाव का समझने या निश्चय करने वाले पर पड़ना आवश्यक है, अतः जिस प्रकार रस्सी को सर्प समझने से समझने वाले में भय, कम्प आदि उत्पन्न हो जाते हैं ऐसे ही जब आत्मा ने अपने को शरीर निश्चित कर लिया तो शरीर की समस्त

१—यारे मन बा कमाले रानाई—खुद तमाशा व खुद तमाशाई।

२—आस्तीं बरू करीदी हम्चू मकारान दी।
बा खुदी खुद दर तमाशा सूए बाजाराम दी॥

३—दर बहारां गुल शुदी दर सहन गुलजार आमदी।
बादे बा बुलबुल शुदी बा नालये जार आमदी॥
शोरे मंसूर अज़कुजाओ दारे मंसूर अज कुजा।
खुद ज़दी बांगे अनाल्हक बर सरे दारामदी॥
मन नमी गोयम् अनल्हक यार मी गोयद बिगो।

४—चूं शुद हुस्ने नज़ारा दामनगीर—गश्त मुतलक़ बदामे कैद असीर।

त्रुटियाँ और दोष आत्मा में प्रतीत होने लगते हैं और वह अपने को असीम के बदले ससीम शाश्वत के बदले नश्वर, निरन्तर आनंद स्वरूप के स्थान में क्षणिक और नाशवान सुखों का अभिलाषी अनुभव करने लगता है तथा अपनी आकाशवत् व्यापकता विस्मृत करके केवल विशेष शरीर की अंधी कोठरी में बन्द हो जाता है। यह बन्द होना तथा अखण्ड आनन्द और सर्व शक्तिमत्ता आदि गुणों की स्मृति से वियुक्त होकर इन कष्ट साध्य, और तुच्छ विषय वासनाओं के सुख को वास्तविक सुख समझ लेना और भी महाबन्धन है। इस सम्बन्ध मे यह जानना आवश्यक है कि परमात्मा का जीव के रूप में आना केवल कल्पित लीला के लिये स्वप्नवत् अवास्तविक होता है अतः इससे उसमें किसी तरह का दोषारोपण नहीं हो सकता, जैसे कि किसी स्वप्नदर्शक को स्वप्न में जेल हो जाये तो उसके अवास्तविक होने के कारण यह कोई नहीं कह सकता कि उसे वास्तव में जेलखाना हो गया है। कैसे फँसा ? का उत्तर संक्षेप में तो ऊपर आ चुका है और हम लिख चुके है कि परमात्मा अपने कल्पित तादात्म्य द्वारा शरीर के बन्धन में स्वयं आया है। परन्तु फिर भी इस गूढ विषय (तादात्म्य भाव) को हृदयंगम करने के लिये एक स्पष्ट विवेचन की आवश्यकता है, अतः निवेदन है कि हम प्रकट कर चुके हैं कि आत्मा शरीर में केवल इसलिये फँसा है कि उसके द्वारा अच्छे कर्म करके देवताओं से भी ऊँचा उठकर अपने विस्मृत रूप को पुनः प्राप्त कर ले, अतः अपनी उच्चता और विस्मृत स्वरूप से पुनः मिलने का अभिलाषी जीव शरीर का प्रेमी हो गया कारण कि जिस वस्तु से किसी की उन्नति (लाभ) होती है उससे प्रेम हो ही जाता है तथा प्रकृति का यह भी नियम है कि उक्त लाभ, जितना उत्तम और दिव्य होता है, प्रेमी का प्रेम भी उतना ही उत्कृष्ट हो जाता है और स्पष्ट है कि अपने अखण्ड आनन्द स्वरूप से पुनः मिलन से अधिक आनन्दप्रद कोई भी पदार्थ नही है, अतः शरीर के साथ जीव का प्रेम अपनी अन्तिम अवस्था (पूर्णासक्ति) तक पहुँच गया तथा इस अवस्था का अनिवार्य परिणाम यह है कि प्रेमी का चित्त प्रियतम के अतिरिक्त अन्य समस्त सासारिक वासनाओं (चित्तवृत्तियों) से शून्य होकर सर्वथा उसी में समा जाय क्योंकि पूर्णासक्ति का अभिप्राय ही यह है कि प्रेमी के चित में अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिये पूर्ण अभिलाषा अर्थात् आकांक्षा उत्पन्न होजाय और आकांक्षा उस समय तक पूर्ण आकांक्षा नही कही जा सकती, जब तक कि चित्त पूर्ण रूप से एकाग्र होकर अपनी सम्पूर्ण ध्यान शक्ति केवल एक ही ध्येय में न लगा दे और जब पूर्ण ध्यान एक ही ध्येय में लग गया तो उसमें प्रियतम के अतिरिक्त और किसी पदार्थ के लिये स्थान ही कहाँ रहा ? अतः यह कथन नितान्त सत्य है कि पूर्णानुराग में प्रेमी का चित्त प्रियतम के अतिरिक्त समस्त सांसारिक वृत्तियों से शून्य हो जाता है, जैसा कि अरबी की कहावत है—[1] "पूर्ण भक्ति एक देदीप्यमान अग्नि है, जो प्रियतम के अतिरिक्त और समस्त पदार्थों को भस्म कर देती है" इस वाक्य से भी स्पष्ट होता है।[2] योगदर्शन भी कहता है कि जैसे बिल्लौर मणि अपने समीप स्थित वस्तु से प्रभावित होकर उसी के रंग रूप में रंग जाती है, उसी तरह वह चित्त जो संसार और तदस्थ् पदार्थों से शून्य होकर स्वच्छ हो जाता है, जिस वस्तु की ओर ध्यान देता है उसी के रूप में ढल जाता है। फारसी साहित्य में भी इसी अवस्था का चित्र चित्रित किया गया है—फारसी के प्रसिद्ध कवि खुसरो का कथन है[3] मैं तू हो गया और तू मैं"। मैं शरीर हूँ तो तू उसकी जान। इसलिये कि कोई यह न कहे कि तू और है और मैं और "साराश यह है कि प्रेमोद्रेक में जीवात्मा शरीर के तादात्म्य भाव में डूबकर न केवल शारीरिक गुणों से विशिष्ट हो गया है, अपितु अपने को

१—महब्बतो नारन् यह रको मासिवुल्लहबूब।
२—क्षीण वृत्ते रभिजातस्य इव मणे र्गृहीत ग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थ तदञ्जनता समापत्तिः।
३—मन् तो शुदम् तो मन् शुदीमन् तन शुदम् तो जां शुदी।
ता कस्न गोयद बादजीं मन् दीगरम तो दीगरी॥

शरीर ही समझने लगा है। यही कारण है कि चोट तो शरीर के लगती है और हाय करता है 'मैं' शब्द वाच्य जीवात्मा। यदि दोनों एक न हो गये होते तो शरीर की चोट से जीवात्मा हाय क्यों करता, क्योंकि उसके लिये तो गीता में कहा गया है कि "इसको हथियार[1] काट नहीं सकते और अग्नि जला नहीं सकती इत्यादि। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय प्रमाणन्वेषी जन गर्ग-संहिता लिखित यह रहस्यमयी घटना भी पढ़ सकते हैं कि गर्म दूध तो पियें श्री राधिका जी और छाले पड़ें महाराज कृष्ण के चरणों में। इससे अधिक प्रेमात्मक तादात्म्य भाव और क्या हो सकता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि *अखण्ड आत्मा ही, प्रेमाधिक्य के कारण देह से संसक्त होकर उसी में* बन्द (फँस) हो गया है।

अब संख्या २ (मोक्ष किसे कहते हैं) पर विचार करने की आवश्यकता है। हम प्रकट कर चुके हैं कि अखण्ड आनन्द स्वरूप आत्मा का ध्यान रूपी तप के द्वारा भौतिक शरीर में आना और शारीरिक कामनाओं पर आसक्त होकर अवास्तविक विषयानन्द में फँस जाना बन्धन है, अतः इस बन्धन का विच्छिन्न हो जाना ही मोक्ष है, क्योंकि जब बन्धन का कारण (शरीर और तद्गत वासनाओं का सम्बन्ध) जाता रहेगा तो उसका कार्य (बन्धन) कैसे रह सकता है? तथा बन्धन का न रहना ही मोक्ष है, अतः वेदान्त का यह वाक्य नितान्त सत्य है कि[2] *"विषयानन्द से छुटकारा पाना मोक्ष है तथा विषयों मे रस लेना बन्धन है"* इस स्थान पर किसी को यह शंका हो सकती है कि विषयानन्द से छुटकारा पाना सम्भव भी है या नहीं। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि शास्त्र ने इस बात का निर्णय कर दिया है कि विषयों मे जो आनन्द प्रतीत होता है वह वस्तुतः विषयों में नहीं होता है अपितु उपर्युक्त आत्मानन्द अर्थात् स्वरूपानन्द ही का प्रतिविम्ब होता है, जैसा कि अद्वैतसिद्धि[2] में निर्धारित किया गया है—विषय सुख भी स्वरूप सुख से पृथक् नहीं है (क्योंकि विषय प्राप्ति के समय अन्तर्मुखी मन में स्वरूप ही के सुख का प्रतिविम्ब पड़ता है जैसे कि सामने रखे हुये दर्पण में अपने मुख का।) *"बृहदारण्यक उपनिषद में है—[3] यही परमात्मा का परम आनन्द है अन्य प्राणी इसी की मात्रा से जीवित है"* पंचदशी का सिद्धान्त है—[4]विषयानन्द ब्रह्मानन्द का अंश है, विषय प्राप्ति (माया ग्रस्त जीव के लिये) केवल उस आनन्द का द्वार मात्र है, श्रुति ने भी विषयानन्द को ब्रह्मानन्द का अंश हो गाया है। ब्रह्मानन्द को परम आनन्द इस कारण कहा गया है कि वह अखण्ड और एक रसात्मक (परिवर्तन रहित) है तथा दूसरे प्राणी इसी की मात्रा भोगते हैं। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि विषयों में कोई आनन्द नहीं है, केवल उनमे प्रतिविम्बित आंशिक ब्रह्मानन्द ही को लोग विषयानन्द समझने लगते हैं, अतः जिस पर यह भेद खुल गया उसके प्रेम की ग्रन्थि शरीर और शारीरिक भावों से मुक्त होकर वास्त- *विक प्रियतम के साथ लग जाती है* और यही आशय है विषयानन्द से छुटकारा पाने या मुक्त हो जाने का तथा यही अवस्था वेदान्त में विदेह या कैवल्य मोक्ष के नाम से बोली जाती है और सूफी सन्त इसी को "फना" की पदवी कहते हैं। इसी ब्रह्मभाव में स्थित ज्ञानी, देह सम्बन्धी समस्त सुखों से विरक्त होकर केवल ईश्वर दर्शन में मग्न रहता है जैसा कि श्री शेख सादी का कथन है—

---

१. *नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः इत्यादि*

२. मोक्षो विषय वैराग्यं बन्धो वैषयिको रसः।
विषयसुखमपि स्वरूप सुखान्नातिरिच्यते विषय प्राप्तौ सत्यामन्तर्मुखे मनसि स्वरूप सुखस्यैव प्रतिबिम्बनात् सम्मुखे दर्पणे मुख प्रतिबिम्बवत्।

३. एषोऽस्य परमानन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति।

४. अथात्रविषयानन्दो ब्रह्मानन्दांश रूप भाक्। *निरूप्यते द्वार भूतस्तदंशत्वं श्रुतिर्जगौ।*
एषोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डैक रसात्मकः।
अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोप भुञ्जते।

"[1]तू अपनी आँखों से प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी न देख, जो कुछ देखे उसे उसी के प्रादुर्भाव का दर्पण जान"

दूसरे महात्मा उक्त अवस्था में पहुँच कर कहते हैं "[2]जब वेरंगी और बे सूरती (निराकारता) समस्त रंगों (रंगीनियों) की जड़ है तो ऐं मन । तू भी बे सूई (दिक शून्यता) की ओर चल, क्योंकि यही मार्ग किसी (प्रियतम) की ओर जाता है ।"

स्वरूप को भुलाकर शरीर को आपा समझने के पश्चात् पुन. भीतरी आकर्षण द्वारा स्वरूप की ओर चलने की अभिलाषा को स्पष्ट करते हुए हजरत मुजीब ने कहा है—"मुजीब उसने छुपकर किया तुझको जाहिर, वही तुझसे "बदला" लिया चाहता है ।"

सारांश यह कि सांसारिक पदार्थ कल्पित होने के कारण कृत्रिम मात्र हैं, इसलिये इनको सत्य न मान कर स्वप्नवत् असत्य ही समझना चाहिये और असत्य समझने से यह लाभ होगा कि समझने वाले के हृदय में इन से गहरी प्रीति नहीं हो सकती, जैसे कि जागने के पश्चात् प्रिय स्वाप्निक पदार्थों में भी प्रीति नही रहती, अपितु असत्य समझने के कारण लोग उन्हें भूल भी शीघ्र ही जाते हैं और जब सांसारिक पदार्थों की प्रीति हृदय में न रही तो वह मृत्यु के समय याद भी नही हो सकती और मोक्ष के लिए इसी की आवश्यकता है कि मरण काल में किसी भी सांसारिक पदार्थ की याद न आये जैसा कि गीता अध्याय ८ श्लोक ६ में स्पष्ट किया गया है—

"[3]अन्तकाल में जीवात्मा जिस जिस भाव का चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग करता है, उस भाव से भावित पुरुष सदा उस स्मृत भाव ही को प्राप्त होता है ।"

सारांश यह कि मरणकाल में सांसारिक पदार्थों की याद न आनी चाहिये नहीं तो यह पदार्थ उक्त भावना द्वारा जीव पर अपना ही रंग चढ़ाकर उसे मोक्ष से वंचित करके संसार ही की ओर खींच लाते हैं, अतः स्पष्ट हो गया कि मोक्ष की प्राप्ति इस असत्य बहुता को कल्पित खेल या लीला समझ कर इसके अन्तस्तल में व्यापक रूप से स्थित एक अखण्ड विश्वात्मा ही को सत्य मानने पर निर्भर है । इसीलिए सूफी लोग कहते हैं तुम[4] मरने से पहले (वैज्ञानिक मृत्यु द्वारा) मर जाओ "अर्थात् शरीर पतन से पहले तुम कल्पित संसार तथा अपने बनावटी आपा को असत्य समझकर अखण्ड विश्वात्मा में लीन हो जाओ, जैसा कि श्री शाह तालिब हुसेन ने दीवान जामेजम में उपदेश किया है :

कूद पड़ बहरे[5] फना[6] में गर है कुछ हिम्मत मुजीब, डूब जाये याकि होवे पार होनी हो सो हो ।

तथा स्वामी रामतीर्थ का भी शेर है—

तू[7] स्वयं ही अपने आपा का आच्छादक हो गया है अतः ए मन । तू बीच से हट जा और मुझे अपने स्वरूप में आने दे ।

---

१. तो अ चश्माने खुद मबीं जुज दोस्त-हरचि बनी बिदाकि मजहरे ओस्त ।
२. बेरंगिये बे सूरती आमद च् असले रंग हा-ऐ मन बेसूई दिला ईंराह रा बसे कसे ।
३. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
   तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥
४. मूतू क़ब्ल अन्तमूतू
५. समुद्र
६. वैज्ञानिक मृत्यु (विदेहत्व)
७. तो खुद हिजाबे खुदी ऐ दिल अज़ मियां बरखेज़

अब संख्या तीन (धर्म के प्रयोजन) पर विचार किया जाता है। इस सम्बन्ध में सबसे प्रथम धर्म शब्द के अर्थ पर ध्यान देने की आवश्यकता है। धर्म उसको कहते हैं जो संसार रूपी नदी में बहते हुए को पकड़ लेता है, अर्थात् पूर्वोक्त कल्पित पदार्थों और तद्गत वासनाओं को कल्पित न समझ कर उसमें फंस कर सांसारिकता की ओर बह कर जाते हुए मनुष्य को अपने विस्मृत स्वरूप (आत्म क्षेत्र) में लाकर देह और वासनाओं के फन्दे से मुक्त करा देना ही, "धर्म को बहते हुए को पकड़ लेना है और इसी को शास्त्रों में धर्म का प्रयोजन अर्थात् मोक्ष" कहा गया है। इस स्थान पर यह विवेचन भी आवश्यक है कि उक्त मोक्ष की प्राप्ति साम्प्रदायिक धर्मों द्वारा निश्चित है या वेदान्त सिद्धान्तानुसार संसार के सुखों को मृगतृष्णा के समान असत्य समझने के कारण उनमें आसक्ति छोड़कर वास्तविक आनन्द स्वरूप अपने आत्मा के साथ नाता जोड़ लेने से। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि मोक्ष के बारे में हम संक्षिप्त रूप से लिख चुके हैं कि इसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अन्तकाल में ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की स्मृति न आनी चाहिए अर्थात् उस समय ऐहिक पदार्थों की याद आने से मोक्ष नहीं हो सकता, अतः देखना यह है कि उक्त याद का न आना साम्प्रदायिक धर्मों द्वारा सम्भव है या वेदान्त के अनुसार स्वाप्निक सृष्टि की तरह सबको असत्य समझने से। विचार करने से प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक धर्मों में यह शक्ति नहीं है कि उनके अनुसार कर्म करने से मृत्यु के समय सांसारिक पदार्थ याद न आये क्योंकि हम प्रदर्शित कर चुके हैं कि जिस पदार्थ को मनुष्य असत्य समझ लेता है उससे प्रीति नहीं होती और प्रीति न होने के कारण अन्तकाल में उसकी याद भी नहीं आती, परन्तु संसार को असत्य समझा देना साम्प्रदायिक धर्मों या उनके कर्मों का कार्य नहीं है, क्योंकि समझने समझाने का साक्षात् सम्बन्ध ज्ञान से है न कि कर्मों से। अतः साम्प्रदायिक धर्मों से परिमित फल के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति की सम्भावना अत्यन्त दुस्तर है, तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी कर्म विधि निषेधात्मक होने के कारण प्रायः दुःख से बचने और सुख प्राप्ति ही के लिये किये जाते हैं, अतः ऐसे (सकाम) कर्मों से मोक्ष कैसे हो सकता है ? इसके अतिरिक्त गीता अध्याय ४ श्लोक १६ में कहा गया है कि, "क्या कर्म है और क्या अकर्म है (कर्माभाव) इसके समझने में बड़े-बड़े बुद्धिमान भी मोहित हो चुके हैं"[1] तथा श्लोक १८ में है जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है, वह बुद्धिमान योगी और समस्त कर्म करने वाला है।"[2]

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि यदि "बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं होता" इत्यादि श्रुतियों पर ध्यान न देकर हठात् कर्म से मोक्ष मान भी लिया जाय तब भी कर्म के समझने में इतने झगड़े हैं कि उससे मोक्ष की निश्चित प्राप्ति का निर्णय अति दुस्तर है। अतः हमारी सम्मति में साम्प्रदायिक धर्मों से मोक्ष का होना प्रायः असम्भव ही है।

अब वेदान्त की ओर आइये—वेदान्त सिद्धान्तानुसार हम ऊपर प्रदर्शित कर चुके हैं कि मोक्ष की प्राप्ति इस कल्पित बहुता को असत्य समझने और उसके अन्तस्तल में स्थित एक ही आत्मा को सत्य मानने पर निर्भर है, इसलिए जब ज्ञानी के लिए एक अखंड आत्मा के अतिरिक्त और किसी पदार्थ की वास्तविक सत्ता संसार में रही ही नहीं तो फिर वह फंसेगा किस में ? अर्थात् उसके लिए बन्धन कहाँ से आयेगा। इस कारण शाह नियाज अहमद साहब बरेलवी जीवन मुक्ति का अनुभव करते हुए कहते हैं :—

जब[3] हर जगह खुदा है तो फिर मैं कहा हूँ, अतः मैं खुदा (परमात्मा) हूँ, खुदा हूँ, खुदा हूँ।

---

१. किं कर्म किम कर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः

२. कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः सबुद्धिमान्मनुष्येषु सयुक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

३. चु दर आ हक बुवद मन् दर कुजायम ।
खुदायम् मन् खुदायम् मन् खुदायम् ॥

मैं[1] खुदा का प्रकाश हूँ, परमात्मा का स्वरूप हूँ यद्यपि शरीर की दृष्टि से मिट्टी ही से प्रादुर्भूत हुआ हूँ। अभिप्राय यह है कि शारिरिक बन्धनों से मुक्त नित्य आनन्द स्वरुप सत्ता मैं ही हूँ।

हजरत मोहम्मद ने कहा है कि जिसने सच्चे हृदय से कह दिया कि "ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ विद्यमान नहीं है वह बैकुण्ठ (मोक्षावस्था) पहुँच गया।

मौलाना रूम के आध्यात्मिक गुरु श्री शम्स तबरेज ने इसी अद्वैत स्वरूप मोक्ष की मस्ती मे कहा है—

ऐ मुसलमानो ! क्या तदबीर की जाये, मैं तो अपने ही को नही जानता। मैं न पारसी हूँ न ईसाई, न यहूदी, न मुसलमान।

मैं न मिट्टी से उत्पन्न हुआ हूँ न हवा न पानी और न अग्नि से, न आदम न हव्वा और न फिरदौस नामी उच्चकोटि के बैकुण्ठ से।

जब मैंने द्वैत दृष्टि को द्वार (हृदयद्वार) से बाहर निकाल दिया तो दोनों लोकों को एक देखा।[2]

मैं एक ही जानता एक ही देखता, एक ही ढूँढ़ता और एक ही को बुलाता हूँ। समस्त उपनिषद ग्रन्थ भी अद्वैत ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन करते हैं जैसा कि श्वेताश्वेतर में है—"जो लोग इस ब्रह्म को जान लेते हैं वह अमर हो जाते हैं"[1] अतः पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि जीव और ब्रह्म वास्तव में तो दोनों एक हैं, परन्तु जीव अपनी ब्रह्मावस्था को भुलाने के कारण उस राजा की तरह जीवत्व रूपी तुच्छता को प्राप्त हो गया है जो स्वप्नावस्था में अपने को रंक देखता है, अतः जब ज्ञान होने पर उसको अपने तात्विक स्वरूप का प्रत्यक्ष हो जाता है तो संसार के बन्धन से छूटकर अमर हो जाता है, जैसे कि पहले था ठीक उसी प्रकार। जैसे कि राजा जागने पर अपने को फिर राजा ही देखता है। इसी रहस्य की ओर संकेत करते हुए हजरत मुजीब ने जामे-जम में कहा है—

न मोमिन न काफिर न मौला न बन्दा, मैं जैसा था वैसा ही हूँ और क्या है।

इस सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण में मायावाद ही का प्रतिपादन किया है जैसे कि, "ईश्वर अंश जीव अविनाशी अजर अनादि सहज सुख राशी" इत्यादि से स्पष्ट होता है।

श्री गीता भी अद्वैत ज्ञान ही से मोक्ष की प्राप्ति बताती है, जैसा कि उसके बहुत से श्लोकों और विशेषतः अ० ६ श्लोक १ तथा उसके सम्बन्धी श्लोक ४–५ से स्पष्ट होता है। मेरा अभिप्राय यह है कि जिस ज्ञान को श्लोक १ में अशुभ से मुक्त कराने वाला कहा गया है, उसी का स्वरूप श्लोक ४-५ में वर्णन किया गया है जो खुला हुआ अद्वैत है। इस कारण कि उक्त श्लोकों का सारांश यह है कि, यह समस्त संसार अव्यक्त चित् शक्ति (निराकार आत्मा) से व्याप्त हो रहा है अर्थात् उसी की ध्यान रूपी कल्पना (भावना) के आधार पर उसके ज्ञान में टिक रहा है, क्योंकि ध्यान ज्ञानमय तप या योगमाया के अतिरिक्त और कोई प्रकार ऐसा नहीं है, जिससे निराकार सत्ता इन भौतिक पदार्थों में व्याप्त हो सके, इसलिए कि भौतिक व्यापकता मानने से व्याप्य के साथ व्यापक का भी भौतिक और परिमित होना आवश्यक हो जायगा और स्पष्ट है कि आत्मा न भौतिक है न

---

१. नूरे इलाहियम् मन् जाते खुदायम् मन्।
दर सूरतन् अगर्चे अज खाक आफ्तीदा ॥

२. चे तदबीर ऐ मुसल्माना कि मन् खुदरा न मीदानम् न तर साओ यहूदीयम् न गबरम् नै मुसल्मानम् ॥ न अज खाकम न अज बादम् न अज आबम् न अज आतिश न अज आदम् न अज हव्वा न अज फिरदौसे रिजवानम्। दुई रा चूं बदर करदम् यके दीदम् दो आलम् रा यके दानम् यके बीनम् यके जोयम् यके खानम् ॥

१. य एतद्विदुः अमृतास्ते भवन्ति।

परिमित। तथा श्लोक ५ में प्रयुक्त भूत भावन (भूतों को भावना द्वारा उत्पन्न करने वाला) शब्द भी संसार को चैतन्य की भावना ही बता रहा है। जैसा कि उसके अर्थ से स्पष्ट है। इन्हीं कारणों से शंकर स्वामी ने श्लोक १ की भाष्य में ज्ञान शब्द को अद्वैत ज्ञान ही मानकर अपने भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'सब कुछ वासुदेव ही है "आत्मा' ही यह सब जगत है, ब्रह्म' एक ही है, यही' ज्ञान साक्षात् रूप से मोक्ष का साधक है'। अब मैं यह विवेचन भी करना चाहता हूँ कि गीता में जो यज्ञ और निष्काम कर्म से मोक्ष बताया गया है वह मोक्ष भी अद्वैत मोक्ष से भिन्न नहीं है, अपितु उसी पर आश्रित होने के कारण उसके अन्तर्गत ही है, इसलिये कि "यज्ञ" व्यापक दिव्य शक्ति अर्थात विष्णु को कहते है, जैसा कि "यज्ञो वै विष्णु (यज्ञ विष्णु है) से सिद्ध है। अब यदि इस पर विचार किया जाय कि यज्ञ तो एक कर्म है, इस पर विष्णु शब्द क्यों बोला गया तो उचित उत्तर यही होगा कि विष्णुजी का काम समस्त संसार का पालन करना है और यज्ञ से भी परोपकार होने से संसार का पालन होता है अतः विष्णु का काम करने से यज्ञ को भी विष्णु कहा गया है, तथा सच्चा परोपकार (शुद्ध यज्ञ) उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि जिसका उपकार किया जाय उसके साथ उपकारी के हृदय में सच्ची (आन्तरिक) सहानुभूति न हो अर्थात् उपकारी, उपकार्य के दुःख और सुख से उसी तरह प्रभावित न हो जाय, जैसा कि अपने दुःख और सुख से होता है और यह बात उस समय तक सम्भव नहीं जब तक कि दोनों के बीच से भिन्नता का परदा उठ कर अभिन्नता के दर्शन न होने लगें और इस प्रतीति के दर्शन उसी समय हो सकते हैं जब मनुष्य अपने व्यक्तित्व सहित समस्त सांसारिक नाम रूपों को अपने वास्तविक आपा (विश्वात्मा) ही से प्रादुर्भूत समझकर उनसे वैसी ही प्रीति करने लगे जैसी अपने से करता है अतः स्पष्ट है कि अद्वैत ज्ञान के बिना शुद्ध यज्ञ की पूर्ति नहीं हो सकती।

इस सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि जब मनुष्य समस्त नाम रूपों को कल्पित होने के कारण असत्य समझ लेगा तो उसकी दृष्टि से सब भेद-भाव मिट जायेगा क्योंकि जीवात्मा में यह भेद शरीर के साथ अपनी एकता (तादात्म्यभाव) मानने ही से पैदा हुआ था। अतः जब शरीर न रहे तो उन पर आश्रित भेद-भाव कैसे टिक सकता है, इसीलिये जब अद्वैत ज्ञानानुसार कल्पित होने के कारण भेद मिट गया तो अपनी भिन्नता (वैयक्तिक सत्ता) का विश्वासी जीवात्मा अपने स्वत्व को भी असत्य समझकर अन्तस्तल में विद्यमान अपने सत्य स्वरूप *विश्वात्मा (परमात्मा) में लीन हो जाता है* और हम लिख चुके हैं सब रूप *विश्वात्मा* के ही रूप हैं इसलिये इस लीनता अर्थात् विश्वात्मा के साथ एकता के कारण जीवात्मा को भी सारे संसारी रूप अपने ही प्रतीत होने लगते हैं, परिणाम यह होता है कि वह समस्त प्राणियों के कार्यों में उसी तरह हार्दिक सहयोग देने के लिए कटिबद्ध हो जाता है जैसे कि अपने कार्यों में, तथा इस के इस साम्यभाव का प्रभाव जब दूसरे लोगों पर पड़ता है तो वह लोग भी इसके हितैषी हो जाते हैं, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—

पर हित बस जिनके मन मांही, तिन कहुं जग दुर्लभ कछु नाहीं।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि उक्त एकता (अद्वैत) ही के द्वारा दोनों लोकों में सुख तथा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है और यही अद्वैतानुसारिणी शुद्ध समता अकृत्रिम और दृढ़ राष्ट्रीयता है।

मेरे विचार में ऊपर के वर्णन में जीवात्मा का परमात्मा में उक्त रीति से लीन हो जाना (अपने

---

१. सर्वं वासुदेव इति
२. आत्मैवेदं सर्वम् (बृहदारण्यक)
३. एकमेवाद्वितीयम् (छान्दोग्य)
४. इदमेव सम्यग्ज्ञानं साक्षाद् मोक्ष प्राप्ति साधनम्।

व्यक्तित्व को मिटा देना) वही महायज्ञ है जिसके लिए गीता अ० ४ श्लोक २५ के उत्तरार्ध में कहा गया है—कि दूसरे योगी ब्रह्म अग्नि में आत्मा को आत्मा द्वारा हवन करते हैं तथा यह कि द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है तथा इसी अपनी सत्ता रूप आहुति के सम्बन्ध में श्री शम्स तबरेज़ ने कहा है—

मैं अपनी इस सत्तारूपी गुदड़ी को अद्वैत की मधुशाला मे सैंकड़ो बार गिरवी रख चुका हूँ, मैं तो मधुशाला का नंगा हूँ ।।

अब मैं निष्काम कर्मों (मोक्षप्रद कर्मों) से मोक्ष प्राप्ति के बारे में भी निवेदन करना चाहता हूँ । मेरा विचार है कि निष्काम कर्म बिना सर्व भूतात्मैक्य भाव (सब प्राणियो की एकता) की प्रतीति के नहीं हो सकते, कारण कि इनका आचरण केवल लोक सग्रहार्थ अर्थात् अपने आचरण रूप उपकार द्वारा लोगों को कुमार्ग से बचाने के लिए होता है और हम लिख चुके हैं कि शुद्ध उपकार बिना सब के साथ अपनी एकता के अनुभव के नही हो सकता, तथा यह अनुभव अद्वैत ज्ञान द्वारा विश्वात्मा मे लीनता ही से उत्पन्न होता है, जैसा कि ऊपर कहा गया है । अतः अद्वैत ज्ञान पर आश्रित निष्काम कर्मों से मोक्ष की प्राप्ति भी अद्वैत ही पर निर्भर है ।

अब केवल यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि अद्वैत ज्ञान से होने वाले मोक्ष के लिए कृष्णजी ने यह क्यों कहा कि "तू मुझ एक की शरण में आजा में तुझ को सब पापो से मुक्त कर दूंगा ।" इस कथन का अभिप्राय यह है कि गीता आदि शास्त्रो के अनुसार कृष्णजी की वैयक्तिक सत्ता, व्यापक सत्ता अर्थात् विश्वात्मा में लय होने के कारण विश्वात्मा ही हो गई थी, जिसका प्रमाण यह है कि श्रीकृष्ण ने समस्त गीता में अपने को व्यापक आत्मा ही माना है न कि परिमित जीवात्मा या भौतिक शरीर । जैसा कि अ० १० श्लोक २० अर्थात् अहमात्मा गुडाकेश से—लेकर श्लोक ३९—यच्चापि सर्व भूतानां बीजं तदहमर्जुन तक पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है तथा अद्वैत ज्ञान भी विश्वात्मा ही के यथार्थ ज्ञान का नाम है । अतः उसके द्वारा भेद-भाव मिट कर मोक्ष होने का अभिप्राय वस्तुतः कृष्ण रूपी आत्मा ही के ज्ञान से मोक्ष होना है, इसलिये कृष्णजी की यह प्रतिज्ञा नितान्त सत्य है कि—सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज, अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः, अर्थात् साम्प्रदायिक धर्मों की परस्पर भिन्नता, उत्पादक, निर्मूल तथा सार रहित ऊपरी प्रथा से विशिष्ट धर्मों को छोड़कर मेरे अद्वैत स्वरूप "सममाव" की शरण में आ जा मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा ।

जैसा कि कृष्णजी के पश्चात् मौलाना रूम और शेख सादी इत्यादि सूफी महात्माओं का भी सिद्धान्त है तथा मौलाना ने कहा है—"सैंकड़ों पुस्तकों और पत्रों को अग्नि में डालकर अपने मुख को दिलदार (वास्तविक प्रियतम) अर्थात् आत्मा की ओर मोड़ दे ।"[1]

शेख सादी ने भी कहा है :—

ऐ पंडितमन्ये नादान विद्वान् तू अपनी विद्या पर घमंड करता है (याद रख) कि तू परमात्मा से निकट नहीं है, प्रत्युत दूर है, जब तक कि एकाग्र चित्त के साथ एकत्व के अनुराग में मग्न न होगा, उस समय तक तू इन मन्ज और "कूहूरी" नामी पुस्तकों से खुदा को नहीं पहचान सकेगा ।[2] इतिशम् ।

---

१. सद् किताबो सद् वरक़ दर नार कुन, रूय गुरत जानिबे दिलदार कुन ।

२. ऐ आलिमे नादाँ तो दरी इल्म गुरूरी, नज़दीक तो बावर नई बल्कि तो दूरी ।
दर सिलके दिल शान कुनी वस्ले शौरीद, हरगज़ शिनासी तो बदी मन्जो कूहूरी ।।

The Activist Philosophy of Geeta

(*Shri S. D. Kulkarni, Asst. Collector, Poona*)

The orthodox section of the Indian community regards the teachings of the Bhagwad Geeta as emanating from the Lord Himself and would not admit any change in its traditional interpretation even so much as the dotting of "i"s and dashing of "t"s. It considers every word in the Lord's song as the revealed truth and would take cudgels to vindicate its stand. At the other extreme is the section which regards the Geeta teachings something as the mumbo-jumbo defying any scientific treatment of its Philosophy. The great mass of humanity in India stands bewildered and fails to find its moorings in any kind of a Philosophy of Life and leads a purposeless, hackneyed, humdrum life. The traditional poverty adds to its confusion and it is no wonder if it considers its very existence a veritable curse. Is there any hope ?

A discerning citizen would immediately guess that my answer to this question is an emphatic YES. The whole trouble arises because of the apathy of the intelligent section of the community in not interpreting the activist philosophy of Geeta, endowing our very existence, with a purpose, viz., the joy of living one's life fully and helping our brethren to live theirs the same way. My endeavour here would be to prove that the philosophy of Geeta is not some mumbo-jumbo as the so-called rationalists would put it or the Gospel of Inaction (सन्यास) and other worldliness as the orthodox would put it. It is a code of conduct for the man as an individual member of the society and in his relationship towards Society.

Geeta tells us that all the living creatures are the product of food and food is possible through rains. The rains come because of sacrifice and sacrifice is another name for selfless action. Such action is the very nature of the Immanent Self (ब्रह्म). The plain message contained in this couplet is the clarion call to everybody to be up and doing. The God Himself through selfless action sets the world moving and causes rain. It is the duty of man who has been endowed with necessary intelligence and equipment to pursue the same path of Selfless Action and increase the well being all around. Everybody is called upon to do his utmost to add to the sum total of happiness of the Society by producing more and more. This in other words means a call to produce in co-operation or perish.

The Geeta's ideal कर्मयोगी is one who works hard according to his capacity [illegible] the good of the Society as a whole. He does his duty but ever [illegible]

selflessly, he is said to act in Him (the Society). In Geeta, the Blessed Lord is exhorting अर्जुन and through him the whole mankind, to do his utmost for the Society (सर्वभूतहिते रता:). He tells us that when such action is forthcoming, the Lord is pleased. The Geeta's Gospel of कर्म is not an individualistic, selfish action of attaining Liberation or Salvation with utter disregard to the Society in which the man lives. Liberation is not some state to be attained after death. Liberation is that state of mind in which a man pursues selfless action according to his capacity for the good of the society undisturbed by the pleasure or pain caused to him consequent on such persuit of action.

This is plain enough but this ideal of Selfless action (निष्काम कर्म) placed by the Geeta before mankind has so far reached the man in a strange and peculiar garb. The interpreters of the गीता like Shankaracharya, Dyaneshwar etc., apart from their emphasis on the Path of Knowledge or Path of Love towards the goal, namely, Liberation, have discussed this Life as the result of sin and consequently have enjoined on us to understand this worldly life as the one bundle of miseries or the cycle of sufferings. As a result, their idea of Liberation is to reach that stage wherein the Soul has not to suffer the miseries of this life again, *i.e.*, to avoid Rebirth.

Lokmanya Tilak, the modern Apostle of the Gospel of Selfless Action as preached by the Geeta, nevertheless accepts the Theory of Rebirth and Liberation as traditionally interpreted to us by the Acharyas before him. The net result is the utter confusion in the mass mind as regards the purpose of life. If the life is full of miseries and if the aim is Liberation, *i.e.*, to avoid the cycle of births and deaths, one is ordinarily impelled to ask the question why not attain that Liberation by concentrating on Him by renouncing this world. In a world full of contradictions and dualities like the pleasure and pain, heat and cold, success and failure, is it not better to retire from this active life and think of God in seclusion ? Undisturbed selfless action as preached by Geeta, he argues, is well-nigh impossible for the man of the society and as compared to this, to retire into one's shell and think of God alone is much easier provided one is somehow able to get minimum food apart from clothing and shelter—as a सन्यासी would retire to a cave in a jungle wherein these things would be unnecessary.

These are legitimate questions which defy satisfactory and rationalistic answers. The rationalistic mind, therefore, thinks of even selfless action for the attainment of traditional Liberation as the mumbo-jumbo of the confused mind.

To my mind, this confusion arises because of our wrong view of life. We regard this life as something, the result of our sins of commission and ommission in our previous life. Naturally, we are taught to be prayerful to God and request Him to

liberate us from this result of sin, namely, the life. How strange is our way of thinking ! If anybody does not get a son or a child, he would pray to God to give him one. And what is this child, but the result of sin.

I am afraid, we have not clearly understood the plain meaning of the couplet "अन्नाद भवन्ति भूतानि", etc., God's effort is to set this world in motion and to continue the motion and our effort is to stop this motion. We are really working against God's will and so we are caught in the mess of self-created confusion. Let us see what God has Himself said about this world and its inhabitants, animate and inanimate :

"*Oh Arjun ! this universe is created by My power under My direct super-intendence.* With this object of Mine, the whole cycle of creation, animate and inanimate goes on uninterruptedly (9-10). Alongwith the creation, I also showed it the way of achieving commonwelfare, namely, by collective action (यज्ञ), (3-10). He who goes *against this cycle of creation is a selfish rogue (3-16). A man should, therefore, do* his appointed duty selflessly for the good of the society as a whole (3-17, 18-19). I have, in fact, nothing left for which I should strive, but in order that people should not misunderstand Me, I carry on My duties in a detached manner for the good of society (3-22). *If I do not act in the manner I do, all the people would follow My Path* and the whole creation would go to dogs and the creation would perish (3-24)." (Mark the Lord's desire throughout to continue His creation).

"Oh Arjun ! it is My custom to appear on this earth whenever I find that the *demonical type of people rear their head and make life impossible for the good.* I destroy the wrong-doers (4-8). [This clearly expresses the anxiety of the Lord to establish moral order in this universe. It does not talk of Liberation. Whenever He talks of Liberation, the emphasis is on ending unhappiness accruing to the man due to his senseless attachment to property and the pleasure of the senses. According to the Lord, the perfect mental equipoise in whatever circumstances, pleasing or unpleasing, attained by the man is Liberation (मोक्ष)]. I do my duty selflessly to uphold the moral order in the society. Because of this, I am not disturbed by success or failure of My action (4-14). This is the Path followed by all those who are after मोक्ष. I, therefore, enjoin on you to do the same (4-15)."

(This clearly shows that गीता considers this to be the quality of those who are after मोक्ष, namely, to strive to attain the state wherein selfless action is possible.)

"He is really the happiest person who while on this earth, is able to conquer completely the unbrided desires of the senses. Such a person alone is able to achieve Liberation (5-23-24)."

Here again, the emphasis is on mental happiness. "I, therefore, tell you,

Oh, Arjun ! that he is the real yogin who looks upon all My creations with the same feeling as he would look upon himself. Such a yogin even while he is engaged in all sorts of duties for the welfare of the society, can be considered to be acting in God alone (6-31-32). (Please mark the emphasis on performing one's duties for the welfare of the society.) Oh Bharat, please remember that I am the source of all creation and I am also its seed (14-3)."

The whole description given in the 16th and 17th chapters about good and bad people, about good food, good gift, etc., is the directive to men how to behave properly in this world. The whole conception of Hindu religion is based on good behaviour in this life. But this aspect is lost sight of and we have allowed ourselves to be enmeshed in the thinking of so-called things spiritual. This has blinded even the best brains of the society towards social good. We tolerate uncleanliness even at our places of worship, we tolerate poverty thinking that it is God's will. We have allowed to develop in the masses a feeling of apathy towards collective good. Even dirty streets and dilapidated condition of houses in places of pilgrimage like Varanasi and Pandharpur do not rouse us to constructive and collective action.

From all this, it is amply clear that it is God's strong will to continue His creation, while it is man's desire to achieve Liberation, *i.e.*, extinction of human species. Obviously, man cannot succeed against God's will. The only result will be, for the man to run after a mirage and come to utter grief and miss the goal of real Liberation, *i.e.*, to serve by selfless action the mankind and lead it to greater and still greater heights, mental, moral and physical. God has given us power of reasoning and capacity to lead an organised social life, with this sole aim of ushering on this earth the co-operative commonwealth of man, wherein each individual is assured of every opportunity of bettering his worldly lot in a moral way. It is not God's will that His best representative on this earth, the man, should renounce the world the day he realises the utter futility of leading this worldly life (यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ।) This whole attitude of mind that this world is a dreadful place to live in and that this life is full of misery and the aim of man's span of life on this earth is to reach the state wherein further life on this earth becomes impossible, has arisen out of the misconception of the Theory of Liberation and Rebirth.

The real understanding of the aim of life comes with the acceptance of the plain meaning of what God has said about this world and its inhabitants. Even Dyaneshwar has told us that this world is not an illusionery one. It is the manifestation of God Himself (चिद्विलास). In other words, the universe is God and nothing else. If Universe is God, then we all are part-God (अंशात्मक). Even the Advait Vedanta tells

us the same. How can that what is God—our life also is manifestation of God—be had in any sense ? If this is so, how can it be the aim of *life to stop the cycle of births* and deaths. Even श्रुति's tell us that this manifested world is the play of the God Himself. He has created this world for his pleasure (लोकवत्तु लीला कैवल्यम्). The aim is, *therefore*, to love life. Love of life cannot be achieved in its true perspective unless one learns the art of doing selfless action for the good of society. And good of society is nothing but bettering its wordly lot. When the whole universe is God, it is logically proved that there is no other world like Heaven or Hell. Other worldliness has, therefore, no meaning. While we are taught to love other worldliness utterly disregarding man's duty to his fellow beings, we are asked to know God, realise God (साक्षात्कार) without knowing what God is. God is conceived in some abstract terms and we are asked to concentrate on this Abstract God. The common and religious man who is interested in the pursuit of knowledge, knowing what man is, what is the purpose of his being on earth, etc., is caught in this purposeless passivity and the other so-called worldly man is engaged *in the pursuit of his worship of his God, viz., the mammon even through* immoral means.

To achieve सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् in life is the purpose of life. As Dr. Radhakrishnan has aptly put it the ideal of the devotee of Geeta is one in whom love is lighted up by knowledge and bursts forth into fierce desire to suffer for mankind. Or, as the महाभारत Poet has put it, "Oh, ye man, follow the righteous path and you are sure to gain worldly goods and desires (धर्माद् अर्थश्च कामश्च)."

●

विचार क्रान्ति का रूप

[लेखक स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक, सत्यज्ञान निकेतन, ज्वालापुर, हरिद्वार]

आधुनिक युग में क्रान्ति शब्द अपना एक विशेष आकर्षण रखता है। इसके उच्चारण से भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप लोगों के मन में आते हैं। अधिकांश प्रजा तो इस शब्द से सामाजिक गड़बड़ का चित्र अपने मन में खींचने लग जाती है; कुछ इस प्रकार के व्यक्ति हैं जो क्रान्ति से रक्त रंजित विद्रोह की तसवीरें अपने मस्तिष्क में बनाने लगते हैं; कुछ ऐसे भी हैं जो क्रान्ति को प्रगतिशीलता का महान व्यापक क्षेत्र समझते हैं। और इससे नवीन प्रकार के सुधारों की आशाएँ अपने मन में बांधने लगते हैं—संक्षेप में यह शब्द भिन्न-भिन्न विचारकों के लिये अलग-अलग उपक्रम पेश करता है।

ईसा की १६वीं शताब्दी के मध्यभाग में जब अपनी संस्कृति के फैलने के कारण यूरोप के शिक्षित समुदाय ने स्वतन्त्र सोचना सीखा और वे रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की जंजीरों से मुक्त होने लगे तो उन्हें अपने

अपने राष्ट्रों के नागरिकों की सामाजिक आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों पर गम्भीरता से विचार करने का अवसर मिला और वह शताब्दि क्रान्ति की जननी बन गई। यों तो संसार के सब से बड़े क्रान्तिकारी भगवान बुद्ध भारत में उत्पन्न हुए और उन्होंने पुरोहित वर्ग के विरुद्ध क्रान्ति की आवाज उठाई। उन्होंने स्पष्ट तौर से कह दिया कि वे प्राचीनता को उसी सीमा तक मानेंगे जहाँ तक वह न्यायशीलता और सच्चरित्रता को समाज में आगे बढ़ाएगी। उन्होंने घोषणा की कि यदि वेद निरपराध पशुओं के मारने की आज्ञा देते हैं तो वे उनके आदेश को कदापि नहीं मानेंगे। और यदि वेदों का ईश्वर समाज में विभिन्नताएँ रखता है और एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर अत्याचार करने की शिक्षा देता है तो वे उस भगवान को मानने के लिये भी उद्यत नहीं हैं। उनकी इस घोषणा ने भारतवर्ष के संगठित समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। वह युग था मस्तिष्क की स्वाधीनता का। भारतीय संस्कृति समाज के लिए विचार स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। इस कारण भगवान बुद्ध ने बिना किसी सेना के उस अपनी क्रान्ति को, अपने भिक्षुओं के चरित्रबल के आधार पर सफल बनाया और उसका डंका सारे एशिया में बज गया।

उन्ही आर्यों के वंशज जब यूनान के टापुओं में जाकर बसे तो वहाँ उनके बीच युग प्रवर्तक संत सुकरात ने जन्म लिया, जिसकी शिक्षाओं के कारण यूनान के उन टापुओं में सत्य ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठा। यूनानियों की यह क्रान्ति पाश्चात्य जगत के लिये मंगलमय सिद्ध हुई। प्लेटो और अरस्तू जैसे वैज्ञानिक शिक्षकों ने अपने शिष्यों के मस्तिष्क को स्वतन्त्र कर दिया और विचार क्रान्ति की एक नीरोग विचारधारा पश्चिम की ओर बहने लगी। योरप के विश्वविद्यालयों में इसी यूनानी संस्कृति के कारण अद्भुत जागृति पैदा हुई, और उस महाद्वीप की भावी उन्नति का कारण इसी यूनानी संस्कृति के इतिहास में छिपा हुआ है।

यहाँ हम वर्तमान कालीन क्रान्ति की चर्चा करना चाहते हैं। लेकिन, पृष्ठभूमि के तौर पर हमें यह बतलाना आवश्यक है कि रक्तरंजित क्रान्तियों के पहले अहिंसा द्वारा जो क्रान्तियाँ विश्व में लाई गईं उनकी तह में कौन सा सिद्धान्त काम कर रहा था। बौद्धमठ में पढ़ने वाला यहूदी कुमार यीशू ख्रीष्ट वहाँ से प्रेरणा पाकर जब अपनी जन्मभूमि जेरूसलम में गया तो उसने अपने समाज के यहूदियों के सामने पुराने सभी पैगम्बरों के विरुद्ध अपना नवीन सन्देश (New Testament) सुनाया। उस सन्देश की उसको बड़ी कठोर कीमत चुकानी पड़ी। उसके अपने लोगों ने ही उसके विरुद्ध रोमन शासकों के पास जाकर उनके कान भर दिये और यीशू ख्रीष्ट बलिदान होकर हजरत ईसामसी के नाम से विश्व में विख्यात होगये।

उन घटनाओं को शताब्दियाँ बीत गईं और बहुत सा पानी पुल के नीचे से निकल गया—बड़े-बड़े विजेता आये। वे अपने हिंसक कुकृत्य करके चले गए। उनके समय में जो क्रान्तियां हुईं वे हिंसा से परिपूर्ण थीं। क्रान्ति क्यों जन्म लेती है? इस प्रश्न के उत्तर में हम एक उदाहरण देकर समझाते हैं। ऊपर जिन क्रान्तिकारियों का नाम हमने दिया है वे थे अहिंसावादी; किन्तु जिन क्रान्तिकारियों का जिक्र हम लोग आधुनिक इतिहास में पढ़ते हैं वे सब जबर्दस्त हिंसावादी थे। कार्लमार्क्स जर्मनी की प्रसिद्ध रियासत प्रशिया में पैदा हुए थे। वहाँ पर उस समय में राष्ट्रीयता के सूर्य का उदय हुआ था। जर्मन जाति उसके प्रकाश से पुलकित होकर अपने को ही सब कुछ समझने लग गई थी। यहूदियों के साथ जर्मन शासक न्याय का व्यवहार नहीं करते थे। कार्लमार्क्स के मस्तिष्क में उस अन्याय की भीषण प्रतिक्रिया शुरू हुई और उन्होंने राष्ट्रीयता के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयता की लहरों को पकड़ना प्रारम्भ कर दिया। जर्मनी छोड़कर वे स्विटजरलैंड चले गये और वहीं से सोच-सोचकर उन्होंने (Das Capital) अर्थात् पूंजी के आधार पर समाज में कैसे-कैसे भयानक और भिन्न विकार उत्पन्न हो जाते हैं उसकी मीमांसा की। उनकी उस पुस्तक ने मजदूर समाज में उथल-पुथल मचा दी। उस समय तक मजदूरों में साम्प्रदायिकता का जोर था। वे मजहब की दीवारों के कारण एक दूसरे के पास नहीं आ सकते थे।

जब कल कारखाने बने और सब प्रकार के मजदूर पेट की ज्वाला बुझाने के लिए गाँव छोड़कर नगरों में आने लगे तो उन्हें आपस में मिलने वाला एक नया सीमेण्ट मिल गया। कार्लमार्क्स की पुस्तक ने उन पर जादू किया और वह किताब योरोप की सब भाषाओं में अनूदित होकर मजदूरों के हाथ पड़ गई। शताब्दियों से सम्प्रदायों में जकड़े हुए वे मजदूर अन्तर्राष्ट्रीयता का अमृतपान कर अपने आपको धन्य मानने लगे।

हम यहाँ पर क्रान्ति का इतिहास नहीं लिख रहे हैं। हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि विचार क्रान्ति का रूप क्या है, क्रान्ति उसी व्यक्ति के मस्तिष्क में उत्पन्न होती है जो उसके लिये अपना सर्वस्व होम कर देता है। जिसने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपना ही पेट पालना सीखा है वह नर पशु भला क्रान्ति के महत्व को क्या जाने ? शाक्य मुनि ने राजपाट छोड़ दिया, प्यारी लाडली स्त्री और एकमात्र पुत्र छोड़ दिया—अपना यह सब बलिदान करने से उन्हें क्रान्ति का मार्ग मिला—उनके ज्ञानचक्षु खुल गये—वे अपने उस समाज में उन बुराइयों को देखने लगे जिन्हें संस्कृत के बड़े २ विद्वान धुरन्धर पण्डित नहीं देख सके थे। विचार क्रान्ति का जीता जागता चित्र उस व्यक्ति के मस्तिष्क में आकर उपस्थित होता है जो अपनी खुदी को भूल जाता है और केवल दूसरों के लिए जीना जानता है। ऐसे लोग द्वेषवश क्रान्ति नहीं किया करते। उनमें बदले की भावना नहीं होती। ऐसे परोपकारी व्यक्ति दूसरों के लिये हालाहल विष पी जाते हैं और संसार में अमृत की वर्षा कर जाते हैं।

हम हैं आज ईसा की २०वीं शताब्दि में जब राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की गुत्थम-गुत्था हो रही है। जब विज्ञान ने देशों की दूरी को समाप्त कर हमें एक दूसरे के पास लाकर खड़ा कर दिया है—अब हम एक दूसरे को पहचानने लगे हैं—ईश्वर के चुने हुए पुत्र पुत्रियाँ कोई नहीं और ना उसने कोई विशेष ग्रन्थ अंजील अथवा कुरान अपनी मोहर लगाकर हमारे लिये भेजा है। वह प्रभु सारे संसार के लिये विश्व ज्ञान देता है। और प्रत्येक स्त्री पुरुष के मस्तिष्क में ज्ञान प्राप्ति के साधन जुटाता है। हम अपने पुरुषार्थ से उन साधनों की सहायता से अपने सामने खुली हुई प्रकृति की दिव्य पुस्तक से शिक्षाएँ ले सकते हैं और समयानुसार आवश्यकता के साधन जुटा सकते हैं। अन्तिम सच्चाई कोई नहीं है। कोई पैगम्बर रसूल और अवतार तुम्हें अन्तिम सचाई बताने नही आयेगा। हमें अपने अन्दर ही उस नवीनता को तलाश करना चाहिए जो हमारी मोक्षदायिनी है इसलिए विचार क्रान्ति का रूप उसी व्यक्ति को दिखाई दे सकता है, जिसने स्वतन्त्रता से विचार करना सीखा है। ईश्वरीय पुस्तकों, पैगम्बरों, गुरुओं और अवतारों के खूँटों से बँधे हुए व्यक्ति कोल्हू के बैल की तरह उन्हीं खूँटों के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं।

लीजिये एक नया उदाहरण। सन् १८५७ में भारत के लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र विद्रोह किया, जिसे ब्रिटिश शासकों ने बड़ी क्रूरता से खतम कर डाला और यह प्रण कर लिया कि हिन्दू मुसलमानों का संगठन कभी नही होने देंगे। शासन की उसी नीति के आधार पर सब वाइसरायों ने अपना शासन चलाया और भेद बुद्धि उत्पन्न कर संगठन की सब आशाएँ मिटा दी।..... तब उठे महात्मा गाँधी, उन्होंने एक नया तरीका संगठन का निकाला और अपनी क्रान्ति का नया चक्र चलाया। अंग्रेजी शासकों के ये दो बड़े जबर्दस्त हथियार—पुलिस और खुफिया पुलिस—महात्मा गांधी ने इन दोनों को अपने वश में कर लिया। उन्होंने गुप्त काम करने की नीति को त्याग कर खुला जीवन बनाया और खुफिया पुलिस के सामने अपनी सब स्कीमें खुली रख देने की रीति अपनाई। यह था नवीन ढंग और क्रान्ति का अद्भुत मार्ग। इसने अंग्रेजों के दोनों हथियारों को निकम्मा कर दिया और वे अंग्रेज शासक चकित हो कर उस लंगोटबन्द नेता को देखने लगे। बिना हथियारों के बिना शस्त्रों से सुसज्जित फौज के उस महान क्रान्तिकारी बापू ने सन् १९४२ में महान साम्राज्य के स्वामी अंग्रेजी शासकों को यह कह दिया—Quit India—भारत त्याग कर चले जाओ। यह वह तिलस्म की छड़ी थी, जिसे देखकर सारे

दुनिया दंग रह गई। इसे कहते हैं विचार क्रान्ति और पाँच वर्षों के अन्दर जिस अंग्रेजी राज्य पर सूर्य-अस्त नहीं होता था वह भारत से निकल भागा। हम क्या अलफ लैला की कथा कह रहे हैं? आने वाली सन्तानें तो इस इतिहास को पढ़कर दाँतों तले अँगुलियाँ दबायेंगी; परन्तु हम हैं उस क्रान्ति के गवाह। है न यह हमारा सौभाग्य?

अतएव विचार क्रान्ति की महिमा को वही समझ सकता है जिसके मस्तिष्क में से स्वार्थ बिल्कुल निकल जाता है और जो निष्काम भाव से कर्मयोग का पथ पकड़ता है। यह यश प्राप्ति का मार्ग नहीं है, यह दुनिया को डराने धमकाने का रास्ता नहीं है, यह बड़े-बड़े नगरों और विश्वविद्यालयों को बमों से उड़ाने का पथ नहीं है, यह अपनी ईगो (खुदी) को मारने का मार्ग है। जब व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के माया जाल से निकल जाता है जब मनोविकार उसको सताते नहीं, जब भोगविलास की चकाचौंध उसके मन को चंचल नहीं करती, वह स्थित प्रज्ञ पुरुष जिसने अपने आपको वश मे कर लिया है, जो ईश्वर प्रविधान का मार्ग पकड़ कर उसके लिये पुष्प मालाएँ बनाने लग जाता है उस व्यक्ति को सत्य, शिव और सुन्दर निहाल कर देते हैं। उसकी सब गाँठें खुल जाती हैं। और विचार क्रान्ति का सच्चा स्वरूप उसे दिखाई देने लग जाता है। विचार क्रान्ति विनाश में नहीं सुन्दर रचनात्मक कार्य में है। संसार में हम सब हालाहल विष फैला रहे हैं। राग द्वेष के वशीभूत होकर झगड़े फसाद और युद्धों के बीज बो रहे हैं।

आइये, हम सब उस मंगलमय शिव भगवान की तरह हालाहल विष पीना सीखें और उसके स्थान पर विचार क्रान्ति का सुन्दर कल्याणकारी रूप अपने जीवन में दिखलाएँ तभी संसार का उत्थान हो सकता है। लेकिन—

हाँ, एक आवश्यक बात तो मैं भूल ही गया। मैंने अपने प्रेमी पाठकों से यह निवेदन किया था कि आजकल मेरे अन्दर विचार क्रान्ति की भीषण लहरें उथल-पुथल मचा रही हैं और मैं उनके विषय में दिन रात सोच में पड़ा हुआ हूँ। वह मेरा मानसिक तूफान क्या है—इसे जरा विस्तार से सुनिये।

सन् १९०५ के अन्त में मैं फिलिपाइन द्वीप समूह की राजधानी मनीला में था। यहाँ पर मि० विलण्टन सी स्काट नाम के एक अमरीकन सज्जन से मेरी भेंट हुई। वे सरकार के शिक्षा विभाग में हैडक्लर्क थे। "मनीला टाइम्स" में मेरा एक लेख छपने पर उन्होंने मुझे अपने घर बुलाया और आग्रह किया कि मै उनके पास रह कर उन्हें उपनिषदें पढ़ाऊँ। कुछ समय की वाकफीयत के बाद उन्होंने मुझ से यह अनुरोध पूर्वक प्रस्ताव किया कि मैं देश की स्वाधीनता के प्रश्न को पीछे फेंक कर भारतीय संस्कृति के मिशन के प्रचार का काम उठा लूँ और स्वामी विवेकानन्द जी की तरह अमरीका में संगठित कार्य करूँ। इस पवित्र कार्य के लिये उनके पास काफी पैसा था और वे मेरी हर तरह से सहायता करने को तैयार थे। लेकिन मैं तो निकला था स्वतन्त्रता की खोज मे। इसलिए उनका प्रस्ताव मैंने ठुकरा दिया, और उन्होंने मुझे कुछ महीनों के बाद अमरीका का टिकट कटा दिया।

युनाइटेड स्टेटस् आफ अमरीका में अपनी पढ़ाई समाप्त कर और वाशिंगटन स्टेट विश्वविद्यालय का स्नातक बन कर जब मैं निकला तो सीयेटल नगर के मि० एडवर्ड जेम्स ने मुझे यह सत् परामर्श दिया कि मैं न्यूयार्क की कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में जाकर डाक्टर की डिग्री प्राप्त करलूँ। मैंने उनकी बात भी नहीं मानी, क्योंकि मुझे तो स्वतन्त्रता की तलाश थी, जिसे मैं अपने देश में ले जाना चाहता था। अमरीका में घूमता घामता २३०० मील पैदल यात्रा करता हुआ जब मैं कार्नेगी के प्रसिद्ध नगर पिट्सबर्ग में पहुँचा तो वहाँ की वेदान्त सोसायटी ने मेरे व्याख्यान करवाये। वहाँ मेरी भेंट मि० हिल से हो गई। वे भी बड़े धनी व्यक्ति थे। उन्होंने भी मुझसे अमरीका में रहने और वेदान्त का प्रचार करने की सलाह दी और आर्थिक सहायता देने का वचन

दिया। मैंने उन का प्रस्ताव भी नहीं माना; क्योंकि मेरे मस्तिष्क में तो भारत की दासता दूर करने का संकल्प था और मैं उस पर दृढ़ था। इस प्रकार अमरीका में मुझे बहुत से ऐसे अवसर मिले जो सांसारिक दृष्टि से मेरे भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाले थे। जब मैं शिकागो विश्वविद्यालय में पढ़ता था तो मैंने बादशाह एडवर्ड की आधीनता त्याग कर अमरीका की नागरिकता के अधिकार प्राप्त किये थे। अमरीका का नागरिक बनकर मैं उस स्वतन्त्र देश में बड़े मजे से जीवन व्यतीत कर सकता था, लेकिन मैंने अपनी धुन को नहीं छोड़ा।

सन् १९११ के जौलाई मास में मैं भारत लौट कर इलाहाबाद पहुंच गया और लगा अपने संकल्प को पूरा करने। उन सब का वर्णन मैंने अपनी "स्वतन्त्रता की खोज में" नामक पुस्तक में किया है। अब यहां पर इस लेख में मैंने उपरोक्त घटनाओं का वर्णन क्यों किया और उन शुभ अवसरों को हाथ से जाने देने की बातें क्यों लिखीं?

प्यारे पाठक, सन् १९४७ के अगस्त मास में देश को वह स्वाधीनता मिल गई, जिसकी मुझे तड़प थी। आज १० वर्षों के बाद अपने सत्यज्ञान निकेतन की गुफा में ज्वालापुर बैठा हुआ मैं अपने पिछले जीवन का सिंहावलोकन कर रहा हूं। मेरा मन कहता है कि यदि तू मि० स्काट अथवा मि० हिल के प्रस्ताव को मान लेता तो कितना अच्छा होता? देश की वर्तमान दुर्दशा को देखकर मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है। आज के भारतवासी कैसे स्वार्थी, कैसे लोभी, वंचक और इन्द्रियों के गुलाम हैं। क्या इन्ही के लिए मैं स्वतन्त्रता की खोज करने अमरीका गया था? मेरा अन्तःकरण कहता है कि सदियों की राजनीतिक गुलामी के कारण यह आर्य जाति डी जैनेरेटेड हो चुकी है। इसके समाज में बड़े भयंकर निकम्मे पौदे उत्पन्न हो गये हैं जो नीरोग पौदों का भोजन चट कर जाते हैं। जब तक हम कुशल किसानों की तरह भारत रूपी खेत की निराई कर इन निकम्मे पौदों को उखाड़ नहीं फेंकेंगे, तब तक यह देश कदापि भी स्वाधीनता का आनन्द भोगने के योग्य नहीं बन सकता। अमरीकनों ने गाय की नसल को भी श्रेष्ठतम बनाकर अपने देश में दूध की नदियां बहा दी है, लेकिन हम यहां पर दूध में पानी डालकर बेचते हैं। है न यह डूब मरने की बात? यह भीषण क्रांति की लहरें मेरे अन्दर उथल-पुथल मचा रही हैं। नेत्रहीन मैं अकेला अपनी गुफा में बैठा हुआ अपने हाथ से भोजन बनाकर जीवन के दिन काट रहा हूँ। मैं किस प्रकार ऐसी क्रान्ति लाऊं जो मेरा जीवनोद्देश्य सफल हो सके और भारतवासी अपनी स्वाधीनता के द्वारा सुख समृद्धि पा सकें। निकम्मे पौदों को उखाड़ फेंकने के लिये कोई महान् शक्तिशाली व्यक्ति चाहिये, जो हिंसा अहिंसा के पचड़ों से ऊपर उठ सके। जो गीता के शब्दों में मृत्यु के रूप में पुराने कपड़े उतार कर नये कपड़े पहनना सिखाता हो। ऐसा तत्वदर्शी महापुरुष ही इस पतित आर्य-जाति का पुनरुद्धार कर सकेगा, मैंने इस लेख में अपने हृदय की कसक देश वासियों के सामने रखी है और परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि इस करोड़ों की आबादी के देश में कोई माई का लाल मेरी इस चीत्कार को सुने और इसे हृदयंगम कर सच्ची स्वाधीनता लाने का प्रयत्न करे।

सन्त सुधारकों की कृति का मूल्य

[लेखक भारतीय इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान, प्रोफ़ेसर जयचन्द्र जी विद्यालंकार]

भारतीय राष्ट्र का जीवन प्राचीनकाल में चाहे जिन उतार-चढ़ावों में से गुजरता है, उन सब के बीच वह एक जिन्दा राष्ट्र का ही जीवन है। जीत-हार सब किसी की होती है, पर कोई जीवित राष्ट्र एक हार से पस्त होकर गिर नहीं जाता। वह फिर उठकर खोई भूमि को वापिस लेता या किसी और दिशा में उसकी पूर्ति कर लेता है। भारतीय राष्ट्र की ठीक वैसी दशा हम समूचे प्राचीन काल में अर्थात् आर्य राज्यों के उदय से लगभग ५३५ ई० तक पाते हैं। राज्य क्षेत्र में, विज्ञान, वाङ्मय, कला और दार्शनिक चिन्तन में एक से दूसरे युग तक आते हुए लगातार किसी रफ़्तार से प्रगति जारी रहती है।

इसके बाद कुछ अन्तर दिखाई देने लगता है। राज्यक्षेत्र का कोई अंश यदि एक बार छिनता है तो उसे वापस लेने की चेष्टा नहीं होती। बेशक, भूमि का कोई टुकड़ा छोड़ने से पहले डट कर लड़ा जाता है; पर एक बार छूटने पर वह प्रायः वापस नहीं मिलता। जनता अपने सामूहिक राजनीतिक अधिकारों और कर्तव्यों के लिए पहले सी सजग नहीं रहती। इसी से छठी शताब्दी से गणराज्य मिट जाते हैं; शासन के निरंकुश होने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे जगने लगती है। कला मे सौन्दर्य जारी रहता है और कारीगरी के बड़े-बड़े चमत्कार करके दिखाए जाते हैं, पर उनमें गुप्त युग का सा ओज और सरलता दिखाई नहीं देती। विज्ञान और दर्शन मे विचार की प्रगति रुक जाती और पिछले विचारों के भाष्य और भाष्यों पर टीका करने में ही बुद्धि का कौशल प्रकट होता है। धर्म में अन्धविश्वास और ढोंग घर बनाने लगते हैं। ९२० ई० तक यों थोड़ी भूमि खोने और थोड़ा ह्रास-ग्रस्त होने के बावजूद भारतीय राष्ट्र अपने स्थान पर डटे रहने की चेष्टा करता है।

पर संसार के इतिहास में आगे बढ़ना छोड़ कर कोई अपने स्थान पर टिका नहीं रह सकता। ९२० ई० के बाद मे ह्रास की रफ़्तार स्पष्ट बढ़ जाती है। ११९०-१३२५ ई० के बीच तो ऐसी दशा आ जाती है कि भारतीय राज्य एक एक ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, अथवा बिना कोई ठोकर लगे अपनी भीतरी जीर्णता से ही टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। समाज के आपसी बर्ताव में संकीर्णता आ जाने से लगभग ११५० ई० से वह जात-पाँत के अलग-अलग खानों में टूटने लगता है। कला में कोई नई प्रेरणा नहीं दिखाई देती, भोंडापन और अश्लीलता भी आ जाती है।

इस पतन के कारणों पर हम विचार करते तो पाते हैं कि वे सर्वथा भीतरी हैं। महाराष्ट्र के जिस राजा रामदेव के राज्य पर चढ़ाई कर अलाउद्दीन उसके भीतर २५० मील तक बेरोक टोक बढ़ जाता और फिर उसकी दुर्भेद्य राजधानी देवगिरि को दो दिन में ले लेता है, उसके मन्त्री हेमाद्रि का लिखा ग्रन्थ चतुर्वर्ग चिन्तामणि प्राप्य है, जिसमें हिन्दुओं के धार्मिक, सामाजिक कर्तव्यों का ब्यौरा है। उसी प्रकार के उसी शताब्दी के काशी और मिथिला के पण्डितों—नीलकण्ठ, कमलाकर भट्ट आदि—के ग्रन्थ भी प्राप्य हैं। इन ग्रन्थों में हिन्दू धर्म का जो रूप है उसके अनुसार प्रत्येक नैष्ठिक हिन्दू को बरस भर में लगभग २००० व्रत, पूजा, अनुष्ठान करने चाहिए—अर्थात् प्रतिदिन साढ़े पाँच। जिन राज्यों के संचालकों का सारा ध्यान इन पूजाओं पर्वों पर लगा हो वे अपनी सीमाओं की रक्षा कैसे करते अथवा अपने राज्यों में व्यवस्था कैसे रख सकते हैं? समाज का केवल धनी निठल्ला वर्ग ही ऐसे धर्म को निभा सकता था, और वह भी इस कारण कि जिनके खून-पसीने की कमाई पर वह ऐसा निठल्ला जीवन बिताता वे दबे हुए सब कुछ सहते हुए कोल्हू के बैलों की तरह श्रम करते जाते थे।

जिस मलिक काफ़ूर ने दक्खिन के सारे हिन्दू राज्यों को एक-एक ठोकर से तोड़ गिराया वह स्वयं पहले हिन्दू मज़दूर था—घेड़ जात का जो गुजरात में गाँवों के बाहर रहते और बर्तन माँजते हैं। वह हिन्दू रहता तो आयु भर बर्तन ही माँजता रहता, पर मुस्लिम बनने से उसकी महत्वाकांक्षा और सेना-संचालन की प्रतिभा जाग उठी और उसने दक्खिन भारत का नक्शा पलट दिया।

लगभग १३०० ई० से ही इस दशा के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगती है और इस मानसिक मकड़ी-जाले को साफ करने की चेष्टाएँ होने लगती हैं। जिन सुधारकों की परम्परा ने इस कार्य को किया वे हमारे इतिहास में सन्त कहलाते हैं। सन्तों ने जटिल क्रियाकलाप तथा घोर घोर अश्लील पूजाओं का स्थान भक्ति और हृदय की सरलता को दिया। भक्ति और हृदय की सरलता छोटे बड़े सबके लिए एक समान साध्य थी, इसलिए धर्म के क्षेत्र में उन्होंने ऊँचनीच को मिटाने का उपदेश दिया। इस धार्मिक, संशोधन की फलस्वरूप राजनीतिक सचेष्टता आपसे आप जग उठी—नामदेव और तुकाराम के प्रभाव से शिवाजी का उदय हुआ, गुरु नानक के साफ किए क्षेत्र में गुरु गोविन्द सिंह का आविर्भाव हुआ। शिवाजी ने तेरहवीं शताब्दी के हिन्दू राजाओं की तरह रक्षापरक लड़ाइयां नहीं लड़ी, प्रत्युत शून्य में से नया राज्य खड़ा किया और उसे लगातार आगे बढ़ाया। पुराने विरसे को बचाना मात्र नहीं, प्रत्युत नया राज्य बनाना और फैलाना उसका ध्येय रहा। महाराष्ट्र के इस पुनरुत्थान का अनुसरण बुन्देलखण्ड, व्रजभूमि, पंजाब और नेपाल में भी हुआ। भारत में इसलाम इस बीच बुझा कारतूस हो चुका था और रक्षापरक लड़ाइयां लड़ रहा था। १८वीं शताब्दी में यदि यूरोपीय शक्ति बीच में आकर दखल न देती तो सारा भारत मराठों, सिक्खों, गोरखालियों के राज्य में समाता दिखाई दे रहा था। यह सब सन्तों के सुधारों से हुए पुनरुत्थान का फल था।

किन्तु इस पुनरुत्थान से प्रभावित भारतीय-शिवाजी, बाजीराव, छत्रसाल, गोविन्दसिंह और पृथ्वीनारायण के वंशज अंग्रेजों के मुकाबले में अपनी स्वतन्त्रता को क्यों नहीं बचा पाये? यह पुनरुत्थान अपने ध्येय तक पहुँचते-पहुँचते क्यों पतन में परिवर्तित हो गया—ऐसे घोर पतन और पराधीनता में जैसे भारत ने पहले कभी न देखे थे? यह हमारे इतिहास का सबसे बड़ा प्रश्न है। हमारी कमजोरी के इस पहलू पर प्रकाश डालने वाले अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं।

पश्चिमी-यूरोप के लोग नये समुद्री रास्ते से पहले पहल पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में भारत आये। उन्होंने शीघ्र ही भारत के समुद्र पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया, और एक शताब्दी बाद जब पुर्तगालियों के इस एकाधिपत्य को ओलन्देजों (डचों) और अंग्रेजों ने चुनौती देकर तोड़ दिया तब भारत के समुद्र में अराजकता छा गई जो डेढ़ सौ बरस जारी रही। जिस अवधि में इन राष्ट्रों के डाकू हमारे समुद्र और बड़ी नदियों में लगातार लूटमार, बलात्कार करते रहे जिसे भारत के शासक कभी रोक न सके। पश्चिमी यूरोप के लोगों के पास कौन-सी ऐसी शक्ति थी जिसके सामने अकबर और औरंगज़ेब, शिवाजी और बाजीराव ने अपने को असहाय माना? वे लोग जल-युद्ध की कला में तथा तोपें बनाने और चलाने में दक्ष थे, और उनकी इस दक्षता की धाक समूचे मुगल-मराठा युग में भारत पर छाई रही। पर उस दक्षता की नींव क्या थी? क्या उनके जहाज भारतीय जहाज़ों से बेहतर होते थे? नहीं। इस बात की पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि भारत के कारीगर भाप-बोट निकलने के पहले तक यूरोपियों से बेहतर जहाज़ बनाते थे जिन्हें यूरोप वाले भारत से खरीद ले जाते थे। तोपें बन्दूकें बनाने की ओर भी जब-जब भारतीय कारीगरों ने ध्यान दिया तब यूरोपीयों से बेहतर बना कर दिखाईं। किन्तु उन जहाज़ों और उन तोपों का उपयोग कर समुद्री युद्ध करने की कला में यूरोप के लोग हम से कुछ आगे निकल गये थे। हम लोग यदि ध्यान देते तो कुछ ही वर्षों में उस कला को सीख उनका मुकाबला कर सकते। पर भारत के नेताओं व शासन-संचालकों ने इस ओर कभी ध्यान न दिया कि वो अपनी जल-सेना तैयार

कर लें; वे आँखें मूंदे हुए अपने को अशक्त मान लांछनाएँ सहते रहे। शिवाजी ने तमिलनाड पर चढ़ाई की तो देखा कि गढ़ों को ढाने के लिए अंग्रेज इंजीनियर तोपों का बहुत अच्छा उपयोग करते हैं। शिवाजी ने चाहा कि उन अंग्रेज इंजीनियरों को अपनी सेवा में ले लें, और उनके न मानने पर अपने को असहाय मान लिया, पर यह कभी न सोचा कि अपने मराठों को उसी कार्य के लिए प्रशिक्षित कर लें। बाजीराव के शासन-काल में बसई से दमन तक की कोंकण की भूमि जो पुर्तगालियों ने दो सौ वर्ष से दबा रखी थी उनसे वापस छिन गई। बसई में पुर्तगालियों की जहाज मरम्मत करने की गोदियाँ (डौक-यार्ड) आदि तब मराठा राजा के हाथ आ गई, पर उनका कोई उपयोग नही कर उन्हें यों ही उजड़ने दिया गया। मराठों की आँखों के सामने गोवा में पुर्तगाली अपनी पुस्तकें छापते थे, पर मराठों को कभी न सूझा कि हम भी मराठी पुस्तकें इसी प्रकार छाप कर अपनी जनता में जागृति फैला सकते हैं।

अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय लोग स्थल-युद्ध की कला में भी भारतीयों से आगे निकल गये। तब उन्होंने भारत से ही भाड़ैत सेना खड़ी कर उसे अपनी युद्ध-कला की कुछ मोटी बातें सिखा अपना उपकरण बना कर उसी के द्वारा भारत की राजनीति में दखल देना और यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित करना शुरू किया। भारत के नाना फड़नवीस जैसे जिन योग्यतम नेताओं को अंग्रेजों की उस नई शक्ति से वास्ता पड़ा, उन्हें भी यह नहीं सूझा कि उस शक्ति की जड़ में केवल दो बातें हैं, एक तो कुछ नई युद्ध-कला तथा दूसरे हमारे अपने ही देशवासी और कि उस नई कला को हम भी सीख लें और अपने ही देशवासी भाड़ैत सैनिकों को अपनी तरफ मिला लें तो अंग्रेजों की उस शक्ति की जड़ उखाड़ सकते हैं। उन्होंने आँखें खोल कर यह नहीं देखा, और अंग्रेजों की शक्ति देख-देख कांपते रहे। और तो और, हमारे अपने देश के ज्ञान में भी यूरोपीय हमसे आगे निकल गए थे। अठारहवीं शताब्दी का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा प्राप्य है; उसी काल के ईस्ट इंडिया कम्पनी के बनवाये भारत के नक्शे से मिलान करने से स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारी आँखें उनके मुकाबले में कितनी बन्द थीं। इंगलैंड में कातने-बुनने के नये यन्त्रों की ईजादें अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई। भारत का मुख्य भाग महाराष्ट्र के नेतृत्व में तब तक स्वतन्त्र था। भाप-बोट की ईजाद १८३० में हुई। पंजाब का सिक्ख राज्य तब तक स्वतन्त्र था। यदि हमारी आँखें खुली होतीं तो हम देखते कि इस नये ज्ञान को अपनाये बिना हमारी व्यावसायिक समृद्धि और स्वतन्त्रता को खतरा है, और यदि हम यह देख लेते तो हमें इस ज्ञान को पाने और अपनाने से कौन रोक सकता था ? पर हमारी आँखें ही तो मुंदी थीं।

यों इतिहास के इस पहलू की विवेचना से प्रकट हुआ है कि जिस पुनरुत्थान की लहर ने शिवाजी, छत्रसाल, गोविन्दसिंह और पृथ्वीनारायण को उठाया, उसमें पुनर्जागरण की प्रेरणा सम्मिलित नहीं थी। सन्त सुधारकों ने भारत को जड़ कर्मकांड से उबार कर उसकी कर्म-शक्ति को जगाया, पर उसकी ज्ञान-चक्षुओं को खोलने की कोई प्रेरणा नहीं दी, इसी से उनका किया समाज-सुधार भी अधूरा रहा; भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने ऊँच-नीच हटा दी, पर समाज के बाकी जीवन से जात-पाँत को नहीं निकाल सके। वे रहस्यवाद की माया फैलाते रहे, अन्धविश्वास पर सीधी चोट नहीं कर सके।

परन्तु जो नया जीवन उन्होंने भारत में पैदा कर दिया था, वही अपनी इस कमजोरी को पहचानने में सहायक हुआ। १७वीं १८वीं शताब्दियों के भारत के पुनरुत्थान की इस कमजोरी को पहले पहल १८वीं शताब्दी के मध्य में हरि दामोदर नवलकर और उसके बेटे रघुनाथ ने पहचाना। उन्होंने यह देखा कि यूरोपीयों के नये ज्ञान को लिए बिना भारत उनका मुकाबला नहीं कर सकता। हरि दामोदर को मराठा सरकार ने १७५६ में झाँसी का सूबेदार नियुक्त किया था; १७६५ से १७९४ तक उसका बेटा रघुनाथ उस पद पर रहा। रघुनाथ हरि ने स्वयं अंग्रेजी पढ़ी, उसके द्वारा भौतिकी और रसायन के नये विज्ञान सीखे, तथा ज्ञान की उस ज्योति को बाहरी

रखने के लिए झाँसी में वेधशाला (ग्रोब्जरवेटरी) परीक्षणशाला (लेबोरेटरी) और पुस्तकालय स्थापित किये। उसकी ये संस्थाएँ आज बची नहीं हैं क्योंकि १८५८ में अंग्रेज सेनापति सर ह्यू रोज ने रघुनाथ हरि के भाई की पुत्रवधू महारानी लक्ष्मीबाई पर जब चढ़ाई की तब उन सबको जलाकर जमींदोज कर दिया। रघुनाथ हरि के सम्प्रदाय में ही पहले पहल यह तथ्य पहचाना गया कि अंग्रेज भारत को भारतीय सेना द्वारा ही काबू किये हुए हैं। एक बार जब आँखों पर का पर्दा हट गया तब इस तथ्य को देख लेना कुछ कठिन नहीं था। १८५७ का स्वातन्त्र्य-युद्ध इस तथ्य को पहचान लेने पर ही निर्भर था।

किन्तु १८५७ का वह प्रयत्न भी विफल हुआ और उसकी विफलता का कारण यह था कि भारत में अंग्रेजी शक्ति की इस एक नींव को देख कर भारतीय क्रान्तिकारियों ने इसे ढाने का जहाँ प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी नींव—नई युद्धकला—की ओर ध्यान नहीं दे पाये। १८५७ के बाद क्या उन्होंने अपनी विफलता पर विचार किया, क्या उसके इस कारण को देखा पहचाना? यदि भारतीय राष्ट्र में, उसके पुनरुत्थान की लहर में, रघुनाथ हरि के चलाये पुनर्जागरण की प्रेरणा में जीवन बाकी था तो वैसा विचार उन्हें करना चाहिए था, और इस तथ्य को पहचानना चाहिए था। इन प्रश्नों का उत्तर हाँ में है और वह उत्तर हमें दयानन्द सरस्वती, उनके शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा और उन्नीसवीं बीसवीं शताब्दी के पिछले क्रान्तिकारियों के चरितों से मिलता है। वह एक दूसरी कहानी है। यहाँ इतना ही कहा जाय कि दयानन्द के दिल में अपने देश की दुर्दशा के लिए जैसी उत्कट वेदना थी, उस दुर्दशा के जो कारण उन्हें दिखाई दिये उनकी समीक्षा करते हुए वह वेदना प्रकट हुए बिना न रह सकती थी। इसीलिए, सन्त मार्ग की आलोचना में दयानन्द ने यदि कुछ कड़े शब्द कहे तो हमें समझना चाहिए कि वे शब्द उस वेदना की उपज थे। किन्तु उन्होंने जो सन्त मार्ग के दुर्बल पहलू को पहचाना वह उनकी गहरी जागृत दृष्टि का सूचक था।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में राष्ट्रीय शिक्षा की लहर और क्रान्तिकारी संगठन की प्रवृत्ति को साथ लिए हुए जो स्वदेशी आन्दोलन चला वह ठीक दयानन्द और उनके साथी गोपाल हरि देशमुख की शिक्षाओं की उपज था। १९२० के बाद महात्मा गांधी ने नई लहर चलाई जिसमें कुछ बातें उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन की अपनाईं और कुछ अपनी सन्त-मार्गी प्रेरणा से लीं। जैसा कि हमने देखा सन्त-मार्गी प्रेरणा का एक पहलू अच्छा तो दूसरा आँखों को बन्द रखने वाला भी था। जिस अंश तक महात्मा गांधी ने इस दूसरे पहलू को भी उभाड़ा, जिस अंश तक उन्होंने बुद्धिवाद के बजाय रहस्यवाद को उठा कर और "ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पंडित होये" की शिक्षा को पुनर्जीवित कर देश के पढ़े-लिखे युवकों की खुलती हुई ज्ञान-चक्षुओं को फिर सुलाने के लिए थपकी दी, जिस अंश तक उन्होंने १९०५ वाली स्वदेशी राष्ट्रीय-शिक्षा और क्रान्तिकारी संगठन की लहर का मार्ग बदला, उस अंश तक देश सच्चे स्वराज्य के मार्ग से च्युत हुआ। उसका फल हम आज भोग रहे हैं।

●

भगवान गौतम बुद्ध और महायोगेश्वर भगवान कृष्ण

[लेखक : मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता, बीकानेर]

मथुरा के श्री गीता आश्रम में गत मगसर शुक्ला ११ को गीता जयन्ती उत्सव मनाया गया था जिसका सभापतित्व भारत के उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति श्रीमान सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने किया था और भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा देश के बड़े-बड़े नेताओं ने उत्सव पर सहानुभूति के संदेश भेजे थे। उस उत्सव में अखिल भारतीय गीता संघ (All India Gita Society) स्थापित करने का निश्चय किया गया जिसमें देश के बड़े-बड़े नेताओं तथा विद्वानों ने सम्मिलित होना स्वीकार किया।

उत्सव में उपस्थिति बहुत अधिक थी। उनमें एक कालेज के इतिहास के प्रोफेसर गान्धीवादी सज्जन और एक गीतावादी सज्जन में आपस में वार्तालाप होने लगा।

प्रोफेसर : क्योंजी ! एक धार्मिक पुस्तक की जयन्ती मनाने का क्या कारण है ? बड़े-बड़े महान पुरुषों की और विशेष महत्वपूर्ण तथा हर्षप्रद अवसरों एवं घटनाओं की जयन्ती आदि मनाने की बात तो समझ में आ सकती है; परन्तु एक धार्मिक पुस्तक की जयन्ती मनाना तो अनोखी बात है। दूसरे धार्मिक ग्रंथों की जयन्तियाँ कोई नहीं मनाता और न उनकी जन्म तिथियों का ही किसी को पता है। गीता किसने और कब लिखी इसका पता कैसे लगा ?

गीतावादी : प्रोफेसर साहब ! यह जयन्ती किसी पुस्तक की नहीं मनाई जाती है। यह जयन्ती उस "व्यवहार दर्शन" (Philosophy of Practical Life) की मनाई जाती है जो गीता में संगृहीत है। यह "व्यवहार दर्शन" महाभारत युद्ध के प्रथम दिन मगसर शुक्ला ११ को महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले पहल अर्जुन को समझाया था। यह दर्शन मनुष्य मात्र को जीवन का ऐसा सच्चा मार्ग दिखाता है कि जिसका अवलम्बन करने से मनुष्य, स्त्री पुरुष मात्र, जाति भेद, देश भेद, काल भेद, अवस्था भेद, पद भेद, वर्ग भेद आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना एक समान अपनी सर्वांगीण उन्नति करता हुआ पूर्ण सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है। यह दर्शन कोई साम्प्रदायिक धर्म या मजहब नहीं है कि जो किसी विशेष देश, काल, जाति वर्ग या धर्म के लोगों की ही स्वार्थ सिद्धि करता हो, किन्तु यह विश्व कल्याण कारक सार्वजनिक दर्शन है; इसीलिए इसको इतना भारी महत्व दिया जाता है।

प्रोफेसर : भाई साहब ! माफ करना। मैं यह नहीं मानता। आपने गीता की तारीफ के जो इतने पुल बाँध दिये, वे मेरी समझ में नहीं आते। कृष्ण ने बेचारे अर्जुन को गीता का उपदेश देकर महाभारत का युद्ध कराया, देश के बड़े-बड़े महापुरुष मारे गये, देश की सारी सभ्यता नष्ट हो गई जिससे देश की इतनी गिरावट हुई कि यह आज तक नहीं संभल सका।

गीतावादी : महाशय जी ! महाभारत में देश के महापुरुष नहीं मारे गये किन्तु अधिकार स्वार्थी, आततायी लोग ही मारे गये। बड़े-बड़े विद्वान्, गुणवान, विचारक और श्रेष्ठ पुरुष उस समय भी बचे हुए थे। महाभारत से तो देश दुष्टों, अत्याचारियों के भय से मुक्त हुआ था। महाभारत के बाद धर्मराज हो पांडवों का राज्य तथा उनके बाद परीक्षित, जन्मेजय आदि के राज्य उस समय की परिस्थिति के अनुसार पूर्णतया सुसम्पन्न और उन्नत होने के वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में पाये जाते हैं और उनके पीछे के इतिहासों में देश में विद्याओं और कलाओं आदि की बड़ी उन्नति होना पाया जाता है। गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत,, शास्त्र, कला, वास्तु

शास्त्र आदि महाभारत के बाद बहुत उन्नत हुए हैं। अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, भोज प्रभृति राजाओं के काल देश की उन्नति के परिचायक हैं। पाणिनी का व्याकरण, चाणक्य की राजनीति और अर्थशास्त्र अब तक अद्वितीय माने जाते हैं। लीलावती के गणित विज्ञान को भी संसार ने बहुत ऊँचा माना है।

प्रोफेसर : परन्तु इतिहास के आधार पर तो महाभारत का होना ही सिद्ध नहीं होता।

गीतावादी : हाथ में कंगन की तरह जो बात सामने प्रत्यक्ष हो उसके लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? जब महाभारत होने का स्थान, उस समय के वर्णित देश, नगर, नदी, पहाड़ आदि ज्यों के त्यों मौजूद हैं और सारे चिह्न लगातार पाये जाते हैं तथा कौरव पाण्डवों के वंश अब तक अटूट चलते हैं और सबसे अधिक राजा युधिष्ठिर का चलाया हुआ संवत्सर हमारे पंचांगों में प्रति वर्ष एक-एक करके बढ़ता हुआ अब ५०५७ तक बढ़ चुका है तो महाभारत के विषय में भ्रम होने के लिए वास्तव में कोई अवकाश तो रहता नहीं।

प्रोफेसर : इतिहास के अनुसार तो ४००० वर्षों से अधिक पुरानी कोई सभ्यता थी ही नहीं।

गीतावादी : क्षमा कीजिए साहब ! आपके इतिहासज्ञों का कोई निर्णय स्थिर नहीं रहता; क्योंकि उनकी खोज के आधार अधिकतर पुराने शिलालेख या सिक्के या खंडहरों से प्राप्त होने वाली पुरानी पुरातत्त्व की वस्तुएँ होती हैं। जितने पुराने समय तक की ये वस्तुएँ उनको मिलती हैं उतना ही सभ्यता की प्राचीनता का समय ये लोग मान लेते हैं। जब फिर कोई उनसे अधिक प्राचीन वस्तु मिल जाती है तो फिर उनका सभ्यता का काल पीछे हटता जाता है। सबसे प्राचीन वैदिक सभ्यता का काल पहले ४ हजार वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं मानते थे, फिर जब मोहनजोदाड़ो और हरप्पा आदि की खुदाई करने पर अधिक प्राचीन वस्तुएँ भू-गर्भ से से निकलीं तब सभ्यता का काल पीछे खिसक गया आगे फिर इससे अधिक प्राचीन चिह्न ज्यों-ज्यों मिलते जाएँगे त्यों-त्यों आप के इतिहास और पीछे सरकते जावेंगे। अतः इतिहासज्ञों का माना हुआ पुरानी सभ्यता का काल विश्वास करने लायक नहीं है। फिर इतिहासज्ञों के भी आपस में बहुत मत भेद हैं। न मालूम किस का मत प्रामाणिक है और किस का अप्रामाणिक। भारत के एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ से मेरा घनिष्ठ परिचय था। वह महाशय पुराने पत्थरों पर पुरानी लिपियों में लेख खुदवा कर उजाड़ जंगलों में गड्ढे खोदकर उन्हें मिट्टी से पाट दिया करते थे। फिर कई वर्षों बाद उनको खुदवा कर एक नई खोज का समाचार प्रकाशित कर दिया करते थे। *कई राजाओं से काफी मात्रा में रिश्वतें ले ले कर उनके पूर्वजों का इतिहास और वंशावलियाँ उनके कहे अनुसार* अपने इतिहास में लिख दिया करते थे। यह बात मैं सुनी सुनाई नहीं कर रहा हूँ किन्तु अपने प्रत्यक्ष देखे हुए अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। उन महाशयों के लिखे हुए इतिहास और ऐतिहासिक लेख बड़े प्रामाणिक माने जाते हैं। ऐसी दशा में इतिहासों पर क्या विश्वास किया जाए ? इसके अतिरिक्त आप के वर्तमान इतिहासों पर पश्चिमी इतिहासज्ञों की गहरी छाप लगी हुई है जिनको अपनी सभ्यता की नवीनता के कारण हमारी सभ्यता की प्राचीनता सहन ही नहीं हो सकती। भला यह कोई न्याय है कि विक्रमादित्य का "सम्वत्" जो प्रतिवर्ष एक-एक करके बढ़ता हुआ २०१३ तक पहुँच चुका है उसको भी ये लोग प्रामाणिक नहीं मानते ?

प्रोफेसर : परन्तु मध्य काल में हमारे देश का भारी पतन हुआ, यह तो आपको भी मानना पड़ेगा।

गीतावादी : निःसंदेह, परन्तु उस पतन का कारण गीता अथवा महाभारत नहीं है। महाभारत के बाद भी ब्राह्मणों का प्रभुत्व समाज पर ज्यों का त्यों बना रहा और जनता पूर्ण रूप से इनके चंगुल में फँसी रही। इन लोगों की स्वार्थपरता दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई। [illegible] अपने स्वार्थ के लिए वर्ण-व्यवस्था के बदले में जन्मगत जाति भेद की इतनी मजबूत दीवारें खड़ी कर [illegible] के टुकड़े-टुकड़े हो गये और लोगों को साम्प्रदायिक धर्म बंधनों [illegible] जकड़ दिया। इसके [illegible] को मुक्त करने के लिए भगवान् गौतम बुद्ध और महावीर स्व[illegible] इन लोगों का [illegible] इन [illegible] से उस समय

की परिस्थिति के अनुसार निवृत्ति मार्ग का प्रचार किया। कुछ हद तक इन को ब्राह्मणवाद से मुकाबला करने में सफलता भी मिली और कई सौ वर्षों तक देश ब्राह्मणवाद के चंगुल से मुक्त रहा। फिर स्वामी शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना करने के लिए निवृत्ति प्रधान बौद्धमत में आई हुई स्वाभाविक बुराइयों का मुकाबला करके सूखे अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त के आधार पर दूसरे ढंग से निवृत्ति मार्ग का प्रचार किया और उनके बाद भक्ति मार्ग के अनेक सम्प्रदायों के प्रवर्तकों ने भी एक प्रकार से निवृत्ति मार्ग का ही प्रचार किया। इन कारणों ने देश की जनता निरुद्यमी, उत्साहहीन, अन्धविश्वासी, प्रारब्धवादी, परावलम्बी और भीरू हो गई। इन वेदानुयायी निवृत्ति मार्ग वालों ने ब्राह्मणवाद की उपेक्षा की अथवा उनकी पुष्टि की जिससे ब्राह्मणवाद की बुराइयाँ भी ज्यों की त्यों बनी रहीं। एक तरफ ब्राह्मणवाद और दूसरी तरफ निवृत्ति मार्ग ये दोनों ही देश के घोर पतन के कारण हुए।

प्रोफेसर : यह तो ठीक है परन्तु स्वामी शंकराचार्य और भक्ति मार्ग के आचार्यों ने भी गीता के आधार पर ही तो अपने-अपने सम्प्रदायों की पुष्टि की है।

गीतावादी : इन लोगों ने अपने-अपने सम्प्रदाय चलाने के लिए गीता का सहारा लेने के उद्देश्य से उसके अर्थ को तोड़ मरोड़ कर अपने सम्प्रदाय के अनुकूल बनाने के लिए परस्पर विरोधी, खींचातानी की टीकाएँ करके गीता को झूठा साम्प्रदायिक रूप दे दिया है। वास्तव में गीता में साम्प्रदायिकता बिलकुल ही नहीं है किन्तु स्पष्ट शब्दों में साम्प्रदायिकता का जगह-जगह खंडन किया गया है। इन साम्प्रदायिक टीकाकारों ने ही गीता के वास्तविक एक मात्र सिद्धान्त "व्यावहारिक वेदान्त" को एक प्रकार से लुप्त कर दिया और इनके बाद के टीकाकार, उन साम्प्रदायिक टीकाओं का आश्रय लेने के कारण, उसको एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ मानकर इसके असली सिद्धान्त को अच्छी तरह समझने में असमर्थ रहे। वास्तव में गीता के सिद्धान्त इतने व्यापक, सत्य, नित्य, ठोस और लोक कल्याणकारी हैं कि बुद्धिवादी भगवान् बुद्ध ने भी गीता में वर्णित भगवान् कृष्ण के अधिकांश सिद्धान्तों को स्वीकार किया है।

प्रोफेसर : भाई साहब ! यह मत कहिए, मैं यह नहीं मानता कि बुद्ध ने गीता में कहे हुए कृष्ण के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। स्वीकार करना तो कहाँ, बुद्ध के सिद्धान्त तो कृष्ण के सिद्धान्तों से सर्वथा प्रतिकूल हैं। कृष्ण के सिद्धान्त ईश्वरवादी हैं और बुद्ध बिल्कुल निरीश्वरवादी, पक्का नास्तिक था।

गीतावादी : कृष्ण भी पक्का निरीश्वरवादी था।

प्रोफेसर : यह कैसे हो सकता है ? गीता में कृष्ण ने स्थान-स्थान पर ईश्वर, ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा, पुरुषोत्तम आदि की दुहाई दी है।

गीतावादी : पर गीता में वर्णित ईश्वर, ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा, पुरुषोत्तम आदि जगत् से भिन्न कोई विशेष व्यक्ति या विशेष शक्ति नहीं है किन्तु जो सत्ता, जो शक्ति और जो तत्व सारे विश्व को और सारे शरीरों को धारण किये हुए हैं और जो सब का मूल तत्व होने के कारण सब का अपना आप आत्मा है, उसी को गीता में ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, पुरुषोत्तम आदि नामों से अलंकृत किया गया है। वह सत्ता, शक्ति या तत्त्व सब में ओत-प्रोत होने के कारण सबका अपना आप है, इसी कारण गीता में प्रायः सर्वत्र भगवान् कृष्ण ने उसके लिए "मैं" (अहम्) शब्द के अनेक रूपों के उत्तम पुरुष वाचक अहम्, मां, मया, मे, मम, मत्, मयि आदि सर्वनामों का प्रयोग किया है। ये सर्वनाम कृष्ण ने अपने पृथक् व्यक्तित्व के लिए नहीं कहे हैं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति और सारे विश्व में जो एक आत्मसत्ता व्यापक है, उस समष्टि भाव के लिए प्रयोग किये हैं और गीता के प्रायः सभी अध्यायों में बार-बार यह स्पष्ट कर दिया है कि मैं सब का आत्मा, सब में रहने वाला तत्त्व हूँ। "मैं" रूप से सब शरीरों में व्यापक, सब का आत्मा, सब का अपना आप, सब का आधार और सब का प्रेरक होने के कारण सब का

जन्म में उनका फल भोगेगा। एक के कर्मों का फल दूसरा नहीं भोग सकता और न एक की स्मृति दूसरे को रह सकती है। कर्म स्थूल शरीर द्वारा किये जाते हैं सो स्थूल शरीर तो इसी जन्म में मरने पर यहीं समाप्त हो जाता है, आगे जाता ही नहीं ? दूसरा जन्म लेने वाली कोई दूसरी सूक्ष्म, नित्य वस्तु, स्थूल शरीर के अन्दर रहने वाली होनी चाहिये, जो स्थूल शरीर के साथ नहीं मरती। इसके अतिरिक्त निर्वाण होने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा माना गया है सो निर्वाण अवस्था स्थूल शरीर को तो प्राप्त हो नही सकती। स्थूल शरीर से परे कोई सूक्ष्म तत्त्व है जो निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है। स्थूल शरीर का मर जाना तो निर्वाण अवस्था है ही नहीं; यदि ऐसा होता तो मरने के बाद सभी निर्वाण को प्राप्त हो जाते, फिर पुनर्जन्म ही कौन लेता ? बुद्ध ने उस सूक्ष्म तत्त्व को "विज्ञान" नाम दिया है। कृष्ण ने भी आत्मा को "ज्ञान स्वरूप" माना है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों के मतों में कोई भेद नहीं है केवल नामो का ही अन्तर है। कृष्ण ने जिस तत्त्व को आत्मा नाम दिया है, बुद्ध ने उसी को "विज्ञान" नाम दे दिया है। उसी तत्त्व को दूसरे विचारकों ने प्रवाह, सम्बन्ध, शून्य, प्रकृति, स्वभाव, आदि नाम दे दिये हैं परन्तु एक अव्यक्त सूक्ष्म तत्त्व के होने से कोई इन्कार नहीं करता। फिर विज्ञान, प्रवाह, सम्बन्ध, शून्य, प्रकृति अथवा स्वभाव का जानने वाला या अनुभव करने वाला भी कोई न कोई अवश्य होना चाहिए। कर्ता अथवा ज्ञाता (Subject) के विना कर्म अथवा ज्ञेय (Object) नहीं हो सकता। यह जानने वाला अथवा अनुभव करने वाला सब का अपना आप (Self) है। भगवान बुद्ध को जब ध्यानयोग के द्वारा बोध हुआ तब वह किसी इन्द्रिय गोचर बाहरी वस्तु का बोध तो था ही नही किन्तु अपने भीतर अपने असली तत्त्व का अपनी बुद्धि के विचार द्वारा बोध हुआ था। उस बोध का स्वरूप या लक्षण उन्होंने कुछ भी नहीं बताया, क्योंकि वह अपने आप का सच्चा बोध या अनुभव था जिसका वर्णन शब्दों द्वारा नही किया जा सकता। कुछ भी हो, जो सबका अपना आप है उसको कोई कैसे इन्कार कर सकता है ? अपने आप के अस्तित्व के विषय में किसको आपत्ति हो सकती है ? भगवान् बुद्ध से जब आत्मा के विषय मे पूछा गया था तब उन्होंने कुछ भी उत्तर नही दिया, मौन धारण कर लिया। इसका यही मतलब हो सकता है कि अपना आप केवल अपने अनुभव का विषय है, वाणी का विषय नही। यही बात कृष्ण ने गीता में कही है कि आत्मा इन्द्रियाँ, मन और वाणी की पहुँच से परे हैं। बुद्ध ने यह नही कहा कि आत्मा नहीं है किन्तु इस विषय में कोई शब्द नहीं कहा। "मौनं सम्मति लक्षणम्" मौन रहना रूपान्तर से स्वीकृति ही होती है।

जो लक्षण और प्रभाव गीता में आत्मा के कहे गये हैं प्रायः वे सब लक्षण रूपान्तर से बुद्ध ने विज्ञान के कहे हैं। अन्तर केवल नामों मे है और नामों का अन्तर होने से सिद्धान्त मे अन्तर नहीं आता। जब कोई किसी सिद्धान्त को नये रूप में उपस्थित करता है तब उसके नाम और रूप में कुछ न कुछ फेर-फार करता ही है तभी उसमें नवीनता आती है।

भगवान् कृष्ण का उद्देश्य दुष्टों के अत्याचारों से समाज का उद्धार करने का था, इसीलिए उन्होंने सब की एकता के आत्मज्ञान की समत्व बुद्धि से संसार के सब प्रकार के व्यवहार, लोकसंग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए करने का विधान गीता में कर्मयोग के नाम से किया है और इसीलिए उन्होंने आत्मा के विषय में असंदिग्ध रूप से विस्तृत खुलासा किया है ताकि लोग सब की एकता के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझकर व्यवहार में उसका उपयोग कर सकें, परन्तु भगवान् बुद्ध के सामने प्रश्न उस समय वैदिक कर्मकांडों में होने वाले अपार जीवों की हिंसा रोकने का था और वैदिक कर्मकांड उस समय आम तौर से कल्याणकारक समझे जाते थे। उनसे जनता को निवृत्त करने के लिए कर्म सन्यास का प्रचार ही उपयुक्त था। अतः संन्यास द्वारा मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त होने के सिद्धान्त का उन्होंने प्रचार किया। संन्यास मार्ग में लौकिक व्यवहार अथवा समाज की सुव्यवस्था की एक प्रकार से उपेक्षा ही की जाती है, इसलिए व्यक्ति के निर्वाण के उपयोगी अंतःकरण

स्वामी है, इसीलिए उसको ईश्वर आदि के विशेषण दिये गये हैं। जो अपने से और संसार से भिन्न किसी दूसरी सत्ता, शक्ति या तत्त्व का होना ही नहीं मानता, वह कृष्ण ईश्वरवादी कैसे कहा जा सकता है ?

प्रोफेसर : गीता के १५वें अध्याय के १६-१७ श्लोकों में कहा है कि "इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं। सारे भूत क्षर और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर है। परन्तु उत्तम पुरुष उन दोनों से अन्य है, उसको परमात्मा कहते हैं जो तीनों लोकों में व्याप्त हुआ भरण पोषण करने वाला ईश्वर है।" इससे विदित होता है कि गीता, जगत और जीवात्मा से अलग ईश्वर का अस्तित्व मानती है।

गीतावादी : पर इसी श्लोक में जब यह कहा गया कि "वह परमात्मा अथवा ईश्वर तीनों लोकों में व्याप्त रहता हुआ भरण पोषण करता है," तो फिर अलग कहाँ रहा ? और फिर इसके बाद ही भगवान् कृष्ण ने १८वें श्लोक में कह दिया है कि "क्योंकि मैं क्षर से अतीत और अक्षर से उत्तम हूँ, इसीलिए लोक और वेद में मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं", तो १७वें श्लोक में जिसे परमात्मा या ईश्वर कहा था, वही उत्तम पुरुषवाचक, अपना आप हो जाता है, क्योंकि जैसे कि मैं पहले कह आया हूँ कि कृष्ण ने उत्तम पुरुषवाचक "मैं" शब्द का प्रयोग सबके अपने आप आत्मा के लिए किया है। १३वें अध्याय के दूसरे श्लोक मे कहा है कि "क्षेत्र रूप सब शरीरों में क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ।" इसके अतिरिक्त १५वें अध्याय के ८वें श्लोक में जीव को ईश्वर ही कहा है और १३वें अध्याय के १७वें और २२वें श्लोकों में तथा ३१वें श्लोक में भी सब देहों में स्थित जीवात्मा को ही परमात्मा, महेश्वर और पर पुरुष कहा है।

प्रोफेसर : तो फिर १५वें अध्याय के १७वें श्लोक में "अन्य" शब्द का प्रयोग क्यों किया है ?

गीतावादी : ७वें अध्याय के ४-५वें श्लोकों में भगवान् ने जिन अपरा और परा प्रकृतियों को अपनी प्रकृति कहा है, उन्हीं को १३वें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कहा है और १५वें अध्याय के १६वें श्लोक में उन्हीं को क्षर और अक्षर पुरुष कहा है। ये दोनों प्रकृतियाँ या पुरुष वस्तुतः आत्मा से भिन्न नहीं हैं किन्तु उसी का स्वभाव हैं। परन्तु भौतिक जड़ भाव की अपरा प्रकृति अथवा क्षर पुरुष निरन्तर बदलने वाला और नाशवान है और आत्मा अव्यय और अविनाशी है, इसलिए कृष्ण ने १८वें श्लोक में अपने को क्षर से अतीत कहा है, तथा चेतन जीव भाव की परा प्रकृति अथवा अक्षर पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप का अज्ञान स्वीकार करके व्यक्ति भाव में आसक्ति रखकर अपने को परिमित मानता है; इसलिए उससे अपने को उत्तम कहा है। सर्वात्मा की विलक्षणता दिखाने के लिए ही यहाँ "अन्य" शब्द का प्रयोग हुआ है। पूर्वापर की संगति मिलाने से जगत, जीव और परमात्मा व ईश्वर में कोई भेद दिखाने के लिए यहाँ "अन्य" शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है।

प्रोफेसर : गीता के १८वें अध्याय के ६१वें श्लोक में कृष्ण ने कहा है कि "ईश्वर सब भूतों के हृदय में रहता हुआ सब को यन्त्र में चढ़ाये हुए की तरह घुमाता है," इससे साफ है कि कृष्ण अलग ईश्वर का अस्तित्व मानता था।

गीतावादी : परन्तु उसी श्लोक के पूर्वार्द्ध में पहले ही कह दिया है कि "ईश्वर सब भूतों के हृदय में रहता है," और सबके हृदय मे अपने आप ही का अनुभव होता है, अपने आप के सिवाय किसी दूसरे का अनुभव नहीं होता; इसलिए कोई अलग ईश्वर घुमाने वाला नहीं रहा। सब का अपना आप आत्मा ही सब शरीरों को गति देता है और चेष्टाएँ करवाता है। इस श्लोक का यही स्पष्ट अर्थ है। दूसरा अर्थ हो नहीं सकता।

प्रोफेसर : पर बुद्ध तो आत्मा को भी नहीं मानता ?

गीतावादी : जब कि कृष्ण के माने हुए कर्म विपाक, पुनर्जन्म और निर्वाण के सिद्धान्तों को भगवान बुद्ध पूरी तरह स्वीकार करते हैं, यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनेक पूर्व जन्मों की स्मृति की बातें भी कही हैं, तब आत्मा का अस्तित्व स्वतः ही स्वीकार हो गया, क्योंकि पूर्व जन्म में जो कर्म करने वाला होता है, वही तो दूसरे

जन्म में उनका फल भोगेगा। एक के कर्मों का फल दूसरा नहीं भोग सकता और न एक की स्मृति दूसरे को रह सकती है। कर्म स्थूल शरीर द्वारा किये जाते हैं सो स्थूल शरीर तो इसी जन्म में मरने पर यहीं समाप्त हो जाता है, आगे जाता ही नहीं ? दूसरा जन्म लेने वाली कोई दूसरी सूक्ष्म, नित्य वस्तु, स्थूल शरीर के अन्दर रहने वाली होनी चाहिये, जो स्थूल शरीर के साथ नहीं मरती। इसके अतिरिक्त निर्वाण होने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा माना गया है सो निर्वाण अवस्था स्थूल शरीर को तो प्राप्त हो नहीं सकती। स्थूल शरीर से परे कोई सूक्ष्म तत्त्व है जो निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है। स्थूल शरीर का मर जाना तो निर्वाण अवस्था है ही नहीं; यदि ऐसा होता तो मरने के बाद सभी निर्वाण को प्राप्त हो जाते, फिर पुनर्जन्म ही कौन लेता ? बुद्ध ने उस सूक्ष्म तत्त्व को "विज्ञान" नाम दिया है। कृष्ण ने भी आत्मा को "ज्ञान स्वरूप" माना है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों के मतों में कोई भेद नहीं है केवल नामों का ही अन्तर है। कृष्ण ने जिस तत्त्व को आत्मा नाम दिया है, बुद्ध ने उसी को "विज्ञान" नाम दे दिया है। उसी तत्त्व को दूसरे विचारकों ने प्रवाह, सम्बन्ध, शून्य, प्रकृति, स्वभाव, आदि नाम दे दिये हैं परन्तु एक अव्यक्त सूक्ष्म तत्त्व के होने से कोई इन्कार नहीं करता। फिर विज्ञान, प्रवाह, सम्बन्ध, शून्य, प्रकृति अथवा स्वभाव का जानने वाला या अनुभव करने वाला भी कोई न कोई अवश्य होना चाहिए। कर्त्ता अथवा ज्ञाता (Subject) के बिना कर्म अथवा ज्ञेय (Object) नहीं हो सकता। वह जानने वाला अथवा अनुभव करने वाला सब का अपना आप (Self) है। भगवान बुद्ध को जब ध्यानयोग के द्वारा बोध हुआ तब वह किसी इन्द्रिय गोचर बाहरी वस्तु का बोध तो था ही नहीं किन्तु अपने भीतर अपने असली तत्त्व का अपनी बुद्धि के विचार द्वारा बोध हुआ था। उस बोध का स्वरूप या लक्षण उन्होंने कुछ भी नहीं बताया, क्योंकि वह अपने आप का सच्चा बोध या अनुभव था जिसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। कुछ भी हो, जो सबका अपना आप है उसको कोई कैसे इन्कार कर सकता है ? अपने आप के अस्तित्व के विषय में किसको आपत्ति हो सकती है ? भगवान् बुद्ध से जब आत्मा के विषय में पूछा गया था तब उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, मौन धारण कर लिया। इसका यही मतलब हो सकता है कि अपना आप केवल अपने अनुभव का विषय है, वाणी का विषय नहीं। यही बात कृष्ण ने गीता में कही है कि आत्मा इन्द्रियों, मन और वाणी की पहुँच से परे हैं। बुद्ध ने यह नहीं कहा कि आत्मा नहीं है किन्तु इस विषय में कोई शब्द नहीं कहा। "मौनं सम्मति लक्षणम्" मौन रहना रूपान्तर से स्वीकृति ही होती है।

जो लक्षण और प्रभाव गीता में आत्मा के कहे गये हैं प्रायः वे सब लक्षण रूपान्तर से बुद्ध ने विज्ञान के कहे हैं। अन्तर केवल नामों में है और नामों का अन्तर होने से सिद्धान्त में अन्तर नहीं आता। जब कोई किसी सिद्धान्त को नये रूप में उपस्थित करता है तब उसके नाम और रूप में कुछ न कुछ फेरफार करता है तभी उसमें नवीनता आती है।

भगवान् कृष्ण का उद्देश्य दुष्टों के अत्याचारों से समाज का उद्धार करने का था, इसीलिए उन्होंने सब की एकता के आत्मज्ञान की समत्व बुद्धि से संसार के सब प्रकार के व्यवहार, लोकसंग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए करने का विधान गीता में कर्मयोग के नाम से किया है और इसीलिए उन्होंने आत्मा के विषय में असंदिग्ध रूप से विस्तृत खुलासा किया है ताकि लोग सब की एकता के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझकर व्यवहार में उसका उपयोग कर सकें, परन्तु भगवान् बुद्ध के सामने प्रश्न उस समय वैदिक कर्म काण्डों में होने वाले अपार जीवों की हिंसा रोकने का था और वैदिक कर्मकांड उस समय आम तौर से कल्याणकारक समझे जाते थे। उनसे जनता को निवृत्त करने के लिए कर्म सन्यास का प्रचार ही उपयुक्त था। अतः सन्यास द्वारा मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त होने के सिद्धान्त का उन्होंने प्रचार किया। सन्यास मार्ग में लौकिक व्यवहार अथवा समाज की सुव्यवस्था की एक प्रकार से उपेक्षा ही की जाती है, इसलिए व्यक्ति के निर्वाण में उपयोगी धेय्यस्वरूप

आदि को तो उन्होंने पूरा महत्व दे दिया, परन्तु सब की एकता के आत्म-ज्ञान को उन्होंने विशेष महत्व नहीं दिया। इतना अन्तर कृष्ण के और बुद्ध के सिद्धान्तों में अवश्य दिखाई देता है।

प्रोफेसर : आप का यह कहना तो बिल्कुल ठीक है कि जब कर्मों का फल दूसरे जन्म में भोगने और निर्वाण प्राप्ति के सिद्धान्त को बुद्ध ने मान लिया तब आत्मा के अस्तित्व का सिद्धान्त "झावड़ी प्राणायाम" की तरह घुमा फिरा कर स्वतः ही मान लिया गया है, चाहे उसका नाम कुछ भी रखो। कृष्ण और बुद्ध के समय की परिस्थितियों में भी अन्तर था। अब बताइए कि कृष्ण के और कौन से सिद्धान्त बुद्ध को स्वीकार थे ?

गीतावादी : कृष्ण ने वैदिक कर्म काण्डों आदि की धार्मिक साम्प्रदायिकता का बड़े जोर से खण्डन किया है और बुद्ध ने भी ऐसा ही किया था।

प्रोफेसर : यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या कृष्ण ने वैदिक कर्म काण्डों का खण्डन किया है ?

गीतावादी : क्या इसमें भी कोई सन्देह है ?

प्रोफेसर : गीता तो वैदिक धर्म का अनुकरण करने वाला ग्रन्थ समझा जाता है।

गीतावादी : यह भ्रम सम्प्रदायवादियों ने फैला रखा है। वास्तव में गीता में तो वैदिक कर्म काण्डों की स्पष्टतया निन्दा की गई है और अर्जुन को वेद वाक्यों की उलझन से निकलने का उपदेश दिया गया है। दूसरे अध्याय के ४२ से ४४ तक के श्लोकों में वैदिक कर्मकाण्ड करने वालों को मूर्ख, हठी और बुद्धिहीन बताया है और कहा है कि इनको आत्म-ज्ञान की समत्व बुद्धि कभी प्राप्त हो ही नहीं सकती। फिर ४५वें और ४६वें श्लोकों में वेदों की त्रिगुणात्मक उलझन से निकल कर आत्मभाव में स्थिति करने का उपदेश अर्जुन को दिया गया है। ९वें अध्याय के २०वें और २१वें श्लोकों में भी वैदिक कर्मकाण्डों की निन्दा की गई है और दूसरे अनेक स्थलों पर वेदों और यज्ञों की हीनता का प्रतिपादन किया गया है।

प्रोफेसर : परन्तु ९वें अध्याय के इन्हीं श्लोकों में कहा है कि "सोम रस पीने वाले लोग वैदिक यज्ञ करके उनके पुण्य से स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं और वहाँ इन्द्र लोक में देवताओं के भोग भोगते हैं। इससे मालूम होता है कि साम्प्रदायिक लोगों की तरह कृष्ण भी स्वर्ग नरक का अस्तित्व मानते थे ?"

गीतावादी : हिन्दू लोगों में यह विश्वास सदा से चला आता है कि वेद विहित कर्म काण्डों से पुण्य होता है जिससे मरने के बाद मनुष्य स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। हिन्दू शास्त्रों में इस तरह से प्राप्त होने वाले स्वर्ग लोक का बहुत ही रोचक वर्णन विस्तार से किया हुआ है और वैदिक कर्म काण्ड न करने वाले कुकर्मी लोगों के नरक में जाने और उन नरकों के अत्यन्त भयंकर रूपों का भी वर्णन किया हुआ है, जिनको सुनने से लोगों के मन पर उनके दृढ़ संस्कार जम जाते हैं। उन संस्कारों के प्रभाव से मरने के अनन्तर अच्छे काम करने वाले लोग अपने लिए, स्वप्न अवस्था के दृश्यों के समान, उन शास्त्रों में वर्णित स्वर्ग लोक की कल्पना कर लेते हैं और वहाँ कल्पित भोग भोगने का अनुभव करते हैं। इसी तरह बुरे कर्म करने वाले लोग बुरे संस्कारों के प्रभाव से शास्त्रों में वर्णित नरकों की कल्पना करके नरक के कल्पित दुख भोगने का अनुभव करते हैं। स्वर्ग और नरक कोई स्थूल भौतिक लोक नहीं हैं किन्तु अपने-अपने मन की कल्पना मात्र हैं। इसलिए २०वें श्लोक में "दिव्य भोग" कह कर स्पष्ट कर दिया है कि ये स्थूल आधिभौतिक भोग नहीं हैं और साथ ही स्वर्ग-प्राप्ति की निस्सारता बताने के लिए २१वें श्लोक में कह दिया गया है कि "पुण्य क्षीण होने से वे लोग पीछे मृत्यु लोक में आते हैं और इस तरह आवागमन के चक्कर में घूमते रहते हैं," अतः स्वर्ग के इस वर्णन का उद्देश्य लोगों के अन्धविश्वास हटाने का है; उसे पुष्ट करने का नहीं। भगवान् बुद्ध भी अच्छे कर्मों से स्वर्ग और बुरे कर्मों से नरक प्राप्त होना मानते हैं।

प्रोफेसर : गीता में ब्रह्म लोक, देव लोक, पितृ लोक आदि अनेक लोकों में जाने का भी जो वर्णन है

अध्याय में है और इसके अतिरिक्त ८वें अध्याय के २४वें और २५वें श्लोकों में मरने के बाद उत्तरायण और दक्षिणायण मार्ग से शुक्ल और कृष्ण गति प्राप्त होने का भी उल्लेख है।

गीतावादी : जैसा कि मैंने अभी कहा है कि ये सभी लोक मन की कल्पना के कल्पित बनाव मात्र हैं। हिन्दू शास्त्रों में मरने के बाद बहुत से कल्पित लोकों में जाने का वर्णन विस्तार से किया हुआ है, जिनको पढ़ सुन कर लोगों के मन पर उनके संस्कार जम जाते हैं, फिर इस सिद्धान्त के अनुसार कि "या मतिर् सा गति र्भवति" अर्थात् जिसकी जैसी मति होती है उसकी वैसी गति होती है, वह निश्चय किया गया कि जिसके मन के जैसे संस्कार होते हैं, उन्ही के अनुसार मरने के बाद उनके लिए कल्पित बनाव बन जाते हैं। साधारणतया लोगों के मन में यह जानने की उत्कण्ठा स्वभाव से ही उत्पन्न होती है कि मरने के बाद हमारी क्या दशा होगी ? इसका समाधान "व्यवहार दर्शन" में होना अत्यन्त आवश्यक था। इसलिए भगवान ने पहले शास्त्रों में वर्णित मरने के बाद जो गति होती है, उसका थोड़ा सा उल्लेख करके, उनमे लोगों की श्रद्धा हटाने के लिए, उनकी त्रुटियाँ, हानि और मिथ्यापन साथ ही स्पष्ट कर दिया है। गीता में ब्रह्म लोक आदि लोकों के उल्लेख का उद्देश्य उनका निषेध करने का है न कि उनका विधान करने का। ८वें अध्याय के १६वें श्लोक में साफ कह दिया गया है कि "ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने भी लोक हैं, वे सब जन्म-मरण के चक्कर में डालने वाले हैं, मुझे अर्थात् सब के आत्म भाव को प्राप्त होने से ही पुनर्जन्म से छुटकारा होता है।" ८वें अध्याय के २४वें और २५वें श्लोकों में उत्तरायण और दक्षिणायण मार्ग का जिक्र इसीलिए किया गया है कि उस समय लोगों में मरने के अनन्तर शास्त्रों के अनुसार इन दो गतियों के प्राप्त होने का अत्यन्त दृढ़ विश्वास था। उसका खण्डन करने के लिए ही इनका उल्लेख करके अर्जुन को साफ कह दिया गया है कि "ये दो गतियाँ सदा से मानी जाती रही हैं, परन्तु समत्व योगी इनसे मोहित नहीं होता, इसलिए तू सदा सर्वथा समत्व योग में जुड़ा रह" अर्थात् शास्त्रों में वर्णित इन गतियों की उपेक्षा कर। दूसरे लोगो की तरह अर्जुन को भी यह जानने की उत्कण्ठा हुई थी कि मरने के बाद मेरी क्या गति होगी, क्योंकि कृष्ण के कहे हुए "व्यवहार दर्शन" में विधान किये हुए सब के एकता के ज्ञान की समत्व बुद्धि से सांसारिक व्यवहार करने के समत्वयोग में लगे रहने से स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले वैदिक कर्म कांड तो छूट जाएँगे और समत्व योग की पूर्णता इसी जन्म में प्राप्त होना कठिन है और पूर्णता प्राप्त हुए बिना ही शरीर छूट जाएगा तो मुक्ति भी नही होगी। ऐसी अवस्था में दोनों तरफ से भ्रष्ट हो जाऊँगा।" ६ अध्याय के ३७-३८ श्लोकों में की हुई उसकी इस आशंका का उत्तर देते हुए भगवान ने कहा है कि "इस समत्व योग के कल्याणकर अभ्यास में लगे रहने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती, किन्तु मरने के बाद, यदि मन में भोगों की वासनाएँ रहती हैं तो सुख भोगों के अनुकूल उन लोकों की कल्पना करके, उन में कल्पित लम्बे समय तक कल्पित भोग भोग कर फिर वह पवित्र श्रीमानों के घर में जन्म लेता है और यदि भोगों की वासनाएँ नहीं रहती हैं तो आत्मज्ञानी समत्वयोगियों के कुल में जन्म लेता है, जहाँ पहले के अभ्यास के प्रभाव से फिर आगे प्रयत्न करता हुआ पूर्णता को पहुँच जाता है। इस समत्व योग का जिज्ञासु भी वैदिक कर्म काण्डों में वर्णित फलों को पीछे छोड़ देता है। तपस्वियों, सूखे ज्ञान की बातें बनाने वालों और कर्म काण्डियों आदि से समत्व योगी श्रेष्ठ है। इसलिए तू समत्व योगी हो।"

इन श्लोकों में भगवान् ने समत्व योग के अभ्यास में लगे हुए जिज्ञासु की मरने के बाद, उसके पूर्व संस्कारों के अनुसार, उत्तम गति होने और और क्रमोन्नति करते हुए परमगति प्राप्त होने का आश्वासन देकर अर्जुन की आशंका का निवारण किया है। फिर ८वें अध्याय के अन्त के श्लोक में कहा है कि "वेदों, यज्ञों, तपों और दानों के जो फल शास्त्रों में कहे हैं, उन सब का उल्लंघन अर्थात् उपेक्षा करके समत्वदर्शी परम आदि स्थान को प्राप्त होता है।" इससे शुक्ल और कृष्ण गतियों के शास्त्रों के वचनों का तिरस्कार करने का उपदेश देकर

उनका निषेध कर दिया। सारांश यह कि गीता में इन गतियों के उल्लेख का तात्पर्य उनके खण्डन करने का है, न कि उनकी पुष्टि करने का।

प्रोफेसर : १०वें और ११वें अध्यायों में आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, अश्विनी कुमारों, मरुतगणों, गन्धर्वों, सिद्धों, पितरों, वरुणों, यक्षों, नागों, सुरों, असुरों आदि का भी तो वर्णन किया गया है और कमलासन पर बैठे ब्रह्मा का जिक्र है तथा कई पौराणिक कहानियों को भी स्थान दिया गया है।

गीतावादी : उस समय के लोगों की जो-जो मान्यताएँ शास्त्रों और काव्यों के आधार पर थी, उन सबको, मन की कल्पनाएँ मात्र बताकर, सबकी एकता अथवा सब का समावेश सबके अपने आप में करके, उनके अलग अस्तित्व का विश्वास मिटाने के उद्देश्य से उनका वर्णन किया गया है। १०वें और ११वें अध्यायों में सारे विश्व के कल्पित बनावों की अपने आप में एकता समझाई गई है।

प्रोफेसर : गीता के तीसरे अध्याय में यज्ञ की अवश्य कर्तव्यता का विधान भी तो किया गया है। हवन यज्ञ करना, यह साम्प्रदायिकता नहीं तो क्या है ?

गीतावादी : तीसरे अध्याय में जिस यज्ञ का विधान है, वह हवन आदि कर्मकांड नहीं है किन्तु अपनी-अपनी योग्यता के चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार नियत किये हुए कर्त्तव्य कर्मों को ही यज्ञ कहा गया है। तीसरा अध्याय कर्म योग का है और इसके ६वें श्लोक से यज्ञ के विधान का आरम्भ हुआ है। उसके पहले के अर्थात् ८वें श्लोक में भगवान् ने अर्जुन को कहा है कि :

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

अर्थ : "तू अपना नियत कर्म कर। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तो तेरी शरीर यात्रा भी नहीं हो सकेगी।" फिर इस श्लोक के बाद ही कहा है कि :

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥

अर्थात् : "इस लोक में यज्ञ के सिवाय अन्य किसी प्रयोजन के लिए किए जाने वाले कर्म बन्धन-कारक होते हैं, इसलिए हे कौन्तेय ! तू आसक्ति छोड़कर, उस यज्ञ के लिए, भली प्रकार कर्म कर।" इन उपर्युक्त श्लोकों पर निष्पक्ष भाव से, साम्प्रदायिक आग्रह छोड़ कर, विचार किया जाय तो पूर्ण रूप से निश्चय हो जाता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार अपने लिए नियत कर्मों को ही "यज्ञ" कहा है। ८वें श्लोक में कहा है कि "कर्म किये बिना तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं होगा", सो शरीर का निर्वाह अपने-अपने नियत कर्म करने पर निर्भर रहता है। हवन अनुष्ठान आदि कर्मकांडों से शरीर का निर्वाह नहीं होता और ६वें श्लोक में जो यह कहा है कि "यज्ञ के सिवाय और किसी प्रयोजन के लिए कर्म करना बन्धन-कारक है", यदि यहाँ यज्ञ शब्द का अर्थ हवन, अनुष्ठान आदि ही लिया जाए तो जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के जितने भी कर्म किये जाते हैं, वे सब बन्धनकारक माने जाएँगे। तब मनुष्य के लिए छुटकारा पाने की तो कोई आशा ही नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर यात्रा के लिए कर्म करना कभी छूट नहीं सकता। इसलिए गृहस्थाश्रमी के लिए सदा हवन अनुष्ठान आदि में ही लगे रहना होगा, तब शरीरों का निर्वाह कैसे होगा ?" इस तरह का अस्वाभाविक और अव्यावहारिक विधान गीता जैसे "व्यवहार दर्शन" में हो नहीं सकता। इसके अतिरिक्त ६वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में अर्जुन को आज्ञा दी है कि "तू आसक्ति छोड़ कर यज्ञ के लिए कर्म कर," सो क्या यह आज्ञा हवन के निमित्त तिल, जव, घी, समिधा आदि सामान एकत्र करने के लिए हो सकती है ? गीता की रचना [illegible] अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए हुई है और दूसरे अध्याय में [illegible] अपना स्वाभ [illegible] का स्पष्ट आदेश दिया गया है।

क्या उस आदेश के विरुद्ध, यहाँ यह कहना युक्ति संगत होता है कि "हवन के सिवाय और प्रयोजन के लिए कर्म करना बन्धनकारक है, इसलिए तू हवन के लिए कर्म कर।" यदि क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करना बन्धनकारक माना जाता तो अर्जुन को उसमें प्रवृत्त करना बिल्कुल असंगत होता। भगवान् कृष्ण इस तरह की असंगत और परस्पर विरोधी बातें नहीं कह सकते थे। सच बात तो यह है कि गीता में विधान किया हुआ "यज्ञ" चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने-अपने नियत कर्म, लोक संग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए करना ही है। अर्जुन का उस समय अपने क्षात्र धर्म के अनुसार कर्तव्य कर्म, युद्ध करना ही "यज्ञ" था। गीता में विधान किये हुए "यज्ञ" का अर्थ इसी पृष्ठ भूमि पर दृष्टि रखते हुए करना चाहिए।

प्रोफेसर : आगे १०वें श्लोक में कहा है कि, "प्रजापति ब्रह्मा ने पहले यज्ञ सहित प्रजा रची", इससे विदित होता है कि पौराणिक कथाओं के अनुसार ब्रह्मा और कर्म कांडात्मक यज्ञ करने को ही कृष्ण ने मान्यता दी है ?

गीतावादी : जब कृष्ण ने वेदों को ही मान्यता नहीं दी, तो पुराणों को मान्यता कैसे दे सकते थे ? समष्टि संकल्प रूप प्रकृति का ही एक नाम ब्रह्मा है। गीता में सृष्टि की रचना सर्वत्र प्रकृति द्वारा ही बताई गई है। १०वें श्लोक का तात्पर्य यह है कि प्रकृति द्वारा लोगों की रचना, उनके स्वाभाविक कर्तव्य कर्मों के साथ ही होती है, जिनको यथावत करते रहने से सबके जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होती रहती हैं। क्योंकि लोगों के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ सबके अपने-अपने काम करने से ही उत्पन्न होते हैं। गीता मे इसी को "यज्ञ" कहा है। अगर यहाँ "यज्ञ" शब्द का अर्थ हवन करना मान लिया जाय तो उसकी कुछ भी संगति नहीं बैठती, क्योंकि हवन के साथ ही प्रजा की रचना होती तो सब कोई सदा हवन ही करते रहते और उसी से सबके खाने, पीने, रहने आदि के पदार्थ उत्पन्न हो जाते, परन्तु ऐसा तो कहीं भी नहीं होता। यद्यपि अब हवन कोई नहीं करता है पर अपनी-अपनी योग्यता से काम करने से सबके जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होकर प्राप्त हो जाते हैं।

प्रोफेसर : ११-१२वें श्लोकों में यज्ञ द्वारा देवताओं के पुष्ट होने का भी तो कहा है। देवता तो हवन से ही पुष्ट होते हैं, ऐसा शास्त्रों का कथन है।

गीतावादी : यहाँ जिन देवों के पुष्ट होने का कहा है, वे शास्त्रों में वर्णित स्वर्गादि लोकों में रहने वाले देवता नहीं हैं, किन्तु स्थूल विश्व को धारण पोषण करने वाली सूक्ष्म समष्टि शक्तियों को "देव" कहा है। अलग-अलग व्यक्तियों की व्यष्टि शक्तियों की क्रियाओं के योग से समष्टि शक्तियाँ पुरित होती हैं और उन पुरित हुई समष्टि शक्तियों से सब लोगों के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनसे उन लोगों की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। जिस तरह एक राष्ट्र के अलग-अलग व्यक्तियों की विद्या और ज्ञान के योग से सारे राष्ट्र के राष्ट्रीय विद्या और ज्ञान बनते हैं, जिससे वह राष्ट्र अपने लोगों को विद्या और ज्ञान से पूरित करता है; अलग-अलग व्यक्तियों के बल के योग से राष्ट्र बलवान होता है, जिससे वह सबकी रक्षा करता है; अलग-अलग व्यक्तियों की सम्पत्ति के योग से राष्ट्र सम्पत्तिवान होता है, जिससे वह लोगों की आर्थिक उन्नति करता है और अलग-अलग व्यक्तियों के उद्योग के योग से राष्ट्र उद्योग से पूर्ण होता है, जिससे लोगों के जीवन की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं; उसी तरह संसार में प्रत्येक व्यक्ति चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार अपने-अपने स्वाभाविक कर्तव्य कर्म करके समष्टि शक्तियों को पुष्ट करता है, तब समष्टि शक्तियाँ द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। यही भाव इन श्लोकों में वर्णित यज्ञ के द्वारा देवताओं को पुष्ट करने और उन देवताओं के पुष्ट होने से सबकी आवश्यकताएँ पूरी होने का है। हमारी केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व वित्त मन्त्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने गत वर्ष के बजट पर लोक सभा में अपना भाषण देते हुए गीता के इन्हीं श्लोकों का हवाला देकर द्वितीय पंच-

वर्षीय योजना में सबको अपनी अपनी योग्यतानुसार सहयोग देने का अनुरोध किया था और हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी देश के सब प्रकार के उद्योग धन्धों में योग देने को ही यज्ञादिक, सच्चा धार्मिक कर्मकांड कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने भी देवताओं का अस्तित्व माना है। शायद उनका मतलब भी इन्हीं सूक्ष्म समष्टि शक्तियों से होगा।

जगत से भिन्न देवताओं को मान कर उनका भजन पूजन करने वालों की तो ७वें और ९वें अध्याय में बहुत निन्दा की गई है।

प्रोफेसर : पर १४ वें श्लोक में कहा है कि "भूत प्राणी अन्न से होते हैं, अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है," इससे तो मालूम होता है कि हवन से वर्षा होने का शास्त्रों में जो वर्णन है, वही कृष्ण ने माना है।

गीतावादी : ऐसी बात नहीं है। इस श्लोक में "पर्जन्य" शब्द आया है, उसका प्रचलित अर्थ "वर्षा" किया जाता है, जो बहुत संकुचित है। "पर्जन्य" शब्द का व्यापक अर्थ उत्पादक शक्ति है। "जन्य" शब्द का अर्थ है "उत्पन्न करने योग्य", जिसके पहले "परि" उपसर्ग लगाकर, "पर्जन्य" शब्द बना है। उत्पादक शक्ति से अन्न आदि खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते है और यह उत्पादक शक्ति सब के अपने-अपने काम करने रूप यज्ञ से ही बनती है, इसलिए श्लोक के अन्त में "यज्ञः कर्मसमुद्भवः" कहकर अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है कि अपने-अपने कर्म करने रूप यज्ञ से ही उत्पादक शक्ति होती है। गीता के साम्प्रदायिक टीकाकारों ने पूर्वापर की संगति पर कुछ भी ध्यान न देकर "पर्जन्य" शब्द का प्रचलित संकुचित अर्थ वर्षा और "यज्ञ" शब्द का प्रचलित अर्थ हवन करके, गीता में वैदिक कर्म कांड का विधान बता कर उसको साम्प्रदायिक रूप दे दिया है, जिसके फलस्वरूप आम जनता भी इसको एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ समझ रही है, परन्तु भगवान कृष्ण गीता जैसे "व्यवहार दर्शन" में इस तरह की अव्यावहारिक और अयुक्तिक तथा पूर्वापर विरोधी बातें कैसे कह सकते थे कि हवन से वर्षा होती है और केवल वर्षा ही से खाद्य पदार्थ होते हैं, क्योंकि जिन देशों में कभी हवन का नाम भी नहीं सुना गया, वहाँ सदा बहुतायत से वर्षा होती रहती है और बहुत से उद्योगशील पुरुषार्थी लोग वर्षा न होने पर भी नहरों आदि की सिंचाई से खाद्य पदार्थ उत्पन्न करते रहते हैं। जब गीता के दूसरे अध्याय में ही वैदिक कर्म कांडों का खंडन कर आये हैं, तो उसके विरुद्ध तीसरे अध्याय में हवन का विधान होना कभी बुद्धि संगत नहीं हो सकता। तीसरे अध्याय के १३वें और १६वें श्लोकों में यज्ञ में भाग नहीं लेने वालों को चोर, पापी कह कर उनको जीने के अनाधिकारी कहा है, तो क्या यह बात थोड़ी देर के लिए भी मानी जा सकती है कि जो सज्जन हवन नहीं करते हैं, उन सब को कृष्ण पापी, चोर और जीने के अनधिकारी समझते थे ?

प्रोफेसर : नहीं, अकल तो यह गवाही नहीं देती।

गीतावादी : प्रोफेसर साहब ! भगवान् बुद्ध की तरह कृष्ण पूरे बुद्धिवादी थे। गीता के दूसरे अध्याय के प्रारम्भ में ही अर्जुन को बुद्धि से काम लेने और स्वतन्त्र विचार करने का उपदेश देने लगे हैं। पूर्णावस्था की निर्वाण स्थिति को प्राप्त हुए लोगों को "स्थित प्रज्ञ" अर्थात् निश्चित बुद्धिवान विशेषण दिया है और सर्वत्र बुद्धि और ज्ञान की ही महिमा गाई है। वहाँ साम्प्रदायिक कर्म कांडों के अन्धविश्वास के लिए अवकाश ही कहाँ रह सकता है। १८वें अध्याय के ६३वें श्लोक में कृष्ण ने अर्जुन को यहाँ तक कह दिया है कि "मैंने तुमको गुह्य से गुह्य ज्ञान कहा है, इस पर पूरी तरह विचार करके, फिर तेरी जो इच्छा हो, सो कर अर्थात् मेरे उपदेशों में भी अन्धश्रद्धा मत कर, किन्तु अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से अच्छी तरह विचार करके फिर तुझे जो अच्छा लगे सो कर।" यही बात भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को कही थी। इससे स्पष्ट है कि भगवान् कृष्ण

और बुद्ध के सिद्धान्तों में अन्धविश्वासों को कोई स्थान नहीं दिया गया है, किन्तु बुद्धि से काम लेने का विचार स्वातन्त्र्य है।

प्रोफेसर : चौथे अध्याय के २४वें श्लोक में कहा है कि "यज्ञ के उपकरण, होम किया जाने वाला पदार्थ, होम की अग्नि और होम करने वाला, सभी ब्रह्म है" और ९वें अध्याय के १६वें श्लोक मे कहा है कि "मैं क्रतु हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं स्वधा हूँ, मैं मन्त्र हूँ, मैं औषधी हूँ, मैं घी हूँ, मैं अग्नि हूँ, और मैं आहुति हूँ।" इससे तो विदित होता है कि कृष्ण ने हवन को मान्यता दी है।

गीतावादी : आप को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उस समय देश मे हवन का बहुत अधिक प्रचार था। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त ऐसा कोई भी शुभ अवसर नही था, जो हवन के बिना सम्पन्न होता। आर्यों का सारा जीवन ही एक प्रकार से हवनमय अथवा कर्मकांडमय ही था। ऐसी परिस्थिति में, यह कृष्ण जैसे महापुरुष का ही अदम्य साहस था कि इतने गहरे अन्धविश्वासों का विरोध करता। आपने जिन श्लोकों का उल्लेख किया है उनमें हवन की मान्यता की पुष्टि करने का तात्पर्य नही है, किन्तु सब के अपने-अपने कर्तव्य कर्मों को हवन का रूपक देकर, उन सब में परमात्मा की सर्वव्यापकता की एकता और समता की बुद्धि करने का है। इन श्लोकों का यह अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने पेशे के काम करने के औजार, क्रिया, द्रव्य, जिनके लिए काम किये जाते हैं, वे, और स्वयं काम करने वाला, सब परमात्मा रूप है अर्थात् सब की एकता है। बुद्धि में इस एकता और समता का निश्चय रखते हुए सब को अपनी-अपनी योग्यता के कर्तव्य कर्म करना चाहिए। चौथे अध्याय के २५ से ३० तक के श्लोकों में उस समय के लोगों मे प्रचलित अनेक प्रकार के "यज्ञों" का कुछ उल्लेख करके अन्त मे यह स्पष्ट कर दिया है कि लोग इनको भी "यज्ञ" ही मानते हैं। परन्तु इन सब से ज्ञान यज्ञ ही श्रेष्ठ है अर्थात् सब की एकता के ज्ञान युक्त अपनी-अपनी योग्यता के कर्म, लोक संग्रह के लिए करना ही सच्चा यज्ञ है। १७ वें अध्याय में "यज्ञ" के तीन भेद किये हैं, उनमें "सात्विक यज्ञ" इसी को कहा है। अन्य यज्ञो को राजस, तामस कहा है। और १८वें अध्याय में इसी "यज्ञ" की आवश्यकता का विधान किया गया है।

प्रोफेसर : गीता में विधान किए हुए "यज्ञ" का जो खुलासा आप ने किया, यह ठीक समझ में आता है। यही "यज्ञ" बुद्धि संगत है और इसमें कोई साम्प्रदायिकता नही है। संसार के सभी लोगों के लिए यह "यज्ञ" करना आवश्यक है और इसी से सब की आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। पर भाई साहब ! यह बात आप नही कहिए कि गीता में साम्प्रदायिकता है ही नही। गीता का आरम्भ ही साम्प्रदायिकता के आधार पर हुआ। प्रथम अध्याय ही में अर्जुन ने धर्म नाश होने, अधर्म बढ़ने, पिंडोदक क्रियाएँ लुप्त होने, जाति धर्म और कुल धर्म नष्ट होने और हत्या के पाप से पितरों सहित नरक में पड़ने आदि की बातें शास्त्रों के आधार पर कही हैं।

गीतावादी : महाशय जी ! गीता के "व्यवहार दर्शन" का आरम्भ यथार्थ मे प्रथम अध्याय से नहीं होता प्रथम अध्याय में तो अर्जुन के विषाद का ही वर्णन है, इसीलिए इस अध्याय का नाम ही "अर्जुन विषाद योग" है। गीता का यथार्थ आरम्भ दूसरे अध्याय के दूसरे और तीसरे श्लोकों मे, भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों से होता है जिनमें भगवान् ने पहले अध्याय में कही हुई अर्जुन की बातों को कड़े शब्दों मे उसकी भर्त्सना करके, उसको फटकारा है।

प्रोफेसर : फिर दूसरे अध्याय के ७वें श्लोक में अर्जुन ने अपने को "धर्म सम्मूढ़ चेता" कह कर धर्म के विषय में ही शिक्षा देने की कृष्ण से प्रार्थना की है।

गीतावादी : यहाँ "धर्म संमूढ़ चेता" से साम्प्रदायिक धर्म का तात्पर्य नहीं है किन्तु अपने कर्तव्य कर्म के विषय में कि कर्तव्य विमूढ़ता का है।

प्रोफेसर : परन्तु आगे दूसरे अध्याय में ३१ से ३७ तक के श्लोकों में स्वयं कृष्ण ने ही अर्जुन को अपने धर्म पर डटे रहने का जोर दिया है और उसी से स्वर्ग प्राप्त होने का आश्वासन दिया है।

गीतावादी : गीता में भगवान् कृष्ण ने जहाँ-जहाँ धर्म पालन करने का विधान किया है, वहाँ धर्म शब्द का अर्थ, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने शरीर के स्वाभाविक गुणों की योग्यता के कर्तव्य कर्म करना है, न कि किसी साम्प्रदायिक धर्म का। अर्जुन अपने शरीर के स्वाभाविक गुणों के अनुसार क्षत्रिय था और दुष्टों के साथ युद्ध करना उसका कर्तव्य था और यही उसका स्वाभाविक धर्म था। उस कर्तव्य कर्म रूप धर्म की अर्जुन के माने हुए शास्त्रों के आधार पर ही अवश्य कर्तव्यता यहाँ बताई गई है। स्वर्ग प्राप्ति का उल्लेख भी अर्जुन के माने हुए शास्त्रों के अनुसार ही किया गया है जिनमे कहा गया है कि "वीर क्षत्रिय युद्ध में मरकर स्वर्ग प्राप्त करता है।" यह मत भगवान श्री कृष्ण का अपना नहीं है, क्योंकि उसके बाद ही ३८वें श्लोक में साफ कह दिया है कि "सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-अजय, को समान मानकर युद्ध कर। ऐसा करने से तुझे जो पाप का भय है, वह न लगेगा।" गीता में सर्वत्र अपने कर्तव्य कर्म निष्काम भाव से करने को कहा गया है। इसलिए स्वर्ग प्राप्ति की कामना के प्रलोभन के लिए यहाँ स्थान ही नहीं है। पूर्वापर की संगति मिलाकर गीता का अर्थ करना चाहिए। भगवान कृष्ण के कहे हुए "व्यवहार दर्शन" में यह कैसे हो सकता है कि परस्पर विरोधी बातें कही जाएँ ?

प्रोफेसर : वर्ण व्यवस्था भी तो साम्प्रदायिकता ही है। हिन्दू लोग वर्ण व्यवस्था को अपने धर्म का एक अंग मानते हैं।

गीतावादी : वर्ण व्यवस्था समाज की सुव्यवस्था के लिए कार्य विभाग का विधान है। जिस व्यक्ति के शरीर की जो स्वाभाविक योग्यता हो, उसके अनुसार समाज की आवश्यकताएँ पूर्ति के कार्य करने की व्यवस्था ही वर्ण व्यवस्था है। समाज की सुख शान्ति के लिए अपनी-अपनी योग्यता के काम करने की हमारे यहाँ वैज्ञानिक ढंग से कार्य विभाग की व्यवस्था की गई थी, ताकि जो व्यक्ति जिस काम के करने के योग्य हो, वही काम करे ताकि वह सुचारु रूप से काम हो सके। सभी सभ्य समाजों में योग्यतानुसार काम करने की व्यवस्था होती है, इसलिए कार्य विभाग की वर्ण व्यवस्था में किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नहीं है। मध्य युग में इस देश में इस कार्य विभाग के लिए गुणों की योग्यता की उपेक्षा करके जन्मजात अधिकार मान लिया गया। उसी से इस में साम्प्रदायिकता का रूप आ गया, जिससे देश की बड़ी भारी हानि हुई। जिस वैज्ञानिक सिद्धान्त पर वर्ण व्यवस्था रची गई थी और जिसका विधान गीता में किया गया है, यदि वही प्रचलित रहती तो इस देश की अधोगति नहीं होती। वर्तमान में तो वर्ण व्यवस्था का इतना विपर्यास हो गया है कि वास्तव में वर्ण व्यवस्था रही ही नहीं। उसके स्थान पर जन्मगत जाति-पाँति के अगणित भेद हो गये और उसी को धर्म का अंग मान लिया गया, इसलिए लोगों को वर्ण व्यवस्था में साम्प्रदायिकता प्रतीत होती है।

प्रायः सभी सम्प्रदाय या मजहब किसी प्रकार शक्ति सम्पन्न और विशेष गुणों वाले अदृश्य ईश्वर या उसी तरह के किसी पैगम्बर, अथवा व्यक्ति के अस्तित्व की मान्यता पर निर्भर रहते हैं परन्तु जहाँ सब के अपने आप में और जगत से भिन्न किसी अलग ईश्वर या पैगम्बर व्यक्ति का होना माना ही नहीं जाता, वहाँ साम्प्रदायिकता अथवा मजहबीपन के लिए कोई स्थान नहीं रहता। गीता में तो भगवान् कृष्ण ने अपने उपदेश के अन्त में साफ शब्दों में कह दिया है कि "सब धर्मों को बिल्कुल छोड़कर एक मेरी शरण में आ" अर्थात् 'मैं

शब्द से प्रतिपादित सर्वव्यापक, सब की एकता स्वरूप अपने आपका अनुभव कर। इस निःसंकोच सिंह गर्जन के सामने सम्प्रदाय रूपी सियार ठहर ही नहीं सकते।

प्रोफेसर : गीता के १६वें अध्याय के २३वें श्लोक में कृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि "जो शास्त्र विधि को छोड़कर अपनी मनमानी करता है, उसकी दुर्दशा होती है, इसलिए तू शास्त्र के प्रमाण से कर्तव्या-कर्तव्य का निर्णय करके शास्त्र विधि के अनुसार कर्म कर।" इससे साम्प्रदायिक शास्त्रों के मानने पर जोर दिया मालूम होता है।

गीतावादी : गीता में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले और उस सिद्धान्त के आधार पर सांसारिक व्यवहार करने का विधान करने वाले शास्त्रों ही को शास्त्र माना है। १३वें अध्याय के चौथे श्लोक में उपनिषदों और ब्रह्म सूत्र को प्रमाणिक माना है और १५वें अध्याय में, अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करके, अन्त के श्लोक मे इसी को शास्त्र कहा है। फिर १६वें अध्याय के अन्त में इसी को शास्त्र के अनुसार अपना कर्तव्य कर्म करने को अर्जुन से कहा गया है। जो इन शास्त्रों के अनुसार सब की एकता के ज्ञान-पूर्वक अपने कर्म कर्तव्य नहीं करते, किन्तु अपनी व्यक्तिगत कामनाओं की पूर्ति के लिए ही भेदवाद के शास्त्रों के आधार पर चेष्टाएँ करते रहते हैं, उनकी दुर्दशा होना निश्चित बताया है। भेदवाद के शास्त्रों की तो दूसरे अध्याय के ५२-५३वें श्लोक मे स्पष्टतया निन्दा की गई है। जहाँ अर्जुन को कहा है कि "जब तेरी बुद्धि अज्ञान रूपी कीचड़ से निकल जाएगी, तब तू शास्त्रों मे सुनाए जाने वाले और सुने गये वचनों की उपेक्षा कर देगा। श्रुति के वचनों से विक्षिप्त हुई तेरी बुद्धि जब समता के भाव में अचल और अटल हो जाएगी, तब तुझे समत्व योग प्राप्त होगा।" इन वाक्यों से साफ है कि गीता भेदवाद के साम्प्रदायिक शास्त्रों को हेय मानती है।

प्रोफेसर : पर कृष्ण ने तो गीता में अपनी भक्ति तथा पूजा करवाने पर बहुत जोर दिया है। जगह जगह कहा है कि 'मुझ मे चित्त लगा दे, मेरी भक्ति कर, मेरी उपासना कर, मेरा भजन कर, मेरे लिए कर्म कर, सब कुछ मेरे अर्पण कर, मेरी शरण मे आ, मुझे नमस्कार कर" इत्यादि और अपनी बड़ाई भी बहुत होती है, जैसे कि 'सब यज्ञों और तपों का भोक्ता में ही हूँ। सब लोगों का महान ईश्वर में हूँ, मैं पुरुषोत्तम हूँ। यहाँ तक कहा है कि "अमृत और अव्यय ब्रह्म का, शाश्वत धर्म और अत्यंतिक सुख का आधार मैं ही हूँ।" ७वें से १२वें अध्याय तक ६ अध्याय तो भक्ति या उपासना के ही माने जाते हैं। भक्ति मार्ग ही तो सबसे बड़ी साम्प्र-दायिकता है।

गीतावादी : मैंने आपको पहले ही बतला दिया है कि कृष्ण ने गीता में उत्तम पुरुष वाचक सर्वनामों का जो प्रयोग किया है, वह शरीरधारी कृष्ण के व्यक्तित्व के लिए नहीं किया है, किन्तु सारे विश्व के आत्मभाव यानी सब की एकता के भाव से किया है और इस तथ्य को स्थान-स्थान पर साफ भी कर दिया है कि 'मैं अपनी परा और अपरा प्रकृति से जगत् को धारण करता हूँ, जगत् की उत्पत्ति और संहार करता हूँ, मणियों में धागे की तरह मैं सब में ओत प्रोत पिरोया हुआ हूँ, मैं सबकी आत्मा हूँ, मैं सबके अन्दर समान रूप से रहता हूँ, मैं सब भूतों का बीज हूँ, मेरे बिना संसार में कोई भी चराचर वस्तु नहीं है, मैं अपने एक अंश से जगत् को धारण किए हुए हूँ", इत्यादि वाक्यों से अपना सर्वात्मभाव बार-बार जताते रहे हैं और ११वें अध्याय में तो अपना विश्वरूप दिखला कर सारे विश्व के साथ अपनी एकता पूर्णतया बता दी। १०वें अध्याय के विभूति वर्णन में वसुदेव के घर में जन्म लेने वाले अपने कृष्ण के शरीर को अपनी अनेक विभूतियों में से एक विभूति गिनाया है, इससे स्पष्ट होता है कि गीता में कृष्ण ने जो मैं, मेरा, मुझे, मुझ से, मुझ में, मेरे लिए, मेरे द्वारा आदि सर्वनाम कहे हैं, वे कृष्ण के व्यक्ति शरीर के लिए नहीं हैं, किन्तु विश्वात्मा अर्थात् सारे विश्व के एकत्व भाव के लिए कहे हैं। इस तथ्य पर

ध्यान रखने से "मुझ में मन लगा, मेरी भक्ति कर" आदि वाक्यों का यह अर्थ होता है कि सारे जन समाज के साथ अपनी एकता का अनुभव कर, सब से नम्र रह, सब से प्रेम कर, सारे समाज के लिए कर्म कर, सब का आदर कर, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सबके स्वार्थों के साथ जोड़ दे और अपने व्यक्तित्व को सारे विश्व के साथ एक-सा कर दे।" १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक में जो "मामेकं शरणं व्रज" कहा है, उसका यही अर्थ है। जिस-जिस स्थल पर भक्ति करने का आदेश दिया गया है, वहाँ अनन्य भाव से भक्ति करने को कहा गया है अर्थात् कृष्ण को कोई अलग या दूसरा व्यक्ति समझ कर उसकी उपासना करने को नहीं कहा गया है किन्तु सारे विश्व में जो एक तत्व व्यापक है, उसकी प्रेम लक्षणा भक्ति करने को कहा गया है। *सारांश यह है कि विश्व प्रेम ही भक्ति या उपासना* मानी गई है। किसी विशेष व्यक्ति या शक्ति की उपासना का विधान नहीं है। इस विषय का विशेष खुलासा कराने के लिए १२वें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने प्रश्न किया है, जिसके उत्तर में भगवान् ने साफ कह दिया है कि ११वें अध्याय में सारे विश्व की एकता स्वरूप मैंने जो विश्व रूप दिखाया है, उस विश्व से प्रेम-पूर्वक अपने कर्तव्य करना ही सच्ची उपासना है और जो लोग निर्गुण अव्यक्त की उपासना करते हैं, वे भी सर्वत्र समबुद्धि और सब भूतों के हित में लगे रहने से मुझे अर्थात् सर्वात्म भाव को प्राप्त होते हैं। फिर आगे १३वें श्लोक से १९वें श्लोक तक सच्चे भक्त के लक्षण कहे हैं, उन में साम्प्रदायिक बुद्धि से पूजन अर्चन आदि के प्रतीक, मूर्ति, चित्र आदि की उपासना अथवा कर्मकाण्डों और स्तुतियों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने अथवा निराकार ईश्वर के ध्यान में लगे रहने को नहीं कहा है, किन्तु 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च' से आरम्भ करके सब के साथ प्रेम करने और यथायोग्य समता का बर्ताव करने वाले भक्तों को ही सच्चा भक्त निश्चित किया गया है। कृष्ण को एक विशेष व्यक्ति या विशेष मनुष्य मान कर इस भाव से उसकी उपासना करने वालों को ७वें अध्याय के २४वें श्लोक में और ९वें अध्याय के ११वें श्लोक में निर्बुद्धि और मूढ़ कहा है और अन्त में १८वें अध्याय के ४६वें श्लोक में सन्दिग्ध शब्दों में अन्तिम निर्णय दे दिया गया है कि "*जिससे सारे प्राणियों की प्रवृत्ति चल रही है और जिससे सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, उसकी अपने कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त होता है।*" तात्पर्य यह है कि लोकसंग्रह के लिए अपनी-अपनी योग्यता के कर्म करना ही कृष्ण ने उपासना, भक्ति या पूजन अर्चन कहा है।

प्रोफेसर : ११वें अध्याय में चतुर्भुज रूप की उपासना का भी तो उल्लेख है?

गीताबाबी : वहाँ चतुर्भुज रूप का जो उल्लेख है उसमें उस रूप की उपासना करने का विधान नहीं किया गया है कि "मेरे चतुर्भुज रूप का अमुक विधि से पूजन अर्चन करना चाहिए।" जब अर्जुन विराट् रूप के घोर दृश्य देखकर अत्यन्त घबड़ा गया, तब उसने धीरज और शान्ति प्राप्त करने के लिए चतुर्भुज रूप दिखाने की भगवान् से प्रार्थना की, क्योंकि मस्तक पर मुकुट और चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए उस रूप का यह रहस्य है कि जिस मनुष्य के मस्तक अर्थात् बुद्धि में सब की एकता का ज्ञान रूपी मुकुट धारण किया हुआ है और जो विद्या रूपी शंख, कर्म कौशल रूपी चक्र, गदा रूपी बल और जल में कमल की तरह जगत् के व्यवहारों में अलिप्त और अनासक्त रहने रूपी कमल से युक्त हो, वही पूर्ण पुरुष या पुरुषोत्तम होता है। वही संसार के सब प्रकार के व्यवहार सांगोपांग कर सकता है और सब प्रकार का व्यवहार करता हुआ भी पूर्ण शान्त रहता है, कभी क्षुब्ध नहीं होता, और क्योंकि मनुष्य जिस किसी गुण युक्त पदार्थ का निरन्तर चित्त से चिन्तन करता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है, इसलिए अर्जुन को वह रूप बड़ा प्यारा था। अतः भगवान् ने उसके कहने पर विराट् रूप की तरह ही मनोयोग की दिव्य दृष्टि से चतुर्भुज रूप उसको दिखा दिया वह भौतिक स्थूल रूप नहीं था, किन्तु काल्पनिक स्वरूप था, इसलिए उस रूप का पूजन अर्चन करने का प्रश्न ही नहीं था। साम्प्रदायिक लोग इस रहस्य पर ध्यान न देकर गीता में वर्णित इस चतुर्भुज रूप की मूर्तियाँ बना कर पंचोपचार या षोडशोपचार आदि पूजन अर्चन करते हैं जिससे लोगों में भ्रम उत्पन्न होता है कि गीता में कृष्ण ने चतुर्भुज मूर्ति

पूजन का विधान किया है, परन्तु गीता में इस तरह के पूजन अर्चन का कहीं भी विधान नहीं है। गीता 'व्यवहार दर्शन' का ग्रन्थ है और व्यावहारिक पूर्ण पुरुष की क्या योग्यता और उसमें क्या-क्या गुण होते है, वे चतुर्भुज रूप का रूपक बांध कर यहां बताया गया है।

प्रोफेसर : ९वें अध्याय के २६वें श्लोक में कहा है कि "जो भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल मुझे प्रीतिपूर्वक देता है, वह मैं खाता हूँ," तो पत्र, पुष्प, फल और जल मूर्तियों पर ही तो चढ़ाये जाते हैं, इससे मूर्ति पूजा का विधान पाया जाता है।

गीतावादी : उस श्लोक में या उसके पहले, पीछे कहीं भी प्रतीक, मूर्ति, चित्र आदि की पूजा का विधान नहीं किया गया है। इस श्लोक में भी यह नहीं कहा गया है कि "ये पदार्थ मेरे किसी प्रतीक, मूर्ति पर चढ़ाने से मैं खाता हूँ।" वास्तव में जड़ मूर्तियों में खाने की योग्यता ही नहीं होती, फिर कृष्ण कैसे कह सकते थे कि इन मूर्तियों पर चढ़ाने से मैं खाता हूँ। वास्तव में तथ्य यह है कि संसार मे जितने प्राणी हैं, वे सब, सब के आत्मा कृष्ण के रूप हैं, जिसमें से जिस शरीर की जैसी योग्यता हो, उसी के अनुसार प्रीतिपूर्वक यथायोग्य पदार्थ भेंट करने से उनमें वैश्वानर अग्नि रूप से रहने वाला सबका आत्मा कृष्ण ही खाता है। १५वें अध्याय के १४वें श्लोक मे कहा है कि "मैं सब प्राणियों के देहों में जठराग्नि रूप से स्थित होकर चार प्रकार का अन्न यानी भोजन पचाता हूँ।"

प्रोफेसर : १०वें अध्याय के २५वें श्लोक में कृष्ण ने कहा है कि "यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" अर्थात् 'यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ' इससे ईश्वर के नाम के जाप का विधान पाया जाता है।

गीतावादी : इस अध्याय में केवल विभूतियों का वर्णन मात्र है। इसमें किसी क्रिया की अवश्य कर्तव्यता का विधान नहीं है। किसी भी प्रकार की विशेषता रखने वाली अनेक विभूतियों के वर्णन में यज्ञों में विशेषता रखने वाले जप यज्ञ को एक विभूति गिनाया है, इससे जाप करने की अवश्य कर्तव्यता का विधान नहीं होता, परन्तु साम्प्रदायिक टीकाकारों ने ९वें अध्याय के २६वें श्लोक और इस "यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" का अपना मनमाना भावार्थ निकाल कर अपने-अपने सम्प्रदायों के उपयोगी विधान का रूप दे दिया है।

प्रोफेसर : "ओमकार" के जाप का तो गीता में अनेक स्थलों पर विधान पाया जाता है।

गीतावादी : "ओमकार" सारे विश्व की एकता का बोध कराने वाला एक अक्षर है। अ, उ, म् तीन अक्षर मिलकर एक "ओम्" अक्षर बनता है। इन तीन अक्षरों से विश्व की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों अवस्थाओं की एकता का संकेत होता है। इस अक्षर के उच्चारण द्वारा सब की एकता का चिन्तन करते रहने का विधान है। किसी व्यक्ति या ईश्वर के नाम का जाप या चिन्तन का विधान नहीं है।

प्रोफेसर : पर गीता में कृष्ण ने श्रद्धा को तो बहुत महत्त्व दिया है ?

गीतावादी : अवश्य ही। मनुष्य के प्रायः सभी व्यवहारों मे श्रद्धा या विश्वास की कुछ न कुछ आवश्यकता पड़ती ही है, क्योंकि मनुष्य एक प्रकार से श्रद्धामय होता है। जब से एक बालक की समझ का विकास आरम्भ होता है तभी से वह माता पिता, गुरु तथा अन्य सम्बन्धियों की बातों पर विश्वास करके ही अपने ज्ञान को बढ़ाता है। संसार की अधिकांश बातें हम केवल इन्द्रियों के ज्ञान से ही नहीं जान सकते, किन्तु दूसरों पर विश्वास करके ही जानते हैं परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य श्रद्धा या विश्वास विचारपूर्वक करते हैं। जिसको जिस विषय का जितना यथार्थ ज्ञान हो, उस विषय में उस पर उतनी ही श्रद्धा या विश्वास करते हैं। जिसको जिस विषय का जितना यथार्थ ज्ञान ही न हो या अल्प ज्ञान हो, उस विषय में उस पर श्रद्धा या विश्वास कर लेना अथवा असत्य कल्पित बातों में विश्वास करना अन्ध श्रद्धा होती है, जिसके लिए गीता में कोई स्थान नहीं है। इसीलिए गीता में बुद्धि को प्रधानता दी गई है। परन्तु हरेक मनुष्य की बुद्धि इतनी विकसित नहीं होती कि वह श्रद्धा या विश्वास

ध्यान रखने से "मुझ में मन लगा, मेरी भक्ति कर" आदि वाक्यों का यह अर्थ होता है कि सारे जन समाज के साथ अपनी एकता का अनुभव कर, सब से नम्र रह, सब से प्रेम कर, सारे समाज के लिए कर्म कर, सब का आदर कर, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सबके स्वार्थों के साथ जोड़ दे और अपने व्यक्तित्व को सारे विश्व के साथ एकता कर दे।" १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक में जो "मामेकं शरणं व्रज" कहा है, उसका यही अर्थ है। भिन्न-भिन्न स्थल पर भक्ति करने का आदेश दिया गया है, वहाँ अनन्य भाव से भक्ति करने को कहा गया है अर्थात् कृष्ण को कोई अलग या दूसरा व्यक्ति समझ कर उसकी उपासना करने को नहीं कहा गया है किन्तु सारे विश्व में जो एक तत्त्व व्यापक है, उसकी प्रेम लक्षणा भक्ति करने को कहा गया है। सारांश यह है कि विश्व प्रेम ही भक्ति या उपासना मानी गई है। किसी विशेष व्यक्ति या आकृति की उपासना का विधान नहीं है। इस विषय का विशेष खुलासा कराने के लिए १२वें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने प्रश्न किया है, जिसके उत्तर में भगवान् ने साफ कह दिया है कि ११वें अध्याय में सारे विश्व की एकता स्वरूप मैंने जो विश्व रूप दिखाया है, उस विश्व से प्रेम-पूर्वक अपने कर्तव्य करना ही सच्ची उपासना है और जो लोग निर्गुण अव्यक्त की उपासना करते हैं, वे भी सर्वत्र समबुद्धि और सब भूतों के हित में लगे रहने से मुझे अर्थात् सर्वात्म भाव को प्राप्त होते हैं। फिर आगे १३वें श्लोक से १९वें श्लोक तक सच्चे भक्त के लक्षण कहे हैं, उन में साम्प्रदायिक बुद्धि से पूजन अर्चन आदि के प्रतीक, मूर्ति, चित्र आदि की उपासना अथवा कर्मकाण्डों और स्तुतियों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने अथवा निराकार ईश्वर के ध्यान में लगे रहने को नहीं कहा है, किन्तु 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च' से आरम्भ करके सब के साथ प्रेम करने और यथायोग्य समता का बर्ताव करने वाले भक्तों को ही सच्चा भक्त निश्चित किया गया है। कृष्ण को एक विशेष व्यक्ति या विशेष मनुष्य मान कर इस भाव से उसकी उपासना करने वालों को ७वें अध्याय के २४वें श्लोक में और ९वें अध्याय के ११वें श्लोक में निर्बुद्धि और मूढ़ कहा है और अन्त में १८वें अध्याय के ४६वें श्लोक में असन्दिग्ध शब्दों में अन्तिम निर्णय दे दिया गया है कि "जिससे सारे प्राणियों की प्रवृत्ति चल रही है और जिससे सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, उसकी अपने कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त होता है।" तात्पर्य यह है कि लोकसंग्रह के लिए अपनी-अपनी योग्यता के कर्म करना ही कृष्ण ने उपासना, भक्ति या पूजन अर्चन कहा है।

प्रोफेसर : ११वें अध्याय में चतुर्भुज रूप की उपासना का भी तो उल्लेख है?

गीताबाबी : वहाँ चतुर्भुज रूप का जो उल्लेख है उसमें उस रूप की उपासना करने का विधान नहीं किया गया है कि "मेरे चतुर्भुज रूप का अमुक विधि से पूजन अर्चन करना चाहिए।" जब अर्जुन विराट् रूप के घोर दृश्य देखकर अत्यन्त घबड़ा गया, तब उसने धीरज और शान्ति प्राप्त करने के लिए चतुर्भुज रूप दिखाने की भगवान् से प्रार्थना की, क्योंकि मस्तक पर मुकुट और चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए उस रूप का यह रहस्य है कि जिस मनुष्य के मस्तक अर्थात् बुद्धि में सब की एकता का ज्ञान रूपी मुकुट धारण किया हुआ है और जो विद्या रूपी शंख, कर्म कौशल रूपी चक्र, गदा रूपी बल और जल में कमल की तरह जगत् के व्यवहारों में अभिन्न और अनासक्त रहने रूपी कमल से युक्त हो, वही पूर्ण पुरुष या पुरुषोत्तम होता है। वही संसार के सब प्रकार के व्यवहार सांगोपांग कर सकता है और सब प्रकार का व्यवहार करता हुआ भी पूर्ण शान्त रहता है, कभी क्षुब्ध नहीं होता, और क्योंकि मनुष्य जिस किसी गुण युक्त पदार्थ का निरन्तर चिन्तन करता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है, इसलिए अर्जुन को वह रूप बहुत प्यारा था। अतः भगवान् ने उसके कहने पर विराट् रूप की तरह ही मनोयोग की दिव्य दृष्टि से चतुर्भुज रूप उसको दिखा दिया वह भौतिक स्थूल रूप नहीं था, किन्तु आलंकारिक रूपक था, इसलिए उस रूप का पूजन अर्चन करने का प्रश्न ही नहीं था। साम्प्रदायिक लोग इस रहस्य पर ध्यान न देकर गीता से बल्कि इस चतुर्भुज रूप की मूर्तियाँ बना कर पंचोपचार या षोडशोपचार आदि पूजन अर्चन करते हैं जिससे लोगों में भ्रम उत्पन्न होता है कि गीता में कृष्ण ने चतुर्भुज मूर्ति

उपासना करने वालों की साफ तौर से निन्दा की गई है। सारांश यह है कि कृष्ण ने देवताओं या अपनी मूर्ति आदि को पूजा करवाने के लिए श्रद्धा को कहीं भी महत्त्व नहीं दिया है और न कहीं अपने व्यक्तित्व की बड़ाई ही की है किन्तु जहां जहां अपनी महानता का उल्लेख किया है, वह सर्वात्म भाव के लिए किया है, जो वास्तव में ही महान् है।

प्रोफेसर : एक ही मनुष्य व्यक्ति भाव का व्यवहार करे और साथ ही सब की एकता का अनुभव और उसमें अपनी स्थिति सदा बनाये रखे, यह बात समझ में नहीं आती ?

गीतावादी : हम लोगों जैसे साधारण व्यक्तियों की समझ इतनी परिमित और संकुचित है कि महान् पुरुषों के अन्तःकरण की स्थिति तक वह पहुँच नहीं सकती। भगवान बुद्ध तो आत्मानुभव की निर्वाण स्थिति में पहुँच कर भी अपने शिष्यों को प्रचार करने के लिए धर्मोपदेश देते रहे थे। कृष्ण और बुद्ध की अत्यन्त प्राचीन बातें छोड़ भी दें तो वर्तमान में हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू की भी दोहरी स्थिति प्रत्यक्ष देखने में आती है। एक तरफ वे व्यक्तित्व के भाव से अपने शरीर के सब व्यवहार करते हैं और दूसरी तरफ सारे देश के प्रधान मन्त्री के भाव से सारे देश वासियों की अपने साथ एकता का अनुभव रखते हुए, सब के हित के कार्य उसी शरीर से करते हैं और सारे देश की एकता उनमें केन्द्रित है। शरीर दृष्टि से व्यक्ति होते हुए भी उनके अन्तः-करण की स्थिति समष्टि में है और विश्व के सब देशों में सारे भारत की एकता के प्रतीक माने जाते हैं।

प्रोफेसर : आपके इन दृष्टान्तों से कृष्ण की व्यष्टि और समष्टि दोहरी स्थिति समझ में आ सकती है पर कृष्ण की तरह बुद्ध या नेहरू ने अपनी बड़ाई अपने मुँह से तो नहीं की ?

गीतावादी : भगवान बुद्ध ने जब ३५ वर्ष की अवस्था में बोध प्राप्त किया तब अपनी उस अलौकिक परमोच्च स्थिति को लोगों के सामने प्रकट किया तभी तो लोगों को उनकी महानता का पता लगा और उनका आदर और पूजन करने लगे और वे अपने को पूर्ण मानकर ही संसार को अपने दिव्य उपदेश देने और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने में प्रवृत्त हुए। यदि वे अपने मुँह से अपनी महानता प्रकट न करते तो संसार उनकी अलौकिक शक्ति को न जान सकता और उनके कल्याणकर उपदेशों से वंचित रहता। पं० जवाहरलाल नेहरू भी समय समय पर कहते रहते हैं कि "मैं भारत के किसी विशेष प्रान्त का, विशेष जाति का, विशेष वर्ग का या विशेष सम्प्रदाय का नहीं हूँ, किन्तु सारे भारत का हूँ।" प्रधान मन्त्री होने के कारण सारे भारत के लोगों की रक्षा, शिक्षा, भरण, पोषण और सर्वांगीण उन्नति का दायित्व अपने ऊपर बताते हैं और सारे देश का शासन करते हैं। देश की सारी जनता अपने-अपने हितों की रक्षा और दुख निवारण के लिए उनका आश्रय लेती है और उनको राष्ट्र का उद्धारक, राष्ट्र का निर्माता, राष्ट्र का रक्षक तथा सर्वेसर्वा मानकर उनमें पूर्ण श्रद्धा रखती है। यद्यपि आधिभौतिक दृष्टिकोण के कारण, मानवीय त्रुटियों का अनुभव करते हुए अपने मुँह से वे अपनी बड़ाई कुछ भी नहीं करते, पर जो उनकी वास्तविक स्थिति है उससे इनकार भी नहीं कर सकते। परन्तु भगवान् कृष्ण मनुष्य रूप में होते हुए भी आध्यात्मिकता की पूर्णावस्था में स्थित थे, इसलिए अपनी वास्तविक स्थिति का वर्णन करने में उनको कोई संकोच नहीं था। अपने मुँह से अपनी बड़ाई करने का प्रश्न तो वहां होता है, जहां अपने से भिन्न दूसरे किसी को अपने से छोटा या हीन समझा जाय। भगवान कृष्ण तो कहते हैं कि छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, भले-बुरे सब मुझ में हैं और सब में मैं एक समान हूँ। यहां तक कि जड़ चेतन सब को अपने में और अपने आपको सब में अनुभव करते हैं, उनके लिए व्यक्तित्व का अहंकार या व्यक्तित्व की मान बड़ाई के लिए अवकाश ही कैसे रह सकता है ?

प्रोफेसर : कृष्ण तो अपने को ईश्वर का अवतार बताते हैं ?

गीतावादी : जो कृष्ण अपने से और जगत से भिन्न किसी ईश्वर का अलग अस्तित्व मानते ही नहीं,

से ईश्वर का अवतार होना कैसे मान सकते हैं ? भक्ति मार्ग के द्वैतवादी लोग, जो जगत से भिन्न एक अलग ईश्वर का अस्तित्व मानते हैं, वे ही उसके अवतार होने की बातें करते हैं। गीता में कहीं भी अवतार शब्द नहीं आया है।

प्रोफेसर : अद्वैत वेदान्त के मानने वाले भी तो अवतारवाद को मानते हैं ?

गीतावादी : उस अवतारवाद का यह रहस्य है कि प्रकृति के सदा बदलने वाले संसार रूपी इस खेल में जब विषमता बहुत बढ़ जाती है और निहित (स्थापित) स्वार्थों के अत्याचार अत्यन्त उग्र तथा असह्य होकर समाज में विशृंखलता उत्पन्न कर देते हैं तब सब लोग अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं और उस क्षोभ की प्रतिक्रिया से उनमें क्रान्ति की भावना बहुत तीव्र रूप धारण कर लेती है, तब उन्हीं की सम्मिलित मानसिक शक्ति, परिस्थिति के उपयुक्त किसी विशेष विभूतिसम्पन्न क्रान्तिकारी रूप में प्रकट होकर, उस विशृंखलता को मिटाने के लिए विषमता रूपी अधर्म को दबा कर, समता रूपी धर्म का पुनःस्थापन करती है। उसीको अवतार संज्ञा दे दी जाती है। समय-समय पर प्रकट होने वाले ऐसे महापुरुषों को गीता में विभूति नाम दिया गया है। भगवान् कृष्ण भी इसी तरह एक विशेष विभूतिसम्पन्न शरीर में प्रकट हुए थे और १०वें अध्याय में अन्य विभूतियों के साथ-साथ अपने मनुष्य रूप को भी एक विभूति गिनाया है। अवतारवाद के इसी सिद्धान्त के आधार पर भगवान् बुद्ध भी एक अवतार माने जाते हैं और यदि वही प्राचीन परिपाटी अब तक चली आती रहती तो महात्मा गान्धी और पं० जवाहर लाल नेहरू भी विशेष विभूति सम्पन्न होने के कारण अवतार माने जाते। महात्मा गांधी को तो बहुत से भावुक लोग अवतार मानते ही हैं और कई लोग नेहरूजी को भी इस युग का कृष्ण मानते हैं। वास्तव में संसार में जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सब सर्वव्यापी परमात्मा के ही रूप हैं; परन्तु जो लोग विशेष विभूतिसम्पन्न होते हैं, उनको अवतार संज्ञा दे दी जाती है।

जिस समय भगवान् कृष्ण प्रकट हुए थे उस समय देश में स्थापित स्वार्थों के अत्याचारों के कारण विषमताएँ बहुत बढ़ गई थीं और सत्ताधारी लोगों के अन्याय चरम सीमा तक पहुँच गये थे, जिनके विरुद्ध भगवान् कृष्ण ने क्रान्ति करके अत्याचारी सत्ताधारियों को समाप्त किया और विषमता रूपी अधर्म को मिटाकर समता-रूपी धर्म की पुनः स्थापना करने का आयोजन किया था। गीता के चौथे अध्याय में उन्होंने अपने प्रकट होने का यही उद्देश्य बताया है और सारी गीता में समता के प्रचार पर विशेष जोर दिया गया है। ५वें अध्याय के १८वें श्लोक में यहाँ तक कहा गया है कि "विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल में, बुद्धिमान लोग समदर्शी होते हैं" अर्थात् बुद्धिमान लोग ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, यहाँ तक कि पशु प्राणियों में भी, बिना भेद भाव के, एक ही सम आत्मा के अभेद रूप अनुभव करते हैं। फिर वहीं पर १९वें श्लोक में स्पष्ट कर दिया है कि "जिनका मन समता के भाव में स्थित हो जाता है, वे यहीं ही संसार को जीत लेते हैं; क्योंकि सर्वव्यापक आत्मा निर्दोष और सम है, इसलिए वे (समदर्शी) लोग ब्रह्म में स्थित होते हैं।" फिर छठे अध्याय के २९वें और ३२वें श्लोकों में कहा गया है कि "जिसकी बुद्धि समता के भाव से युक्त होती है, वह समदर्शी महात्मा सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों में देखता है और आत्मौपम्य बुद्धि से सब के सुख दुःखों को अपने समान ही अनुभव करता है, मेरे मत से वही परम समत्वयोगी है", और १३वें अध्याय के २७वें और २८वें श्लोकों में कहा है कि "सब नाशवान भूत प्राणियों में जो अविनाशी रूप सम परमेश्वर को स्थित देखता है, वही समदर्शी है और सब को सम भाव से देखने वाला समत्वयोगी पुरुष परम गति को पाता है," इत्यादि वाक्यों से पूर्णतया स्पष्ट होता है कि भगवान् कृष्ण ने मनुष्यमात्र में ऊँच-नीच, जाति-पाँति आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना पूर्ण समता का उपदेश दिया है। केवल मनुष्यों में ही नहीं, किन्तु समस्त भूत प्राणियों में

समदर्शी होने को कहा है। भगवान् बुद्ध ने भी इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है और जाति-पांति के सब भेद मिटा कर सब की समानता का उपदेश दिया है।

प्रोफेसर : जब कृष्ण ने मनुष्य मात्र में ही नहीं, किन्तु सब भूत प्राणियों में समता का भाव देखने पर इतना जोर दिया है तो स्त्रियों को वे बिल्कुल ही क्यों भूल गये? स्त्रियां के प्रति भी पूर्ण समता का भाव रखना क्या न्याय संगत न था?

गीतावादी : हमारे यहां स्त्री और पुरुष दोनों के योग से पूरा मनुष्य बनना माना जाता है। मनुष्य का दाहिना आधा अंग पुरुष और बांया आधा अंग स्त्री माना जाता है, अतः मनुष्य में स्त्री और पुरुष दोनों का समावेश है। इसीलिए स्त्री शब्द का अलग प्रयोग नहीं किया गया है।

प्रोफेसर : परन्तु ९वें अध्याय के ३२वें श्लोक मे कहा गया है कि "मेरा आश्रय करके पाप योनियों के लोग तथा स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गति को पाते हैं।" फिर ३३वें श्लोक में कहा है कि "फिर पुण्य-वान् ब्राह्मण और भक्त राजर्षियों का तो कहना ही क्या है," इससे मालूम होता है कि स्त्रियों को पाप योनियों तथा वैश्य और शूद्रों की श्रेणी में रख कर ब्राह्मण और क्षत्रियों से हीन माना है और यही हाल वैश्यों और शूद्रों का किया है, फिर समता का भाव कहां रहा?

गीतावादी : ये श्लोक तो समता के भाव को और अधिक पुष्ट करते हैं। आपको उस समय के हिन्दू समाज की परिस्थिति पर ध्यान देना चाहिए। उस समय समाज में विषमता के भाव इतने बढ़े हुए थे कि ब्राह्मण, क्षत्रियों की अपेक्षा स्त्रियों तथा वैश्यों, शूद्रों को बहुत हीन समझा जाता था और उनकी अपेक्षा इनके अधिकार बहुत ही कम और नीचे दर्जे के माने जाते थे। जन्म से वर्ण मानने की प्रथा जोर पकड़ गई थी। इन हीन माने जाने वालों का अधिकार आत्म कल्याण प्राप्त करने का भी नहीं माना जाता था। ऐसी परिस्थिति में भगवान् कृष्ण ने आत्म कल्याण प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों और क्षत्रियो के बराबर ही इनका अधिकार बताकर, यह विषमता मिटाई है न कि उसकी पुष्टि की है।

प्रोफेसर : फिर भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों से तो इन को हीन ही बताया है।

गीतावादी : गीता में जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण नही माने हैं; किन्तु गुणों के आधार पर वर्ण व्यवस्था की गई है। सतोगुण की प्रधानता वाले लोग शिक्षा का कार्य करने योग्य ब्राह्मण माने गये, रजोगुण और सतोगुण की प्रधानता वाले लोग रक्षा का कार्य करने योग्य क्षत्रिय माने गये, रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता वाले लोग खेती और वाणिज्य करने योग्य वैश्य माने गये और तमोगुण की प्रधानता वाले लोग शारीरिक श्रम करने योग्य शूद्र माने गये और साथ ही तीसरे अध्याय के ३५वें श्लोक में और १८वें अध्याय के ४७वें श्लोक में साफ कह दिया गया है कि अपनी-अपनी योग्यता के काम अथवा पेशे सभी श्रेष्ठ हैं। उनमें कोई हीनता अथवा उत्तमता नहीं है; परन्तु इतनी बात अवश्य है कि प्रकृति के नियमानुसार सत्व गुण ऊंचा उठाने वाला होता है, तमोगुण नीचा गिराने वाला और रजोगुण दोनों के बीच की स्थिति का है। यह बात १४वें अध्याय के १८वें श्लोक मे कही है। प्रकृति के इस अटल नियम में कोई फेरफार नहीं कर सकता। अतः, जिनमें सत्वगुण की प्रधानता होती है, उनमें स्वभाव से ही श्रेष्ठ गुण होते है और वे रजोगुणी, तमोगुणी लोगों से ऊपर रहते हैं; परन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि रजोगुण, तमोगुण की प्रधानता वाले लोग कभी ऊंचे उठ ही नहीं सकते। वे भी अपने में सतोगुण बढ़ाकर उन्नति कर सकते हैं। अपनी उन्नति करने का सब को समान अधिकार है। समाज में प्रत्येक मनुष्य का उसके गुणों के अनुसार स्थान रहता है। गुणों के अनुसार परस्पर यथायोग्य व्यवहार करना ही यथार्थ समता का भाव है। गुणों की उपेक्षा करके सब के साथ एक समान व्यवहार करना अव्यावहारिक और अप्राकृतिक है। गीता में भगवान कृष्ण ने "व्यवहार दर्शन" का प्रतिपादन किया

वे ईश्वर का अवतार होना कैसे मान सकते हैं ? भक्ति मार्ग के द्वैतवादी लोग, जो जगत से भिन्न एक अलग ईश्वर का अस्तित्व मानते हैं, वे ही उसके अवतार होने की बातें करते हैं। गीता में कहीं भी अवतार शब्द नहीं आया है।

प्रोफेसर : अद्वैत वेदान्त के मानने वाले भी तो अवतारवाद को मानते हैं ?

गीतावादी : उस अवतारवाद का यह रहस्य है कि प्रकृति के सदा बदलने वाले संसार रूपी इस खेल में जब विषमता बहुत बढ़ जाती है और निहित (स्थापित) स्वार्थों के अत्याचार अत्यन्त उग्र तथा असह्य होकर समाज में विशृंखलता उत्पन्न कर देते हैं तब सब लोग अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं और उस क्षोभ की प्रतिक्रिया से उनमें क्रान्ति की भावना बहुत तीव्र रूप धारण कर लेती है, तब उन्हीं की सम्मिलित मानसिक शक्ति, परिस्थिति के उपयुक्त किसी विशेष विभूतिसम्पन्न क्रान्तिकारी रूप में प्रकट होकर, उस विशृंखलता को मिटाने के लिए विषमता रूपी अधर्म को दबा कर, समता रूपी धर्म का पुनःस्थापन करती है। उसीको अवतार संज्ञा दे दी जाती है। समय-समय पर प्रकट होने वाले ऐसे महापुरुषों को गीता में विभूति नाम दिया गया है। भगवान् कृष्ण भी इसी तरह एक विशेष विभूतिसम्पन्न शरीर में प्रकट हुए थे और १०वें अध्याय में अन्य विभूतियों के साथ-साथ अपने मनुष्य रूप को भी एक विभूति गिनाया है। अवतारवाद के इसी सिद्धान्त के आधार पर भगवान् बुद्ध भी एक अवतार माने जाते हैं और यदि वही प्राचीन परिपाटी अब तक चली आती रहती तो महात्मा गान्धी और पं० जवाहर लाल नेहरू भी विशेष विभूति सम्पन्न होने के कारण अवतार माने जाते। महात्मा गांधी को तो बहुत से भावुक लोग अवतार मानते ही हैं और कई लोग नेहरूजी को भी इस युग का कृष्ण मानते हैं। वास्तव में संसार में जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सब सर्वव्यापी परमात्मा के ही रूप हैं; परन्तु जो लोग विशेष विभूतिसम्पन्न होते हैं, उनको अवतार संज्ञा दे दी जाती है।

जिस समय भगवान् कृष्ण प्रकट हुए थे उस समय देश में स्थापित स्वार्थों के अत्याचारों के कारण विषमताएँ बहुत बढ़ गई थीं और सत्ताधारी लोगों के अन्याय चरम सीमा तक पहुँच गये थे, जिनके विरुद्ध भगवान् कृष्ण ने क्रान्ति करके अत्याचारी सत्ताधारियों को समाप्त किया और विषमता रूपी अधर्म को मिटाकर समता-रूपी धर्म की पुनः स्थापना करने का आयोजन किया था। गीता के चौथे अध्याय में उन्होंने अपने प्रकट होने का यही उद्देश्य बताया है और सारी गीता में समता के प्रचार पर विशेष जोर दिया गया है। ५वें अध्याय के १८वें श्लोक में यहाँ तक कहा गया है कि "विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल में, बुद्धिमान लोग समदर्शी होते हैं" अर्थात् बुद्धिमान लोग ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, यहाँ तक कि पशु पक्षियों में भी, बिना भेद भाव के, एक ही सम आत्मा के अनेक रूप अनुभव करते हैं। फिर वहीं पर १९वें श्लोक में स्पष्ट कर दिया है कि "जिनका मन समता के भाव में स्थित हो जाता है, वे यहाँ ही संसार को जीत लेते हैं; क्योंकि सर्वव्यापक आत्मा निर्दोष और सम है, इसलिए वे (समदर्शी) लोग ब्रह्म में स्थित होते हैं।" फिर छठे अध्याय के २९वें और ३२वें श्लोकों में कहा गया है कि "जिसकी बुद्धि समता के भाव से युक्त होती है, वह समदर्शी महात्मा सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों में देखता है और आत्मौपम्य बुद्धि से सब के सुख दुखों को अपने समान ही अनुभव करता है, मेरे मत में वही परम समत्वयोगी है", और १३वें अध्याय के २७वें और २८वें श्लोकों में कहा है कि "सब नाशवान भूत प्राणियों में जो अविनाशी एवं सम परमेश्वर को स्थित देखता है, वही सम्यक्‌दर्शी है और सब को सम भाव से देखने वाला आत्मज्ञानी पुरुष परम गति को पाता है," इत्यादि वाक्यों से पूर्णतया स्पष्ट होता है कि भगवान् कृष्ण ने मनुष्यमात्र में ऊँच-नीच, जाति-पाँति आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना पूर्ण समता का उपदेश दिया है। केवल मनुष्यों में ही नहीं, किन्तु समस्त भूत प्राणियों में

समदर्शी होने को कहा है। भगवान् बुद्ध ने भी इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है और जाति-पाति के सब भेद मिटा कर सब की समानता का उपदेश दिया है।

प्रोफेसर : जब कृष्ण ने मनुष्य मात्र में ही नहीं, किन्तु सब भूत प्राणियों में समता का भाव देखने पर इतना जोर दिया है तो स्त्रियों को वे बिल्कुल ही क्यों भूल गये ? स्त्रियों के प्रति भी पूर्ण समता का भाव रखना क्या न्याय संगत न था ?

गीतावादी : हमारे यहाँ स्त्री और पुरुष दोनों के योग से पूरा मनुष्य बनना माना जाता है। मनुष्य का दाहिना आधा अंग पुरुष और बाँया आधा अंग स्त्री माना जाता है, अतः मनुष्य में स्त्री और पुरुष दोनों का समावेश है। इसीलिए स्त्री शब्द का अलग प्रयोग नहीं किया गया है।

प्रोफेसर : परन्तु ९वें अध्याय के ३२वें श्लोक में कहा गया है कि "मेरा आश्रय करके पाप योनियों के लोग तथा स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गति को पाते हैं।" फिर ३३वें श्लोक में कहा है कि "फिर पुण्य-वान् ब्राह्मण और भक्त राजर्षियों का तो कहना ही क्या है," इससे मालूम होता है कि स्त्रियों को पाप योनियों तथा वैश्य और शूद्रों की श्रेणी में रख कर ब्राह्मण और क्षत्रियों से हीन माना है और यही हाल वैश्यों और शूद्रों का किया है, फिर समता का भाव कहाँ रहा ?

गीतावादी : ये श्लोक तो समता के भाव को और अधिक पुष्ट करते हैं। आपको उस समय के हिन्दू समाज की परिस्थिति पर ध्यान देना चाहिए। उस समय समाज में विषमता के भाव इतने बढ़े हुए थे कि ब्राह्मण, क्षत्रियों की अपेक्षा स्त्रियों तथा वैश्यों, शूद्रों को बहुत हीन समझा जाता था और उनकी अपेक्षा इनके अधिकार बहुत ही कम और नीचे दर्जे के माने जाते थे। जन्म से वर्ण मानने की प्रथा जोर पकड़ गई थी। इन हीन माने जाने वालों का अधिकार आत्म कल्याण प्राप्त करने का भी नहीं माना जाता था। ऐसी परिस्थिति में भगवान् कृष्ण ने आत्म कल्याण प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बराबर ही इनका अधिकार बताकर, वह विषमता मिटाई है न कि उसकी पुष्टि की है।

प्रोफेसर : फिर भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों से तो इन को हीन ही बताया है।

गीतावादी : गीता में जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण नहीं माने हैं; किन्तु गुणों के आधार पर वर्ण व्यवस्था की गई है। सतोगुण की प्रधानता वाले लोग शिक्षा का कार्य करने योग्य ब्राह्मण माने गये, रजोगुण और सतोगुण की प्रधानता वाले लोग रक्षा का कार्य करने योग्य क्षत्रिय माने गये, रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता वाले लोग खेती और वाणिज्य करने योग्य वैश्य माने गये और तमोगुण की प्रधानता वाले लोग शारीरिक श्रम करने योग्य शूद्र माने गये और साथ ही तीसरे अध्याय के ३५वें श्लोक में और १८वें अध्याय के ४७वें श्लोक में साफ कह दिया गया है कि अपनी-अपनी योग्यता के काम अथवा पेशे सभी श्रेष्ठ हैं। उनमें कोई हीनता अथवा उत्तमता नहीं है; परन्तु इतनी बात अवश्य है कि प्रकृति के नियमानुसार सत्व गुण ऊँचा उठाने वाला होता है, तमोगुण नीचा गिराने वाला और रजोगुण दोनों के बीच की स्थिति का है। यह बात १४वें अध्याय के १८वें श्लोक में कही है। प्रकृति के इस अटल नियम में कोई फेरफार नहीं कर सकता। परन्तु, जिनमें सत्वगुण की प्रधानता होती है, उनमें स्वभाव से ही श्रेष्ठ गुण होते हैं और वे रजोगुणी, तमोगुणी लोगों से ऊपर रहते हैं; परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि रजोगुण, तमोगुण की प्रधानता वाले लोग कभी ऊँचे उठ ही नहीं सकते। वे भी अपने में सतोगुण बढ़ाकर उन्नति कर सकते हैं। अपनी उन्नति करने का सब को समान अधिकार है। समाज में प्रत्येक मनुष्य का उसके गुणों के अनुसार स्थान रहता है। गुणों के अनुसार परस्पर यथायोग्य व्यवहार करना ही यथार्थ समता का भाव है। गुणों की उपेक्षा करके सब के साथ एक समान व्यवहार करना अव्यावहारिक और अप्राकृतिक है। गीता में भगवान कृष्ण ने "व्यवहार दर्शन" का प्रतिपादन किया

है और उसमें बुद्धियोग की प्रधानता दी है। उसमें अव्यावहारिक समता का विधान कैसे हो सकता है, कोई भी बुद्धिमान मनुष्य श्रेष्ठ, दुष्ट, विद्वान, मूर्ख, बालक-वृद्ध, पिता-पुत्र, माता, पत्नी आदि के साथ एक समान वर्ताव करने की कल्पना भी नहीं कर सकता, जैसा कि अनेक बेसमझ लोग समता का अर्थ लगाते हैं। क्या गाय और कुत्ते तथा हाथी और चींटी में समानता हो सकती है? यह तो समता नहीं, किन्तु उल्टी विषमता है। गीता का साम्यभाव ऐसा अप्राकृतिक नहीं है कि भेददृष्टि रखते हुए भी सब के साथ समानता का वर्ताव करने का अव्यावहारिक प्रयत्न किया जावे। अनेकता के भेद तो बदलते रहते हैं, इसलिए वे अस्थायी हैं परन्तु एकता का भाव स्थायी है, इसलिए गीता में सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए यथायोग्य समता का व्यवहार करने का विधान है। गीता में एकता ही को समता कहा है। जिस तरह एक ही शरीर के अनेक अंग होते हैं जिनकी अलग-अलग योग्यता होती है, मस्तक में सत्वगुण की प्रधानता होने के कारण वह ज्ञान शक्ति और ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र है, अतः वह सबसे उत्तम अंग माना जाता है। हाथों में रजोगुण की प्रधानता होने के कारण वे बल और क्रियाशीलता के केन्द्र हैं और पैरों में तमोगुण की प्रधानता होने के कारण वे सारे शरीर का बोझ अपने ऊपर उठाए रहते हैं। इस तरह अलग-अलग अंगों की अलग-अलग योग्यता और उनके अलग-अलग व्यवहार होते हैं और अलग-अलग योग्यता के अनुसार वे उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ अंग माने जाते हैं; परन्तु सब एक ही शरीर के अंग होते हैं और शरीर निर्वाह के लिए सब के यथायोग्य व्यवहार समान रूप से आवश्यक हैं, सभी अंग समान रूप से प्यारे लगते हैं और सभी अंगों के सुख दुख एक दूसरे को समान रूप से ही अनुभव होते हैं। इसी तरह शरीर के आदर्श पर गीता का साम्यभाव समझना चाहिए। यही "आत्मौपम्य" बुद्धि गीता के साम्य भाव का आधार है। भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह यथाधिकार समता के वर्ताव का सिद्धान्त स्वीकार किया है। उनके बताये हुए अष्टांग मार्ग में "ठीक विश्वास, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक आचार, ठीक प्रयत्न आदि के साथ जो "ठीक" विशेषण लगाया गया है, उसका यही यथायोग्य भाव है।

प्रोफेसर : आपकी इस व्याख्या के अनुसार स्त्रियों की योग्यता और अधिकार की क्या स्थिति समझी जाए?

गीतावादी : साधारणतया स्त्रियों के शरीर में अपने जोड़े के पुरुष की अपेक्षा स्वभाव से ही रजोगुण की मात्रा कुछ विशेष होती है, जिसके कारण वे पुरुषों की अपेक्षा विशेष सुकुमार, कोमल हृदय, भावुक, आकर्षक और चपल होती है। उनमें प्रीति और राग की मात्रा अधिक होती है तथा वे लोगों का प्रसव करती हैं। इस प्राकृतिक अंतर के कारण पुरुष ज्येष्ठ अंग माना गया है तथा स्त्री कनिष्ठ अंग मानी गई है और स्वाभाविक गुणों के अनुसार ही उनके लिए यथायोग्य कार्य विभाग किया गया है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि स्त्री अपने स्वाभाविक गुणों में उन्नति नहीं कर सकती। बहुत सी स्त्रियां अपने गुणों में उन्नति करके पुरुषों से उच्च-स्थिति पर पहुँच जाती हैं और बहुत से पुरुष गिरकर हीन स्थिति में चले जाते हैं। गीता में तो १०वें अध्याय के ३४वें श्लोक में श्रेष्ठ गुणसम्पन्न स्त्रियों को भगवान् ने अपनी विशेष विभूतियों में गिनाया है।

प्रोफेसर : जब गुणों के अनुसार यथायोग्य समता का व्यवहार करने का सिद्धान्त आप गीता में बताते हैं तो ९वें अध्याय के ३१वें श्लोक में अपनी भक्ति करने से बहुत दुराचारी मनुष्यों को भी साधु और धर्मात्मा मानने और उनकी श्रेष्ठ गति होने को कैसे कहा? इसी तरह चौथे अध्याय के ३६वें श्लोक में कहा है कि "यदि तू सब पापियों से अधिक पापी है तो भी ज्ञान रूपी नौका से तर जायगा।" जब दुराचारी पापी लोग भी धर्मात्मा माने जावें तो गुणों की योग्यता के अनुसार समता के व्यवहार करने का सिद्धान्त कहाँ रहा?

गीतावादी : अनन्य भाव की भक्ति और आत्मज्ञान वस्तुतः एक ही स्थिति के दो नाम हैं। परमात्मा में सब की एकता का अनुभव करना और अपने में सब की एकता का अनुभव करना स्थानउर से एक ही बात है।

सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करने वाला मनुष्य वास्तव मे कभी दुराचारी या पापी हो ही नही सकता। यदि पहले उसने दुराचार या पाप किये भी हों तो भी जब सब की एकता का दृढ ज्ञान हो जाता है, फिर उससे कोई दुराचार या पाप बन ही नहीं सकता ; क्योंकि अपने आप के साथ या परमात्मा के साथ कोई भी दुराचार नही कर सकता। इसके अतिरिक्त एक तथ्य अत्यन्त महत्व का विशेष ध्यान देने योग्य है, कि अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब कि आत्मज्ञानी महापुरुष लोक-संग्रह अथवा समाज की सुव्यवस्था के लिए इस तरह के आचरण करते हैं जिनको अज्ञानी जनता बहुत बुरा समझती है; क्योकि साधारण लोगों की दृष्टि बहुत संकुचित व्यक्तित्व के भावों तक ही परिमित होती है। उनकी बुद्धि आत्मज्ञानी महापुरुषों के "सर्व भूत हितेरता:" के अत्यन्त व्यापक सिद्धान्त को ग्रहण नहीं कर सकती। इसलिए वे अपनी विपरीत समझ से उनको दुराचारी और पापी समझते हैं। इन श्लोकों का यही मर्म है कि ज्ञानी पुरुष वास्तव मे दुराचारी और पापी नहीं होते ; चाहे अज्ञानी जनता उनको ऐसा मानती रहे। दूसरे अध्याय के ६९वें श्लोक में इसी रहस्य का खुलासा व्यंजनात्मक शैली से किया गया है कि "जो सब भूतो की रात होती है उसमे आत्मज्ञानी पुरुष जागता है और जिसमें सब भूत जागते हैं उसको आत्मज्ञानी रात देखता है।" वर्तमान समय में भी हमारे प्रधानमंत्री नेहरूजी की सरकार लोकहित के लिए बहुत से ऐसे काम करती है, जिनको बेसमझ जनता और विशेषकर स्वार्थी और भावुक लोग बहुत अन्याय और पाप समझते है। उदाहरण के लिए, देश में समता-स्थापना के लिए नेहरू सरकार ने अस्पृश्यता निवारण तथा स्त्रियों के लिए तलाक और पिता की सम्पत्ति मे समान उत्तराधिकार के कानून बनाए तथा जागीरदारों की जागीरें छीनी और धनवानों पर बहुत अधिक कर लगाए, तब रूढ़िवादी स्वार्थी लोगों ने स्वतंत्रता और धर्म पर कुठाराघात होने आदि का हुल्लड़ मचाया तथा जब देश की एकता पर आघात पहुँचाने वाले लोगों तथा कानून भंग करने वाले उपद्रवियों का दमन किया गया और उनको जेलों मे डाला गया तब भी लोगो ने उसका विरोध किया और बड़े अत्याचार होने के नारे लगाए। इसी तरह खेती की रक्षा के लिए टिड्डियों के दलों का नाश किया गया तथा प्रजा की हानि करने एवं रोगादि उत्पन्न करने वाले अन्य जन्तुओं को मारा गया तब भावुक लोगों ने उसको घोर पाप समझा। तात्पर्य यह कि साधारण लोगों की ओछी बुद्धि अच्छे-बुरे का यथार्थ निर्णय नही कर सकती; क्योंकि उनकी दृष्टि व्यक्तित्व के भावों और प्रत्यक्ष के स्वार्थो तक ही संकुचित रहती है। सब लोगों के हित की दृष्टि को वे लोग समुचित महत्व नही देते ; परन्तु जिन महापुरुषों पर सारे समाज का दायित्व रहता है, वे इन संकुचित विचारों के लोगों के आक्षेपों से प्रभावित नहीं होते। वास्तव में वे पापी या दुराचारी नहीं होते लेकिन उनकी स्थिति इन बातो से बहुत ऊँची होती है। इसलिए वे समष्टि लोक हित करने मे किसी संकुचित विधि-निषेध की मर्यादाओं में बंधे हुए नहीं रहते, किन्तु जिस समय जो व्यवहार समाज के लिए हितकर होता है, उस समय वही करते हैं।

परन्तु साधारण लोगों के लिए ज्ञानी महापुरुषों के बनाये हुए श्रेष्टाचार की विधि-निषेध के नियमों अथवा कानूनों का पालन करना ही अत्यावश्यक होता है। यदि वे ऐसा न करें तो समाज में उच्छृंखलता उत्पन्न हो जाय, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के १२वें अध्याय मे जो भक्त के लक्षण कहे हैं, १६वें अध्याय में दैवी सम्पद् और १७वें अध्याय में सात्विक तप का जो विधान किया है तथा १७वें और १८वें अध्यायों मे जो सात्विक आचरणों का वर्णन किया है, उन्हीं के अनुसार साधारण लोगों को आचरण करना चाहिए। इस तरह श्रेष्टाचरणों तथा नैतिकता का गीता में विस्तार से विधान किया गया है। भगवान बुद्ध ने इन्हीं में से ५ नियमों को अपने निवृत्ति-मार्ग के उपयुक्त समझ कर "पंचशील" नाम से स्वीकार किया है।

प्रोफेसर : परन्तु बुद्ध तो अपने "पंचशील" के नियमों पर पूरी तरह दृढ़ रहे और कृष्ण ने इनके विरुद्ध आचरण किया। भक्त के लक्षणों मे तथा दैवी सम्पद् और तप के विधान में दया और अहिंसा को

श्रेष्ठाचरणों में गिनाते हुए भी अर्जुन को अपने गुरुजनों और बान्धवों की हत्या करने का जोरदार उपदेश दिया और महाभारत की लड़ाई में हजारों-लाखों मनुष्यों को मरवा दिया ?

गीतावादी : जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ भगवान् बुद्ध का उद्देश्य संन्यास मार्ग द्वारा व्यक्तिगत निर्वाण प्राप्त करने का था और उस समय यज्ञ आदि कर्मकांडों में अत्यन्त उग्र रूप धारण की हुई जीव हिंसा को रोकने का उनका मुख्य उद्देश्य था। ऐसी परिस्थिति में एकांगी अहिंसा आदि व्रतों का उपदेश बिल्कुल उपयुक्त था और व्यक्तिगत रूप से प्रयत्नशील मनुष्य उनका यत्किंचित् पालन भी कर सकता था; परन्तु जब सारे समाज की सुव्यवस्था का प्रश्न उपस्थित होता है तब किसी भी नियम का सदा सर्वदा एकांगी रूप में पालन करना बिल्कुल ही अप्राकृतिक और अव्यावहारिक होता है। यह संसार त्रिगुणात्मक प्रकृति का बनाव है। इसमें सात्विक प्रकृति के लोगों की अपेक्षा राजस-तामस प्रकृति के लोगों की अधिकता होती है, जो बड़े स्वार्थी, दुष्ट और क्रूर स्वभाव के होते हैं। उनको यदि न दबाया जाय और उनकी निरंकुशता बढ़ने दी जाय तो भले आदमियों का जीवित रहना ही असम्भव हो जाय। भगवान् कृष्ण के सामने यही समस्या थी। दुष्ट आततायी लोगों के अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच गये थे और गीता के चौथे अध्याय में उन्होंने अपने शरीर धारण करने का उद्देश्य ही भले आदमियों की रक्षा और दुष्टों का नाश करना बताया है। अगर वे ऐसा नहीं करते तो दुष्ट लोग भले आदमियों को रहने ही नहीं देते और फिर न तो कोई अपना व्यक्तिगत कल्याण कर सकता और न समाज ही सुव्यवस्थित रहता।

प्रोफेसर : बुद्ध ने घृणा को प्रेम से, क्रोध को दया से, बुराई को भलाई से जीतने आदि के उपदेश दिये हैं। कृष्ण ने ऐसा न करके हिंसा का मार्ग स्वीकार किया। इससे मालूम होता है कि कृष्ण के और बुद्ध के सिद्धान्तों में जमीन आसमान का अन्तर है।

गीतावादी : भगवान बुद्ध ने जो घृणा को प्रेम से, क्रोध को दया से, बुराई को भलाई से जीतने का उपदेश दिया है, वह विशेष करके व्यक्तिगत है। मनुष्य को अपने अन्तःकरण की घृणा, क्रोध, बुराई आदि के भावों को प्रेम, दया, भलाई आदि के भावों का अभ्यास करके जीतना चाहिए। इस तरह के अभ्यास से कुछ हद तक व्यक्तिगत सफलता प्राप्त हो सकती है; परन्तु दूसरे लोगों को इन उपायों से जीतने में सफलता बहुत ही कम मिलती है अथवा यों कहें कि सफलता मिलने में संदेह ही रहता है। यदि सामने सात्विकी प्रकृति का मनुष्य हो तो उस पर प्रभाव पड़ सकता है; परन्तु रजोगुणी, तमोगुणी मनुष्यों पर प्रभाव पड़ना असम्भव ही होता है। भगवान बुद्ध के समय में उनके अनुयायी पूर्णतया प्रेम, दया आदि गुणों के पालन करने वाले नहीं हो सके थे और बौद्ध राजा लोग एक दूसरे से लड़ाइयां करते रहते थे। समाज पूर्णतया अहिंसक नहीं हो गया था। बौद्ध धर्म के अनुयायियों में हिंसा-वृत्ति दूसरों से कम नहीं थी। वर्तमान समय में हमारे देश में महात्मा गान्धी अहिंसा और प्रेम के सबसे बड़े उपासक थे; परन्तु देशवासियों को वे अहिंसक नहीं बना सके, न देश में आपस की फूट ही मिटा सके। मुसलमानों के साथ यद्यपि वे बहुत प्रेम करते थे, परन्तु वे जिन्ना और दूसरे मुसलमान नेताओं का जरा भी हृदय परिवर्तन नहीं कर सके। अन्त में भारतमाता का शरीर कट कर टुकड़े-टुकड़े हो गये। और देश के विभाजन के समय मुसलमानों ने इतने नर नारियों की हत्या की कि जितनी महाभारत के युद्ध में नहीं हुई होगी और उन्होंने स्त्रियों पर इतने अमानुषी व क्रूरतापूर्ण अत्याचार किये कि जिनको सुनकर लोगों का खून उबल उठा और उसकी प्रतिक्रिया इस देश में भी हुई। महात्माजी ने उपवास करके भारत से पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये दिला दिये और हमारे प्रधान मन्त्री नेहरूजी पाकिस्तान के साथ प्रेम और शान्ति से मैत्री रखना चाहते हैं और इसके लिए अनेक उपाय करते हैं; परन्तु पाकिस्तान वालों पर तो उसका जरा भी असर नहीं पड़ता और वहां सदा जंग और जहाद के नारे लगते रहते हैं। इनके कोष में अहिंसा शब्द शायद ही मिले।

प्रोफेसर : सन्त विनोबा भावे और कई अन्य उच्चकोटि के विचारक और गांधीजी के मुख्य शिष्य नेहरू सरकार को देश का सैनिक बल घटाने और पाकिस्तान को शान्तिमय उपायों से मित्र बनाने का आन्दोलन करते हैं। क्या उन महानुभावों का मत ठीक नहीं है ?

गीतावादी : प्रोफेसर साहब ! यह सन्तपने के भावुकतापूर्ण अव्यावहारिक चुटकले हैं। इसी सन्तपने की भावुकता ने एक हजार वर्ष पहले देश को इतना निर्बल बना दिया था कि वह विदेशी आक्रमणकारियों का गुलाम बन गया था और अपना सर्वस्व खो बैठा। संसार में बलवान लोग ही जीवित रह सकते हैं, यह प्रकृति का अटल नियम है। यदि नेहरू सरकार इन लोगों की सलाह मानने की भूल करके देश का सैनिक बल घटा दे तो पाकिस्तान वाले तुरन्त ही देश पर आक्रमण करके अपने आधीन कर लें। वे तो यह चाहते ही हैं कि किसी तरह भारत अपनी सन्ताई भावुकता से प्रभावित होकर निर्बल हो जाय और हमारा सामना करने के योग्य न रहे ताकि हम फिर से भारत के मालिक बन कर पहले की तरह इन लोगो पर अपने मनमाने अत्याचार करें। ये शान्तिदूत होने का दावा करने वाले सन्त लोग तो अपनी सन्ताई की झक में शायद भारत पर पाकिस्तान का आधिपत्य होना भी सहन कर लेंगे और महात्मा गान्धी की तरह मुसलमानो को अपना भाई मान कर उनके शासन में रहने में भी कोई आपत्ति नहीं समझेंगे ; परन्तु क्या भारत की ३५ करोड़ हिन्दू जनता अपने पुराने कटु अनुभवों को भूल कर पाकिस्तान का गुलाम बनना स्वीकार कर लेगी और क्या यह देश के लिए कल्याणकर होगा ? महात्मा गान्धी ने दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान में अंग्रेजों को हिटलर के सामने आत्म-समर्पण करने की सम्मति दी थी। अगर अंग्रेज उनकी सम्मति मान कर आत्म-समर्पण कर देते तो, क्या वे स्वतन्त्र रह सकते थे ? और आज उनकी कैसी दुर्गति हो गई होती ? कबूतर के आँखें मूंद लेने से बिल्ली उसको जीवित नहीं छोड़ देती। हां, किसी देश पर आक्रमण करने के लिए सैनिक बल बढाना और आक्रमण की तैयारी करना बहुत ही बुरा है ; परन्तु अपनी आत्म-रक्षा के लिए पूरी तरह से तैयार रहना प्रत्येक सरकार का परम पवित्र कर्तव्य है और मुझे विश्वास है कि नेहरू सरकार अपने इस परम पवित्र दायित्व से कदापि विमुख नहीं होगी। यदि हमारे पास सैनिक बल पर्याप्त नहीं होता तो काश्मीर को खूंखार आक्रमणकारियों से कभी नहीं बचा सकते और हैदराबाद के रजाकारों के अमानुषी अत्याचारों को कदापि समाप्त नहीं कर सकते थे। वर्तमान में पूर्वोत्तर सीमा के नागा लोगो के उपद्रव सैनिक शक्ति से ही तो दबाये जाते हैं।

प्रोफेसर : महात्मा गांधी के पास कौनसी सैनिक शक्ति थी ? उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह से ही तो अंग्रेजों जैसी महान शक्ति को देश से निकाल कर स्वतन्त्रता प्राप्त की।

गीतावादी : क्षमा करना साहब। अंग्रेज लोग अहिंसात्मक सत्याग्रह से डर कर नहीं चले गये। उनके भारत छोड़ने का यह कारण था कि दूसरे विश्व-युद्ध में उनकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी और वे इतना बड़ा साम्राज्य अपने आधीन रखने में असमर्थ हो गये थे। दूसरी तरफ जब सुभाष बाबू की संगठित की हुई आजाद हिन्द फौज के सिपाई यहां पीछे आये तब उन्होंने यहां की फौज को भी अंग्रेजों के विरुद्ध उभाड़ दिया। इस कारण उनका यहां टिक सकना असम्भव हो गया। वे बहुत बुद्धिमान और दूरदर्शी लोग हैं, अतः भारत के साथ-साथ बर्मा और सीलोन को भी उसी समय छोड़ दिया।

गीता के प्रथम अध्याय के ४६वें श्लोक में अर्जुन ने भी अहिंसात्मक सत्याग्रह करके कौरवों के हाथ से मारा जाना श्रेष्ठ बताया था ; परन्तु भगवान् कृष्ण ने उनके इस प्रस्ताव को मूर्खता, नपुंसकता और हीन पुरुषों के हृदय की दुर्बलता कह कर ठुकरा दिया। भगवान कृष्ण के मतानुसार अपने शरीर को कष्ट देना और आत्म-हत्या करना सब से बड़ी हिंसा है। गीता के १७वें अध्याय के ५, ६ और आगे १९वें श्लोकों में शरीर को और अपनी आत्मा को कष्ट करने और पीड़ा देने वाले आसुरी और तामसी कर्मों की बहुत बड़े शब्दों में

निन्दा की है और इसी तरह भगवान् बुद्ध ने भी शरीर को कष्ट देने वाले तपों का पूरी तरह निषेध किया है।

प्रोफेसर: आपस के झगड़े या मतभेद निपटाने के लिए लड़ाई करके हत्या कांड करने की अपेक्षा शान्तिपूर्वक वार्तालाप करके समझौते से मिटाना कितना अच्छा है। नेहरू जी तो इसी रास्ते पर चलते हैं और इसी दिशा में उनके निर्माण किये हुए "पंचशील" के सिद्धान्त संसार के बहुत से राष्ट्र स्वीकार करते हैं।

गीतावादी: भगवान् कृष्ण भी पहले शान्तिमय उपायों से झगड़े निपटाना उचित समझते थे, इसीलिए उन्होंने कौरवों पांडवों में समझौता कराने का बहुत प्रयत्न किया था और शान्तिदूत होकर कौरवों के पास गये भी थे। यद्यपि पांडव सारे राज्य के पूर्ण अधिकारी थे, परन्तु उनको केवल पांच गांव देकर बाकी सारा राज्य कौरवों को रखने को कह दिया। पांडवों की तरफ से जब इतना भारी त्याग करना स्वीकार कर लिया गया, फिर भी कौरव लोग अपनी दुष्टता पर डटे रहे, समझौता करना स्वीकार नहीं किया, तब लड़ाई करने का निर्णय किया गया। जब दुष्टों की दुष्टता शान्तिमय उपायों से छूट ही न सके, तब लोक कल्याण के लिए उनको मार देना हिंसा नहीं होती। ऐसा करने का कारण द्वेष या वैर नहीं होता किन्तु समाज के प्रति अपना कर्तव्य पालन करना होता है। अर्जुन जब अपने सम्बन्धियों के मोह के कारण तथा हिंसा के भय से अपने उस कर्तव्य से विमुख होने लगा तब कृष्ण ने उसको समझाया कि बिना कारण किसी निर्दोष प्राणी को कष्ट देना या मारना अवश्य ही हिंसा होती है; परन्तु निर्दोष लोगों की अत्याचारियों से रक्षा करने के लिए, उन अत्याचारियों को मार देना हिंसा नहीं होती किन्तु वास्तव में अहिंसा होती है; क्योंकि अगर अत्याचारी लोगों को दंड नहीं दिया जाय तो वे निरंकुश होकर निर्दोष लोगों की बहुत बड़ी हिंसा करें। बड़ी हिंसा को रोकने के लिए थोड़ी हिंसा की जाय तो वह वास्तव में अहिंसा ही होती है, परन्तु "आत्मौपम्य" साम्यबुद्धि से ही ऐसा करना चाहिए अर्थात् सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए, सब के दुख-सुख को अपने समान समझना चाहिए। जिस तरह अपने शरीर का कोई अंग रोगी होजाय अथवा सड़ गल जाय तो उसका यथायोग्य उपचार किया जाता है अथवा आवश्यकता होने पर काट भी दिया जाता है; ताकि शरीर के दूसरे अंगों अथवा सारे शरीर का बचाव हो जाय। यद्यपि वह दूषित अंग अपने ही शरीर का भाग होता है और वह उतना ही प्यारा होता है जितने कि दूसरे अंग प्यारे होते हैं; परन्तु सारे शरीर की स्वस्थता के लिए उसको काट देना ही हितकर होता है। उसी तरह सारे समाज के हित के लिए, किसी प्रकार के द्वेष बिना दुष्टों को दंड दिया ही जाना चाहिए। इसलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के उपदेश के आरम्भ में पहले अर्जुन को आत्मज्ञान दिया और बताया कि एक ही अविनाशी और समआत्मा सब प्राणियों में एक समान व्यापक है। इस एकता के ज्ञान को स्मरण रखता हुआ किसी प्रकार के राग द्वेष बिना, अपना कर्तव्य कर्म कर। शरीर सब के नाशवान हैं, इसलिए शरीरोंके मरने के मोह में अपने कर्तव्य करने नहीं छोड़ने चाहिए और ऐसा करने में भी दूसरों से पृथक् अपने व्यक्तित्व का अहंकार नहीं करना चाहिए कि अकेले मेरे करने से ही कोई काम होता है और न दूसरों से पृथक् अपने व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि का लक्ष्य ही रखना चाहिए यानी यह भाव नहीं रखना चाहिए कि इस काम से मेरी किसी प्रकार की व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि होगी, किन्तु अपने व्यक्तित्व के अहंकार को समष्टि अहंकार के अन्तर्गत समझना चाहिए और व्यक्तिगत स्वार्थों को समष्टि स्वार्थों के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह निष्काम कर्म करने का गीता में विधान किया गया है। भगवान कृष्ण ने व्यक्तिगत कामनाओं अथवा वासनाओं को त्यागने पर बहुत जोर दिया है और भगवान् बुद्ध ने भी कामनाओं और वासनाओं के त्यागने का यही सिद्धान्त स्वीकार किया है।

प्रोफेसर: परन्तु इस तरह व्यक्तित्व को मिटा देने और व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग देने से मनुष्य का जीवन निर्वाह कैसे हो सकेगा?

गीतावादी: छोटे से पृथक् व्यक्तित्व को सब के साथ जोड़ देने से किसी का व्यक्तित्व मिट नहीं जाता

किन्तु वह महान् हो जाता है और थोड़े से व्यक्तिगत स्वार्थों को सब के स्वार्थों मे मिला देने से मनुष्य के जीवन की आवश्यकताएँ सब के सहयोग से बहुत अच्छी तरह पूरी होती हैं। गीता के ९वें अध्याय के २२वें श्लोक में भगवान् ने कहा है कि "जो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करके अच्छी तरह उपासना करता है, उस सदा एकता के भाव मे जुड़े हुए व्यक्ति के अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा मैं किया करता हूँ।" इसका तात्पर्य यह है कि जो सब के साथ अपनी पूर्ण एकता का अनुभव रखता हुआ अपने कर्तव्य कर्म, लोक संग्रह के लिए यथावत करता है, उसकी आवश्यकताएँ सब के सहयोग से स्वतः ही पूरी होती रहती हैं; और चौथे अध्याय के ३१वें श्लोक मे कहा है कि "यज्ञ से बचा हुआ अमृत भोगने वाला मनुष्य सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है, यज्ञहीन का न तो यह लोक और न परलोक ही सुधरता है।" इसका तात्पर्य भी यही है कि सब की एकता के साम्यभाव से जो अपने कर्तव्य कर्म, लोक संग्रह के लिए करता है, उसका यह जीवन और आगे का जीवन अत्यन्त उच्च-कोटि का हो जाता है। इस सिद्धान्त से न तो किसी का व्यक्तित्व मिटता है और न किसी के व्यक्तिगत स्वार्थों की हानि ही होती है, किन्तु छोटे से व्यक्तित्व और छोटे से व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग, सब की एकता में होता है यानी वे सब के साथ जुड़ जाते हैं, जिससे सब के साथ साझा हो जाता है। यह निष्काम कर्मयोग भगवान् कृष्ण का बताया हुआ मध्य मार्ग है और भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह "न तो व्यक्तिगत विषय भोगों में आसक्ति रखना और न शरीर को कष्ट देना" का यही मध्यम मार्ग रूपान्तर से स्वीकार किया है।

प्रोफेसर : अच्छे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसके साधन भी अच्छे ही होने चाहिए। बुरे साधनों से अच्छे उद्देश्य की सिद्धि नही हो सकती, क्योंकि कारण के गुण कार्य में आये बिना नही रह सकते।

गीतावादी : यह बात बिल्कुल ठीक है, पर जिसका परिणाम अच्छा हो, वह साधन कभी बुरा हो ही नही सकता, चाहे ऊपरी स्थूल दृष्टि से वह कितना ही बुरा क्यों न प्रतीत होता हो। आम आदि मधुर फलों के बीज यद्यपि मधुर और सुन्दर नही दीखते, पर उसके बड़े मधुर और सुन्दर फल उत्पन्न होते हैं। अच्छे अन्न उत्पन्न करने के लिए खेतों में गन्दगी, कचरे और गोबर की खाद दी जाती है, यद्यपि वह बहुत खराब और दुर्गन्ध युक्त होती है पर उसका परिणाम बहुत ही लाभदायक होता है। मलेरिया की बीमारी मिटाने के लिए कुनेन खिलाया जाता है, जो अत्यन्त कड़वा होता है। इसी तरह दूसरे भयंकर रोगों मे अफीम, संखिया, कुचला आदि जहरों का प्रयोग किया जाता है और शरीर के रोगी अंगो को काट भी दिया जाता है। खेती में अन्न आदि के पेड़ों पौधों के पनपने के लिए उनके पास के घास पात काटे जाते हैं और वृक्षों तथा पेड़ों के बढ़ने के लिए उनकी कलम की जाती है। यद्यपि ऊपरी दृष्टि से ये सब बुरे मालूम पड़ते हैं, पर इनका परिणाम अच्छा होता है। तात्पर्य यह है कि जिन साधनों का परिणाम अच्छा होता है, वे साधन बुरे प्रतीत होने पर भी अच्छे ही होते हैं; परन्तु अच्छे बुरे परिणाम का पहले निर्णय करने के लिए उपयुक्त योग्यता होनी चाहिए। बीज बोने, खाद देने, घास पात उखाड़ने या कलम करने के लिए बनस्पति विज्ञान के जानकार लोग ही योग्य होते हैं। शरीरों की चिकित्सा करने के लिए शरीर-विज्ञान के जानकार वैद्य या डाक्टर लोग ही योग्य होते हैं। यदि अयोग्य व्यक्ति इन कामों को करने लगे तो उनका दुरुपयोग कर देंगे जिसका भयंकर परिणाम हो जावेगा। इसी तरह संसार के व्यवहार में साधन और साध्य की अच्छाई या बुराई का यथार्थ निर्णय वे ही सज्जन कर सकते हैं, जो सब की एकता के ज्ञान से युक्त "आत्मौपम्य" समत्व बुद्धि से व्यवहार करते हैं। स्थूल बुद्धि की साधारण जनता ही नहीं, किन्तु भेद बुद्धि से व्यक्तित्व के भाव में और व्यक्तिगत स्वार्थों में आसक्ति रखने वाले बड़े-बड़े विद्वान लोग भी इन बातों का यथार्थ निर्णय नही कर सकते। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय के १६वें श्लोक में कहा है कि "कर्म अकर्म के विषय में बड़े-बड़े विद्वान भी मोहित हो जाते हैं" और १८वें और १९वें श्लोकों में कहा है कि "इस विषय का यथार्थ निर्णय वे ही आत्मज्ञानी बुद्धिमान पुरुष कर सकते हैं जो

कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखते हैं" अर्थात् जो कर्म रूप अनेकता में अकर्मरूप एकता और अकर्मरूप एकता में कर्म रूप अनेकता का अभेद ज्ञान रखते हैं और जिनके सब व्यवहार अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की कामनाओं से रहित, सब की एकता के सात्विक ज्ञान युक्त होते है और फिर १८वें अध्याय के २०वें श्लोक में सात्विक ज्ञान का खुलासा इस प्रकार किया है कि "जिस ज्ञान से सब अलग-अलग भूत प्राणियों में एक, अखंड एवं अविनाशी भाव का अनुभव होता है, वह सात्विक ज्ञान है।" इस प्रकार सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करने वाले महा-पुरुष के व्यवहार अथवा किसी उद्देश्य की सिद्धि के साधन, भौतिक स्थूल दृष्टि से चाहे कितने ही बुरे प्रतीत क्यों न हों, परन्तु वास्तव में वे बुरे नही होते, किन्तु अच्छे ही होते हैं, क्योंकि उनका परिणाम लोकहितकर होता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये गीता के १८वें अध्याय के १७वें श्लोक में कहा है कि "जिसको पृथक् व्यक्तित्व का अहंकार नही होता और जिसकी बुद्धि व्यक्तिगत स्वार्थों में आसक्त नही होती, वह इन लोगों को मार डाले तो भी वह न तो हत्यारा होता है, न बंधता ही है।"

प्रोफेसर : गान्धीजी ने तो इस श्लोक को अत्युक्ति बताया है।

गीतावादी : साधारण लोगों के लिए तो यह अवश्य ही अत्युक्ति है ; परन्तु जो महापुरुष उपरोक्त निस्वार्थभाव की उच्चकोटि को पहुँच जाते हैं, उनके लिए यह बिल्कुल ही अत्युक्ति नही है। वर्तमान में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हमारे न्यायालयों में न्यायाधीश लोग हजारों मनुष्यों को जेलों का कठिन दण्ड देते हैं और हजारों को फांसी पर लटकाने का हुक्म दे देते हैं, परन्तु न वे हत्यारे होते हैं और न उनको ऐसा करने के लिए दंड ही मिलता है। हजारों उपद्रवियों और डाकुओं को हमारी पुलिस लाठियों से पीटती है और गोलियों से मार देती है ; परन्तु पुलिस के अफसर हत्यारे नहीं होते, न उनको कोई दंड ही मिलता है किन्तु वे लोग बड़े वीर माने जाते हैं और बड़े-बड़े इनाम पाते हैं। महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी तथा लक्ष्मीबाई जैसे वीर शिरोमणियों ने अगणित शत्रुओं को मारा। आज उनकी बड़े गौरव के साथ पूजा होती है और उनकी स्मृतियाँ मनाई जाती हैं। काश्मीर और हैदराबाद में विजय पाने वाले हमारे सेनापतियों का बहुत ही सम्मान किया गया था।

प्रोफेसर : यह तो आपका कहना ठीक है। फिर साधनों की अच्छाई पर इतना जोर क्यों दिया जाता है ?

गीतावादी : यह सब साधारण जनता के लिए है। मैंने आपको अभी कहा है कि परिणाम की अच्छाई बुराई का पहले से ही निर्णय करने की योग्यता विशेष व्यक्तियों में ही होती है। साधारण जनता इसका यथार्थ निर्णय नही कर सकती। यदि उसको साधनों के चुनने में स्वतन्त्रता दे दी जाय तो वह उनका दुरुपयोग या विपर्यास करके बड़े अनर्थ कर दे, जिससे देश की अपार हानि हो जाय। इसीलिए उन लोगों के लिए साधनों की अच्छाई पर विशेष जोर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इस समय जो पश्चिमी राष्ट्र आपस में स्पर्धा करके लड़ाई की तैयारी करने के लिए, उससे होने वाले अत्यन्त भयंकर परिणामों की तरफ ध्यान न देकर, प्रलयकारी एटम और हाईड्रोजन बमों जैसे सर्व विध्वंसक शस्त्रास्त्रों की बढ़ा-चढ़ी करने में लगे हुए हैं, उन लोगों पर साधनों की अच्छाई के सिद्धान्त के महत्व का प्रभाव डालना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रोफेसर : आमतौर से सब की यह धारणा है कि अहिंसा के विषय में बुद्ध और कृष्ण के सिद्धान्तों में विरोध है, परन्तु आपने तो हिंसा अहिंसा का रूप ही बदल दिया। इसी तरह साधन साध्य की व्याख्या भी बदल दी। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर वह विरोध मिट जाता है।

गीतावादी : हिंसा अहिंसा और साधन साध्य के विषय में मैंने कोई नई बात नहीं कही है, किन्तु गीता में जो प्रतिपादन किया गया है, उसीको स्पष्ट किया है। जैसा कि मैं अभी कह आया हूँ, कि साधारण लोग हिंसा अहिंसा और साधन साध्य का विचार केवल व्यक्तित्व के भाव, व्यक्तिगत स्वार्थों और व्यक्तिगत पुण्य-पाप आदि

के अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण से करते हैं; परन्तु इस दृष्टिकोण से यथार्थ निर्णय नहीं होता, क्योंकि संसार के मूल मे एकता होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरों के साथ अटूट बना रहता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव बहुत व्यापक होता है और स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से दूसरों पर पड़े बिना नहीं रहता, चाहे वह प्रत्यक्ष में दीखे या नही दीखे। भगवान् कृष्ण ने इसी तथ्य के आधार पर गीता में सब लोगों को यथार्थ व्यवहार का मार्ग दिखाया है, क्योंकि गीता एक सार्वजनिक "व्यवहार दर्शन" है और उसका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो व्यक्ति केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए काम करता है और जो सार्वजनिक कार्य करता है, उनके विचारों और व्यवहारों में बहुत अन्तर होता है। जो केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए ही काम करता है, वह दूसरों की बुराई-भलाई की परवाह नही करता, परन्तु सार्वजनिक कार्यकर्ता सब का हित करना चाहता है। ऐसा करने में किसी के व्यक्तिगत स्वार्थों को हानि पहुँचे तो उसकी परवाह नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि सबके हित में प्रत्येक व्यक्ति का हित निहित है और सबके लाभ से प्रत्येक व्यक्ति को भी उसके भाग का स्थायी लाभ पहुँचता है ; परन्तु केवल व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत अस्थायी और परिणाम में बहुत हानिकारक होते हैं। इसलिए सार्वजनिक हित के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्मों से यदि किसी के व्यक्तिगत स्वार्थों में बाधा लगती है या किसी व्यक्ति को पीड़ा या हिंसा होती है तो वास्तव में वह हिंसा नहीं होती, किन्तु अहिंसा ही होती है।

यही हाल प्रेम का है। आमतौर से लोग विशेष व्यक्तियों के प्रेम को ही प्रेम समझते हैं, पर यह यथार्थ प्रेम नहीं है। व्यक्तियों मे प्रेम की आसक्ति मोह का रूप धारण कर लेती है। इसीलिये गीता के ११वें अध्याय के अन्तिम श्लोक में "निर्वैरः सर्वभूतेषु" अर्थात् "किसी भी प्राणी से वैर नही करना", और १२वें अध्याय के १३वें श्लोक में "अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्" अर्थात् सब प्राणियों से प्रेम करना, कहकर वास्तविक प्रेम का विधान किया है और साथ ही उस श्लोक में "निर्ममो निरहंकारः" का विशेषण लगा कर व्यक्तिगत प्रेम की आसक्ति का निषेध किया है। गीता में प्रतिपादित विश्वप्रेम का आधार सबकी एकता का आत्मभाव है जो किसी जाति, वर्ण, वर्ग सम्प्रदाय, सम्बन्ध, लिंग, पद आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना निःस्वार्थ और स्वाभाविक होता है; क्योंकि जब सबके साथ अपनी आत्मीयता अथवा एकता का अनुभव किया जाता है, वहाँ भेद के लिए अथवा राग द्वेष और वैर के लिए कोई अवकाश नही रहता। भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह विश्व प्रेम का उपदेश दिया है।

प्रोफेसर : कृष्ण और बुद्ध के सिद्धान्तों की समानता तो आपने अच्छी तरह दिखा दी, परन्तु इनके निर्वाण के सिद्धान्तों मे बहुत अन्तर दीखता है ? कृष्ण के कहे हुए निर्वाण में तो कर्मशीलता बनी रहती है और बुद्ध के कहे हुए निर्वाण में दीपक की लौ बुझ जाने की तरह, "कुछ भी न रहना" अर्थात् कर्मशून्यता बताई गई है।

गीतावादी : कृष्ण का सिद्धान्त है कि शरीर को क्रियारहित कर लेने मात्र से कर्मशून्यता नहीं हो जाती, किन्तु वह मन के संयम से होती है। गीता के तीसरे अध्याय के चौथे से छठे श्लोक तक कहा है कि 'कोई शरीरधारी एक क्षण के लिये भी बिना कर्म के नही रह सकता। प्रकृति के गुणों के वश हुआ निरन्तर कर्म करता ही रहता है अर्थात् प्रत्येक शरीर प्रकृति के गुणों का बनाव है और प्रकृति के क्रियाशील होने के कारण, शरीर से कोई भी कभी क्रिया रहित नही हो सकता।" "जो मूर्ख कर्मेन्द्रियों को रोककर मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी यानी पाखंडी है। परन्तु जो मन से इंद्रियों का संयम करके आसक्ति रहित होकर कर्मेन्द्रियों से कर्म करता रहता है, वही विशेष है" और-निर्वाण पद का वर्णन करते हुए दूसरे अध्याय के ७१वें और ७२वें श्लोकोंमे कहा है कि "जो मनुष्य सब कामनाओं को छोड़कर निःस्पृह भाव से, ममता और अहंकार से रहित होकर संसार के व्यवहार करता है, वही शान्ति प्राप्त करता है। यही ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर मनुष्य

मोहित नहीं होता और अन्तकाल तक भी इसमें स्थित रहता हुआ, ब्रह्म निर्वाण पद को प्राप्त होता है।" फिर आगे ५वें अध्याय के २४वें और २५वें श्लोक में कहा है कि "जो सब के आन्तरिक एकता के भाव में सुख, आराम और प्रकाश अनुभव करता है वह समत्वयोगी ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ, ब्रह्मनिर्वाण पद में, स्थित होता है। जिनके अंत.करण का (पृथक् व्यक्तित्व का भावरूपी) मैल क्षीण हो गया है, द्वैत भाव मिट गया है और जिन्होंने मन जीत लिया है, वे सब भूतों के हित में लगे हुए ऋषि ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त होते हैं।" इस तरह कृष्ण ने "निर्वाण" पद का विस्तार के साथ खुलासा किया है। भगवान बुद्ध ने भी मन की निर्वासना की स्थिति में ही निर्वाण होना माना है। कामनाओं और वासनाओं का त्याग दोनों में एक समान है। भगवान बुद्ध ने भी शून्यता को "निर्वाण" नहीं कहा है, किन्तु 'निर्वाण की स्थिति का कुछ भी वर्णन नहीं किया है जिससे यह नहीं समझना चाहिये कि कुछ भी न रहना निर्वाण है। जो दीपक के लौ के बुझ जाने की उपमा "निर्वाण" को दी जाती है, उसका तात्पर्य पृथक् व्यक्तित्व का भाव मिट जाना है। अर्थात् व्यष्टि की समष्टि में एकता हो जाना है। दीपक की लौ बुझ जाए तो भी समष्टि प्रकाश तो बना ही रहता है। इसी तरह व्यष्टिभाव मिट जाए तो भी समष्टिभाव तो बना ही रहता है। भगवान कृष्ण ने इस बात के पूरी तरह स्पष्ट करने के लिए निर्वाण के साथ समष्टिवाचक "ब्रह्म" शब्द जोड़ा है, जिससे निर्वाण अवस्था का पूरा बोध हो जाय कि व्यक्तित्व का भाव मिटकर समष्टिभाव में पूर्णतया स्थित होना ही निर्वाण है। व्यष्टि लहर भाव के बदले, समष्टि समुद्र भाव और व्यष्टि बूंद के बदले, समष्टि जल भाव में दृढ़ स्थिति हो जाना ही निर्वाण है। भगवान बुद्ध ब्रह्म अथवा आत्मा के विषय में बिल्कुल मौन रहे। इसीलिए निर्वाण के साथ ब्रह्म आदि शब्द को न जोड़कर "निर्वाण" की स्थिति के विषय में भी मौन ही रहे। उन्होंने उस समय की परिस्थिति के अनुसार संन्यास मार्ग को प्रधानता दी थी, इसलिए अपने सिद्धान्तों का नकारात्मक शैली का प्रतिपादन किया है; परन्तु भगवान कृष्ण ने "व्यवहार दर्शन" कहा है। इसलिए स्वीकारात्मक रूप से अपने सिद्धान्तों को पूर्णतया स्पष्ट किया है। इतना ही अंतर है, परन्तु यह अंतर सिद्धान्तों में नहीं है, किन्तु उनके प्रतिपादन करने की शैली में है। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि भगवान बुद्ध निर्वाण की स्थिति प्राप्त करने के बाद भी लोगों को उपदेश देने का कार्य करते ही रहे।

भगवान कृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में मन की स्थिरता के लिए एक साधन रूप से ध्यान योग के अभ्यास का विधान किया है और भगवान बुद्ध ने ध्यानयोग की स्थिति, निर्वाण अवस्था में भी आवश्यक मानी है। कृष्ण का व्यावहारिक उपदेश था, इसलिए ध्यानयोग को केवल साधना का स्थान दिया है, सदा उसी में लगे रहने को नहीं कहा। पर भगवान बुद्ध का निवृत्ति मार्ग का उपदेश था। इसलिये निरन्तर ध्यानयोग में लगे रहने की व्यवस्था की है।

प्रोफेसर : आप ने बुद्ध और कृष्ण के सिद्धान्तों का जो तुलनात्मक विवेचन किया है और गीता के "व्यवहार दर्शन" का जो विस्तृत खुलासा किया, उससे यह तथ्य निश्चित होता है कि वर्तमान में हमारे देश के लिए गीता में वर्णित "व्यवहार दर्शन" विशेष उपयुक्त ही नहीं, किन्तु अत्यन्त आवश्यक है। कृष्ण के बताये हुए मार्ग पर चलने ही से हमारे देश की सर्वांगीण उन्नति और कल्याण हो सकता है और इसी से हमारी सरकार द्वारा बनाई हुई समाजवाद की सब योजनाओं में पूर्ण सफलता प्राप्त की जा सकती है।

गीतावादी : इसमें कोई संदेह नहीं। यद्यपि वर्तमान में योरप और अमेरिका के लोगों के लिए भगवान बुद्ध का निवृत्ति प्रधान "पंचशील" का मध्यम मार्ग विशेष उपयुक्त है, क्योंकि उन देशों के लोग भौतिक उन्नति और विलासिता में बहुत बढ़े चढ़े हैं, जिसके परिणामस्वरूप परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, सन्देह और भय से अत्यन्त विक्षिप्त और दुखी हो रहे हैं और आपस में लड़ झगड़ कर विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। उनमें शान्ति उत्पन्न करने के लिए भगवान बुद्ध के शान्तिदायक उपदेश ही अचूक उपाय हो सकते हैं; परन्तु

हमारे देश की दशा उनसे बिल्कुल ही भिन्न है। यहाँ के लोगों में आध्यात्मिकता का दुरुपयोग एवं विपर्यास हो जाने के कारण उनकी अवस्था बहुत ही हीन है। जीवन के लिए अत्यावश्यक पदार्थों की देश में बड़ी कमी है। मनुष्य संख्या बे हिसाब बढ़ी हुई है। उनके हिसाब से देश की उपज बहुत कम है। करोड़ों नर-नारी निवृत्ति और भक्ति मार्ग आदि धार्मिक अंधविश्वासों में पड़े हुए तथा ईश्वर पर झूठा भरोसा करके निरुद्यमी और आलसी जीवन व्यतीत करते हैं अथवा अपने समय और शक्ति का धार्मिक कर्मकांडो में अपव्यय करते हैं। पुरुषार्थ की अपेक्षा प्रारब्ध को अधिक महत्व देते हैं। अनन्त प्रकार के देवी देवताओं, भूतों, प्रेतों, गृह नक्षत्रों के वहम, अंध-विश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों में जकड़े हुए आत्म-गौरव, आत्म-विश्वास और आत्मोत्साह को खोये बैठे हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों से इतने प्रभावित हो रहे है कि देश की एकता और सामाजिक नैतिकता की सर्वथा उपेक्षा करते हैं। ऐसी दशा में गीता में वर्णित भगवान कृष्ण का बताया हुआ प्रवृत्ति प्रधान महाक्रांतिकारी "व्यवहार दर्शन" अथवा निष्काम कर्मयोग ही के अवलम्ब से हमारे देश का पुनरुत्थान हो सकता है। यदि हमारी सरकार इसी को मान्यता देकर लोगों में इसका जोरदार प्रचार करे तो अपनी सब समाजवादी योजनाओं और समाज कल्याण के प्रयत्नों में पूर्णतया सफल हो सकती है। देश के कल्याण का दूसरा कोई अचूक उपाय नहीं है।

भगवान बुद्ध का निवृत्ति प्रधान उपदेश यद्यपि उस समय हमारे देश के लिए आवश्यक और उपयोगी था, परन्तु इस समय विशेष उपयोगी नहीं है। गीता में वर्णित भगवान कृष्ण के प्रवृत्ति प्रधान "व्यवहार दर्शन" की अथवा निष्काम कर्मयोग का मध्यम मार्ग साधारणतया सब लोगों के लिए सदा ही समान रूप से अत्यन्त उपयोगी है। इसीलिये गीता को इतना महत्व दिया जाता है और इसीलिये यहाँ के लोग इसकी "जयन्ती" प्रति वर्ष मनाते हैं।

●

परिशिष्ट

संस्मरण प्रकरण के मुद्रित होने के बाद प्राप्त हुए संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं ।

१

A Sage Counsellor

It is with great pleasure that I make this contribution to the Souvenir Volume that is being brought out about the life and works of Seth Ram Gopal Mohatta. Being born with the proverbial silver spoon in his mouth and having been brought up in the lap of luxury, he soon displayed those noble traits of character which later blossomed forth and unfolded a fine specimen of manhood. As an illustrious son of an illustrious father he followed the noble family traditions of philanthropy, large heartedness and of sharing his worldly goods with his less fortunate brethren. It was his munificent donation that made it possible for the Hindus of Karachi to have a magnificent Gymkhana building and in gratitude the Institution was named after him as Ram Gopal Mohatta Hindu Gymkhana. The Gymkhana came to be an important landmark in the physical and cultural development of the Hindus of Karachi. Here foregathered the young and the old for outdoor sports and indoor games and recreation, and the Gymkhana grounds and the building were the venue of many important tournaments and other civic events.

Seth Goverdhandas Mohatta Eye Hospital at Karachi was yet another instance of the manifold charities of Seth Ram Gopal who believed that the best form of charity was to succour the needy and the afflicted and to promote the cause of education and physical development, for he used to say that a healthy mind can live only in a healthy body and that it was the sacred duty of each one of us to keep this temple of our mind and body pure and vigorous so as to be able to discharge our obligations to the Creator.

Seth Ram Gopal Mohatta is of a very retiring disposition and has never craved for any public honours, titles or distinctions; in fact he shuns all sort of publicity and works in a quiet and unostentious manner so that 'the right hand doth not know what the left hahd doeth.'

On the few occasions that I have met Seth Ram Gopal Mohatta I have been impressed by his personality and charm and his deeply religious attitude to life. Behind his rugged mein is a man of sterling worth and sagacity—a soul that is easily moved to

tears at the sight of human suffering. Looking at him I have always said to myself "well here is a man who can be a sage counsellor to Kings and Crown Princes."

We pray that God Almighty may spare him for many years, in health and vigour, to continue his philanthropic activities in which he has always been ably seconded by his younger brother R. B. Shiv Ratan Mohatta.

T. J. BHOJWANI
Ex-Chief Officer, Karachi Municipal Corporation.
Ex-Regional Food Commissioner of India.

•

२

A Dedicated Life to Public Service

I join in the many high tributes that are being paid on this occasion to Seth Ram Gopal Mohatta. His has been a life dedicated to public service and endowed with scholarliness. There are numerous reminders of his munificence for the common weal. The books he has written also carry an inspiring message. By example and precept, therefore, he has helped to uplift society. It is proper and fitting that his great services should evoke our admiration and acknowledgement. May he live long to continue his benevolent activities.

P. R. NAYAK I.C.S.
Commissioner,
Delhi Municipal Corporation,
Delhi.

•